

११०५९२

Regd. No. A. 1711

वर्ष १०] मई १९२९ [संख्या १

ज्योति



वार्षिक मूल्य. ४॥) प्रति संख्या ॥)

सम्पादक—
विद्यावती सेठ बी. ए., चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

विद्यार्थियों, स्त्रियों से ४) विदेशका मूल्य६)

विषय सूची।



लेखकों से निवेदन

१. ज्योति में लेख, कविता आदि भेजने वाले महानुभावों को अपने लेख सुस्पष्ट अक्षरों कागज़ के एक ओर ही ,हाशिया छोड़ कर लिख कर भेजने चाहियें।

२. लेख बहुत लम्बे न होने चाहिएँ। ज्योति' पत्रिका के लगभग चार पृष्ठों के लायक लेख हों तो अति उत्तम है।

३. लेखों को घटाने बढ़ाने तथा संशोधित करने का संपादक को पूर्ण अधिकार है।

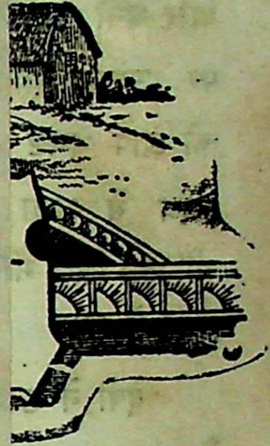


ज्योति सम्बन्धी पत्र व्यवहार— अथवा—

आचार्य्या कन्या गुरुकुल
कोठी नं० २१, राजपुर रोड़
(देहरादून)

सम्पादक ज्योति,
गुरुकुल कांगड़ी
यू.पी.





वर्ष १०

संख्या १

मेरी जीवन-कथा के कुछ पृष्ठ

[२]

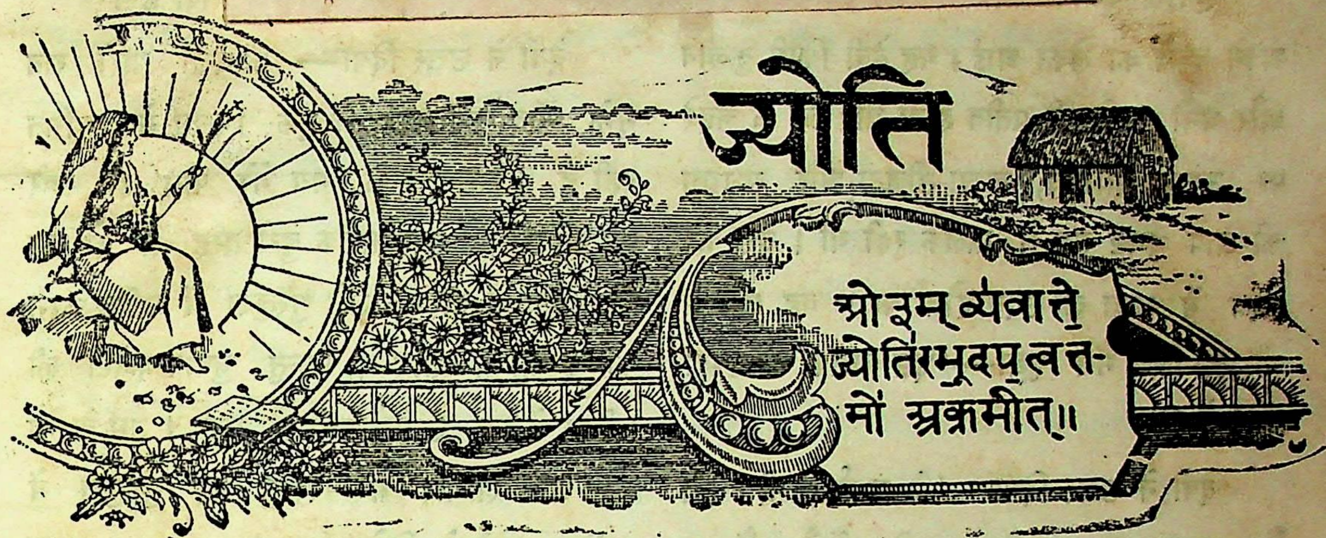
भिक्षुक की झोली

(लेखक—श्री आचार्य रामदेव जी.)

(१)



रुकुल का दसवां वार्षिकोत्सव था। अब उसे सत्रह बरस बीत चुके हैं। उन दिनों प्रतिवर्ष २०, या २५ नए विद्यार्थी ही गुरुकुल में प्रविष्ट किये जाते थे। अपने बालकों को गुरुकुल में पढ़ाने की इच्छा से जो लोग उन्हें गुरुकुल लाते थे, उनकी संख्या कभी कभी ७० से भी ऊपर पहुंच जाती थी। इस कारण वार्षिकोत्सव पर बालकों के चुनाव में बड़ी प्रतिस्पर्धा रहती थी। आयु, शिक्षा और स्वास्थ्य आदि के आधार पर ही इन बालकों का चुनाव किया जाता था। उस साल मुझे चुनाव-समिति का अध्यक्ष निश्चित किया गया था। इस पद पर कार्य करके मुझे अनेक नए नए अनुभव मिले—इन में से एक अनुभव तो इतना मधुर और इतना पवित्र है कि मैं उसे आजन्म नहीं भुला सकता।



विविध विषय विभूषित सुन्दर मासिक पत्रिका.

वर्ष १० | वैशाख १९८३ * मई १९२६ | संख्या १

मेरी जीवन-कथा के कुछ पृष्ठ

[२]

भिक्षुक की झोली

(लेखक—श्री आचार्य रामदेव जी.)

(१)



गुरुकुल का दसवां वार्षिकोत्सव था। अब उसे सत्रह बरस बीत चुके हैं। उन दिनों प्रतिवर्ष २०, या २५ नए विद्यार्थी ही गुरुकुल में प्रविष्ट किये जाते थे। अपने बालकों को गुरुकुल में पढ़ाने की इच्छा से जो लोग उन्हें गुरुकुल लाते थे, उनकी संख्या कभी कभी ७० से भी ऊपर पहुंच जाती थी। इस कारण वार्षिकोत्सव पर बालकों के चुनाव में बड़ी प्रतिस्पर्धा रहती थी। आयु, शिक्षा और स्वास्थ्य आदि के आधार पर ही इन बालकों का चुनाव किया जाता था। उस साल मुझे चुनाव-समिति का अध्यक्ष निश्चित किया गया था। इस पद पर कार्य करके मुझे अनेक नए नए अनुभव मिले—इन में से एक अनुभव तो इतना मधुर और इतना पवित्र है कि मैं उसे आजन्म नहीं भुला सकता।

हमारी चुनाव समिति के सन्मुख एक देवी अपने बच्चे को लेकर आई। यह देवी किसी कुलीन और धनी घराने की प्रतीत होती थी। उस के चेहरे पर उज्वल-चारित्र्य, लज्जा-शीलता और मधुरता की छाप स्पष्ट रूप से झलक रही थी। देख कर हृदय में श्रद्धा का उदय होता था। वह अकेली थी, इस लिये मैंने पूछा—"इस बालक के पिता कहां हैं?"

देवी ने उत्तर दिया—"वे आर्यसमाजी नहीं हैं। गुरुकुल पर उन की श्रद्धा भी नहीं है। मैं उन से हठ कर के ही इस बालक को गुरुकुल में प्रविष्ट करने के लिये लाई हूँ। इन्होंने मेरे इस काम में सहयोग नहीं दिया। इसी कारण वे नहीं आए।"

उस समय कोई और विशेष बातचीत नहीं हुई। बालक स्वस्थ और प्रतिभाशाली था, उसे प्रविष्ट करने के लिये चुनाव कमेटी को कोई विशेष परीक्षा नहीं लेनी पड़ी।

अगले ही दिन, प्रातःकाल उस देवी ने गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता महात्मा मुन्शीराम जी को एक पत्र लिख कर उन से मिलने की इच्छा प्रकट की। महात्मा जी अत्यधिक कार्य-व्यग्र थे, अतः उन्होंने मुझे उस देवी से मिल कर उस की इच्छा जानने का आदेश दिया। देवी के निवासस्थान पर पहुंचते ही उस ने नमस्कार करके मुझ से कहा—"भाई जी! क्षमा कीजियेगा। मैंने एक विशेष कार्य से ही आप को यहां आने का कष्ट दिया है।"

मैंने पूछा—"कहिये, क्या सेवा है?"

देवी ने उत्तर दिया—"पिछली सारी रात मुझे नींद नहीं आई, मैं एक चिन्ता से व्यथित रही हूं। कल रात के समय मेरे पास ही ठहरे हुए परिवार का एक बालक बुरी तरह से रो रहा था। उस के मां बाप उसे गुरुकुल में प्रविष्ट करने की इच्छा से लाए थे, परन्तु चुनाव कमेटी की परीक्षा में वह उत्तीर्ण नहीं हो सका। उस के मां बाप अब लाचार थे—परन्तु वह गुरुकुल में दाख़िल होने के लिये ज़िद कर रहा था। मुझ से बालक का वह हार्दिक कष्ट देखा नहीं गया—इसी कारण सारी रात मुझे नींद नहीं आ सकी। आप ने मुझ पर दया करके मेरे बच्चे को तो गुरुकुल में प्रविष्ट कर ही लिया है। क्या आप इस बालक को भी दाख़िल करने की कृपा नहीं कर सकेंगे?"

मैंने बड़ी नम्रता से देवी के सामने गुरुकुल की अवस्थाओं और नियमों का वर्णन किया। मैंने कहा, अभी तक हमारे पास जितना प्रबन्ध है, उस से अधिक बालकों को प्रविष्ट कर लेने से दोनों पक्षों को हानि ही होगी। परन्तु वह देवी नहीं मानी। उस ने कहा—"आप के यहां आते ही मैंने आप को 'भाईजी' कह कर बुलाया है। आप मेरे भाई बन चुके। अब तो जिस किसी तरह आप को यह काम करना ही होगा।"

ऐसी पुण्यशीला बहिन पाकर मैंने अपने को धन्य माना। परन्तु मैं गुरुकुल के नियमों से लाचार

था। मुझे ज्ञात था कि अभी गुरुकुल में १० बालक और भी प्रविष्ट किये जांयगे, परन्तु उन के लिये जो शर्त रक्खी गई थी, मुझे विश्वास था कि वह शर्त इस देवी के सामने रखने से कोई लाभ नहीं होगा। क्योंकि देवी का उस बालक से कोई सम्बन्ध तो है ही नहीं। दोनों एक नगर के रहने वाले भी नहीं हैं। देवी ने कल रात से पूर्व कभी उस बालक को देखा भी न था। इस लिये मैं चुप हो रहा।

देवी ने मुझे चुप देख कर फिर कहा—"आप मेरी प्रार्थना स्वीकार न करेंगे ?"

और कोई जवाब न सूझने के कारण मैंने कह दिया—"आज भी गुरुकुल में १० नए विद्यार्थी प्रविष्ट किये जांयगे। परन्तु आज प्रविष्ट होने वाले विद्यार्थियों के लिये यह बात आवश्यक है कि उन के अभिभावक उन का सम्पूर्ण शुल्क, अर्थात् १५००) रु०, इसी समय गुरुकुल में जमा करवा दें।"

देवी ने कहा—"उस के मां बाप तो बिल्कुल निर्धन हैं। उन के लिये यह शर्त पूरी करना असम्भव है।"

यह कह कर वह देवी चुप हो रहीं। मुझे विश्वास था कि अब देवी कुछ भी न कह सकेंगी, मुझे उस बालक के माता पिता की आर्थिक दशा भली प्रकार मालूम हो गई थी।

परन्तु दो एक मिनट के बाद अचानक उस देवी ने बड़े उत्साह के साथ कहा—"इस बालक के लिये मैं अपनी ओर से १५००) रु० देती हूं। अब तो आप इसे प्रविष्ट कर लेंगे ?"

मैं भारी अचम्भे में आगया। क्या अभी तक इस देव-भूमि में ऐसी माताएं मौजूद हैं जो एक अपरिचित बालक के किसी अच्छे उत्साह के लिये अपना हजारों रुपया निछावर करने को तैयार हैं। मैं गद्गद हो गया। मेरा सिर स्वयं उस पुण्यमयी देवी के लिये श्रद्धा से झुक गया। मुझे विश्वास हो गया कि भारतीय सभ्यता सचमुच इसी तरह की स्वर्ग की देवियों के आधार पर ही जीवित है। इसी समय उस देवी ने १०००) रु० के नोटों का पुलिन्दा मेरे सामने रखते हुए कहा—"शेष ५००) रु० घर जाते ही भेज दूंगी।"

यह कल्पनातीत दृश्य देख कर मैं अभी तक अचम्भे में डूबा हुआ था।

इन पिछले सत्रह बरसों में मेरा उस देवी से बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इस देवी से ज्यों ज्यों मेरा परिचय बढ़ता गया, त्यों त्यों मेरी उस के प्रति श्रद्धा भी बढ़ती चली गई। अब तो इस देवी का पुत्र भी गुरुकुल का स्नातक बन चुका है और उस से भी मेरा बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। यह पति-परायणा देवी अपने सम्पूर्ण जीवन में यदि कभी अपने पति से रुष्ट हुई है तो केवल दान के सम्बन्ध में। उस के पति एक उच्च सरकारी पदाधिकारी थे—देवी उन की कमाई का बहुत सा भाग दान में दे देने के लिये उन्हें सदैव बाधित करती रही है।

(२)

गरमियों के एक सायंकाल, मैं गुरुकुल के महता-द्वार से निकल कर सैर के लिये अकेला जा रहा था। द्वार से थोड़ी ही दूर पर मुझे मैले कुचैले कपड़ों वाली एक देवी गुरुकुल की तरफ़ धीरे धीरे आती हुई मिली। उस की आयु ४० बरस से अधिक होगी। उस के चेहरे पर गहरी व्यथा की छाप स्पष्ट पड़ी हुई थी— इस पर भी वह देवी कुलीन प्रतीत होती थी। मेरा ध्यान हठात् उसकी तरफ आकृष्ट हो गया। देवी निकट आगई थी। मैंने कहा—"माता जी, नमस्ते !"

देवी ने एक वात्सल्यपूर्ण आशीर्वाद देकर मुझ से पूछा— "गुरुकुल कितनी दूर रह गया है ?" वह बहुत थक गई थी।

मैंने उत्तर दिया—"अब आप गुरुकुल की भूमी में पहुंच गई हैं।"

देवी ने फिर पूछा—"गुरुकुल के बड़े पण्डित जी कहां हैं ?"

मैंने कहा—"माता जी ! आज्ञा कीजिये।"

देवी को जब मालूम हुआ कि गुरुकुल का आचार्य मैं ही हूं— तब वह मेरे पैरों की तरफ़ नमस्कार करने के लिये झुकी। मैंने उसे ऐसा करने से मना किया। इस के बाद आंखों में आंसू भर कर देवी ने अपने मैले कुचैले कपड़ों को टटोलना शुरु किया। थोड़ी देर में एक फटे हुए, मैले कपड़े की गांठ खोलकर देवी ने चांदी के ७) रु० बाहर निकाले। मैं देवी के हृदय की उदारता पर मन ही मन आश्चर्यित हो ही रहा था कि उस ने स्वयं एक बड़ी करुणा-कथा मुझे सुनानी शुरु की। देवी ने कहा—"ये रुपये मेरी ओर से नहीं, अपितु मेरे पुत्र की ओर से गुरुकुल को दान हैं। मेरा केवल एक ही लड़का था। उस की उमर २०, २२ बरस की थी। परन्तु थोड़े ही दिन हुए भगवान ने उसे मुझ अभागिन से छीन लिया ! मैं सनातनी हूं। परन्तु मेरा पुत्र पिछले दो सालों से गुरुकुल के जल्से पर आया करता था। गुरुकुल के इन जल्सों ने उस पर कुछ ऐसा जादू किया कि वह नियम पूर्वक प्रतिदिन आर्यों की संध्या और हवन करने लगा। भगवान के दूत जब उस की आत्मा को लेने आये, तब मैंने उस से पूछा—'बेटा, तेरी कोई मर्जी है ?"

मेरे लाल ने अटकते अटकते उत्तर दिया— "अम्मा ! मेरी एक ही ख्वाहिश है। मेरे मरने के बाद मेरा सारा सामान बेच कर, उस से जो रुपये मिले, उन्हें हरिद्वार जाकर अपने हाथों से गुरुकुल के बड़े पण्डित जी को दे आना।"

इतना कह वह देवी अपने बच्चे की याद में फूट फूट कर रोने लगी। मैं देवी को आश्वासन देकर उसे गुरुकुल की अतिथिशाला में लेगया।

अपने ३० वर्ष के सार्वजनिक जीवन में गुरुकुल और आर्य समाज के लिये मैंने लाखों रुपया दान एकत्र किया है। अनेक करोड़पति और राजा

महाराजाओं से मुझे बड़ी बड़ी रकमें भी प्राप्त हुई हैं। परन्तु इतना अधिक पवित्र और इतना अधिक उत्तरदायिता का स्मरण करने वाला धन मुझे और भी कभी प्राप्त हुवा है— इस में सन्देह है। ये ७ रुपये मुझे ७ लाख रुपयों से बढ़ कर प्रतीत हो रहे थे।

उस दिन दो बातें बड़े स्पष्ट रूप में मेरे सान्मुख आईं। पहले तो अपने गम्भीर उत्तरदायित्व का स्मरण हुवा—मुझ पर उस पवित्र कुल का उत्तर-दायित्व है, जिसे ऐसा देव-दुर्लभ दान आता है। दूसरा यह कि गुरुकुल का वार्षिकोत्सव अब स्वयं अपने में एक अलग संस्था बन गया है।

(३)

सन् १९२२ में पं० विश्वम्भरनाथ जी गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता थे। मैं उन दिनों लाहौर में था, गुरुकुल के उस वर्ष के उत्सव से पूर्व उन्होंने मुझ से अनुरोध किया कि मैं गुरुकुल के लिये धन संग्रह करने के उद्देश्य से कलकत्ता जाऊं। मैंने यह बात स्वीकार कर ली। कलकत्ते जाकर गुरुकुल के लिये कई हज़ार रुपया धन एकत्र किया। फिर जी में आया कि चलो बर्मा का भी चक्कर लगा लिया जाय। मेरा यह कार्य सचमुच एक साहसमात्र ही था, क्योंकि तब तक बर्मा में मेरी परिचिति बहुत ही कम लोगों से थी। फिर सन् १९२१ में ही गुरुकुल के संस्थापक श्रद्धेय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी वहां से गुरुकुल के लिये एक बड़ी भारी रक़म ला चुके थे। फिर भी हिम्मत करके मैं रंगून जा ही पहुंचा। वहां आर्य सज्जनों से मिला, परन्तु सभी ने निराशा दिलाई। सब लोगों को मेरा आना अवाञ्छनीय, अनुचित और व्यर्थ प्रतीत हुवा। परन्तु मैं जल्दी निराश होने वाला व्यक्ति नहीं हूं, अतः वहां मोरचा लेकर डट ही गया।

एक दिन एक महाशय ने बातचीत में मेरे सन्मुख रंगून के डाक्टर प्राणजीवन महता का ज़िकर किया। उनकी विचित्र उपाधियों ने मेरा ध्यान अपनी तरफ खींचा। वह एक तरफ़ औक्सफ़ोर्ड के एम० ए० हैं, दूसरी तरफ़ वह विलायत के एक विश्वविद्यालय के एम० डी० हैं, और तीसरी तरफ़ वह बारिस्टर-एट-ला हैं। इस पर भी मज़ा यह है कि न तो वह कहीं प्रोफेसर हैं, न चिकित्सा का कार्य करते हैं और न वकालत ही करते हैं। वह हीरे मोतियों का व्यापार करते हैं। और अपने इसी व्यापार की बदौलत वह लाखों रुपया कमा चुके हैं। डाक्टर महता की इस विचित्रता ने मुझे अपनी तरफ खींचा। ऐसे अजीब मनुष्य सम्भवतः इस सम्पूर्ण पृथवी पर ही बहुत कम होंगे। इस पर यह जान कर मुझे और भी अधिक आश्चर्य हुवा कि करोड़पति होते हुए भी वह महात्मा गांधी के अनन्य भक्त हैं, और स्वयं बिल्कुल सादा बन कर रहते हैं। उनके मकान में बिजली तक भी नहीं। मेरी इच्छा इस अद्भुत व्यक्ति से मिलने की हुई। परन्तु उन महाशय ने, जो मुझे डा० प्राणजीवन महता का परिचय दे रहे

थे, अन्त में यह भी कह दिया कि डाक्टर साहब आर्यसमाजी नहीं हैं, अतः आप उन से कोई विशेष दान प्राप्त करने की आशा न कीजिये।

अगले ही दिन मैं डाक्टर साहब के बंगले पर पहुंचा। डाक्टर साहब का यह बंगला रंगून शहर से बाहर है। बंगला बिल्कुल मामूली है, उस का सामान और भी अधिक सादा है। देखने से वह कोई सत्याग्रह-आश्रम प्रतीत होता है। मैं मकान की सादगी देख कर मन ही मन मुग्ध हो ही रहा था, कि डाक्टर साहब के दर्शन हुए। उन्हें देख कर श्रद्धा उमड़ती है। खास कर मुझे तो उन से मिल कर बहुत ही अधिक प्रसन्नता हुई। उन से मिल कर मैं चन्दे की बात तो भूल ही गया। साहित्यिक-चर्चा छिड़ गई। मैंने देखा कि राष्ट्रीय शिक्षा के सम्बन्ध में डाक्टर साहब के विचार खूब परिपक्व हैं। इस विषय पर उन्हों ने मुझे अपना एक लेख भी पढ़ने को दिया। उसे पढ़ कर मेरा हृदय खिल उठा। मुझे उन का घर एक विद्या-मंदिर के समान प्रतीत होने लगा।

बातचीत का सिलसिला बदल कर प्राचीन इतिहास पर जा पहुंचा। इस सम्बन्ध में मैंने अपने विचार और अपना दृष्टिकोण उन के सन्मुख पेश किया। डाक्टर साहब का चेहरा खुशी से चमक उठा। मेरे विचार सुन कर वह बहुत ही अधिक प्रसन्न हुए। शायद बहुत दिनों के बाद उन्हें एक अपने जैसा खब्ती आदमी मिला था। वह और मैं दोनों एक ही मर्ज़ के मरीज़ थे, इस लिये हम दोनों की खूब खुल कर छनी। मैंने सदा अपने को भारतीय सभ्यता का जनूं समझा है। मेरे मित्र सदा मुझे पागल, खब्ती और एकरुखा समझते रहे हैं। वे मुझ से यह कहते रहे हैं कि तुम सदैव प्राचीन सभ्यता में गुण ही गुण और नवीन सभ्यता में दोष ही दोष देखते हो। मैं उन्हें सदैव यही उत्तर देता रहा हूं, कि मनुष्य जीवन के प्राचीन आदर्श मुझे निर्दोष प्रतीत होते हैं। यदि उन में कोई त्रुटि हो तो मुझे बताओ। वे कहते थे—'आदर्श तो क्रिया में नहीं आते। प्राचीन काल के आदर्श प्राचीन काल में भी क्रियात्मक रूप धारण नहीं कर सके।' इस बात पर मैं हंस कर सदैव यही उत्तर देता था कि भाई! आदर्श तो सदैव उस क्षितिज के समान होते हैं, जहां आस्मान और पृथिवी मिलते हुए-से दिखाई देते हैं। उन तक पहुंचा ही नहीं जा सकता। परन्तु इस का यह अर्थ नहीं कि हम आदर्श-शून्य हो जांय। जिस जाति या राष्ट्र के सन्मुख ऊंचे आदर्श नहीं, वह जीवित ही नहीं रह सकता क्योंकि उस के पास फिर कोई प्रेरक-शक्ति नहीं रहती।' परन्तु इस पर भी मेरे अनेक मित्र, जिन में अनेक आर्य समाजी भी सम्मिलित हैं, मुझे इस अंश में अभी तक कट्टर और सिड़ी समझते हैं। परन्तु साथ ही उन की दृष्टि में मेरा यह मर्ज़ लाइलाज और संक्रामक भी है। मज़ा तो यह है कि मेरा यह मर्ज़ धीरे-धीरे उन पर भी असर कर-कर रहा है।

परन्तु डाक्टर महता की दशा इस के भिन्न थी। मेरी तरह वह भी पहले ही से भारतीय सभ्यता के जनूं निकले। उन का और मेरा मिलना सचमुच दो दीवानों के मिलने के समान हुवा—'खूब गुज़रेगी, जब मिल बैठेंगे दीवाने दो।' बैठे-बैठे घण्टों निकल गए, परन्तु हमारी विद्या-सम्बन्धी बातचीत का सिलसिला नहीं टूटा।

जो सज्जन मुझे अपने साथ डाक्टर महता के निवास स्थान पर लेगए थे, वह इतनी देर तक बैठे बैठे बिल्कुल ऊब गए। जब उन्होंने देखा कि घंटों बीत जाने पर भी हमारी बातचीत का प्रवाह ज़रा भी सुस्त नहीं पड़ा, तब उन के धैर्य का बांध टूट गया। उन्हों ने झुंझला कर मेरे कान में कहा—"इसी तरह सारा दिन गप्पों में ही बिताओगे, या कुछ चन्दा भी करना है ?"

मैं जैसे नींद से जाग उठा। अपने आने के उद्देश्य का स्मरण आते ही मैंने डाक्टर साहब से गुरुकुल का प्रसंग छेड़ा। मैंने सीधे शब्दों में केवल इतना ही कहा— "डाक्टर साहब ! मैं ब्रह्मा में गुरुकुल के लिये धन संग्रह करने के उद्देश्य से आया हूं। आप भी कुछ सहायता कीजिये।"

डाक्टर साहब ने पूछा—"आप मुझ से किस काम के लिये कितना रुपया चाहते हैं ?"

मैंने डरते-डरते उत्तर दिया—"आप गुरुकुल को ५०००) रु. इस उद्देश्य से दीजिये कि इस से एक अछूत विद्यार्थी सदैव निश्शुल्क शिक्षा प्राप्त कर सके।"

डाक्टर महता को मेरा यह निर्देश पसन्द नहीं आया। इस काम के लिये पांच हज़ार देने में उन्होंने अपनी अनिच्छा प्रगट की।

मैं निराश हो गया। मैंने सोचा कि अब तो डाक्टर साहब से १०० या २०० रुपया ही मिल सकेगा। इसी लिये अपनी इस सम्भावना को कुछ बढ़ा कर मैं ५००) की मांग करने ही वाला था कि मैंने अचानक उन से ही पूछ लिया—"तो फिर आप स्वयं ही किसी कार्य का निर्देश कीजिये ?"

डाक्टर साहब ने उत्तर दिया—"मैं तो आप के से प्राचीन भारतीय के जनूं ही गुरुकुल से पैदा करवाना चाहता हूं।"

मेरी जाती हुई आशा फिर लौट आई। इस वार मैंने साहस कर के कहा—"इस का उपाय तो यही है कि गुरुकुल में भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास का इसी दृष्टि-कोण से अध्ययन करने के लिये एक गद्दी स्थापित की जाय। गुरुकुल में किसी विषय की एक गद्दी स्थापित करने के लिये ३००००) रु० स्थिर कोश में जमा करने का नियम है।"

मुझे उमीद थी डाक्टर साहब इस मांग से घबरा कर बातचीत का सिलसिला ही बदल देंगे। परन्तु वह कुछ भी न कह कर चुपचाप सोचने लगे।

थोड़ी देर बाद डाक्टर साहब ने कहा—"मैं इस सम्बन्ध में अपने पुत्रों की सलाह लेना

आवश्यक समझता हूं। परसों प्रातःकाल तक मैं स्वयं आप के निवासस्थान पर ही इस बात की सूचना भिजवा दूंगा।"

उन दो दिनों में मेरी जो अवस्था रही, उसे मैं ही अनुभव कर सकता हूं। कभी हृदय निराश हो जाता था और कभी आशावान। तब तक मुझे कभी किसी एक दानी से, एक साथ ३००००) रु० प्राप्त नहीं हुवा था—इस लिये एक विचित्र सी दशा में मेरे वे दोनों दिन निकले। तीसरे दिन की प्रातः-काल डाक्टर साहब के एक सुपुत्र ने मेरे निवास-स्थान पर आकर मुझे सूचना दी—"पिता जी ने गुरुकुल को ३००००) रुपया देने का पूर्ण संकल्प कर लिया है। आप जब चाहें तभी आप को यह रुपया वसूल हो जायगा।"

दान का यह अनुभव इतना मधुर था कि इस के रस का विश्लेशण करना कठिन है।

(४)

गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना के नौ बरस बाद गुरुकुल की भिक्षा मण्डली कराची नगर में गई। मैं इस मण्डली का मुखिया था। कराची निवासियों ने इस मण्डली के साथ पूरा सहयोग किया। नगर के सेठों तथा आर्य सज्जनों ने अपनी-अपनी निष्ठा तथा शक्ति के अनुसार पर्याप्त धन गुरुकुल के लिये दिया। हम लोग अपना काम लगभग समाप्त कर ही चुके थे कि लोगों ने हमें कराची के एक अत्यधिक धनी परन्तु उस से भी बढ़ कर कंजूस सेठ का नाम बताया। हमें ज्ञात हुवा कि उस सेठ के पास ८५ लाख रुपया नकद जमा है, परन्तु वह किसी भी डेपूशन को एक पाई तक भी दान नहीं देता। जब कभी कोई मण्डली उसके पास जाती है तो कठोर व्यवहार, खुश्क युक्तियों तथा बहानों की बौछार कर के उसे परेशान कर देता है। मेरे जी में आया कि एक वार ऐसे महापुरुष के भी दर्शन कर के अपनी शक्ति आज़मानी चाहिये। मैंने सोचा, और कुछ न भी सही—कतिपय नए मनोवैज्ञानिक अनुभव ही सही। बस मैं अकेला, केवल एक स्थानीय आर्य-सज्जन को अपने साथ लेकर सेठ जी की बैठक पर पहुंचा। वहां पहुंच कर मुनीम के दर्शन मात्र करने से ही मैं समझ गया कि आज कैसे सज्जन से पाला पड़ा है। मुनीम जी ने देखा कि कोई झक्खी सा आदमी रसीद बुक हाथ में लिये दुकान की ओर चला आरहा है। हमारे मुंह से कोई बात सुने बिना ही वह गरज कर बोल उठा—"जाओ! जाओ! यहां कुछ नहीं मिलेगा। मुफ़्त में अपना समय खराब करने आए हो।"

मैंने कहा—"मिलेगा या नहीं मिलेगा, इस सम्बन्ध में हम लोग कुछ नहीं पूछ रहे हैं। यह बताओ कि सेठ जी कहां हैं?"

मुनीम ने तमक कर कहा—"यहां नहीं हैं। घर पर हैं।"

मैंने पूछा—"वह कब तक आवेंगे?"

मुनीम ने कहा—"१½ घण्टे तक।"

हम लोग इतने लम्बे अरसे की बात सुन कर भी दुकान पर बैठने को तैयार हो गए, यह देख कर मुनीम महाशय मुस्करा उठे। उन्होंने कहा—"आप लोग क्यों मुफ़्त में डांट खाना चाहते हैं। जाइये, अपना काम कीजिये।"

मुनीम की बात पर कोई ध्यान न देकर हम लोग एक तरफ़ होकर बैठ गए। अब मुनीम की मुस्कयान देखने लायक थी। वह शायद यह सोच रहा था कि आज फिर एक मज़ेदार तमाशा देखने को मिलेगा।

सचमुच पूरे १½ घण्टे के बाद ही सेठ साहब वहां तशरीफ़ लाए। मुनीम ने पहले ही पट्टी पढ़ा दी थी। अतः आप नाक भौं सिकोड़ कर दुकान में प्रविष्ट हुए। सेठ के चेहरे पर अशान्ति, लोभ और असन्तोष की छाप स्पष्ट पड़ी हुई थी। उस की नाक बता रही थी कि वह बड़े दृढ़ संकल्प का मनुष्य है। उस की आंखों से बुद्धि की तीव्रता टपकती थी। उसे हजामत किये कई दिन हो चुके थे। कपड़े कुछ कुछ मैले थे। मालूम होता था कि उस ने प्रकृति द्वारा दी हुई सम्पूर्ण सुन्दरता को कुचल डालने का पूरा निश्चय कर रक्खा है। आप ने अन्दर आते ही स्वयं पूछा—"चन्दा लेने आए हैं?"

"जी हां।"

"किस के लिये।"

"गुरुकुल के लिये।"

सेठ जी तमक कर बोले—"वह तो आर्य समाज का है और मैं सनातनी हूं।" मालूम होता था कि अपने एक ही वाक्य द्वारा सेठ जी हम लोगों को दुकान के बाहर खदेड़ देना चाहते हैं।

मैं ने बड़ी शान्ति से उत्तर दिया—"संस्कृत और हिन्दी की पढ़ाई, ब्रह्मचर्य, सादगी आदि बातों को तो आप भी अच्छा मानते हैं न?"

सेठ जी तिलमिला उठे—"हूं! आप तो लड़कों को १४ साल तक कैद रखते हैं!"

मैंने कहा—"नहीं। वहां तो बड़ी स्वतन्त्रता का वायुमण्डल है। प्रकृति माता की गोद में ब्रह्मचारी बड़ी प्रसन्नता से रहते हैं।"

सेठ जी ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। अब मुझे भी कुछ आवेश आगया। मैंने बड़ी गम्भीरता से कहा—"सेठ जी! असल में देखा जाय तो कैदी आप हैं। आप तो धन के कैदी हैं। आपने लाखों रुपया कमाया है, परन्तु आप न अच्छा खाते हैं न अच्छा पहिनते हैं। वह धन आप का थोड़े ही है। आप तो केवल उसके पहरेदार हैं।"

इसी तरह की बहुत सी खरी खरी बातें मैंने सेठ जी की सेवा में निवेदन कीं। मेरे मुंह में न जाने कैसा जादू आगया था कि सेठ जी पिघल गए। वह बोले—"आज आपने मुझे मेरा सच्चा स्वरूप दिखाया है। मुझे क्षमा कीजिये। आप की रसीद-बुक में जो रकम सब से बड़ी लिखी हुई हो, वही मेरे नाम पर भी लिख लीजिए।" मैंने वह मात्रा

दिखाई । सेठ जी ने उसी समय नकद रुपये गिन दिये । वह मुझे नीचे तक छोड़ने भी आए ।

नीचे आकर फिर मुझ से वायदा किया कि गुरुकुल आकर वह काफ़ी रकम गुरुकुल को देंगे । बिदा होते समय सेठ जी ने तीन बार झुक झुक कर नमस्कार किया । आज मैं अपनी सफलता पर बड़ा प्रसन्न था । अन्य लोग भी मेरी इस सफलता पर बहुत अधिक चकित हुए ।

शोक है कि शीघ्र ही स्वर्गवास हो जाने के कारण फिर कभी सेठ जी के दर्शन न हो सके ।

(५)

कराची की उपर्युक्त घटना से मेरी हिम्मत बहुत बढ़ गई । मैं भिक्षावृत्ति के सम्बन्ध में बिल्कुल निधड़क बन गया । परिणाम में मुझे प्रायः सदैव सफलता भी मिलती रही । कभी कहीं पर बिल्कुल निराश नहीं होना पड़ा । परन्तु पर्याप्त समय के बाद मुझे एक जगह मुंह की भी खानी पड़ी । मैं बम्बई शहर में गुरुकुल के लिये धन संग्रह करने के उद्देश्य से गया । वहां मुझे पर्याप्त सफलता मिली । बम्बई के पंजाबी व्यापारियों ने जी खोल कर गुरुकुल को धन दिया । इसी सिलसिले में मुझे एक रायबहादुर व्यापारी का नाम बताया गया । मुझे ज्ञात हुआ कि वह सेठ सरकार का अत्यधिक खुशामदी है, गैरसरकारी कामों में मदद देना वह गुनाह समझता है । फिर भी अपनी शक्ति की आज़माइश करने के उद्देश्य से मैं उस सेठ के पास पहुंचा ।

गुरुकुल के लिये चन्दे का नाम सुनते ही सेठ साहब ने पूछा—"क्या गुरुकुल का सरकार से ताल्लुक है ?"

मैंने बड़े जोश से उत्तर दिया— "कदापि नहीं । गुरुकुल तो कट्टर असहयोगी है । उस का उद्देश्य स्वराज्य-वादी और देशभक्त नवयुवक उत्पन्न करना है ।"

सेठ जी ने बड़ी समझदारी की स्वर में कहा "तो फिर आप राजद्रोही हुए न ?"

मैंने कहा—"राजद्रोही नहीं, देशभक्त ।"

सेठ साहब तन कर बैठ गये और बोले— "देशभक्त का अर्थ है ही राजद्रोही । मैं सरकारी आदमी हूं । सरकार ने मुझे रायबहादुर बनाया है । आप लोगों के पास क्या धरा है । मैं सरकार की खिदमत करता हूं, और वह मेरा सन्मान करती है । मैं आप को रुपया क्यों दूं ?"

और कोई उत्तर न देकर मैंने कहा—"चलिये, परोपकार के नाम पर ही सही । कुछ तो मदद कर दीजिये ।"

परन्तु सेठ जी पिघलने वाले प्राणी नहीं थे । आपने फरमाया—"मेरा परोपकार तो मेरे परिवार तक ही सीमित है । आप लोग मेरे क्या लगते हैं ?"

मैंने खिज कर पूछा— "सरकार आप की क्या लगती है ?"

सेठ साहब ने कहा—"सरकार मेरी मां बाप है । उस ने मुझे रायबहादुर बनाया है । इस रायबहादुरी की बदौलत आप के स्वराज्यवादी

भी मुझे बड़ा आदमी समझते हैं। आप लोग चाहे कितना ही स्वराज्य स्वराज्य चिल्लायें, आप के दिल में सरकारी खिताबों के लिये इज्ज़त का भाव ज़रूर है।"

मैंने गम्भीरतापूर्वक कहा—"सेठ साहब, सरकार अब और थोड़े ही दिन की मेहमान है। ज़माना बड़ी तेज़ी से बदल रहा है। स्वराज्य हो जाने के बाद आप को कोई कौड़ी के दाम भी नहीं पूछेगा। इस लिये अच्छा यह हो कि आप अभी से किसी मज़बूत जहाज़ में अपनी सीट रिज़र्व करवा लें, ताकि जिस दिन आप के माई-बाप यहां से कूच करें उस दिन आप भी उन की चरण सेवा करते हुए इस देश का बोझ हलका कर दें।"

समझता था कि इस ताने से सेठ साहब कम से कम कुछ गम्भीर तो अवश्य बन जावेंगे। परन्तु मेरे आश्चर्य का पारावार न रहा, जब असह्य बेशर्मी से हंस कर सेठ साहब बोले—"आप के इस दोस्ताना मशविरे के लिये मैं आप का एहसानमन्द हूं। मैं जरूर ऐसा ही करूंगा। अब आप मेहरबानी कर के यहां से तशरीफ़ लेजावें।"

(६)

सन् १९२६ के दिसम्बर मास में गुरुकुल के संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द शहीद हुए। इस के ३ मास बाद ही गुरुकुल कांगड़ी की रजतजयन्ती होनी थी। कुलपिता के दैवीय बलिदान से लोगों में बड़ा उत्साह फैला। गुरुकुल प्रेमियों ने दिल खोल कर स्वयं गुरुकुल की सहायता की। मैं उन दिनों कलकत्ता में गुरुकुल के लिये धन संग्रह का कार्य कर रहा था। वहां मुझे लोगों के इस सदुत्साह के अनेक मधुर अनुभव प्राप्त करने का सौभाग्य मिला। एक दिन कलकत्ता हाईकोर्ट के एक जस्टिस नें मुझे फोन द्वारा अपने यहां आने का निमन्त्रण दिया। वहां उन्हों नें स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द की पुण्यस्मृति में दो चार वाक्य कह कर गुरुकुल के लिये चुपचाप, अयाचित रूप से ही, ५००) रु. निकाल कर रख दियें और यह दान गुप्तदान के रूप में दिया गया। इसी प्रकार और भी बहुत से मधुर अनुभव प्राप्त हुए।

उन्हीं दिनों एक अत्यधिक कटु अनुभव भी मुझे मिला। मैं एक प्रमुख मारवाड़ी सेठ के पास गुरुकुल के लिये धन मांगने के उद्देश्य से गया। मेरी प्रार्थना सुन कर सेठ जी ने कहा—"आप लोग तो मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते हैं न?"

मैंने कहा—"गुरुकुल तो एक शिक्षणालय है। फिर, हम आर्य समाजियों और हिन्दुओं में बहुत सी बातें एक समान भी तो हैं। गुरुकुल भारतीय सभ्यता का केन्द्र है। इन जागृति के दिनों में गुरुकुल के संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द ने हिन्दुओं में शुद्धि और दलितोद्धार का मन्त्र फूंक कर हिन्दुओं का उपकार किया है कि नहीं?"

शुद्धि का नाम सुन कर मानो सेठ जी को आग लग गई। वह बड़े क्रोध से बोले—"शुद्धि ने तो हमारा सत्यानाश कर दिया।"

मैंने कहा—"हिन्दू लोग अन्य मतों को तो स्वीकार कर सकें, परन्तु अन्य मतों वाले हिन्दू धर्म में प्रविष्ट न हों —इस नीति से तो एक दिन हिन्दुओं का नाम भी दुनियां से मिट जायगा।"

सेठ साहब मूर्खतापूर्ण हंसी हंस कर बोले—"हमारी जिन्दगी तक तो हिन्दुजाति समाप्त होती नहीं। उस के बाद देखा जायगा। अभी तो २२ करोड़ हिन्दू बचे हुए हैं।"

मुझे ज्ञात था कि कुछ समय पूर्व सेठ साहब के एक बड़े पूज्य व्यक्ति ने इस्लामिया कालिज को एक बडी रकम दान दी थी। इस लिये मैंने प्रसंग बदल कर कहा-"मुसल्मान लोग भी तो मूर्त्ति-पूजक नहीं। फिर आप के उन मित्र महोदय ने इस्लामिया कालिज को क्यों दान दिया ?"

सेठ साहब ने बड़े गर्व से कहा—"हम लोग तो सांप की पूजा करने वाले हैं। इस्लामिया कालिज क्या, मैं तो मस्जिदों में भी दान भिजवाता हूं। मुसल्मान लोग सांप की तरह से हैं, जिन्हें दूध पिलाने से अपनी रक्षा होती है। हम लोगों ने तो रुपया दे देकर सरकार और मुसल्मान दोनों को सन्तुष्ट किया हुवा था, परन्तु आप आर्य-सभाजी लोगों ने हिन्दुओं को मुसल्मानों के मुकाबले में भड़का कर लड़ाई झगड़े खड़े कर दिये हैं। आप आर्यसमाजी तो हमारे दुश्मन हैं। आप लोगों ने हिन्दू मुसल्मानों की लड़ाई करवा दी है, और इस का नतीजा हम मारवाड़ी सेठों को उठाना पड़ रहा है। मैं आप लोगों की क्यों मदद करूं ?"

मैं भला ऐसे बहादुर आदमी की बात का क्या उत्तर देता। अपनी जाति के भाग्यों को कोसता हुवा मैं अपने निवासस्थान पर चला आया।

पगली

री उन्मादिनि, किस मद में तू झूम रही है ?
लक्ष्यहीन-सी किस नगरी में घूम रही है ?
चञ्चल बाला-सी हँसती है, फिर रोती है,
किन सपनों से जाग जाग कर फिर सोती है ?
विग्रह करके संधि स्वयं क्यों कर लेती है ?
सञ्चित करके धन क्यों वितरण कर देती है ?
क्रूर कभी, तो करुणा कभी, क्यों बन जाती है ?
कोमल स्वर में, कभी तीव्र में, क्यों गाती है ?
आज पिए तू सचमुच मदिरा की प्याली है—
परम-पदों के लिए बनी या मतवाली है ?

—रत्नाम्बर दत्त 'रत्न'

वेदों में दार्शनिक विचार

(५)

[लेखक—श्री पं० धर्मदेव जी वेदवाचस्पति]

यह संसार किस तरह बना



अब हम प्रकरणानुसार तीसरे प्रश्न को लेंगे कि प्रकृति (सलिल या आपः) से यह सृष्टि किस तरह बनी। प्रकृति की किस तरह विकृति हुई कि यह संसार बन गया।

सृष्टि का विकास किस तरह हुआ या प्रकृति में किस तरह विकार प्रारम्भ हुआ इस प्रश्न के उत्तर के लिए पूर्वोक्त नासदीय सूक्त ही कुछ सहायक प्रतीत होता है। इस सूक्त के तीसरे मन्त्र में प्रकृति का स्वरूप बता कर लिखा है—

"तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासी-
त्तपसस्तन्महिना जायतैकम् ।"

अर्थात् जो अप्रकेत सलिल तुच्छता से व्याप्त था, वही सलिल तप के प्रभाव से उत्पन्न हो गया, अभिव्यक्त हो गया।

प्रकृति जड़ है यह हम पहले देख आये हैं। जड़ वस्तु में स्वयं किसी प्रकार की गति नहीं हो सकती। इस कारण प्रकृति में भी स्वयं किसी प्रकार की गति नहीं होनी चाहिये। और बिना किसी प्रकार की गति हुए प्रकृति में कोई विकार नहीं हो सकता। इस गति को उत्पन्न करने के लिए एक चेतन कर्ता की आवश्यकता है। कर्तृत्व के साथ चेतनता का अविनाभाव सम्बन्ध है। कृति व्यापार विशिष्ट को कर्ता कहा जाता है।

इस कारण ज्ञान और इच्छा के बाद कृति होने से कर्ता का चेतन होना आवश्यक है। अचेतन वस्तु में ज्ञान इच्छा आदि नहीं हो सकते। अतएव उपर्युक्त मंत्र में सृष्ट्युत्पत्ति का कारण 'तप' कहा है। तप के प्रभाव से वह सलिल अभिव्यक्त हो गया। 'तप' नाम स्रष्टव्य पर्यालोचन रूपी ज्ञान का है। क्योंकि मुण्डकोपनिषद् में लिखा है—

"यः सर्वज्ञः यः सर्व विद्यस्य ज्ञानमयं तपः ॥"

अर्थात् शरीर को तपाने (दीप्त करने) को ही तप नहीं कहते, प्रत्युत ज्ञान को अत्यन्त प्रदीप्त करना (संसार का परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त करना) ही ईश्वर का तप है। इसी तप के प्रभाव से सलिल अभिव्यक्त हो गया। इसी प्रकार ऋ० १०।१९०।१ में लिखा है—

"ऋतं च सत्यञ्चाभिद्धात्तपसोऽध्यजायत।"

अर्थात् तप के प्रभाव से ऋत और सत्यमय यह संसार उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार परमेश्वर ने ईक्षण किया।

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यत्....
ऋ० १०।१२१।८॥

अर्थात् उस परमेश्वर ने अपने महत्व से प्रकृति का ईक्षण किया। ईक्षण या ज्ञान करने के साथ २ उसके मन में सृष्ट्युत्पत्ति करने की कामना हुई। इसी बात को नासदीय सूक्त में बड़े

उत्तम तरीके से बताया है। "तपसस्तन्महिना जायतैकम्" कहने के बाद शंका होती है कि तप के प्रभाव से सृष्टि किस तरह उत्पन्न हुई। इसका उत्तर अगले मंत्र में दिया है कि "कामस्तदग्रे समवर्तताधि। ऋ १०। १२१। ४। अर्थात् उस समय ईश्वर में सृष्टि उत्पन्न करने की कामना विद्यमान थी। उस कामना से सृष्टि की उत्पत्ति हो गई। परमात्मा के ज्ञान और इच्छा मात्र से 'कृति' हो गई। उस कृति के लिए किसी पृथक् करण की आवश्यकता नहीं। मनुष्य अपूर्ण है। अतएव उस के साधन भी अपूर्ण है। किसी काम को करने के लिए आत्म मन और इन्द्रियों को काम करना पड़ता है। परन्तु यदि मन को दृढ़ किया जावे, मानसिक व्यायामों से मन को साधा जावे तो इन्द्रियों के उपयोग किये बिना ही संकल्प मात्र (Auto-suggestion या Telepathy) से रोग आदि को दूर किया जा सकता है। जितना जितना सान्निध्य बढ़ता जाता है उतनी उतनी बाह्य प्रयत्न की आवश्यकता कम होती जाती है। प्रकृति और परमात्मा में चरम सीमा का सान्निध्य है। साथ ही परमेश्वर चैतन्यमय और सर्वशक्तिमान् है, इस लिए उसे अन्य साधनों की आवश्यकता नहीं। उसने केवल कामना मात्र से सलिल में विकार कर दिया, जिस से यह संसार बन गया। परमात्मा ने 'तप' और 'काम' से जगत् की उत्पत्ति कर दी। इस कारण ही जगत् में गति प्रारम्भ हुई।

परन्तु अब विचारणीय यह है कि परमात्मा की कामना से सलिल में जो गति उत्पन्न हुई या जो संसार उत्पन्न हुआ वह शक्ति या वह संसार किसी रूप में सलिल में विद्यमान् था या नहीं। अथवा क्या परमात्मा ने अपने सामर्थ्य से सब कुछ कर दिया। सलिल में गति उत्पन्न करने की या संसार पैदा करने की शक्ति न होने पर भी क्या परमात्मा यह सब कुछ कर सकता है। इस का उत्तर ऋ १०। १२१। ७-८ मंत्रों में दिया गया है।

आपो यद्बृहती विश्वमायन्
गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ७ ॥
यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्
दक्षंदधाना जनयन्ती यज्ञम्।
यो देवानामधिदेव एक आसीत्
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ८ ॥

अर्थ—जिस समय संसार को गर्भ में धारण करने वाले और अग्नि को उत्पन्न करने वाले 'बृहती आपः' (प्रकृति) ने अपने को अभिव्यक्त किया। उस समय जो सब पदार्थों में जीवन देने वाला एक परमात्मा विद्यमान् था, उस की हम आत्मत्याग से पूजा करते हैं। ॥ ७ ॥ जिस परमात्मा ने अपनी महिमा से शक्ति को धारण करने वाले और संसार को उत्पन्न वाले 'आपः' को और देखा जो सब का अधिपति है, उस की हम आत्मत्याग से पूजा करते हैं ॥ ८ ॥

इन मंत्रों में 'आपः' शब्द के विशेषण ध्यान देने योग्य हैं। जहां इस से यह प्रतीत होता है कि 'आपः' का अर्थ साधारण जल नहीं हो सकता, वहां साथ सृष्ट्युत्पत्ति के विषय में भी पर्याप्त ज्ञान मिलता है। 'गर्भं दधाना' और 'दक्षं दधाना' ये दो विशेषण 'नावस्तुनो वस्तुसिद्धिः' के सिद्धान्त को स्वीकृत कर, प्रकृति (आपः) में संसार को उत्पन्न

करने की गुप्त शक्ति (potential power) की सत्ता मानी गई है। यह संसार यदि किसी भी रूप में न होता तो उस का उत्पन्न होना असम्भव था। किसी पदार्थ से कुछ निश्चित पदार्थों का उत्पन्न होना और शेष का उत्पन्न न होना उस पदार्थ किन्हीं विशेष पदार्थों के उत्पन्न करने की शक्ति को सिद्ध करता है। सृष्टि की उत्पत्ति में जो गति उत्पन्न हुई उसके उत्पन्न करने की शक्ति भी प्रकृति में होनी चाहिए। 'दक्षं दधाना' (शक्ति को धारण करने वाली) विशेषण से स्पष्ट है कि प्रकृति में प्रारम्भ से ही शक्ति थी। शक्ति उसका गुण है। पदार्थ और शक्ति की स्वतन्त्र स्थिति अचिन्त्य (unconceivable) है। यद्यपि पदार्थ (matter) का गुण जड़ता (Inertia) है, परन्तु इस का इतना ही तात्पर्य है कि पदार्थ में स्वयं गति करने की या शक्ति को काम में लाने का सामर्थ्य नहीं। पदार्थ में गति देने के लिए या उस में शक्ति अभिव्यक्त करने के लिये किसी चेतन वस्तु की आवश्यकता है। पदार्थ में शक्ति बिलकुल नहीं होती और चेतन वस्तु-पुरुष आदि उसमें शक्ति उत्पन्न कर देते हैं, यह नहीं कहा जा सकता। पदार्थ 'दक्षं दधाना' अवश्य है, यद्यपि वह 'दक्षं कुर्वाणा' नहीं। पदार्थ बिना शक्ति के स्थिति सम्मर्थ्य रखता है और शक्ति बिना किसी पदार्थ के आश्रय के रह सकती है—यह दोनों बातें असम्भव है। पदार्थ और शक्ति का अविनाभाव सम्बन्ध है। प्रकृति में यह संसार भी गर्भ रूप में विद्यमान था और उस में संसार को अभिव्यक्त करने की शक्ति भी विद्यमान थी।

प्रकृति में जो शक्ति सुप्तावस्था में विद्यमान् थी वह परमात्मा के तप और काम से जागृतावस्था में आगई और 'सलिल' में गति प्रारम्भ हुई। उस गति के ब
किस भाँति विकास हुआ
वैदिक ऋचाओं में उपलब्ध
इतना अवश्य मालूम पड़ता
गति होने के बाद और इ
बनने से पूर्व एक ऐसी
जिस समय यह संसार अग्नि
'अग्नि अवस्था' कहा गया है।
मन्त्र ऋ १०। १२१। ७ में "
'जनयन्तीरग्निम्' लिखा है।
'जनयन्तीर्यज्ञम्' कहा है। यह
देने योग्य है। इस में बतलाय
ब्रह्माण्ड प्रकृति में गर्भ रूप में
अभिव्यक्त हो चुकने पर प्रकृ
करने की शुरु की। अर्थात् य
हो गया। अन्त में यह संसार-
इसी बात को अथर्व ४। २।
और स्पष्ट रूप में बताया गया

"आपो वत्सं जनयन्ती
तस्योत जायमानस्योल्ब
कस्मै देवाय हविषा वि

अर्थ—सृष्टि के आदि में,
को उत्पन्न करते हुए 'आपः
अभिव्यक्त किया। उस उत्प
चमकीला आवरण था। उस
की हम आत्मत्याग से पूजा

अर्थात् प्रकृति में उत्पन्न हो
वत्स जायमानावस्था में हिरण
सम्भवतः इसी अग्नि अवस्था
महत् या बुद्धि नाम दिया हो
(सलिल) पहले अप्रतर्क्य

अविज्ञेय थी, वह इस अवस्था में आकर विज्ञेय और बुद्धि का विषय बन सकती है। एवं अभिव्यक्त संसार का सब से महान् स्वरूप होने से संभवतः सांख्यकार ने इस अवस्था को महत् या बुद्धि नाम दिया हो।

अब तक हमें यह मालूम हुआ कि प्रकृति से 'जायमान वत्स' (अग्नि) की उत्पत्ति हुई और उससे 'जातवत्स' ('यज्ञ' या स्थूल संसार) की पैदाइश हुई। परन्तु इस 'जायमान वत्स' से— अग्नि अवस्था से— जातवत्स या यज्ञ (पांच भौतिक स्थूल जगत्) की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? इन पांच भूतों की उत्पत्ति किस तरह हुई ? विकास की पूर्ण शृंखला क्या है ? इस के विषय में हमें कुछ स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता।

इस लिये अबतक थोड़े बहुत वेदाध्यन से सृष्ट्युत्पत्ति विषयक जिन सिद्धान्तों का पता लगा सकें हैं उन्हें यदि संक्षेप में बताना हो तो निम्नतालिका द्वारा बताया जा सकता है।

१ प्रलयावस्था	असत् वस्तु	सलिल या आपः	प्रकृति
२ जायमानावस्था	× × ×	हिरण्मय उल्ब या अग्नि	महत्
३ जात अवस्था	सत् वस्तु	यज्ञ (संसार)	पंचभूत

सृष्टि विकास की पूर्ण शृंखला की कमी को लेखक स्वयं अनुभव करता है। पूर्ण शृंखला का ज्ञान प्राप्त करने के लिए विशेष स्वाध्याय और परिश्रम की अपेक्षा है। इस स्वल्पतम समय में जो सृष्ट्युत्पत्ति विचार या सिद्धान्त वेद में उपलब्ध हुए हैं उन्हें क्रमबद्ध करने का प्रयत्न किया है।



आर्य संस्कृति

या

मानव जाति का सहयोग-संगीत

(ले०—श्री पं० चमूपति जी एम. ए.)



राज-नीतिक लोगों की विभाग-नीति ने संसार के प्राकृतिक पदार्थों–जिन पर मानव जाति का आहारादि भौतिक व्यवहार निर्भर है—की तरह मानव विचार का भी बटवारा कर दिया है। वास्तव में आचार, विचार, धर्म, और नीति बटवारे की चीज़ें नहीं। मानव-समाज की स्थिति के साधन एक ही से विश्व-व्यापी नियम हैं। वेद ने कैसा मार्मिक सार्व-भौम सत्य कहा है:—

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति। अथर्व. १२. १. १.

बृहत् (विश्व-व्यापी) सत्य, उग्र (तीखा, तेज़, समझौता न करने वाला) ऋत (धर्म), दीक्षा, तपस्या, ब्रह्म (बृहद् उदारता) और यज्ञ (निष्काम सर्वोपकार) पृथिवी का धारण करते हैं।

अथर्व वेद का यह सूक्त, जिस का प्रारम्भिक अंश ऊपर दिया गया है, राजनीति-परक है। परन्तु इस में राष्ट्र को पृथिवी कहा है। कारण कि कोई राष्ट्र समग्र पृथिवी से अलग अपनी सजीव सत्ता नहीं रख सकता। जैसे शरीर के—किसी भी जीवित संस्थान के—प्रत्येक अंग का हित संपूर्ण संस्थान के हित-साधन से होता है, इसी प्रकार मानव-समाज का भी कोई व्यक्ति अथवा समुदाय, शेष समाज से पृथक् अपना राजनीतिक अथवा सामाजिक हित संपादित नहीं कर सकता। वेद का यह विचार सर्वथा ग्राह्य है कि

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।
सर्व भूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति। यजुः

जो सब प्राणियों को अपने आप में और अपने आपको सब प्राणियों में देखता है, वह संशय-ग्रस्त नहीं होता।

वैदिक जीवन का यह सूत्र केवल आध्यात्मिक जगत् ही में चरितार्थ नहीं होता, अपितु मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इसकी एक सी उपयोगिता है। प्रतिस्पर्धा, चाहे वह व्यक्तियों में हो, चाहे समुदायों में, मानव उन्नति की बाधक है। इसके विपरीत सहयोग, सहकारिता, सहज ही में सारे मानव समाज को समान उत्कर्ष के पथ पर डाल देती है। तभी तो आर्य समाज के नियमों में ही ऋषि ने यह सूत्र ग्रथित किया है:—

प्रत्येक को अपनी उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

यह स्थिति रहते संस्कृति को पौरस्त्य और पाश्चात्य, या प्राचीन और आधुनिक, अर्थात् किसी देश-विशेष या काल-विशेष से अवच्छिन्न मानना संस्कृति मात्र का मानो उच्छेद कर देना है। वेद ने कहा ही तो है:—

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम। सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः। यजु. ७. १४.

* यह निबन्ध २९ मार्च १९२९ ई० को गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिक उत्सव के अवसर पर आर्य संस्कृति सम्मेलन में पढ़ा गया था।

हे प्रकाशमय प्रेरक सर्वजगत् कर्ता प्रभो ! हम आपकी उत्तम बलयुक्त, धन-धान्य, विद्या, सुशिक्षा आदि रत्नों द्वारा सुप्राप्य शक्ति के देने वाले हों। वह प्रथम संस्कृति है। वह 'विश्ववारा' विश्वैर्वरणीया—सब के स्वीकार करने योग्य और 'विश्वेभ्यः सर्वान् दुःखान् वारयति सा' सब के दुःखों को दूर करने वाली है। वह संस्कृति (लिंग-भेदसे) प्रथम—सर्वोकृष्ट व्यापक वरुण—श्रेष्ठ, मित्र—सर्वोपकारक, अग्नि—नेतृदेव है।

आर्य संस्कृति की अनेक विशेषताओं पर इस एक मन्त्र ने ही पर्याप्त प्रकाश डाल दिया है :—

१. वह सुवीर्य है अर्थात् जीवन-शक्ति-संपन्न।

२. वह रायस्पोष है अर्थात् धन धान्य तथा विद्यादि ऐहिक और पारलौकिक निधियों द्वारा बलकारिणी।

३. वह अच्छिन्न है अर्थात् न उस में काल की गति से विच्छेद होता है न देशों के सीमा-बन्धन से।

४. 'ददितारः स्याम' ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि यह संस्कृति किसी जाति-विशेष में ही बंद कर रखने के लिये नहीं, किन्तु प्रचारार्थ हमें सौंपी गई है।

५. देने का अर्थ यहाँ थोपना नहीं, जैसे यूरोप की Kultur 'कल्टर' के संबन्ध में कई विचारकों का मत है, किन्तु वह विश्ववारा है अर्थात् सब लोग इस का स्वयं वरण करेंगे। तभी तो मनु ने कहा है—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः॥

इस देश में पैदा हुए ब्राह्मणों से पृथिवी भर के सब लोग अपनी अपनी स्थिति के अनुकूल चरित्र सीखें।

६. यह संस्कृति प्रथम वरुण (श्रेष्ठ स्वभाव की) प्रथम मित्र (स्नेह की) और प्रथम अग्नि (प्रकाश की) देवता है।

आर्य संस्कृति की इन विशेषताओं को जीवन के भिन्न भिन्न क्षेत्रों में लागू करने से इस संस्कृति का क्रियात्मक स्वरूप दृष्टि-गोचर हो सकेगा।

आर्य संस्कृति का धार्मिक आदर्श

सब से पूर्व हम धार्मिक क्षेत्र में आर्य संस्कृति के उदात्त आदर्श का चमत्कार अवलोकन करेंगे। किसी संस्कृति के प्रचार का मुख्य साधन धर्म ही तो है।

हम ऊपर कह चुके हैं कि आर्य संस्कृति दान अर्थात् प्रचार की वस्तु है। हमें उस के "ददितार" प्रचारक होना है, परन्तु इस प्रचार में बलात्कार का कोई स्थान नहीं। हमें

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।

इस मन्त्र के आदेशानुसार विश्व को आर्य बनाना है परन्तु हमारी संस्कृति "विश्ववारा" है। हमारा निर्भर उस की अपनी सर्व-प्रियता पर है। हमारे प्रचार का साधन तलवार नहीं, मीठी मनोमोहिनी प्रेरणा है, प्रभाव-शलिनी युक्ति और सन्तोष-दायक तर्क है। हम मानव को मनन-शील मानते हैं। बलात्कार चाहे धर्म ही के विषय में किया जाए, मनुष्य को स्वतन्त्र विचार के अधिकार से वञ्चित कर देता है। उसे आर्य तो क्या बनाएगा, मनुष्य ही नहीं रखता। वेद ने "अमन्तु" "अनार्य" को कहा है—

अकर्मा दस्यु रभिनोऽमन्तुः

सो बलात्कार करने वाला जहाँ बलात्कार मात्र से अपने बलात्कार के पात्र को क्रियात्मक रूप से 'अमन्तु' अर्थात् अनार्य बनाता है, वहां स्वयं भी इस नीति का अनुसरण करते हुए अपने 'मन्तु' अर्थात् आर्य होने का प्रमाण नहीं देता। धर्म का उद्देश्य विचार के जगत् में वैज्ञानिक—

निष्पक्षपात तार्किक की सी— मनोवृत्ति पैदा करना है।

वेद ने किसी की मानसिक हत्या—अर्थात् विचार संबन्धी अत्याचार—को घोर पाप माना है।

स्वतन्त्र विचार विकसित करने का एक साधन है लोगों के हृदयों में जिज्ञासा भाव पैदा करना। वेद में ईश्वर, जीव, तथा प्रकृति के संबन्ध में जहां निश्चयात्मक अनेक मन्त्र पाए जाते हैं, यथा

त्रयः केशिन ऋतुथा विचक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्। विश्वमेको विच ष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम्॥ ऋ १. १६६. ४४.

तीन सत्तावान् समयानुकूल काम करते हैं। एक काल में (कर्म का बीज) बोता है। एक अपनी शक्तियों से सब कुछ देखता है। और एक की गति देखी जाती है, स्वरूप नहीं।

अन्यच्च

यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम्। ऋ ४ ३२.१३

हे इन्द्र! तू अनेक नित्यों में एक है।

वहां प्रश्नात्मक वर्णन भी बहुत स्थलों पर मिलता है, यथाः—

कस्मै देवाय हविषा विधेम।

हम किस देवता का भक्ति-पूर्वक अर्चन करें?

तथा

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः। ऋ. १०. १२. ८९

कौन जानता है? कौन इस विषय में मुँह खोले, यह विविध सृष्टि कैसे हो गई? कहां से आई?

किं स्विदासीदधिष्ठानमारंभणं कतमत्स्वित्कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा विद्या मौर्णोन्महिन्ना विश्वचक्षाः॥ १०. ८१. ८.

आधार क्या था? आदि कारण क्या था? कैसा था? जिससे सर्वद्रष्टा सर्वकर्त्ता परमेश्वर ने संसार को पैदा कर अपने ज्ञान का प्रकाश किया।

अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मने न विद्वान्। १. १३४.

मैं न जानने वाला जानने वाले क्रान्तदर्शियों से पूछता हूं।

दर्शन में यही वृत्ति -मन्तु-वृत्ति अर्थात् स्वतन्त्र मनन की आर्य-वृत्ति है। वेद ने अपना सिद्धान्त कह दिया और वह सन्देहातीत पूर्ण निश्चय की भाषा में। परन्तु उसे समझने के लिये जिज्ञासु होना आवश्यक है। ऐहिक यातना अथवा मरणोत्तर नरक की ज्वालाओं से डरा धमकाकर किसी सचाई की मौखिक स्वीकृति लेने का यत्न नहीं किया।

धर्म में कुछ सचाइयां तो ऐसी हैं जो सार्वभौम हैं। वे हैं "सत्यं बृहत्," "ऋतमुग्रम्," "दीक्षा" "तप" इत्यादि। वे सर्वत्र एक सी रहेंगी। इन सचाइयों को हम धर्म की आत्मा कह सकते हैं। ऋषि दयानन्द इन्हीं को सर्व-तन्त्र सिद्धान्त अथवा वैदिक सत्य कहते हैं। इन सचाइयों का क्रियात्मक रूप देश देश तथा काल काल में बदलता चला जाता है। भारत के शौचाचार तथा इंग्लैण्ड के शौचाचार का ध्येय एक होने पर भी उस के व्यावहारिक नियम भिन्न भिन्न होंगे। एक ही देश के रहने वालों का व्यावहारिक धर्म भिन्न ऋतुओं में भिन्न हो जाता है, तो फिर विविध देशों में तो इन व्यावहारिक धर्मों की विभिन्नता का कहना ही क्या है? हठी लोगों की मूर्खता है कि वे एक देश-विशेष की शरीयत—स्मार्त्त धर्म को जो वहीं की परिस्थितियों की उपज है, दूसरे देशों पर थोपते हैं। इस पर वेद का वचन सब के हृदयंगम करने योग्य है।

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्। अथर्व. १२. १. ४५

पृथिवी यथास्थान भिन्न भिन्न भाषा बोलने वाले तथा अलग अलग शरीयतों वाले मनुष्यों को धारण करती है।

धार्मिक सहिष्णुता आर्य जाति का भूषण रहा है। यहां मतों का परिवर्तन भी हुआ। कभी ब्राह्मणों की तूती बजी, कभी श्रमणों का राज्य हुआ। परन्तु धर्म-संबन्ध में जो नीति राम की थी वही अशोक की और उसके पीछे वही हर्ष वर्धन की रही। धार्मिक जगत् में तटस्थ वैज्ञानिक वृत्ति लाना आर्य संस्कृति का प्रथम ध्येय है। यह तलवार पर प्यार की विजय है। इसी से यह संस्कृति विश्ववारा है।

आर्य संस्कृति की दूसरी धर्म-संबन्धी विशेषता कर्म का सिद्धान्त है। हमारे यहां ऊँची से ऊंची गति का अधिकारी किसी मत-विशेष के अनुयायी को नहीं किन्तु सुकर्म करने वाले को माना है—

इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशुर्मनोर्नपातो अपसो दधन्विरे। सौधन्वनासो अमृतत्वमेरिरे विष्ट्वी शमीभिः सुकृतः सुकृत्यया। ३. ६०. ३

अच्युत मनन-शील ज्ञानियों ने शुभ कार्य किये, वे प्रभु के सखा थे। सुकर्मा धृति-शीलों ने शुभ कर्म द्वारा (तटस्थ पद में) प्रवेश कर मुक्ति प्राप्त की।

इसी आशय को ऋषि दयानन्द यों कहते हैं:-
जो धार्मिक हैं वे सुख, और जो पापी हैं वे सब मतों में दुःख पावेंगे। स० प्रकाश समुल्लास १४. पृ. ५६३

इस सिद्धान्त के विचार का उचित स्थल आर्य संस्कृति की दार्शनिक दृष्टि के प्रकरण में है।

दार्शनिक मन्तव्य

धर्म से—विशेषतया आर्यधर्म से—दर्शन के क्षेत्र में स्वभावतः प्रवेश हो जाता है, क्योंकि यहाँ धर्म और दर्शन एक दूसरे के हाथ में हाथ दिये चलते हैं। वस्तुतः मनुष्यों को "मन्तु" दार्शनिक बुद्धि ही बनाती है। दर्शन के क्षेत्र में आर्य संस्कृति की संपत्ति उसकी आत्म-निष्ठा है। इस आत्म-निष्ठा का सरल रूप जो इस समय भी संसार को अपनी ओर खींच रहा है, पुनर्जन्म का सिद्धान्त है। फ्रांसीसी लेखक एडवर्ड शूरे अपनी प्रसिद्ध पुस्तक फ्राम स्फिंक्स टु क्राइष्ट में लिखता है:—

जैसे एक आर्य सती चितारूढ़ हुई अपनी सन्तति की ओर मोतियों की माला फेंकती है, ऐसे ही भारत माता मरती मरती अल्प-वयस्क यूरोप को एक दयायुक्त धर्म और अनेक फल देने वाले पुनर्जन्म के सिद्धान्त को उपहार रूप में समर्पित कर रही है।

दया के धर्म से शूरे का अभिप्राय बौद्ध धर्म है। उपर्युक्त वाक्य को प्रकरण-सहित पढ़ने से किसी भारतीय पाठक का हृदय सन्तुष्ट होने के स्थान में उद्विग्न ही होगा। शूरे ने इस दयात्मक धर्म को खृष्ट धर्म से बहुत निकृष्ट—एक अपूर्ण व्यवस्था का—स्थान दिया है और इसी को भारत की आधुनिक मरणासक्ति का कारण ठहराया है। तो भी वह पुनर्जन्म के सिद्धान्त को भारत का अल्पवयस्क यूरोप के प्रति बहुमूल्य उपहार मानता है।

इस से पूर्व पैथागोरस, प्लेटो, एम्पिडॉक्लिस टायना का एपोलोनियस, प्लोटिनस, पोर्फरी, बोहिम, टेनिसन, शैले, मूर, शैलिंग, हीगल, हर्डर, शोपनहार आदि पाश्चात्य विद्वान् इस सिद्धान्त की सत्यता स्वीकार कर चुके हैं। अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, चीन, जापान, मलाया द्वीपसमूह आदि स्थानों की आदिम जातियों में यह विश्वास अब तक अविकल रूप में विद्यमान है। सच तो यह है कि इस सिद्धान्त के बिना, संसार की असमानताओं, सुख दुःख तथा योग्यताओं के जन्म-सिद्ध तारतम्य, चमत्कारी बालकों की जन्मसिद्ध आश्चर्य-कारक कृतियों, एक जीवन की समाप्ति पर

अपूर्ण मानसिक तथा आत्मिक कमाई—जो यदि अपूर्ण ही रहे तो उस में प्रयुक्त हुई प्राकृतिक शक्तियों का वृथा नाश हुआ प्रतीत होता है—की समस्याओं का कोई समाधान नहीं। पोलैंड के प्रसिद्ध दार्शनिक ल्यूटोस्लास्की लिखते हैं:—

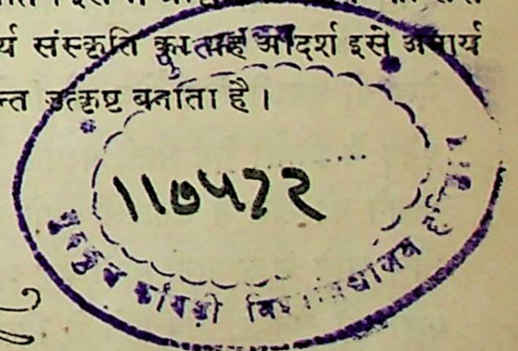
अमरता और पूर्व-जीवन (pre-existence) परस्पर संबद्ध है क्योंकि जिस का आरम्भ है, उस का अन्त अवश्य होगा।......... जिस पदार्थ का आरम्भ है, वह बिना हुए भी रह सकता था और इस लिये वह पराश्रित (Conditionally) रहता है। यदि हम में कोई चीज़ है जो स्वतन्त्र है और किसी और चीज़ पर आश्रित नहीं, तो वह सदा से ऐसी ही स्वतन्त्र रह सकती थी। और यदि उस का आरम्भ किसी और के द्वारा होता, तो वह ऐसी न होती। इस से मुझे विश्वास होता है कि मैं एक नित्य और अमर पदार्थ हूं और मृत्यु एक दृश्य है जो शरीरगत विकारों को प्रदर्शित करता है, आत्म-गत (विकारों को) नहीं।

इस सिद्धान्त के सामाजिक प्रभाव पर यही महानुभाव लिखते हैं:—

मनुष्य बहुत बड़ी संख्या में मृत्यु को स्वीकार कर लेंगे, ज्यों ही कि जीवन की स्थितियां उन के नैतिक (moral) विश्वासों के प्रतिकूल होंगी।......... उदाहरणार्थ बुराई की शक्ति का सब से अधिक गर्हणीय दृष्टान्त—एक जाति के दूसरी जाति पर अत्याचार ही को लेलो।.........यदि पीड़ित जाति का प्रत्येक व्यक्ति राज-नीतिक अन्याय की अपेक्षा मृत्यु को पसन्द करे तो अत्याचार बहुत समय तक न रह सके, क्योंकि कोई सेना उस देश को शान्त नहीं कर सकती, जिस का प्रत्येक वासी अन्याय सहने की अपेक्षा मर जाने को अधिक उद्यत हो।

शेषोक्त उद्धरण मैंने इस लिये उपस्थित किया है कि कई विचारक पौरस्त्य देशों की वर्तमान राजनीतिक अधोगति का कारण पूर्व-जन्म अथवा कर्म के सिद्धान्त ही को ठहराते हैं। सम्भव है इस सिद्धान्त के किसी विकृत रूप को दैववाद का पर्याय बना कर कोई जनसमुदाय अपने आलस्य और नैष्कर्म्य का आधार ही इसी सिद्धान्त को बना ले। वस्तुतः कर्मवाद दैववाद का निराकरण है। अपने वर्तमान सुख दुःख को अपने ही पूर्व-सञ्चित कर्मों का फल समझने से भावी भाग्य का आधार वर्तमान पुरुषार्थ ही को स्वीकार करने और उसी के द्वारा भविष्य की सफलता का बीज बोने की प्रवृत्ति पैदा होती है। प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक समुदाय इस सिद्धान्त को स्वीकार करते ही अपना भाग्य-निर्णायक आप हो जाता है। यही वास्तविक स्वराज्य-बुद्धि है।

जन्म-शृंखलाओं का अन्त मुक्ति में होता है। मुक्ति का आर्य स्वरूप है—विशुद्ध आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति। इस में प्राकृतिक भोग का लेश भी नहीं। आर्य संस्कृति का यही आदर्श इसे अनार्य मतों से अत्यन्त उत्कृष्ट बनाता है।





घनाष्टक

(पावस स्मृति)

रात को हमारी मीठी नींद देखने को जब,
मुग्ध हुए सावन के घन घिर आते थे ।
देख उस शैशव में छवि स्वर्गीयता की,
उनके नयन नेह नीर बरसाते थे ।
शीतल सलिल बिन्दुओं के गिरने से हम,
जाग जाग जब पास वालों को जगाते थे
बीच ही में नाटक का पट गिरते यों देख,
शोर घन घोर वे अधीर हो मचाते थे ।।१।।

* * *

साथी एक आध सोता रहता जो कोई यदि,
परम विनोद मोद मन में मनाते थे ।
कोई जो जगाने का प्रयास करता था उसे,
समझा बुझा के निज दल में मिलाते थे ।
सोने दो इसे तो आज भीगने को यूंही खूब,
कह कह, कहकहे लगा भाग जाते थे ।
अन्तिम नज़ारा देखने को बस एक बार,
बिजली के व्याज मेघ आँख चमकाते थे ।।२।।

* * *

देख यों हमारी खेल मोद औ विनोद भरी,
स्नेह में विभोर मेघ मोती बरसाते थे ।
खेलने को खेल वे उतावले हमारे साथ,
नीचे आते आते पानी पानी हुए जाते थे ।
कहां लौं सुनाऊं, जब पाते थे विलोप हमें,
कितने अधीर मतवाले बन जाते थे ।
सारी रात रोते रहते थे अरु ओले,
बरसने के बहाने निज देह को गलाते थे ।।३।।

* * *

देख यों तुम्हारा मतवाला पन सदा ही का,
देख औ रुलाई ये तुम्हारी दिन रात की ।
बादल ! गलाते निज देह नित देख तुम्हें,
दुर्दशा को देख के तुम्हारे कृश गात की ।
समझ न आती ऐसा कौन सा किया है पाप,
इतनी कठोर ये सज़ा है किस बात की ।
अथवा तुम्हारी स्नेह धार को तरस रही,
शाप तुम्हें दे रही हताश कोई चातकी ।।४।।

* * *

देखा हमने रसाल-मौर सूख जाने पै भी,
विरहिणी कोकिल की तान का न टूटना ।
खेलता रहे सितारों ही से चाहे चन्द्र सदा,
तापसी चकोरी का कभी न वह रूठना ।
रात कलमुहीं कितना ही क्यों न रोके पर,
चकवी से चकवे का ध्यान नहीं छूटना ।
कभी नहीं देखा पर तुम से सनेही का यह,
ज़ार ज़ार रोना और धार धार फूटना ।।५।।

* * *

बालकपने के मेरे आगे वे तुम्हारे आज,
स्नेह के विचित्र चित्र चित्रित हो आते हैं ।
रोम रोम मेरे गीत गाते हैं तुम्हारे तब,
प्रेम का पुनीत अति पाठ वे पढ़ाते हैं ।
धन्य परजन्य ! जन्म पर हित लेते तुम,
पर वे तुम्हें न नेक ध्यान में भी लाते हैं ।
हाय ! स्नेह करते हैं जन जो जगत में क्या,
स्नेह का वे इतना विषम फल पाते है ।।६।।

* * *

आते दिन बाद बालपने के वे जब तुम,
कर कृपा दिन को मनोहर बनाते थे।
खूब लड़ झगड़ के लाते अवकाश तब,
नायक का श्रेणी अपनी में पद पाते थे।
आते आसमान को उठाते निज आश्रम में,
बांध के लंगोट, खम ठोक कूद आते थे।
स्नेही साथियों के साथ ओले चुन २ खाते,
तालियां बजाते तेरे गीत गाते जाते थे ॥७॥

* * *

कितना ही तेरे गुन गाऊं नहीं पार पाऊं,
स्नेह तुम इतना हमारे पै दिखाते थे।
सोचते हमारे सुख दुख ही की बात तुम,
क्षण प्रतिक्षण अति क्षीण हुए जाते थे।
राह न भटक जाऊं घोर अन्धकार में मैं,
घड़ी घड़ी बिजली की टॉर्च चमकाते थे।
ऐ रे घन ! घोर घाम से जो घबरा के कभी,
होता मैं विकल तो पिघल तुम जाते थे ॥८॥

* * *

सत्यपाल "उन्मुख"

भय का राज्य

(लेखक— आचार्य विलीन)

[१]



इस कोठरी में सील बहुत थी, अतः वहां अनन्त मच्छर थे। बरसात के दिन थे। रात का समय था। बाहर बड़े ज़ोर से वर्षा हो रही थी। कोठरी में बिलकुल अन्धेरा था। नीचे फर्श तो अलग रहा, मिट्टी की लिपाई भी नहीं थी। सुशील बिना कपड़ा बिछाए इस कोठरी में लेटा हुआ था, उसकी आंखों में नींद नहीं थी। बादल गरजने की आवाज़ सुन कर वह काँप उठता था। उसे भय मालूम हो रहा था कि कहीं इतनी वर्षा में कोठरी की छत टूट कर उस पर न आ गिरे। सुशील को कोठरी में बन्द हुए-हुए यह दूसरी रात थी। कोठरी के बाहर ताला लगा हुआ था। इस ३६ घन्टे के अन्तर में कोठरी को एक बार भी खोला नहीं गया था। सुशील को इस काल कोठरी में बन्द करते समय वहां एक घड़ा पानी और तीन पाव के करीब के भात रख दिया गया था। भात तो कब का समाप्त हो चुका था, परन्तु घड़े में कुछ पानी अवशिष्ट था। सुशील जानता था कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नृशंस कर्मचारी कोठरी वाले कैदियों की तीन-तीन चार-चार दिन तक कोई खबर नहीं लेते।

एक बजे के लगभग भूखे सुशील की आँख लग गई। नींद में उसने एक बड़ा भयङ्कर स्वप्न देखा। उसने देखा कि उसकी रोगिणी बुढ़िया माता

अपने घर में एक खाट पर पड़ी है। उस का बुखार खूब बढ़ गया है। वह भूखी प्यासी है, फिर उसने देखा कि बड़े ज़ोर से वर्षा पड़ने लगी, आँधी चल पड़ी, उस के घर का छप्पर उड़ गया, मालूम नहीं कि उसकी माता का क्या हुआ।' सुशील का स्वप्न टूट गया। वह घबरा कर जाग उठा। उस का दिल धड़क रहा था। उसकी माता सचमुच तीन चार दिन से बीमार थी। जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी का चपरासी उसे घर से पकड़ कर लाया था, तब भी उसकी माता खाट पर ही पड़ी थी।

सुशील पड़े-पड़े सोचने लगा कि उसकी माता ने पिछली दो रातें कैसे व्यतीत की होंगी। उसने सोचा कि इस भयंकर वर्षा और आँधी में उसके घर का न जाने क्या हुआ होगा।

धीरे धीरे वह लम्बी रात समाप्त हुई। प्रातः काल के सूर्य की नरम किरणों के प्रभाव से उसकी कोठरी में भी हलका हलका प्रकाश हो गया। सुशील अपनी माता की चिन्ता के कारण उठ खड़ा हुआ। उसने चाहा कि लात मार कर दरवाज़ा तोड़ डालूं, परन्तु दो दिनके कठोर कारावास ने उसे इस लायक न छोड़ा था। तब सुशील अपनी आठ फीट लम्बी और छः फीट चौड़ी कोठरी में धीरे-धीरे टहलने लगा।

करीब आठ बजे होंगे कि सुशील ने पास वाली कोठरी से एक आवाज़ सुनी। थोड़ी देर के बाद उसे किसी के चिल्लाने का शब्द स्पष्ट रूप से सुन पड़ा। सुशील समझ गया कि कम्पनी के कर्मचारी साथ की कोठरी वाले जुलाहे पर बेंत जड़ रहें हैं। सुशील भयभीत हो कर बैठ गया। वह सोचने लगा कि अब मेरी बारी आती है।

सुशील स्वयं एक जुलाहा था। उसकी उमर क़रीब बीस बरस की थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा नियुक्त कार्य को वह नियत समय में पूरा नहीं कर सका था, इसी से उसे इस काल कोठरी में बन्द किया गया था। सुशील मार के भय से व्याकुल हो रहा था। इतने में कम्पनी के नरदेहधारी पिशाचों ने आकर उस का दरवाज़ा खोला। सुशील दो दिन के बाद सूर्य के उज्ज्वल प्रकाश में आया। जमादार ने उसे दो चार गालियां और धमकियां देकर ही छोड़ दिया, पीटा नहीं। बात यह हुई थी कि सुशील से पहले जिस जुलाहे की कोठरी थी, उसे इतनी मार पड़ी थी कि उसका सिर फट गया था; वह पास ही बेहोश पड़ा हुआ था। इस घटना से जमादार कुछ घबरा गया था। अतः बेचारे सुशील की जान बच गई। वह छूटते ही बड़ी तेजी से अपने घर की ओर रवाना हुआ।

[२]

बुढ़िया ने सामने की दीवार पर टंगी हुई धोती की ओर देख कर घबराई हुई आवाज़ में कहा 'भूत!' ग्यारह बरस की बालिका मोहिनी बुढ़िया की यह दशा देख कर डर गई। परन्तु फिर भी साहस कर के वह बोली—"मौसी, भूत नहीं कपड़ा है।"

बुढ़िया ने जैसे नींद से जग कर कहा— "मोहिनी, क्या सुशील अभी तक वापिस नहीं आया?"

मोहिनी नहीं जानती थी कि दो दिन से सुशील कहां गया हुआ है। उसने बुढ़िया की बात का जवाब न देकर कहा— "मौसी, बुखार उतरा है या नहीं?"

बुढ़िया ने राम का नाम लेकर जवाब दिया— "वह कम्बख़्त मुझे साथ लेकर ही जायगा। देख तो मेरा शरीर कितना गरम हो रहा है।" वास्तव में उसे खूब बुखार चढ़ा हुआ था। मोहिनी

ठण्डे पानी से कपड़ा गीला करके उसके सिर पर रखने लगी।

मोहिनी भी एक जुलाहे की ही लड़की थी। सुशील से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था, परन्तु वह बचपन ही से उसके साथ खेली थी। सुशील अपनी मां का अकेला लड़का था, परन्तु बचपन ही से सदा मोहिनी को अपने साथ देखते रहने के कारण वह उसे अपनी सगी बहिन समझा करता था।

प्रातः के करीब ८½ बजे थे। इसी समय सुशील अपने घर में प्रविष्ट हुआ, वह ज़ोर ज़ोर से श्वास ले रहा था। इसी अवस्था में वह बड़ी बेचैनी से मोहिनी के पास आकर खड़ा होगया। मोहिनी उसकी यह दशा देख कर काँप गई; उसने सोचा कि न जाने सुशील के पीछे क्या बला आ रही है। उन दिनों बङ्गाल में कम्पनी के कर्मचारी बड़ा अत्याचार किया करते थे। साधारण जनता हर समय किसी अनिष्ट की आशङ्का से सतर्क रहा करती थी। खास कर ढाका ज़िले में तो, जहां जुलाहों की बस्ती अधिक थी— कम्पनी के कर्मचारियों ने बड़ा अन्धेर मचा रक्खा था। वे जुलाहों से केवल उनका रुपया ही नहीं लूटते थे, केवल उनसे ज़बरदस्ती काम ही नहीं करवाते थे, परन्तु अवसर पाकर वे बलात्कार आदि करने से भी नहीं चूकते थे। उन नरपशुओं का निरीक्षण करने वाला कोई शासन नहीं था। ज़िले भर में अराजकता छाई हुई थी।

कुछ समय बाद जब सुशील की दशा कुछ संभली, तब मोहिनी का भय भी उतर गया। उस ने सुशील की भर्त्सना करते हुए कहा—"मां को इस हालत में छोड़ कर कहां गये थे?" सुशील ने संक्षेप में अपना सारा हाल मोहिनी को सुना दिया। वह फिर से डर गई। बुढ़िया सो रही थी। सुशील ने पुकारा—"मां!" बुढ़िया ने आंख खोल कर सुशील की ओर देखा, वह एक दम उठ कर बैठ गई। अपने पुत्र को देखते ही उसका आधा बुखार उतर गया। उसने सुशील से पूछा "बेटा, उन लोगों ने तुम से क्या सलूक किया? सुशील बेटा, तू दो दिन में इतना कमज़ोर कैसे हो गया।" सुशील ने अपने हाथों से अपनी माता को लिटा दिया, उसे आश्वासन देने के उपरान्त वह गाँव के वैद्य को बुलाने चला गया।

तीन दिन में बुढ़िया का बुखार उतर गया। दोनों प्राणी फिर से जिस किसी प्रकार अपने दिन गुज़ारने लगे।

(३)

तीन साल के अन्दर ही ढाका ज़िले में जुलाहों की संख्या पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गई। इस कारण कम्पनी की आय भी प्रति वर्ष घटती ही गई। कम्पनी के डायरैक्टरों ने ढाका ज़िले के कलैक्टर मि०फौक्स को खूब डांट बतायी। फौक्स एक बड़ा क्रूर और बदमाश व्यक्ति था। उसने निर्धन जुलाहों को लूटने का एक और बड़ा नृशंस उपाय ढूंढ निकाला।

ढाका ज़िले में कम्पनी की ओर से बहुत सी खड्डियां लगवाई गईं। जुलाहों को जबरदस्ती पकड़ पकड़ कर उन से उन खड्डियों पर काम करवाया जाने लगा। चालीस चालीस जुलाहों पर एक एक चौकीदार नियुक्त किया गया। जुलाहों को प्रातः काल ठीक छः बजे काम पर हाज़िर होना पड़ता था। दोपहर को उन्हें एक घण्टा भोजन करने का अवकाश मिलता था। जुलाहों को अपना भोजन अपने घरों से ही बना कर वहां लाना पड़ता था। इस छुट्टी में उन्हें अपने घरों में जाने की आज्ञा नहीं थी। इस अवकाश के बाद ७ बजे तक उन्हें फिर कपड़ा तैयार करना पड़ता था। इस प्रकार

उनसे कुल १२ घण्टे काम लिया जाता था। इस पर भी चौकीदार उन्हें गालियां देते थे, बेंत और चाबुक मारते थे। इतना काम करवा चुकने पर उन्हें ४ पैसे से १० पैसे तक योग्यतानुसार रोज़ाना वेतन दिया जाता था।

बेचारे सुशील को भी इस नये प्रबन्ध का शिकार होना पड़ा। उसे प्रतिदिन अपने घर से एक मील दूर कम्पनी के वर्कशौप में मौजूद होना पड़ता था। बुढ़िया बेचारी सारा दिन रोते रोते काटती थी।

दिन अच्छा हो या बुरा, सरदी हो या गरमी, वर्षा हो रही हो या नङ्गा सूर्य चमक रहा हो, जुलाहों के लिये सब दिन एक समान थे। महीने में उन्हें एक दिन भी अवकाश नहीं मिलता था। इन अत्याचारों का परिमाण बड़ा भयङ्कर हुआ। दो महीने में ही बहुत से जुलाहों ने जानबूझ कर— इन अत्याचारों से बचने के लिये— अपने अंगूठे कटवा लिये। परन्तु मि० फौक्स पर इन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे एक भारतीय की कीमत अपने कुत्तों से भी कम समझते थे।

[४]

रात के ८½ बज गये। सुशील घर वापिस नहीं आया। बुढ़िया बेचारी घबराने लगी। रात चांदनी थी। वह बार बार घर से बाहर आकर उस ओर देखती थी जिस ओर से कि प्रतिदिन सुशील घर वापिस आया करता था। चांदनी में चमकती हुई सड़क को देख कर बार बार उसे भ्रम हो जाता था कि सुशील आ रहा है। वह पुकार उठती थी "सुशील बेटा!" परन्तु बुढ़िया की लड़खड़ाती हुई पुकारों का जब कोई उत्तर नहीं देता था तब वह निराश होकर फ़िर घर में चली जाती थी।

अन्त में अभागिनी बुढ़िया थक कर शोकातुर मुंह से खाट पर आकर बैठ गई। थोड़ी ही देर बाद उसे दरवाज़े पर किसी चीज़ के धम्म से गिरने की आवाज़ सुनाई दी। उस बेचारी के मानों प्राण निकल गए। वह भागी हुई दरवाजे पर पहुंची। उसने देखा कि उसकी आशाओं का एक मात्र आधार कुटिया के बाहर बेहोश पड़ा हुआ है। चांद के धीमे धीमे प्रकाश में दुखिया माता ने देखा कि सुशील की पीठ खून से तर है। थोड़ी देर तक उसे कुछ नहीं सूझा। वह किंकर्तव्य विमूढ़ सी होकर खड़ी रही। मोहिनी भी उस समय वहां नहीं थी। इस के बाद वह घर में से पानी का लोटा और पंखा ले आई। पंखा गीला कर के वह सुशील पर हवा करने लगी। बड़े प्रयत्न से सुशील को होश आया। अपनी माता के कन्धे का सहारा ले कर वह खाट पर आकर लेट गया। उस की पीठ का दायां भाग एक प्रकार से बिल्कुल छिल गया था। कोड़ों की मार से सुशील का यह हाल हुआ था। बुढ़िया ने ठण्डे पानी से उस के घाव धोये फिर उस पर एक गीली पट्टी बांध दी। सुशील की पीड़ा कुछ कम हुई, तो वह अपनी माता को आज की कहानी सुनाने लगा—"आज बड़े साहब अर्थात् मि० फौक्स, हम लोगों का काम देखने आये थे। उन्होंने शराब पी हुई थी। वे गालियां बकते-बकते मेरे पास आ कर खड़े हो गये। उन के हाथ में एक बेंत था। शराब के नशे में वे उसकी मूंठ मेरे सिर पर जमाने लगे। मैंने क्रोध में आकर कह दिया–"हजूर, जानदार आदमी हूँ; पत्थर नहीं हूँ।" बस इसी बात पर साहब और चौकीदार दोनों मिल कर मुझ पर कोड़ों की वर्षा करने लगे। मैं बेहोश हो गया। मुझे मरा हुवा जान कर उन लोगों ने बाहर फेंक दिया। जब मुझे होश आया तब मैंने देखा कि मैं वहां अकेला पड़ा हूँ। रात हो चुकी है। मैं किसी तरह उठ कर घर की ओर

चल दिया। रास्ते में भी मैं कई बार बेहोश हो कर गिरा हूँ।

सुशील जब अपनी कहानी सुना रहा था तब उस की बूढ़ी माता सिसक सिसक कर रो रही थी। वे दोनों अभागे और निस्सहाय प्राणी थे, वे इन आपत्तियों का प्रतिकार किस प्रकार कर सकते थे।

ठीक एक महीना बाद सुशील चलने फिरने लायक हुआ। इन तीस दिनों में बुढ़िया और मोहनी दोनों ने दिन रात एक करके उसकी सेवा की।

अच्छा हो चुकने पर सुशील ने अपनी माता से कहा—"मां यहां से भाग चलें।"

बुढ़िया ने बड़ी निराशा से उत्तर दिया—"बेटा! यहां से जाकर हम गरीब कहां रह सकेंगे'।"

सुशील ने कहा—"न होगा तो भूखे ही मर जावेंगे, परन्तु अब यहां रहना मेरे लिये असम्भव हो गया है।"

माता ने कहा—"ना बेटा, थोड़े दिन और तकलीफ़ सह लें। भगवान सहायता करेंगे।"

सुशील ने उत्तर दिया—"नहीं मां, अब मैं यहां नहीं रह सकूंगा। मुझ से ये अत्याचार सहे नहीं जाते।"

सुशील ने जब देखा कि उसकी माता किसी प्रकार भी उसकी बात से सहमत नहीं होती, तब उसने कहा—"नहीं तो मां, मैं भी अपना अगूंठा काट लूंगा।" बुढ़िया ने सुन रक्खा था कि बहुत से जुलाहों ने कम्पनी के डर से अपने अंगूठे काट लिये हैं। वह इस बात से बहुत घबराती थी कि कहीं उसको सुशील भी यह काम न कर बैठे। सुशील की अन्तिम बात सुन कर उसने डरते हुए कहा—"अच्छा, जैसी तेरी इच्छा। इस गांव को छोड़ कर जंगल में जा रहेंगे।"

उसी रात को दोनों दुखित प्राणियों ने सदा के लिये अपने बाप दादा के स्थान को छोड़ दिया। अन्तिम क्षण में सुशील ने बड़ी कठिनता से अपनी धर्म बहिन मोहिनी से विदाई ली।

[५]

सायंकाल का समय था। ब्रह्मपुत्रा नदी के किनारे एक घने जंगल में पुराने ढंग की एक देशी बंदूक लिए हुए एक शिकारी खड़ा हुआ था। उसने मृगचर्म ओढ़ा हुआ था। शिकारी का शरीर खूब गठा हुआ था। वह एक-टक स्थिर दृष्टि से नदी में उठने वाले बड़े बड़े भंवरों की ओर देख रहा था। जंगल में मोर बोल रहे थे; ठण्डी हवा चल रही थी, परन्तु शिकारी का ध्यान किसी दूसरी ओर था। वह अकेला इस भयंकर जंगल में रहता था। कोई जीवित प्राणी उस के पास नहीं फटकता था। जंगल के जीव उस से भय खाते थे। वह उस बड़े वन का देवता था। निर्जीव वृक्ष उस के सलाहकार और मित्र थे। वह प्रतिदिन नये-नये फूलों का ताज बना कर उसे अपने सिर पर रक्खा करता था। शिकारी ने पानी में पड़ने वाले अपने प्रतिबिम्ब में देखा कि ताज के फूल मुरझा गए हैं। उसे अचानक अपने अतीत जीवन की कोई घटना स्मरण हो आई!

सहसा दूर पर एक चीख सुन कर वह चौंक उठा। उसने कान लगा कर दुबारा उसी शब्द को सुनने का यत्न किया; परन्तु सब ओर पहले की तरह सन्नाटा छा चुका था। कुछ देर बाद फिर से वही चीख की आवाज़ आई, उस के बाद कुत्तों के भौंकने का शब्द सुनाई दिया। शिकारी ने आवाज़ की कोमलता से समझ लिया कि चीखने वाला पुरुष नहीं, स्त्री है। न जाने क्या सोच कर उसका हृदय कांप गया। वह बन्दूक भर कर उसी ओर चल दिया जिस ओर से कि आवाज़ आई थी।

शिकारी कूदता फांदता हुआ उसी ओर चला जा रहा था। करीब तीन फर्लांग चल चुकने पर उसने देखा कि एक भारतीय महिला बंधी हुई पड़ी है। इसी के पास खड़ा हुवा एक अंग्रेज़ उस से कुछ कह रहा है। उन दोनों से कुछ दूरी पर एक कैम्प लगा हुआ है। कैम्प के सामने पांच हिन्दुस्तानी कुछ शिकारी कुत्तों को पुचकार रहे हैं। शिकारी के लिये इतना ही पर्याप्त था। उसी क्षण उसने ताक कर अंग्रेज़ पर गोली छोड़ी। निशाना ठीक बैठा। अंग्रेज़ उसी क्षण गिर कर तड़फने लगा। शिकारी ने भाग कर महिला के बन्धन खोल दिए। बन्धन खोलते समय वह जोश से काँप रहा था। उसी समय सहसा शिकारी चौंक कर बोल उठा—"मोहिनी!" । बन्दिनी अत्यन्त विस्मित होकर बोल उठी—"सुशील!"

इसके बाद शिकारी ने पास ही पड़े हुवे अंग्रेज़ की ओर देखा, वह मृत्यु की यन्त्रणा से तड़प रहा था। एक दम शिकारी ने उसके मुंह पर दो तीन लातें जड़ते हुए—कहा "फौक्स ? कर्ज़ा बेबाक होगया।"

यह सब काम एक मिनिट में ही होगया। तब शीघ्रतासे मोहिनी को उठा कर वह जंगल की ओर भागा। वह कुछ दूर ही पहुँचा था कि पीछे से उस पर गोलियों की बौछार की गई। सुशील को तीन गोलियां लगीं, परन्तु वह रुका नहीं, भागाचला गया।

इसी अवस्था में सुशील तीन फ़र्लाङ्ग तक भागता चला गया। उस में बड़ी शक्ति आगई थी। वह आज एक खास प्रकार के उल्लास का अनुभव कर रहा था। ब्रह्मपुत्रा नदी के किनारे पहुँच कर हरी हरी घास पर सुशील ने मोहिनी को उतार दिया। चिरकाल से बिछुड़े हुए दोनों भाई बहिन घास पर बैठे बैठे बहुत देर तक एक दूसरे की ओर देखते रहे। सुशील को एक एक कर के सब पुरानी घटनाएं याद आरही थीं। बहुत देर के बाद सुशील ने कहा—"मोहिनी, तुम यहां कहाँ?"

मोहिनी की बातों से सुशील जान गया कि नर पिशाच फौक्स किसी बहुत बुरे उद्देश्य से उसे ज़बरदस्ती पकड़ कर शिकार में अपने साथ लाया था। इस के बाद सुशील ने अपनी कहानी प्रारम्भ की। उसने कहा—"मोहिनी, मुझे यहां और इस अवस्था में देख कर तुम्हें आश्चर्य हुआ होगा। जब अपनी माता के साथ तुम से विदाई लेकर मैं यहां आया था, उस के कुछ मास बाद ही किसी हिंसक पशु ने मेरी माता का खून कर डाला, तब से मैं इन्हीं जंगली हिंस्र जीवों का शिकार किया करता हूँ।"

इतना कहते कहते सुशील का स्वर ढीला पड़ने लगा। गोलियों के प्रहार—जब कि उस का आवेश कुछ कम हुआ—अपना असर करने लगे। वह लेट कर बेहोश हो गया। मोहिनी बिलकुल घबरा गई। इसके बाद वह ब्रह्मपुत्रा नदी के ठण्डे जल से अपना आंचल भिगो भिगो कर उस के सिर पर रखने लगी। कुछ देर बाद सुशील ने अपनी आंखें खोल दीं। उसने रुकते रुकते कहा—मोहिनी, मेरे लिये अब चिन्ता न करो। मैं अब बच नहीं सकता।" मोहिनी किंकर्तव्य विमूढ होकर अपने भाई के सिर के पास आकर बैठ गई।

धीरे धीरे सूर्य बिलकुल डूबने को होगया। सुशील का बोलना बन्द हो गया। मोहनी धीरे धीरे सिसक सिसक कर रोने लगी। वह चाहती थी कि वह चिल्ला २ कर ज़मीन आसमान एक कर दे, परन्तु नरपिशाच फौक्स के साथियों के भय से वह ऐसा न कर सकी।

सूर्य डूबने के साथ ही सुशील ने एक अङ्गड़ाई लेकर प्राण त्याग दिये।

मोहिनी ने अपना कर्तव्य निश्चय करने में अधिक समय नहीं लगाया। वह सुशील की लाश उठा कर ब्रह्मपुत्रा नदी में कूद पड़ी। नदी की विशाल लहरों ने बड़ी उदारता से इन दोनों दुःखित प्राणियों को अपनी गोद में छिपा लिया।

युरोप की राजनीति

(ले०— ब्र· सर्वमित्र जी; गुरुकुल कांगड़ी)

राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्ध किसी कानून द्वारा नियमित नहीं किये जाते। उनके पारस्परिक सम्बन्धों में मुख्य तत्व, आत्म-सत्ता, आत्मरक्षा और आत्मवृद्धि हैं। प्रत्येक राष्ट्र यह चाहता है कि उसकी रक्षा हो, उसे कोई दूसरा दबा न बैठे। आत्मरक्षा ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को निर्धारित करने का मुख्य तत्व है। अब तक अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को सुलझाने का उपाय रहा है— एक मात्र युद्ध। यद्यपि वर्तमान काल में अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का निर्माण हो गया है फिर भी राष्ट्रों में इतनी सद्बुद्धि विकसित नहीं हुई है कि वे उनके अनुसार कार्य कर सकें। जहां उनके स्वार्थ को धक्का पहुंचता है, वहां पर वे अन्त्तर्राष्ट्रीय कानूनों को तोड़ने में नहीं हिचकते। जर्मनी ने बेल्जियम की उदासीनता को प्रमाणित करने वाली सन्धि को "रद्दी कागज़" का टुकड़ा कह कर फाड़ दिया। इंग्लैण्ड— कहते हैं कि जिसने अन्तर्राष्ट्रीय कानून को भंग करने के कारण जर्मनी के विरुद्ध जहाद बोला था—भी यूनान और फारिस की उदासीनता की कोई पर्वाह नहीं करता और अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए आक्रमण करता है तथा उन प्रदेशों में से सेना भेजता है। हमारे कहने का मतलब यही है कि साधारणतया अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का फैसला युद्धों के द्वारा ही किया गया है।

वर्तमान कालीन युद्धों का मुख्य कारण आर्थिक साम्राज्यवाद है। व्यावसायिक क्रान्ति के बाद कारखानों के लिए कच्चे माल की आवश्यकता हुई, उस की प्राप्ति के लिए कोई प्रदेश चाहिए। पक्के माल की खपत के लिए भी तो किसी प्रदेश की आवश्यकता है। इस प्रकार उन प्रदेशों को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न हुए। जहां कहीं किसी ने सिर उठाया कि घमासान युद्ध छिड़ गया। आर्थिक हितों की पूर्त्ति के लिए सेना का उपयोग होता है। इस प्रकार के साधनों और उपायों का आविष्कारक यूरोप ही है, उसी ने सब से अधिक नरसंहार और लूट मार की है। इस लूट मार के लिए सतत प्रयत्न करने वालों में केवल स्वेच्छाचारी राजाओं ने ही भाग नहीं लिया, पर स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व की दुहाई देने वाले प्रजातन्त्र राजाओं ने भी बढ़ बढ़ कर हाथ बटाया। आज हम उसी यूरोप के वर्तमान कालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर विचार करने का प्रयत्न करेंगे।

इंग्लैण्ड—

संसार के मानचित्र पर दृष्टि डालने से पता लगता है कि वह पौने से अधिक लाल रंग से रंगा हुआ है। यह रंग बृटिश शासन का सूचक है। इंग्लैण्ड ने ही सब से बड़े साम्राज्य का

निर्माण किया है। संसार की राजनीति में इसकी बहुत प्रधानता है पर यूरोप की राजनीति से यह एक प्रकार से अलग ही है। इस की परराष्ट्र नीति निम्न आधार भूत सिद्धान्तों को दृष्टि में रख कर चलाई जाती है—

(१) यह एक द्वीप है।

(२) एक व्यावसायिक देश है— इस लिए अपने माल की खपत करने के लिए इसे बाजारों की आवश्यकता है।

(३) ब्रिटेन में वहां पर रहने वाली जनता के खाने के लिए सिर्फ १॥ मास का भोजन है। इस लिए उसे भोजन की प्राप्ति के लिये दूसरे देशों पर निर्भर रहना पड़ता है।

(४) व्यावसायिक देश होने के कारण कारखानों के लिए कच्चे माल की आवश्यकता है

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रिटेन की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का आधार व्यापार है। व्यापार की रक्षा के लिए इसने उन सब स्थानों को अपने हाथ में कर रखा है जो एशिया-विशेषतः भारतवर्ष और अफ्रिका की तरफ जाते हैं—मुख्यतया एशिया और अफ्रीका ही ग्रेटब्रिटेन के बाजार हैं। ये स्थान हैं—जिबराल्टर, माल्टा, साइप्रेस, स्वेज़ कैनाल। यद्यपि हम ऊपर कह आए हैं कि ग्रेटब्रिटेन यूरोप की राजनीति से पृथक् ही रहता है पर जहां भी उस के स्वार्थों में कोई हानि पहुंचने की सम्भावना होती है, वह झट कूद पड़ता है।

फ्रांसः—

यूरोप की राजनीति में फ्रांस का बड़ा भारी हाथ है। यह इंग्लैण्ड की तरह एक द्वीप तो है नहीं—अर्थात् युरोप से अलग तो है नहीं—इस लिए यूरोप की छोटी मोटी बातों के साथ इसे सम्बन्ध रखना है। महाद्वीपीय राजनीति का प्रायः यह असूल रहा है कि जिस देश की सीमा हमारे देश से मिलती हो वह देश हमारा शत्रु है —और शत्रु देश के साथ जिस देश की सीमा मिलती है वह हमारा मित्र है। इसी लिए गत महायुद्ध से पूर्व फ्रांस जर्मनी का दुश्मन था और रूस का परम मित्र। युद्ध के बाद यद्यपि जर्मनी की अवस्था बहुत शोचनीय होगई है तो भी फ्रांस और जर्मनी में परस्पर वैमनस्य है। इस समय रूस के स्थान पर फ्रांस का परम मित्र पोलैण्ड है जिस की सीमा जर्मनी से मिलती है। कारण स्पष्ट है। प्रत्येक राष्ट्र यह चाहता है कि उस की शारीरिक वृद्धि भी हो, वह तभी हो सकती है जब कि वह पड़ौसी राष्ट्रों पर आक्रमण कर उनके प्रदेश छीन कर अपने में मिला सके। इस प्रकार जिन राष्ट्रों से उस की सीमाएं मिलती हैं प्रायः वे उसे शत्रु ही समझा करते हैं।

यद्यपि फ्रांस को इंग्लैण्ड की तरह साम्राज्य विस्तार में सफलता नहीं हुई, तथापि भूमध्यसागर पर उस की विशेष स्थिति होने के कारण उसने असभ्य आफ्रीकन लोगों के उद्धार के परम पुण्य को अर्जित कर लिया है। अब उत्तरी

अफ्रीका के देशों के सम्बन्ध में इटली और फ्रांस का झगड़ा है। दोनों के स्वार्थ यहां टक्कर खाते हैं।

इटली—

इटली स्वभावतः भूमध्यसागर का संरक्षक होना चाहता है। यूरोप के मान चित्र को देखने पर स्पष्टतया पता लगेगा कि उसका धड़ भूमध्यसागर और एड्रियाटिक सागर के मध्य में है। व्यापारिक और सैनिक—दोनों ही दृष्टियों से यह सागर उसके लिए महत्व पूर्ण है। फ्रांस का भी इस सागर में बड़ा व्यापार होता है, इस लिए वह इटली के एकाधिकार को सह नहीं सकता। यदि भूमध्यसागर पर इटली का एकाधिकार हो जाय तो इंग्लैण्ड उसे कभी भी सह नहीं सकेगा। क्योंकि उसका अपने एशियाई और अफ्रीकन उपनिवेशों से सर्वथा सम्बन्ध टूट जायगा—उसे इटली की कृपा पर जीवन निर्वाह करना पड़ेगा।

जब से इटली में मुसोलिनी का राज्य हुआ है, तब से उसने अपनी जन संख्या की वृद्धि के लिए प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया है। जो लोग अविवाहित हैं या जो विवाह करके भी सन्तानोत्पत्ति नहीं करते—उन पर टैक्स लगाया गया और मुसोलिनी की इस स्कीम के अनुसार २० वर्ष में २ करोड़ मनुष्यों की वृद्धि हो जायगी। एक तो इटली में वैसे ही उस के क्षेत्र के दृष्टि से अधिक जन संख्या है; दूसरे वह भावी युद्ध की आशंका से और भी अधिक आबादी बढाने का प्रयत्न कर रहा है और अपनी बढती हुई आबादी के रहने के लिए, उनके पालन पोषण के लिए, राष्ट्रसंघ से उपनिवेश मांगता है। उसकी दृष्टि तुर्की के स्मर्ना, मैसोपोटामिया और उत्तरी अफ्रीका के प्रदेशों पर है। स्मर्ना के रास्ते वह खनिज द्रव्यों से परिपूर्ण सीरिया पर अधिकार करना चाहता है। इससे अधिक उसकी दृष्टि उत्तरी अफ्रीका के प्रदेशों पर पड़ती है। मुसोलिनी ने पिछले साल जो ट्रिपोली आदि की यात्राएं की हैं, वे इसी बात की सूचक हैं। उत्तरी अफ्रीका के प्रदेशों में फ्रांस और इटली दोनों के स्वार्थ टक्कर खाते हैं। इटली टैञ्जियर को अपने अधिकार में करना चाहता है, पर फ्रांस इस बात को सह नहीं सकता। यदि फ्रांस के हाथ से टैञ्जियर चला जाय, तो वह मोरक्को पर अपना प्रभाव नहीं रख सकता। टैञ्जियर में फ्रांस के साथ में अंग्रेजों के भी स्वार्थ हैं। वे भी इटली के काम में बाधक रहेंगे।

रूस—

पूंजीपति सरकारें कहा करती हैं कि रूस हौआ है, वह संसार की शान्ति में बाधक है। परन्तु वह रूस ही था जिसने कि जिनेवा की निशस्त्रीकरण परिषद् में इस आशय का प्रस्ताव रखा था कि सब राष्ट्र सर्वथा शस्त्रों को उड़ादें। यह प्रस्ताव करते हुए भी रूस में बाधित सैनिक शिक्षा का प्रचार है। इसका कारण यह है कि सब पूंजीपति सरकारें उसे नष्ट कर देना चाहती हैं। इंग्लैण्ड इनमें सब से मुख्य है। फिर भी उसने बहुत काफी सेना को कम

कर दिया है। पूंजीपति राष्ट्र उससे कोई सम्बन्ध रखना पसन्द नहीं करते, इसी कारण संयुक्त-राज्य—अमेरिका के पर-राष्ट्र-सचिव श्रीयुत कैलोग ने अपना शान्ति पैक्ट रूस के पास भेजना उचित नहीं समझा।

पूंजीपति सरकारें कहा करती हैं कि जारशाही और साम्यवादी रूस में कोई अन्तर नहीं है, दोनों की महत्वाकांक्षाएं एक सी हैं— यथा मंगोलिया और मंचूरिया में शान्ति-पूर्ण प्रवेश, फारिस और अफगानिस्तान पर प्रभाव आदि। पर यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो सच्ची बात यह है कि रूस इन साम्राज्यवादी सरकारों के प्रभुत्व को सहन नहीं कर सकता, वह तो सबको 'आत्मनिर्णय' करने का अधिकार वास्तविक अर्थों में देना चाहता है। यदि ऐसा न होता तो वह क्यों १६०७ की एंग्लो-रशियन सन्धि— जिसमें उत्तरी फारस पर रूस का अधिकार स्वीकृत किया गया था— को रद्द कर देता? क्यों न वह इंग्लैण्ड की तरह अमीर को अपने शस्त्रास्त्रों से डरा कर अपने प्रभाव क्षेत्र में लाने का प्रयत्न करता। रूस इस दुनिया में एक बड़ी भारी क्रान्ति चाहता है जिस में पूर्ण स्वामित्व (Full Sovereignty) जनसाधारण के हाथ में हो। इसके लिए वह सदा प्रयत्न करता है।

युद्ध क्षत राष्ट्र—

गत महायुद्ध में जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी और बलोरिया मध्यशक्तियों के नाम से कहे जाते थे। वार्सले, टिरानन, सैण्ट जर्मेन और न्यूइल्स की सन्धियों के परिणामस्वरूप इन की अवस्था बहुत ही दीन कर दी गई और जर्मनी से अल्सेस और लोरेन के प्रान्त छीन लिए गए। राइन नदी का प्रदेश ऋण चुकाने के लिए फ्रांस के कब्जे में है। उसका अपर साइलेशिया छीन लिया गया। पूर्वी प्रशिया का शिरोमणि प्रदेश पोलैण्ड के हाथ चला गया। उसके सारे उपनिवेश छीन लिए गए। स्थलीय, जलीय और आकाशीय सेना बहुत कम कर दी गई—एक प्रकार से जर्मनी का निशस्त्रीकरण कर दिया गया। अब जर्मनी ने काफी हद तक अपनी अवस्था सुधार ली है। जर्मन प्रजा शान्तिप्रिय है, इसी कारण इस निर्वाचन में साम्यवादी लोगों का प्रभुत्व होगया है।

जर्मनी की तरह उसके अन्य साथियों की भी यही अवस्था हुई है। आस्ट्रिया और हंगरी की बहुत बुरी अवस्था है। उनके पास कोई बन्दरगाह नहीं—इस लिए उनका व्यापार मारा गया है। ये दोनों राष्ट्र जर्मनी से मिलना चाहते हैं, पर सन्धियों के कारण मिलने में असमर्थ है।

शान्ति क्षत राष्ट्र—

महायुद्ध के बाद जो सन्धियां हुई हैं उनसे कई राष्ट्रों की सृष्टि हुई है। और कइयों को अधिक प्रदेश भी मिले हैं। फिनलैण्ड, लेटविया लिथुआनिया आदि रूस से डरते हैं। पोलैण्ड अपने चारों ओर शत्रुओं से घिरा हुआ है— यह कहा जाता है। कहते हैं कि जर्मनी अपने प्रदेश

को पोलैण्ड से छीनना चाहता है। पर प्रश्न यह है कि क्या जर्मनी के पास इतनी ताकत भी है ? इसी तरह रूस का भय दिखाया जाता है। पर वह तो साम्यवादी राष्ट्र है। इन भयों का शोर मचा कर पोलैण्ड ने फ्रांस और रुमानिया से सैनिक सन्धियां करली हैं। पर वास्तविक बात यह है कि रूस साम्यवादी है— साम्राज्य वादी नहीं— इस लिए वह पूंजीपतियों के नाश का सदा प्रयत्न करेगा। इंग्लैण्ड और फ्रांस ने रूस के पड़ौस में एक प्रबल जन्तु खड़ा करना चाहा है ताकि वह उस की चिन्ता में लगा रहे और हमें तंग न करे।

जैकोस्लेविकिया:—यह राष्ट्र आष्ट्रिया और हंगरी के साम्राज्य में से बना है। यह राष्ट्रसंघ का सदस्य है। इसने रूमानिया और युगोस्लेविया के साथ मिल कर "लिटल एण्टेंटे" स्थापित किया है। फ्रांस भी इसके साथ सैनिक संधियों से बंधा है।

रूमानिया को तीन ओर से डर है। उसने युद्ध के समय बुकानिश्रा का प्रदेश छीन लिया था— हंगरी इसे अपना बतलाता है। दक्षिण में बलोरिया से झगडा है। रूमानिया के पास दोब्रुज का प्रदेश है, वास्तव में उस पर बलोरिया का स्वत्व होना चाहिए। उधर रूस से डर है। वसेरेविया के सम्बन्ध में दोनों का झगड़ा है। हंगरी के विरुद्ध रूमानिया भी 'लिटिल—एण्टेंटे' में शामिल हुआ हुआ है। रूस से रक्षा करने के लिए उसने पोलैण्ड से सन्धि की हुई है। बलोरिया अपनी ही रक्षा नहीं कर सकता तो दूसरे पर आक्रमण क्या करेगा!

युगोस्लेविया में अन्दर ही अन्दर बहुत गड़ बड़ है, इसके साथ ही बाहरी शत्रुओं से भी उसे डर है, इस लिए उसने फ्रांस और पोलैण्ड से सैनिक सन्धियां कर रखी हैं। मैसीडोनिया पर बलोरिया के साथ, सलोनिका बन्दरगाह पर ग्रीस के साथ, फ्यूम पर इटाली के साथ, ड्रिना की घाटी पर अल्बेनिया के साथ और वनर पर हंगरी के साथ यूगोस्लाविया का झगड़ा है। हंगरी के विरुद्ध उस ने जेकोस्लोवेकिया और रूमानिया से तथा इटली के विरुद्ध फ्रांस से सन्धि कर रखी थी।

अब तक पाठकों को इस बात का पता लग गया होगा कि किस प्रकार यूरोप में अब भी वैमनस्य और कूटनीति का राज्य है—सदा युद्ध की सम्भावना बनी रहती है। इस अविश्वास, वैमनस्य और अशान्ति का कारण बताते हुए इटली के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्रीयुत् सिगनर निट्टी ने कहा था कि यह सब कुछ मुसोलिनी जैसे सर्वाधिकारी और स्वेच्छाचारी लोगों के कारण ही है। पर यदि उन पर से दृष्टि हटा भी ली जाय तो भी हमें काफी मसाला मिल जाता है जिस से उस अशान्ति का कारण पता लगता है। फ्रांस ही इसकी जड़ है। फ्रांस वह देश है जिसने सब से पूर्व स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृभाव का उपदेश दिया था आज वही फ्रांस यूरोप की भयंकर अशान्ति का कारण बना हुआ है। युद्ध में जर्मनी के हारने पर भी फ्रांस का भय नहीं गया—उसने सिर्फ उसे निश्शस्त्र करके ही नहीं छोड़ा, परन्तु उसके बरखिलाफ पोलैण्ड से सैनिक

सन्धि की। जर्मनी के डर के कारण लिटिल—एण्टेंटे का निर्माण किया। अमेरिका और इंगलैण्ड के सन्मुख ऋण चुकाने की असमर्थता दिखा कर फ्रांस ने पोलिश लोगों को सशस्त्र करने के लिए उनके पास धन भेजा। वही फ्रांस स्वयमेव भी बहुत अधिक मात्रा में सैनिक व्यय कर रहा है। इस प्रकार फ्रांस ने सारे यूरोप में अविश्वास और सन्देह का भाव भर कर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को बहुत ही कठिन कर दिया है।

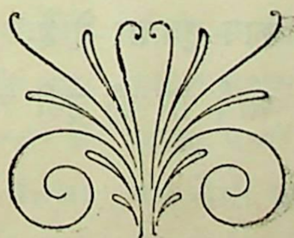
बाल्कन प्रायद्वीप अत्यन्त अशान्त स्थान है। जर्मनी के विरुद्ध अपनी रक्षा करने के प्रयत्न में फ्रांस ने इटली को भी अपना दुश्मन बना लिया। इटली और फ्रांस की शत्रुता तो थी ही, अब फ्रांस के बाल्कन प्रायद्वीप की राजनीति में भाग लेने पर दोनों के सम्बन्ध और भी जटिल होगए। इटली कहता है कि बाल्कन प्रायद्वीप में फ्रांस के कोई स्वार्थ नहीं हैं, अतः उसे उधर न पड़ना चाहिए। इटालियन सरकार का कहना है कि 'जो कोई भी राष्ट्र बाल्कन राजनीति में हस्तक्षेप करेगा, वह इटली से युद्ध करेगा। बाल्कन प्रायद्वीप की शान्ति का मार्ग रोम में से होकर जाता है।' पर अब फ्रांस उस में फंस चुका है और वह निकलना भी नहीं चाहता। फ्रांस और इटली दोनों ही बाल्कन प्रायद्वीप में अपनी अपनी प्रभुता चाहते हैं। इटली ने अल्बानिया के साथ सन्धि कर ली और वह उस का संरक्षक बन गया। हम ऊपर कह आए हैं कि ड्रीना की घाटी के सम्बन्ध में अल्बानिया और जुगोस्लाविया में झगड़ा था। अब इटली उसका संरक्षक बन गया। इटली और जुगोस्लाविया की पहले ही से नहीं बनती थी क्योंकि इटली ने उस का व्यापारी बन्दर फ्यूम अपने अधिकार में कर लिया था। इसके साथ ही जुगोस्लाविया के तटवर्त्ती कई द्वीपों पर इटली का अधिकार था। इटली चाहता था कि एड्रियाटिक पर उसका प्रभुत्व हो और जुगोस्लाविया अपना। अब तक तो जुगोस्लाविया को कुछ सुविधा भी थी, पर जब इटली ने अल्बानिया का संरक्षकत्व प्राप्त कर लिया तो जुगोस्लाविया का समुद्र तट एक प्रकार से इटली के अधिकार में चला गया। इस प्रकार इटली का प्रभाव बढ़ रहा था। जुगोस्लाविया ने फ्रांस से सन्धि करली इटली तथा अल्बानिया की सन्धि का करारा जवाब दिया। इस सन्धि का कारण यह था कि फ्रांस बाल्कन में इटली का प्रभुत्व नहीं चाहता था इस लिए वह कहता था कि "बाल्कन प्रायद्वीप बाल्कन वासियों के लिए ही है"। फ्रांस की इस उदार नीति का कारण यह था कि इटली के अभाव में फ्रांस का मित्र जुगोस्लाविया सारे बाल्कन प्रायद्वीप में सब से अधिक शक्तिशाली हो जायगा। बलोरिया कहता था कि हम जुगोस्लाविया का प्रभुत्व नहीं देखना चाहते, वह कालेसागर से लेकर एड्रियाटिक तक अपना प्रभुत्व स्थापित कर छोटे छोटे बाल्कन राष्ट्रों को अपने प्रभुत्व में कर लेगा।

फ्रांस और जुगोस्लाविया के इस पैक्ट से सिर्फ इटली को ही धक्का नहीं पहुंचा पर हंगरी को भी इस से डर था। जुगोस्लाविया और हंगरी का वैनट के सम्बन्ध में झगड़ा था।

यदि इटली बाल्कन रियासतों में फ्रांस के विरुद्ध कोई गुट्ट बनाने का प्रयत्न करे तो भी वह सफल नहीं हो सकेगा। 'लिटिल एएटेंटे' तो उसकी ओर हो ही नहीं सकता। वह तो फ्रांस के साथ सैनिक सन्धियों से बंधा है। यही दशा पोलैण्ड की है। ग्रीस भी बिना इंग्लैण्ड के पूछे उस का साथ नहीं देगा। क्योंकि वह आर्थिक दृष्टि से पूर्णतया इंग्लैण्ड के सहारे है। यद्यपि टर्की इटली के साथ मिल कर एनेटोलियन प्रश्न का निर्णय करना चाहता है— तथापि वह फ्रांस और इंग्लैण्ड को नाराज़ न करेगा। इस प्रकार हंगरी को छोड़ कर कोई उसका नेतृत्व ग्रहण नहीं करेगा वास्तव में स्वतन्त्र नेतृत्व करने के लिए इटली के पास न धन है, न कोयला और न लोहा।

सब पूंजीपति सरकारों का रूस कट्टर विरोधी है, इस लिए पूंजीपति सरकारों की शिरोमणि सरकार सदा इस बात का प्रयत्न करती रहती है कि किसी प्रकार रूस को नीचा दिखाया जाय। इस के लिये उसने रूस विरोधी गुट्ट बनाना शुरु किया है। इस में इटली की सहायता की आवश्यकता है। समय समय पर बृटिश राजनीतिज्ञों ने फैसिज्म के गुणगान गाए हैं। यदि बृटिश सरकार अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए इटली की महत्वाकांक्षाओं में सहायता देगी तो यूरोप में बड़ा भारी जंग मच जावेगा।

इन सब समस्याओं को यदि हल करना है और यूरोप में शान्ति स्थापना करनी है तो "सांसारिक नागरिकता" का पाठ व्यवहार में लाना होगा। पर अभी तक यूरोप में यह बुद्धि उत्पन्न नहीं हुई, इस लिए वह काफी देर तक युद्धक्षेत्र बना रहेगा।



कलम तलवार है ।

(लेखक—श्री पं० चमूमति जी एम० ए०)

कागज़ के रावण पै आग की बौछाड़ देख,
हँसते हँसौड़ यह वीरता अपार है ।
कौन रोक सके इन वाणी के बवण्डरों को ?
वेग में गिराके तेज़ तर्कणा की धार है ।
है नवीन युद्ध-युग नीति की निपुणता का,
वीर वाग्भट्ट, बाण बेधक विचार है ।
निरा ठाठ बाठ युद्ध का, हैं तोप औ' विमान,
कागज का खेत है, कमल तलवार है ॥

लेखराम राजपाल जय-माल पा निहाल,
वीर श्रद्धानन्द-उर विकसी बहार है ।
धर्मवीर की चिता है ? या खिली अमरता है ।
अमरपुरी में जयनाद की गुँजार है ।
शीघ्र प्रतिकार करो शत्रुका संहार करो ।
आर्य हों अनार्य—यह आर्य प्रतिकार है ।
वैर कुविचार से है काम सुप्रचार से है,
आर्य वीर की उठी कलम तलवार है ॥

कोहनि आश्रम

(लेखक— ब्र० श्वेतकेतु जी)



पाठकों ने कोहनि आश्रम का नाम तो बहुत कम सुना होगा लेकिन 'जलचिकित्सा' का नाम कई बार सुना होगा यह आश्रम जलचिकित्सा के लिए ही स्थापित किया गया है। तरह २ के रोगी यहां प्रविष्ट हो कर जल चिकित्सा करवाते हैं और उत्तम स्वास्थ्य लाभ करते हैं।

अंग्रेजी दवाई (Allopathy) का यहां नाम तक नहीं। केवल जल द्वारा ही शरीर के तमाम रोगों का इलाज़ किया जाता है। इस आश्रम के संस्थापक हैं श्रोत्रिय कृष्ण स्वरूप बी.ए.एल.एल. बी.। आपने ही इस आश्रम की स्थापना की है। यों तो आप कई सालों से मुरादाबाद में वकालत के साथ २ रोगियों का मुफ्त इलाज़ करते चले आ रहे हैं लेकिन लोगों के बहुत कहने सुनने पर अब वकालत छोड़ कर रोगियों की सेवा के लिए बाकायदा यह आश्रम खोल दिया है।

आप मुरादाबाद के गिने चुने वकीलों में से एक हैं। आप वकालत के साथ २ लुई कुहनि की पुस्तकों का अनुशीलन करते रहे और आपको उनकी निकाली जल चिकित्सा की पद्धति से बड़ा प्रेम होगया यहां तक कि आप जलचिकित्सा के सिवाय भयंकर बुखार होने पर भी अन्य किसी दवादारू का उपयोग नहीं करते। आप को एक बार chronic malaria होगया। अन्य बहुत सा इलाज़ किया गया लेकिन आराम न हुआ। तब आपने जल का इलाज शुरू किया और आप शीघ्र ही तन्दरुस्त होगए। तब से आप को जल चिकित्सा पर बहुत विश्वास हो गया।

आप अपने परिवार के सब आदमियों का इलाज जल से ही करते हैं। मैंने आप को अपने छोटे २ बच्चों के सब प्रकार के घाव और रोगों का इसी चिकित्सा द्वारा निराकरण करते देखा है।

बिजनौर शहर से आश्रम एक मील के अन्तर पर है। यद्यपि आश्रम को खुले २३ साल ही हुए हैं तो भी इस थोड़े से अर्से में ही यहां आकर हज़ारों रोगी स्वास्थ्य लाभ कर चुके हैं।

आश्रम का भवन दुमञ्ज़ला है फी आदमी के लिए छोटा २ सुन्दर कमरा बना हुआ है। चारों तरफ़ की फैली हुई हरियाली मन को आनन्दित करती है। इस भवन से २ फर्लांग के अन्तर पर एक और विशाल भवन है जिस में आप का परिवार रहता है। इसी में आश्रम के रोगियों का भोजनालय भी है। इस भोजनालय में बड़ी पवित्रता से भोजन तैय्यार होता है और श्रोत्रिय जी की आज्ञानुसार हरेक मरीज़ को परोसा जाता है। रोगियों के निवास गृह के पास ही ७-८ छोटी २ कोठरी बनी हुई हैं जिन में रोगियों को स्नान कराया जाता है। स्नान के लिए ताजे और स्वच्छ पानी की बड़ी आवश्यकता होती है। अत एव रोगी गृह के सामने ही एक विशाल कूप बना हुआ है जिसमें पानी की मशीन लगाई गई है। आस पास के खेत और बगीचों के साथ २ यह कूप जल चिकित्सा के लिए जल की प्रभूत राशी देने को सदा तैय्यार रहता है। मेरी इस अश्रम को जाकर

देखने तथा रहने की उत्कट इच्छा थी। मेरे शरीर तथा मुख पर बहुत साल से फुन्सियाँ निकल रही थीं जो बहुत दवा दारू से भी दूर न हुई तब श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार ने मुझे जल चिकित्सा करने की सलाह दी। कई अन्य भाइयों ने भी जल-चिकित्सा से चर्म रोग के दूर होने का विश्वास दिलाया। अतः मैं अगस्त मास में जलचिकित्सा के इस अद्भुत आश्रम में आ प्रविष्ट हुआ।

मेरे सामने यहां मेरे अलावा ८ सज्जन पधारे हुए थे और सलाह मशवरा लेने के लिए तो दिन भर रोगियों का आवागमन रहता था। कोई क्षय रोग के लिए सलाह मशवरा ले रहा है, तो दूसरा संग्रहणी ,बवासीर आदि के लिएबातचीत कर रहा है, कोई बुखार दूर करना चाहता है तो कोई सिर दर्द। साराँश यह कि लोग दिन भर इस प्रकार आते जाते रहते हैं कि कई बार श्रोत्रिय जी के लिए आराम से बैठना भी भारी हो जाता है।

आप प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में ही उठकर रोगी गृह में आजाते हैं और सब रोगियों का बड़े प्रेम से हाल पूछते हैं। किसी को दुःखित देख आप का दिल उदास हो जाता है। आप एक दम उसका उचित प्रबन्ध कर लेते हैं और उसके प्रसन्न होने पर ही चैन लेते हैं। वास्तव में आप की महत्ता से ही आश्रम चल रहा है। आपके बाहिर जाने से आश्रम बिल्कुल सूना पड़ जाता है।

आप को समीपस्थ ग्रामों से बड़ी मुहब्बत है। मुसलमान हो, या हिन्दू हो व अन्य किसी धर्म का हो आप प्रत्येक को बड़े प्रेम से सलाह मशवरा देते हैं।

समीपस्थ ग्रामों के रोगी शहर में न जाकर आपके ही पास दवादारु के लिए आते हैं क्योंकि आप गरीब ग्रामीणों को बड़े प्रेम से रोग निवारण का उपाय बताते हैं। प्रायः ग्रामीण लोग सलाह लेकर अपने २ ग्राम को चले जाते हैं यदि देर होने से अन्धेरा बहुत हो जाता है तो दयालु श्रोत्रिय जी उन के रहने तथा भोजनादि का अपने आश्रम में अच्छी तरह से प्रबन्ध करा देते हैं।

निस्सहाय ग्रामीण रोगी आपको ही अपना संरक्षक समझते हैं। आपका पितृ तुल्य व्यवहार उन्हें हमेशा के लिए आपका भक्त बना देता है।

जल चिकित्सा के स्नान

यहां रोग के अनुसार जल चिकित्सा के जो भिन्न २ स्नान कराए जाते हैं उनका संक्षेप से वर्णन निम्न प्रकार है।

१. पेडू स्नान (Hip Bath)

इसके लिए निम्नलिखित विधि प्रयुक्त की जाती है। एक टब लेकर उसमें अपनी नाभि जितना कूप का ताजा जल भर देते हैं और उसमें टागें बाहिर रख पीठ का ढासना लेकर इस ढंग से बैठते हैं कि रोगी का पेडू बिल्कुल पानी में डूब जाय और फिर एक तौलिए के साथ रोगी को जल में ही अपना पेडू रगड़ना पड़ता है। रगड़ने का क्रम इस प्रकार है।

दाएं हाथ में तौलिया लेकर पेडू को (क) दाएं से बाएं और बाए से दाएं तक (ख) दोनों कोखों से क्रमशः मूत्रेन्द्रिय तक। (ग) नाभि से इन्द्रिय तक रगड़िए। इस प्रकार १५ मिनिट तक रोगी को अपना पेडू रगड़ना पड़ता है। १५-२० मिनिट रगड़ने केबाद रोगी को बाहिर घूमने भेज दिया जाता है। बहुत कमज़ोर रोगी को बिस्तरे पर कम्बल ओढ़कर लिटा देते हैं।

२. मेहन स्नान—(Sitz Bath)

इस स्नान के लिए टब ताजे और ठंडे जल से पूरा भरवा दिया जाता है और लकड़ी का बना

स्टूल, जो टब में ठीक आजाता है, रख दिया जाता है। पानी स्टूल के ऊपर तक आ जाना अच्छा है। रोगी को इस स्टूल पर बैठ कर अपनी जननेन्द्रिय का अग्रिम चर्म खींच कर धीरे२ रगड़ना होता है। रगड़ने के लिए कपड़ा सख्त और खुरदरा नहीं होना चाहिये। इस स्नान से आन्तरिक विजातीय द्रव्य भी उखड़ने लगता है। इन दोनों स्नानों के लिए भोजन के पहले व पीछे दो २ घण्टे का अन्तर होना चाहिये। जलादि पेय पदार्थ भी इसी प्रकार स्नान से दो घण्टे के अन्तर से हो पीने चाहिये।

ये दोनों स्नान विजातीय द्रव्य के निकालने में बड़ी मदद पहुँचाते हैं। जल चिकित्सकों का सिद्धान्त है कि विजातीय द्रव्य के कारण ही सब प्रकार की बीमारियां होती हैं। इस लिए विजातीय द्रव्य के दूर कर देने से सब बीमारियां जड़ से दूर की जा सकती हैं।

जब विजातीय द्रव्य अधिक मात्रा में होने से शीघ्र नहीं निकलता तब ये निम्न दो स्नान अधिक लाभ दायक सिद्ध होते हैं

३. सूर्य स्नान (Sun Bath)

आश्रम में यह स्नान प्रायः हरेक रोगी को कराया जाता है। इस के लिए रोगी को कड़ी धूप में, जब कि हवा न चल रही हो, सूर्य की ओर मुख करके लेट जाना पड़ता है—शिर, मुख और पेड़ू को केला, ढाक, नीम परण्ड वगैरह के हरे पत्तों से ढककर १ व १॥ घण्टा लेटे रहना होता है—

उस के बाद एक दम तौलिये से पसीना पोंछ कर पेड़ू स्नान जरूर लेना होता है।

यह सूर्य स्नान बहुत से रोगों के कीड़े मारने के अतिरिक्त विजातीय द्रव्य को पिघला कर पसीने के द्वारा निकाल बाहिर कर देता है।

इस स्नान का समय १० बजे से ३ बजे तक है। इस में भी भोजनादि में २ घण्टे का अन्तर होना आवश्यक है

४. वाष्प स्नान (Steam bath)

इस के करने के लिये वाष्प यन्त्र होते हैं। जिन में स्प्रिट द्वारा जलगर्म करके भाप इकट्ठी की जाती है और रोगी को खाट व आराम कुर्सी के समान बनी हुई लम्बी कुर्सी पर लिटा दिया जाता है। खाट के नीचे ही वाष्प यन्त्र रख दिये जाते हैं। शरीर के जिस स्थान पर भाप पहुँचाना चाहें उसी स्थान के नीचे ये यन्त्र रक्खे जाते हैं। रोगी के सारे शरीर के ऊपर १ कम्बल ढक दिया जाता है जिसके किनारे ज़मीन तक छूते रहते हैं। यदि रोगी को भाप असह्य मालूम पड़े तो ज़रा देर के लिए यन्त्र इस लटकते कम्बल से बाहिर निकाल देने चाहिए। इसे १५ मिनट अधिक से अधिक लेना चाहिये।

उपर्युक्त दोनों स्नानों के लेने के बाद पसीना पोंछ कर एक दम पेड़ू स्नान ले लेना चाहिए। वाष्प स्नान के बाद एक दम सम्पूर्ण शरीर टब में बैठ कर गीला करना चाहिये। इस से शरीर की अधिक गर्मी दूर होकर बड़ी शान्ति मिलती है। इसके समाप्त करने के बाद दूर घूमने चले जाना चाहिये।

इसे बहुत जल्दी-जल्दी न करना चाहिये क्यों कि इसके जल्दी-जल्दी करने से कमज़ोरी बहुत अधिक आजाती है। इसलिए इसे महीने में एक बार ही करना अच्छा है।

लेकिन विशेष दशा में यह १५ दिन में व ७ दिन में व ३ दिन में भी किया जा सकता है। यह रोगी की अवस्था पर निर्भर है।

पिन्डोल— (Clay Bandage)

सब रोगों कि जड़ कब्ज है अतः इसे दूर करने के लिए शुरु २ में कुछ दिनों तक पिन्डोल का प्रयोग करना अति उत्तम है। इस से पेट साफ हो जाने के कारण उपर्युक्त स्नानों का एक दम असर दिखाई पड़ने लगता है। आश्रम में पेट की शिकायत वाले रोगी इसे अकसर करते रहते हैं।

इस के करने के लिये चिकनी मट्टी की विशेष आवश्यकता है। चिकनी मट्टी को पीस कर उस में पानी मिला कर उसे मुलायम कर लेते हैं। और पेट के बराबर एक कपड़ा लेकर उस पर इस मट्टी की एक अंगुल तह लगा देते और रोगी को लिटाकर उसके पेड़ू पर इसे चिपका देते हैं। रोगी १ व १॥ घन्टा लेटा रहता है और फिर उठ कर पेडूस्नान कर लेता है।

पिन्डोल हटाने के बाद पेडू को ठंडी हवा से बचाना चाहिए। अन्यथा ठंडी हवा लगने के कारण आंतें सख्त होजाती हैं और दर्द होने लगती है।

साधारण कब्ज की शिकायत होने पर रात को शयन से पूर्व भी इसे पेडू पर बांधकर सो जाने से बहुत फायदा देखा गया है।

भोजन

जल चिकित्सा करने वाले को भोजन में बहुत परहेज़ रखना पड़ता है। कमजोर पाचन शक्ति वाले रोगी को तो आश्रम में घी दूध देखने को भी नहीं मिलता। केवल खुष्क फुल्के और बिना मसाले की तरकारी वा मूंग की दाल ही दी जाती है। पाचनशक्ति के अतिनिर्बल होने पर केवल आटा और कच्चा शाक भी दिया जाता है। मेरे समय १--२ रोगियों को कच्चा दलिया और कच्ची भिण्डी दी जाती थी। इस से शिर के रोग भी दूर होने में सहायता होती है।

जल चिकित्सा के रोगी को मिठाई की आशा न रखनी चाहिये। जहां तक हो सके सर्वथा मिठाई से दूर रहे, मीठा और नमक जितना कम किया जा सके उतना बेहतर है।

सब्जी वगैरह की स्वाभाविकता ज्यादा पकाने से मारी जाती है। इस लिये रोगी को खाने की वस्तुओं की स्वाभाविकता का ख्याल रखना चाहिये।

फलादि स्वाभाविक भोजन सब से उत्तम हैं। फलों का जितना सेवन किया जाय उतना ही अच्छा है। मौसमी फल खाने चाहिए।

जो सब्जी व कन्दमूल भूमि के नीचे पैदा होते हैं (आलू वगैरह) वे नहीं खाने चाहिये।

जब तक दूध घी न पचे तब तक बन्द ही रखना चाहिये। जैसे २ पाचन शक्ति उत्तम होती जाए वैसे २ दूध घी आदि उत्तम वस्तुओं की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। भोजन को ३२ वार से लेकर १०० वार तक चबाने की कोशिश करनी चाहिये। हमें प्राकृतिक वस्तुओं से बहुत शिक्षा लेनी चाहिये। हम प्रकृति में गौ बैलादि को देखते हैं कि वे पेड़ों के नीचे बहुत समय तक बैठे हुए जुगाली करते रहते हैं। यह उनकी चबाने ही की क्रिया है इसी से वे बड़े स्वस्थ रहते हैं। इसलिए जहां तक हो सके मनुष्य को अच्छी तरह भोजन चबाना चाहिये और फिर गले से नीचे उतारना चाहिये।

मुझे आश्रम में जाकर जल चिकित्सा करने से पूर्व कब्ज व जुकाम वगैरह की बड़ी शिकायत थी। इन स्नानों के करने से तीसरे दिन से ही मेरी सब शिकायत दूर होने लगी और अभी मुझे १० रोज भी नहीं हुए थे, कि कब्ज और जुकाम का पता ही न रहा कि वे किधर चले गए। २५

दिन के बाद मैंने यह चिकित्सा छोड़ दी। जल चिकित्सा छोड़ देने के बाद भी बहुत दिनों तक इस का उत्तम असर बना रहा।

मैं आश्रम में कब्ज के लिए न गया था, गया था खून शुद्धि के लिए। खून खराबी से मेरे मुख और टांग पर फुन्सियाँ फूट आई थीं। बड़ा आश्चर्य हुआ जब कि मैं केवल १५ दिन में ही बिलकुल ठीक होगया। श्रोत्रिय जी की आज्ञानुसार और कुछ दिन तक यह चिकित्सा करता रहा।

इस चिकित्सा में रोग जड़ से दूर किया जाता है लेकिन इसके लिए समय भी बहुत लगता है। धैर्य पूर्वक करते रहने से बड़ा लाभ होता है। धैर्य की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए ही इसमें बैठ सकते हैं।

इस आश्रम से रोगियों को अवश्य लाभ उठाना चाहिए। इस विषय में अधिक विस्तार से जानने के लिए कोहनि आश्रम बिजनौर के संस्थापक श्री पं० श्रोत्रिय कृष्ण स्वरूप जी से पत्र व्यवहार करना चाहिये।

विचार-प्रवाह

१. भद्दी चालाकी



बहुत दिनों से अफ़वाह गरम थी कि बड़ी व्यवस्थापिका सभा और प्रान्तीय कौन्सिलों के निर्वाचन इस वर्ष स्थगित कर दिये जायेंगे। एसेम्बली के पिछले अधिवेशन के अन्त में एक दिन माननीय पं० मोतीलाल नेहरू ने एसेम्बली की कार्रवाई को स्थगित कर के इस प्रश्न पर विचार करने का प्रस्ताव भी उपस्थित किया था, परन्तु प्रेज़ीडैण्ट पटेल द्वारा वायसराय का यह सन्देश पाकर कि सरकार का विचार निर्वाचन स्थगित करने का नहीं है, पण्डित जी ने अपना वह प्रस्ताव लौटा लिया था। परन्तु अब वायसराय महोदय ने एक असाधारण फरमान प्रकाशित कर के एसेम्बली के निर्वाचनों को अनिश्चत काल के लिये स्थगित कर दिया है। साधारण नियमों के अनुसार इस वर्ष नवम्बर मास में नया निर्वाचन होना चाहिये था। वायसराय अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग कर के अधिक से अधिक १ वर्ष के लिये इस निर्वाचन को स्थगित कर सकता है। एसेम्बली के निर्वाचन को स्थगित करने का कारण वायसराय महोदय ने यह बतलाया है कि अब शीघ्र ही साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित होने वाली है, और इस रिपोर्ट के आधार पर अगले वर्ष तक भारतीय-शासन-विधान में इङ्गलैण्ड की पार्लियामैण्ट परिवर्तन भी कर देगी। इस अवस्था में केवल एक वर्ष के लिये व्यवस्थापिका सभा के नये निर्वाचन करवाना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। इस विज्ञप्ति को पढ़ कर हम कह सकते हैं कि वायसराय महोदय ने यद्यपि वर्तमान एसेम्बली के कार्यकाल अवधि अनिश्चत समय के लिये बढ़ायी है, तथापि यह अनुमान करना कुछ अनुचित न होगा कि अब एसेम्बली के नये निर्वाचन अक्टूबर १९३० से पूर्व न होंगे।

बहुत सी प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के सम्बन्ध में उन प्रान्तों के गर्वनरों ने भी वायसराय का अनुसरण किया है। परन्तु इस सिलसिले में, सरकार की गलती से एक ऐसा कार्य भी होगया है, जिस के आधार पर लोगों को अब यह अधिकार मिल गया है कि वे इस सम्बन्ध में सरकार की दयानतदारी पर अविश्वास कर सकें। अभी थोड़ा ही समय हुवा है, जब असाम के गवर्नर ने अपने प्रान्त की कौन्सिल को भंग कर के नये निर्वाचन होने की घोषणा की थी।

इस से बाद बंगाल ने भी आसामका अनुसरण किया, परन्तु एक चलाकी के साथ। वह यह कि वहां कौन्सिल को भंग करने की तिथि और नवीन निर्वाचनों की तिथि में बहुत कम अन्तर रक्खा गया, ताकि उमीदवारों को अपने निर्वाचन के लिये अधिक प्रयत्न करने का अवसर न मिल सके। परन्तु इस का परिणाम उलटा ही हुवा। बंगाल कौन्सिल में कांग्रेस दल के ३४ उमीदवार बिना विरोध ही चुन लिये गये। और अभी अन्य निर्वाचन क्षेत्रों में भी स्वराज्य दल के उमीदवारों के विजय की पूरी सम्भावना है। बंगाल के गर्वनर के सम्बन्ध में तो अब यही उक्ति चरितार्थ होती है—'चौबे को छब्बे बनने गये, परन्तु दुब्बे बन कर लौटे।'

वायसराय महोदय का कहना है कि क्योंकि भारतीय-शासन-विधान में शीघ्र ही परिवर्तन होने वाला है, अतः इस वर्ष निर्वाचन करना अबुद्धिमत्ता-पूर्ण होगा। परन्तु हम पूछते हैं कि क्या आसाम और बंगाल के शासन विधान में अगामी वर्ष कोई परिवर्तन नहीं होगा, जो उन प्रान्तों में कौंसिलों के नये निर्वाचन होने की घोषणा कर दी गई है। यह कहा जा सकता है कि प्रान्तीय कौन्सिलों के लिये वायसराय नहीं, प्रान्तीय गर्वनर ज़िम्मेवार हैं, परन्तु शासन विधान के इस नियम से जानकारी रखते हुए भी हम इस बात पर विश्वास करने में असमर्थ हैं कि बंगाल या आसाम के गवर्नरों ने अपने प्रान्तों की कौन्सिलों को बर्खास्त करते हुए केन्द्रीय सरकार या वायसराय से सलाह नहीं ली होगी। इस कारण यह मान लेने के लिये हमारे पास पर्याप्त आधार विद्यमान है कि बंगाल और आसाम की वर्तमान कौन्सिलों को भंग कर के, वहां नये निर्वाचन करने की घोषणा द्वारा, सरकार देश की वास्तविक परिस्थति का ज्ञान प्राप्त करना चाहती थी, और अब इस परीक्षण से वह इस परिणाम पर पहुंची है कि इन दिनों नया निर्वाचन होने से राष्ट्रीय दल की पूर्ण जय होगी, अतः उसने निर्वाचन स्थगित कर दिये हैं। शायद सरकार को यह भ्रम था कि ये कांग्रेसिये चिल्लाते तो बहुत हैं, परन्तु वास्तव में देश का बहुमत इन के साथ नहीं है। परीक्षण करने पर सरकार को यह ज्ञात होगया कि यह उस का भ्रम था। अतः सरकार ने वर्तमान व्यवस्थापिका सभाओं के कार्यकाल की अवधि बढ़ादी। राष्ट्रपति पं० मोतीलाल नेहरू के शब्दों में वायसराय ने यह कार्य्य कर के उन के साथ वायदा-खिलाफ़ी की है। प्रेज़ीडेण्ट पटेल ने हाल ही में नहरू जी के पास जो तार भेजा है, उस से यह स्पष्ट विदित होता है कि वायसराय ने पिछले एप्रिल में अवश्य ही एसेम्बली के निर्वाचनों को स्थगित करने का वायदा किया था, परन्तु अब उस का विचार बदल गया है। हमारी सम्मति में इस प्रकार विचार बदल जाने का कारण वह नहीं है जो वायसराय महोदय ने अपने वक्तव्य में प्रकाशित किया है, अपितु इस विचार परिवर्तन का कारण यह है कि साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित होने से पूर्व नये निर्वाचन हो जाने पर सरकार को अपनी पोल खुल जाने का भय था।

बड़ी व्यवस्थापिका सभा दो बार यह स्पष्ट रूप में प्रकट कर चुकी थी कि साइमन कमीशन पर उसका विश्वास नहीं है। फिर भी सरकार ने स्वयं अपनी इच्छा से साइमन कमीशन का सहयोग करने के लिए एक केन्द्रीय समिति की स्थापना कर ही तो दी। यह केन्द्रीय समिति

आजकल विलायत में अपने गौराङ्ग महाप्रभुओं की चरणसेवा कर रही है। इस के सदस्यों पर देश का विश्वास नहीं है, क्योंकि इन्होंने देश के साथ विश्वासघात किया है। अब यदि बड़ी व्यवस्थापिका सभा का नया निर्वाचन इसी वर्ष कर दिया जाय, तब इस समिति के अधिकांश सदस्य निर्वाचन में अवश्य परास्त होजायंगे—यह हमें पूर्ण विश्वास है। सरकार ने बंगाल के परीक्षण से इस बात की सचाई परख ली है, और अपना भेद इतनी स्पष्ट नगनता के साथ खुल जाने के भय से ही उसने यह 'भद्दी चालाकी' की है। केन्द्रीय समिति के सदस्यों को स्वयं ही इस बात का भय था कि वे अगले निर्वाचनों में चुने न जासकेंगे, इस कारण इस देश से चलते हुए वे वायसराय महोदय से, बड़े विनय से, यह प्रार्थना कर गये थे कि महाराज ! इस वर्ष निर्वाचनों को स्थगित कर दीजिये।

इस सम्बन्ध में एक और बात भी ध्यान देने योग्य है। वायसराय महोदय ने अपनी विज्ञप्ति में लिखा है कि मेरे पास बड़ी व्यवस्थापिका सभा का एक महत्वपूर्ण डैपूटेशन इस बात की फरमाइश करने के लिये आचुका है कि इस वर्ष निर्वाचन स्थगित कर दिये जांय। देश भर जानता है कि इस 'महत्वपूर्ण डैपूटेशन' में कौन कौन महानुभाव थे और उनका समर्थन करने वाले लोगों से भी जनता अपरिचित नहीं है। इन में से अधिकांश लोग इस ढंग के थे जिन्हें नये निर्वाचनों में सफलता की ज़रा भी आशा नहीं थी। हम वायसराय महोदय से पूछना चाहते हैं कि उन कि सेवा में जो डैपूटेशन आया था, उस के किस किस सदस्य ने एसेम्बली में कितनी वार भाषण दिया है, और कितनी वार अपनी स्वतन्त्र सम्मति बताने का प्रयत्न किया है ?

व्यवस्थापिका सभाओं के निर्वाचन को स्थगित कर के सरकार ने भारत वर्ष का घोर अपमान किया है, इस कार्य द्वारा सरकार ने इस देश के आत्म सम्मान को चुनौती दी है। हम चाहते हैं कि राष्ट्र सम्मलित रूप से इस चुनौती का यथोचित उत्तर दे। अभी तक कांग्रेस ने यह निर्णय नहीं किया कि इस राष्ट्रीय अपमान का प्रतिकार किस प्रकार किया जाय। यह निर्णय शीघ्र ही होने वाला है। राष्ट्रपति पं० मोती लाल नेहरू ने कौन्सिलों के सदस्यों से यह अनुरोध किया है कि वे अब अपने अपने निर्वाचन क्षेत्र में जाकर मतदाताओं को संगठित करें और उन्हें कांग्रेस का कार्य्यक्रम पूरा करने के लिये उत्साहित करें। कौन्सिलों के सम्पूर्ण राष्ट्रीय और देशभक्त सदस्य यदि इस समय सदस्यत्व से त्यागपत्र दे दें, तो हमारी सम्मति में यह बहुत उपयुक्त होगा। उन की स्थान पूर्ति के लिये जब नया निर्वाचन किया जाय, तब पुनः वे स्वयं ही उमीदवार बन कर खड़े हों और उस के बाद चुने जाकर वे फिर से त्यागपत्र दे दें। इस प्रकार बाधा की उग्र नीति का अनुसरण किया जाय।

२. इंगलैण्ड के नये निर्वाचन

इङ्गलैण्ड की पार्लियामैण्ट का इन दिनों नया निर्वाचन हो रहा है। इस वर्ष का निर्वाचन बड़े ही उत्साह के साथ हुआ है। जितने अधिक मतदाताओं ने इस वर्ष अपने मत देने के अधिकार का प्रयोग किया है, वह इङ्गलैण्ड के इतिहास में पहली घटना है। स्त्री मतदाताओं ने भी इस वर्ष अपने अधिकार का पूरी तरह इस्तेमाल किया है। इङ्गलैण्ड में अब, स्त्रियों को भी, अबाधित रूप से मतदाता बनने का अधिकार मिल जाने के कारण, वहां पुरुष-मतदाताओं की अपेक्षा स्त्री-मतदाताओं की संख्या अधिक हो गई है। अब वहां यदि स्त्रियां

चाहें तो परस्पर संगठन कर के पार्लियामैन्ट में अपनी बहुसंख्या बना सकती हैं। परन्तु अभी तक शायद इस बात की सम्भावना नहीं है। फिर भी इस वर्ष के निर्वाचन में २० के लगभग स्त्रियां पार्लियामैन्ट की सदस्या निर्वाचित हुई हैं।

निर्वाचन के अधिकांश परिणाम इस समय तक प्रकाशित हो चुके हैं। हाउस आफ़ कामन्स के कुल मिला कर ६१५ सदस्य होते हैं। इन में से ६०६ निर्वाचनों का परिणाम इस समय तक प्रकाशित हो चुका है। पिछली पार्लियामैण्ट में अनुदार दल का पूर्ण बहुमत था। मज़दूर और उदार दल, दोनों के सम्मिलित रूप से भी इतने कम सदस्य थे कि उन के योग से अकेले अनुदार दल के सदस्यों की संख्या अधिक थी। उदार दल के तो केवल ४० सदस्य ही पिछली वार के निर्वाचनों में सफलता पा सके थे। इस वर्ष अभी तक इन दलों की सदस्य-संख्या इस प्रकार है—

१. मज़दूर दल—	२८८.
२. अनुदार दल—	२५५.
३. उदार दल—	५८.
४. स्वतन्त्र—	८.
	६०६.

छः निर्वाचनों का परिणाम अभी तक प्रकाशित नहीं हुवा। इस प्रकार हाउस औफ़ कौमन्स में अब किसी एक दल का पूर्ण बहुमत नहीं रहा। अनुदार दल की सदस्य संख्या अब मज़दूर दल की अपेक्षा भी बहुत कम होगई है, और मि० बाल्डविन को यह ज़रा भी सम्भावना नहीं कि वह उदार दल को अपने साथ मिला कर रख सकेंगे अतः उन्होंने प्रधानमन्त्रित्व से त्यागपत्र दे दिया है। इस प्रकार इस निर्वाचन में अनुदार दल ने मुँह की खाई है। यहां तक कि मि० बाल्डविन के मन्त्रिमण्डल के ७ सदस्य इस निर्वाचन में चुने तक भी नहीं जा सके। मज़दूर दल इस निर्वाचन से बहुत प्रसन्न है। इस दल के नेता श्रीयुत रैम्ज़े मैकडानल्ड प्रधानामात्य बन गये हैं। श्रीयुत मैकडानल्ड को स्वयं अपने वैयक्तिक निर्वाचन क्षेत्र में, अपने दोनों प्रतिद्वन्द्वियों को प्राप्त मतों की सम्मिलित संख्या से २४००० मत अधिक प्राप्त हुए हैं। अन्य किसी दल के नेता को इतनी बड़ी विजय प्राप्त नहीं हुई। रैम्ज़े मैकडानल्ड ने अपना मन्त्रिमण्डल पहले ही से तैयार कर रक्खा था। परन्तु मज़दूर दल की इस पार्लियामैन्ट में पूर्ण बहुसंख्या नहीं, इस कारण उन्हें अपनी स्थिरता बनाये रखने के लिये उदार दल का आश्रय अवश्य लेना पड़ेगा। नये प्रधानामात्य ने स्वयं इस बात की घोषणा कर दी है कि वह अब उदार दल की नीति को भी सदैव अपने सन्मुख रक्खेंगे। तथापि मज़दूर दल की सदस्यसंख्या इस वार उस से अधिक है, जितनी उस के पिछले मन्त्रिमण्डल के समय थी, जब कि ६ मास बाद ही मि० मैकडानल्ड को प्रधानामन्त्रित्व से त्यागपत्र दे देना पड़ा था। उदार दल के सदस्य यद्यपि केवल ५८ की संख्या में ही पार्लियामैण्ट में पहुँच पाये हैं, तथापि इस दल के नेता मि० लायडजार्ज इस वर्ष के निर्वाचन-परिणामों से बहुत संतुष्ट हैं। क्यों कि अब उन के हाथ में यह शक्ति आगई है कि वह अपने को छोड़ कर जिसे चाहें प्रधान मंत्री बना दें! वर्तमान प्रधान मन्त्री को अब सदैव उन की अनुमति से ही अपनी नीति निर्धारित करनी पड़ेगी। पार्लियामैण्ट में साम्यवादी नाम का भी एक दल था। इस दल के नेता श्रीयुत सकलातवाला थे। पिछली पार्लियामैण्ट में इस दल के ६ सदस्य थे। इस वार इस दल के नेता सहित सम्पूर्ण उमेदवारों

को पराजय हुई है। एक भी साम्यवादी पार्लियामैण्ट का सदस्य नहीं चुना जा सका।

पार्लियामैण्ट के इस नये निर्वाचन में धन का बहुत बड़ा व्यय हुवा है। इन तीनों दलों ने निर्वाचन में लगभग ५ करोड़ रुपया व्यय किया है। मज़दूर दल की ओर से, निर्वाचन से पूर्व के दो सप्ताहों में, प्रतिदिन १० लाख के लगभग विज्ञप्तियां प्रकाशित होती रही हैं। इन्हीं दिनों अनुदार दल की ओर से १५ लाख विज्ञप्तियां प्रतिदिन निकलती रही हैं। उदार दल ने भी कुछ कम व्यय नहीं किया। उन दिनों प्रत्येक रात को, सम्पूर्ण इङ्गलैण्ड में, एक एक हज़ार व्याख्यान होते रहे हैं। दल के नेताओं ने हज़ारों मील का दौरा किया है। निर्वाचनों का प्रबन्ध करने के लिये सरकार को जो व्यय करना पड़ा, वह इस के अतिरिक्त है।

इङ्गलैण्ड के इस नये निर्वाचन से संसार द्वारा स्वीकृत वर्तमान निर्वाचन-पद्धति पर एक बहुत बड़ा लाञ्छन आता है। वह यह कि इस निर्वाचन पद्धति द्वारा मतदाताओं का वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं हो सकता। इस वर्ष जितने मतदाताओं ने अपने मत देने के अधिकार का प्रयोग किया है, उन की पूर्ण संख्या लगभग २२५ लाख है। इस में से कुल मिला कर प्रत्येक दल को इस प्रकार मत प्राप्त हुए हैं—

मज़दूर दल—　८८०००००
अनुदार दल—　८००००००
उदार दल—　५००००००

इस हिसाब से इन दलों की संख्या का अनुपात लगभग इस प्रकार होना चाहिये था—

	उचित अनुपात	प्राप्त स्थान
मज़दूर—	२४२	२८८
अनुदार—	२२१	२५५
उदार—	१३८	५८

परन्तु वर्तमान निर्वाचन पद्धति से जहां मज़दूर और अनुदार दल को अनुचित रूप में लाभ पहुँचा है, वहां उदारदल को अत्यधिक हानि उठानी पड़ी है, उस के अधिकार से, उसे आधे से भी कम स्थान पार्लियामैण्ट में प्राप्त हो सके हैं। संसार के राजनीतिज्ञों को अब शीघ्र ही इस समस्या की ओर ध्यान देना चाहिये।

३ इतिहास पर बलात्कार

हमने बड़े क्षोभ और दुख के साथ सुना कि कि चांद कार्यालय से प्रकाशित 'भारत में अंग्रेज़ी राज्य' नामक पुस्तक को युक्तप्रान्त की सरकार ने प्रकाशित होने के केवल दो दिन बाद ही ज़ब्त कर लिया। यह पुस्तक अंग्रेजी की बहुत सी प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुस्तकों के आधार पर लिखी गई थी। ये पुस्तकें प्रमाणिक इतिहासज्ञों की लिखी हुई हैं, इन की सत्यता में सन्देह तक भी नहीं किया जा सकता। अंग्रेज़ी भाषा में ये पुस्तकें ज़ब्त नहीं है। शायद उन्हें ज़ब्त करने का साहस सरकार कर नहीं सकी। हिन्दी भाषा की इस 'भारत में अंग्रेज़ी राज्य' नामक पुस्तक में कुछ बातें लेखक ने अपनी नई खोज के आधार पर भी लिखी हैं। पुस्तक के ये अध्याय हिन्दी के सुप्रसिद्ध मासिक पत्र 'विशाल-भारत' में प्रकाशित भी हो चुके है। उन्हें पढ़ कर हम कह सकते हैं कि पुस्तक विशुद्ध इतिहास की है, उस में एक भी बात प्रमाण के बिना नहीं लिखी गई। फिर भी सरकार ने इस पुस्तक को ज़ब्त कर लिया। इस बेढंगे न्याय का केवल एक ही कारण प्रतीत होता है। वह यह कि सम्भवतः सरकार का यह विचार है कि यदि भारत की देसी भाषाओं में—विशेषकर हिन्दी में—ऐसा साहित्य प्रकाशित होने लगा, तो सर्व साधारण जनता को भारत में अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना के सम्बन्ध में सच्ची सच्ची

घटनाएं ज्ञात हो जावेंगी और उस का परिणाम यह होगा कि लोगों के दिलों में से अंग्रेज़ी हुकूमत के लिये श्रद्धा के भाव उठ जांयगे। इस प्रकार इतिहास पर बलात्कार करना कितना बड़ा अन्याय है। जब शासन सूत्र के संचालक किसी देश के इतिहास पर भी दिन-दहाड़े बलात्कार करने लगें, तब यही समझना चाहिये कि या तो वह विदेशी शासन शीघ्र नष्ट होगा और या वह देश ही मिट जायगा।

इस सम्बन्ध में एक और घटना भी विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। 'भारत में अंग्रेज़ी राज्य' नामक पुस्तक २१०० पृष्ठों में समाप्त हुई है। इस का मूल्य १६) रु० है। इतना बड़ा ग्रन्थ, प्रकाशित होनेके केवल २, ३ दिन बाद ही कैसे ज़ब्त हो गया। दो दिनों में तो इस पुस्तक को पढ़ डालना ही असम्भव है। यह एक अत्यधिक आश्चर्य का विषय है। सरकार को यह गुत्थी अवश्य सुलझानी चहिये। मालूम हुवा है कि इस पुस्तक के प्रकाशक बाबू रामरखसिंह सहगल सरकार की इस कार्यवाही के विरुद्ध अदालत में अपील करना चाहते हैं। यह भी ज्ञात हुवा कि स्वनामधन्य पं० मोतीलाल नहरू और सर तेज बहादुर सप्रू जैसे कानून के प्रकाण्ड पण्डितों ने उन्हें कानूनी मदद देना भी स्वीकार कर लिया है। हम आशा करते हैं कि देश के राष्ट्रीय विचारों वाले वकील सहगल जी को इस मामले में यथेष्ट सहायता देकर पुण्य के भागी बनेंगे। हम ऐसी अच्छी और इतनी प्रभावशाली पुस्तक के लेखक और प्रकाशक बाबू सुन्दरलाल और बाबू रामरखसिंह सहगल को हार्दिक बधाई देते हैं।

४ विवेक भ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।

मौलाना नहीं, मुल्ला मुहम्मदअली ने अब संसार भर में इस्लाम का प्रचार करने की कसम खायी है। इस शुभ कार्य के लिये आपनेबड़ी बड़ी कुरबानियां करनी अभी से शुरु कर दी हैं। आप के 'हमदर्द' को बचपन से ही तपेदिक था, वह कभी पनपा नहीं। इस्लाम के लिये मुल्ला साहब ने सब से पहली कुर्बानी यह की है कि 'हमर्दद' का गला घोंट कर उसे सदैव भारी घाटा उठाने की यातना से छुटकारा देदिया है। 'हमदर्द' के अन्तिम अंक में आप फरमाते हैं—"संसार भर में शान्ति-स्थापना का एकमात्र उपाय यही है कि सारा संसार इस्लाम के झण्डे तले आजाय। इस लिये मैं अब 'हमदर्द' से आख़ारी रुख़सत लेकर इसी काम में अपनी ज़िन्दगी लगा दूंगा। मैं गांव गांव, गली गली और कूचे कूचे में खिलाफत कमेटियां खोलूंगा।" मालूम हुवा है, अपने इसी मकसद को पूरा करने के लिये आप हाल ही में दक्षिण अफ्रीका तशरीफ़ ले जा रहे हैं। दक्षिण अफ्रीका में महात्मा गांधी के दैवीय स्वार्थत्याग की बदौलत वहां के मुसलमान इस समय तक भी कट्टर राष्ट्रीयतावादी थे। सन १९१४ के सत्याग्रह संग्राम में उन्हों ने भी बड़ी बड़ी कुरबानियां की थीं। अब मुल्ला साहब वहां भी तूफान लावेंगे और मेह बरसावेंगे। ईश्वर इस प्रलय के बादल से दक्षिण अफ्रीका के अभागे भारतीयों की रक्षा करे।

———::※::———

गुरुकुल-समाचार

कन्या गुरुकुल देहरादून

स्वास्थ्य तथा ऋतु :—गत एक-डेढ़ मास से ऋतु अनुकूल न होने से कन्याओं का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहा। पिछले दिनों इनफ्लूएन्ज़ा-ज्वर का प्रकोप विशेष तौर पर रहा। दो चार दिन तो रोगीगृह में कन्याओं की संख्या पन्द्रह २ बीस २ तक हो जाती थी, दैवात दो एक कन्याओं को टाइफाइड भी हो गया, परन्तु ईश्वर की कृपा से सब ने ही स्वास्थ्य लाभ कर लिया है। केवल चार कन्याएं साधारण ज्वराक्रान्त हैं। (ग्वाइटर , गिलड़) की शिकायत तो अब सर्वथा हट गई है। जो कन्याएं इस रोग के कारण स्वास्थ्य सुधार के लिए घर गई थीं, वे भी प्रायः लौट आई हैं। पानी का विकार समझ कर डाक्टर महोदय ने विशेष पानी का प्रबन्ध कर करवाया था। जो कि एक बैल-गाड़ी में १½ मील दूरी से मंगवाया जाता है, किन्तु पुनः परीक्षण के पश्चात् वह भी बन्द करवा दिया गया है। और अब गिलड़ की किसी प्रकार की शङ्का नहीं है।

बहुत समय से वर्षा न होने के कारण गर्मी भी कुछ अधिक ही है, जिससे सम्पूर्ण देहरे की ही जलवायु दूषित है। दोपहर में तो भगवान भास्कर की रश्मियां प्रचण्ड रूप धारण कर लेती हैं किन्तु सुबह-सायंकाल हवा के संचार से ठण्डक अनुभव होने लग जाती है। अब साधारणतः कन्याओं का स्वास्थ्य ठीक है।

पाठ्य-क्रमः—पाठ्य-क्रम भी उत्तमता से चल रहा है। इन एक दो मासों में दो एक ग्रेजुएट देवियों ने, जोकि स्थानीय ही हैं, काम किया है। अध्यापिकाओं की संख्या सन्तोष-जनक है। प्रथम से सप्तम् श्रेणी तक की कन्याएं अपनी वार्षिक परीक्षा के पश्चात् नवीन श्रेणियों की पढ़ाई में शनैः २ चल रही हैं। अधिकारी तथा नवम् श्रेणी की परीक्षाएं भी हो चुकी हैं। परिणाम शीघ्र ही निकलने वाला है।

उत्सव तथा सभायें—नये वर्ष का प्रारम्भिक दिन कन्याओं ने बड़ी मनोरञ्जकता तथा समारोह से मनाया। नगर की कई देवियों ने भी उसमें भाग लिया। उस दिन सम्मिलित बृहद् हवन, सभा, सहभोज आदि हुआ। सायंकाल के समय कन्याओं के खेलादि से उत्सव समाप्त किया गया। इसके अतिरिक्त सभाओं के साप्ताहिक अधिवेशन नियमानुसार मनाये जाते हैं।

प्रतिष्ठित दर्शक- दर्शकों में शाहपुर राजा के प्राइवेट ट्यूटर, गुरुकुल के भूतपूर्व प्रोफेसर श्री सुधारक जी M. A. पिछले दिनों महाराज-परिवार के लिये कोठी का प्रबन्ध करने मसूरी जारहे थे, और जाते हुए दो तीन दिन के लिए कन्या गुरुकुल में टिक गये। आपने विद्यालय का निरीक्षण भी किया और बड़े प्रेम के साथ कन्याओं की योग्यता की जांच की। कन्याओं की योग्यता देख कर आप बहुत प्रसन्न हुए।

कन्या-गुरुकुल कमीशनः— गुरुकुल के कमीशन ने अपनी रिपोर्ट सभा में पेश करदी थी, किन्तु सभा ने कमीशन को स्थायी स्थान के पुनः विचार के लिए और समय देकर रिपोर्ट लौटा दी है। और यह सम्मति स्वीकार करली है कि अस्थायी रूप से कन्या गुरुकुल देहरादून में ही रहे। आशा है कि कमीशन शीघ्र ही स्थान का निश्चय कर स्थायी भवन सम्बन्धी रिपोर्ट भी सभा के सन्मुख

उपस्थित करेगा। हमने स्थायी भवन के नाम पर गताङ्क में अपने भावुक ग्राहकों तथा संरक्षकों से अपील की थी किन्तु उस पर किसी ने भी विशेष ध्यान नहीं दिया। सभा का निश्चय हो जाने पर मकान बनने में देर नहीं होगी, यदि देर है तो धन की है। आशा है कि कन्या-गुरुकुल की वर्तमान दशा पर विचार कर, हमारे कृपालु संरक्षक इस ओर विशेष ध्यान देंगे और स्थायी भवन निर्माण के लिये दान एकत्र करने में लग जायेंगे तथा स्वयं भी कुल की सहायता कर सफलता के भागी बनेंगे।

गुरुकुल कांगड़ी

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की बड़े दिनों से प्रतीक्षा थी। आखिर कार वह दिन आही पहुंचा। २०,२१ ज्येष्ठ १९८६ तदनुसार २,३ मई १९२९ को बड़े धूम धाम के साथ मनाया गया। सभापति के पद पर श्री पं० बलराम जी आयुर्वेदालंकार सुशोभित थे। स्वागताध्यक्ष श्री ब्र० सिंहेश्वर जी १४ श थे। प्रारम्भ में श्री स्वागताध्यक्ष का भाषण हुआ जिसमें उन्होंने हिन्दी साहित्य की वर्तमान अवस्था पर प्रकाश डालते हुए गुरुकुल में शुद्ध प्रयोग तथा पारभाषिक शब्दों को हिन्दी में प्रयोग करने के लिए बल दिया। इसके बाद सभापति का निर्वाचन हुआ। श्री सभापति जी का भाषण वास्तव में बहुत ही उत्कृष्ट था। इसमें हिन्दी प्रचार तथा हिन्दी विश्वकोष की आवश्यकता बताते हुए उन्होंने छाया वादी कवियों की अच्छी आलोचना की थी।

इसके बाद प्रस्ताव स्वीकृत हुए। दिवंगत साहित्यिक महारथियों के ऊपर शोक प्रकट करते हुए उनके परिवार के साथ समवेदना प्रकट की गई। इसके अनन्तर अन्य बहुत से प्रस्ताव पास हुए इन में निम्न मुख्य थे—

१. क. हिन्दी भाषा जानने वाले ग्रन्थ लेखकों से अपने ग्रन्थों को हिन्दी भाषा में लिखने की प्रार्थना करे।

ख. हिन्दी प्रेमी तथा हिन्दी को अपने पाठ्य क्रम में स्थान देने वाले विश्वविद्यालयों से विभिन्न विषयों पर हिन्दी में उच्च कोटि की पाठ्य पुस्तकें लिखवाने की प्रार्थना करे।

ग. हिन्दी के प्रकाशकों से प्रार्थना करे कि वे

(१) विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित, हिन्दी में अनुवाद करने योग्य पुस्तकों का उत्तम अनुवादकों द्वारा अनुवाद करावें।

(२) अप्रकाशित उत्तम पुस्तकों का संग्रह कर प्रकाशित करे।

२. यह सम्मेलन हिन्दी के प्रचार के लिये सम्मेलन की स्थायी समिति से अनुरोधकरता है कि वह निम्न उपायों का प्रयोग करेः—

क. भारतीय व्यवस्थापिका सभा, राज्यपरिषद्, हिन्दी भाषा भाषी प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं म्युनिसिपैलिटिओं तथा जिलाबोर्डों के हिन्दी जानने वाले सदस्यों से अपना सारा काम हिन्दी भाषा तथा देव नागरी लिपि में करने की प्रार्थना करें।

ख. भारतीय व्यापारियों से प्रार्थना करे कि वे अपने विज्ञापनादि राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा प्रान्तीय भाषाओं में दिया करें।

ग. सरकार से प्रार्थना करे कि वह अपने विवरण, रेलों के समय विभाग तथा सरकारी विभाग के फार्म आदि शुद्ध हिन्दी भाषा में भी प्रकाशित करावे।

घ. सम्वाददाता एजैन्सियों तथा सरकार से प्रार्थना करे कि वे हिन्दी भाषा के पत्रों में समचार व सूचनाएँ हिन्दी भाषा में दिया करे।

ङ. नाटक कम्पनियों से प्रार्थना करे कि वे उत्तम लेखकों से हिन्दी भाषा में नाटक लिखवा कर दिखलावें।

इसके अतिरिक्त हिन्दी भाषी प्रान्तों के विश्व-विद्यालयों में शिक्षा का मध्यम हिन्दी, प्राचीन हिन्दी का शब्दकोष, देवनागरी का प्रचार, घासलेटी साहित्य की निन्दा, पारिभाषिक शब्दकोष सम्बन्धी प्रस्ताव पास हुए।

सम्मेलन की तृतीय बैठक "कवि-दरबार" के रूप में थी। श्री बलराम जी आयुर्वेदलंकार राजसिंहासन पर विराजमान थे। पुराने और नए, दोनों प्रकार के कवि, दरबार की शोभा बढ़ा रहे थे। इस सम्मेलन में हिन्दी साहित्य के महारथी श्री जगन्नाथ प्रसाद रत्नाकर जी भी स्वयं विद्यमान थे। अगले दिन रात्रि को हिन्दी साहित्य मण्डल का जन्मोत्सव सफलता से हुआ। यह सम्मेलन हर एक पहलू से सफल रहा।

गुरुकुल में सरदार भीमसिंह

११ ज्येष्ठ शनिवार को प्राचीन खेलों में निष्णात सरदार भीमसिंह जी निमन्त्रित होकर गुरुकुल पधारे।

उसी दिन सायंकाल ५ बजे से आपके अद्भुत खेल हुए। आपने अपनी अद्भुत खेलों से गुरुकुल की जनता को आश्चर्य में डाल दिया। संक्षेपतः आपके कुछ खेल यहां दिए जाते हैं—

१. अपने दोनों गोड़ों में छुरी अटका कर, उनकी नोकों पर सुरमा लगाकर उसे आसानी से अपनी दोनों आंखों में लगाया और सुरमा लगाते हुए अपने ऊपर एक आदमी को भी बिठा लिया।

२. आपने अपनी आंखों पर पट्टी बांध कर शब्दवेध का उत्तम खेल दिखलाया।

३. अपने पेट पर, छाती पर और कमर पर तलवार बांध कर दण्ड किए और दण्ड करते हुए तलवार को अपने चारों तरफ आसानी से घुमाया।

४. एक मनुष्य ने ७० गज़ दूर से सरदार साहिब की छाती को गोली का निशान बनाया। परन्तु सरदार साहिब उसे अपने दोनों हाथों से रोक कर अपनी छाती को प्रहार से बचा लिया और हाथों पर भी चोट न आने दी। पहिचान के लिए गोली पर निशान कर दिया गया था। इसी प्रकार अन्य उत्तम खेल भी दिखाए। ब्रह्मचारियों की प्रार्थना करने पर आप यहां ८ दिन ठहरे रहे और ब्रह्मचारियों को गतका छुरी आदि भी बड़े उत्साह से सिखलाते रहे।

१५ ज्येष्ठ मंगलवार को सायंकाल गुरुकुल के साँड का शेर ने मार दिया। घटना इस प्रकार बताई जाती है:—

गुरुकुल का काला साँड जो, अभी यहाँ मंगवाया गया था, जंगल में चरता २ सिद्धक्षेत्र तक पहुंच गया। वहां एक बड़ा भयानक शेर निकल आया। शेर ने साँड पर हमला किया, लेकिन साँड ने उसे अपने सींगों की मार से दूर भगा दिया। साँड निश्शंक होकर फिर विचरने लगा। शेर मौका पाकर फिर साँड पर आ झपटा और उसकी पीठ पर जा चढ़ा। साँड शेर को पीठ पर लिए हुए कांगड़ी ग्राम तक दौड़ा आया परन्तु वहां पहुँच कर वह गिर गया। सायंकाल ६ बजे ग्रामीण लोगों ने उसे अपने ग्राम के पास मरा हुवा देखा।



कला कौमुदी

लेखिका श्रीमती ओ३म्वती देवी

चित्र कला कौशल सम्बन्धी अनुपम पुस्तक-इस के द्वारा लेखिका ने क्रोशिये के कार्य को बड़ा ही सरल बना दिया है। बिना किसी प्रकार के पहिले ज्ञान के कन्यायें और स्त्रियें केवल इस की ही सहायता से अनेक प्रकार की बिनावट लेसें, फ़ीते, कपड़े इत्यादि बनाना सहज में ही सीख सकी हैं। पुस्तक में इतना विषय है कि किंचित इस से कई गुना दाम की पुस्तकों में भी न होगा। प्रत्येक वस्तु तथा बिनावट का बनाना चित्र देकर बड़ी सरल रीति से सिखाया गया है। देखिये समाचार पत्र इस के विषय में क्या कहते हैं।

"ट्रिब्यन" (अंग्रेज़ी का प्रसिद्ध दैनिक) लाहौर—स्त्रियों के लिये उपयोगी पुस्तक है। अनेक चित्रों द्वारा वस्तु बनाने की विधि बड़ी सरलता से समझाई गई है। सुन्दर नमून की लेसें, टेबल क्लाथ, बच्चों के सुन्दर कपड़े और अन्य कई वस्तुओं का बनाना बड़ी सुन्दर रीति से बतलाया गया है। पुस्तक की उपयोगिता के विचार से मूल्य बहुत कम है।

"मतवाला" (कलकत्ता)-यह पुस्तक हमारी बहिनों के बड़े समझ की है। छपाई बहुत अच्छी, कागज़ बहुत अच्छा मोटा चिकना आर्ट। सुचारु शिल्प पत्रावली कार्ड गृहस्थियों के बड़े काम की चीज़ है।

"कर्मवीर" (खांडवा)— ......पुस्तक में सादे फन्दे से लगाकर तरह तरह की वस्तुओं के बनाने की विधि बड़ी सरलता से समझाई गई है जिसे पढ़कर साधारण पढ़ी लिखी स्त्री भी इस कार्य को सीख सकती है। इस का मूल्य लागत को देखते कम है।

"माधुरी" (लखनऊ)-ऐसी पुस्तकों की हिन्दी साहित्य के लिये बड़ी आवश्यकता है। आशा है इस पुस्तक का अच्छा प्रचार होगा जिस से इस प्रकार की और पुस्तकें भी प्रकाशित का जा सक। लेखिका और प्रकाशिका दोनों को बधाई।

शीघ्र आर्डर भेजिये मूल्य १॥)

कला कौमुदी तथा शिल्प पत्रावली का पूरा सैट लेने पर २॥=)॥ के स्थान में केवल २।) में दिया जायगा।

कन्या पाठशालाओं और पुस्तक विक्रेताओं को विशेष रियायत

मैनेजर ज्योति-

कन्या गुरुकुल

राजपुरा रोड कोठी नं० २१-२२ देहरादून

मुद्दाराम पाठक प्रिन्टर तथा पं० रमेशचन्द्र पब्लिशर के लिये गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में मुद्रित।

Regd. No. A. 1711

वर्ष १०] जून १९२९ 50/69 [संख्या २



वार्षिक मूल्य. ४॥) प्रति संख्या ॥)

सम्पादक—
विद्यावती सेठ बी. ए., चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

विद्यार्थियों, स्त्रियों से ४) विदेश का मूल्य ६)

विषय सूची।

लेखकों से निवेदन

१. ज्योति में लेख, कविता आदि भेजने वाले महानुभावों को अपने लेख सुस्पष्ट अक्षरों कागज़ के एक ओर ही ,हाशिया छोड़ कर लिख कर भेजने चाहियें।

२. लेख बहुत लम्बे न होने चाहिएँ। 'ज्योति' पत्रिका के लगभग चार पृष्ठों के लायक लेख हों तो अति उत्तम है।

३. लेखों को घटाने बढ़ाने तथा संशोधित करने का संपादक को पूर्ण अधिकार है।



ज्योति सम्बन्धी पत्र व्यवहार— अथवा—

आचार्या कन्या गुरुकुल
कोठी नं० २१, राजपुर रोड
(देहरादून)

सम्पादक ज्योति
गुरुकुल कांगड़ी
यू. पी.



विविध विषय विभूषित सुन्दर मासिक पत्रिका.

वर्ष १० | ज्येष्ठ १९८६ * जून १९२९ | संख्या २

वेदना

(१)

थाम कर मूक-गान का सार,
प्रभञ्जन को देते सन्देश।
शून्य में उलझे वे निश्वास,
बहे जाते थे देश-विदेश॥

(२)

हृदय-गत, कवि-कृति से सुकुमार,
शेष अपने आंसू दो—चार।
उसी के मृदुल-स्पर्श से व्यक्त,
कर दिये इन पलकों के द्वार॥

(३)

तोड़ कर स्मृति के अन्तिम-तार,
छेड़ कर मुग्ध-व्यथा का गान।
किया था होने को निःसार।
शून्य का भी 'सूना' अवसान॥

(४)

चढ़ा तारावलि का निर्माल्य,
—दीप की तरल-ज्योति, निर्वाण।
फूट कर भी ना-निकला, आह।
अनोखा मेरा बन्दी—प्राण॥

कुमारी पुरुषार्थ वती

आर्य संस्कृति

या

मानव जाति का सहयोग-संगीत

(गतांक से आगे)

(ले०—श्री पं० चमूपति जी एम० ए०)

राजनीतिक ध्येय



जनीतिक क्षेत्र में आर्य संस्कृति का ध्येय है प्रत्येक राष्ट्र की स्वतन्त्रता। वेद में राष्ट्र का लक्षण किया है:-

सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहि:। अथर्व १. २९. ६

राष्ट्र वह है जो प्रतिस्पर्धियों का क्षय करे, बल-युक्त और शक्ति-शाली हो।

इस से पूर्व कहा है :—

यथाहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा ॥ ५ ॥

जिस से मैं शत्रुओं के मारने वाला होऊं। मैं असपत्न अर्थात् स्पर्धा-रहित होऊं और प्रतिस्पर्धियों का क्षय करूं।

स्वयं द्वेष न करना अन्य द्वेषियों के द्वेष को दूर करने का प्रबलतम उपाय है। जभी तो लिखा है:--

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा समीक्षे॥

सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें। मैं सब को मित्र की दृष्टि से देखता हूं।

स्वयं ऐसा देखने लग जाय, तब दूसरों से भी ऐसी ही दृष्टि की आशा करे।

यूनानी ऐतिहासिक एरियन अपनी इंडिका नामी पुस्तक में एक आश्चर्यजनक तथ्य का उल्लेख करता है। जिसका सार यह है :—

भारतीय अन्य देशों पर आक्रमण नहीं करते न दूसरे देशों का आक्रमण अपने देश पर होने देते हैं।

आर्यों की इस, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की, नीति का मूर्त परिणाम हैं सन्यासी, अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय ब्राह्मण, और चक्रवर्ती, अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय राजा। ये दो पदवियां आर्यों की सार्वभौम दृष्टि की मूर्त पराकाष्ठा हैं। वेद में राजा के निर्वाचन के सिद्धान्त का प्रतिपादन पाश्चत्य विद्वान भी स्वीकार करते हैं। राजा साधारण मनुष्य ही है। कोई दैव शक्ति नहीं,—इस बात का प्रमाण तो स्वयं राजा शब्द है जो राजा की सभा में जाने वाले प्रत्येक ग्राम के प्रतिनिधि का वैसा ही वाचक है, जैसा इन प्रतिनिधियों में मुख्य, समिति या सभा के सभापति का जिसे आधुनिक भाषा में राजा कहते हैं। ग्रामवासी अपने में से मुखिया चुनते हैं। वे

राजानो राजकृतः (अथर्व)

राजा बनाने वाले (वास्तविक) राजा हैं

ये चुने हुए राजा फिर देश या राष्ट्र के

राजनो राजकृतः

हैं। इन्ही परिभाषाओं को और विस्तृत रूप देदें तो प्रत्येक राष्ट्र के प्रतिनिधि चक्रवर्ती की सभा के

राजनो राजकृतः

हो जायंगे और चक्रवर्ती इन में का एक

जनाना मुत राज्ञामुत्तमं मानवानाम् (अथर्व)

हो जायगा।

आर्य राष्ट्र में उत्तम स्थान ब्राह्मणों का है। वे आत्मिक और मानसिक शक्तियों से सम्पन्न; स्वेच्छा से निर्धन रहने वाले, तपोधन महानुभाव हैं। क्षत्रिय शस्त्रधारी प्रबन्धक हैं। वे नियम और व्यवस्था के प्रतिनिधि हैं। वैश्य देश की संचय-शक्ति हैं। वे कलाकौशल तथा आयात-निर्यात से देश को समृद्ध करते हैं। शूद्र असमर्थ लोग हैं, जो सिखाने पर भी नहीं सीख सकते। वेद के शब्दों में ये चारों वर्ण सहस्र-शीर्ष पुरुष अर्थात् मानव समाज रूपी ब्रह्म—बृहत् शरीर—के अंग हैं। जैसे किसी अन्य सजीव संस्थान के प्रत्येक अवयव का निर्भर सारे संस्थान की सुव्यवस्थित स्थिरता पर होता है, वैसी ही स्थिति इस मानव समाज रूपी शरीर की भी है। वर्ण-व्यवस्था में जहां प्रत्येक जन-समुदाय की भौतिक रक्षा का उचित प्रबन्ध कर दिया है, यहां तक कि मानसिक असमर्थता का अवतार शूद्र भी खाने और कपड़े का अधिकारी माना गया है; वहां मनुष्यों की आत्मिक, मानसिक, शारीरिक—दान, व्यवस्था और संग्रह की—शक्तियों को विकसित तथा सफल होने का पूरा अवसर दिया है।

आर्यराष्ट्र में स्त्री का स्थान "पुरंधिः" अर्थात् देश की धारयित्री शक्ति का है। वह "देवी सूनृता" विद्या-संपन्न मधुर-भाषिणी देवी है। वह यज्ञ की अधिष्ठात्री है। "इन्द्राण्या उष्णीषः" अर्थात् राजनीति की शिरोमणि है। वह समिति अर्थात् राजसभा में जाने की अधिकारिणी है।

वेद ने युवा को सभेय अर्थात् उचित योग्यताओं के साथ सभा में जाने वाला कहा है। निर्वाच्य की योग्यता यह है तो निर्वाचक की योग्यता इस से अधिक क्या होगी। एडल्ट सफ्फ़रेज अर्थात् युवा-निर्वाचन का सिद्धान्त वेद के इस मन्त्र से स्पष्ट ध्वनित होता है:—

युवा सभेयोऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम्। (यजु)

इस विषय पर अधिक विस्तार के लिये लेखक का आंगल भाषा का Vedic Principles of the Constitution of a State शीर्षक निबन्ध में पढ़ना उपयोगी होगा।

सार्वभौम भाषा

आर्य संस्कृति के मूल सिद्धान्तों का दिग्दर्शन मात्र मैंने ऊपर के सन्दर्भों में कर दिया है। संस्कृति का मूर्त; अनुभूय रूप किसी जाति की कलाओं को माना जाता है। कुछ समयाभाव से और कुछ अपनी अज्ञता के कारण मैं आर्यों के गीत, स्थपत्य, काव्य, साहित्यादि की ओर इस निबन्ध में ऊपर ऊपर से निर्देश भी नहीं कर सकता। मनुष्य की मुख्य कला भाषा है। इस समय केवल इसी की ओर आप का ध्यान खींचूंगा। आर्य संस्कृति के सार्वभौम प्रचार के लिये संस्कृत को सार्वभौम बनाने का प्रयत्न अत्यन्त लाभकारी होगा।

इस बात से मुझे इनकार नहीं कि संसार की सभ्य और सुशिक्षित जातियों की भाषाएं अपने अपने ढंग से समुन्नत हो चुकी हैं और उन से तत्तद् भाषा-भाषी जाति का मानसिक और आत्मिक कल्याण हो रहा है। परन्तु, तोभी एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा की आवश्यकता का अनुभव विचारक लोग बहुत समय से कर रहे हैं। इतना ही नहीं। ऐसी भाषाओं के निर्माण के सफल या असफल प्रयत्न भी हुए हैं। यूरोप में इस समय तक तीन ऐसी भाषाओं को जन्म दिया गया है। सन १८८० ई० में वोलापुक नाम की भाषा बनाई गई थी। वह आंगल

भाषा ही का विकृत रूप थी। १८०७ में एस्पिरैंटो का निर्माण हुआ। इस में प्रोफ़ेसर, टेलीग्राफ़ी आदि प्रसिद्ध शब्दों को छोड़ कर, जिन्हें किसी धातु से न मिलाया गया था, दो से तीन सहस्र तक धातु थे। १८०२ में इडियम न्यूट्रल की रचना हुई थी। यह भाषा इस्पिरैंटो से अधिक लोक-प्रिय सिद्ध हुई। इस भाषा का आधार अंग्रेज़ी, फ्रैञ्च, जर्मन, स्पेनिश, इटालियन, रूसी और लातीनी भाषाओं के समान शब्दों को बनाया गया। परन्तु सफलता इन में से किसी भाषा को भी नहीं हुई। कारण कि ये भाषाएं कृत्रिम हैं और वर्तमान भाषाओं के विकार का परिणाम हैं। भाषा सहसा बनाई नहीं जा सकती, वह विकसित होती है। तभी उस में परिष्कृति तथा स्थूल एवं सूक्ष्म भावों के प्रकट करने की क्षमता आती है। मैं इन भाषाओं का स्थान संस्कृत को देने का इच्छुक हूं और यह इस लिये नहीं कि संस्कृत मेरे पूर्वजों की भाषा है किन्तु इस लिये कि मेरी सम्मति में सार्वभौम भाषा का प्रयोजन संस्कृत द्वारा उत्तमतया सिद्ध हो सकता है। भारतवर्ष कहने को तो एक देश अथवा एक राष्ट्र है, परन्तु इस की स्थिति एक दीर्घ काल तक एक महाद्वीप (continent) या राष्ट्र-समूह की रही है। इन प्रान्तों का सीमा परिमाण संसार के कई देशों से बड़ा है। सारा भारतवर्ष क्षेत्रफल की दृष्टि से पृथवी का $\frac{1}{?}$ है। इस की जन-संख्या पृथिवी की जन-संख्या का $\frac{1}{?}$ भाग है। इन सारी बातों के होते इस महादेश की भिन्न भिन्न परिस्थियों को संस्कृति के ऐक्य में विलीन कर देने वाले साधनों में से एक प्रधान साधन संस्कृत भाषा है। कन्याकुमारी से लेकर अलमोड़ा तक और हिन्दूकुश से लेकर इरावती या उस से भी दूर तक इस महादेश के मानसिक नेताओं की भाषा कितनी शताब्दियों से संस्कृत चली आई है। भिन्न भिन्न भाषा बोलने वाले जन-समुदायों की एक समान भाषा संस्कृत है। यूरोप के विद्वान् जो परीक्षण इस समय यूरोप में करना चाहते हैं और उस में वे लगातार असफल हो रहे हैं—वह परिक्षण भारतवर्ष में सफलता-पूर्वक किया जा चुका है। मैसोर के मुसलमान दीवान महाशय इस्माइल ने पिछले ही दिनों प्रस्ताव किया था कि भारत वर्ष की समान अन्तः-प्रान्तीय भाषा संस्कृत को बनाना चाहिये।

हो सकता है कि भारत से बाहर के लोगों को संस्कृत पराई भाषा प्रतीत हो। इस भ्रान्ति का निराकरण विलयम जोन्स, जो रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल के प्रथम प्रधान थे—के निम्न-लिखत उद्धारण से हो जायगा:—

संस्कृत भाषा पुरानी कितनी भी हो, उस की बनावट विचित्र है। वह यूनानी से अधिक पूर्ण है, लातीनी से अधिक शब्द--प्रचुर (copious) है, और इन दोनों से अधिक सुन्दरतया परिमार्जित है और फिर इन दोनों के साथ धातुओं और वैयाकरण रूपों में उस को ऐसी घनिष्ठता है कि अकस्मात् ऐसा सादृश्य हो जाना असंभव है।.........इतना प्रबल नहीं परन्तु इसी प्रकार का हेतु यह कल्पना करने के लिये भी है कि गोथिक और कैल्टिक भाषाएं, यद्यपि इन में किसी और भाषा-व्यवहार की भी पुट है, संस्कृत की सहजात हैं। पुरानी फ़ारसी को भी इसी वंश में सम्मलित किया जा सकता है।

(Second Anniversary Discourse),
Asiatic Researches Vol. 1.

यूरोप के मध्य में एक लिथ्वानियन जाति रहती है। इस की भाषा के संस्कृत से

सादृश्य का सन् १८९५ ई० में डा० लाथम ने टेसिटस की पुस्तक जर्मेनिया के स्वसंपादित संस्करण में उल्लेख किया था।

अब यदि यूनानी, लातीनी, गौथिक और कैल्टिक भाषाओं का उद्भव-संबन्ध संस्कृत से है तो इस का अर्थ यह है कि यूरोप की लगभग सब भाषाएँ किसी न किसी रूप में संस्कृत की सहोदरा हैं। यही बात अमेरिका के विषय में कही जायगी, क्योंकि वहाँ की प्रधान भाषा अंग्रेजी है। और एशिया का तो कहना ही क्या है ? यहां की सभ्यता का केन्द्र भारत है ही। स्याम से लेकर चीन, जापान तथा मलाया द्वीप-समूह तक सभी देश भारत की संस्कृति के ऋणी हैं। और तो और न्यूजीलैंड की मेअरी नामक जाति की भाषा में संस्कृत के शब्द ख़ूब प्रचुरता से पाये गए हैं।

यह सिद्धान्त सर्वसम्मत है कि सार्वभौम वही भाषा हो सकती है जो धातुज हो। और धातुज भाषाओं में से, जैसे ऊपर दिखाया जा चुका है, संस्कृत ही सब से अधिक परिमार्जित और शब्द-प्रचुर भाषा है। इस भाषा में यह योग्यता भी है कि किसी भाषा का कोई शब्द इसके सम्मुख रखदो, यह उस को विशुद्ध संस्कृत रूप देकर उसे धातुज बना देगी। उपसर्ग और निपात किसी भी भाव में असंख्य भाव-भंगियां पैदा कर देने को सदा उपस्थित हैं। यूरोपीय सार्वभौम भाषाओं में mal और beni द्वारा जो कार्य करने का यत्न किया गया है, वह यहां सु, कु, सम्, दुः इत्यादि से अधिक सुगमता से हो जाता है।

संस्कृत में एक सुभीता यह भी है कि इसमें किसी समय विज्ञान और दर्शन का उत्कर्ष रहा है। जर्मन दर्शन, जो यूरोप के आधुनिक दर्शन का आधार है, सारे का सारा भारतीय दर्शन से लिया गया है। प्राचीन पाश्चात्य दर्शन यूनानियों का है। उस का भारत के दर्शन से संबन्ध भी घनिष्ठ है और उसकी भाषा-यूनानी—भी संस्कृत की सहजात है। अतः किसी भी विषय की परिभाषाएं संस्कृत के विस्तृत कोष में प्रथम तो पहिले ही से विद्यमान हैं। जो विद्यमान नहीं, वह सहज में गढ़ी जा सकती हैं।

संस्कृत में एक दोष भी है। वह है, इसके व्याकरण की जटिलता। परन्तु इस जटिलता का परिहार मध्यकालीन लेखकों ने कर ही लिया था। संस्कृत भाषा का पूर्ण ज्ञान तो कष्ट-साध्य है ही, परन्तु साहित्यिक कार्यों के लिये जितने परिचय की आवश्यकता है, वह अत्यन्त शीघ्र उपलब्ध हो जाता है। दस लकारों में कई लकार ऐसे हैं जो एक दूसरे का स्थान ले लेते हैं, उन में कमी की जा सकती है, यथा भूत के लिये एक और भविष्य के लिये एक लकार मान लिया जाए तो हानि नहीं। साहित्य में विधिलिंग और आशीर्लिंग एक दूसरे की जगह ले लेते हैं। कृदन्त ने क्रिया पदों को बहुत कुछ अनावश्यक कर दिया है। समास की परिपाटी विभक्ति-बाहुल्य की समस्या को हल कर देती है।

यह संस्कृत को सुगम करने के वे निर्देश हैं जो मध्य-कालीन लेखकों की लेख-परिपाटी से संगृहीत होते हैं। वेद का व्यत्यय प्राचुर्य भी कुछ हद तक सार्वभौम भाषा के निर्माताओं का मार्ग-दर्शक हो सकता है।

संभव है, क्रियात्मक व्यवहार में और भी कई प्रकार के परिवर्तन करने की आवश्यकता हो। मुझे इस निबन्ध में केवल यह दिखाना इष्ट था कि सार्वभौम भाषा-वादी जिस चीज़ को तलाश में हैं, वह बनी बनाई विद्यमान है। नया प्रयत्न

करने की अपेक्षा एक पहिले से किये गए सफल परीक्षण से लाभ उठा लेना अधिक सुगम है।

संस्कृत के सार्वभौम भाषा होने से आर्य-संस्कृति को क्या सहायता मिलेगी—इसका समझदार सज्जन स्वयं अनुमान कर सकते हैं। भाषा संस्कृति का शरीर है; उस का मूर्त रूप है। अमूर्त ब्रह्म मूर्त ब्रह्म ही में निवास करता है। एक विद्वान् ने पिछले ही दिनों लिखा था:—

मेरे विचार में संस्कृत भाषा और तत्संबन्धी संस्कृति का अनन्य महत्व इस भाषा और संस्कृति की, उस सभ्यता के संघर्ष का उपाय करने की, शक्ति है जिस में से संसार इस समय निकल रहा है..........हमारे सामने चुनाव एक ओर अंग्रेज़ी भाषा और अंग्रेजी संस्कृति और दूसरी ओर संस्कृत भाषा और (आर्य) संस्कृति में है। एक ओर तर्क, अधिकार, सामाजिक संकर, स्वार्थ तथा शक्ति की पिपासा है। दूसरी ओर कर्तव्य, विश्वास, व्यवस्था, सत्य और सुन्दरता की खोज है। इन में से किसे आगे किया जायगा, किसको पीछे? उत्तर स्पष्ट है।"

इस लेखक की सम्मति में धार्मिक सहिष्णुता, अथवा सहिष्णुतात्मक धर्म—अध्यात्मपरक दर्शन, प्रत्येक राष्ट्र को स्वतन्त्रता का अधिकार देने वाली राज-नीति, सब को सुरक्षा का समान अधिकार देकर प्रत्येक की योग्यता के अनुसार कर्तव्य का विधान करने वाला समाज-शास्त्र—ये वे सजीव अंग हैं जो आर्य संस्कृति रूपी शरीरी के शरीर के घटक अंश हैं। संस्कृत भाषा का चोला इस शरीर पर काटा गया है। इस शरीर पर यह चोला खूब सुशोभित होता है।

आर्य संस्कृति के नाम लेवा सनातन धर्मी, आर्य समाजी, सिख, बौध, जैन और पारसी ही नहीं, किन्तु मेरी दृष्टि में तो संसार भर के वे सब लोग हैं जो सोम के अच्छिन्न सुवीर्य रायस्पोष के लेने देने वाले हैं। आर्य संस्कृति स्पर्धा का नहीं, सहयोग का गीत है। आओ! इस गीत में सब अपनी अपनी आवाज़ मिलाएं और इसकी विपुल स्वर-लहरियों से संसार को आप्लावित करें।



वेदों में दार्शनिक विचार

यह संसार किसने बनाया

परमेश्वर

(ले०—श्री पं० धर्मदेव जी वेदवाचस्पति)



किस वस्तु से इस संसार की उत्पत्ति हुई ? इस कार्य जगत् का कारण क्या है ? इस का अन्वेषण करते हुए कार्य कारण भाव (causality) के सिद्धान्त के अनुसार प्राकृतिक जगत् के उपादान कारण 'सलिल' तक पहुँचे हैं। वह उपादान कारण स्वयं अनादि तथा अनन्त होना चाहिये यह भी हम दर्शा चुके हैं। परन्तु प्रत्येक कार्य वस्तु को देख कर तीन बातों का विचार करना होता है। (क) यह वस्तु किस पदार्थ से बनी है ? अर्थात् इस का 'उपादान कारण' क्या है। (ख) इस को किस ने बनाया है ? अर्थात् इस का 'कर्ता' कौन है। (ग) उस कर्ता ने उस उपादान कारण से इस वस्तु को किस तरह बनाया है ? अर्थात् बनाने का 'करण' क्या है। प्रत्येक कार्य वस्तु के साथ कर्ता, करण तथा उपादान का विचार करना अवश्य हो जाता है। इन तीनों के द्वारा ही हम किसी उत्पन्न पदार्थ की सत्ता को समझ सकते हैं। विना इस के कार्य की वस्तुस्थिति हो ही नहीं सकती। उदाहरणार्थ हम घड़ी को लेते हैं। उस घड़ी का कर्ता कोई मनुष्य होता है। उस का उपादान कारण पीतल या निकलादि धातुएं होती हैं। उस कर्त्ता के पास उस उपादान कारण से वस्तु बनाने के करण (साधन) हाथ तथा मशीन आदि हैं। प्रो० फ्लिन्ट इसी बात को निम्न शब्दों में रखते हैं— If every event must have a cause, it must have a sufficient cause. अर्थात् यदि किसी कार्य का कोई कारण होना चाहिए तो वह पर्याप्त कारण होना चाहिये। उपर्युक्त तीनों बातों को प्रोफेसर साहब 'पर्याप्त कारण' के अन्तर्गत करना चाहते हैं। हमें प्रोफेसर साहब से इस विषय में कोई मत भेद नहीं। परन्तु जब वह इस से यह परिणाम निकालते हैं कि जगत् एक कार्य है। इस का एक पर्याप्त कारण होना चाहिए। वह 'पर्याप्त कारण' परमेश्वर ही है। इस के अतिरिक्त जगत् का और कोई कारण नहीं। वह सर्वशक्तिमान् है। इस लिये पृथक् उपादान कारण की कोई आवश्यकता नहीं। वह अभाव से इस इस भाव जगत् की उत्पत्ति कर देता है। तब हमें उक्त महोदय की यह कल्पना हमें समझ में नहीं आती। प्रोफेसर साहब स्वयं परमेश्वर (Spirit) तथा प्रकृति (Matter) को विरोधी स्वभाव का मानते हैं। परमात्मा चेतन हैं, ज्ञानवान् है। परन्तु प्रकृति (Matter) जड़ है, निष्क्रिय (Inert) है। इस के अतिरिक्त वह 'नाभावाद्भावोत्पत्ति' (Nothing produces nothing) के सिद्धान्त को भी मानते हैं। इस लिये इस संसार का उपादान कारण परमात्मा को नहीं मान सकते हैं। इस कारण उपादान कारण की आवश्यकता का तिर-

१-Theism फ्लिन्टकृत पृ० १०७

स्कार कर के अभाव से जगत् की उत्पत्ति स्वीकार करली है। शून्य से यह सृष्टि बन गई—यह हमें समझ में नहीं आता। यदि उक्त प्रोफेसर महोदय की फ़िलासफ़ी का आधार केवल विश्वास (faith) नहीं प्रत्युत तर्क तथा विज्ञान हैं, तो विज्ञान सिद्ध प्रकृति (Matter) के अविनाशिता का सिद्धान्त—अर्थात् पदार्थ कभी नष्ट नहीं होता, चाहे वह ठोस, द्रव तथा गैस आदि किसी अवस्था में भी क्यों न बदल जावे—मानने में संकोच नहीं करना चाहिए। इस लिए प्रत्येक कार्य के लिए कर्ता करण तथा उपादान कारण मानने आवश्यक हैं।

ईसाईयों और मुसलमानों के अतिरिक्त कुछ ऐसे लोग हैं जो उपादान कारण तो मानते हैं, परन्तु उस के लिए किसी कर्ता की आवश्यकता स्वीकार नहीं करते। कुछ एक नवीन मीमासकों का कहना है कि प्रकृति प्रवाह से अनादि चली आ रही है। इस के लिये किसी कर्ता की आवश्यकता नहीं। जिस प्रकार रात के बाद दिन तथा दिन के बाद रात आजाती है, इसी प्रकार यह सृष्टि अनादि काल से चली आ रही है। कर्ता की आवश्यकता वहां होती है जहां उत्पत्ति और प्रलय हो। क्योंकि इस सृष्टि की उत्पत्ति तथा प्रलय नहीं होते अतएव इस का कर्ता भी कोई नहीं। परन्तु नवीन-मीमासकों की यह स्थापना विचित्र प्रतीत होती है। यह तो माना जा सकता है कि इस सृष्टि का मूल कारण अनादि तथा अनन्त है। परन्त यह सृष्टि अनादि काल से ऐसी चली चली आई है यह मानने को कोई तैयार नहीं हो सकता। नित्य प्रतिदिन हम पदार्थों में परिवर्तन देखते हैं। कोई पदार्थ बनता है और कोई बिगड़ता है। विज्ञान के परीक्षणों से हम यह भी जान चुके हैं कि पृथिवी आदि ग्रहों की उत्पत्ति सूर्य से हुई हैं। इसी प्रकार अन्य वस्तुओं की उत्पत्ति हमें स्वीकार करनी पड़ती है। इस लिये इस संसार को अनादि नहीं कहा जा सकता है। अतएव उस की उत्पत्ति तथा विनाश के लिए किसी कर्ता की आवश्यकता है।

अन्य कतिपय भूतवादी लोग (Materialists) सृष्टि की उत्पत्ति माने बिना नहीं रह सकते। परन्तु वे उस उत्पत्ति के लिए किसी पृथक् कर्ता की आवश्यकता नहीं समझते। उनका कहना है कि स्वयं अणु परस्पर मिल जाते हैं। उनके मिल जाने से सृष्टि बन गई। क्योंकि पदार्थ में शक्ति है, इस लिए अणुओं को मिलाने के लिए अतिरिक्त व्यक्ति की आवश्यकता नहीं। यदि भूतवादियों की यह कल्पना स्वीकार कर ली जाय तो अणुओं में इच्छा शक्ति (Will) माननी पड़ेगी, जो कि विज्ञान के प्रतिकूल है। पदार्थ (Matter) का विशेषगुण जड़ता (Inertia) है। यद्यपि पदार्थ में शक्ति है तथापि वह शक्ति स्वयं अभिव्यक्त नहीं हो सकती। पदार्थ में शक्ति को अभिव्यक्त करने के लिए किसी चेतन कर्ता की आवश्यकता बनी ही रहती है।

अन्ततः, हमें किसी पदार्थ के लिए, कर्ता, करण तथा तथा उपादान की आवश्यकता स्वीकार करनी ही पड़ती है। अतएव इस कार्य जगत् के उपादान कारण 'सलिल' के अतिरिक्त एक चेतन कर्ता भी होना चाहिए जो उस उपादान कारण 'सलिल' में से इस जगत् को अभिव्यक्त करें, इस संसार को उत्पन्न करे।

प्रो० मैक्समूलर का कथन है कि प्राचीन आर्य लोग भूतवादियों की तरह सृष्टि को अनादि तथा स्वयं विकसित मानते थे। वह लिखते हैं कि [१]

१-देखो-Natural Religion. पृ० २४५.

"ऋग्वेद की ऋचाओं में सृष्ट्युत्पत्ति विषयक दो विचार साथ २ काम करते हुए दिखाई देते हैं। कुछ मन्त्रों में सृष्टि को स्वयं-विकसित तथा अनुत्पन्न कहा गया है और कतिपय स्थलों में सृष्टि का उत्पादक कर्ता माना गया है।" इसके अतिरिक्त डाक्टर वेनी माधव बरुआ, डी० लिट नासदीय सूक्त में सृष्ट्युत्पत्ति का भूतवादी (Materialistic) विचार देखते हैं। वह लिखते हैं—[2]

"परमेष्ठी ऋषि ने पदार्थ और प्रेरक शक्ति में कोई भेद नहीं पाया। + + + + + + 'सलिल' ने अपनी गुह्यशक्तियों द्वारा ही अपने को भिन्न २ वस्तुओं के रूप में अभिव्यक्त कर दिया। इस गुह्य शक्ति का नाम 'काम' है।

उक्त दो लेखकों के आधार पर वेद में भूतवाद (Materalism) कहा जा सकता है। परन्तु हमारी सम्मति में वैदिक ऋचाओं में सृष्टि का उत्पादक कर्त्ता माना गया है। सृष्टि का विकास स्वयं नहीं हुआ। यद्यपि प्रकृति को अनुत्पन्न कहा गया है, जैसा कि हम प्रथम अध्याय में दिखा आये हैं, तथापि उस उपादान कारण में से इस संसार को अभिव्यक्त करने वाला एक चेतन कर्ता भी माना गया है। इस लिये पहिले हम अपने विचार को पुष्ट करेंगे, तदनन्तर उपर्युक्त लेखकों के विचारों की अलोचना करेंगे।

अथर्व वेद के मन्यु सूक्त (११ काण्ड ८ सूक्त) में विवाह रूप में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। मंत्र इस प्रकार है

"यन्मन्यु र्जाया मावहत् संकल्पस्य गृहादधि। क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठ बरोऽभवत्" ११।८।१॥

"अर्थात् जब मन्यु संकल्प के घर से जाया को लाया उस समय कौन वर पक्ष के थे और कौन वधू पक्ष के थे। उस समय ज्येष्ट वर कौन था। इस का अगले मंत्र में उत्तर दिया है कि—

"तपश्चैवास्तां कर्म चान्त महत्यर्णवे। त आसं जन्यास्ते वरा ब्रह्म ज्येष्ठवरोऽभवत्" ॥ अथर्व० ११।८।२॥

"अर्थः—उस सलिलावस्था में तप और कर्म वर और वधू पक्ष के बराती थे। उस समय ब्रह्म ज्येष्ठ वर था॥

'इस प्रकार संसार की उत्पत्ति के दो कारण बताये हैं। (१) मन्यु (मन्यते ज्ञायते सर्वं जगत् येन स परमात्मा) या ब्रह्म। (२) जाया (जायते अनया सर्वं जगत् इति माया, प्रकृति)। इस के अतिरिक्त "मन्यु" शब्द से उस कर्ता को चेतन कहा गया है। अगले मंत्र में 'करण' का वर्णन किया गया है। इसे आगे चल कर स्पष्टकरेंगे।

एवमेव अथर्व० ४।१।१। भी सृष्टि के विकास में ब्रह्म को कारण बतलाता है। वहां लिखा है:—

"ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद् विसीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विव" ॥

अर्थ—सृष्टि के आदि में महान सर्वोत्पादक सर्वश्रेष्ठ ज्योतिः स्वरूप परमात्मा मर्यादा पूर्वक प्रकाशमान लोकों को व्याप्त करता है। वह अन्तरिक्षस्थ सब लोकों को धारण करने वाला परमात्मा सत् और असत् की योनि को अभिव्यक्त करता है।

इस मंत्र में हम पाते हैं कि ब्रह्म सत् तथा असत् की योनि 'सलिल' को अभिव्यक्त करता है। अर्थात् उपादान कारण सलिल है। और

२–देखो-Pre-Buddhistic Indian Philosophy पृ० १२.

कर्ता ब्रह्म है । यही बात अथर्व० १० । ७ । २६ । मंत्र में हम पाते हैं—

"यत्र, स्कम्भः प्रजनयन् पुराणं व्यवर्तयत्"

अर्थात् जहां स्कम्भ (सर्वाधार परमेश्वर) ने इस संसार को उत्पन्न करते हुए प्रकृति का विवर्त किया-इत्यादि । इस मंत्र में उपादान कारण के अतिरिक्त एक कर्ता मना गया है, जो इस जगत् को बनाता है ।

"ब्रह्मणा भूमि र्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता ।
ब्रह्मेद मूर्ध्वं तिर्यञ्चान्तरिक्षं व्यचो हितम्" ।। अथर्व० ।
१० । २ । २५ ॥

"य इमे द्यावा पृथिवी जजान ॥ अथर्व० । १३ । २ । १ ॥
"य इदं विश्वं भुवनं जजान' ॥ अथर्व० । १३ । ३ । १५॥
"याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥
यजु० ४० । ८

योनः पिता जनिता यो विधाता ॥ ऋक् १० । ८२ । ३ ॥

इन मंत्रों में स्पष्ट शब्दों में परमात्मा को इस जगत् का कर्त्ता, उत्पादक कहा गया है । ये सब मंत्र Cosmological arguement के आधार पर परमेश्वर की सत्ता सिद्ध कर रहे हैं । जहां परमात्मा को जगत् का कर्त्ता बताया है, वहां साथ ही निम्न बातों से यह भी प्रतीत होता है कि परमात्मा अपने में से या अभाव से जगत् की उत्पत्ति नहीं करता, प्रत्युत इसके अतिरिक्त एक अन्य वस्तु है, जो इस संसार का उपादान कारण है । उसी उपादान कारण से परमात्मा जगत् को अभिव्यक्त करता है ।

(i) उपादान कारण 'सलिल' या 'आपः' माना गया है ।

(ii) मन्युसूक्त में जगदुत्पत्ति के दो कारण— मन्यु और जाया बताये गए हैं । जाया द्वारा मन्यु (ब्रह्म) ने यह सृष्टि की है ।

(iii) अथर्व ४ । १ । १ । में ब्रह्म को सत् और असत् की योनिः (सलिल) का अभिव्यक्त करने वाला माना गया है ।

(iiii) स्कम्भ सूक्त में पुराण (प्रकृति) को उपादान कारण बताया है और स्कम्भ को निमित्त कारण वा कर्त्ता कहा है ।

ऋग्वेदीय हिरण्यगर्भ सूक्त के मंत्र (१० । १२१ । ६) में आये 'आपः जजान' शब्द से किसी को यह सन्देह हो सकता है कि परमात्मा 'आपः' [प्रकृति] का भी उत्पन्न करने वाला है । परन्तु वास्तव में 'जनी प्रादुर्भावे' धात्वर्थ के अनुसार प्रकृति का प्रादुर्भाव मानना चाहिए । परमात्मा प्रकृति को अभिव्यक्त करता है ।

परमात्मा जगत् का कर्त्ता है इस बात पर कुछ और विचार करना चाहिए । कृति व्यापार विशिष्ट व्यक्ति का नाम कर्त्ता है । कृति से पूर्व इच्छा और ज्ञान की आवश्यकता है । बिना इच्छा तथा ज्ञान के कार्य में प्रवृत्ति हो ही नहीं सकती । जब तक सारथी को रथ चलाने की इच्छा नहीं होती या उसे रथ चलाने का ज्ञान नहीं, तब तक उस में रथ चालन कर्तृत्व नहीं आ सकता । इच्छा और ज्ञान अचेतन वस्तु में उत्पन्न नहीं हो सकते । कर्ता सदा चेतनपदार्थ ही हो सकता है । इस लिए यदि परमात्मा इस संसार का कर्ता है तो वह चेतन ही होना चाहिए । वेद में परमात्मा को चेतन माना गया है, इस से तो कोई भी इन्कार नहीं कर सकता । परमात्मा के वर्णन का ढंग ही इस प्रकार का है कि जिस से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि किसी चेतन वस्तु का वर्णन किया जा रहा है । स्थान २ पर उसे सर्वज्ञ, ज्ञानवान् आदि विशेषणों से पुकारना भी यही बतलाता है कि परमात्मा चेतन वस्तु है । अथर्व० । ४ ।

२३।१।मंत्र में आये अग्नि के विशेषण 'प्रचेतसः'[1] शब्द से परमात्मा की चेतनता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। इसी प्रकार निम्न मंत्रों में भी परमात्मा को चेतन कहा गया है—।

"यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्। अथर्व०।२०।३४।१।

"स पर्यगात्......मनीषी......॥ यजु०।४०।८॥

इन मंत्रों में 'मनस्वान्' और 'मनीषी' शब्दों का अर्थ मननशक्ति वाला है। इस लिए परमात्मा जगत् का कर्ता कहा जा सकता है। क्योंकि उस में चेतनता है और उसे जगत् को उत्पादक भी कहा गया है।

१. अग्ने मन्वे प्रथमस्य प्रचेतसः पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिन्ध। विशो विशो प्रविशिवांसमीमहे स नो मुञ्चन्त्वंहतः॥ अथर्व ४।२३।१॥

इसी प्रकार ऋक् १०।१९०।१। मंत्र 'ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।'..... अर्थात् तप [ज्ञान] के प्रभाव से ऋत [प्राकृतिक नियम] तथा सत्य [शाश्वत सत्य नियम] उत्पन्न हुए। इस मन्त्र में तप द्वारा प्राकृतिक नियमों की उत्पत्ति तथा अगले मंत्र में संसार की उत्पत्ति का वर्णन कर के इसी सूक्त के तीसरे मंत्र में इस सृष्ट्युत्पत्ति का कर्ता परमात्मा कहा है—

"अहो रात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषितो वशी ॥ २॥
"सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवींचान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ३ ॥,,

अर्थः—इस जड़ चेतन को वश में करने वाले परमात्मा ने दिन रात को बनाया ॥ २॥ इस संसार को धारण करने वाले उसी परमात्मा ने पूर्ववत् सूर्य और चन्द्रमा को बनाया। उस ने पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा प्रकाशमान द्युलोक को बनाया है।

एवमेव बहुत से मंत्र इस विषय में पेश किये जा सकते हैं, जिन में इस संसार का एक कर्ता मना गया है। उदाहरणार्थ थोड़े से मंत्र यहां उपस्थित कर देना पर्याप्त होगा।

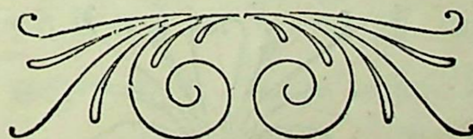
"किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥ ऋ।१०।८१।२॥

"विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्। संबाहुभ्यां धमति संपतत्रैः द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥ ऋ०।१०।८१।३॥

"य श्चापश्चन्द्रा वृहती जजान कस्मै..........
॥ ऋ०।१०।१२१।९॥

"विष्णो र्नु कं प्रवोचं वीर्याणि यः पार्थिवानि विममे रजांसि"। अथर्व०।७।२६।१॥

"अभित्यं देवं सवितार मोण्योः कविक्रतुम्। अथर्व० ७।१४।९॥



कुछ भी नहीं

(कविराज श्री पं० धर्मदत्त जी विद्यालंकार)

यह तमाशा एक धोखे के सिवा कुछ भी नहीं
इन सुनहरे बादलों के बीच में कुछ भी नहीं ॥

बुलबुलों से जिस चमन के गीत सुनता था सदा
जब उसे देखा वो कांटों के सिवा कुछ भी नहीं ॥

हम तो समझे थे यहां संगीत होंगे रात दिन
पर यहां देखा कि रोने के सिवा कुछ भी नहीं ॥

जिस की सुर पर ताल देकर गा रहे हैं आप सब
खोल कर देखो ज़रा उस ढोल में कुछ भी नहीं ॥

क्या अजब जादू है दिन भर तो कमाया था बहुत
शाम को देखा तो मेरे हाथ में कुछ भी नहीं ॥

राजमहलों में अभी मैं घूमता था शौक से
पर सवेरे जो उठा, देखा वहां कुछ भी नहीं ॥

पूछा लुकमा से किसी ने तूने क्या देखा यहां
दस्त-ए हसरत मल के बोले है यहां कुछ भी नहीं ॥



चर्खे की चतुःसूत्री

(लेखक—श्री पं० देवशर्मा जी विद्यालंकार. "अभय")





मैं ने अपने शिष्य को कहा कि आओ आज मैं तुम्हें 'चर्खे की चतुःसूत्री' सुनाऊँगा—चर्खे के काते हुए चार सूत्र सुनाऊंगा, सावधान होकर सुनो।

इस पर शिष्य पूरी बात न समझ पड़ने के कारण कुछ घबराए हुए और कुछ आश्चर्यान्वित मुख से मेरी तरफ़ देखने लगा। मैंने कहा कि इसमें आश्चर्य की कुछ बात नहीं। सूत्र तो सभी किसी न किसी चर्खे से ही निकाले जाते हैं यह बात स्पष्ट ही है। लो, पहिले मैं तुम्हें इस ज्ञान का ही प्रारम्भिक इतिहास सुनाता हूं।

तुम जानते हो कि मैं गुरुकुल कांगड़ी का पढ़ा हुआ हूं जहां कि शुरू से ही अष्टाध्यायी के क्लिष्ट सूत्र कंठाग्र करने पड़ते हैं। सो इन नाक में दम करने वाले पाणनीय सूत्रों को तो मैं कैसे भूल सकता हूं। कुछ बड़े होकर फिर न्याय के, योग के और वेदान्त आदि दर्शनों के सूत्रों से भी काफ़ी परिचय प्राप्त किया था। ये सब सूत्र बड़े काम के थे। यह तो मैं देखता था कि पाणिनी के सूत्रों से नानाप्रकार के अजीब अजीब 'लोलुवः पोपुवः अचीकमत्, अजीगणत्' आदि अनगिनत रूप बन जाते हैं। इसी तरह यह भी समझता था कि गौतम और पतंजली के सूत्रों से, ब्रह्मसूत्रों से, भी कुछ बड़ी भारी चीज़ बनती होगी (यद्यपि कुछ स्पष्ट बनता हुआ नज़र तो आता नहीं था)। शायद 'निश्रेयस' 'समाधि' या 'ब्रह्मैकत्व' आदि इन से बनता होगा, जो कुछ भी हो इस में मुझे तनिक भी संदेह न था कि इन दर्शन के सूत्रों से भी कोई बड़ी महत्व की चीज़ बनती होगी। पर तब मुझे इसकी ख़बर बिल्कुल न थी कि दिन रात हम जो कपड़े पहिने रहते हैं वे भी सूत्रों के बने हुए हैं। मैं समझता था कि सूत्र तो किताबों में होते है। कपड़ों में सूत्र का क्या काम है। पर सन् १६२० में 'चर्खा, चर्खा' बहुत सुना। धीरे धीरे हम भी गांधी बाबा के चक्कर में आगये। और एक दिन चलते चर्खे के दर्शन भी होगये। तब यह पता लगा कि ये कपड़े कहीं से (आकाश से या पृथ्वी से) बने बनाये नहीं बरसते या उपजते हैं, किन्तु बड़ी कुशलता से पहिले कपास से बहुतसा सूत्र निकाला जाता है और फिर उस सूत्र से बड़े यत्न द्वारा कपड़ा बुना जाता है। यहां तक ही नहीं, किन्तु हम गांधी बाबा के चक्कर पर ऐसे चढ़े कि चित्त ने चैन न ली जब तक कि चर्खा चलाना सीख न लिया। यह चर्खा चलाना मैंने चार दिन में सीखा। बात लंबी न कर मैं संक्षेप में सुनाता हूं। यह चर्खे से सूत्र का सम्बन्ध देख कर सब से पहिले जो मेरे मन में शंका उत्पन्न हुई—और शायद इसी ही शंका के निवारण के लिए तुम भी आकुल दीख

रहे हो—वह यह हुई कि "तो अभी तक मेरे देखे हुए पाणिनी के सूत्र, योग के सूत्र, वेदान्त आदि के सूत्र, सूत्रकारों ने (ऋषिओंने) किस चर्खे से निकाले थे ?" यह शंका कैसी ठीक है। पर अभी मैं तुम्हें इसका उत्तर न दूंगा। यह बड़ा रहस्य का प्रश्न है। इसका उत्तर मैं तुम्हें कभी एकान्त में बतलाउंगा। अभी यहां इस तरह बतला देना पर्य्याप्त है कि जब मैं चर्खा चलाता हूं और उसके चलाने से उसमें एक ताल युक्त (Rhythmic) क्रमबद्ध गति होने लगती है तो मेरे शरीर में भी एक ऐसी ही ताल सुर से नियमित गति होने लगती है। बल्कि ध्यान से सुनता हूं तो शरीर में एक सुरीला गान सुनायी देता है, मानो शरीर के अन्दर भी एक चर्खा चल रहा हो और उसके चलने से ही वह सुरीली ध्वनि निकल रही हो। मतलब यह कि बाहर का चर्खा चलाना आरम्भ करने पर मुझे यह भान हुआ है कि अन्दर भी एक चर्खा चल रहा है। शायद कबीर साहिब के निम्न वचन को मैं अपनी साक्षी में पेश कर सकता हूं:—

'आठ कमल दस चरखा डोले'

ख़ैर, बात यह हुई की उन प्रारम्भिक चार दिनों में बाहर के चर्खे ने जहां कपास (रूई) से सूत्र निकाला वहां उसी के अनुसार अन्दर के चर्खे ने भी चार दिन तक एक एक सूत्र निकाला। बस अन्दर के चर्खे से चार दिन तक निकाला हुवा यह सूत्र ही मेरी 'चर्खे की चतुः-सूत्री' है। यह चतुःसूत्री ऐसी वैसी नहीं है। वेदान्त की प्रसिद्ध चतुःसूत्री से किसी तरह कम न होगी। शायद इन्हीं सूत्रों का यह प्रताप या प्रभाव है कि मैंने लोगों को दावे के साथ चार घंटे में या चार दिन में चर्खा कातना सिखा दिया है—कई भाइयों को, जिन्हें बड़ा यत्न करने पर भी चर्खा चलाना न आया था या जो समझते थे कि उनके लिए कताई सीख लेना असंभव है, उन्हें भी सिखा दिया है। इन सूत्रों की स्तुति की विशेष आवश्यकता नहीं है। जो अधिकारी होंगे वे स्वयमेव इन का सामर्थ्य समझ लेंगे।

वैसे ये सूत्र चतुरन्हिक हैं अर्थात् चार दिन में पढ़ाये जाने चाहियें। किन्तु आज कल दुनियां को इतना समय देकर धैर्य से पढ़ने समझने की फ़ुरसत कहां है। प्रतिक्षण इतना साहित्य पैदा हो रहा है कि उसे पढ़ना तो दूर रहा उसे देख कर ही मुझे घबराहट होती है कि इसे पढ़ेगा कौन ? इस लिए मैं अपने इस चतुरन्हिक को चार दिन तक चलाने की मूर्खता न करके तुम्हें इसे एक सांस में ही सुना दूंगा। हां, यह अवश्य है कि मैं इन सूत्रों का उच्चारण मात्र नहीं कर दूंगा किन्तु इनको रचकर दिखाऊंगा, अर्थात निकला हुआ सूत्र केवल दिखला नहीं दूंगा किन्तु कातने की क्रिया सहित इन को निकालकर दिखलाउंगा, अच्छा सुनोः—

'अथचर्खा चतुःसूत्री प्रारभ्यते

(१) प्रथम आन्हिक

—०—

पहिले दिन जब चर्खे के सामने बैठा और अभी सिखाने वाले के ही हाथ की पूनिओं को सूत्र में परिणत होते देखा तो इतने से ही मेरा अंदर का चर्खा चल निकला और उस में इस प्रकार कातना प्रारंभ हो गया।

रूई से सूत बनता देख कर सब से पहिले यह हुआ कि सांख्य का सत्कार्यवाद का सिद्धान्त मेरे सामने साक्षात् आ खड़ा हुआ। कारण में कार्य पहिले से ही रखा हुआ है यह मैने प्रत्यक्ष देखा। रुई में सूत पहिले से ही विद्यमान हैं, सूत बनाने के लिए रुई में कुछ बाहर से मिलाना जुलाना नहीं होता—केवल रुई के सूक्ष्मांशों का स्थान-परिवर्तन मात्र हो जाता है और कोई नयी चीज़ नहीं आती, इस दृष्टि से बना बनाया सूत पूनिओं में पहले ही से विद्यमान है। रूई के सूक्ष्मांशों को एक नयी तरतीब में खड़ा कर देना ही सूत को बना देना (व्यक्त कर देना) है, जैसे कि एक हुल्लड़बाजों की भीड़ को कोई महापुरुष आज्ञा देकर एक लंबी पंक्ति में संगठित और शान्त खड़ा कर दे। इस में यदि कुछ करामात है तो तकुवे की और तकुवे के घुमाने की। उस पर चढ़ कर, उस की नोक के (टिप्पणीः—तकुवा के स्थान पर तकली समझ लेने से भी वही बात है) सहारे ही यह रुई एक दृढ़ दीर्घ पंक्ति में बद्ध होगई है। ऐसे ही मुझे भारत की तीस करोड़ जनसंख्या भी एक बिना कती पूनिओं का ढेर दीखने लगी। मन में तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई कि इन्हें भी कोई राष्ट्र भावना के तकुवे पर चढ़ा कर नियंत्रण (disci-pline) का ऐंठन दे दे—भारत में अस्त-व्यस्त पड़े हुए इस जन समुदाय को एक व्यवस्थित भारतीय राष्ट्र के रूप में संगठित खड़ा कर दे। इस के लिए बाहर की किसी चीज़ की हमें ज़रूरत नहीं है। इसी समुदाय में एक बड़ा शक्तिशाली सुव्यवस्थित राष्ट्र छिपा पड़ा है। केवल इसे व्यक्त करने की ज़रूरत है।— राष्ट्रीयता की भावना के सहारे ये एक पंक्ति में बंध जांय और नियँत्रण द्वारा (Disciplined) ऐंठे हुए, दृढ़ होजांय, बस। ओः, ७½ करोड़ ग्रामों में बसने वाले भारतवर्ष को एक भाव से बांध कर खड़ा करदो—एक सूत्र बनादो। बारडोली के ताल्लुके में यह कताई कुछ चली और हमने देख लिया, ये ही हुक्का पीने वाले भारतीय गंवार क्या बन सकते हैं। बस, इधर उधर मत देखो, न कौंसिलों की तरफ़ देखो, न पार्लियामेण्ट से कुछ आशा करो, न सुधार देने वाले कमीशन की तरफ़ दृष्टि दो और न ही किसी अन्य सहायता की आशा बांधो, बस केवल इस रूई के ढेर को राष्ट्रीयता की नोक के सहारे एक करने में लग जाओ। इस लिए पहिला सूत्र यह कता किः—

ग्रामवासी भारतीयों के समुद्र में अगाध शक्ति भरी पड़ी है इसे व्यक्त करने के लिए इस समुद्र में

प्रविष्ट हो उनमें राष्ट्रीयता की भावना पैदा कर, उसके सहारे उन्हें एकताबद्ध और दृढ़ (Disciplined) करना ही एक मात्र कार्य है। इसमें सफल होना ही स्वराज्य है।

(२) दूसरा आन्हिक

दूसरे दिन यद्यपि सूत्र क्षण क्षण में टूटता था तो भी हाथ से कुछ सूत्र जैसी चीज़ निकलने लगी थी अर्थात् कभी बड़ा मोटा और ऐंठा हुआ सूत निकलने लगा तो कभी अत्यंत बारीक, कमज़ोर, और ज़रा ज़रा देर में टूटने वाला। साथी दर्शक खूब हंसते थे। कभी सूत को 'चरख़ का रस्सा' कहते थे तो कभी ढाके की मलमल के अदृश्य सूत से उपमा देते थे। यह तो हुआ बाह्य चर्खे का वर्णन, पर मैं तो तुम्हें यह सुनाता हूं कि तब अन्दर का चर्खा किस प्रकार क्या कातने लगा:—

मैंने देखा कि मैं जब दांया हाथ ज्यादा घुमा देता था तो सूत्र अधिक ऐंठ जाता था— आख़िर इतना ऐंठ जाता था कि कातना छोड़ना पड़ता, सूत मोटा होते होते पूरी की पूरी पूनी ऐंठ कर लिपट जाती, जैसे की अत्यंत अभिमानी गर्वीले पुरुष ऐसे ऐंठे होते हैं कि किसी से कुछ नहीं सीखते, किसी की कुछ नहीं सुनते, अपने आप में स्वयं समाप्त हुवे रहते हैं। पर दूसरी तरफ़ जब मेरा सूत्र निकालने वाला बांया हाथ ज़्यादा काम कर जाता था तो बारीक और इतना कमज़ोर (बिना ऐंठा) सूत निकलता था कि झटपट टूट जाता था, जैसे कि डरपोक, खुशामदी, स्वत्वहीन पुरुषों का जीवन अतीव भंगुर होता है। मैंने देखा कि दांये और बांये हाथ की ठीक समता से ही ठीक सूत निकल सकता है— जब दोनों हाथों को वह अन्दाज़ आ जाता है कि बांये हाथ का काम सूत खींचना तथा दांये हाथ का काम उसे ऐंठ कर पक्का करना ये दोनों काम समता से स्वयं होते जाते है, तो सूत बनाने की कला आ जाती है।

दो प्रकार से ही जीवन सूत्र नष्ट होता है। एक पुरुष वे होते हैं जो अभिमानी और अकड़े हुए होते हैं, वे जब इतने अकड़ जाते हैं—नम्रता बिल्कुल नहीं रहती— कि वे किसी दूसरे से कुछ सीख नहीं सकते, बाहर से कुछ भी नया ग्रहण नहीं कर सकते, नयी अवस्थाओं के अनुकूल अपने आप में परिवर्तन नहीं ला सकते, तो उन्नति रुक जाती है— और इस तरह उन का नाश हो जीवन सूत्र समाप्त हो जाता है। ऐसे अकड़े हुए लोग चूंकि दूसरों को सहानुभूति (समवेदना) के साथ नहीं देख सकते अतः वे अपना सर्वोत्तम शस्त्र 'हिंसा' में ही पाते हैं। दूसरे मनुष्य वे होते हैं जो कि सर्वथा आत्म सन्मान से शून्य होते हैं, जिन में अपनी शक्ति कुछ नहीं होती, जिन्हें दीनता प्रिय होती है, ये लोग जब इतने कमज़ोर हो जाते हैं कि आगे चल ही नहीं सकते तो वे नष्ट हो जाते हैं (या किसी दूसरे की टक्कर इस से भी पहिले उन

के जीवन सूत्र को तोड़ डालती है)। ये कायर पुरुष खुशामद चापलूसी से ही जीवित रह सकते हैं अतः वे खुशामद और दीनता को ही अपना शस्त्र समझते हैं।

दायें तरफ़ अति गर्मी का रोग विकार	मध्य की समता स्वस्थता (जीवन)	बायें तरफ़ अति सर्दी का रोग विकार
१. अभिमान (घमंड)	आत्म सन्मान	आत्म सन्मान का अभाव (दीनता)
२ अकड़ना	आत्म ज्ञान (अपने आप को ठीक समझना)	दीनता (अपने आपको हीन समझना)
३ हिंसा	आत्मशक्ति	कायरता

दायें बायें दोनों ही सिरे की वस्तुएं मध्य की एक वस्तु के विकार हैं। अभिमान और दीनता ये दोनों आत्म सन्मान के दो विकार हैं। एवं हिंसा और कायरता ये दोनों ही आत्म शक्ति के विकार हैं। इन दोनों में समता रखने से मनुष्य स्वयं मध्यस्थ जीवन में रहता है— दायें बायें विकारों के वशीभूत नहीं होता। अतः दूसरे दिन का काता सूत्र यह है:—

समता ही जीवन है। दायें बायें की समता से ही जीवन सूत्र अविच्छिन्न बढ़ता जाता है।

पर मैं देश की स्थिति में इसे घटा कर इस सूत्र को निम्न प्रकार पढ़ना चाहता हूं।

भारत का एक मात्र महाशस्त्र सत्याग्रह है, पर सत्याग्रह का अर्थ है कि एक तरफ़ अपने अधिकार को (सत्य को) कभी न छोड़ना, कभी अन्याय के नीचे न दबना, अपना झंडा कभी नीचे न होने देना चाहे जान चली जाय, किन्तु दूसरी तरफ़ अन्यायी पर भी क्रोध न करना (उस पर दया करना) क्रोध में पागल हो हिंसा कांड में न उतरना, उस पर किसी तरह का बलात्कार न करना। बस इन दो बातों की समता ही सत्य का आग्रह है। और इन दोनों हाथों की समता से ही यह महाअस्त्र चलता है।

अस्तु। ईश्वर करें कि भारत का राष्ट्रसूत्र सदा भारत के इन दोनों हाथों के समता पूर्वक चलने द्वारा ठीक ठीक निकलता चले।

तीसरा आन्हिक

आज मुझे सूत्र निकालना तो आगया था। अब मेरा सूत कभी मोटा कभी पतला होकर नहीं टूटता था। दायें बायें हाथ की समता सध गयी थी। पर अब भी कभी कभी जब सूत टूटता था तो मैं उसका कारण ढूंढने लगता था और तब मुझे एक नयी चीज़ पता लगी। मैंने देखा कि सूत हमेशा तब टूटता था जब कि या तो रुई में कुछ तिनका, कण आदि चीज़ आगयी होती या रुई में कच्ची अथवा अति धुनी (रेशे टूटे हुए) रुई का अंश आ जाता था। तब मैंने अगला सूत्र यह बनाया:—

विजातीय द्रव्य (Foreign Matter) जीवन का नाश करने वाली वस्तु है। हरएक प्रकार के (वैयक्तिक या राष्ट्रीय आदि) जीवन के लिए शरीर से विजातीय द्रव्य को निकालते रहना चाहिये।

हर प्रकार के जीवन में विजातीय द्रव्य (Foreign Matter) बाहर से भी आते हैं और फिर अंदर भी पैदा हो जाते हैं। रुई में तिनके, बिनौले के टुकड़े, धूल आदि सब मल पहिले प्रकार के विजातीय द्रव्य हैं, और रुई के ख़राब धुनी होने से वह रुई भी विजातीय द्रव्य बन जाती है। एवं हमारे राष्ट्र में विदेशी वस्तुयें (विदेशी कपड़े आदि), विदेशी भाषा, विदेशी चाल--ढाल, विदेशियों के दुर्गुणों की नक़ल, मद्यसेवन आदि बातें विजातीय द्रव्य (Foreign Matter) हैं जो कि हमारा नाश कर रही हैं। विदेशी राज्य के कारण जो हमारे ही अपने मनुष्य कायर, दासताप्रिय, आत्म-गौरव शून्य तथा देशद्रोही हो रहे हैं और हो जाते हैं ये दूसरी प्रकार के विजातीय द्रव्य से युक्त हैं। मानो हृदयशून्य अंग्रेजी शासन से इन के मृदु भाव रूपी रेशे टूट जाते हैं। या ये अशिक्षा के कारण कच्ची (बिना धुनी) रुई रह जाते हैं। इन दोनों ही विजातीय द्रव्यों से राष्ट्रशरीर को बचाना चाहिये। भारत की ग्रामवासिनी महान् जनता को इस तरह विजातीय द्रव्य से रहित, शुद्ध करना अधिक आसान है। तिनके आदि मल रहित और ठीक धुनी स्वच्छ धवल पूनिओं के ढेर की तरह इस जनता को भी विदेशी वस्त्रादि मलों से रहित देशाभिमानयुक्त सरल और शुद्ध बना दो। फ़िर देखेंगे, हमारी निकलती हुई राष्ट्रसूत्र की धवल सजल धारा को दुनिया में कौन विच्छिन्न कर सकता है।

(४) चौथा आन्हिक

अब मैंने देखा कि साफ़ स्वच्छ पूनिओं से ज़रा ज़्यादा ध्यान देकर कातें तो बारीक सूत थोड़ी रुई से बहुत सा निकलता है। तब मुझे पतंजलि के प्राणायाम विषयक योग सूत्र का 'दीर्घसूक्ष्मः' शब्द याद हो आया। सूत जितना सूक्ष्म (बारीक) होता है उतना ही वह दीर्घ (लंबा) होता है। इसी तरह प्राणायाम जानने वाले बतलाते हैं कि प्राणायाम करने से शरीरस्थ प्राण जितना सूक्ष्म होता जाता है उतना ही दीर्घकाल तक स्थिर रहने वाला होता जाता है— दीर्घता और सूक्ष्मता साथ साथ चलती है। इस से हमारा चौथा सूत्र यह है:—

जितना ही हम अन्दर सूक्ष्मता से घुसेंगे— सूक्ष्मता से आत्म निरीक्षण करेंगे— अन्दर की सूक्ष्म शक्ति को साधन बनावेंगे, उतना ही हमारा दीर्घ जीवन होगा, उतना ही स्थिर और दीर्घ-कालिक फल हमें मिलेगा।

यह सूत्र भारत के उद्धार में कहाँ लगता है यह तुम स्वयं विचार कर लो। मैं इतना ही कहूंगा कि स्थूल (पशुबल, चालाकी का बल आदि) साधनों से बेशक बड़ी जल्दी फल होता दीखता है— मोटा सूत जल्दी जल्दी कतता है —पर वह फल उतना ही अचिरस्थाई, क्षणिक होता है, दीर्घ नहीं होता। दीर्घता तो सूक्ष्मता से (अन्दर घुसने से) आती है। इसलिये हे भारतवासी! जितना बारीक सूत कात सको उतना ही

अच्छा है, जितनी सूक्ष्मता से अन्दर घुस सको उतना ही अच्छा है— क्योंकि उतनी ही दीर्घ प्राणशक्ति तुम्हें मिलेगी, इसलिए यत्न तो बारीक कातने का करो। स्थूल शक्ति के मोह में मत पड़ो। मोटा मोटा कात कर मत समझो कि हमने बहुत कात लिया है। यह लंबाई में (दीर्घता में) तो बहुत थोड़ा है। कपड़ा तो इससे बहुत कम गज़ बुना जाएगा। मोटे मोटे कामों से जल्दी स्वराज्य पा लेने की वृथा चाह मत करो। वह क्षणिक स्वराज्य (?) वृथा होगा। अन्दर सूक्ष्मता से घुस कर अन्दर की सूक्ष्म शक्ति से जो वस्तु प्राप्त की जाएगी वह उतनी ही चिरंजीविनी और सच्ची होगी। मैं तो प्रार्थना करता हूं कि हे विश्व के विधाता, अतएव भारत के भाग्य के भी विधाता ! तुम भारत की जनता रूपी रुई के भी कातने वाले सूत्रकार हो, तुमने, बड़ा महीन सूत कातना, जो कि युगों तक लंबा चले। यही प्रार्थना है। मेरी तो यही प्रार्थना है।

अच्छा यह, चतुःसूत्री समाप्त होगई। जो लोग चर्खा कातते समय इस चतुःसूत्री को समझते हुए जपेंगे, उन का सूत्र टूटेगा नहीं, उन का सूत्र दृढ़ भी होगा। जो लोग इन सूत्रों को अपने जीवन में देखेंगे उनका जीवन का सूत्र कभी बीच में नहीं टूटेगा, वे दीर्घजीवी और सफलजीवी होंगे, तथा ऐसे ऐसे लोग जिस राष्ट्र में बहुसंख्या में होंगे उस राष्ट्र का जीवनसूत्र भी अविच्छिन्न निकलता जाएगा— उस राष्ट्र को एक के बाद अच्छे से अच्छा राष्ट्र सूत्रधार मिलता जावेगा और वह राष्ट्र जगत में अक्षय कीर्ति पावेगा।

इति चर्खा चतुःसूत्री समाप्तः।

यह सुन कर शिष्य प्रसन्न हुआ, पर उसकी तृष्णा अतृप्त रह गई दीखती थी। उसकी आकृति मुझसे यह पूछ रही थी—"तुमने जो प्रतिज्ञा की थी कि ऋषि सूत्रकारों के सूत्र किस चर्खे से निकले हैं यह मैं फिर बतलाउंगा, सो वह बात और किस समय के लिये रख छोड़ी है। अभी क्यों नहीं बता देते?"

इसलिये मैंने कहा—"क्या तुम वह रहस्य अभी तक नहीं समझे हो ?" मैंने अपने अन्दर की तरफ़ दृष्टि खींची— मानो अपने सिंहासन पर बैठ गया, और धीमे से, गंभीर, अलोक-प्रसिद्ध स्वर से कहा कि मैं ही वह सूत्रकार हूं और तुम ही वह सूत्र चक्र (चर्खा) हो। मैं आत्मा हूं तुम मेरे मन (अंतः-करण) हो। क्योंकि संसार में मेरा और कोई शिष्य नहीं है। मेरा मन ही मेरा एक मात्र सच्चा शिष्य है। मैं सनातन सूत्रकार हूं मेरा मन रूपी चर्खा निरन्तर चलता रहता है। इसकी वृत्ति (बार २ घूम कर आने वाली) इसका चक्र है तथा इसकी तीक्ष्ण तर्कनाशक्ति ही इसका तेज़ नोकदार तर्कुक (तकुआ) है। हरएक देह में बैठा आत्मा यह अखण्ड चर्खा चला रहा है। पर साधारण आत्मा उस चर्खे से जैसा तैसा ऊटपटांग कात रहे हैं—बहुत से बेशक दिन रात रुई (विचार सामग्री) को व्यर्थ

खो रहे हैं पर उसे कातना नहीं कहा जा सकता। मैंने ही ये चार सूत्र निकालने में कितनी रुई खोई है, यह देखते ही हो। पर उन गौतम व्यास आदि ऋषिओं ने बहुत ही अधिक सूक्ष्म और अतएव अत्यन्त दीर्घ (व्यापक) सूत्र निकाले थे—और साथ ही बड़े मज़बूत (सत्यमय) सूत्र निकाले थे अतएव ये ऋषि आत्मायें विशेषतया सूत्रकार प्रसिद्ध हुईं। नहीं तो जैसा तैसा उस चर्खे को हमेशा चलाते जाना तो हरएक जीव ही सदा से कर रहा है, पर उससे निकली वस्तु सूत्र कहलाने योग्य नहीं होती।

पर आत्मा से भी परे इस ब्रह्माण्ड देह में बसने वाला एक परम आत्मा है जो कि परम सूत्र-कार है—परम सिद्ध सूत्रकार है। जिसके सूत्र के विषय में वेद में कहा है—

"यो विद्यात् सूत्रं विततंय स्मिन्नोताः प्रजा इमाः सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्याद् ब्राह्मणं महत्।"
अथ. १०-३६-८

उसका सूत्र इतना सूक्ष्म है कि वह किसी को दिखाई नहीं देता, यद्यपि वह सूत्र सब संसार में ओतप्रोत हो रहा है। सूक्ष्म होता हुवा भी वह सूत्र इतना मज़बूत है कि (विरले मुक्तों को छोड़ कर) यह सब विश्व ब्रह्मांड उस सूत्र में दृढ़ता से बंधा हुवा है। उस प्रभु के जगद्व्यापी इस सूत्र को ऋषिओं ने, 'सूत्रात्मा वायु या सूत्रात्मा प्राण' नाम दिया है। इस सूत्रात्मा प्राण में बांधकर वह मदारी सब प्राणियों को कठपुतली की तरह नचा रहा है—कर्म-फल भुगा रहा है।

ख़ैर, इसे जाने दो, भारतवासियों को ये आत्मा परमात्मा की बातें सुनाने का मौक़ा नहीं है। जा, भूखे भारतवासियों को तो पहिले स्थूल कपास का कातना सिखा। पुराने ऋषिओं ने तो अन्दर के चर्खे के अनुसार बाहर के (कपास के) चर्खे का आविष्कार किया था, पर अब तो बाहर के चर्खे द्वारा ही अन्दर प्रवेश होगा और पेट भरनेपर ही उन्हें आत्मा, परमात्मा और अन्दर के चर्खे को सुनने की फुरसत होगी। तू अन्दर के चर्खे को भी जान गया है, अतः तू चर्खे के प्रचार करने का अधिकारी है। यदि कोई यज्ञार्थ कातने वाले मिलें तो उन्हें बेशक कह देना कि नारायण भी निरन्तर कातते हैं, नहीं तो सूत्रात्मा के बिना जगत् क्षण भर भी न टिक सकेगा—यह भी कह देना कि पुराने ऋषि सूत्रकारों ने भी काता था इसलिये तुम भी कातो। पर अन्य भूखों को तो केवल इतना ही कहना कि आज—वर्तमान—के भारतीय ऋषि भी तुम्हें कताने के लिए कातते हैं, इस लिये तुम भी कातो, कम से कम इतना तो कातो कि विदेशी कपड़े की तुम्हें ज़रा भी—एक इंच की भी—पराधीनता न रहे।

शिष्य ने इसे स्वीकार किया।

मैंने कहा—'**तथास्तु**'

दीपक

(श्री पं० चमूपति जी एम. ए.)

छेड़ छेड़ मन दीपक राग !

स्नेह सनी काया बत्तीसी—
　　　　मांग रही नित आग ॥
बन बन खिले दीप सम टेसू,
　　　　उर आतुर अनुराग ॥
हैं नख शिख जलते रहने को
　　　　शिखी आर्य औ' आग ॥
तू रागी, मैं अनुरागी हूं,
　　　　राग-वैर वैराग ॥
चहुं दिस एक आग भड़कादे,
　　　　हो लगाव, नहिं, लाग ॥
स्नेह-लता सी उज्वल सारी
　　　　पहन सुहायें सुहाग ॥
लोम लोम फूटे पिचकारी,
　　　　भर भर खेलें फाग ॥



जल-चिकित्सा

(ले०—श्री पं० देवराज जी विद्यावाचस्पति)

भूमिका



ल चिकित्सा के विषय में यह छोटा सा लेख इस बात को मान कर लिखा गया है कि इस का पढ़ने वाला आयुर्वेद के सिद्धान्तों से अच्छी प्रकार परिचित है। इस लेख में जिन २ सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है उनके निरूपण का अभिप्राय इतना ही है कि जल-चिकित्सा के वे सिद्धान्त आयुर्वेदोक्त सिद्धान्तों के साथ किस प्रकार सम्बद्ध हैं, अथवा आयुर्वेद के सिद्धान्त जल-चिकित्सा में किस प्रकार लागू हैं। इस प्रकार यह दिखलाया गया है कि जल-चिकित्सा आयुर्वेद से बाहिर वा पृथक् नहीं है। इतना ही नहीं प्रत्युत आयुर्वेद बिना जाने जल-चिकित्सा से पूरा पूरा लाभ भी नहीं उठाया जा सकता। लाभ न उठाने के अतिरिक्त कई वार, आयुर्वेद सिद्धान्तों की अनभिज्ञता के कारण, बड़ी हानि उठानी पड़ती है। यदि एक २ सिद्धान्त का विस्तृत निरूपण किया जाता तो उतना ही कहना पड़ता जितना आयुर्वेद शास्त्र में विस्तार से निरूपण किया है, इस प्रकार एक बड़ा पोथा बन जाता। इसी लिये रोग का निदान, रोग की सम्प्राप्ति, रोगी के भोजन की व्यवस्था, रोगी परिचर्या और चिकित्सा इन विषयों का सामान्य ज्ञान कराने के अतिरिक्त इनको विस्तार से नहीं लिखा है। आयुर्वेद सिद्धान्त सम्मत जल-चिकित्सा-पद्धति को स्वीकार करते हुए जल-चिकित्सा को औषध-चिकित्सा के सदृश ही निरूपण किया है।

अर्थात् जैसे औषध चिकित्सा में कोई द्रव्य पाञ्च-भौतिक होने से वह चिकित्सा मिश्रित कहलाती है, वैसे जल-चिकित्सा में भी जल को अन्य तत्वों से भावित करके प्रयोग करने से जल-चिकित्सा भी मिश्रित कहलाती है। अतः जल-चिकित्सा को भी शुद्ध जल-चिकित्सा न समझ कर मिश्रित चिकित्सा ही समझना चाहिये। परन्तु चिकित्सा शास्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर औषध-चिकित्सा में जल-चिकित्सा अधिक श्रेष्ठ है, यथा शक्ति इसको दिखलाने का प्रयत्न किया है।

इस में कोई सन्देह नहीं कि वर्तमान काल में जल चिकित्सा के पुनरुद्धार का श्रेय डा० लूई कूने को है, परन्तु आयुर्वेद के सिद्धान्त के आधार पर जल चिकित्सा पद्धति में अधिक उन्नति की जा सकती है। इस उन्नति का निर्देश लेख में भली प्रकार किया है। रोगों में दोषों के लक्षणों के अनुसार जल-चिकित्सा में औषध-द्रव्यों का भी, जल चिकित्सा के सिद्धान्तों में जहां तक बाधा न हो वहां तक, प्रयोग हो सकता है। जल चिकित्सा में जल को अन्य तत्वों से भावित करने का प्रकार रश्मि चिकित्सा के सिद्धान्तों से लिया गया है। रश्मि चिकित्सा के सिद्धान्त भी आयुर्वेदीय पाञ्च-भौतिक वा त्रिदोष सिद्धान्तों पर ही अवलम्बित हैं। रश्मि चिकित्सा का सम्बन्ध जल-चिकित्सा के साथ होने से रश्मि चिकित्सा के सिद्धान्तों का भी दिग्दर्शन कुछ कर दिया जाता है। सूर्य की रश्मियां भिन्न २ रङ्गों की किरणों से मिल कर

बनी हुई हैं। भिन्न २ रङ्गों की किरणों का पदार्थों पर भिन्न २ प्रभाव होता है। इसी सिद्धान्त को लेकर जल को भिन्न २ रङ्गों की किरणों से भावित करके अथवा सीधा भिन्न २ रङ्गों की किरणों को ही शरीर पर डाल कर विशेष परिवर्तनों को उत्पन्न करके शारीरिक अस्वास्थ्य दूर किया जाता है। सूर्य की विशेष किरणों से भावित जल का प्रयोग जैसा रश्मि चिकित्सा में है वैसा जल चिकित्सा में भी है। सूर्य की रश्मियों में मुख्य रङ्ग तीन होते हैं—

१ लाल (Red) २ पीला (Yellow) ३ नीला (Blue)

अन्य सब रङ्ग इन्हीं 'तीनों रङ्गों की कमी बढ़ती और मेल से बने हैं'। लाल रंग का स्वभाव शरीर में गर्मी पैदा करना है। पीला रंग अनुलोमक है और नीला रंग शरीर की गर्मी को शान्त करके शरीर में ठण्डक पैदा करता है। मैं यदि इन रंगों को पाञ्चभौतिक परिभाषा में कहूं तो लाल रंग को तैजस, पीले रंग को पार्थिव और नीले रंग को वायवीय कह सकता हूँ। यदि लाल और पीले रंग को इस प्रकार मिलाया जाय कि लाल की अधिकता रहे तो रंग का नाम नारञ्जी होता है। नारञ्जी रंग में अग्नि प्रधान होने से यह पीले रंग की क्रिया को ऊपर के अवयवों में विशेष प्रकट करता है क्योंकि अग्नि की ऊर्ध्वगति है, अर्थात् नारञ्जी रंग श्वास संस्थान पर विशेष क्रिया करके निर्बल श्वास को बल देता है और सञ्चित श्लेष्मा को शरीर से बाहिर फेंक कर शरीर को शुद्ध करता है। मिश्रण में पीले रंग की अधिकता होती है। तब वह आंतों की क्रिया को उत्तेजित तो करता ही है परन्तु साथ ही वायु को अनुलोमन करके मलबन्ध को भी दूर करता है। नीले और पीले रंग को मिला कर हरा रंग बनता है। नीला रंग अधिक रहे तो गहरा हरा और पीला अधिक रहे तो हलका हरा रंग होता है। गहरा हरा रंग दाह को शान्त करता है और कुछ अनुलोमक भी है। रोगों में प्रायः शोथ, दाह, वा ताप की वृद्धि होती है। जिस रोग की चिकित्सा करनी हो उस में पहिले शोथ दूर की जाती है। शोथ दूर करने में दाह के लिये नीला रङ्ग शीत होने से उत्तम है। यदि शोथ स्थान में सञ्चित द्रव्य को वहां से हटाना हो तो उस स्थान को लाल रङ्ग से उत्तेजित करना चाहिये। इन दोनों कार्यों के लिये गहरा नीला रङ्ग अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि उस में कुछ लाल रङ्ग रहता है। यदि शोथ बैठाने के लिये विशेष प्रयत्न की आवश्यकता हो तो नारञ्जी रङ्ग का प्रयोग उत्तम है। यदि किसी प्रकार की स्थानिक वा व्यापी उत्तेजना की आवश्यकता न हो तो दाह दूर करने के लिये और शोधन के लिये गहरे हरे रङ्ग का प्रयोग उत्तम है। यदि दाह विशेष न हो, केवल शोथ हो तो फीके हरे को प्रयोग कर सकते हैं। यदि हम चाहते हों कि क्रिया शीलता बढ़ जावे परन्तु दाह न हो तो जामनी Violet रङ्गका प्रयोग करना चाहिये। यदि दाह की शान्ति विशेष अभीष्ट हो कुछ पाचक शक्ति को बल देना हो और कुछ क्रिया शीलता रखनी हो तो गहरे नीले रङ्ग (Indigo) का प्रयोग करना चाहिये।

इस प्रकार सूर्य की रङ्ग दार किरणों से जल को भावित करके पाञ्चभौतिक वा त्रिदोष सिद्धान्त के अनुसार सम्पूर्ण रोगों की चिकित्सा हो सकती है, इस में कुछ संशय नहीं है। विज्ञ महानुभावों को जल-चिकित्सा की उत्तमत्ता

ध्यान में रख कर अपने अनुभव करने चाहियें और उन्हें प्रकाशित करना चाहिये।

पं० ज्वालाप्रसाद झा की बनाई पुस्तक (Chromopathy) में ग्रन्थकर्ता के अनेक अनुभव दिये हुए हैं, उन के आधार पर रश्मि जल-चिकित्सा के सिद्धान्त स्वयं निश्चित करके आपके सामने रक्खे हैं। किस २ रोग की चिकित्सा में पं० ज्वालाप्रसाद जी किस प्रकार सफल हुए इस का निर्देश 'रोग और उन की चिकित्सा' नाम से एक विस्तृत सूची बना कर कर दिया है।

मैने यह लेख अपनी आदत के अनुसार आयुर्वेद के सिद्धान्तों को लक्ष में रख कर बिना किसी पुस्तक के आश्रय अपने स्वन्तत्र विचार से लिख डाला था। बहुत से मनुष्य जिन्हें स्वयं सोचने की आदत नहीं होती अर्थात् जिन की ज्ञान चक्षु विकृत होती है देखने के लिये ऐनक रूपी प्रमाणा पेक्षी होते हैं उन के सन्तोष के लिये वृद्ध जनों की अनुमति से कुछ २ प्रमाणों का भी निर्देश कर दिया है। यदि प्रमाणों से सन्तोष न हो तो कुछ आश्चर्य नहीं ठीक ही है इस के लिये मेरा दोष समझियें कि मुझे दूसरे के मुख से बोलने की आदत नहीं अपने ही मुख से मैं बोला करता हूं।

जल चिकित्सा सम्बन्धी यह लेख सरल भाषा में थोड़े में ही बहुत भाव को प्रकट करते हुए लिखा है। आशा है आप इसे सावधान होकर सुनेंगे और पढ़ेंगे तथा मेरे परिश्रम को सफ़ल करेंगे।

रोग और उन की चिकित्सा

ज्वर—

१. Typhus or brain fever (मस्तिष्क ज्वर) with the looseness of the bowels.	नीला प्रकाश, नीला जल
२. Typhoid fever (आन्त्रज्वर)	नीला जल
३. Ramittent and Intermittent fevers (सतत और सन्तत ज्वर)	नीलाजल, नीलाप्रकाश
४. Malaria. ऋतुज्वर	ठण्डा पीला जल २ औंन्स, कब्ज़ के लिये
५. Eruptive fevers (पिडकाज्वर)	आधी रात में दो वार नीलाजल ज्वर के लिये
i Small pox मसूरिका (चेचक)	नीला जल प्यास में।
ii Chicken pox विस्फोटिका	नीला प्रकाश प्रलाप में।
iii Measles रोमान्तिका	वाष्प स्नान
iv Erysipelas	हराप्रकाश १,२ घण्टे तक।
६. श्लैष्मिक ज्वर	पित्त की कमी से। रात को वृद्धि।
Phlegmetic fevers	श्वेत मूत्र आना। कभी कब्ज कभी दस्त
	शौच का रङ्ग सफेद

	नारङ्गी जल की ३, ४ मात्रा। बच्चों के लिये १,२ मात्रा।
७. Mucous fevers	
i Influenza श्लेष्मक ज्वर	हरा प्रकाश हराजल।
ii Hooping cough कूकुर कास	गहरा नीला जल।
iii Croup गल करण्डु	गहरा नीला जल।
iv Cholera विसूचिका	
v Dysentry प्रवाहिका	
८. Constitutional diseases	
i Rheumatism (१) acute तीव्र	नीलाजल, नीला प्रकाश
आमवात (२) chronic पुरातन	नारङ्गी जल, नारङ्गी प्रकाश
ii Gout सन्धिशोथ	नारङ्गी जल
iii Phthisis राजयक्ष्मा	गाढा नीला जल पीने को लाल प्रकाश फेफड़ों पर, यदि लाल प्रकाश से दाह हो तो नीला कपड़ा रखकर लाल प्रकाश डालो।

वात संस्थान के रोग

१. Inflammation of the Brain मस्तिष्कशोथ	नीला प्रकाश
२. A poplexy मूर्छा	नीला प्रकाश
३. Hysteria योषाऽपस्मार	
४. Epilepsy अपस्मार	नारङ्गी जल पीने को। नीला या हरा प्रकाश सिर पर डालो १५ दिन तक
५. Infantile Convulsions	चेहरे और सिर पर नीला प्रकाश
६. Child crowing	"
७. Headache शिर पीड़ा	नीला या हरा प्रकाश सिर पर
८ Newralgic pains वातिक पीड़ा	नीला या हरा प्रकाश
९ दिमाग के थक जाने पर	"
१० melancholic उदास पुरुष	नीला प्रकाश

श्वास संस्थान के रोग

१. Cold in the head प्रतिश्याय	हराजल, हरा प्रकाश
२ Hoarseness स्वर भङ्ग	नीला जल अथवा गहरा नीला जल, प्रति आध घण्टे पर

आधा तोला पानी, ऐसी ६ मात्रा ३ प्रातः ३ सायम्।

3 Laryngitis स्वरयन्त्रशोथ — नीला जल ½ तोला प्रति आध घण्टे पर।

4 Bronchitis श्वास नलि का शोथ
- acute तीव्र — गाढ़ा नीला जल।
- chronic पुरातन — नारङ्गी जल कुछ मास तक।

५ Cough कास — ठण्ड लगने से होती है।

शुष्क कास — गाढ़ा नीला जल। यह जल कफ को तरल करता है। जब कफ मुशकिल से निकले तो नारंगी जल।

आर्द्र कास — नारंगी जल। एक मात्रा प्रातः, दूसरी तीसरे पहर। १५ दिन तक।

६ Asthma श्वास रोग — नारंगी जल। १ तोला जल प्रति १० मिनिट के पश्चात १ घंटे तक। यदि आराम न हो तो ३,४ घंटे तक मात्रा न दो। आवयश्यकता हो तो फिर दो। स्वस्थ काल में भोजन के पश्चात् १ तोला नारंगी जल। नारंगी जल tonic है, पाचक है। प्रारम्भिक अवस्था में गाढ़े नीले जल से काम हो जाता है। पित्त प्रकृति के लोगों को ठण्ड लग जाने से हुआ पुरातन श्वास रोग भी गाढ़े नीले जल से शान्त हो जाता है।

७ (Pneumonia) श्वास ज्वर

मुख गले आदि के रोग

१ मुख गले के रोग और उन से उत्पन्न आमाशय व आन्तों के रोग। — नीला जल आधा तोला प्रत्येक? घंटे के पश्चात् ३'४ घण्टे तक। यदि रोग शान्त न हो तो २४ घण्टे पश्चात् फिर ऐसा ही करे।

२ Tooth ache दन्त पीड़ा, मसूड़ों का सूजना — नीले जल से गरारे ५,७ बार करे।

सूजन न हो तो — नारंगी जल

३ (Gumboil) दन्तवेष्ट पिडका — नीला जल

४ (Dentition = Teething) दन्तोद्गम — नीला प्रकाश

५ (Sore throat) गल शोथ — तीन २ घंटे पर नीले जल के गरारे। ४,५ दिन में आराम।

पांचक अङ्गों के रोग

१. अजीर्ण—

१. पित्त के कारण अजीर्ण हो तो	पानी सर्वदा खाली पेट पीवें। भोजन अच्छा चबाना। पानी न पीवे या बहुत कम। भोजन हलका। गाढ़ा नीला जल
पित्त के कारण पुरातन अजीर्ण हो तो	दिन में दो बार गाढ़ा नीला जल प्रत्येक बार १ औन्स जल की मात्रा। इस प्रकार १.२ मास तक।
ii श्लेष्मा के कारण अजीर्ण हो तो	व्यायाम, भ्रमण, बैठना कम। नारङ्गीजल। चिकित्साशनैः २ देर तक। एक सप्ताह के बाद शरीर में कुछ रक्त की वृद्धि। अथवा भोजन के ठीक बाद नारङ्गी जल। हेमन्त में प्रत्येक एक औन्स की चार खुराक।
iii Heart burn हृद्दाह	नारङ्गी जल १ औन्स।
iv Waterbrash	" "
v डकारों वा उबासियों का निरन्तर आना।	नारङ्गी जल। कभी २ नीला जल। १ औंस प्रत्येक ३ घण्टे पर। ३ मात्रा।
२. पेट में हवा	नारङ्गी जल या गाढ़ा नीला जल।
३. वमन. जी मचलाना।	नीला जल
४. पेट दर्द (stomach pain)	
i वातिक शूल (windy pain)	नारङ्गी जल
ii अजीर्ण जन्य शूल (Dyspeptic pain.)	गाढ़ा नीला जल। चिकित्सा शनैः २।
iii पैतिक शूल	नारङ्गी जल। १५ दिन तक।
५ पित्त विकार	नीला जल। दो २ घण्टे के पश्चात् तीन मात्रा
६ कामला	नीला जल
७ अतीसार	नीला जल
८ मलवन्ध (यकृत की मन्दता)	प्रातः सायम् नारङ्गी जल
९ अन्त्रशूल (colic)	नीला जल। १ औंस की मात्रा प्रति १० मिनट के पश्चात्। १ घण्टे तक।
१० अर्शस्	
i अरक्तर्शस्	नारङ्गी जल। नीले जल से धोना।

ii रक्तार्शस	नीले जल से धोना।
११ गुदशोथ	नीला जल
मूत्र संस्थान के रोग	
१ वृक्क शोथ	
i शीतजन्य वृक्कशोथ	
आघात जन्य "	नीला प्रकाश
ii पथरी वा शर्करांजन्य शोथ	नारङ्गी प्रकाश
२ मूत्रकृच्छ्र	नीला पानी
३ अनैच्छिक मूत्रस्राव	मूत्राशयपर बैंगनी (purple) या हरा प्रकाश
नेत्रशोथ	
i पाक संस्थानविकारजन्यशोथ	आस्मानी ऐनक
ii Granularlids नेत्राङ्कुर	नीला प्रकाश चेहरे पर, प्रातः भ्रमण
iii नेत्र दाह, नेत्र शूल, अञ्जन्यारी	नीला प्रकाश, नीले पानी से धोवे।
कर्णशूल, कर्णस्राव, कर्णपिडका	नीला जल
कर्ण कूजन	सिरपर नीलाप्रकाश, सोनेसे पहिले पांव ठण्डे हों तो१० मिनट ठण्डे पानी में रखकर मलना
त्वक्रोग	
i Boils फफोले	हरा प्रकाश, नीला प्रकाश
ii Scald head	नीला प्रकाश
iii Ulcers,	हरा प्रकाश
iv खुजली	नीलेजल से धोना, नीला प्रकाश दो घण्टा प्रतिदिन।
अन्यरोग	
नकसीर	नाक से नीला जल चढ़ाना
०	सोते समय नीले जल की एक मात्रा ७ दिन तक।
हृत्कम्प (Palpitation)	नीला जल
व्रण, दाह	नीले जल में फाया भिगोकर रक्खो।

दंश	नीले जल का फाया। शोथ हो तो नीला प्रकाश।
स्त्रीरोग	
ऋतुरोध	नारङ्गी जल की एक मात्रा प्रतिदिन प्रातः काल १५ दिन तक
कष्टार्तव	नारङ्गी जल स्राव से पहिले और बीच में। १० मिनट में एक २ मात्रा नीला जल पिलाओ।
अति आर्तव।	नाभी से नीचे नीले जल में कपड़ा भिगो कर रक्खो अथवा नाभी से नीचे नीला प्रकाश।
Whites	नीला जल पिलाओ।
गर्भ स्थितिकाल	नीला जल

रङ्गों का रोगों पर प्रभाव

(१) जामनी [Indigo, deepblue] **नीला+लाल**	फुप्फुस रोग, श्वासप्रणाली रोग, आन्त्र रोग
अङ्गों को आराम पहुँचाता है, शोथ को कम करता है और कफ को बाहिर फेंकता है।	वृद्ध वा क्षीण पुरुष के लिये आकाशीय की अपेक्षा जामनी उत्तम है।
क्षोभक स्रावों को रोकता है। वमन, अतिसार को रोकता है। पाचक अङ्गो में स्फूर्ति देता है।	निमोनियां, कुत्ताखांसी, ज्वर, गल शोथ। पुरातन-अजीर्ण।
(२) पीला [yellow]	
बैठे रहने के कारण जिन को मल बन्ध हो, उन के लिये यह उपयोगी है। जैसे दूकानदार, सौदागर, न्यायाधीश, लेखक, विद्यार्थी।	मलबन्ध। आन्तों को शक्ति देने के लिये देर तक चिकित्सा करनी चाहिये। आन्तों के बल के लिये इस की बड़ी मात्रा न लें, क्योंकि दाह पैदा हो जायगी।
१५, २० वर्ष तक आयु में लाल रङ्ग के स्थान में पीला ही वर्तना चाहिये।	कुष्ठ को ६ मास में दूर कर सकता है। प्रातः सायम् प्रति दिन एक २ मात्रा। मलाशय में

ताप की घटती बढ़ती के अनुसार मात्रा फर्क करना चाहिये । चावल, दूध, मत्स, दही कच्ची खांड़से परहेज रहे । थोड़े गेहूँ के सा चना अच्छा भोजन है । मक्खन, घी अवश्य देना चाहिये । नमक न खावे ।

(३) लाल रंग—

गर्मी देने वाला, संकोचक और स्तम्भक नहीं । शरीर की सोई हुई, निश्चेष्ट, जड़ अवस्थाओं को हटाता है । नीले रंग से जो अधिक संकोच हुआ हो उसे फैलाता है ।	अर्धङ्ग । दाह शून्य शोथ । स्थानिक अर्धङ्ग पर लालप्रकाश डालो ।

नोट—रङ्गों का प्रभाव दिखलाते हुए प्रकरणवश यह भी बतला देना अनुचित नहीं है कि: नीले रंग की बोतल में सरसों का तेल १ मास तक धूप में रख कर सिर के पीछे मलने से स्वप्नदोष को दूर करता है । वीर्यस्राव और वीर्य का पतलापन भी दूर होताहै । सिर पर मलने से गञ्ज हटता है । बाल काले होते हैं ।

रोग परीक्षा-आँख, नख, मूत्र, शौच इन चारों का रंग देख कर रोग की परीक्षा करनी चाहिये । इन का रंग लाल वा पीला हो तो पित्त का विकार समझ कर जामनी व नीले जल से शीत चिकित्सा करनीचाहिये।नीलापन झलकता हो, तो बात विकार समझ कर उष्ण स्निग्धचिकित्सा लाल वा लालपीले (सिन्दूरी) जल से, और यदि सफेदी सी झलकती हो तो लालजल से चिकित्सा करनी चाहिये ।

यह पं० ज्वालाप्रसाद झा की Chromopathy के आधार पर लिखा है ।

रश्मि भावित जल बनाने के लिये बोतलों की पहिचान—

१. धूप में सफ़ेद कागज़ पर प्रतिबिम्ब डाल कर देखना चाहिये ।

१. नीले रङ्ग की बोतल के प्रतिबिम्ब में यदि लाल झलक न हो तो हल्के नीले रङ्ग की बोतल समझनी चाहिये ।

३. प्रतिबिम्ब में नीले रङ्ग में लाल झलक हो तो गाढ़े नीले रङ्ग की बोतल समझनी चाहिये । कैसूटर औयल की बोतलें गहरे नीले रङ्ग की होती हैं ।

४. पीले रङ्ग के प्रतिबिम्ब में यदि लाल झलक भी हो तो नारङ्गी रङ्ग की बोतल समझनी चाहिये ।

५. जिस पीले रङ्ग के साथ लाल न दीखे उस रङ्ग की बोतल शुद्ध पीली होती है ।

६. हरा प्रतिबिम्ब हो तो हरी बोतल समझते हैं ।

७. श्वेत रङ्ग की बोतल वही कहलाती है जिस के प्रतिबिम्ब में कोई रङ्ग न दीखें । बोतल में भी किसी रङ्ग की झलक न हो ।

भिन्न २ रङ्गों की बोतलों के जलों को मिला कर मिश्रण का उपयोग—

बदहज़्मी (मेदे की खराबी)	हलका नीला जल / हरा जल	प्रातः / सायम्	
१ जिगर की गर्मी से हो तो	भाग २ / भाग १	२½ औंन्स / २½ औंन्स	खाली पेट पीवे।
२ यदि केवल गर्मी से हो तो	गहरा नीला जल + हरा जल २ भाग / १ भाग	२ औं० / २ औं०	खाली पेट॥
३ ठण्ड के कारण हो तो	नारङ्गी + हरा २ भाग / १ भाग	२ औं० / २ औं०	भोजनोपरान्त।
४ कब्ज़ के लिये	पीला	२ औं० रात को	सोने से पहिले।
५ अजीर्ण और कब्ज़ के लिये	नारङ्गी	२औं०	भोजनोपरान्त। २ घण्टे के अन्तर ३ बार

बोतल जल से भर कर दो घण्टे से लेकर तीन दिन तक धूप में रखने से जल तय्यार हो जाता है। यदि अन्य रङ्गों के पानी में श्वेत पानी मिलाकर दिया जाय तो रङ्ग के पानी की ताकत ४ गुणा अधिक हो जाती है।



पंजाबियों का जोश !

(ले०—श्री देशभक्त ला० लालचन्द जी 'फलक')

भारत को तशद्दुद से मिटाया न जायगा।
पंजाबियों का जोश दबाया न जायगा॥
हेली उठा सकेगा न पंजाब का अताब।
इरविन से यह पहाड़ उठाया न जायगा॥
गुस्से जल उठा जो कहीं नौजवानों का दिल।
शोला यह फिर किसीसे बुझाया न जायगा॥
यह नरम नेवाला नहीं साहेब! जो निगल जायँ।
यह गरम टिफन आपसे खाया न जायगा॥
गरदन निकाल लेंगे गुलामी से अब ग़रीब।
यह बार बेकसों से उठाया न जायगा॥
दे देंगे जान शौक़ से राहे-वतन में हम।
सर बारे मज़ामत से झुकाया न जायगा॥
सख़्ती से दब सकेगा न हिन्दोस्ताँ फलक।
लोहे का यह चना है, चबाया न जायगा॥

सौत

(लेखक—श्रीयुत चन्द्रगुप्त विद्यालंकार)

(१)



खनऊ के सदर बाज़ार में तीन अंधे फ़कीर एक दूसरे का हाथ पकड़ कर गाते हुए चले जा रहे थे। उन का कण्ठ-स्वर बहुत ही मधुर और करुणापूर्ण था। तीनों फकीरों ने लम्बे लम्बे चोले पहिन रक्खे थे, उन की चाल बहुत ही मन्द और शानदार थी। यूं तो लखनऊ के बाज़ार में फ़कीरों का गान कोई ख़ास ध्यान देने लायक बात न थी, परन्तु इस गान में एक विशेष आकर्षण था, जिस के प्रभाव से लोगों का ध्यान इस ओर अवश्य खिंच जाता था।

धीरे धीरे लोगों का एक बहुत बड़ा मजमा इन फ़कीरों के पीछे चलने लगा—एक बड़ा जलूस सा बना गया। मज़ा यह था कि सब लोग बिलकुल चुप हो कर फ़कीरों के इस विचित्र गान को सुन रहे थे। इक्के, मोटर, टमटम आदि सभी सवारियां इस जनसमूह के पास आकर रुक जाती थीं; दुकानों पर ग्राहक और दूकानदार सौदा छोड़ इस दृश्य को देखने लगते थे। मकानों के झरोखों से स्त्रियां मुंह बाहर निकाल कर गान को सुन रही थीं।

तीनों फ़कीर बिलकुल मस्त थे। उन्हें दीन और दुनियाँ की कोई खबर नहीं थी। आम लोग इन्हें भिखमंगा समझ रहे थे, और उन के करुण-गान को अपाहिजों की दया-प्रार्थना। क्रमशः लोग इतने प्रभावित हो गये कि उन फ़कीरों के सामने पैसों, आनों और इसी प्रकार के छोटे छोटे सिक्कों की वर्षा सी होने लगी। अन्धे फ़कीरों को इस बात की कोई ग़रज़ नहीं थी, वे मज़े से अपनी निराली शान में चले जा रहे थे।

किसी को इन फ़कीरों का निवास-स्थान ज्ञात नहीं था, लखनऊ की जनता के लिये वे सर्वथा अपरिचित ही थे। एक छोटा सा लड़का इन में से सब से बड़े फ़कीर की ऊँगली पकड़ कर उन्हें ठीक मार्ग पर ले जा रहा था, यही लड़का इन तीनों फकीरों की "आँख" था। थोड़ी देर में ये फ़कीर शहर से बाहर पहुंच गये। लोग भी क्रमशः तितर-बितर हो गये, लखनऊ जैसे बड़े शहर की नैत्यिक दशा पर इस साधारण सी घटना का कोई दृश्य असर न पड़ा।

ये तीनों फ़कीर शहर के बाहर एक छोटी सी मस्जिद के सामने पहुंचे; इस स्थान पर मनुष्यों का अधिक आवागमन नहीं था। छोटे बालक ने मस्जिद के बाहर एक पेड़ की छाया में इन तीनों फ़कीरों को बैठा दिया। ये लोग आज लखनऊ में कहीं बाहर से बिना किसी विशेष उद्देश्य के आये थे। इन की इच्छा कुछ मास लखनऊ में बिताने की थी।

इस दिन के बाद से ये फ़कीर फिर कभी गाने के उद्देश्य से बाज़ारों में नहीं गये। हां, प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल के समय मिल कर उर्दू के कुछ करुणरस-पूर्ण और भक्तिमय गीत गाना इन के नैत्यिक कर्म का ऐसा अङ्ग था, जिस में अपवाद को कोई स्थान नहीं था। वर्षा हो, आंधी हो, सर्दी हो, गर्मी हो—यह गान बिना

अपवाद के अवश्य हुवा करता था। धीरे धीरे लोग इन फ़कीरों के यहां आने जाने लगे। इन के गान कुछ ऐसे होते थे कि क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सभी बड़े शोक से इन में सम्मिलित होते थे। स्त्रियां इन फ़कीरों के प्रति अत्यन्त श्रद्धा प्रदर्शित करने लगीं; इस प्रकार इन फकीरों को खाने पीने की कमी न रहती थी। इन तीनों अन्धों की आंख -बालक हुसैन-इन के लिये सभी प्रकार का प्रबन्ध कर देता था।

(२)

दशहरे के दिन थे। लखनऊ में हिन्दू लोग बड़े ज़ोरशोर से दशहरे की तैयारियों में लगे हुए थे। प्रतिदिन नये उत्साह के साथ नये नये तरीकों से रामलीला के पात्रों के जुलूस निकाले जाते थे। नगर के कुछ मन-चले मुसलमानों को हिन्दुओं का यह जोश कुछ खटकने सा लगा, उन्होंने इन जुलूसों और कीर्तनों का विरोध करना शुरु किया।

शीघ्र ही नगर के बहुत से मुसलमानों की यह एक ज़बर्दस्त मांग बन गई कि हिन्दू लोगों के ये जुलूस जब किसी मस्जिद के सामने पहुंचा करें, तो वे बाजा बजाना बन्द कर दिया करें। मुसलमानों के इस आन्दोलन से हिन्दुओं का जोश और भी बढ़ गया, वे और भी अधिक चमक-दमक के साथ जुलूस निकालने लगे; फल यह हुआ कि दोनों जातियों के पारस्परिक सम्बन्ध बहुत बिगड़ गये। शान्तिरक्षा के बहाने से सरकार ने शहर में पुलिस की संख्या बढ़ा दी। जुलूसों के साथ काफ़ी संख्या में सिपाही रहने लगे। दोनों ओर के लोग किसी अनिष्ट की आशंका से सतर्क हो कर रहने लगे।

शनिवार का दिन था और दोपहर का समय। आज की रामलीला के लिये शूर्पनखा की मूर्ति सदर बाज़ार में से रामलीला के मैदान की ओर ले जायी जा रही थी। मूर्ति का जलूस नहीं निकाला जा रहा था, न बाजे बजाये जा रहे थे। हां, शूर्पनखा की नककटी-कनकटी विचित्र मूर्ति के प्रभाव से आकर्षित होकर बहुत से लोग इस के साथ साथ जा रहे थे। यह मूर्ति जब सदर बाज़ार की सब से बड़ी मस्जिद के सामने पहुंची, तब इस पर मस्जिद में से कुछ पत्थरों की बौछार की गई। एकदम भय की सीटी दी गई। बहुत से स्वयंसेवक और कांस्टेबल घटनास्थल पर आ पहुंचे। इस घटना ने और भयंकर रूप धारण न किया, स्थिति वश में कर ली गई। परन्तु शीघ्र ही शहर भर में यह ख़बर फैल जाने का इतना असर अवश्य हुआ कि सदर बाज़ार की बहुत सी दूकाने बंद हो गईं और शहर भर में भयंकर आतंक छा गया।

आज सायंकाल को वही तीनों अन्धे फ़कीर दूसरी वार लखनऊ के सदर बाज़ार में एक साथ गाते हुए पाये गये। इन फ़कीरों का आज का गीत प्रेम और करुणा का संमिश्रण था। लोग यद्यपि भड़के हुए थे, तथापि इन फ़कीरों का मधुर गान लोगों के जोश को कम करने में सर्वथा असफल नहीं रहा। इस का अच्छा असर पड़ा। इस गीत में हिन्दू-मुसलमान दोनों को भारत माता के नाम पर रोमाँचित कर देने वाली बहुत सी बातों का समावेश था, इस लिये इस दुर्दिन में भी हिन्दू — मुसलमान दोनों जातियों के लोगों ने इन बेचारे फ़कीरों के इस दिव्य सन्देश को भली प्रकार सुना। सरकारी अफ़सरों ने शान्ति-रक्षा के नाम पर इन फ़कीरों को गाने से रोकना भी चाहा, परन्तु खुद हिन्दुओं की असहमति से वे ऐसा न कर सके।

(३)

अगले ही दिन प्रातःकाल हिन्दुओं ने कुम्भकरण की बड़ी मूर्ति का जुलूस बड़ी शान से

निकाला। शहर भर में यह जलूस घूमा, फिरा, परन्तु किसी प्रकार की कोई बाधा इस के मार्ग में उपस्थित न हुई। हिन्दू लोग खूब तैयार होकर इस जुलूस के साथ आये थे परन्तु आज यह पूर्ण-शान्ति देख कर उन्हों ने इतना सतर्क रहने की आवश्यकता न समझी, धीरे धीरे स्वयंसेवक जुलूस से अलग हो हो कर अपने अपने घरों की राह लेने लगे। जुलूस भी शहर से बाहर जा पहुँचा।

यह शानदार जुलूस शहर के बाहर आकर जब उस मस्जिद के सामने पहुँचा, जिस में कि वे तीनों अन्धे फ़क़ीर रहते थे, तब सहसा कुछ लठैत मुसलमानों ने जुलूस पर आक्रमण किया। हिन्दू लोग इस समय तैयार न थे; अतः कुछ हिन्दू बुरी तरह घायल हुए। इसी समय वे तीनों फ़क़ीर मस्जिद के पास के एक कमरे से भाग कर घटना-स्थल पर आ पहुँचे। यहां भीषण रूप से कोलाहल हो रहा था। ये बेचारे अन्धे पूर्ण-यत्न से मारपीट न करने के लिये उपदेश करने लगे। परन्तु वहां कौन किसी की सुनता था।

थोड़ी देर में सशस्त्र पुलीस घटना-स्थल पर आ पहुंची। आक्रमणकारी भाग गये, बहुत से लोगों को पुलीस ने कैद कर लिया। इन तीनों फ़क़ीरों को भी हिरासत में ले लिया गया; परन्तु जुलूस के साथ वाले हिंदुओं के कहने पर इन तीनों फकीरों को पुलीस ने छोड़ दिया।

शहर में यह समाचार आग की तरह फैल गया। बहुत से लोग इन्हीं फकीरों को दोष देने लगे। वे कहते थे कि ये फकीर बने हुए हैं, हसन-निज़ामी के चेले हैं; इन्हों ने ही हिन्दुओं की सतर्कता में बाधा पहुँचा कर उन्हें पिटवाया है। परन्तु इन फकीरों को सच्चा समझने वालों का भी अभाव नहीं था।

(४)

सायंकाल का समय था। सूर्य डूब चुका था, परन्तु अभी अंधेरा पूरी तरह नहीं हुआ था। मस्जिद के सामने शीशम के वृक्ष के नीचे, सब से बड़ा अन्धा फ़क़ीर, बालक हुसैन को अपनी गोद में लेकर बैठा हुआ था; बाकी दोनों फ़क़ीर भी उस के पास ही बैठे थे। सब चुपचाप थे। आज दोपहर की घटना के कारण तीनों बहुत उदास मालूम हो रहे थे। सब से बड़े फकीर का नाम उस्मान था, उसने अपनी दायीं टांग पर एक कपड़ा लपेट रक्खा था, आज की दुर्घटना में इस बेचारे को भी चोट आई थी।

सहसा एक कोमल हाथ ने उस्मान की पीठ का स्पर्श किया। उस्मान चौंक कर बोल उठा—"कौन है ?"

बालक हुसैन उस्मान की गोद से निकल कर उठ खड़ा हुआ। इसी समय आगन्तुक ने धीमी आवाज़ में कहा—"मैं एक अभागिन हिन्दू औरत हूँ।" बालक हुसैन आश्चर्य से उस रमणी को देखने लगा।

उस्मान ने फिर पूछा—"यहां क्यों आई हो ?"

रमणी ने जवाब दिया—"आप का आश्रय प्राप्त करने के लिये।"

उस्मान ने उस रमणी का परिचय पूछा। रमणी ने कांपती हुई स्वर में धीरे से कहा—"मेरा नाम लक्ष्मी है; मैं आज विशेष कारण से घर छोड़ कर भाग आई हूँ। कृपया मुझे अपने यहां स्थान दीजिये।"

बूढ़े उस्मान ने अभी कोई उत्तर नहीं दिया था कि मस्जिद में से मस्जिद का मौलवी बाहर निकल आया। तीनों फ़क़ीरों के पास एक अच्छे ख़ानदान

की हिन्दु महिला को ऐसे बेमौके खड़ा देख कर उस ने आश्चर्य से पूछा—"काका उस्मान, क्या माज़रा है?"

उस्मान ने मौलवी को सारी कहानी सुना दी। उस्मान की बात समाप्त होते ही मौलवी साहब ने कहा—"जनाब, ज़माना बिगड़ा हुआ है, आज की घटना से हिन्दू लोग आप के बर्खिलाफ़ हो रहे हैं, इस हालत में एक अच्छे ख़ानदान की हिन्दू औरत को अपने यहां रखने का हिन्दू लोग जो मतलब लेंगे वह मेरी समझ में आप के हक़ में न होगा, अतः सोच समझ कर काम कीजिये।"

वृद्ध उस्मान अब भी चुप ही था कि रमणी ने बड़ा ही करुणापूर्ण स्वर में कहा—"जनाब, मुझ पर मेहरबानी कीजिये मैं बहुत ही बड़ी विपत्ति में हूँ।"

रहमदिल बूढ़े उस्मान की दृष्टि-शून्य आंखों से दो बूद आँसू टपक पड़े। उस ने कोमल स्वर से कहा—"बेटी, कोई फ़िकर न करो। हम तीनों निस्सहाय अपाहिज पूरी कोशिश से तुम्हारी मदद करेंगे।"

लक्ष्मी ने कहा—"पिता, मैं आफ़त की मारी आप के पास रह कर आप की सेवा करना चाहती हूँ।"

उस्मान ने पूछा—"बेटी तुझे क्या तकलीफ है?"

लक्ष्मी की आंखों में आंसू भर आये, उसने बड़े विनय से कहा—"यह बात आप अभी मुझ से न पूछिए।"

इन फ़क़ीरों ने लक्ष्मी को निस्सङ्कोच अपने घर में स्थान दे दिया।

* * * *

अगले ही दिन लखनऊ में यह ख़बर बड़े ज़ोर से फैली हुई थी कि उन फ़क़ीरों ने एक अच्छे खानदान की हिन्दू स्त्री को बहका कर अपने फन्दे में फँसा लिया है। प्रायः लोगों को अब यह विश्वास होने लगा कि दशहरे की अशान्ति के मूल में यही तीनों फ़क़ीर हैं, ये धोखेबाज़ अवश्य ही हसन निज़ामी के चेले हैं।

उपर्युक्त घटना के दो दिन बाद ही, अर्थात् दशहरे से केवल एक दिन पूर्व—सदर बाज़ार के कोतवाल ने पांच कांस्टिबलों के साथ आ कर इन तीनों फ़क़ीरों और उस हिन्दू महिला को हिरासत में ले लिया।

(५)

लखनऊ डिस्ट्रिक्ट कोर्ट के सहन में आज बहुत अधिक भीड़ थी, हज़ारों की संख्या में हिन्दू और मुसलमान वहां उपस्थित थे। हिन्दू लोग खूब उद्विग्न थे; वे इन फ़क़ीरों की बड़ी तीव्र समालोचना कर रहे थे। जो अवस्था किसी बड़े षडयन्त्र का भेद खुलने के बाद सरकार की होती है, वही हालत हिन्दुओं की हो रही थी; मुसलमान भी कम आवेश में न थे। पुलीस के पचासों कांस्टेबल अदालत के सहन में उपस्थित थे; भीड़ को भंग करने का यत्न किया जारहा था परन्तु यह भीड़ कम होने के बजाय बढ़ती ही चली जा रही थी।

अदालत के हाल में लखनऊ के गण्य-मान्य नागरिक उपस्थित थे, आम जनता को अन्दर आने की इज़ाज़त नहीं थी। मुज़रिम के स्थान पर जज के सन्मुख तीनों अन्धे फ़क़ीर बैठे हुए थे; उन के पास ही सिर नीचा किये लक्ष्मी बैठी थी। तीनों फ़क़ीर यद्यपि खूब गम्भीर प्रतीत होते थे, तथापि वह उदास नहीं थे।

ठीक १० बजे अदालत ने लक्ष्मी को अपना बयान देने के लिये कहा। वह लज्जामयी अपना घूंघट हटा कर अदालत के सामने खड़ी हो गई। कमरे में बिल्कुल सन्नाटा छा गया।

अदालत ने पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है ?"

उसने उत्तर दिया—"लक्ष्मी ।"

अदालत ने पूछा—"तुम्हारी जात और पिता का नाम क्या है ?"

लक्ष्मी ने उत्तर दिया—"मैं ब्राह्मणी हूँ। अपने पिता का नाम मुझे स्मरण नहीं है।"

न्यायाधीश ने पूछा—"इन फ़कीरों से तुम्हारा क्या सम्बन्ध है ?"

लक्ष्मी ने उत्तर दिया—"मैं इन्हें अपना पिता समझती हूं ।"

न्यायाधीश ने फिर पूछा—"तुम्हारे घर छुड़वाने में इन फ़कीरों का तो कोई हाथ नहीं है ?"

लक्ष्मी ने स्थिरता से उत्तर दिया—"नहीं।"

अदालत ने कुछ देर तक चुप रह कर पूछा—"तुम्हारे पति जीवित हैं ?"

सारी जनता को चकित करते हुए लक्ष्मी ने कहा—"हां, जीवित हैं। वे पुरोहिताई करके अपना निर्वाह करते हैं।"

अदालत ने भी आश्चर्यान्वित होकर पूछा—"उन का नाम क्या है ?"

लक्ष्मी ने सब उपस्थित लोगों को बहुत बड़े अचम्भे में डालते हुए, आंखें नीची कर के धीरे से उत्तर दिया—"कासगंज मुहल्ले में रहने वाले पण्डित हरिहर शर्मा।"

अदालत ने चौंक कर कहा—"हैं ! वही प्रसिद्ध पुरोहित पण्डित हरिहर शर्मा !"

लोग लक्ष्मी का पूरा हाल जानने के लिये अत्यन्त उत्सुक हो उठे। पण्डित हरिहर शर्मा लखनऊ की जनता से अपरिचित नहीं थे। शहर भर में उन के बहुत यजमान थे—उन्होंने दो शादियां कर रक्खी थीं। लोगों ने समझ लिया कि यह देवी पण्डित हरिहर शर्मा की प्रथम विवाहिता पत्नी है। अदालत में उपस्थित सभी लोगों का रङ्ग ढङ्ग सर्वथा बदल गया; पर उन फ़कीरों के चेहरे पर ज़रा भी परिवर्तन न आया !

इसी समय अदालत ने प्रश्न किया—"बेटी लक्ष्मी ! तुम ने घर क्यों छोड़ा ?"

लक्ष्मी एक ठण्डा श्वास लेकर चुप रह गई।

अदालत ने समझा कि इतने लोगों के सामने लक्ष्मी इस प्रश्न का उत्तर देने में संकोच अनुभव करती है, इस लिये इन्होंने सब लोगों को बाहर चले जाने का हुक्म दिया। इसी समय लक्ष्मी ने अपने को संभालते हुए धीरे से कहा—"इन लोगों को बाहर करने की आवश्यकता नहीं है। मेरी सौत के अनुरोध से पतिदेव ने स्वयं ही मुझे घर से बाहर कर दिया था।"

लोगों के कान खड़े हो गये ! हिन्दुओं ने शर्म से अपनी आखें नीची कर लीं। मुसलमान गर्व से एक दूसरे की ओर देखने लगे।

मामला बिल्कुल और का और हो गया। लखनऊ के हिन्दुओं के नेता रायबहादुर मक्खन लाल अदालत के कमरे में से उठ कर बाहर आ गये और उन्होंने बड़े ज़ोर से उपस्थित जनता को असली मामला सुना दिया। रायबहादुर के भाषण ने जनता पर जादू का असर किया। लोगों का वह बड़ा समूह एक आश्चर्य-चकित निष्पाप बालक की तरह रायबहादुर की ओर देखने लगा।

इसी समय तीनों अन्धे फ़कीर भी अदालत से बहार निकल आये। लोगों ने इन फ़कीरों के जयनाद से आस्मान गुंजा दिया। परन्तु ये तीनों फकीर अब भी उसी तरह शान्त थे। अदालत के सहन से बाहर होते ही उन्होंने एक बहुत ही करुणापूर्ण गीत गाना शुरु किया। सब लोग उन के पीछे पीछे चलने लगे।

लखनऊ के सदर बाज़ार में आज तीसरी बार ये निष्पाप अन्धे फ़कीर एक साथ गाते हुए पाये गये। आज के इस गीत में एक निराला आकर्षण था जो हिन्दू मुसलमान दोनों के दिलों पर जादू का असर कर रहा था।

स्त्री शिक्षा पर पुरुष समाज की रुकावटें

(ले०—श्री पं० रमेशचन्द्र बहुखण्डी)



निवार की रात्री थी, मैं एक किताब हाथ में लेकर स्वाध्याय में व्यस्त था, किन्तु एकाएक छुटपने की बात स्मरण हो आई। जब मैं विद्यार्थी जीवन की सुखद अवस्था में था तो शनिवार को हमलोग, "गोल्डन नाइट" कहते थे। यह सोचकर सब लड़के शनिवार को पढ़ना छोड़ देते थे कि ओह! आजतो गोल्डन नाइट है। कलका सारा अनध्याय अपने आधीन है आज की कमी कल पूरी कर लेंगे। आज भी वही तरंगे हृदय-स्थल में उमड़ने लगीं। उधर अंगड़ाइयों ने भी अपना अड़ंगा जमाकर विचारों का समर्थन किया। नितान्त मुझे विवश होकर पुस्तक मेज़ के एक कोने में रख कर शय्या की शरण लेनी पड़ी। अभी लेटा भी न था कि दया की जागृत मूर्ति निन्द्रादेवी भी अपनी स्नेहगोद लेकर आगई और कुछ ही क्षण में मैं खुरांटे की नींद लेने लगा। वसन्त की रातें निन्द्राप्रिय होती हैं। यदि मुझ सरीखे निन्द्राप्रेमियों ने इसे अनुभव किया होगा तो उन्हें मालूम होगा कि बसन्त की इन लम्बी २ रातों में निन्द्रादेवी विशेष प्रेम के साथ निन्द्रित व्यक्ति को अपनाये रहती है। देहरा खटमल प्रधान नगरी है, और तिसपर मेरे साथ तो बेचारे विशेष ही मैत्री रखते हैं। किन्तु देवी निन्द्रे! मैं तेरी इस अकथनीय सहायता के लिये चिराभारी हूं कि तू मेरे उन निशाचर मित्रों की (जो प्रेमी का रूप भर कर मेरे खून के प्यासे बन कर आते हैं) कुछ नहीं चलने देती। देवी, इस कृपा के लिए तेरी जितनी भी स्तुति एवं अराधना की जाय वह सब कम ही है।

मैं खुरांटे की नींद में पड़ा हुआ था, किन्तु मेरा मनमानस न जाने किन विचार तरंगों में तरंगित हो रहा था। इधर उधर भटकने के पश्चात् वह स्वप्न जगत के सुखद नगर में प्रवेश करने लगा और कल्पना तथा ज्ञान की तमाम शक्तियों को केन्द्रित कर एक अद्भुत स्वप्न में आश्रय लेने लगा। आह! वह स्वप्न नहीं अपितु जीवन को जागृत करने वाला मन्त्र था जिसने मेरी सुप्तावस्था के विचित्र स्वप्न को जीवन-स्मारक बना दिया है। वह इस स्वप्न इस प्रकार था:—

"प्रभात का सुरम्य समय है। ठण्डी २ बयार चल रही है। अनेकों पक्षी लताकुञ्जों में बैठ कर मीठा २ स्वर अलाप रहे हैं। मानों वे ऋतुराज बसन्त का मंगल-प्रभात गारहे हों। समय की मनोहरता देख कर जी में आया कि उधर सामने बन की ओर भ्रमण करने चलूं और आज के अन्यध्याय का आनन्द लूटूं। अपना लगुड़िका हाथ में लेकर मैं धीरे २ प्रभात विनोदनी पर्वत-मालाओं की ओर बढ़ता जा रहा था। मैं कहां जारहा हूँ, क्या कार्य है, और मेरे संगी साथी कहां हैं?—इस का मुझे लेशमात्र भी ध्यान न था और होता भी कैसे, यदि जाग्रतावस्था मेंरहता तो भला मैं अपने विनोदी-मित्रों को छोड़ सकता था? किन्तु यह तो मेरा स्वप्नजगत का भ्रमण था। हाँ, मैं आगे २ बढ़ता गया। प्रकृतिदेवी के प्रभात-विनोद ने मुझे इतना उन्मत्त बना रखा था कि मैं कई बनों को

लांघता हुआ नदी नालों को पार कर गया किन्तु मेरे भ्रमण की यह मञ्जिल अब भी तय न हुई। अन्त में मैं चलते २ कल-कल निनादनी सलिल प्रवाहिनी किसी सरिता के सुरम्य कूल पर पहुंचा। स्थान निर्जन था, कोई भी प्राणी दृष्टि गोचर न होता था। हाँ, यदि उस समय का मेरा कोई साथी था तो भावों का अधिष्ठात्री प्रकृति देवी और उस की शोभा बढ़ाने वाले कूल के लता-निकुञ्ज तथा पक्षी वृन्द। ऐसे रमणीक स्थान में जी चाहा कि अपने सिरजनहार की गला फाड़ कर प्रशंसा करूं और उन्हीं के ध्यान में ध्यानावस्थित हो जाऊं। इसी समय अचानक पहाड़ के ऊपर मध्यस्थ में एक गगनचुम्बी अट्टालिका दृष्टिगोचर हुई, जिसने मुझे विचार सागर में डाल दिया। भगवान! इस जन शून्य स्थान में यह राजप्रसाद कैसे? कुछ समझ में न आया। कभी कल्पना कहती थी कि क्या यह ऋष्याश्रम है या प्रकृतिदेवी का विश्राम भवन? हो न हो यह किसी भुवनेश का ही राज-प्रासाद है जोकि मृगाखेट तथा मनविहार के लिए निर्माणित किया गया है। मेरे मन के कौतुहल ने यही निश्चय किया कि चलूं और उस गगनचुम्बी अट्टालिका का पता करूं कि वह किसने अलंकृत कर रखी है। ज्योंही मैं शीघ्रता से आगे २ बढ़ता जा रहा था त्योंही विचार तरंगे भी हृदयस्थल पर उथल पुथल मचा रही थीं। मन में विचार उत्पन्न हो रहे थे—ऐ वनपथ के राही! तू जिस अज्ञात पथ पर जा रहा है। विश्व नटवर के जिस अद्भुत दृश्य को देखने का तूने संकल्प किया है, उसे तेरे मन का उल्लास पूरा न होगा। क्योंकि इस अपरिचित स्थान में तेरा कोई नहीं, अतएव जाना व्यर्थ है। अपनी द्रष्टा-शक्ति का अनुरोध और विचार तरंगों के प्रतिरोध के मिश्रण रूपी प्रति-द्वन्द के फांस में फंसा हुआ मैं अन्त में उस राजप्रासाद नहीं, नहीं, ऋष्याश्रम तक पहुँच ही गया।

भवन के पार्श्व भाग में एक अदृश्य स्थान पर छिप कर मैं वहां की अद्भुत शोभा देखने में तल्लीन हो गया। यह भवन जो निर्माता के भवन-निर्माण कला की कला-कुशलता का परिचय दे रहा था, वह राजप्रासाद ही हो सकता है न कि ऋष्याश्रम। ऋषियों को इन पर्वतशिखाओं से बात करने वाली अट्टालिका से क्या काम, उन्हें तो कवि के शब्दों में "जंगल में ही बस मंगल है, महलों की परवाह नहीं, जटामुकुट यदि माथे पर हो, राज मुकुट की चाह नहीं।,,

प्रासादके चारों ओर कदली, रसाल तथा फ़सरी के वृक्ष सुशोभित हो रहे थे, लता द्रुम तथा निकुञ्जों ने तो अपनी सारी शक्ति वहीं बिखेर दी थी। भवन का सारा आवरण राजमहलों का था, किन्तु रहने वालों का आवरण तपस्विनियों का सा प्रतीत हो रहा था। भवन की छत पर दृष्टिपात करने पर एक पट तरुण-काया तपस्विनी ऋषि बालक-बालिकाओं से घिरी हुई उन्हें पाठ पढ़ती हुई नज़र आ रही थी। अहा! क्या ही हृदय को शान्ति देने वाला पाठ था। कानों में प्रतिध्वनि प्रतिध्वनित हो रही थी—"मां वसुन्धरे! हम तेरी सन्तान हैं हमारी यह मनुज देह तेरी सेवा के लिए ही है। हमारा इस पर कुछ अधिकार नहीं, यह तेरी ही धरोहर है। शक्ति शालिनी अम्बे! शक्ति दे, बल दे ताकि हम तेरी सेवा कर सकें। जाति का कष्ट और असहाय अबलाओं पर होने वाले निरंकुश अत्याचारों को दूर कर सकें। यही याचना है, यही इच्छा है।" तपस्विनी कहती जाती थीं और वे देव-कन्याएं नत-मस्तक हो लिखने में व्यस्त बनी हुई थी, मानों वे अपने जीवन का व्रत लिख रही हों और दीक्षा लेने के लिए उस तपस्या की जीती-जागती मूर्ति के सन्मुख आई हुई हों। मातृ-भूमि

की इस तपस्विनी के वाक्यों ने मेरे हृदय में भी उथल पुथल मचा दी और मैंने सोचा कि चल कर मैं भी उस श्रद्धेयदेवी के दर्शन करूं और प्रार्थना करूं कि हे माँ वसुन्धरा के बन्धनों को तोड़ने वाली, पापों का नाश करने वाली, 'वसुधैव कुटम्बकम्' के पाठ पढ़ानेवाली पूज्यदेवी ! मुझे भी शिक्षा दो। मैं भी मातृभूमि की सेवा की इस उच्चशिक्षा को लेना चाहता हूँ। यह सोच कर मैं आगे बढ़ा और उस तरुण तपस्विनी को मस्तक नवा कर पूछने लगाः—देवी ! इस निर्जन वन में इन देव-कन्याओं की संरक्षिका बन कर आप क्या मंत्र पढ़ा रही हैं और आप के अभिजन कहां हैं और कौन हैं? एकाएक अपरिचित व्यक्ति को सन्मुख देख कर देवी उठ खड़ी हुई और बैठने का स्थान प्रदान कर कहने लगीः—"मेरे बटोही भाई ! बैठ जाइये, मालूम होता है, आप कोई यात्री हैं और अपना मार्ग भूल कर ही इस एकान्त वन में आये हैं। बैठो अतिथि भैया, बैठकर आराम से जलपान ग्रहण कर आराम करो और अपना मार्ग जानलो कि तुम कहां से आये और कहां जाना चाहते हो फिर मैं तुम्हें आपनी बीती सुनाऊंगी। भगवती ने उन देव–कन्याओं की ओर इशारा कर के कहा—"जाओ और भोजनालय में से भोजन सामग्री तथा जल लाकर इन का आतिथ्य करो"। वे सुकुमारियां, जिन को मुखाकृति से ज्ञात होता था कि ये कोई राज कन्याएं हैं, उठीं और भोजनालय की ओर चली गई। मैं भोजन से निवृत्त होगया। ज्योंही उस पवित्र आश्रम की गाथा पूछने को उद्यत होना चाहता था त्यों ही देवी ने कहा–"भाई ! जान पड़ता है तुम दूर से आये हुए हो, अतएव कुछ विश्राम करलो ताकि तुम्हारी थकावट दूर हो जाय और फिर तुम अपने निर्दिष्ट मार्ग पर जाने में समर्थ हो सको।"

मैं वहां का हावभाव देख कर मंत्र मुग्ध सा होगया हृदय में भांति २ के विचार उठते और लीन होते जा रहे थे। कभी सोचता था कि क्या यह देवताओं की अमरावती तो नहीं है ? और यह देवी जो इस देवालय की अधिष्ठात्री बनी हैं, साक्षात् भगवती का रूप तो नहीं है ? हो न हो अपनी अनेकों सुकुमारियों का दुःख देख कर ही वह इस मृत्यु लोक में अवतार लेकर भूभार दूर करने आई है। कुछ भी हो किन्तु जबतक ज्ञात न हो जाय कि यह प्रभु की क्या माया है, तब तक मन शान्त नहीं होता। अन्त में न जाने कहां से दैवीय शक्ति ने मेरा साथ दिया और मैंने पूछा—"देवी आप की इच्छानुसार मैं आप के आतिथ्य सन्मान से कृतकृत्य हो गया हूं। अब आप कृपा पूर्वक मेरे कौतुहल को शान्त करें और अपनी तपस्या का ध्येय बताने की कृपा करें।, यह सुन कर देवी ने कहना शुरु कियाः—

"मेरे भोले भाई, तुम जाओ और अपने पथ के यात्री बनो। तुम संसारी जीव हो, तपस्विनियों से तुम्हें क्या काम है। जाओ और अपना मार्ग लो। परन्तु यदि सुनना ही चाहते हो तो सुनो और जी कड़ा कर के सुनो—

"मैं जिसे तुम आज तपस्विनी बता रहे हो, एक रोज इस राज–प्रासाद की मणिमुक्ता थी, इस भवन की प्रकाश और भुवनेश्वरी मानी जाती थी, मेरा सौभाग्य-सिन्दूर दूर तक चमकता था। हजारों लोग मेरे इस द्वार के आश्रित और इच्छुक रहते थे। जिस अट्टालिका ने आज तपस्या का रूप धारण कर रखा है। वह एक दिन मणिमुक्ताओं से सजी हुई अपनी शोभा से इन्द्रमहल को भी लज्जित कर रही थी। मेरे आराध्यदेव, जिनकी तपस्या में मैं जीवन के अवशिष्ट दिन बिता रही हूँ. मुझे अपनी धरोहर दे गये हैं। और वह धरोहर ये नन्ही २ बाल-बालि-

कार्ये हैं, जिनके भरण-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा की ज़िम्मेवारी इस अबला के निर्बल कन्धों पर पड़ी है। इस निर्जन वन में मैंने समाज तथा जाति की क्रूरता के कारण ही वास किया है। पुरुषों की निरङ्कुशता, निर्दयता तथा स्वार्थपरता ने मुझ अबला को, इस राजमहल को तपस्या का मठ बना कर रहने को विवश किया है। मैं चाहती हूँ, मेरे हृदय में निर्दयी पुरुष समाज के प्रति क्रोध के भाव जागृत नहीं क्योंकि मेरा रूप जगन्माता सीता, सावित्री एवं द्रौपदी का है। जिन्होंने अपनी एक ही आह से बड़े २ शक्तिशाली राज्यों का नाश कर दिया था। जिनके अश्रुपात से धरातल क्षार हो गया है। उसका प्रायश्चित भारतवर्ष अब तक भा नहीं कर सका है, तुम जानते हो कि मैं अपने अश्रुबिन्दुओं को धरातल पर क्यों नहीं फेंकती ? इस लिए कि कहीं मां वसुन्धरा भी मेरे आग्नेय अश्रुकणों से स्वाहा न हो जाय। कहीं महाभारत का सा विघ्न मच कर देश जाति के असंख्य नररत्न धराशायी न हो जांय, जिससे मेरी माता के बन्धन मुक्त होने में सदियां गुज़र जांय और बाधा पड़ती रहे ! मेरे दुःख के आंसू मेरा रक्त शोषण भले ही कर रहे हैं। इसकी मुझे कुछ चिन्ता नहीं, किन्तु मुझ से अपने समाज तथा जाति का ह्रास नहीं देखा जा सकता है। उस पर उत्सर्ग होने के लिए ही मैं अपने हृदय के टुकड़े, इन सुकुमारियों को तैयार कर रही हूँ कि ये कभी माता को बन्धनमुक्त करा सकें, देश की नाशकारी कुप्रथाओं का विध्वंस कर अपने अबल समाज को सबल समाज बना सकें ! तुम्हें मालूम है कि मुझे दुःख देने वाले कौन हैं ? इन सुकुमारी बालिकाओं को क्षुधा पीड़ित देख कर भी किसकी छाती बज्र के समान कठोर बनी हुई है। वह हैं अपने ही आत्मीय और अपने ही कुटम्बी। कुटम्बी भी वे, जिन्होंने एक रोज 'माता' ! सम्बोधन कर इन चरणों में मस्तक नवाया है। क्या मैं नहीं जानती कि पुरुष समाज कितना हत्यारा और निर्लज्ज बन गया है। जो अपनी माताओं, बहिनों और बालिकाओं का रक्त शोषण करके भी नहीं अघाता। जाओ मेरे सन्मुख से हट जाओ, तुम भी उसी पिचाशसमाज के सदस्य हो, जो अपने को सभ्य कहता हुआ भी अपने आर्द्धाङ्ग, स्त्री समाज; को रसातल में पहुँचा रहा है। जाओ उठो ! मेरे आश्रम में वही सुकुमारियां प्रविष्ट हो सकती हैं जो मेरी पवित्र भावनाओं को समझ सकती हैं। तुम ! ओह ! तुम समाज के हत्यारे पुरुष क्या समझोगे। तुम्हें तो जगदम्बा ने हृदय होते हुए भी हृदयहीन बना दिया है। दया होते हुए भी निर्दयी और लज्जा होते हुए भी निर्लज्ज कर दिया है। जो अपनी माता, बहिनों की इतनी अधोगति करना चाहते हो। उठो, मेरे आश्रम को खाली कर दो। "

मैं अपने कौतुहलमय विचित्र स्वप्न में मग्न था और खुर्राटे ले रहा था कि अचानक पत्नी ने मेरे मुँह से ओढ़ना उठा कर कहा "क्या उठोगे नहीं ? रात को जल्दी सो जाने पर भी अभी तक तुम्हारी नींद समाप्त होने पर नहीं आती।" उठ कर जो बाहर दृष्टि डाली तो दिन चढ़ आया था। उठा, किन्तु अपने इस आश्चर्यजनक स्वप्न को स्मरण कर स्तम्भित हो गया कि हे भगवान ! यह क्या माया है। जो बातें कल्पना में भी नहीं उठतीं थीं वह स्वप्नावस्था में कैसी प्रगट हुई। जी में आया कि रात के इस स्वप्न को लिख डालूं, यह सोच कर ज्योंहीं कलम दवात उठा कर लिखने को उद्यत हुआ कि किसी ने दरवाजे से आवाज़ दी—" चिट्ठी ले लो। " मैं उठा और चिट्ठी लाकर देखा—एक नवीन लिपी है, जिसको आज से पूर्व मैंने कभी नहीं देखा था, पत्र खोला और पढ़ना आरम्भ किया पढ़ कर में स्तब्ध

हो गया, हृदय धड़कने लगा और अपने स्वार्थी पुरुष समाज पर रोश आने लगा। अभी क्षण भर पहिले मुझे लेश-मात्र भी आशा न थी कि मेरा स्वप्न जागृत सत्य घटना से भरा पड़ा होगा किन्तु इस पत्र ने मेरे स्वप्न को सत्य कर डाला। वह पत्र इस प्रकार है:—

प्रियबन्धु ! सादर नमस्कार,

आप इस पत्र को देख कर आश्चर्य करेंगे कि यह किसका पत्र है, किन्तु आश्चर्य करने की बात नहीं इस पत्र की प्रेषिका आपकी बहिन है। मैं कौन हूँ, कहां की हूं, यह लिखना उचित नहीं है, हां सारांश में इतना लिख सकती हूं कि मैं एक दुखिया हूं और अपने आत्मीय जनों से दुखाई हुई एक अबला हूँ। न जाने मेरे सदृश कितनी ही असहाय अबलाओं का खून पीकर हमारा हत्यारा समाज सभ्य बन रहा होगा। किन्तु उन बेचारियों में प्रगट होने की, अपनी करुणा-गाथा बताने की शक्ति नहीं जिस से वे मूक भाव से हत्यारे समाज को शिकार बन कर पशुवत बली हो जाती हैं। मेरे पूज्य पतिदेव की असीम कृपा और अपने परिश्रम से मेरे में वह शक्ति है कि मैं आप भाईयों से अपना दुःख बांट सकती हूँ और पत्ररूप में यदा—कदा अपने भाव प्रकट कर सकती हूं।

इस समय मेरी आपसे सादर अभ्यर्थना यह है कि मेरे पास आप की दो भानजी हैं। जिन के विद्याध्ययन करने की अवस्था व्यर्थ जा रही है। और इसका कारण मेरी निर्धनता तथा

स्त्री शिक्षा पर पुरुष समाज की रुकावटें हैं।

मैं एक दिन राजरानी थी यह पढ़ कर आपको आश्चर्य होगा ? इन हाथों से हज़ारों का दान पुण्य किया है और लक्ष्मी के ऊपर लेटती रही हूँ, किन्तु आज दैव दुर्विपाक से पेट के लाले तक पड़े हैं। मेरी सुकुमारियां जो एक दिन दूध ही से अघाती थीं, अब कभी २ कच्चे अमरूदों से अपनी क्षुधा शान्त करती हैं। समाज तथा कुटम्बियों की हृदय कठोरता के कारण मुझ निराधार अबला को अपने हृदय के टुकड़े इन कुमारियों के लिए दूसरों की सहायता लेनी पड़ रही है। अस्तु, दैव ने जो कुछ भी किया है वह श्री कृष्ण भगवान् के इन वाक्यों के अनुसार सहना होगा कि 'अवश्यमेव भोक्तव्यम्, जन्मकृतं शुभाशुभम्' अतः बालिकाओं की शिक्षा का पैतृक भार मेरे प्राणाधार मुझे छोड़ कर स्वर्गारोही हो गये। कुटुम्ब के अधिष्ठाता असंख्य धन सम्पति लेकर भी हमारे भरण-पोषण का उत्तरदायित्व छोड़ बैठे हैं, जिससे अबला तथा निसहाय होती हुई भी मुझे सदैव इनकी शिक्षा के लिए चिन्तित रहना पड़ता है।

सुना है कि आप एक ऐसी संस्था में रहते हैं, जहां भारत की अनेकों कुलबालाओं की शिक्षा-दीक्षा होती है। कई समाचार-पत्रों में उस संस्था की प्रशंसा पढ़ी है। अतः आपकी यह बहिन आप से सानुरोध प्रार्थना करती है कि संस्था के अधिकारियों तथा आर्य समाज या किन्हीं अन्य शिक्षा प्रेमियों से यदि आप अपनी इन भानजियों की शिक्षा का प्रबन्ध करवा सकें तो इस पुण्य कार्य के लिये मैं और मेरी सुकुमारिया भी आपको आशीर्वाद देंगी। आशा है, एक बहिन तथा भानजियों के लिये आप यह यत्न अवश्य करेंगे और पुण्य के भागी बनेंगे।

आपकी दुखिया बहिन—

एक देवी।"

रविवार का दिन था। परिवार वालों के अनुरोध पर हम सब घूमने जाने वाले थे, किन्तु पत्र की इन पंक्तियों ने मुझे हक्का-बक्का सा बना दिया था, मैं पारिवारिक-जनों को इसके अतिरिक्त कि तुम लोग जाओ, मेरा स्वास्थ्य ठीक न होने से मैं नहीं आ सकता और कुछ न कह सका।



१. मेरठ शड्यन्त्र का अभियोग

मेरठ-शड्यन्त्र का मामला अभी विचाराधीन है, इस लिये कानून की रूह से उस पर अपनी राय प्रकाशित करना अवैध समझा जाना चाहिये। परन्तु यह मामला कुछ ऐसी परिस्थितियों में चलाया जा रहा है कि प्रायः बहुत से अख़बार इस विचारधीन मामले पर, उलट फेर कर, गोलमाल शब्दों में किसी न किसी तरह अपनी राय प्रकट करते ही रहते हैं। खास कर इस देश के कुछ गोरे तथा कतिपय विलायती अखबारों ने तो शायद मेरठ-केस को कानून का एक अपवाद ही समझ रक्खा है। मेरठ केस के अभियुक्तों की यह प्रबल शिकायत है कि अनेक गोरे अख़बार इस मामले पर, खुले तौर से अपनी राय ज़ाहिर कर रहे हैं—और उन की इन रायों का जनता पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। अदालत ने अभी तक इन अख़बारों से किसी प्रकार की कैफ़ियत तलब नहीं की। मालूम नहीं कि इस सम्बन्ध में कोई कैफ़ियत तलब की भी जायगी या नहीं। पिछले दिनों वायसराय महोदय ने चैम्सफोर्ड क्लब में जो भाषण दिया था, उस में उन्होंने भी मेरठ केस के सम्बन्ध में अनेक बातें कहीं थीं। मेरठ केस के अभियुक्तों को शिकायत है कि वायसराय के इस भाषण द्वारा उन के बख़िलाफ़ देश के बहुत से लोगों में अनेक ग़लतफ़हमियां फैल गई हैं, उन्हें हटाने के लिये वे लोग अदालत से अवसर चाहते हैं। वायसराय के उस भाषण से लोगों में मेरठ-केस के अभियुक्तों के सम्बन्ध में कोई ग़लतफ़हमी फैली है या नहीं, यह तो हम नहीं कह सकते; परन्तु यह हमारी पूर्ण-धारणा है कि वायसराय ने उस भाषण में एक विचाराधीन मामले पर खुले रूप में अपनी राय अवश्य प्रकाशित की है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मेरठ केस के सम्बन्ध में अनेक दिशाओं से कानून का उल्लंघन किया जा रहा है। सरकार के हिमायती लोग अपनी राय जाहिर करने के प्रलोभन का सम्वरण करने में असमर्थ सिद्ध हो रहे हैं। तथापि हम स्वयं इस सम्बन्ध में कानून का उल्लंघन नहीं करेंगे।

यह होते हुए भी मेरठ केस के सरकारी वकील के भाषण पर कुछ लिखना अनुचित न होगा। इस केस में सरकार के मुख्य वकील श्रीयुत् लैंगफोर्ड जेम्स नियुक्त हुए हैं। आप इस के लिये ७५ पाउण्ड दैनिक वृति प्राप्त कर रहे हैं। इस केस के लिये जेम्स महोदय ने साम्यवाद का अच्छा अध्ययन किया है। आप के कथनानुसार

लेनिन और उस के अनुयाई रूसी राजनीतिज्ञों का यह सब से बड़ा सिद्धान्त है कि साम्यवादी विचारों का प्रसार संसार भर में तलवार के ज़ोर पर किया जाय। इस लिये जो लोग लेनिन के सिद्धान्तों को मानने वाले हैं, अथवा 'तीसरे अन्तर्राष्ट्रीय'—साम्यवादी विचारों का संसार में प्रसार करने के लिये रूस में यह संगठन बनाया गया था—के सदस्य हैं, वे सब संसार की शान्ति और व्यवस्था के लिये खतरनाक प्राणी हैं। अतः इन विचारों का बीजनाश कर देना चाहिये। आप ने यह भी कहा है कि ये साम्यवादी न खुदा को मानते हैं न धर्म को, न देश को मानते हैं, न सभ्यता को, न राजा को मानते हैं और न पूंजिपतियों को— इस लिये ये लोग समाज के लिये खतरनाक हैं, असह्य हैं। साथ ही आपने अभियुक्तों के पत्र व्यवहार आदि द्वारा यह सिद्ध किया है कि ये लोग साम्यवादी हैं और रूस के 'तीसरे अन्तर्राष्ट्रीय' से इन का सम्बन्ध है। वहाँ से ये लोग आर्थिक सहायता प्राप्त करते रहे हैं।

श्रीयुत जेम्स का यह प्रारम्भिक भाषण बहुत लम्बा था। अदालत की चार दिनों की बैठकों में यह भाषण समाप्त हो सका। अभियुक्तों के वकीलों की सम्मति में यह भाषण एक साम्यवाद के विरोधी प्रचारक का 'धर्मोपदेश' था, इस कारण उन्होंने बार बार अदालत से इस बात का अनुरोध किया कि अदालत 'धर्मोपदेश' का स्थान नहीं है इस लिये यह भाषण बन्द किया जाय। परन्तु वकीलों की इस विप्रतिपत्ति पर अदालत ने अभी तक कोई निर्णय नहीं दिया है। अभियुक्तों के वकील दीवान चमनलाल का कहना है कि लैंगफोर्ड जेम्स का भाषण भारतवर्ष के प्राचीन ब्राह्मणों की देहातों में की जाने वाली कथाओं के समान है। अदालत कथा करने का स्थान नहीं है, चाहे कथा करने वाला व्यक्ति अंग्रेज ही क्यों न हो। खैर, अबतो यह कथा समाप्त हो ही गई।

हमें तो श्रीयुत् लैंगफोर्ड जेम्स की स्पीच पढ़ कर वह दृश्य स्मरण हो आता है जब रोमन कैथोलिक लोग प्रोटैस्टेण्ड धर्मानुयाइयों पर यह दोषारोप कर के कि ये लोग समाज की वर्तमान व्यवस्था तथा विश्वासों पर शैतान की तरह कुठाराघात करने वाले हैं, उन्हें प्राणदण्ड दे दिया करते थे। लण्डन के प्रतिष्ठित पत्र 'डेली हेराल्ड' ने —जिसे मज़दूरदल का मुखपत्र समझा जाता है—मि० जेम्स के भाषण की बहुत तीव्र समालोचना की है। 'डेली हेराल्ड' का कथन है कि श्री जेम्स ने अपने भाषण में यह बात छोड़ कर और कुछ सिद्ध नहीं किया कि ये मेरठ षड्यन्त्र के अभियोगी साम्यवादी हैं। इन्होंने क्रान्ति के लिये कोई षड्यन्त्र रचा था-इस बात पर जेम्स महोदय ने ज़रा भी प्रकाश नहीं डाला। इस बीसवीं सदी में किसी व्यक्ति या व्यक्ति-समूह पर केवल उस के विचारों के कारण अभियोग चलाना सर्वथा निन्दनीय है।'

आजकल इङ्गलैण्ड में मज़दूर दल का मन्त्रिमण्डल शासन कर रहा है। पिछले निर्वाचन में इस दल ने अपने घोषणापत्र में इस बात की सूचना खुले आम दी थी कि मज़दूर दल बृटेन और रूस के पारस्परिक सम्बन्ध को मित्रतापूर्ण बनाने का प्रयत्न करेगा। इस घोषणा के अनुसार वर्तमान मन्त्रिमण्डल ने अपना कार्य प्रारम्भ भी कर दिया है। दूसरी ओर इङ्गलैण्ड के आधीनस्थ देश, भारतवर्ष में, सरकार एक जनसमूह पर केवल इसी कारण अभियोग चला रही है, उस के लोगों का साम्यवादी सिद्धान्तों पर विश्वास है और रूस

सरकार की मदद से ये लोग अपने देश में साम्यवाद का प्रचार कर रहे हैं। यह समझना बड़ा कठिन है कि इस दुरंगी चाल का समन्वय किस प्रकार किया जा सकता है।

२. मजदूर दल का कार्य

इङ्गलैण्ड के इतिहास में पहली बार सम्राट् का भाषण मज़दूर दल के मन्त्रिमण्डल को तैयार करने का अवसर मिला है। सम्राट् का यह भाषण हम लोगों के लिये ज़रा भी महत्वपूर्ण नहीं है, क्यों कि इस में भारतवर्ष के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया। प्रधानमंत्री महोदय का कहना है कि भारतवर्ष के प्रश्न पर पार्लियामेन्ट की एक कमेटी बहुत गम्भीरता से विचार और जांच-पड़ताल कर रही है, इस अवस्था में इस प्रश्न पर अभी से कोई घोषणा करना उचित नहीं था, इसी कारण सम्राट् के भाषण में, भारवर्ष के सम्बन्ध में कोई बात नहीं कही गई। हमें प्रधान मंत्री की इस कैफ़ियत से सन्तोष नहीं हुवा। क्या सम्राट् के भाषण में कोई बात ऐसी नहीं कही गई, जिस पर पार्लियामेन्ट का कोई कमीशन विचार कर रहा हो? ऐसी अनेक बातें कही गयी हैं। तब भारतवर्ष के प्रश्न की कोई मीमान्सा न करने का हमें हो यही मतलब समझ में आता है कि मज़दूर दल की इस प्रश्न पर अपनी कोई निजू राय है ही नहीं। अन्य प्रश्नों पर मन्त्रिमण्डल के अपने सिद्धान्त विद्यमान थे, उन सिद्धान्तों के अनुसार वर्तमान परिस्थितियों में मज़दूर दल का मन्त्रिमण्डल जो कुछ कर सकता है, उस का प्रतिपादन उस ने सम्राट् के भाषण में कर दिया है, परन्तु भारतवर्ष के सम्बन्ध में वह स्वयं कुछ नहीं करना चाहता। पार्लियामेन्ट के अन्य दो दल, विशेषतया उदारदल; इस सम्बन्ध में जिस नीति का अनुसरण करने को कहेंगे, मंत्रिमण्डल उसी का अनुमोदन करेगा। दूसरे शब्दों में भारतवर्ष के लिये इस समय श्रीयुत रैम्ज़े मैकडानल्ड प्रधान-मंत्री नहीं, उस के लिये श्री साइमन या श्री लायडजार्ज ही प्रधान मंत्री हैं।

फिर भी, वर्तमान प्रधानमंत्री की स्पष्ट मनोवृत्ति को देख कर हमें कुछ प्रसन्नता हुई है। उन्होंने पिछले प्रधान मंत्री की तरह सत्य को छिपाने का प्रयत्न नहीं किया। साइमन कमीशन के प्रसङ्ग में आप ने इस बात को खुले शब्दों में स्वीकार किया है कि भारतवर्ष की जनता के प्रभावशाली नेताओं ने कमीशन के साथ सहयोग नहीं दिया। प्रधान-मंत्री ने इस बात पर दुःख भी प्रकाशित किया है और यह आशा की है कि अब भी भारतीय जनता के नेता हमें सहयोग देंगे। अब तक इङ्गलैण्ड की राजनीति के कर्णधार साइमन कमीशन के प्रति भारतवर्ष की मनोवृत्ति को छिपाने में ही अपना कल्याण समझते रहे हैं, परन्तु श्रीयुत रैम्ज़े मैकडानल्ड ने साहसपूर्वक उस घृणित और हानिकर प्रवृत्ति से अपनी असहमति प्रकाशित कर दी है। इस सत्यवादिता के लिये हम इङ्गलैण्ड के वर्तमान प्रधानमन्त्री को बधाई देते हैं।

वर्तमान मंत्रीमण्डल के सन्मुख सब से बड़ा प्रश्न अपने देश की बेकारी की समस्या को हल करने का है। लोगों का विश्वास है कि इसी प्रश्न के कारण ही मज़दूर दल इस निर्वाचन में विजय प्राप्त कर सका है। मज़दूर दल ने इस सम्बन्ध में अपना कार्य भी प्रारम्भ कर दिया है। गत ३ जुलाई को पार्लियामैन्ट में श्रीयुत् थौमस ने मंत्रिमण्डल की ओर से बेकारी की समस्या को हल करने के लिये जो घोषणा की थी, वह कोई बहुत महत्वपूर्ण

घोषणा नहीं है। उस में कहा गया था कि सरकार शीघ्र ही अनेक बड़े बड़े रचनात्मक कार्य अपने हाथ में लेना चाहती है, वह टेम्ज़ नदी पर कई नये पुल बांधना चाहती है, कई नई इमारतें बनवाना चाहती है। इन कार्यों में हजारों मज़दूरों की आवश्यकता होगी।' परन्तु बेकारी की समस्या को हल करने का यह उपाय बिलकुल उथला है। इस से तो अधिक से अधिक ४ या ५ वर्ष के लिये ही बेकारी की समस्या कुछ अंश तक हल हो सकेगी। उस के बाद जब ये कार्य समाप्त होजांयगे-तब फिर वही समस्या सन्मुख आखड़ी होगी।

परन्तु इङ्गलैण्ड का वर्तमान मंत्रीमण्डल बेकारी की समस्या को हल करने के लिये, केवल उपर्युक्त उथले उपाय को ही काम में लाने का प्रयत्न नहीं कर रहा। उस के सन्मुख इस सम्बन्ध में कुछ बहुत अधिक महत्वपूर्ण स्कीमें भी हैं। इस में से एक स्कीम का आभास वर्तमान अर्थ-सदस्य श्रीयुत् स्नौडन के एक भाषण से मिलता है। श्रीयुत् स्नौडन इङ्गलैण्ड के सर्वोच्च कोटि के अर्थशास्त्रज्ञ माने जाते हैं। मज़दूरदल को इन की योग्यता पर अभिमान है। आपने अपने भाषण में कहा था-"इङ्गलैण्ड की बेकारी की समस्या को हल करने का एक बहुत आसान और प्रबल उपाय हमारे पास है। यह उपाय है-इङ्गलैण्ड के पक्के माल को अधिक मात्रा में बेचने का प्रयत्न। हमारे पास भारतवर्ष नाम का ३२ करोड़ आबादी का एक देश है। इस देश के निवासी बहुत निर्धन हैं। यदि हम प्रयत्न करके इन लोगों की आय बढ़ा सकें, तो भारतीय लोग हमारा माल और अधिक मात्रा में लेने लगेंगे। भारतीयों की आर्थिक दशा को उन्नत करने का अभिप्राय है-उन की क्रयशक्ति को बढ़ाना और उन की क्रयशक्ति बढ़ने का अभिप्राय है,—इङ्गलैण्ड के माल का अधिक बिकना। भारतवर्ष की आर्थिक दशा वहां की कृषि को और वहां के व्यापार को अधिक उन्नत करके सुधारी जा सकती है। हम थोड़ा सा प्रयत्न कर के ही यदि प्रत्येक भारतवासी की औसतन साप्ताहिक आय में केवल एक आना और वृद्धि कर सकें, तो इस का अभिप्राय यह है कि भारतवर्ष में हमारे देश के ६० करोड़ रुपयों की कीमत के माल की खपत बढ़ने की गुञ्जाइश बढ़ जायगी। यदि हम लोग सचमुच कुछ गहरा अध्यवसाय करें, तो प्रत्येक भारतीय की साप्ताहिक आय में बारह आना वृद्धि होजाना भी कुछ कठिन नहीं है। यदि ऐसा हो सके तब तो इस से इङ्गलैण्ड और भारतवर्ष दोनों देशों की बेकारी की समस्या स्वयं हल होजायगी। और इङ्गलैण्ड में हज़ारों नये करघे चलने लगेंगे।"

अर्थ-सदस्य के इस भाषण का अभिप्राय यद्यपि यही है कि बकरे से अधिक मांस प्राप्त करने के लिये इसे खिला पिला कर मोटा किया जाय। तथापि इस नीति को हम एक नई मनोवृत्ति का परिचायक मानते हैं। इस नीति से इङ्गलैण्ड को तो लाभ है ही, साथ ही भारतवर्ष को भी कुछ अंश तक लाभ अवश्य होगा। इस नीति का आधार-सूत्र है—"भारतवर्ष की आर्थिक उन्नति में ही इङ्गलैण्ड का आर्थिक लाभ सन्निहित है।" भारतवर्ष के पुराने नेता बीसियों बार इसी महामन्त्र का पाठ करते रहे हैं, परन्तु इङ्गलैण्ड के मदान्ध राजनीतिज्ञ अब तक सदैव इस सिद्धान्त को उपेक्षा की दृष्टि से देखते रहे हैं। मि० स्नौडन ने रोग के वास्तविक निदान को समझ लिया है, यदि वह इस के अनुसार कार्य करेंगे, तब इङ्गलैण्ड और भारतवर्ष दोनों का भला होगा—इस में सन्देह नहीं।

३. कांग्रेस की कार्य समिति के निश्चय.

पिछले मास बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की जो बैठक हुई थी–उस के निर्णयों पर देश में बहुत बड़ा मतभेद उठ खड़ा हुआ है। अखिल-भारतीय कांग्रेस कमेटी ने यह निर्णय किया था कि व्यावस्थापिका सभाओं में कांग्रेस के टिकट पर जिन लोगों ने प्रवेश पाया है, वे लोग व्यवस्थापिका सभाओं के आगामी अधिवेशन में सम्मिलित नहीं। क्योंकि वायसराय तथा प्रान्तीय गवर्नरों ने देश की इच्छा के प्रतिकूल आगामी निर्वाचनों को स्थागित कर के देश का अपमान किया है। इस दशा में कांग्रेसी सदस्यों को अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार किसी उग्रतम वैध उपाय का आश्रय लेना चाहिये।” परन्तु बहुत सी प्रान्तीय सभाओं के स्वराजी सदस्य कांग्रेस के इस निर्णय से अत्यधिक असन्तुष्ट हैं। उन का कथन है कि हमें कौन्सिलों के आगामी अधिवेशन में अनेक महत्वपूर्ण काम करने थे। किसी प्रान्त की कौन्सिल में मज़दूरों के हितों का कोई बिल पेश है तो किसी प्रान्त में छोटे बच्चों की रक्षा का और किसी में किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारने का। अधिकांश कांग्रेसी सदस्यों का कहना है कि कम से कम हमारे प्रान्त को तो इस निर्णय के बन्धन से मुक्त कर देना चाहिये, क्योंकि यदि हम कौन्सिलों से बाहर रहे तो हमारे प्रान्त को अमुक अमुक हानि होने की सम्भावना है।’ इन्हीं सब फरमाइशों पर विचार करने के लिये पिछले दिनों दिल्ली में कांग्रेस की कार्य समिति की बैठक बुलाई गई थी। इस समिति में राष्ट्रपति पं० मोतीलाल नहरू के अतिरिक्त महात्मा गांधी, पं० मदनमोहन मालवीय, डा० अंसारी, पं० जवाहरलाल नहरू आदि प्रभावशाली नेता उपस्थित थे। कार्य समिति ने बम्बई के निर्णयों का समर्थन तो किया है, परन्तु उसने प्रान्तों की फरमाइशों की गुरुता को भी भली प्रकार अनुभव कर के यह निर्णय किया है कि आगामी २ जुलाई को अलाहाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का पुनः अधिवेशन किया जाय। वह इस प्रश्न पर पुनःविचार करेगा।

व्यवस्थापिका सभाओं के जो प्रभावशाली कांग्रेसी सदस्य बम्बई के निर्णय का विरोध कर रहे हैं, उन की मनोवृत्ति को देख कर हमें दुःख होता है। उन्हें यह स्मरण रखना चाहिये कि जिन दिनों कौन्सिल प्रवेश का प्रश्न उठा था, उन दिनों स्वराज्य दल के नेता बारम्बार इसी आधार पर तो जनता से अपील किया करते थे कि हम कौन्सिलों को तोड़ने के लिये ही उन में जा रहे हैं। हम नौकरशाही के किले के अन्दर पहुँच कर उस से मोरचा लेंगे। इतना ही नहीं, प्रत्येक वर्ष की कांग्रेस बिना अपवाद के कांग्रेसी सदस्यों के लिये इसी नीति की घोषणा करती रही है। विशेषकर कलकत्ता कांग्रेस ने तो इस सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से उपर्युक्त सिद्धान्त की घोषणा की थी। परन्तु आज मौका आने पर कांग्रेस के सदस्य भी अपने कौन्सिल-मोह के कारण केवल एक सत्र के लिये कौन्सिलों से बाहर रहना पसन्द नहीं कर रहे हैं। यदि इन्हें सचमुच यह विश्वास है कि कौन्सिलों से हम अपने देश की यथेष्ट सेवा कर सकते हैं और ये कौन्सिलें केवल खिलौना मात्र नहीं हैं, तो उन्हें चाहिये कि वे कांग्रेस के सदस्यत्व से त्याग-पत्र दे दें। यदि उन्हें कांग्रेस का कौंसिल सम्बन्धी मन्तव्य सच्चे दिल से स्वीकार है तो उन्हें इस सम्न्ध में कोई बहाना या ननुचन नहीं करना चाहिये।

कलकत्ता कांग्रेस ने देश भर के प्रतिनिधि रूप से सरकार को यह चुनौती दी थी कि वह एक वर्ष में भारतवर्ष को औपनिवेशिक स्वराज्य दे दे-अन्यथा देश सम्मिलित रूप से पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति के लिये पुनः असहयोग आन्दोलन का प्रारम्भ करेगा। यह बात सभी लोग जानते और समझते हैं कि केवल कहने मात्र ही से देश की यह चुनौती सरकार पर कोई प्रभाव नहीं डालेगी, इस के लिये हमें देश को तैयार करना होगा। महात्मा गांधी ने इस तैयारी के लिये एक विस्तृत कार्यक्रम बना भी दिया है। यह कार्यक्रम कांग्रेस स्वीकार कर चुकी है। परन्तु अब देखना यह है कि इस कार्यक्रम को पूरा कौन करे। यदि कांग्रेस के टिकट पर कौंसिलों में जाने वाले सज्जन—जो इसी आधार पर अपने को प्रान्त का या देश का नेता समझते हैं—इस कार्यक्रम को पूरा करने के लिये नेतृत्व नहीं करेंगें तो दूसरा कौन व्यक्ति यह काम करेगा? इस पर सरकार ने आजकल बात बात में देश का अपमान करने की कसम उठा ली है। एक ओर देश की अनिच्छा होते हुए भी आगमी निर्वाचनों को स्थागित कर दिया गया-दूसरी ओर देश भर में धरपकड़ और खाना तालाशी हो रही है, तीसरी ओर देश का साहित्य कुचलने का प्रयत्न हो रहा है। इन परिस्थितियों में भी व्यवस्थापिका सभाओं के कांग्रेसी सदस्य यदि केवल एक सत्र के लिये भी अपना कौंसिल-मोह नहीं छोड़ सकते तो हम कहेंगे कि वे कर्तव्यच्युत हो रहे हैं— वे सम्मोह में पड़ गए हैं। हमें इस बात पर अभी तक सन्तोश है कि किसी प्रान्त की कांग्रेस ने अभी तक इस प्रश्न पर विद्रोह का झण्डा खड़ा नही किया। क्या हम आशा करें कि इस प्रश्न पर अपनी विभिन्न वैयक्तिक रायों के रहते हुए भी, एक भी कांग्रेसी सदस्य, कांग्रेस के निर्णय का—वह चाहे जो कुछ कुछ भी हो—क्रिया में खण्डन नहीं करेगा।

हाल ही में राष्ट्रपति पं० मोतीलाल नहरू ने बंगाल के कांग्रेसी सदस्यों को अपनी प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा में सम्मिलित होने की आज्ञा देदी है। इस पर भी अन्य प्रान्तों में भारी असन्तोश उठ रहा है। परन्तु हमारी सम्मति में इस पर नाराज़ होने की कोई बात नहीं है। बंगाल तथा अन्य प्रान्तों की वर्तमान परिस्थितियों में भारी भेद है। बंगाल में प्रान्तीय कौंसिल के निर्वाचन स्थगित नहीं किये गये अतः वहां इस दृष्टि से प्रान्त का अपमान नहीं हुवा। जब अन्य प्रन्तों में नए निर्वाचन होंगे तब कांग्रेस उन्हें भी व्यवस्थापिका सभाओं के अधिवेशनों में सम्मिलित होने से न रोकेगी। इस कारण, इस सम्बन्ध में असन्तुष्ट होने की कोई वजह नहीं है। हमें तो कांग्रेस के वर्तमान निर्णय में व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों का वैयक्तिक लाभ भी दिखाई देता है। क्योंकि यदि केवल एक सत्र का कौन्सिल मोह छोड़ कर वे अपने अपने निर्वाचन क्षेत्र में रचनात्मक काम करेगें, तब आगामी निर्वाचन में, उन के चुने जाने में कोई सन्देह नहीं रहेगा।



कन्या गुरुकुल समाचार



ऋतु

देहरादून में आज कल ऋतु बहुत सुहावनी है। चारों तरफ़ हरियावल ही हरियावल दीख रही है। जो ज़मीन आज से एक मास पूर्व बिल्कुल सूखी, बंज़र तथा मरुस्थली बनी हुई थी, वही आज हरे भरे खेतों से पूण तथा हरी मखमलों से ढकी हुई दीख रही है। सड़कें खूब साफ़ सुथरी धुली हुई हैं। पहाड़ों की शोभा बादलों के आने पर अत्यन्त मन हरण करने वाली होती है। ऐसे समय में यह स्थान बड़ा रमणीक प्रतीत होता है। जो लोग इस नगर में वर्षा ऋतु में पधारते हैं, उन के लिये यह स्थान स्वर्ग भूमी प्रतीत होता है और आदर्श नगर।

स्वास्थ्य

ऋतु परिवर्तन के साथ २ स्वास्थ्य भी उन्नत हो रहा है। यद्यपि एक दो ब्रह्मचारिणियां अब भी रुग्ण हैं. किन्तु दो तीन मास से जो रोगों की प्रबलता थी वह दूर हो गई है। आश्रम में सुख और शान्ति का एक प्रकार से पूर्ण राज्य है। कोई कन्या विशेष रोगी नहीं है। खसरे का प्रकोप भी शान्तप्राय है

त्रैमासिक परीक्षा

त्रैमासिक परीक्षा में जिन कन्याओं ने श्रेणी में उत्तीर्ण होना था उन सबों को उत्तर्ण कर दिया गया है और उन की कमी पूर्ण करने के लिये विशेष समय उन्हें दिया जा रहा है।

महाविद्यालय और अधिकारी परीक्षा का परिणाम

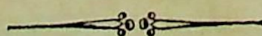
इस वर्ष अधिकारी परीक्षा तथा महाविद्यालय की प्रथम श्रेणी की परीक्षा २२ मई को समाप्त हुई थी। एक मास के बाद परीक्षा परिणाम निकला। महाविद्यालय में चार कन्याओं में से चारों ही उत्तीर्ण हुई हैं। अधिकारी परीक्षा में ५ कन्यायें गई थीं, उन में से ४ उत्तीर्ण हुई हैं एक अनुत्तीर्ण हुई है। दो कन्यायें अधिकारी के बाद ही घर चली गई क्योंकि उन्होंने आगे पढ़ने का विचार छोड़ दिया है। शेष दो महाविद्यालय में गई हैं।

विद्यालय

विद्यालय का कार्य अच्छी तरह चल रहा है। छोटी श्रेणी में ट्रेण्ड टीचर के आ जाने से वस्तुपाठ तथा शिशु वाटिका आदि के पाठ भी चल रहे हैं जिन के कारण बालिकाओं का खूब मनोरंजन होता है। एक दो योग्य अध्यापिकायें और आ रही हैं। कुमारी शकुन्तला देवी जी बी. ए. तथा कुमारी लीलावती जी बी. ए ने अपने छुट्टियों के दो मास इस कुल की सेवा में अर्पण कर के गणित को कुछ पुष्ट किया है जिस के लिये यह कुल सदा उन का अभारी रहेगा

भ्रमण

द्वितीय श्रेणी भ्रमणार्थ ऋषी-केष गई थी, वहां पर दिन भर घूमघाम कर उन का चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। अब वह द्विगुणित उत्साह से पठन में लग गई हैं। अन्य श्रेणियां भी बृहदावकाश की प्रतीक्षा कर रही हैं।



सचित्र

सुचारु सूची शिल्प पत्रावली

सलाई और क्रोशियेकी दस्तकारी सिखलाने की सस्ती और अनूठी विधि

इस प्रकार के पत्र इंग्लैंड अमरीका इत्यादि देशों में तो बहुत दिनों से निकलते हैं। परन्तु भारत में हिन्दी भाषा द्वारा प्रत्येक वस्तु के लिये अलग अलग कार्ड की रीति से इस कार्य को सिखलाने का यह पहला ही प्रयत्न है। जो कार्य पसन्द हो उसी के अनुकूल दो तीन आने खर्च कर कार्ड खरीद लो और घर बैठे बिना किसी की खुशामद के बनालो। अब तक निम्न लिखित कार्ड (१४×७) प्रकाशित हो चुके हैं:—

पत्र नं०	मूल्य	पत्र नं०	मूल्य
१—दीर्घ सूची प्रारम्भिक प्रयोग ११ चित्र	।)	५—पुरुषों का लम्बा मौज़ा [सचित्र]	=)
२—बड़ी सादी बनियान [सचित्र]	≈)॥	६—पुरुषों का सरल दस्ताना [सचित्र]	=)॥
३—पुरुषों का कुर्ता [सचित्र]	=)॥	७—स्त्रियों का फूलदार कालर [सचित्र]	≡)
—बालिका की ऊनी जर्सी [दुरंगा]	≡)	पुरुषों का बुन्दकीदार मौज़ा [सचि]	≈॥)

८ कार्डों का पूरा सैट मूल्य १।≈)॥ के स्थान में केवल १) रुपया

कुछ सम्मतियाँ—

सरस्वती इलाहाबाद—यह पत्रावली नारी मात्र के लिये बड़ी उपयोगी है। छपाई सुन्दर भाषा सरल और मूल्य बहुत ही कम।

प्रताप लाहौर—कन्या पाठशालाओं और स्कूल की लड़कियों केलिये बड़े काम की चीज़ है।

गृहलक्ष्मी प्रयाग—हम इन कार्डों का हृदय से प्रचार चाहते हैं।

महारथी देहली—यह कार्ड सस्ते होने के कारण कन्याओं के लिये बड़े उपयोगी हैं।

मैनेजर "ज्योति"

कोठी नम्बर २१, २२ राजपुर रोड देहरादून।

गङ्गाराम पाठक प्रिन्टर तथा पं० रमेशचन्द्र पब्लिशर के लिये गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में मुद्रित।

Regd. No. A. 1711

वर्ष १०] जुलाई १९२९ [संख्या ३



वार्षिक मूल्य. ४॥) प्रति संख्या ॥)

सम्पादक—
विद्यावतीसेठ बी. ए., चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

विद्यार्थियों, स्त्रियों से ४) विदेशका मूल्य ६)

विषय सूची।

लेखकों से निवेदन

१. ज्योति में लेख, कविता आदि भेजने वाले महानुभावों को अपने लेख सुस्पष्ट अक्षरों कागज़ के एक ओर ही, हाशिया छोड़ कर लिख कर भेजने चाहियें।

२. लेख बहुत लम्बे न होने चाहिएँ। 'ज्योति' पत्रिका के लगभग चार पृष्ठों के लायक लेख हों तो अति उत्तम है।

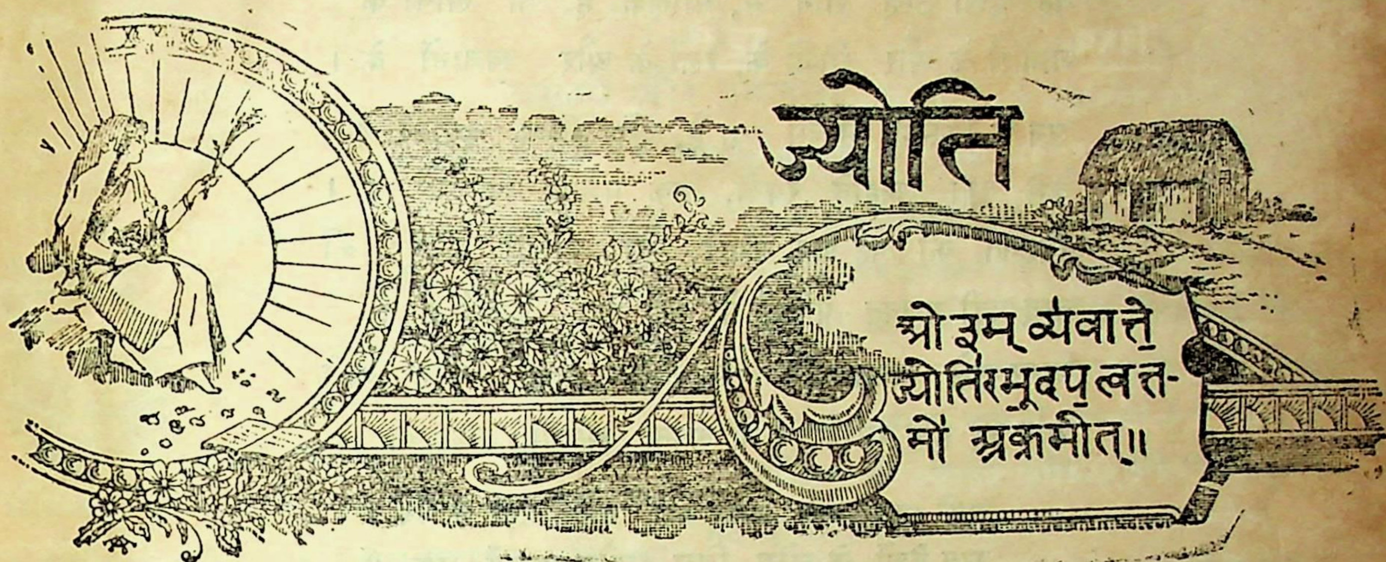
३. लेखों को घटाने बढ़ाने तथा संशोधित करने का संपादक को पूर्ण अधिकार है।



ज्योति सम्बन्धी पत्र व्यवहार— अथवा—

आचार्या कन्या गुरुकुल — **सम्पादक ज्योति**

कोठी नं० २१, राजपुर रोड़ (देहरादून) — गुरुकुल कांगड़ी यू.पी.



विविध विषय विभूषित सुन्दर मासिक पत्रिका.

वर्ष १० | आषाढ़ १९८६ * जुलाई १९२९ | संख्या ३

मज़दूरों का अन्तर्राष्ट्रीय

गीत

(The Internationale)

उठो गरीबी के शिकार ऐ भूखे सो रहने वालो
उठो अभागो, होश सम्हालो, ज़ोर ज़ुल्म सहने वालो।
कड़क रहा इन्साफ़ सज़ा का, उन की हुक्म सुनाने को
इधर नई ही बेहतर दुनिया, है ज़हूर में आने को।
रस्म रिवाजों की जंज़ीरें, हमें न बांधेगी अब और
उठो गुलामों इन्हें तोड़ दो, दम भर भी यह चले न तौर।
नई खड़ी होगी यह दुनिया, आज नई ही नीवों पर
अब तक कुछ भी थे न, रहेंगे अब वे ही सब कुछ होकर।

यही आख़री कशमकश, पीछे हटो न नेक
सब देशों के लोग मिल, क़ौम बनायें एक॥

बैठे देखो उन्हें शान में, मालिक हैं जो खानों के
जागीरों के और मिलों के, रेलों के और ख़ज़ानों के ।
उन के किस्सों में बस क्या है, ऐसे सिवा बयानों के
कैसे दबा उन्होंने रक्खे, हक़ मज़दूर किसानों के ।
मिहनत की वह पाक कमाई, उन लाखों मज़दूरों की
बन्द पड़ी मज़बूत पेटियों में कुछ एक हजूरों की ।
अगर उसे वापस लेने की, कोशिश करते लोग कहीं
मांग रहे होते ग़रीब वे तो अपना असली हक़ ही ।

यही आख़िरी कशमकश, पीछे हटो न नेक ।
सब देशों के लोग मिल, क़ौम बनायें एक ॥

दिन भर अपना बहा पसीना मिहनत करते बेचारे
खेत, कारखानों, खानों में, आओ मिल जावें सारे ।
हम हैं मालिक इस धरती के लेलें हक अपना प्यारो
चलें मिला से कन्धा अब न ज़रा हिम्मत हारो ।
चूस चूस कर खून हमारा, ये कितने ही फूल गये
अगर किसी दिन भी शिकार के बाज़ यहां पर रहें न ये ।
ओह, वह सुबह मुबारक होगा, सब चेहरे खिल जाएंगे
मिट जाएंगे ऊंच नीच ये, दिल से दिल मिल जाएंगे ।

यही आख़िरी कशमकश, पीछे हटो न नेक ।
सब देशों के लोग मिल, कौम बनाएं एक ॥ †

† यह गीत संसार के सम्पूर्ण देशों के मज़दूरों का अन्तर्जातीय गीत है। संसार के प्रत्येक देश के मज़दूरों में इसे वही स्थान प्राप्त है जो भारतवर्ष में बन्देमातरम् गीत को है। प्रत्येक देश ने इस गीत का अनुवाद अपनी अपनी भाषा में कर रक्खा है—परन्तु भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी में अभी तक इस गीत का अनुवाद नहीं किया गया था। गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के साहित्य विभाग के अध्यक्ष श्री प्रो० वागीश्वर जी विद्यालंकार ने इस गीत का हिन्दी में अनुवाद किया है। आशा है कि यह हिन्दी का अन्तर्राष्ट्रीय गीत इस देशमें भी शीघ्र ही, अपना उचित स्थान प्राप्त कर लेगा।

कुरान में वेदांश

(iv)

प्रलय और पुनर्जन्म

(ले०—श्री पं० चमूपति जी एम. ए.)



सृष्टि-प्रवाह के सम्बन्ध में मैं ने अपने पिछले व्याख्यान में वेद और कुरान दोनों की साक्षी पेश की थी। पिछले दिनों लाहौर के डी० ए० वी० कौलेज के भूत-पूर्व आचार्य श्री ला० साईंदास ने इंडियन केमिकल सोसाईटी (भारतीय रसायन सभा) की लाहौर की शाखा के वार्षिक उत्सव के सभापति के रूप में भाषण देते हुए इस विषय में वैज्ञानिक साक्षियां उपस्थित की हैं। पृथिवी की आयु कितनी है? इस विषय में आप ने भिन्न भिन्न वैज्ञानिक सिद्धान्तों का सार निम्नलिखित शब्दों में संगृहीत किया है:—

१. बुद्ध तारे की कक्षा को उत्केन्द्रताओं से अनुमित आयु—५ अरब साल।

२. चन्द्र के उद्भव की ज्वारभाटे विषयक कल्पना से—५ अरब वर्ष से कम।

३. आकाश-गंगा से सौर संस्थान की यात्रा से—२ अरब से तीन अरब वर्ष तक।

४. पृथिवी के ऊपरले स्तर में सीसे की और रेडियम द्वारा क्रियाशील (रेडियो-एक्टिव) अंशों की, मध्यम राशि से—३ अरब वर्ष से कम।

५. सब से पुराने विश्लिष्ट रेडियो—एक्टिव धातुओं से—१ अरब ४० करोड़ वर्ष से अधिक।

६. समुद्रों में नमक के संचय से—क × ३३ करोड़ वर्ष। (क का अर्थ है पांच जैसा कोई गुणक)

७. भूगर्भ की स्तरों की मोटाई से—अननुमेय।

८. पृथिवी के इतिहास में चक्रों और आक्रान्तियों के विचार से—१ अरब ४० करोड़ से अधिक।

इस पर आचार्य महोदय का टिप्पण है कि

यह अनुमान इस पुरातन हिन्दू विचार के कितना निकट है कि पृथिवी की आयु दो अरब वर्ष है!

संसार के आदि और अन्त पर आचार्य महानुभाव लिखते हैं:—

"इस विषय में सब से नूतन विचार सर जेम्स जीन का है जो उन्होंने ब्रिष्टल में अपने प्रथम हेनरी हर्बर्ट विल्स व्याख्यान में ३० अक्तूबर १९२८ को प्रकट किया था:—

"संसार का शरीर कुम्हला रहा है, क्षीण हो रहा है और ज्यों ज्यों समय बीतता है नष्ट हो रहा है और इस का उद्धार—पुनः निर्माण—संभव नहीं। ताप-गति शास्त्र Thermo—dynamics का दूसरा सूत्र भौतिक संसार को सदा एक ही दिशा में, एक ही मार्ग पर जाने को बाधित करता है और वह मार्ग मृत्यु और विनाश का है।"

"पेंशन-भोगी ब्रिटिश इंडियन कर्मचारी म० चार्लस जोहन्स्टन को विज्ञान में पुराने आर्यों द्वारा निर्धारित नियमों को पूर्णतः पुष्ट करने वाली पर्याप्त साक्षियां मिली हैं। उन का कहना है कि:—

रेडियो-एक्टिविटी के एक विशेषज्ञ, फ्रेड्रिक सोडी ने जॉली के विचारों का यौक्तिक अनुसरण करते हुए यह संकेत करने का साहस किया है कि पृथिवी में संचित हुई रेडियो एक्टिव शक्तियां एक दिन इस सारे पिंड को लीन कर देंगी और इसे जलती हुई गैस बना देंगी। जॉली के विचार में इस का कोई प्रमाण नहीं कि यह घटना अनेक बार पहिले हो नहीं चुकी, न इस का कोई प्रमाण है कि आगे न होगी। किसी ऐसे लोक में जिस में ऐसे तत्व हैं जो एक युग में आवश्यक विनाश के पात्र हैं ताप-शक्ति के न्हास और

ऐसी अवस्था का जिसे आग्नेय युग कहा जाए एक दूसरे के अनन्तर होते रहना आवश्यक है। इस प्रकार सोडी का कथन है कि विश्व-काल में सृष्टि का युग और आग्नेय (प्रलय) युग बारी बारी से आएंगे और यह वाक्य हमें सीधा पुरातन आर्य विज्ञान-कथित ब्रह्मा के अहोरात्र की स्मृति कराते हैं।

मई १९२८ की "सैंचरी" नामक पत्रिका से भी इसी अभिप्राय का उद्धरण आचार्य महाशय ने दिया है। उस के अन्तिम वाक्य यह हैं:—

इस प्रकार हिन्दुओं को—उनके ४००० वर्ष पूर्व के तत्व-वेत्ताओं को—संसार के यौक्तिक विश्लेषण में आधुनिक विज्ञान से आगे निकल जाने का श्रेय प्राप्त है। और उनका परिणाम यह है कि प्रारम्भ में असत् से सत् की उत्पत्ति जैसी कोई घटना नहीं होती, जैसे अन्त में भी बिनाश जैसी कोई घटना नहीं होती। इस प्रकार शक्ति की स्थिरराशिता Conservation of Energy के आधुनिक नियम को पहिले ही से जान लिया था कि सदा स्थिर रहने वाले राशि-कोष से न कुछ घटाया जा सकता है न बढ़ाया। सृष्टि का अर्थ है प्रादुर्भाव-किसी वर्तमान द्रव्य का नए प्रकार से प्रकट होना। विनाश का अर्थ है सूक्ष्म कारणों में लीन होना। इस तरह जीवन और उस की संपूर्ण घटनाएं नित्य हैं—प्रवाह के रूप में नित्य।

इन उद्धरणों पर टिप्पणी की आवश्यकता नहीं। वेद ने दो "युवतियों" के काव्यमय वर्णन के रूप में सृष्टि और प्रलय की निदान-स्वरूप प्रकृति और विकृति इन दो क्रियाओं का चित्र खींचा है। "न गमातो अन्तम्"-इस का अन्त नहीं करतीं और "न जानामि कतरा परस्तात्" इन दो में कौन पर है, यह अज्ञात है,—इन दो वाक्यों में उक्त अनादि और अनन्त प्रवाह का सिद्धान्त स्थिर किया गया है। कुरान में भी सृष्टि का कारण सत् होने और पर-सृष्टि के संम्बन्ध में इस प्रकार का कथन होने से कि वह वैसी ही होगी जैसी पूर्व सृष्टि, यही अनादि और अनन्त प्रवाह का मन्तव्य ही द्योतित होता है।

इसलामी साहित्य में प्रलय के लिये "क़यामत" शब्द प्रयुक्त हुआ है। इस का वर्णन कुरान में इस प्रकार किया गया है:—

जब हिलाई जायगी पृथिवी खूब और टुकड़े हों पहाड़ टूट कर। सू० वाक़ा आ० ४, ५

जब सूरज लपेटा जायगा। और तारे गदले हो जाएंगे। और जब पहाड़ चलेंगे। ...और जब आसमान की खाल उतारी जायगी। सू० तकवीर आ० १, २, ३, ११

जब आसमान फट जाए। जब तारे झड़ जाएं। जब दरिया चीरे जाएँ। जब क़बरें उठाई जाएं। सू० इन्फ़िताऱ आ० १-४।

यह प्रलय-काल की विनाश-दशा का मर्म-भेदी वर्णन है। अन्तिम उद्धरण के अन्त में क़ब्रों के उठने की ओर निर्देश भी है। इस का अर्थ है मरे हुओं का पुनः उठाया जाना। इसलामी मन्तव्य यह है कि प्रलय होने के पूर्व शंख-नाद होगा। प्रलय हो चुकने पर नई सृष्टि होगी। उस का आरम्भ भी शंख-नाद से होगा। लिखा है:—

और फूंका जायगा शंख। तो वे अकस्मात् क़बरों में से अपने प्रभु की ओर दौड़ेंगे।

सू० यासीन अध्याय ५,

इस दौड़ने के पीछे मनुष्यों के कर्मों का लेखा जोखा होना है। इस लेखे जोखे को भी क़यामत की प्रक्रिया में समाविष्ट कर दिया गया है। इस से भ्रान्ति यह होती है कि क़यामत में प्रलय का विचार गौण रह कर कर्मों की फल-प्राप्ति का विचार मुख्य हो जाता है। परन्तु इस कर्म-फल की प्राप्ति की अवधि और प्रलय रूपी क़यामत में भेद स्पष्ट प्रतीत होता है। यथा एक जगह इसी क़यामत के सम्बन्ध में आया है:—

एक दिन में जिस की अवधि हज़ार वर्ष है तुम्हारी गिनती से। सू० सिजदा, आयत ४

अन्यत्र कहा है:—

उस दिन में जिसकी अवधि ५० हज़ार वर्ष है।·········

सू० मआरिज आ० ४०

एक हज़ार और पचास हज़ार कुरान की सब से बड़ी संख्याएं हैं। इन का अभिप्राय संस्कृत के "सहस्र" और "शत" पदों की तरह अत्यन्त दीर्घ काल लेना चाहिये।

कर्म-फल-प्राप्ति की अवधि के सम्बन्ध में निम्न-लिखित उद्धरण उक्त अवधि के विपरीत संकेत करते हैं:—

निश्चय आने वाली है घड़ी। निकट है। मैं उस को छिपाता हूं कि दिया जाए बदला हर जीव उस का जो करता है।　　सू० ताहा स० १.

निकट है लोगों के लिये हिसाब उन का।

सू० अंबिया रु० १.

निश्चय वे देखते हैं उसे दूर और हम देखते हैं उस निकट।　　सू० मआरिज. रु. १

पूछते हैं उस घड़ी के सम्बन्ध में। कह उस का ज्ञान प्रभु के पास है। और कौन च ज़ ज्ञान कराती है तुझे? संभवतः वह निकट हो।　　सू० अहजाब रु. १.

और क्या बात है उस घड़ी की किन्तु जैसे आंख का झपकना और वह है उस से निकट।　　सू० नहल स. ११

इस प्रकार क़यामत की अवधि के सम्बन्ध में दो प्रकार के परस्पर विरुद्ध लेखों से प्रतीत होता है कि यह दो घटनाएं एक नहीं। संभव है, कोई महाशय इस विरोध का परिहार इस कल्पना से करें कि एक ही घड़ी आंख झपकने से पूर्व आकर भी तो हज़ार या पांच हज़ार साल तक रह सकती है। इस के उत्तर में निवेदन यह है कि ऐसी घड़ी को घड़ी न कहेंगे। यह कल्पना करना कि प्रभु लेखा जोखा करने में हज़ारों वर्ष लगा देंगे, इसलामी ईश्वर से अन्याय करना है। कुरान में कहा है:—

और वह है शीघ्र लेखा करने वाला।

सू० अनआम रु. १

यही नहीं। जहां विश्व-संहार रूपी क़यामत को "यौम"—एक वचनान्त दिन कहा है, वहां कर्म-फल-प्राप्ति के समय के लिये बहुवचनान्त "अय्याम" शब्द भी प्रयोग किया है, यथा:—

नहीं प्रतीक्षा करते परमात्मा के दिनों की कि दे बदला जाति को उस का जो उसने कमाया है।

सू० दुख़ान रु० २.

प्रलय का दिन या रात तो अपने निरन्तर सातत्य के कारण एक ही होगी, परन्तु कर्म के फल मिलने के अनेक समय हैं। वे सब प्रभु के हैं। ऊपर कह चुके हैं कि इस समय का ज्ञान प्रभु ही को है। कर्म का काल जीव का है। वही उसका निश्चायक है। परन्तु दण्ड या पारितोषिक देने की घड़ी विधाता ही की हो सकती है। उस पर किसी और का अधिकार नहीं।

इस व्याख्या के पश्चात् यह धारणा तो संभवतः निराधार न होगी कि कुरान में क़यामत शब्द से दो परस्पर विभिन्न घटनाएं विवक्षित हैं। मेरे निदर्शित विभेद से क़यामत के परस्पर विरुद्ध वर्णनों का समाधान भी आसानी से हो जाता है। परन्तु इस में सन्देह नहीं कि इस विषय में कुरान का मूल लेख सन्देहातीत नहीं। "क़यामत" शब्द के इन दो अभिधेयों में जैसा उन का कुरान में विवरण दिया है, परस्पर उलझाव अवश्य पाया जाता है, जैसे ऊपर प्रलय के साथ साथ ही "कबरों के उठने" के वृत्त से स्पष्ट हो चुका है। सम्भवतः वेद के दो परस्पर भिन्न सिद्धान्त कुरानकार के हृदय में एक साथ संनिविष्ट हुए और फिर शायद इस कारण से कि वैदिक मन्तव्यानुसार प्रलयोत्तर नई सृष्टि

में भी प्राणियों का भोग उन के पूर्व संचित कर्मों ही का फल होगा, इन दो तर्कणाओं में विवेक न किया गया। इस समय इस उलझाव का उपाय यह हो सकता है कि जहाँ कुरान में प्रलय और कर्म के फल का इकट्ठा वर्णन हो वहां प्रलयोत्तर व्यवस्था निर्दिष्ट समझी जाए और वहां ऐसा न हो, वहां साधारण व्यवस्था। इस तरह वैदिक तथा क़ोरानिक मन्तव्यों में प्रतीत होने वाला भेद अभेद में परिवर्तित हो जाता है।

कर्म का फल मिलने का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया तो इस के पीछे विचार का विषय फल-प्राप्ति की प्रक्रिया अथवा प्रकार हो जाता है। वेद और कुरान इस विषय में सहमत हैं कि फल प्रत्येक कर्म का मिलता है। संसार में जो प्रत्येक प्राणी का विशेष वैयक्तिक भोग पाया जाता है यह सब उसके किये कर्मों का फल है। ऐसा न हो तो आचार-शास्त्र के नीचे से उस का आधार ही खिसक जाए है। वेद कहता है:—

गन्धर्वः पदमस्य रक्षति······गृभ्णाति रिपुं निधया निधापतिः।······सुकृत्तमा मधुनो भक्षमाशत। ऋ.

परमेश्वर इस (जीव) की स्थिति निश्चित करता है।··· पाशों वाला प्रभु पाश द्वारा कुकर्मी को जकड़ता है। सुकर्मी मीठे फल भोगते हैं।

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते। तयोर्यत्सत्यं यदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत्। ऋ. ८. ४. १२

ज्ञानी पर यह बात प्रकट है कि बुराई और भलाई आपस में स्पर्धा करती हैं। इन में जो सत्य अर्थात् सरल है उसको प्रभु रक्षा करता है और जो अभद्र है उस का नाश।

अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते। प्रत्यक् प्रति हन्मो यथा कृत्या कृत्याकृतं हनत्। अ.

पापी के लिये पाप हो, शपथी के लिये शपथ। हम उसे लौटा देते हैं कि हिंसक को हिंसा मारे।

यह प्रसिद्ध कहावत कि पापी के मारने को पाप महाबली है, इसी मन्त्र का अनुवाद प्रतीत होती है।

पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत। वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्जं शतक्रतो। य. ४. ४९

यज्ञ करते हुए प्रत्येक आहुति के साथ यह भाव उद्बुद्ध होता है कि यजमान कर्म से ऐहिक और पारलौकिक आनन्द को मोल लेता है।

यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम्। अश्विनं सुपुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति। अ० ५ ४. ११

हे सर्व-व्यापक सर्वज्ञ प्रभो ! आप अच्छे कर्म करने वाले को अच्छा लोक देते हैं अर्थात् उसे घोड़ों वाला, अच्छे वीर पुत्रों वाला तथा गायों वाला करते हैं। वह कल्याण-रूप धन को प्राप्त होता है।

यही नहीं। वेद में तो "एनस्" तथा "दुरित" इत्यादि शब्द पाप तथा दुःख दोनों के वाचक हैं, जिस से स्पष्ट इंगित होता है कि वेद की दृष्टि में दुःख और पाप पर्याय हैं। दार्शनिक भाषा में इनका कार्यकारण-रूप तादात्म्य है।

यह हुए सामान्य सांसारिक भद्र और अभद्र। यहां तो मोक्ष को भी सुकर्म ही का फल कहा है। लिखते हैं:—

इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशु र्मनोर्नपातो अपसो दधन्विरे। सौधन्वनासो अमृतत्वमेरिरे विष्ट्वी शचीभिः सुकृतः सुकृत्यया। ऋ० ३, ३., ३

ज्ञानी प्रभु की मित्रता को प्राप्त करते हैं। मन को संयत रखने वाले सुकृत्य को धारण करते हैं। कमान की तरह खूब खिंचे रहने वाले सुकर्मी अपनी शक्ति के साथ प्रभु में लीन हो मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

कर्म की महिमा वेद में स्थान स्थान पर गाई है। कुरान में भी मानो उक्त आदेशों का अरबी भाषान्तर कर रखा है। वेद में कर्म द्वारा ऐहिक

और पारलौकिक सुख के मोल लेने का भाव था तो यहां प्रभु के हाथ में तराजू दे दी है। वह तोल तोल कर कर्म का एक एक दाना (फल रूप में) लौटा देता है। कहा है:—

और रखेंगे तुलाएं कयामत के दिन सो न बलात्कार किया जायगा कोई जीव कुछ और यदि होगा कर्म बराबर राई के दाने के, उन के पास लाया जायगा।

सू० अंबिया.आ० ४

वहां जीव के "पद" का निर्धारण था तो यहां भी कहा है:—

सब के लिये "दर्जे" हैं उस से जो उन्हों ने किया है।

अनआम रु० १६

"अघमंस्त्वघकृते" का अनुवाद किया है:—

और नहीं पड़ती कोई आपत्ति तुम पर किन्तु जो तुम्हारे हाथों ने कमाई है। सू० शूरा रु० ४.

"स्योनंलोकं" वाली बात इस आयत में आई है:-

जिस ने कर्म किये अच्छे पुरुषों में से या स्त्रियों में से और वह है विश्वासी सो जिलाएंगे हम उसे जीवन अच्छा। सू०नहल रु० १३

वेद के मन्तव्यानुसार इस कर्म-फल-प्राप्ति की प्रक्रिया है पुनर्जन्म। एक जन्म के जिन कर्मों का फल उसी जन्म में नहीं मिलता, उन का फल दूसरे जन्म या जन्मों में मिल जाता है। हमारे ऐसे संचित कर्म सैकड़ों रह जाते हैं। हम परिश्रम करते हैं और उस में पूर्ण सफलता नहीं होती। किसी कला का अभ्यास करते हैं और मौत उस अभ्यास को अधूरा छुड़ा देती है। किसी सिद्धि के लिये प्रयत्न करते हैं और बीच ही में से उठा लिये जाते हैं। यदि इस परिश्रम को सफल करने का फिर अवसर न मिले तो किया कर्म अकारथ गया। जिन्होंने इस लोक की सामग्री का पूरा लाभ नहीं उठाया, उन्हें फिर इसी लोक में भेजना न्याय-संगत है। और जब परलोक की सिद्धि-असिद्धि या स्वर्ग-नरक यहां के कर्मों का फल हैं तो इस लोक के सुख दुःख भी कर्मों ही का परिणाम होने चाहियें। प्रभु का नियम दोनों स्थलों पर एक सा लगेगा, जैसे कुरान में भी कहा है, कोई आपत्ति बिना कर्म किये प्राप्त नहीं होती। ऐसे ही सम्पत्ति भी। परन्तु हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि प्राणियों का बुरा और भला दोनों प्रकार का भोग उन के जन्म के साथ आता है। उसे इस जीवन के किस कर्म ने "कमाया" है। सांसारिक भोग के, कुरान-कथित "दर्जों" के, तारतम्य का समाधान पूर्व-जन्म के सिद्धान्त के सिवा और कुछ नहीं।

लूटो स्लास्की के कथनानुसार

अमरता और पूर्व-जीवन परस्परस म्बद्ध है, क्योंकि जिसका आरंभ है, उसका अन्त अवश्य होगा।...... जिस पदार्थ का आरम्भ है, वह बिना हुए भी रह सकता था, और इस लिये वह पराश्रित (conditionally) रहता है। यदि हम में कोई चीज़ है जो स्वतन्त्र है और जो किसी और पर आश्रित नहीं तो वह सदा से ऐसी ही स्वतन्त्र रह सकती थी। और यदि उस का आरम्भ किसी और के द्वारा होता तो वह ऐसी न होती। इस से मुझे विश्वास होता है कि मैं एक नित्य और अमर पदार्थ हूं और मृत्यु एक घटना है जो शरीरगत विकारों को प्रदर्शित करती है, आत्मगत विकारों को नहीं।

इस विश्वास के अधार पर उक्त दार्शनिक पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर पहुंचता है।

रामानुज चाहे जगत् का उपादान ईश्वर को बताते हैं, यथा

यथा तस्य जगतः कर्त्तोपादनं चेश्वरपदार्थःपुरुषोत्तमो वासुदेवादिपदवेदमीयः।

तो भी जीव को कृत-प्रणाश और अकृता-भ्यागम दोष के परिहारार्थ नित्य कहते हैं:—

तत्र चिच्छब्दवाच्या जीवात्मानः परमात्मनः सकाशाद् भिन्ना नित्याश्च""अपरथा कृतप्रणाशाकृताभ्यगमप्रसगंः ।

सर्वदर्शन संग्रह ।

इस संबन्ध में वेद के दो चार प्रमाण उपस्थित कर कुरान की आयतों ने मैं भी इसी मन्तव्य का प्रतिपादन प्रदर्शित करूंगा ।

स मातुर्योना परिवोतो अन्तर्बहुप्रजा निऋतिमाविवेश ।

ऋ. १६४. ३२

वह माता की योनि में लिपटा हुआ अनेकजन्मा संसार में प्रवेश करता है ।

अनच्छये तुरगातु जीवमेजध्रुवं मध्य आपस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।

१. १६४. ३०

विकार-रहित गतिमान् जीव लोकों के बीच में शीघ्र घ्र श्वास लेता हुआ रहता है । मरे हुए का आत्मा अने कर्मों के साथ साथ गति करता है । स्वयं अमर होकर मरण-धर्मा (शरीर) से संयुक्त होता है ।

शरीर मानो चोला या रथ है । वह किन तन्तुओं अथवा किन तत्वों से बना है ? कहा है—

वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं धीरः स्वपा अतंक्षत् ।

ऋ. ५. २९. १५

बुद्धिमान् जीवनेच्छु सुकर्मों को सुन्दर वस्त्रों की तरह बनाता है जैसे कारीगर रथ को ।

आर्य साहित्य में शरीर के लिये चोले तथा रथ का दृष्टान्त यत्र तत्र व्यवहृत हुआ है । उस का निदान यहाँ कर्म ही को निश्चित किया है ।

आओ, देखें इस विषय में कुरान क्या कहता है ? ऋषि दयानन्द "स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश" में सृष्टि का प्रयोजन इन शब्दों में प्रदर्शित करते हैं:—

सृष्टि करने के ईश्वर के सामर्थ्य की सफलता सृष्टि करने में है और जीवों के कर्मों का यथावत् भोग करना आदि भी ।

यही भाव कुरान में इन शब्दों में कहा गया है—

और बनाया प्रभु ने आसमानों और पृथिवी को साथ न्याय के और इस लिये कि बदला दिये जावें सब जीव उस से, जो उन्होंने कमाया है । और नहीं वे अन्याय किये गए ।

सूजाशिया रु० ३.

इस आयत में संसार की बनावट ही में न्याय का समावेश और जीवों के लिये "नहीं वे अन्याय किये गए" ऐसा कहा जाना विशेष ध्यान देने योग्य है । न्याय स्पष्टतया भूत कर्मों ही के सबन्ध में है । यह भूत कर्म सृष्टि के अदृष्ट कारणों में से एक हैं ।

सृष्टि फिर फिर होती है— यह हम किसी पूर्व व्याख्यान में देख चुके हैं । अब कहते हैं:—

पूर्व सृष्टि करता है और फिर करेगा, साथ न्याय के जिस से बदला पाएं जिन्होंने विश्वास किया और किये कर्म अच्छे ।

सू. यूनिस रु. १

ऊपर हम यह भी देख आए हैं कि

जिस ने कर्म किये अच्छे पुरुषों में से या स्त्रियों में से और वह है विश्वासी, सो जिलाएंगे हम उसे जीवन अच्छा ।

सू० नम्ल रु. १३.

परलोक का अच्छा जीवन सुकर्म और सुविश्वास का फल है तो वर्तमान जीवन पर भी यही नियम लागू होना चाहिये । वास्तव में प्रत्येक जीवन में भद्र पूर्व किये सुकर्म ही का फल होता है ।

फिर जिलाया हमने तुम को पीछे मौत तुम्हारी के । संभवतः तुम कृतज्ञ हो । सू० २ बकर रु० ६.

संभवतः शब्द स्पष्ट बताता है कि पुनर्जन्म से परीक्षा अभीष्ट है । अर्थात् परलोक भी कर्म ही का क्षेत्र है ।

काफ़िरों के मुंह में पुनर्जन्म के विषय में सन्देह डाल कर उस का निवारण किया है:—

जब मट्टी हो जायंगे हम और बाप हमारे, क्या हम फिर जिलाए जाएंगे ? सू. नम्ल ६ रु. ६.

क्या हम नई सृष्टि में जाएंगे ? ऐसे (सन्दिग्ध) परमात्मा के समागम से इनकारी हैं । सू. सिजदा रु. १.

कहते हैं क्या जिलाई जाएंगी हड्डियां हमारी और यह होंगी सड़ी हुई ?

यह प्रश्न है काफ़िरों का। उसका उत्तर दिया है:—

वह जिलाएगा जिस ने तुम्हें बनाया पूर्व बार।

सू० यासीन रु. ५.

अभिप्राय यह है कि जीव का अन्त मृत्यु पर नहीं हो जाता किन्तु अपने किये का फल पाने को वह फिर जन्म लेता है। वह जन्म कैसा होता है ?

निकालता है जीते को मरे से और मरे को जीते से और जिलाता है पृथिवी को उस के मरने के पीछे। और इसी प्रकार तुम निकाले जाओगे।　　सू. रूम रु. १

इस उपमा को फिर दोहराया है:—

सो जिलाता है पृथिवी को पश्चात् उस की मृत्यु के। ऐसा है जिलाना।　　सू० फ़ातिर रु. २.

सृष्टि और जन्म का प्रवाह ऐसा ही है जैसे भूमि का क्रमशः सूखा और हरा होते रहना।

इन उद्धरणों में परजन्म का वर्णन तो आ ही गया है। क्या कहीं पूर्वजन्म की ओर भी संकेत किया है ? लिखा है:—

निश्चय यह (काफ़िर) कहते हैं— नहीं यह मौत हमारी किन्तु पहिली और नहीं हम फिर जिलाए गये॥

सू. दुख़ान रु. २.

इस मौत को पहिली मौत और इस जन्म को पहिला जन्म कहना काफ़िरों की उक्ति है। कुरान का मत स्पष्टतया इसके विपरीत है। अर्थात् इससे पूर्व भी जन्म और मृत्यु का हो चुकना स्वीकार किया है। और सुनियेः—

कहेंगे, हे प्रभु हमारे! मारा तू ने हमें दो बार और जिलाया दो बार।　　सू० मोमिन रु.२.

दो बार जिलाना तो, एक वर्तमान जीवन के आदि में और दूसरा क़यामत के दिन हो जाएगा परन्तु दो बार मारने का समाधान इस प्रकार नहीं होता। भाष्यकार वर्तमान जीवन से पूर्व की अवस्था को मृतावस्था कह कर कुरान-कथित दो मृत्युओं की व्याख्या करना चाहते हैं परन्तु यहां तो शब्द है "मारा दो बार"। जन्म से पूर्व मार कैसे दिया ?

यही बात निम्नलिखित वाक्य में दोहराई गई प्रतीत होती है:—

तुम कैसे इनकार करते हो प्रभु से। जब थे तुम मरे हुए सो जिलाया उसने तुम को।" फिर मारेगा तुमको। फिर जिलाएगा तुमको।

पुनर्जन्म प्रचलित अर्थों में क़यामत ही के दिन हो, इस का निराकरण निम्न लिखित वाक्य से भी होता है:—

सो मार दिया अल्लाह ने उसे सौ वर्ष फिर जीवित किया।　　सू० बक़र रु० ५३

सौ वर्ष की अवधि तो किसी प्रचलित क़यामत की नहीं। फिर यह एक पृथक् प्रश्न है कि सौ वर्ष निश्चेष्ट रखने का क्या अर्थ है ? जब जीवन की सामग्री है, जीव कर्म करने को सन्नद्ध है, तो उसे मृत रखने का क्या मतलब ? परन्तु हमें तो यहां केवल यह सिद्ध करना है कि पुनरुज्जीवन प्रसिद्ध क़यामत के दिवस से पूर्व कुरान को अभिमत है।

अन्यत्र कहा है:—

सो कहा प्रभु ने उन्हें, मर जाओ। फिर जिला दिया।

बक़र रु० २२

इन उल्लेखों के होते जब हम पढ़ते हैं:-

फिर बढ़ने लगे जिस काम से मना किया था सो हमने कहा उन से, हो जाओ बन्दर फटकारे।

एराफ़ रु० २१

तो पुनर्जन्म के चक्र में योनि-परिवर्तन का सिद्धान्त और स्पष्ट हो जाता है और यह निश्चय हुए बिना नहीं रहता कि कुरान को इस

आवागमन के प्रवाह से थियोसोफ़िस्टों की तरह केवल निकृष्ट योनि से उत्कृष्ट योनि में जाना ही अभिमत नहीं, किन्तु इस का विपर्यय भी उतना ही अभीष्ट है।

यहां तो केवल कहा ही था, आगे बना भी दिया है। लिखा है

वही जिस को शाप दिया प्रभु ने उस पर कोप हुआ और उन में कुछ बंदर किये और सुअर।

सू० माइदा रु० ८

कुरान के भाष्यादि पुस्तकों से तो और भी साक्षियां उपस्थित की जा सकती हैं, परन्तु उन का प्रामाण्य कुरान के तुल्य नहीं। एक जगह हदीस में स्वयं मुहम्मद साहब की एक इच्छा का वर्णन किया है। प्रसंग से संबद्ध होने से उस का भी यहां उल्लेख किया जाता है:—

"शपथ है प्रभु की, मेरी इच्छा है प्रभु के रास्ते में मारा जाऊं, फिर जिलाया जाऊं, फिर मारा जाऊं, फिर जिलाया जाऊं, जिस से मुझे प्रत्येक बार नया फल फिर मिले।"

(बुखारी तथा मुस्लिम, जिहाद प्रकरण)

इस में सन्देह नहीं कि यह है इच्छा मात्र ही, परन्तु नबी की इच्छा है। निरर्थक इच्छा से नबी को काम ? इस का कुछ आधार चाहिये। युक्तियुक्त आधार बिना पुनर्जन्म की संभावना के और संभवनीय नहीं।

इस स्थल पर एक दो शब्द उस लोक के संबन्ध में कह देना भी प्रसंग के विरुद्ध न होगा जिस की कल्पना कुरान में कयामत के लेखे जोखे के अनन्तर की गई है। वह लोक सुकर्मियों के लिये "बहिश्त" है। बहिश्त उस दूसरी सृष्टि का परिणाम है, जिस का वर्णन मैं ऊपर कर आया हूं। वह सृष्टि "पूर्व सृष्टि के सदृश" होने से यह कल्पना युक्ति-संगत होगी कि "बहिश्त" का भोग इसी संसार ही का सा है। बहिश्त के आनन्द का विवरण दे कर कुरान में कहा है कि

ये (बहिश्ती) इस (ऐहिक भोग) के सदृश (आनन्द) दिये जायेंगे। सू० बक़र. अ० २६

कोई कोई अतिविश्वासी सज्जन कहा करते हैं कि इस्लामी बहिश्त परमात्मा की कृपा-मात्र ही का फल होगा, हमारे कर्म का इस की प्राप्ति में कुछ दख़ल न होगा। कुरान इस का खण्डन करता है। लिखा है

फल है उन के कर्मों का। सू० वाक़ा

उस में तख़्त हैं। सोने चांदी के गहने हैं। रेशम के कपड़े हैं। दूध है, सुरा है, स्त्रियां और बच्चे हैं। इस में ऐहिक सुख से विशेष क्या है? वेद में भी तो स्वर्ग को मधुकूल सरोवरों सुरोदकों पुष्करणियों और दुध आदि का स्थान कहा गया है। यही नहीं, वहां "बहुस्त्रैणम्" भी है। इस में सन्देह नहीं कि वहां कामाग्नि से सन्तप्त नहीं होना। और "पूताः पवनेन शुद्धाः" संयत पवित्रात्माओं को ही वहां निवास दिया है। संक्षेप में समृद्ध सुखी गृहस्थ को स्वर्ग कहा है। वहां स्त्रियां हैं। माता भी, बहिन भी, पत्नी भी। कुरान में यह चित्र गया तो यहीं से है परन्तु सम्भवतः वहां बहु-विवाह के विहित होने के कारण स्त्रियों को पत्नियां कह दिया है। सार यह है कि वहां भी (बहु-विवाह युक्त) गृहस्थ ही है।

मैं बहिश्त को इस लिये भी गृहस्थ मानता हूं कि एक जगह लिखा है कि:—

हमेशा रहने वाला बाग़। और उस में दाख़िल होंगे अच्छे कर्म करने वाले और उन के बाप और उन की पत्नियां और उन के बच्चे। सू. राद. रु. ३

प्रचलित इस्लाम के बहिश्त में एक कुटुम्ब के कुटुम्ब का एक साथ जाना ऐसी साधारण घटना

नहीं जिस का वर्णन इस प्रकार सामान्य वस्तुस्थिति के रूप में किया जाए। सारे कुटुम्ब के कर्म एक से हों जिस से परलोक में भी वह कुल एक ही स्थिति में रहे, कठिन है। यही नहीं, बहिश्त के सम्बन्ध में कहा है:—

और बाग़ जिस का परिमाण है आसमान और पृथिवी का सा। सू. हदीद रु. ३.

यही बात सू. आल अमरान रु. १४ में आई है। यह है इस लोक और परलोक की दैशिक समता। अब काल के सम्बन्ध में सुनिये। लिखा है:—

और जो लोग कि सौभाग्यवान् किये गए हैं, सो हैं बहिश्त में जब तक कि रहें ज़मीन और आसमान।

सू. हुद आ० १०६-१०७

हम ऊपर देख चुके हैं कि कयामत अर्थात् प्रलय होते ही ज़मीन परमाणु परमाणु हो जाती है और आसमान की खाल उतर जाती है अर्थात् यह दोनों नष्ट हो चुकते हैं। दूसरे सर्ग में इन को फिर बनाया जाता है और इन की और बहिश्त की अवधि एक ही है। जन्य पदार्थ होने से यह अविनाशी तो हो नहीं सकते। जैसे एक सृष्टि के आसमान और ज़मीन की सत्ता प्रलय तक है, वैसे ही अन्य सर्गों की भी होगी। दूसरे शब्दों में बहिश्त भी नश्वर है।

दोज़ख़ और बहिश्त एक दूसरे के प्रतियोगी हैं। दोज़ख़ में आग है, थूहड़ है, गर्म पानी है। इसी प्रकार की और यातनाएं हैं। वहां भी ऐहिक यातनाओं से कुछ विशेष नहीं। लिखा है:—

चखो अपने उपद्रव को। सू० जुरियत. रु. १

अर्थात् अघमस्त्वघकृते। पाप और उस के फल में कारण-कार्य-रूप तादात्म्य है। एक और स्थल पर आया है:—

और नहीं रुचि दिखाता था खाने पर दीन को। सो नहीं उस के वास्ते आज इस जगह कोई मित्र। और नहीं खाना सिवाए घावों के धुएं के। सू. हाक़ा रु. १.

यह वर्णन दोज़ख़ का है। इस में और इस संसार के आपद्ग्रस्त लोगों की अवस्था में क्या भेद है? वेद में भी तो कहा है—

उतापृणन्मर्डितारं न विन्दते।

ऋ. १०. ११७. १

और दान न देने वाले को कोई सुख देने वाला नहीं मिलता।

अन्यत्र कहा है:—

और जिसने मुहँ फेरा मेरे स्मरण से, सो निश्चय उसके लिये आजीविका तंग है और वह उठेगा दिन क़यामत के अंधा। सू० ताहा रु. ७.

दूसरे शब्दों में परलोक में इन्द्रियों का विकल अथवा अविकल होना इस जीवन के कर्मों पर निर्भर है।

सार यह कि क्या भोगों के स्वरूप की दृष्टि से, क्या दैशिक और कालिक अवधि की दृष्टि से, स्वर्ग और नरक यही वर्तमान लोक है, जो प्रत्येक सर्ग में फिर फिर पैदा होता है। और हर कल्प के प्राणियों को उन के सञ्चित कर्मों का फल देता है। कहा है:—

और नहीं पाता कोई जीव सिवाय अपने किये के और नहीं उठाता बोझ कोई दूसरे का।

सू० अनआम रू० २०

और नहीं मनुष्य के लिये सिवाय उसके जो उसने किया हो।

सू० नज्म रु० ३

फिर पूरा दिया जाएगा प्रत्येक जीव अपनी कमाई से और वह न किये जायंगे अन्याय।

सू० मायदा रु० ३७

और नहीं नष्ट होगा सुकृत में से। पूरा दिया जाएगा तुम को और नहीं तुम अन्याय किये जाओगे।

सू० मायदा रु० ३९

जिस दिन पायेंगे सब जीव जो किया उन्हों ने अच्छा प्रकट और जो किया बुरा।

सू० आल अमरान रु० ३

और निश्चय तुम्हें पूरा दिया जायगा फल दिन कयामतके।

सू० आल अमरान रु० १९

अन्त में मैं उन प्रमाणों पर दृष्टि डालूंगा जिन से विपक्षी की दृष्टि में पुनर्जन्म के सिद्धान्त का खण्डन होता है। लिखा है:—

कहता है हे प्रभो! भेज मुझे फिर, संभव है मैं कर्म करूं अच्छे बीच उस के जो छोड़ आया हूं। कभी नहीं

सू० मोमिनून रु. ६

ऊपर किये गए पक्ष-विपक्ष के दीर्घ विचार के पश्चात् हम इस निराकरण का अर्थ यही समझते हैं कि कोई मनुष्य खोए हुए अवसर को तो फेर नहीं पा सकता। सर्वथा उन्हीं स्थितियों की ...न में वह कर्म करना 'छोड़ आया' है, पुनरावृत्ति नहीं हो सकती। हां! नया अवसर दिये जाने की यह आयत बाधक नहीं।

यही अभिप्राय निम्न लिखित आयत का है:-

मेरे लिये पुनरावृत्ति हो।......नहीं। सू० ज़मर रु. ४.

यहां पुनरावृत्ति पूर्व स्थिति की ही मांगी गई प्रतीत होती है। सो तो असंभव है।

कुरान की इन आयतों से स्पष्ट है कि कुरान कर्म-फल का साधन जन्म-मृत्यु के प्रवाह ही को मानता है। सृष्टि का एक हेतु जीवों का कर्म है। पुनरुज्जीवन ऐसा ही होता है जैसे मट्टी का सूखे पीछे हरा होना, यह क्रिया पूर्व भी हुई है। आगे भी होगी। जिन्हें इस का विश्वास नहीं, वह कुरान की भाषा में काफिर हैं। पुनरुज्जीवन केवल आगे ही न होगा, भूत काल में भी हो चुका है। इस पुनरुज्जीवन में योनि-परिवर्त्तन का भी समावेश है। और वह ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर दोनों तरह हो सकता है। मनुष्यों के सुअर और बंदर बन जाने के उदाहरण स्वयं कुरान में वर्णित हैं। सब से बढ़ कर यह कि स्वयं मुहम्मद साहब जिहाद में मरने के लिये, फिर २ जन्म-ग्रहण करने की इच्छा रखते हैं।

बहिश्त का वर्णन करते हुए मैं वेद और कुरान के स्वर्ग-सम्बन्धी विवरणों में एक आध अवान्तर भेद की ओर भी संकेत कर चुका हूं। अधिक विस्तार में जाने से इस प्रकार के भेद एक नहीं, अनेक प्रतीत होंगे। मुझे इस व्याख्यान में केवल इतनी ही बात प्रदर्शित करनी थी कि कर्म-सिद्धान्त के सम्बन्ध में वेद और कुरान के आदेशों की प्रवृत्ति एक ही दिशा में है। कुरान के लेख में उलझाव अधिक है परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने और सहानुभूति-पूर्वक विचार करने से उसे सुलझाया जा सकता है। इसलाम की ७२ शाखाओं में एक शाखा "तनासुखिया" नाम से प्रसिद्ध है। तनासुखिया का अर्थ है आवागमन को मानने वाली। यदि इस शाखा का कोई ग्रन्थ आज कल उपलब्ध होता तो हमारे आज के विषय पर उस से पुष्कल प्रकाश पड़ता। इस शाखा के नाम मात्र से भी यह बात तो प्रमाणित हो ही जाती है कि कुरान में पुर्नजन्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन मुसलमानों को भी तीत होता रहा है। कुरान को पढ़ते हुए पाठक के हृदय में यह कल्पना होनी स्वाभाविक है।

परिशिष्ट

सर्गारम्भ में माता पिता का होना असम्भव है। वेद ने इस अवस्था में अमैथुनी सृष्टि मानी है। यथा—

चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावन्वेति धातवे। सा० वे० पू० १, ७. २.

यह उस युवा शिशु का चमत्कार है जो दूध पीने माता पिता (अथवा मां और गुरु) के पास नहीं जाता।

अर्थात् न उसे पालन पोषण के लिये माता पिता की आवश्यकता है न शिक्षा के लिये गुरु की।

इस काल के पश्चात् जनन-क्रिया का विधान मैथुन से है, यथा

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति।

ऋ. १०. ८५. ३१.

हे पोषक पते ! पत्नी का प्रेरक हो जिस में मानव बीज वपन करते हैं।

इस प्रकार मानव सृष्टि एक तो अमैथुनी हुई जो सर्गारम्भ में आवश्यक थी। तत्पश्चात् मैथुन से होने लगती है। कुरान में इन दोनों प्रकारों का वर्णन मिलता है।

प्रथम बनाया मनुष्य को मट्टि से, फिर रचीं उस की पीढ़ियां वीर्य से।

मेरे विचार में यहां मट्टी प्रकृति का पर्याय है। कुछ भी क्यों हो, मट्टी वीर्य नहीं और कुरान के सब भाष्यकार इस प्रथम सृष्टि को अमैथुनी मानते हैं।

इस अमैथुनी उत्पत्ति को आदम की उत्पत्ति कहा जाता है। आदम से हौवा की उत्पत्ति होती है। लिखा है:—

जिस ने पैदा किया एक आत्मा से और पैदा किया उस से उस की पत्नी को और फैलाये उस से बहुत पुरुष और स्त्रियां। सू० नसा ० रु० १०

यहां आत्मा का अर्थ आत्म-जाति या मनुष्य जाति करना चाहिए। क्योंकि आरंभिक काल में जब मनुष्य एक समुदाय थे, उन में अनेक ऋषियों के आने का कुरान में वर्णन है और वह हम किसी और व्याख्यान में उद्धृत कर चुके हैं। ऋषि अनेक हों तो मनुष्य एक नहीं हो सकता। यह ग्रन्थि वेद में बड़ी सुन्दरता से खोली है:—

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।

जिस विज्ञानी के लिये सब प्राणी एक आत्मा ही हो गये, उसे मोह क्या ? शोक क्या ? उस ने एकत्व का दर्शन कर लिया।

इस आत्मा से स्त्री की उत्पत्ति एक आलङ्कारिक वर्णन है इस सिद्धान्त का कि पुरुष स्त्री के बिना और स्त्री पुरुष के बिना अधूरी है। संस्कृत में स्त्री को पुरुष की अर्धाङ्गिनी और अंग्रेजी में better half कहते हैं। इस अलङ्कार का आरंभ बृहदारण्यकोपनिषद् की निम्न-लिखित कथा से होता है:—

आत्मैवेदमग्र आसित्.........स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स एव द्वितीयमैच्छत् स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ संपरिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधा ऽपातय-त्ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्।

बृ. १. ४. १, ३

पहिले आत्मा ही था......उस का दिल न लगता था। इसी से अकेले का दिल नहीं लगता। उस ने दूसरा चाहा। वह ऐसा था जैसे स्त्री और पुरुष मिले हुए। उस ने इस आत्मा को दो कर दिया। उस से पति और पत्नी हुए।

बाईबल में यही कथा आदम और हौवा की उत्पत्ति के विषय में कही गई है। वहां माता हौवा पसली से निकलती हैं। मेरे विचार में "आदम" "आत्मा" का अपभ्रंश-मात्र है। और कुरान में प्रयुक्त शब्द 'नफ़्स' जिस का अर्थ 'जी' किया जाता है, वह इस का अनुवाद है। अभिप्राय कथानक का यह है कि गार्हस्थ्य-जीवन को स्त्री और पुरुष मिल कर पूर्ण करते हैं। पुरुष स्त्री के बिना अधूरा है और स्त्री पुरुष के बिना अधूरी।



वेदों में दार्शनिक विचार

यह संसार किसने बनाया

परमेश्वर

(२)

(ले०—श्री पं० धर्मदेव जी वेदवाचस्पति)



अब विचारणीय यह है कि परमात्मा ने किस प्रकार इस संसार को बना दिया। कर्ता-मनुष्य बिना किसी प्रयत्न के किसी कार्य को नहीं कर सकता। सारथी को रथ चलाने के लिए हस्त पाद आदि की आवश्यकता होती है। क्या इसी प्रकार परमात्मा भी प्रयत्न कर के अपनी इन्द्रियों की सहायता से इस जगत् की उत्पत्ति करता है? नहीं। वह तो भौतिक पदार्थ से भिन्न वस्तु है, उस के हस्त पाद आदि अवयव नहीं। वेद में उसे 'अकायमव्रणमस्नाविरम्' (यजु० ४०।८) शरीर रहित तथा व्रण और नस नाड़ियों से शून्य बताया है। 'उस महान् यशस्वी परमात्मा की कोई प्रतिमा नहीं।'[१] इस लिये वह कुम्हार आदि की तरह हस्तपादन आदि से तो जगत् को बना नहीं सकता। किस तरह परमात्मा ने सलिल से इस जगत् को उत्पन्न किया इस का उत्तर नासदीय सूक्त (ऋ० १०। १२९ सू०) के तृतीय मंत्र में मिलता है। प्रलयावस्था का वर्णन करते हुए लिखा है:—

'तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
''तुच्छ्येनाभ्व पिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम्।'
ऋ. । १० । १२९ । ३॥

अर्थः—पहले—प्रलयकाल में—महान् घोर अन्धकार था। उस समय यह सब अप्रतर्क्य सलिल रूप में था। जो सलिल शून्य से आवृत था, वह तप के प्रभाव से पैदा हो गया है।

इसी प्रकार निम्न मंत्र में भी तप द्वारा जगत् की उत्पत्ति बताई गई है—

ऋतं च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ...... ॥ ऋ० १०। १९०। १॥

अर्थात् ऋत (प्राकृतिक नियम) यथा सत्य स्वरूप यह जगत् तप के प्रभाव से उत्पन्न हुआ।

यहां तप का अर्थ परमात्मा का स्रष्टव्य पर्यालोचन रूपी ज्ञान है। मुण्डक उपनिषद् १। १। में लिखा है—''य सर्वज्ञः यः सर्ववित् यस्य ज्ञानमयं तपः॥'' अर्थात् ब्रह्म सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापक है। उस का तप ज्ञानमय है, अर्थात् ज्ञान का ही नाम तप है। इस लिये उक्त स्थल में भी तप का अर्थ स्रष्टव्य पर्यालोचन रूप ज्ञान ही समझना चाहिये। अतएव मन्युसूक्त के २५ मंत्र में तप [ईश्वरीय स्रष्टव्य- पर्यालोचनरूप ज्ञान] और कर्म [जीवों के कर्म] को बराती कहा गया है। मन्यु और जाया के विवाह में तप और कर्म सहायक हैं।''

इस स्रष्टव्य पर्यालोचन रूप ज्ञान के साथ २ परमात्मा में जगत् उत्पन्न करने की कामना हुई। 'सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति' (तै० उप० ब्रह्मानन्द वल्ली २। ६) उस ने कामना की और

१—न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः॥ यजु. ३२। ३॥

कामना द्वारा ही इस विश्वरूप जगत् का सर्जन किया। जिस समय परमात्मा ने तप किया उस समय उस की कामना भी विद्यमान थी।

"कामस्तदग्रे समवर्त्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्। ऋ० १०।१२९।४॥

उस समय सृष्ट्युत्पत्ति की कामना, जो सब से प्रथम मानसिक व्यापार है, उत्पन्न हुई।

परमात्मा ने अपनी कामनामात्रा से जगत् की उत्पत्ति कर दी। इसी प्रकार बाइबिल में भी लिखा है—

परमात्मा की कामना मात्रा से इस जगत् की उत्पत्ति हुई। मनुष्य अपूर्ण है। इस के साधन भी अपूर्ण हैं। किसी काम को करने के लिये आत्मा, मन और इन्द्रियों को प्रयत्न करना पड़ता है। परन्तु यदि मन को दृढ़ किया जावे, मानसिक व्यायामों से मन को साधा जावे, तो इन्द्रियों का उपयोग किये बिना ही संकल्प मात्र (Auto-suggestion या Telepathy) से रोगों को दूर कर सकते हैं, और अपने शरीर में छिद्र आदि भी कर लेते हैं। जितना जितना सान्निध्य बढ़ता जाता है, उतनी ही बाह्य प्रयत्न की आवश्यकता भी कम होती जाती है। प्रकृति और परमात्मा में चरम सीमा का सान्निध्य है। साथ ही परमात्मा चैतन्यमय तथा सर्वशक्तिमान् है। इस लिए उसे अन्य साधनों की अवश्यकता नहीं। उस ने केवल कामना मात्र से, 'सलिल' में विकार कर दिया, जिस से यह संसार बन गया। 'तप' और 'काम' ही जगदुत्पत्ति-कार्य में कारण रूप हैं। ज्ञान और इच्छा मात्र से परमात्मा में कर्तृत्व उपपन्न हो जाता है।

द्वितीय युक्ति

कार्य कारण सम्बन्ध को देख कर इस दृश्य कार्य जगत् का भी कोई न कोई कारण मानना चाहिए। वह कारण उपादान तथा निमित्त भेद से दो प्रकार का है। 'कारणगुणपूर्वको कार्यगुणो दृष्टः' (Like produces like) सिद्धान्त के अनुसार जगत् का उपादान कारण तत्त्वरूप प्रकृति माननी पड़ती है। क्योंकि जड़ प्रकृति में कर्तृत्व उपपन्न नहीं हो सकता और उपादान तथा निमित्त कारण एक वस्तु नहीं हो सकती, इस लिये Cosmological युक्ति के आधार पर एक चेतन कर्ता ईश्वर की पृथक् सत्ता माननी पड़ती है। परन्तु केवल चेतनता मात्र से हम परमात्मा को जगत् का कर्ता नहीं कह सकते। वह ज्ञानवान् भी होना चाहिए। जगत् की प्रत्येक वस्तु में, प्रत्येक क्षेत्र में, एक नियम कार्य करता हुआ दिखाई देता है। भौतिकी, रसायन, ज्योतिष तथा वनस्पतिशास्त्र आदि प्रत्येक विज्ञान में विशेष २ नियम पाये जाते हैं। यह सब विज्ञान किसी महान् तथा अविनाशी नियम की ओर इशारा करते हैं। यह संसार अकस्मात् इस प्रकार का बन गया है यह नहीं कहा जा सकता। घुणाक्षरन्याय से नियमों की व्यापकता मान कर हम किसी तरह अपने को सन्तोष नहीं दे सकते। प्रत्येक क्षेत्र में, प्रकृति की सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु में नियमानुकूल काम हो रहा होता है। यह सब नियम बिना नियन्ता के नहीं हो सकते। किसी मकान में वस्तुओं का उपयुक्त स्थान पर रक्खा होना किसी चेतन नियन्ता का अनुमान कराता है। जिन नियमों का पूर्ण ज्ञान मनुष्य के द्वारा असम्भव सा है, उन नियमों का यथार्थ ज्ञान रखते हुए उन के अनुसार विविध पदार्थों का निर्माण करना किसी महान् ज्ञानवान् शक्ति का ही काम हो सकता है। इस लिये यदि इस जगत् का कोई चेतन कर्ता है तो वह महान् ज्ञानवान् होना चाहिए। इस सत्यता को अनुभव कराने के लिये वेद भगवान् कहते हैं—

"धीरा त्वस्य महिना जनूँषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी।
प्रनाक मृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम॥
ऋ० ७। ८६। १॥

अर्थः—उस के कार्य महान् तथा बुद्धि पूर्वक हैं, जिस ने इस द्युलोक तथा पृथिवी लोक को पृथक् २ बनाया है। उसने यह महान् चमकता हुआ द्युलोक बनाया है। उसने यह नक्षत्रों से भूषित अन्तरिक्ष तथा पृथिवी को जुदा जुदा बनाया है।

नक्षत्रों की प्रत्येक गति में तथा द्युलोक तथा पृथिवी लोक की प्रत्येक कृति में विशेष नियम, बुद्धिमत्ता तथा चातुर्य दिखाई देता है। इन्हें देख कर यही मानना पड़ता है कि किसी ने बुद्धि-पूर्वक इन्हें बनाया है। अकस्मात् यह जगत् इस प्रकार का नहीं बन सकता। इसी सचाई को निम्न मन्त्रों में बड़ी उत्तमता से दर्शाया गया है।—

"परि द्यावा पृथिवी सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य।
वाचमिव वक्तरि भुवनेष्ठा धास्युरेष नन्वेषो अग्निः॥"
अथर्व. २।१।४॥

"परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम्।
यस्य देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त॥"
अथर्व० २।१।५॥

अर्थः—मैं सारे ब्रह्माण्ड में घूम आया हूँ। (सारे ब्रह्माण्ड में ऋत को देख कर) अब मैं ऋत (शाश्वत नियम) के प्रथमोत्पादक परमेश्वर की उपासना करता हूं। वह परमेश्वर वक्ता में वाणी की तरह सारे ब्रह्माण्ड में रहने वाला है। वही सारे संसार का धारण करने वाला है। मैं उस सर्वत्र व्याप्त, शाश्वत नियम के सूत्र को देखने के लिये सब भुवनों में घूम आया हूं, जिस एक आदि मूल कारण में, अमरपन को प्राप्त करते हुए, ज्ञानी पुरुष विचरते हैं।

जगत् के निरीक्षण करने से मनुष्य स्वभावतः संसार में व्याप्त शाश्वत सचाई को, नियम को, देख कर किसी ज्ञानवान् का अनुमान करता है। उपरिलिखित अथर्व० २।१।५ मंत्र में परमात्मा को 'ऋतस्य तन्तु' कहा गया है। वह 'समान योनि' (Final cause) बताया गया है। इसी प्रकार ऋक् १०। १९०। १ मन्त्र में लिखा है—

"ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत॥"

अर्थात् ऋत तथा सत्य स्वरूप यह जगत परमेश्वर के स्रष्टव्य-पर्यालोचन रूप ज्ञान से उत्पन्न हुआ। इस स्थल पर जगत् को सत्य तथा ऋत स्वरूप कहा गया है। जगत् की प्रत्येक घटना में, क्षेत्र में नियम दिखाई देते हैं। एक प्रकार से यह जगत् नियममय, ऋत तथा सत्य-रूप, ही है। आगे चलकर 'अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी' तथा 'सूर्या चन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्' मंत्रों में परमात्मा को ऐसे ऋतमय तथा सत्यमय जगत् को वश में करने वाला, धारण करने वाला तथा उत्पादक बताया गया है।

इन मंत्रों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि परमात्मा ज्ञानवान् है और उसने बुद्धिपूर्वक सृष्टि की रचना की है। इनके अतिरिक्त अन्य भी कतिपय ऐसे मंत्र हैं जिन में इसी बात को दूसरी तरह प्रकट किया है। ऋ० १०। १२१। ९ में लिखा है-'मा नो हिंसी-ज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान'। वह परमात्मा कभी हमारी हिंसा न करे (प्रत्युत रक्षा करे), जिस सत्य नियम वाले परमेश्वर ने पृथिवी लोक तथा द्युलोक को बनाया है।

इस मंत्र में 'सत्य धर्मा' शब्द से प्रतीत होता है कि संसार में सत्य नियमों की सत्ता है और जगत् उत्पादक परमात्मा उनका नियामक है। इसी प्रकारः—

"यत्र तपः पराक्रम्य व्रतं धारयत्युत्तरम्। ऋतं च यत्र श्रद्धा चापो ब्रह्म समाहिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥
अथर्व० १०। ७। ११॥

"स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भे ऽध्यृतमाहितम्"।
अथर्व। १०। ७। २९॥

"इन्द्रे लोका इन्द्रे तपः इन्द्रे ऽध्यृतमाहितम्"॥
अथर्व०। १०। ७।३०॥

इत्यादि मंत्रों में जगत् व्याप्त ऋत (शाश्वत नियम) का आधार परमात्मा को बताया है।

अब तक के मंत्रों से यह अवश्य पता लग जाता है कि संसार में सर्वत्र नियम काम कर रहे हैं। यह संसार नियममय ही है। इन नियमों का नियामक जगदुत्पादक परमेश्वर है, यह भी उपर्युक्त मंत्रों से स्पष्ट हो जाता है। परन्तु इन नियमों का नियामक कोई मूर्ख व्यक्ति नहीं हो सकता। इस लिए यदि परमात्मा इनका नियामक है तो वह अत्यन्त ज्ञानवान् होना चाहिए। अतएव परमात्मा को ज्ञानी भी कहा है। अथर्व० २०। ३४। १ मंत्र में लिखा है।

"यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्"।

अर्थात् जो सर्व प्रथम, सर्वविख्यात, ज्ञानवान् परमेश्वर है, उसने अपनी प्रज्ञा से इन सूर्यादि लोकों को अलंकृत किया है। इसी प्रकार (ऋ०। ७। ८७। ५।) में "गृत्सो राजा वरुणश्चक्र एतं दिवि प्रेङ्खं हिरण्ययं शुभे कम्" अर्थात् सुन्दर द्युलोक में चमकते हुए सुखदायी सूर्यरूपी झूलन को बुद्धिमान् राजा वरुणने ही बनाया है। एवमेव यजु०। ४०। ८। मंत्र में "......कविर्मनीषी......" कह कर परमात्मा का वर्णन किया गया है। इसी मंत्र में आगे चल कर लिखा है, "याथा तथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः" अर्थात् उस क्रान्तदर्शी, ज्ञानवान् परमेश्वर ने अनन्तकाल से सब पदार्थों को यथायोग्य बनाया। इस प्रकार के अनेकों मंत्र उस जगदुत्पादक परमेश्वर के बुद्धिमान् होने की युक्ति को हमारे सामने उपस्थित करते हैं। इस के अतिरिक्त स्थान २ पर परमेश्वर के 'वेधाः' 'धीरः' 'विप्रः' 'विप्रः' 'मनश्चित्' 'मनुः' 'शतक्रतुः' और 'शचीपतिः' आदि विशेषण उस के अत्यन्त ज्ञानवान् होने में साधक हैं।

तृतीय युक्ति

जिस प्रकार मनुष्य में नियम तथा बुद्धि का सम्बन्ध देख कर संसार व्यापी महान् नियमों के कर्ता एक महान् ज्ञानवान् शक्ति की कल्पना करते हैं, उसी प्रकार मनुष्य के अन्दर वर्तमान अन्तरात्मा (conscience) भी हमें उसी परिणाम पर पहुंचाती है। मनुष्य के अन्दर एक अन्तरात्मा है जो उसे समय २ पर सचाई तथा बुराई का भेद-ज्ञान कराती रहती है। अच्छे काम की अन्तरात्मा से प्रेरणा होती है। इसी प्रकार प्रत्येक बुरा काम करने के प्रारम्भ में अन्तरात्मा की आवाज़ उस के विरुद्ध उठती है। पापी मनुष्य का दिल एक बार तो कांप उठता है। उसे बुरा काम करने में संकोच तथा लज्जा होती है। कोई नास्तिक पुरुष भी जब कोई बड़ा पाप कर बैठता है, और यह जानता हुआ भी कि उस के इस बुरे काम को कोई व्यक्ति नहीं जानता, एकान्त में जाकर अपने किये पाप पर रोता है। अन्तरात्मा की प्रेरणा से वह अपने किये पाप को अनुभव करने लगता है। एकान्त में भी पाप करने पर उसे भय, लज्जा तथा शंका होती है। क्या यह अन्तरात्मा की प्रेरणा का परिणाम नहीं? जब मनुष्य कोई अच्छा काम करता है तो उस के दिल में सुख, शान्ति तथा एक विशेष प्रकार का उल्लास होता है, जिसे वह लोक ख्याति के लिए प्रकट नहीं करना चाहता, प्रत्युत स्वयं उसे अनुभव

कर के शान्ति प्राप्त करता है। इस लिए मनुष्य में एक अन्तरात्मा की सत्ता माननी पड़ती है जो उसे भलाई बुराई का भेद कराती है। बुरा काम करने पर उस को भर्त्सना करती है और अच्छे काम पर उसे शाबाश देती है। इस लिए धर्म का लक्षण करते हुए मनु महाराज लिखते हैं—

"श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतद्धर्मविदः प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥"

अर्थात् धर्माधर्म के ज्ञान की चार कसौटियां हैं-श्रुति, स्मृति, महान् पुरुषों का आचार व्यवहार, और जो बात अन्तरात्मा को प्रिय लगे। प्रारम्भ में ही यदि अन्तरात्मा की आवाज़ पर ध्यान दिया जावे, उस की अपेक्षा न की जावे तो निश्चय से अन्तरात्मा मनुष्य को पाप मार्ग से हटा कर पुण्य की ओर प्रेरित करती है। अवहेलना की जाती हुई इ घड़ी के अलार्म की भांति मनुष्य की सहायता करनी छोड़ देती है। अथर्व ७ म काण्ड २० वें सूक्त में इसी अन्तरात्मा [अनुमिति] से शुभ कार्य में प्रवृत्त कराने की प्रार्थना की गई है।

"अन्वद्य नोऽनुमतिः यज्ञं देवेषु मन्यताम्।
अग्निश्च हव्यवाहनो भवतां दाशुषे मम॥ १॥
"तस्यास्ते देवि सुमतौ स्यामानुमते अनु हि मंससे नः॥

अर्थः—आज हमें अन्तरात्मा (अनुमिति †) दिव्य भावों में यज्ञ करने के लिए अर्थात् देवों योग्य कर्म करने के लिये स्वीकृति दे। और हमारी भेंट को स्वीकार करने वाला तेजस्वरूप परमात्मा मुझ पर अनुग्रह करे ॥ १॥ हे दिव्य गुण वाली अनुमति ! हम तेरी सुमति में रहें; तू ही हमें अनुकूल बुद्धि देती है॥ ३॥

इन मंत्रों में अन्तरात्मा से प्रार्थना की गई है कि वह हमें उचित मार्ग पर ले जावे। उस की मति, उस का आदेश या निर्देश हमेशा मनुष्य के लिए उपस्थित रहता है बशर्ते कि उसकी अवहेलना करके उसे क्रुद्ध न कर दिया हो। इसी तरह कामदेव के प्रहार से बचने के लिए अनुमति तथा आकूति (शुभसंकल्प) से प्रार्थना की गई है। अथर्व० ६। १३१। २ मंत्र है—'अनुमते न्विदं मन्यस्वाकूते समिदं नमः।'-हे अन्तरात्मन् [मैंने अपने शरीर से काम वासना को निकालने का शुभ संकल्प किया है*] उस के लिये मुझे अनुमति दो। हे शुभसंकल्प ! तुम मेरे अनुकूल हो जाओ।

इस तरह अन्तरात्मा मनुष्य के लिये एक ऐसा मार्ग प्रदर्शक प्रकाशस्तम्भ है जो प्रत्येक मनुष्य को देवासुर संग्राम से विक्षुब्ध विचार सागर में ठीक रास्ता दिखाने के लिए स्थिर भाव से खड़ा हुआ है। जिस परमात्मा ने इस संसार को बनाया है, जो बुद्धिमान् है और जिस ने अन्तरात्मा को जन्म दिया, क्या वह धर्मात्मा न होना चाहिए? जो स्वयं धर्मात्मा नहीं वह दूसरे को धर्मात्मा किस तरह बना सकता है? वह परमात्मा सत्य का प्रेरक है। समय समय पर अन्तरात्मा द्वारा मनुष्य को रास्ता दिखाता है। उसे वेद में 'सत्यसूनुः' तथा 'सत्यसवः' कह कर पुकारा गया है।

"तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः। सत्यस्य
युवानमद्रोघवाचं सुशेवम्" ॥ ऋ०। ८। १। २॥
"अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुम्। अर्चामि
सत्यसवं रत्नधामभिप्रियं मतिम्" ॥ ऋ०। ७। १४। १॥

---

†अनुकूल वाला मतिरनुमतिः। अर्थात् जिसकी मति, आदेश व निर्देश सदा मनुष्य के लिए अनुकूल हो, कभी प्रतिकूल न हो। अन्तरात्मा का आदेश सदा मनुष्य के अनुकूल होता है। उसी अनुकूल आदेश का नाम अनुमति है।

* नि शीर्षतो नि पत्तत आध्यो नि तरामि ते। देवाः प्रहिणुत स्मरमसौ मामनुशोचतु। अथर्व ६। १३। १। १॥

"अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम्" ॥ ऋ० । ८ । ६९ । ४ ॥
"आ विश्व देवं सत्पतिं सूक्तै रद्यावृणीमहे ।
सत्यसवं सवितारम्" ॥ ऋ० । ५ । ८२ । ७ ॥
"य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन ।
प्र च सुवाति सविता" । ऋ० । ५ । ८२ । ९ ॥

अर्थः— हे मनुष्य ! उस परमात्मा की स्तुति कर, जो हृदय के अन्दर विराजमान है । हे पुरुष ! तू सत्य के प्रेरक, नित्य युवा (जरा मरण रहित,) द्रोह रहित वाणी वाले, उत्तम कल्याणकारी ईश्वर की स्तुति कर ॥ १ ॥ मैं उस द्युलोक तथा पृथिवी लोक के पैदा करने वाले, अत्यन्त बुद्धिमान्, सत्य के प्रेरक, सब रत्नों के धारण करने वाले तथा हितकारी मति वाले परमात्माकी स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥ हे मनुष्य ! यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए वेद वाणी के पति, सत्य प्रेरक, उत्तम स्वामी की वाणी द्वारा स्तुति कर ॥३॥ हम संसार के देव, सत्य प्रेरक, जगदुत्पादक सच्चे स्वामी की वेद मंत्रों से आज स्तुति करते हैं, जो अपनी महिमा सब लोकों को व्याप्त कर रहा है और जो सत्य प्रेरक सबको प्रेरणा करता है (उस की स्तुति करते हैं) ।

इन मंत्रों में उसे 'सत्य का प्रेरक' कहा गया है । वह 'प्रिय मति', 'सत्पति' तथा 'अद्रोघ वाक्' है । वह उत्तम स्वामी है । उस की आज्ञा में रहते हुए हम किसी प्रकार का दुःख नहीं भोग सकते । उस के आदेश में कोई द्रोह नहीं । उस की मति तो हमारी भलाई के लिये है । अन्तरात्मा द्वारा वह हमें सत्य के मार्ग में प्रवृत्त करता है, यह पूर्व उद्धृत अथर्व० ७ । २० । १ । से कुछ स्पष्ट हो जाता है । उस मंत्र में अन्तरात्मा (अनुमति) से प्रार्थना कर के परमेश्वर से भी प्रार्थना की है वह इस दान (अनुमति द्वारा दिये गए आदेश व निर्देश रूपी दान) के लिये हम पर अनुग्रह करे । इस लिये परमात्मा को जगत्कर्त्ता तथा ज्ञानवान् (Intelligent) मानने के साथ २ उसे सब की भलाई चाहने वाला (moral) भी समझना चाहिए ।

यद्यपि यह युक्ति स्वतंत्र रूप से ईश्वर सिद्धि में कोई अधिक महत्व नहीं रखती, तथापि प्रथम दो युक्तियों के साथ मिल कर इस का भार कुछ बढ़ जाता है ।

चतुर्थ युक्ति

अब हम अन्तिम युक्ति को देकर इस प्रकरण को समाप्त करते हैं । कुछ विद्वान् केवल इसी युक्ति को ईश्वर सिद्धि में परम प्रबल साधक समझते हैं । अनुमान के आधार पर की गई ईश्वर-सिद्धि उन की सम्मति में प्रबल नहीं । अनुमान के आधार पर किसी वस्तु की कल्पना मात्र की जा सकती है । जब तक उस वस्तु का स्वयं साक्षात्कार न हो जावे तब तक उस के विषय में मन में सन्देह बना ही रहता है । उस के पक्ष तथा विपक्ष में संकल्प विकल्प उठते ही रहते हैं । भिन्न २ कल्पनाएं सूझती रहती हैं । सम्भव है हमारे युक्ति प्रकार में किसी स्थान पर कुछ कोण भेद हो गया हो जो अन्त में हमें उचित मार्ग से बहुत दूर ले गया हो । जब तक किसी वस्तु का प्रत्यक्ष दर्शन न कर लें तब तक कुछ न कुछ सन्देह बना ही रहता है । 'सक्थन्या देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा । यजु० । २३ । २६ ॥ इस मंत्र में दृष्टान्त से प्रत्यक्ष प्रमाण की श्रेष्ठता दिखाई गई है । जिस प्रकार आंखों से— प्रत्यक्ष द्वारा—सचाई का ज्ञान होता है उसी प्रकार जंघा से स्त्री की सुन्दरता का वर्णन किया जाता है । इस के आधार पर पर-प्रत्यक्ष (Intution) की युक्ति को हम कुछ महत्व दे सकते हैं । जिस प्रकार

जिस वस्तु का हम ने प्रत्यक्ष दर्शन कर लिया होता है; दूसरे की युक्ति सुन कर भी उस पदार्थ की सत्ता से इन्कार नहीं करते। उसी प्रकार जिन महापुरुषों ने, जिन महात्माओं या योगियों ने पर-प्रत्यक्ष-द्वारा परमात्मा के दर्शन कर लिए हैं, उन के ज्ञान को हम असत्य नहीं कह सकते। यदि हमारे पास पर प्रत्यक्ष द्वारा ईश्वर को साक्षात्कार करने की शक्ति नहीं तो हमें कोई अधिकार नहीं कि हम उन के लिये प्रत्यक्ष ज्ञान को अशुद्ध कहें। 'पर-प्रत्यक्ष' द्वारा जानी गई वस्तु का इन्कार करना अन्धे का रूप से इन्कार करने तथा बहरे का शब्द से इन्कार करने के तुल्य होगा। जिस वस्तु का प्रत्यक्ष करना हमारी शक्ति से बाहिर है उसका बिलकुल (Dogmatically) इन्कार करने का हमें कोई अधिकार नहीं। यदि हम कुछ कह सकते हैं तो केवल इतना ही कि "हम कह नहीं सकते परमात्मा है या नहीं"। इस तरह केवल सन्देह ही प्रकट कर सकते हैं। परन्तु वास्तव में तो हमें सन्देह प्रकट करने का भी कोई अधिकार नहीं। यदि हम लौकिक बातों में दूसरों-आप्त पुरुषों-के कहने मात्र से विश्वास कर लेते हैं, यदि हम आश्चर्य कारक वैज्ञानिक आविष्कारों का समाचार पढ़ते ही, उनकी सचाई स्वीकार कर लेते हैं तो हमारा उन योगियों के साथ अन्याय करना कहां तक उचित होगा। जिसने पर-प्रत्यक्ष किया हो वही इस विषय में कुछ कह सकता है, जिन पुरुषों की आप्तता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता, यदि वह ईश्वर का साक्षात्कार करके हमें ईश्वर के विषय में उपदेश करते हैं तो क्यों कर हमें सन्देह प्रकट करना चाहिए। इस लिए मेधावी पुरुषों का पर-प्रत्यक्ष भी ईश्वरसिद्धि में प्रमाण है। यजु० । ६ । ५ । में लिखा है:-

'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षु[1] राततम्॥

अर्थ-जिस प्रकार सब लोग दिन में आंखें खोल कर सब वस्तुओं का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं, उसी प्रकार मेधावी लोग परमात्मा के उच्च स्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं।

'पर प्रत्यक्ष' द्वारा प्रत्येक पुरुष परमात्मा के स्वरूप का दर्शन नहीं कर सकता। वह इन चर्म चक्षुओं का विषय ही नहीं कि सब कोई उसका दर्शन कर सके। कुछ मनुष्य ही उसका साक्षात् कर सकते हैं। लिखा भी है:—

"प्रयाणेति प्राणेन प्राणतीनां विराट् स्वराजमभ्येति पश्चात्। विश्वं मृशन्ति मनिशयां विराजं पश्यन्ति त्वे न त्वे पश्यन्त्येनाम्" ॥ अथर्व० । ८ । ९ । ९ ॥

अर्थात्—साधारण लोग इस का दर्शन नहीं कर सकते। परन्तु—

"वेनस्तत् पश्यत् परमंगुहा यद्यत्र विश्व भवत्येक नीडम्। तस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु। ॥ य० । ३२ । ८ ॥

अर्थात् जिस के आश्रय में यह सारा संसार एक रूप हो जाता है। जिस के आश्रय में ही यह जगत् प्रकृति में लीन होता है और फिर अभिव्यक्त हो जाता है। जो सब प्राणियों में व्याप्त तथा ओतप्रोत है, उस हृदय गुहा में रहने वाले परमेश्वर का मेधावी लोग प्रत्यक्ष करते हैं।

इस लिए योगियों का, मेधावी पुरुषों का ज्ञान बिना किसी प्रमाण के असत्य नहीं कहा

१—"दिवि आततं चक्षुः इव"। दिन में खोली हुई आंख की तरह। द्यौः शब्द निघण्टु। १। ९। में दिन वाची शब्दों में पठित है। अथवा 'दिवि......इव' द्युलोक में सूर्य की तरह अर्थात् जिस तरह द्युलोक में सूर्य का प्रत्यक्ष दर्शन हो जाता है, उसी प्रकार विष्णु का दर्शन योगी लोग करते हैं।

जा सकता । सब प्रकार की युक्तियों से ईश्वर की सत्ता की सिद्धि की गई है । इस जगत्‌का प्रत्येक अणु उस की सत्ता का साक्षी है ।

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ।

ऋ० । १० । १२१ । ४ ॥

बर्फ से लदी हुई चोटियों वाले ये सब पहाड़, ये सब अगाध गम्भीर जलमय समुद्र तथा ये सब दिशाएं जिस की महिमा गा रही हैं उस के विषय में और अधिक क्या लिखा जावे । जो सब जगह व्याप्त है उस के लिए कौन सी विशेष जगह बताई जावे ।

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंचिज्जगत्यां जगत् ।

यजु० । ४० । १ ।

वह तो संसार की प्रत्येक वस्तु में रम रहा है ।

प्रजापते न त्व देतान्यन्यो विश्वाजातानि परिता बभूव ।

ऋ० । १० । १२१ । ९ ॥

उस परमेश्वर के सिवाय कोई भी सर्वव्यापक नहीं । 'वह तो सब के पास भी है और दूर भी है । वह सब के अन्दर विद्यमान है और सब के बाहर भी हैं ।'[1] उस से कोई स्थान भी छूटा हुआ नहीं । जो सब के अन्दर तथा बाहर है । जो हर जगह रम रहा है, यदि कोई सत्ता उस की अनुभव नहीं करता, तो 'नैव स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति'के अतिरिक्त अधिक क्या कहा जा सकता है । वास्तव में—

"जिस ने इस संसार को रचा है, जो सब के भीतर विद्यमान है, उस परमेश्वर को भी अज्ञानान्धकार से आवृत, जल्प वितण्डा करने वाले पेट के पुजारी कभी नहीं जान सकते ।"[2]

इस लिए अन्त में इतना ही निवेदन है कि:—

"यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोर
मुत मेन माहुर्नैषोऽस्त्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टी विज इवामिनाति,
श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥

अथर्व० । २० । ३४ । ५ ॥

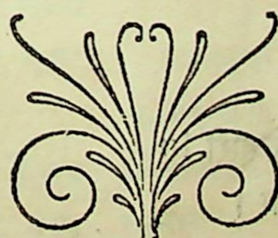
जो परमेश्वर की सत्ता में सन्देह करता है और जो यह कहते हैं कि वह नहीं है । वह परमेश्वर उस की पुष्टि का हरण कर लेता है । इस लिये हे मनुष्यो! उस में सच्चे दिल से विश्वास करो । वही इन्द्र है ।

---

१. यजु. ४० । ५ ॥

२"न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥

ऋ० । १० । ८२ । ७ ॥



वीणा

(श्री पं० चमूपति जी एम० ए०)

तड़प रही वीणा ।

(१)

उमड़ रहे सोते तारों में,
अमित वेदना झंकारों में !
विस्मय ताक रहे तारों में—
विकल हृदय—हीना !

(२)

विपुल तान से व्योम भर रहा,
अद्भुत कौतुक प्रेम कर रहा !
भाव भर रहा, हृदय हर रहा
वेधक स्वर भीना ।

(३)

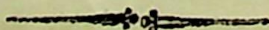
समय सो रहा, रैन छा रही,
बिरहिन कब की गीत गा रही,
वह मचल रहे, यह मना रही,
हुवा स्वप्न जीना ।

(४)

छू छू अंगुलि प्यारी प्यारी,
नाच उठी वीणा मतवारी !
"प्रिय ! बलिहारी ! प्रिय ! बलिहारी !"
मचला स्वर भीना ।

(५)

अनजाने में बजा रहे थे,
सुनने के मिष सुना रहे थे ।
कठपुतली को नचा रहे थे ।
वे सुधनाची ना ।



संसार के धार्मिक इतिहास पर एक आलोचनात्मक दृष्टि

(ले०—अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज)



रोप और अमेरिका अर्थात् कृष्टीय मतावलम्बी जातियों में धर्म के लिये कोई पर्य्याय वाचक शब्द नहीं है। इस समय धर्म के भाव को प्रकट करने के लिये Religion शब्द का प्रयोग किया जाता है, परन्तु 'रिलिजन' के धात्वर्थ से वह भाव नहीं निकलता। Religion शब्द का धातु Religere रिलिजिरी है। Re-Back और Regere to dbind—Religere का अर्थ सिंहावलोकन कह सकते हैं। प्रसिद्ध रोमन राजनैतिक नेता सिसरो ने इस शब्द के (Native Dorentonomy Chapter II पृ० २४ और ७२ में) यही अर्थ लिये हैं। परन्तु इस में अब तक विवाद चला आता है कि इस शब्द के वास्तविक अर्थ क्या हैं। क्रिश्चियन मत के मध्यकाल में Religious उसे कहते थे जो कि ईसाई पादरियों के लिये नियत किये हुए बाह्य नियमों का पालन करे। तब Religion उन मनुष्यकृत नियमों का नाम था जिन के अनुकूल पादरियों को आचरण करना चाहिये। अर्थात् नियत समय पर प्रार्थना करना प्रायश्चित को लिखना, भूखा रहना वा शरीर को कष्ट देना—इत्यादि।

जब हम मुसलमानी मत की ओर आते हैं तब भी हमें ऐसा ही दिखाई देता है। जो भाव ईसाइयों में Religion शब्द प्रकट करता है वही भाव फारसी के 'मज़हब' शब्द से निकलता है। एक मज़हब में वे सब पुरुष समझे जाते थे जो क एक सूत्र में बंधे हुए हों। और यह जब इतिहास से सिद्ध है कि मुहम्मद साहब ने अपने मत के मूल सिद्धान्त सब सीरिया के ईसाइयों से लिये, तब दोनों शब्दों के अर्थों की समानता पर कुछ आश्चर्य नहीं होता। परिणाम यह निकलता है कि लातीनी (क्रिश्चियन) तथा सासानी (मुहम्मदीय) जातियों में Religion वा मज़हब से वह मनुष्य समूह लिया जाता था जो एक ही प्रकार के मनुष्य कृत नियमों का अनुयायी हो। यह सच है कि पुराने समय से ही यह भाव इन जातियों के तत्व वेत्ताओं (विचारकों) के मनों में उठता रहा और वे समझते रहे कि धर्म के विचार में जाति वा समूह के कारण कोई भेद नहीं आना चाहिये। परन्तु धर्म शब्द के तत्वार्थ को इन जातियों के किसी २ विचारक ने अब समझा है। इस से स्पष्ट सिद्ध होता है कि धर्म शब्द का भाव आर्य जाति से ही फैला, और यतः वह लातीनी और सासानी जातियों के लिये स्वाभाविक न था इस लिये उन्होंने उस के तत्वार्थ को नहीं समझा।

तात्पर्य यह है कि धर्म शब्द का वाच्यार्थ मज़हब वा Religion से पहले प्रयुक्त था और मध्य-काल में वह लुप्त सा हो गया। इस लिये संसार के धार्मिक इतिहास पर आलोचनात्मक दृष्टि डालने के अर्थ यह होंगे कि Religions, मज़हबों या मतों में जो परिवर्तन समय २ पर आता रहा है, उस की विवेचना की जाय।

यद्यपि संसार में प्रचलित मत इस समय भी अनेक हैं और बड़े प्राचीन समय में भी अनेक ही थे तथापि धर्म अब भी एक है और पहले भी एक ही था। यदि धर्म शब्द का वाच्यार्थ संस्कृत में ज्ञान न होता तो मतों की स्थापना भी न दिखाई देती। मनुष्य के अन्दर धर्माधर्म की विवेचना के लिये एक विशेष शक्ति विद्यमान है। और इस लिये उस की स्वाभाविक प्रवृत्ति धर्म को ग्रहण करने की ओर रहती है, परन्तु उस प्रवृत्ति को रोकने के लिये कई प्रकार के आवरण सामने आजाते हैं, उन से सर्व साधारण को बचाने के हित धर्म प्रचारकों ने नियम बनाये और इन्हीं नियमों के कारण मतों की स्थापना हुई।

विवेचना करने पर पता लगता है कि मनुष्य के लिये धर्म का उपदेश सब से प्रथम वेद द्वारा ही दिया गया है। कम से कम वेद से पुराना कोई भी धर्मोपदेश नहीं है। वेदों का अस्तित्व ऐतिहासिक समय से बहुत पहले का मालूम होता है। नियम पूर्वक ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख छः सहस्र पहले का नहीं मिलता, और पारसी मत का प्रवर्तक यरथश्त्र (जरदुश्त) कम से कम ५ सहस्र वर्ष पहले का माना जाता है। यद्यपि अपनी प्रकृति के अनुसार युरोपियन ग्रन्थकारों ने खींचातानी कर जरथश्त्र का समय ईसा से ६६० वर्ष पहले लाने का प्रयत्न किया है तथापि लातीनी ऐतिहासिकों के लेख पर यदि विश्वास किया जाय तो यरथश्त्र का समय ईसा से छः सहस्र वर्ष पूर्व का मालूम होता है। साथ ही इस के विस्तान-ए-मज़हब (एक ग्रन्थ का नाम है) का ग्रन्थकार दसातीर के प्रमाण से यह लिखता है कि 'भगवान् व्यास यरथश्त्र के समय ईरान (पारस) में धर्म प्रचार के लिये गये थे।' यद्यपि दसातीर में यह लिखा है कि व्यास ने बातचीत कर के यज़्दान (ईश्वर) को धन्यवाद दिया और बेहमीन (यरथश्त्र के सम्प्रदाय का नाम है) के साथ सहमति प्रकट की ; तथापि इस से युरोपियन लेखकों का यह तात्पर्य सिद्ध नहीं होता कि यरतुश्त्र ने व्यास के मन्तव्यों को बदल दिया। इस कहानी का निचोड़ यह है कि—यतः पारसीमत की स्थापना अथर्ववेद पर हुई इस लिये —व्यासदेव ईरान में वैदिक धर्म का प्रचार देख उस मत के अनुयायियों को आशीर्वाद देकर लौट आये। अब यह सर्व सम्मत सिद्धान्त है कि व्यास के व्यास-सूत्र महाभारत के युद्ध से पहले बन चुके थे इस लिये यरथश्त्र का समय सहस्र वर्ष से कम का नहीं है।

संसार का सब से पहला मत

ईसाइयों के मत की बुनियाद पुराने तथा नये प्रतिज्ञा-पत्रों के ऊपर है। नये प्रतिज्ञा-पत्र में तो ईसा का जीवन और उस के उपदेशों का वृत्तान्त है और पुराने प्रतिज्ञा-पत्र में सृष्टि के आदि से लेकर ईसा के जन्म दिवस तक ४ सहस्र वर्षों का इतिहास दिया है। परन्तु पुराने प्रतिज्ञा-पत्र (Old Testament) के लेख बद्ध होने की तिथि इतनी पुरानी नहीं है। अब देखना यह है कि पारसी मत की बुनियाद कब पड़ी।

यद्यपि पारसी मत का प्रवर्तक यरथश्त्र माना व समझा जाता है तथापि उस के जन्म की कहानी और उस की शिक्षा के वृत्तान्त को पढ़ने से पता लगता है कि उस के उत्पन्न होने से बहुत पहले संस्कृत भाषा के आधार पर वहां की भाषा बन चुकी थी और अथर्ववेद के आधार पर आत्मिक विद्या का प्रचार हो चुका था। अवस्था

में जो वृत्तान्त यरथश्थ्र के जन्म का लिखा है उस से हमें मालूम होता है कि यरथश्थ्र को अवतार मानने का भाव संस्कृत साहित्य से लिया गया है-"अवस्था से हमें ज्ञात होता है कि दैवीय, पवित्र और राजकीय तेज, दीप्त शासक और सिद्ध से सिद्ध को मिलता आया है इस लिये कि अन्त में वह दीक्षित आत्मा को उत्तेजित करे। यह आकाश से ही आदेश होता है कि यह उत्तेजना 'फ्रावशीय' अर्थात् रक्षक आत्मा और प्राकृत शरीर के साथ मिल जावे। और इन तीन शक्तियों का पुञ्ज आश्चर्य जनक बालक उत्पन्न हो।

"प्रथम तेज औहर्मज्द से उतरता है जहां कि उस का स्थान अनादि अनन्त प्रकाश में है। जब वह आकाश से पृथवी पर आता है और उस घर में प्रवेश करता है जहां कि भविष्य को यरथश्थ्र की माता उत्पन्न होने वाली है। तब उस की आत्मा के साथ २ मिल कर वह उस में उस समय तक रहता है जब कि उस कि आयु १५ वर्ष की हो जाय और तब वह अपने पुत्र ईरान के अवतार को जन्म देती है।" 'Zoroaster the Prophet of Ancient Iran' by A.V. Williams Jackson, 1901—p. 24.

क्या उपरोक्त उद्धृत लेख उस भाव को प्रकट नहीं करता जो गीता में आया है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

कृष्ण का यह कथन उसी समय का आविष्कार न था प्रत्युत उस ने वही प्रकट किया जो आर्य साहित्य में था। प्रथम से विश्वास चला आता था कि श्रेष्ठों की रक्षा और दुर्जनों के भावों के नाश के लिये मुक्त पुरुष अवतार लिया करते हैं। इस प्रकार से पता चलता है कि यरथश्थ्र की उत्पत्ति से बहुत काल पूर्व वैदिक धर्म्म का नाद ईरान में गूंज चुका था। यरथश्थ्र के पिता का नाम पुरुषास्प और जिस गुरु के आगे वेदारम्भ संस्कार के पश्चात् उस ने पढ़ना आरम्भ किया उस का नाम बरज़ीन कुरूस था। यह सिद्ध करता है कि अथर्व का प्राधान्य उस देश में उस समय था। मि० जैक्सन ३० पृष्ठ पर शब्द "बरज़ीन कुरूस" के विषय में एक नोट देते हुए लिखते हैं:—

कहीं यह नाम संस्कृत गुरु शब्द का रूपान्तर, अपभ्रंश तो नहीं? फिर १५ वें वर्ष में उस का यज्ञोपवीत संस्कार होना और २० वर्ष की आयु में सांसारिक विषयों से उस का वैराग्य और साथ ही यह उपदेश कि "दीनों को दान दो, पशुओं को चारा दो, अग्नि के लिये समिधा लाओ और सोमवल्ली को जल में डाल कर देव पूजन करो" स्पष्ट शब्दों में सिद्ध है कि उस समय वैदिक शिक्षा का ही ईरान आदि देशों में प्रचार था।

गाथाओं से पता लगता है कि २० वर्ष तक एकान्त सेवन और अभ्यास के पश्चात् यरथश्थ्र ने अपने मत का प्रचार प्रारम्भ किया। पारसी मत में अहुर्मुज्द और अहुरमन्द दो शक्तियां मानी गई हैं। पहली का अर्थ आकाश का स्वामी और दूसरी का अर्थ अन्धकार का प्रतिनिधि है। इन्हीं दोनों शक्तियों के युद्ध का परिणाम मनुष्य की आन्तरिक हल चल है। प्रकाश अर्थात् भलाई और अन्धकार अर्थात् बुराई में बराबर युद्ध होगा। परन्तु विजय अन्त को अहुर्मुज़्द अर्थात् प्रकाश का होगा; यह पारसी मत का मूल सिद्धान्त है। अब पश्चात्य तत्ववेत्ताओं ने यह बताते हुए कि ज़ुयन्द भाषा संस्कृत का एक अपभ्रंश ही है, यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि दोनों भाषाओं की उत्पत्ति स्वतन्त्र रीति से हुई है; परन्तु इस में उन्हें

कृत्कार्यता नहीं हुई। सर विलियम जोन्स ने लिखा है-"जब मैंने ज्यान्दा भाषा के कोष का अनुशीलन किया तब मुझे यह देख कर बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि इस में ५० फ़ी सदी संस्कृत का स्थान है। यहां तक कि उन में से बहुत सी विभक्तियां भी संस्कृत व्याकरण के नियमों से निकली हैं। जैसे युष्माकं से युष्मद्।

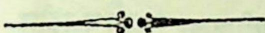
इस के पश्चात् यह दर्शा कर कि जिस पहले ग्रन्थ कर्ता मि० एनक्विटिल ने ज़ेन्द का शब्द-कोष बनाया वह संस्कृत नहीं जानता था और इसी लिये वे शब्द उस के अपने घड़े नहीं हो सकते, फिर सर विलियम लिखते हैं:-"परिणाम यह निकलता है कि ज़ेन्द भाषा कम से कम संस्कृत का एक अपभ्रंश ही थी और उस से उतना ही मिलती थी जितना कि प्राकृत वा अन्य प्रसिद्ध भाषाएं हमारे ज्ञान में आज से दो सहस्र वर्ष पहले भारत में बोली जाती थीं।" देखो Asiatic Researches Volume II. p. 3 इसी विषय पर ज़्यान्दावस्था के अनुवादक जेम्स डार्मेस्टेटर लिखते हैं-"अवस्था की कुञ्जी पहलवी नहीं प्रत्युत वेद है। अवस्था और वेद एक ही वाणी की दो प्रतिध्वनियां हैं, अर्थात् एक ही भाव को प्रकट करने वाली है। इस लिये अवस्था का सब से उत्तम भाष्य तथा उस का सब से उत्तम शब्द-कोष वेद ही है।"

अवस्था का समय अन्य मतों की धर्म-पुस्तकों से पहले का है, यह इस से भी सिद्ध होता है कि जहां अन्य मतों की धर्म पुस्तकों के नामों का अनुवाद करें तो 'पुस्तक' के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता, वहां 'अवस्था' वेद शब्द के अर्थ से मिलता है अवस्था पहलवी भाषा में अविस्तक बन जाता है। Dr. Haug अपनी पारसी धर्म विषयक पुस्तक में १२१ पृ. पर लिखते हैं "अवस्था" शब्द स्वयं (पारसियों की) धर्म पुस्तकों में उन अर्थों में नहीं मिलता जो कि इसे अब दिये गये हैं और नांही इसे सासानी शब्द अपिस्तान के साथ भ्रम से मिलाना चाहिये जो कि आभूषणों पर खुदा हुआ इस पद के साथ मिलता है-"अपिस्तान बल यज़्दान"-क्योंकि यही शब्द पहलवी मूल लेखों में ईश्वर की प्रर्थनाओं के अर्थों में आता है। किन्तु पहलवी अपिस्तक और अविस्ताक (अवस्था) अपिस्तान से जुदा शब्द है, और उन अर्थों में कभी नहीं आया, नांही अवस्था के दस में से नौ लेखों के साथ उसका सम्बन्ध है। अब पहलवी के अविस्ताक को हम 'अव + स्ता' अर्थात् जो कि स्थित है, वा (मूल) M. J. Mulear के लेखानुसार कर सकते हैं। परन्तु ऐसे अर्थ यद्यपि वर्तमान अवस्था के अनुसार सम्बद्ध हो सकें तथापि जो विविध प्रकार के नास्क(अवस्था के भाग) गुम हो चुके हैं और जिन के साथ कि अवस्था और ज़ेन्द दोनों का सम्बन्ध हो सकता है उनके अर्थों को यह भाव सुलझा नहीं सकता। अधिक सन्तोष जनक अर्थ इस प्रकार किये जा सकते हैं कि अविस्ताक को उस के धातु अ-विस्ता तक पहुंचावें जिस से कि Vid = to know निकला है और जिस के अर्थ विद् ज्ञाने किये गये हैं; जो कि जाना गया है, जो कि ब्राह्मणों के धर्म पुस्तक के नाम 'वेद' से लगभग मिलता है। [पृ.१२१. Religion of Parsis. Dr. Haug. IV Edition]

इसी पुस्तक में आगे चल कर Dr. Haug ज़ेन्द शब्द से निकला हुआ मान कर विद् धातु तक पहुंचा देते हैं जिस के अर्थ ज्ञान है। संस्कृत 'ज्ञा', ग्रीक Gna, लैटिन Gno (जैसे कि Agnosed Cognosco में) अर्थात् यह शब्द ज्ञान

knowledge और Science के अर्थ में आता है। इस प्रकार यह सिद्ध है कि अब पश्चात्य संस्कृतज्ञों की दृष्टि में भी ऋग्वेद सब से पुरानी पुस्तक है और वेद से पूर्व धार्मिक तथा सभ्यता के विश्वासों का कहीं पता भी नहीं मिलता, तब वैदिक ज्ञान के आधार पर उत्पन्न सब से पहला मत पारसियों का समझा जासक्ता है।

यद्यपि व्यास के नाम आने से हम इस निश्चय पर निर्विवाद पहुंच सकते हैं कि यरथश्थ का समय ५ हज़ार से पूर्व का ही है। परन्तु यूनान के पुराने लेखक अरस्तु, हैराडोटस इत्यादि ने यरथश्थ का समय ईसा से कई सहस्र वर्ष पूर्व का बताया है। यूरोपियन साहित्यान्वेषियों ने अपनी प्रकृति के अनुसार इस समय को बहुत पीछे की ओर खैंचने का प्रयत्न किया है। इसके साथ ही पाश्चात्य साहित्यान्वेषी एक सन्दिग्ध लेख के आधार पर यरथश्थ का समय मिश्रदेश की महारानी सेमिरेमिस के साथ मिलते हैं। उस अवस्था में भी यरथश्थ का समय बहुत समीप नहीं खिचता, इस लिये वे समीप की पहलवी भाषा में लिखी हुई पुस्तक बून्दाहिश्न नामी का प्रमाण देकर यरथश्थ का समय सिकन्दर से २७२ वर्ष पहले ही स्थापित करते हैं। और इस प्रकार उसे ईसा से ३६० वर्ष पूर्व पहुँचा देते हैं। किसी घटना की जितने समीप वर्ती समय की साक्षी हो उतनाही वह विश्वास-पात्र समझी जाती है। इसलिये अरस्तु आदि की निश्चित की हुई तिथियां मानने से हमें इन्कार नहीं होना चाहिए। इसलिये यह निश्चय से कहा जा सकता है कि अथर्व का सीधा बालक, पारसी मत, आज से ६ हज़ार साल पुराना है।



पिछले पचास बरसों के यदि सम्पूर्ण नहीं तो अधिकांश राजनीतिक झगड़ों में, चाहे वे व्यापार के सम्बन्ध में हों, चाहे मताधिकार के सम्बन्ध में हों, चाहे धर्म के सम्बन्ध में हों, चाहे दासता के विरोध में हों या किसी और बात के सम्बन्ध में हों—मनुष्यों की ये आलसी जमातें, ये पढ़ेलिखे लोग, ये खिताबयाफ़्ता फ़ुरबालें हमेशः देश को गुमराह करने की कोशिश करती रही हैं।

ग्लैडस्टन

'विचार करना' एक बहुत बड़ी कमी है। मेरे बच्चे! परमेश्वर तुम्हें इस से बचावे; ठीक उस तरह, जिस तरह उस ने अपने बड़े बड़े सन्तों और महान आत्माओं को, जिन्हें वह विशेष नरमी के साथ प्यार करता है—इस कमी से बचाया है।

अनातोले फ्रान्स

सुदर्शन-चक्र

(लेखक-श्रीयुत् रत्नाम्बरदत्त जी "चन्दोला")



कश्मीर के सुप्रसिद्ध डाक्टर शिवप्रशाद कौल अपने समाज मन्दिर के आधार स्तम्भ थे । साहित्य-संगीत-कला के वे मूर्तिमान् उदाहरण थे । उन का हृदय विशाल, विचार उदार और जीवन आदर्श था। उनके समस्त सद्गुण उनकी सन्तति में भ ठीक उतरे थे । एक गृहिणी, दो कन्यायें, और दो पुत्र, बस यही उन का परिवार था । बड़ी कन्या 'शारदा' सचमुच बीणा-वादिनी शारदा के समान सर्वोपमायोग्या थी । सरलता उस का प्रधान अलङ्कार, कोमलता उस का श्रृङ्गार, सुशीलता उस का व्यवहार था । क्या रूप और क्या गुण वह दोनों में स्वर्ण-सुगन्धि का सम्मिश्रण लेकर आई थी। यदि उस में कोई कमी थी तो वह भाग्य की । १२ वर्ष की आयु में ही बड़ी धूमधाम से उस का विवाह हो गया था, किन्तु वह शुभ-संस्कार कुछ ही समय पश्चात् 'अशुभ' प्रमाणित हो गये । उस नव-वधू का वधूत्व वैधव्य ने छीन लिया । सोने के फूलों से सजे हुए उस सुकुमार शरीर ने विधवा का वेश धारण कर लिया । उस के वैवाहिक-जीवन का सारा इतिहास आरम्भ ही न होने पाया था कि बस समाप्त हो गया । उसे पता भी न चला कि क्या हो गया, पर संसार की दृष्टि में उस का 'सर्वनाश' हो गया था । वह सुन्दरी, वह स्वर्ण-लता सी बाला, वह सुकुमारी शारदा, अब तपस्विनी हो गई थी । एक पंख-विहीन पक्षी की भांति वह म्लान-मना बैठी २ उपनिषद् तथा रामायण का पाठ किया करती । उस के लिए अपने भाई बहिन के समान, घरमें सर्व सुख प्रस्तुत थे । किन्तु वह उन के समान न हँस सकती थी न रो सकती थी । उनका हृदय रह २ कर चुटकियां लेता रहता था । पर सहिष्णुता ही उस की एक मात्र ओषधि रह गई थी ।

डाक्टर साहब जब कभी उस निरपराधिनी किन्तु भाग्यविहीना वन्दिनी की ओर देखते थे तो स्वतः उन की आँखों से आँसू टपक पड़ते थे। तपस्विनी शारदा ने अपने जीवन का सारा सुख समाज की निठुरता पर निछावर कर दिया था। किन्तु उसकी जन्मसिद्ध सम्पत्ति—रूप और गुण—कौन छीन सकता था ? वह धूल भरे हीरे की भाँति अपनी अन्तर्ज्योति को बनाये थी । उस के मुहँ पर पवित्रता की गहरी रेखायें, उस की आँखों में सतीत्व की ज्योति, उस की वेश-भूषा में सरलता की झलक एक अलौकिक प्रतिभा-पूर्ण सामञ्जस्य लिए थीं । ऐसी देवियों की दुर्दशा देखकर हृदय-हीन समाज का गला घोंट डालने को जी चाहता है । पर समाज वह बूढ़ा वृक्ष है, जिस की शाखायें काटे से भी नहीं कटती । भले ही कभी समय का प्रबल पवन उसे समूल उखाड़ कर फेंक दे। और ऐसा हो कर ही रहेगा । कब ? जब कि शारदा के समान बाल-तपस्विनियों की दीर्घ-उच्छ्वासें एक साथ मिल कर एक भीषण तूफान का रूप धारण कर लेंगी ।

पांच वर्ष और बीत गये । शारदा की छोटी बहिन ललिता भी विवाह के योग्य हो गई । एक चिन्ता पर दूसरी चिन्ता की छाप लग गई । दूध का जला छाँछ को भी फूंक २ कर पीता है । सो भयो-

वृद्ध डाकृर साहब ने अपनी दूसरी पुत्री के लिये सुयोग्य वर की छान-बीन आरम्भ कर दी । सब से पहले स्वास्थ्य, फिर और बातें देखी गई । अनेक पात्रों में से एक पात्र, जो साधारण स्थिति तथा शिक्षा का था, किन्तु था स्वस्थ और सदाचारी, सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ ।

विवाह- संस्कार के उपरान्त वर कन्या भीतर ले जाये गये । वरनारायण जी स्वयं समाज सेवी और साहित्य निष्ठ थे । उन्होंने देखा कि महिलाओं की पंक्ति से कुछ परे एक शुक्ल-बसना तपस्विनी देवी खड़ी है । अन्य सब स्त्रियां वर-वधू की आरती उतार रहीं थीं । मांगल्य-गीत गा रही थीं । किन्तु वह, केवल एक वही, प्रस्तर की प्रतिमा के समान एक कोने में निश्चल खड़ी थी । उसे उस उत्सव में प्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित होने का अधिकार प्राप्त न था—कारण वह 'विधवा' थी । कैसा अत्याचारपूर्ण दृश्य था । अपनी प्यारी छोटी बहिन के सुख में भी वह हर्ष न मना सकती थी । यह सब 'वरनारायण' की दृष्टि में छिपा न रहा । जिस समय उसको पुरोहित ने प्रणाम-प्रणाली का परिपालन करने का आदेश किया, उस समय, एक आश्चर्य जनक घटना हो गई ! वरनारायण ने सर्व प्रथम उस तटस्थ खड़ी तपस्विनी शारदा देवी के पवित्र चरणों को छू लिया । वरनारायण ने हाथ जोड़ कर विनीत भाव से निवेदन किया —

"देवी, मुझे आशीर्वाद दो !" देवी शारदा मुख से तो कुछ न बोल सकी, किन्तु उसने दाहिने हाथ से वर का मस्तक छू कर दो बूंद आँसू गिरा दिये । यही उस का आशीर्वाद था । वर बोलाः— "देवी, तुम धन्य हो । आज तुम ने मेरा उद्धार कर दिया । तुम्हारा आशीर्वाद पाकर अब मैं 'विश्व विजयी' हो गया ।" वर ने पुनः देवी के चरणों पर माथा टेक दिया, और देवी ने वर की उंगली पर भेंट स्वरूप एक लाल नग वाली सोने की अंगूठी पहिना दी, और पुनः दो आंसू गिरा दिये ।

वरनारायण उस शुभ विवाहोत्सव की हर्षोत्फुल्ल घड़ी में भी रो पड़ा । उस के आंसुओं की अविरल धारा से समस्त महिला-मण्डल में कुहराम मच गया । कैसी अभूतपूर्व घटना थी । कतिपय क्षणों के बाद नवयुवक बोला-"देवी, यह तुम्हारा प्रसाद है । नहीं ! नहीं !! यह तो मेरा "सुदर्शन—चक्र" है । आज मेरा जीवन धन्य हुआ । वन्दनीया देवी ! आज मैं इस "सुदर्शन-चक्र" की शपथ लेकर यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेरा जीवन महिला समाज की सेवा, देशप्रेम और साहित्य-निष्ठा में अर्पित होगा ।"

सब ने एक स्वर से कहाः—

"एवमस्तु !"



जल-चिकित्सा

(ले०—श्री पं० देवराज जी विद्यावाचस्पति)

(२)

जलचिकित्सा पद्धति की उत्तमता

शरीर में जितना भी कार्य हो रहा है वह सब मान्स पेशियों के द्वारा हो रहा है। भोजन का पचना, शरीर में उसका अङ्ग होकर रहना, मल का बाहिर निकलना इत्यादि सब काम मान्स पेशियों के द्वारा हो रहे हैं। जिस अङ्ग की मान्स पेशियां ढीली पड़ जाती हैं उस अङ्ग का काम बन्द हो जाता है। शरीर का सब काम संकोच प्रसारात्मक गति रूप है। मान्स पेशियों में संकोच प्रसारात्मक गति करने की योग्यता जब तक बनी रहती है तब तक शरीर का सब काम ठीक चलता रहता है। जब गति करने की योग्यता में फ़र्क आ जाता है तब काम बन्द हो जाता है।

मान्स पेशियों को गति देने का साधन शरीर में नाड़ीजाल है। जिस नाड़ी का सम्बन्ध जिस मान्स पेशी से है उस मान्स पेशी को वह नाड़ी गति देती रहती है वा उससे गति दी जा सकती है। नाड़ी के कार्य में फ़र्क पड़ जाने से मान्स पेशी के कार्य में फ़र्क पड़जाता है। फिर शरीर के अङ्गों के कार्यों में फ़र्क पड़कर शरीर अस्वस्थ, विकृत और रोगी हो जाता है।

नाड़ी के कार्य में विकृति होने के अनेक कारण हैं। नाड़ी से अधिक काम लेने से, कम काम लेने से, वा किसी प्रकार के आघात से जैसे विद्युत, प्रकाश, ताप, शब्द और अन्य किसी प्रकार की चोट से नाड़ी के कार्य में विकार उत्पन्न हो जाता है। किसी भी प्रकार से क्यों न हो नाड़ी के कार्य में रुकावट विजातीय पदार्थ के सञ्चय से होती है। विजातीय पदार्थ जो शरीर में नहीं रहना चाहिये वह ही मल कहलाता है। मल को दूर कर देने से शरीर की नस नाड़ियों का कार्य सुचारु रूप से चलने लगता है।

जल चिकित्सा का प्रधान कार्य शरीर शुद्ध कर देना है। शरीर की शुद्धि से नाड़ियों में स्फूर्ति (tone) पैदा हो जाती है। जितना ही हम नाड़ियों में स्फूर्ति जागृत् रखते हैं उतना ही हमारे अन्दर रोगों के प्रति प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है। तब रोग हम में नहीं रहते और हम पर नहीं आते।

जल चिकित्सा से नाड़ी संस्थान को बल मिलता है। नाड़ी संस्थान में भिन्न २ प्रकार की नाड़ी हैं। एक ज्ञानवाही, दूसरी क्रिया वाही, तीसरी पोषक नाड़ी।

ज्ञान वाही वे नाड़ियां हैं जो पञ्चज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी ज्ञान को बाहिर से भीतर मस्तिष्क में ले जाती हैं। क्रिया वाही वे नाड़ियां हैं जो मस्तिष्क से बाहिर त्वचा की ओर जाती हैं और मान्स पेशियों को गति देती हैं। तीसरी पोषक नाड़ियां वे हैं जो हृदय रक्तवाहिनियां, आमाशय, यकृत, प्लीहा, आन्त्र, वृक्क वस्ति आदि शरीर के पोषक अवयवों को बल देती हैं। ज्ञानवाही नाड़ियों के प्रारम्भिक सिरे त्वचा में रहते हैं और अन्तिम सिरे मस्तिष्क में। क्रिया वाही नाड़ियों के प्रारम्भिक सिरे मस्तिष्क में अन्तिम और सिरे त्वचा में रहते हैं। पोषक नाड़ियों का प्रारम्भ सौषुम्न काण्ड में वर्तमान नाड़िचक्रों (Ganglions) से होता है और अन्त उस २ अङ्ग में होता है जिस २ अंग को वे नाड़ियां क्रियाशील रखती हैं और पोषण कार्य के लिये उपयुक्त बनाती हैं।

मलाशय से मल को बाहिर निकालने का कार्य विशेषतः (Coccygeal plexus) का है। मूत्रसंस्थान के अङ्गों और जनन अङ्गों को बल

पहुंचाने का काम विशेषतः Sacral plexus का है। पाचक संस्थान को बल Lumber plexus से विशेष मिलता है। रक्त संस्थान को बल Cardiac plexus से विशेष मिलता है। श्वास संस्थान को बल विशेषतः (Cervical plexus) से मिलता है। और सम्पूर्ण शरीर को समुदाय रूप से बल Cerebral plexus से मिलता है।

इस नाड़ि संस्थान को बलवान रखने से सम्पूर्ण शरीर पर मनुष्य का ऐच्छिक अधिकार हो जाता है। जल चिकित्सा की विधियों से नाड़िसंस्थान को विशेष बलवान बनाया जाता है। सीवनस्नान (Cold Parineal bath) से सम्पूर्ण नाड़ि संस्थान को बल मिलता है। इस से शरीर के मल दूर होकर वात, पित्त, कफ की समता (पारस्परिक निर्बाधगति) से शरीर स्वस्थ निरोग हो जाता है। औषध प्रयोगों से तो नाड़िसंस्थान को परम्परया बल मिलता है, परन्तु इस पद्धति में सीधा ही नाड़ीसंस्थान को बल मिलता है। इस लिये यह पद्धति अन्य चिकित्सा पद्धतियों से अधिक उत्तम है।

शराब तमाखू और मान्स क्यों त्याज्य हैं !

शराब

‡ थोड़ी मात्रा में शराब पीजाय तो वह धीरे २ दिमाग में प्रवेश कर के नाड़ी जाल को उत्तेजित करती है। खुशी, बात करने की शक्ति, कथन में प्रभाव, विनोद, विचारों की विभिन्नता और शीघ्रता इनमें वृद्धि पाई जाती है। इच्छा शक्ति का बल कम हो जाता है। ज्ञान का ग्रहण, स्मरणशक्ति, कल्पना शक्ति बढ़ जाती है।

हृदय तीव्र होता है। धड़कन बढ़ जाती है। रक्त सञ्चार तीव्र हो जाता है। सम्पूर्ण शरीर गर्म हो जाता है अधिक मज़बूत और अच्छा मालूम होता हैं।

शराब की मात्रा लगातार बढ़ाई जाय तोइस के प्रभाव दिमाग के अगले और ऊंचे भाग पर होते हुए ही नहीं दीखते, प्रत्युत पिछले और गहरे भाग पर भी होते हुए दीखते हैं। इस पिछले भाग में ज्ञानेन्द्रिय और मान्स पेशियों की शक्ति के केन्द्र होते हैं। दृष्टि और श्रवण शक्ति कम होजाती है। भुजा और टांगे कमज़ोर पड़ जाती और लड़खड़ाने लगती हैं। सिर हिलने लगता है। जीभ तुतलाती है अच्छी प्रकार स्पष्ट शब्द नहीं निकलता है। बुद्धि की तीव्रता बुद्धि भ्रंश में बदल जाती है। प्रलाप आरम्भ हो जाता है। तर्कना शक्ति घट जाती है। इच्छा शक्ति बिलकुल शून्य हो जाती है। मनुष्यत्व क्षीण हो कर पशुत्व की वृद्धि होती है दुर्वासनायें बढ़ जाती हैं। सदाचार टूट जाता है। मनुष्य शइतान का रूप धारण कर लेता है। वह कुछ समय के लिये पागल हो जाता है और अपने पर तथा दूसरों पर आक्रमण करता है।

शराब के साथ यदि विष पदार्थ भी शरीर में प्रविष्ट हो जावें तो अवस्था अधिक भयानक हो जाती है। बुद्धिनाश, मान्सशैथिल्य, इन्द्रियां क्षीण, सम्पूर्ण मस्तिष्क का परिवर्त्तन, सुषुम्ना काण्ड के शिर में कष्ट, हृद्दौर्बल्य, नाड़ी मन्द, श्वास काठिन्य, चेहरा सूजा हुआ और काला नीला सा, मूर्छा और पश्चात् मृत्यु हो जाती है।

शराब भोजन के तौर पर

शराब का भोजन के तौर पर प्रयोग अनुचित है। शराब शरीर को पुष्ट नहीं करती केवल वात संस्थान को उत्तेजित करती है। वह पदार्थ भोजन कहलाता है जो पहिले आमाशय में जाता है और वहां से शरीर में फैल कर शरीर को पुष्ट करता है और शरीरके तपमान को स्थिर रखता है। भोजन आमाशय तथा अन्यरस जनक अङ्गों के स्रावों में घुल जाता है। ये अङ्गलाला ग्रन्थियां, यकृत् और क्लोम (Pancreas) हैं।

‡ Smedley's Practical Hydropathy. page 238—239.

घोल बनाने के लिये बाहर से भी द्रवकी आश्यकता है। इस द्रव के लिये शराब का प्रयोग नहीं हो सकता है। शराब आमाशय के पाचक स्रावों से मिल कर भोजन पर उन की क्रिया को रोक देती है, चाहे वह भोजन प्राणिज हो और चाहे वनस्पतिज हो। क्रिया रोक देने का कारण यह है कि पाचक स्रावों के साथ शराब के मिलने से एक श्वेत पदार्थ निक्षिप्त हो जाता है जिस के कारण पाचक स्राव भोजन को पचाने में असमर्थ होजाते हैं। (Pepsin) पैप्सीन जम जाता है, अतः भोजन को नहीं पचा सकता है।

शरीर में अति शीघ्र फैलने की शराब में विशेष शक्ति है। शराब में पदार्थों को घोलने की अद्भुत सामर्थ्य है। शराब में भिन्न २ पदार्थ घोल कर मद्यासव (Tinctures) बनाये जाते हैं। अमाशय में शराब भोजन को घोलने के स्थान में कठोर बना देती है और गाढ़ा कर देती है। शरीर विज्ञान वेत्ता बतलाते हैं कि अमाशय में भोजन का पतला घोल बनाने के लिये जल से अच्छा और कोई पदार्थ नहीं है। जल भोजन का घोल बनाता है, भोजनको रक्त में बहा ले जाता है और फिर शरीर में फैला देता है। निकम्मे भाग को शरीर में से निकाल फेंकता है। जल की इसी शक्ति पर जल चिकित्सा की सफलता का निर्भर है।

शराब से शरीर की धातुओं के तन्तु नहीं बनते क्योंकि इस में शरीर को बनाने वाले रासायनिक घटक पर्याप्त नहीं है। शराब बिना हज़म हुए ही रक्त में फैल जाती है। यह रक्त में घूमती रहती है जब तक कि फेफड़ों में जाकर जलती नहीं है या मल निस्सारक अङ्गों से बाहिर नहीं निकाल दी जाती।

क्या शराब शरीर के तापमान को बढ़ाती है?

फुप्फुस में शराब का दहन होने से किसी अंश में यह कहा जा सकता है कि शराब शरीर के तापमान को बढ़ाती है। परन्तु हमारा साधारण भोजन मिश्रित होता है। उस में पोषक पदार्थ तो होते ही हैं उस के साथ घी, तेल खाण्ड भी होते हैं जो शरीर में गर्मी को पैदा करते हैं। घी, तेल खाण्ड से अतिरिक्त भोजन में ऐसे पदार्थ हैं जो खाण्ड की शकल में बदल जाते हैं। यह पदार्थ निशास्ता (starch) है। ये पदार्थ और विशेषतः तेल फुप्फुस के द्वारा दहन के लिये सर्वथा उपयोगी हैं। इसी कारण इन्हें श्वाससंस्थानिक भोजन (Respiratory food) कहते हैं। शरीर के ताप की रक्षा यह इन का मुख्य कार्य है। शिरा रक्त में वर्तमान मल के दहन से भी यह कार्य होता रहता है। शरीर में ठोस से द्रव और द्रव से ठोस रूप में होने वाला पदार्थों में परिवर्तन भी ताप को उत्पन्न करता रहता है। शरीर में तन्तुओं और कोष्ठों के टूटने और बनने में भी ताप उत्पन्न होता है।

यदि भोजन के साथ वा आगे पीछे शराब पी जाय तो शराब रक्त में फैल कर एक दम फुप्फुस में पहुंच जायगी और ओषजन से मिलने को अत्यन्त आतुर होने से सब से पहिले एक दम दाह उत्पन्न करेगी। इस प्रकार यह ठीक है कि शराब से तापकी वृद्धि होती है परन्तु यह भी देखना है कि इस प्रकार तापकी वृद्धि का क्या असर होता है। शराब से ही ताप की वृद्धि होने पर घी, तेल, खाण्ड का पर्याप्त मात्रा में जलना नहीं होता। ये पदार्थ अनुचित मात्रा में शरीर में सञ्चित हो जाते हैं। शिरारक्तस्थ मलभूत पदार्थ का भी दहन न होने से वह भी शरीर में सञ्चित हो जाता है।

रक्त दुष्ट विषैला हो जाता है। विष जन्य भयङ्कर रोग उत्पन्न होते हैं। शराब के द्वारा ही सम्पूर्ण ओषजन खर्च हो जाने से अन्य दूरस्थ अङ्गों के तन्तुओं के बनने बिगड़ने में स्वतन्त्र रूप से भाग लेने वाली ओषजन उन अङ्गों को नहीं प्राप्त हो सकती। इस से न तो तन्तुओं का बनना बिगड़ना ठीक हो सकता है और नाहीं ताप की उत्पत्तिठीक हो सकती है। इस प्रकार ताप की उत्पत्ति में शराब का अनुचित हस्ताक्षेप सर्वथा अनुचित है। इस प्रकार उपर्युक्त विचार के आधार पर शराब न केवल अनावश्यक है परन्तु हानिकर है।

तमाखू

तमाखू में एक विष होता है, जो शरीरमें प्रविष्ट हो कर रक्त वाहिनियों के द्वारा वात नाडियों के केंद्रों पर अधिकार प्राप्त कर के वात नाड़ियों को क्रिया शून्य बना देता है जिस से वह २ स्थान जिस २ पर वात नाड़ी अपना कार्य करती है मारा जाता है। तमाखू के पीने से पहिले तो उत्तेजित वात नाड़ियां शान्त होती हैं फिर अधिक उत्तेजित होकर कमज़ोर पड़ जाती हैं। वात नाड़ियों के कमज़ोर पड़ जानेसे शरीर की मान्स पेशियां कार्य नहीं कर सकतीं हैं। जिस अङ्ग की मान्स पेशियां निर्बल हो जाती हैं, उस अङ्ग का कार्य मन्द पड़ जाता है। तमाखू के विष के प्रभाव से श्वास प्रणाली निर्बल पड़ जाती है तो श्वास काठिन्य हो जाता है। फेफड़े निर्बल पड़ जाने से रक्त का शोधन ठीक नहीं हो सकता और रक्त दुष्टि होकर अनेक रक्त दुष्टि जन्य रोग हो सकते हैं। हृदय पर विष का प्रभाव हुआ तो हृदयके दुर्बल हो जाने से रक्त सञ्चार मन्द पड़ जाता है, अङ्गों का पोषण ठीक नहीं होता। शरीर दुर्बल, पाण्डु हो जाता है। आमाशय वा आन्तों पर विष का प्रभाव हुआ तो अजीर्ण और मलबन्ध जन्य अनेक विकार प्रकट हो सकते हैं, आन्त्र ज्वर (Typhoid) प्रायः होने लगता है। मस्तिष्क पर विष का असर होने से मूर्छा, भ्रम, अपस्मार, शिरोवेदना आदि रोग हो सकते हैं। बाल पक कर सफेद हो सकते हैं। आयु की क्षीणता तो होती ही है। इस प्रकार तमाखू शरीर के लिये अत्यन्त हानि कर पदार्थ है। मल निकालने वाले अङ्गों के शिथिल पड़जाने से शरीर में मल का सञ्चय हो जाता है, और मल के संग्रह से सब रोग हो सकते हैं। जो मनुष्य शरीर शोधन के लिये जल चिकित्सा कर रहा है और तमाखू सेवी भी है उसे जल चिकित्सा से कोई लाभ न होकर वह अधिक २ रोगी हो जावेगा, क्योंकि विष का प्रभाव अधिक तीव्रता से होगा। इस प्रकार स्वास्थ्य-रक्षा और स्वास्थ्य वर्धन की दृष्टि से तमाखू का कभी सेवन न करना चाहिये। इसी प्रकार भांग, गांजा, चरस, बीड़ी, सिगार आदि पदार्थ भी हानि कर समझने चाहिये और छोड़ देने चाहियें।

मान्स

अनेक मनुष्यों का ऐसा विचार है कि शारीरिक बल बढ़ाने के लिये और विशेष शारीरिक पुष्टि के लिये मान्स सेवन हितकर है। संसार में कोई भी वस्तु अनौषध नहीं है, इसलिये औषधार्थ किसी स्थान में मान्स वा मांस रस का व्यवहार अनुपयुक्त नहीं भी हो सकता है, परन्तु साधारण भोजन के निमित्त मान्स का व्यवहार सर्वथा अनुचित है।

१ शरीरोपयोगी पदार्थों की योजना रासायनिक दृष्टि से मान्स में सरल है इसलिये सरल भोजन के पक्षपाती मनुष्यों को मान्स ग्रहण करना चाहिये, यह युक्ति अपने रूप में चाहे कितनी ही सुन्दर लगे परन्तु कई एक प्रबल हेतुओं के आधार

पर मान्स भोजन के लिये स्वीकार नहीं की जा सकती।

२. मान्स प्राणियों के शरीरों से प्राप्त होता है। प्राणियों के शरीर वनस्पति भोजन से बनते हैं। जो प्राणी उन प्राणियों के शरीरो पर आश्रित रहते हैं जो वनस्पति भोजन करते हैं, उन प्राणियों को भी परम्परया वनस्पति से ही जीवन प्राप्त होता है। वनस्पति को जीवन जल, वायु, सूर्य की धूप, प्रकाश और खनिज-द्रव्यों से मिलता है। पृथिवी, अप, तेज, वायु और आकाश में जीवनशक्ति स्वतन्त्रता से सञ्चरण करती है। इस जीवनशक्ति का कैसे उपभोग किया जाय? शुद्ध जल को पीकर शुद्ध वायु का सेवन कर के, खुलेपन में धूप और प्रकाश को ग्रहण करके हम योग्यता के अनुसार जीवन शक्ति लेते रहते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक शक्तियों से सीधा सम्बन्ध कर के शक्ति प्राप्त करते हुए भी अपने शरीर के संघटन के लिये घनीभूत द्रव्य को भी ग्रहण करना पड़ता है। शक्ति की अधिकता में द्रव्य में बिरलता होती है और शक्ति की न्यूनता में द्रव्य में घनापन आता है। सरलता से विषमता में जाते हुए पदार्थ में शक्ति की न्यूनता होती जाती है और द्रव्य का संघटन बढ़ता जाता है। पदार्थ जितना ही सरल अवस्था में है उतना ही वह अधिक प्रभावशाली है शीघ्र अङ्ग बनने योग्य है और जितना विषम अवस्था में है उतना ही कम प्रभावशाली और अङ्ग बनने में मन्द योग्य है। जिस पदार्थ में शक्ति कम है, जो रचना में सरल नहीं किन्तु विषम है, जो अनेक सरल पदार्थों का समास (compound) है वह शरीर का अङ्ग जल्दी न बन सकने से गुरु है, भारी है, तामसिक है, हमें अधिक शक्ति देने के स्थान में हमारा अङ्ग बनने के लिये हमारी बहुत सी सञ्चित शक्तिका व्यय कर डालता है। जो द्रव्य सञ्चित शक्ति को बुद्धि विकसित होने देने से रोक कर उस को अपने जड़ होने में ही लगा डालता है वह बुद्धि को मन्द करने वाला है। मान्स इसी प्रकार का पदार्थ होने से ग्राह्य नहीं है।

३. हमारे शरीर को शक्ति प्राप्त करने के लिये भोजन के रूप में प्राणिज (Organic) पदार्थ होना चाहिए। अप्राणिज पदार्थ का पहला प्राणिज रूप, जो हमारे शरीर के लिये उपयोगी है और सरलरूप है, वनस्पति में प्राप्त होता है। सरल सरल रूप में प्राणिज पदार्थ को यदि हम ग्रहण करना चाहें तो वनस्पति का सेवन करना चाहिये मान्स का नहीं।

४. शरीर में से मल को साफ करने के लिये काष्ठोज (Cellulose) की बड़ी आवश्यकता है। वनस्पति में काष्ठोज प्रचुर मात्रा में है जो न तो मलबन्ध होने देता है, यदि हो जाय तो उस को दूर करने में सहायता करता है। मान्स में काष्ठोज का अभाव होने से मान्स भोजन से प्रायः मलबन्ध और पश्चात् अजीर्ण की शिकायत सुनी जाती है। अतः मान्स अग्राह्य है और वनस्पति ही ग्राह्य है।

५. सूर्य की किरणों में एक प्रकार की किरणें नीलोत्तर रश्मि (ultra violet rays) होती हैं इन किरणों के द्वारा वनस्पति, शाक, फल आदि की त्वचा के नीचे एक प्रकार का जीवनीय पदार्थ उत्पन्न होता है इसे vitamin कहते हैं। इस पदार्थ की यह विशेषता है कि फलादि जिस पदार्थ को खावें उस का vitamin उस को पचाने में सहायता करता है। इस पदार्थ के नष्ट हो जाने से द्रव्य सुगमता से पच नहीं सकते। यह पदार्थ

पचन क्रिया में सहायक तो है ही साथ ही शरीर की ग्रन्थियों के रसों में कार्य कर्तृत्व सामर्थ्य को पैदा करने में भी अद्वितीय है। इस प्रकार भिन्न २ प्रकार का Vitamin शरीर के भिन्न २ प्रकार के रोगों को दूर करता है या होने ही नहीं देता। वनस्पति को पकाने की अधिक प्रक्रियाओं में से गुज़रने से यह जीवनीय पदार्थ ६० अंश तापमान पर नष्ट हो जाता है। इस लिये वनस्पति भी अधिक प्रक्रियाओं में गुज़ार कर न खानी चाहिये। मान्स तो अपने स्वरूप में ही वनस्पति के अधिक प्रक्रियाओं में गुजरने से बना होता है। मान्स में वह जीवनीय पदार्थ vitamin नहीं होता। मान्स दुर्जर है खाने योग्य पदार्थ नहीं है। वनस्पति ही खानी चाहिये मान्स नहीं।

६. शरीर के पोषण के लिये जिस नत्रजनीय मान्स वर्धनोपयोगी पदार्थ के निमित्त मान्स को ग्राह्य समझा जाता है वह नत्रजनीय पदार्थ तथा अन्य शरीरोपयोगी पदार्थ वनस्पति से प्राप्त हो सकते हैं। मान्सस्थ सब पदार्थ सरल रूप में वनस्पति से ही प्राप्त हो सकते हैं अतः वनस्पति का सेवन अधिक श्रेयस्कर है मांस का नहीं।

७. मान्स कभी शुद्ध प्राप्त नहीं होता। यूरिया यूरिक एसिड आदि कई विषैं ऐसी हैं जो मान्स से सर्वथा पृथक् नहीं की जा सकतीं। इन को दूर करने के लिये मान्स को चाहे कितना ही धोवें साफ़ करें ये विषैं बनी ही रहती हैं। बहुत सावधानता से तैय्यार किये मान्स का भी जब यह हाल है तो साधारण बाज़ारू मान्स की तो बात ही क्या है। अतः मान्स भोजन त्याज्य है वनस्पति भोजन ही करना चाहिये।

८. मान्स शरीर को पुष्ट करता है या नहीं? इत्यादि विषयों को छोड़कर इतना तो मान्स भोजियों से निर्विवाद मत प्राप्त हुआ है कि जब तक मान्स नहीं खाते तब तक काम वासना की जो अवस्था रहती है उस में मान्स खाने से अत्यधिक वृद्धि होती है।

यदि जाति में मान्स खाने की प्रवृत्ति अधिक बढ़ जावे तो लोगों में काम वासना अधिक बढ़ जावेगी। काम वासना के बढ़ जाने से उसे पूरा करने के लिये देश में बलात्कार अधिक बढ़ जावेंगे। बाल विवाह की ओर भी प्रवृत्ति अधिक हो जावेगी। वेश्यावृत्ति भी अधिक बढ़ जावेगी और लोगों का धन दुराचार में अधिक नष्ट होगा। देश आचार में धन में बल में क्षीण हो जावेगा। धीरता जाती रहेगी। लोगों में युद्ध में टिककर लड़ना न रहेगा कार्य करने की सामर्थ्य भी कम होजावेगी। लोग काम करने से जी चुराएंगे और बेईमानी, धोखे बाज़ी, लूट खसोट, चोरी डाका बढ़ेगा। गम्भीर विचारों में लोगों का दिमाग न लगेगा, आविष्कार होने और अध्यात्मविद्या में गति रुक जावेगी। देश पराधीन होजावेगा और पराधीन रहेगा। इस प्रकार मान्स से साक्षात् वा परम्परया आचार सम्बन्धी, समाज सम्बन्धी, राजनीति सम्बन्धी अनेक प्रकार के दोषों के उद्गम होने का अवकाश रहता है अतः मान्स भक्षण त्याज्य है वनस्पति सेवन ही करना चाहिये।

९. संसार में प्राणियों के शारीरिक अङ्गों की रचना और संस्थान को देख कर वैज्ञानिकों ने निश्चय किया है कि मनुष्य वनस्पति भोजी है और वह रचना बन्दर के सदृश होने से मनुष्य फल भोजी है, मान्स भोजी तो सर्वथा नहीं है। अतः मान्स को सर्वथा त्याग कर वनस्पति का ही सेवन करना चाहिए।

अब कुछ पाश्चात्यों की सम्मतियां देना भी अच्छा ही है—

10. Rees's 'Encyclopaedia', Article 'Man'. Sir William Laurance wrote :—

"That men can be perfectly nourished, and that their physical and intellectual capabilities can be fully developed, *in any climate*, by a diet *purely vegetable*, has been proved by such abundant experience, that it will not be necessary to adduce any formal arguments on the subject."

11. Man is provided neither with the teeth to cut flesh, nor the power to hold its poisonous salts in solution and pass them out of his body, whilst the carnivore is provided with these powers to a very considerable extent.

12. The products of the vegetable kingdom contain all that is necessary for the fullest sustenance of human life.

13. There is little need for wonder that flesh-eating is one of the most serious causes of the diseases that carry off ninety nine out of every hundred people that are born.

Josiap Old Field, D.C.L.

14 परिशिष्ट शोथ (Appendicitis) का कारण और उपाय। An exhaustive inquiry, into the possible causes of increasing Appendicitis, was made recently by Mr. Rendle Short. He came to the conclusion, that the increase in the incidence of Appendicitis was most likely due to some change in the dietary of the nation, but his evidence was against the common assumption that increased meat-eating had anything to do with the increase of the disease. By comparing the common articles of diet at the present time with these most in use before the great increase of Appendicitis Mr. Short found that the chief change was a gradual diminution in the amount of cellulose-containing foods. He suggests that herein lies the cause of the great predisposition to, and incidence of Appendicitis.

I think, it will be allowed, that Appendicitis is a microbial disease, which attacks certain people, who are at the moment of attack in a state of diminished resistance to that infection. It will hardly be questioned, that stagnation of the intestinal contents and the presence of much decomposing meat in the intestines are factors, which would favour the growth of the infective organisms. It may be, that cellulose-containing foods help to prevent stagnation of the intestinal contents, and they may possibly supply some vitamin, which maintains resistance against the organisms. The moral, to be deduced from this, is that, so far as our knowledge goes

at present, a predisposition to appendicitis would be lessened by—

1. Preventing constipation.
2. Minimizing the amount of meat eaten.
3. Increasing the amount of food containing cellulose.
4. Diminishing the total amount of food taken.

British Medical Journal January 5. 1929

१५. भारतीय धर्मशास्त्र में मद्य मांस आदि पञ्चमकारों के सेवन में भूतों की साधारण प्रवृत्ति बतलाई है। जो प्राणी इन का त्याग कर देते हैं, वे अधिक श्रेय के भागी हैं। मनुष्य जीवन प्राप्त करने के लिये जीवित प्राणियों पर आश्रित है। मनुष्य को कार्य करने के लिये उत्तेजना भी चाहिये। मनुष्य ने संसार में सन्तानोत्पत्ति भी करनी ही है, इन कार्यों के लिये मांस मद्य और मैथुन का सेवन अनिवार्य है। परन्तु जो मनुष्य उच्च कक्षा के हैं, वे संयम और तपश्चर्या से इन को त्याग देते हैं, नीच कक्षा के मनुष्य इन का सेवन अपरिहार्य समझ कर करते जाते हैं और उन्नति शील नहीं होते। इसलिये उच्च कक्षा में रहने के लिये इन का सेवन त्याज्य है और जो नीच कक्षा में ही रहना चाहें वे बेशक इन का सेवन करें। यही भाव निम्न श्लोक से निकलता प्रतीत होता है।

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥ मनु ॥

इसी विचार से उत्तम मनुष्य पशु पक्षी आदि प्राणि जन्य मांस का त्याग कर के वानस्पतिक मांस को ग्रहण कर लेते हैं। अतः मनुष्य को चाहिये कि वह अपनी उन्नति को लक्ष्य में रख कर प्राणिज मांस का त्याग कर के वानस्पतिक मांस का सेवन करे॥

कुछ रोगों का निरूपण—

किसी भी रोग की स्थिर चिकित्सा नहीं की जा सकती है जब तक कि वात नाड़ियों में शक्ति फिर जागृत न कर ली जावे। छाला डालना, रक्तमोक्षण, बस्ती भरना, विरेचन ये बल देने या शक्ति प्राप्त करने के साधन नहीं हैं, किन्तु कमज़ोर करने और क्षोभ पैदा करने के साधन हैं। वातसंस्थान के चार मुख्य विभाग हैं। १ मस्तिष्क २ सुषुम्ना काण्ड, ३ मास्तिष्क सौषुम्न नाडिजाल ४ वातग्रन्थियां (ganglions), जीवन दाता वातनाड़ियां (Nerves of organic life)। वातग्रन्थियों का अधिकार रक्त-संचार व पोषण, स्राव, आत्मीकरण, मलत्याग इन पर है। वातग्रन्थियों की रचना नलिका रूप में वैसी ही है जैसी सौषुम्न मास्तिष्क वातनाड़ियों की है। इन के आवरणों में द्रव भरा रहता है। ये अपनी वैद्युत शक्ति के द्वारा कार्य करती हैं। जब बहुत मानसिक कार्य करने के कारण दिमाग थक जाता है तब ये उस के स्थान में कार्य करती हैं। जब मानसिक कार्य का बोझ इन पर बहुत आ पड़ता है तब इन पोषक नाड़ियों का अपना पोषण सम्बन्धी वास्तविक कार्य मन्द हो जाता है। अजीर्ण, पित्त वृद्धि, यकृत् वृद्धि, पोषण और रक्त संस्थानों के अङ्गों की शक्ति की क्षीणता उपस्थित हो जाती है।

इस के विरुद्ध जब मन उचित बलवान् नहीं होता, तब मास्तिष्क नाड़ी समूह का जीवनीय बल पोषक नाड़ियों के बल के साथ जुड़ जाता है और स्थूलता की अवस्था उत्पन्न हो जाती है, यहां तक कि Apoplexy भी उत्पन्न हो जाती है।

अन्तर्नाद

(मन्दाक्रान्ता)

(ले०—स्ना० शंकरदेव विद्यालंकार)

(१)

काली काली जलद-पटली व्योम में छा रही है,
मीठे मीठे सलिल बरसा मोद को दे रही है।
भूखे प्यासे कृषक जन के ताप को हर रही है,
पृथ्वी सारी वन-कुसुम से स्वर्ग सी हो रही है॥

(२)

नीले नीले सघन विटपी फूल से छा गये हैं,
बैठे शाखों पर विहग के वृन्द भी गा रहे हैं।
सन्ध्या की ये जलद-पटली लालिमा में रँगी है,
ठण्डी ठण्डी पवन लहरें सौरभों से पगी है॥

(३)

तो भी देखो सकल दुनियाँ दुःख से रो रही है,
सन्तापों से विविध जन के दग्ध सारी मही है।
हे स्नेही तू सकल जग में स्नेह-धारा बहा जा,
मेरे सूने मन-सदन की दीपिका को जगा जा॥

स्त्रियों की शिक्षा और उन का वर्तमान कर्तव्य

(लेखिका— श्रीमती सुशीला देवी गुप्त)



सच्ची शिक्षा मनुष्य की आध्यात्मिक, मानसिक, शारीरिक अर्थात् ईश्वर की दी हुई प्रत्येक शक्ति को कुसुमकली की भाँति खिला कर मन की चंचलता आदि दुर्गणों को पराजित कर उस का अपना तथा संसार का भला कराती है। वह ज्ञान की उस स्वाभाविक प्यास को बढ़ाती है जिस का फल मधुमय पुष्प के सदृश मधुर और अमृत के समान गुणकर तथा सुखमय है, जीवनयात्रा या ईश्वर के पास पहुंचाने के पथ पर पथ प्रदर्शक है; प्रकाश की भांति प्रयोजनीय हैं। पुनः दैनिक जीवन की अनेक घटनाओं से अनुभव प्राप्त करा कर अनुसंधान और मनन विचार द्वारा मनुष्य के उस कौतुहल से ज्ञान तृषा को शान्त करने का यत्न करती है।

शिक्षा द्वारा ही मनुष्य के हृदय में दिव्य भावों का संचार होता है, जो कि उस को उन्नति के पथ की ओर अग्रसर करते हैं। हृदय के निर्जन स्थान को नन्दन कानन बनाते हैं। आज हमारा स्त्री समाज भी अपनी सोई हुई शिक्षा को जगाने के लिये लालायित हो रहा है, कुम्हलाये हुए हृदय कुसुम को शिक्षा रूपी शीतल जल से सींच कर फिर से उस में जीवन संचार कर उसे खिलाने का प्रयत्न कर रहा है।

क्या किसी दिन हमारी मनोकामना पूर्ण होगी। क्या हम फिर से अपने प्राचीन गौरव को अपने हृदय में धारण करेंगी?

हा हन्त! हमने अपने कर्त्तव्य को भुला कर अपना मान व आदर सब नष्ट कर दिया, और पुरुषों के लिये कठपुतली का तमाशा बन गईं। हम सबला होकर भी अबला बन रहीं हैं, अपनी सहायता के लिये दूसरों की प्रतीक्षा कर रहीं हैं। शोक! जिस समय हम अपने प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करती हैं, हमारा हृदय कांप उठता है। प्राचीन काल में भारतीय नारियों की सभ्यता इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि हमारे पूज्य ऋषिगणों ने स्त्री की समता देवी से की थी।

क्या वर्त्तमान् समय की स्त्रियों को देवी की उपाधि दी जा सकती है? यदि नहीं तो क्यों? इस का उत्तर संक्षेप में यही हो सकता है कि उस समय की स्त्रियां पढ़ी लिखी और विदुषी होती थीं।

वे अपने सुप्रबन्ध और सद्‌गुणों से गृह को स्वर्ग तुल्य बना देती थीं। और आज कल हम जैसी स्त्रियों की भांति कलहप्रिया नहीं होती थीं, वर्तमान स्त्रियों का जीवन कितना दुःखमय होगया है, हम को कलह इतनी प्यारी होगई कि इस के बिना हमारी रोटी नहीं हज़म होती। घर घर में दुष्ट कलह ही का राज पाया जाता है। बहुत से घर इस गृहकलह द्वारा नर्क तुल्य बन जाते हैं, माताओं के मूर्ख होने के कारण गृह में अशान्ति का राज्य हो जाता है। जिस गृह में शान्ति नहीं, उस गृह में नर्क से भी बढ़ कर दुःख है। और तो क्या सब से बढ़ कर शोक की बात तो यह है कि कोई भी अपने धर्म पर दृढ़ नहीं रहा। न तो स्त्रियाँ ही पतिव्रता हैं, न पुरुष ही पत्नीव्रत रहे और न सन्तान ही आज्ञाकारी हैं। कारण यह कि माताओं को ज्ञान नहीं कि वे अपनी सन्तान को किस प्रकार की शिक्षा दें। वे तो केवल पुत्र के उत्पन्न होने से खुश हो जाती हैं। तेरह चौदह वर्ष की शादी कर अपने कर्त्तव्य से निश्चिन्त हो जाती हैं। शादी के लिये दस हज़ार भी कोई बड़ी चीज नहीं। पढ़ाई के लिये एक कौड़ी ख़र्च करना भी कठिन है, यदि बच्चों से कोई अपराध हो गया या कोई हानि हो जाये, तो उस को गालियां देने लगती हैं।

बच्चों के सम्मुख भूल कर भी गाली अथवा कोई बुरी बात मुँह से नहीं निकालनी चाहिये।

जैसी बात तुम उस के सम्मुख कहोगी, वैसी ही बातें उस के हृदय पटल पर अंकित हो जायेंगी। गालियों के स्थान में बच्चे को प्रेम से बुराई भलाई का ज्ञान करना चाहिये, फिर देखिये कि बच्चा गालियों से बात ठीक समझता है, अथवा प्रेम से। बच्चे के हृदय में जितनी जल्दी प्रेम से समझाई हुई बात का असर होता है उतना जल्दी गाली या मारपीट का नहीं।

इस लिये बच्चे को यदि आज्ञाकारी बनाना है तो उसमें प्रेम के साथ अपनी श्रद्धा भी भर दो, उस को मारपीट करने या गाली गलौज देने से वह ढीठ हो जाता है। और उसके हृदय में तुम्हारी श्रद्धा व आज्ञा पालन का भाव बिल्कुल लुप्त हो जाता है।

सब से अधिक ध्यान रखने की बात बच्चे को स्वस्थ रखने की है। आजकल हमारे देश में माताओं की इसी अज्ञानता के कारण बच्चे काल के गाल में चले जाते हैं। हमारी बहिनें फिर भी ध्यान नहीं देतीं। बस, अधिक करेंगी तो अपनी लज्जा की कुछ परवाह न कर साधु सन्तों के पास गन्डे तावीज़ों के लिये भागी फिरेंगीं। स्यानों को बुला कर झाड़फूँक करेंगीं। यदि बच्चे ने जीना भी हो तो भी गन्डे तावीज़ों के बोझ से, धूप हवा में फिरने से, रोग की दवा न करने से और स्वच्छता के लिये कभी उस का मुँह तक भी न धोने से-बच्चे का बना बनाया स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। कई बहिनें तो मैंने ऐसी देखी हैं कि जो बच्चे को स्नान कराना तो दूर रहा, पन्द्रह२ दिन तक उस का मुँह भी नहीं धोतीं, परन्तु उस के ऊपर गोटे किनारी के कपड़े अवश्य लाद देती हैं। हा! अपनी बहिनों की इस मूर्खावस्था अवलोकन कर उन की इस मूर्खता पर सिर्फ़ आँसू ही बहाने की पड़ते हैं। जहाँ दो चार स्त्रियाँ एकत्र हुईं एक दूसरे की निन्दा आरम्भ हो जाती है, यदि सभा समाजों में भी जायेंगीं तो वहाँ पर भी इतनी कचकच होती है कि किसी को सुनाई नहीं देता। बस वहां सुनना तो क्या, अपनी ही बातों की झड़ी लगा देती हैं। बेचारा व्याख्यानदाता चिल्लाता २ थक जाता है परन्तु मालूम नहीं कि स्त्रियों को विधाता ने सैकड़ों जिह्वायें लगादी हैं, जो वे चुप रहने के लिये असमर्थ हैं। हा आज भारत ललनाओं की दशा ऐसी हीन हो रही है कि कोई भी परिवार सुख शांति से नहीं बस सकता। कहाँ गईं सीता सावित्री जैसी देवियां? जिनका जीवन, आदि से अन्त तक शिक्षायें देता चला आया है। आज भी आदर के साथ उन का नाम लिया जाता है। वे घर में देवियों की भांति पूज्यनीया थीं। शायद ही कोई ऐसी बहिन होगी जो सीता सावित्री की थोड़ी बहुत कथा न जानती हो। शोक कि जानते हुए भी अपनी दशा पर आँसू नहीं बहातीं और अपने दुर्गुणों को सुधारने का प्रयत्न नहीं करतीं। आज भारतीय मातायें पुरुषों के पैरों की जूती बन रही हैं, मानो वे घर में बोलते हुए पशु हैं. नेत्र होते हुए भी अन्धी हैं, मस्तिष्क बुद्धि में रखते हुए भी बुद्धिहीन हैं, अर्थात् परमात्मा की दी हुई वस्तुयें होने पर भी न होने के समान हैं। यह सब दोष हमारी अविद्या और साहसहीन होने का ही है। हमें निर्बल देख कर पुरुष जाति ने भी हमारे अधिकारों को तोड़ हमें बिल्कुल ही दबा दिया, क्योंकि निर्बल को ही सब दबाते हैं। यदि अब भी हमारी मातायें सावधान होकर अपने जीवन को सुधारें, तो फिर हमारी आँखों के सामने प्राचीन देवियों का गौरव जागृत हो जाएगा। हमारी ही मूर्खता के कारण आज हमारा भारतवर्ष देश अन्य देशों की दासता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है।



१. स्वामी श्रद्धानन्दजी का एक लेख

'ज्योति' के इस अंक में हम अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का "संसार के धर्मों का तुलनात्मक अनुशीलन" शीर्षक एक लेख प्रकाशित कर रहे हैं। स्वामी जी का यह लेख अभी तक कहीं प्रकाशित नहीं हुआ था। स्वामी-जी महाराज तुलनात्मक धर्म-विज्ञान के प्रकाण्ड पण्डित भी थे। जिन दिनों वह गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के आचार्य थे-उन दिनों वह इसी विषय के प्रधान-अध्यक्ष का कार्य भी किया करते थे। स्वामी जी ने यह लेख उन्हीं दिनों लिखा था। इस सिलसिले में उन्होंने जो अन्य लेख लिखे थे, वे लघु-पुस्तिकाओं के रूप में प्रकाशित भी हो चुके हैं। इस लेख को भी परिवर्धित कर के प्रकाशित करने की स्वामी जी की अभिलाषा थी, परन्तु समयाभाव से वह ऐसा न कर सके। 'ज्योति' के छः अंकों में स्वामी जी का यह लेख समाप्त होगा। हमारी अनुमति के बिना किसी पुस्तक-प्रकाशक को यह लेख पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का अधिकार नहीं है। यह लेख हमें गुरुकुल विश्वविद्यालय के तुलनात्मक धर्म-विज्ञान के वर्तमान मुख्य उपाध्याय श्री प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार की कृपा से प्राप्त हुवा है। इस लेख का सम्पादन भी प्रोफसर साहब ही कर रहे हैं। इस के लिये हम उन के अभारी हैं।

२. राजनीतिक अभियुक्तों की भूख-हड़ताल.

लाहौर में सौंण्डर्स की हत्या के कारण जो षड्यन्त्र-अभियोग चल रहा है, उस के अभियुक्तों की शिकायत है कि सरकार हम लोगों के साथ पशुओं का-सा व्यवहार कर रही है। इसी कारण उन्होंने भूख-हड़ताल शुरू कर रक्खी है। श्रीयुत भगतसिंह और श्रीयुत बटुकेश्वर दत्त को यह अनशन शुरू किए आज, जब कि हम यह टिप्पणी लिख रहे हैं, ५५ दिन समाप्त हो चुके हैं। अन्य अभियुक्तों को भी अनशन किये हुए लगभग १ मास होने को है। परन्तु अभी तक सरकार के कान पर जूं तक नहीं रेंगी। सरकार इस मामले को शायद बच्चों का खिलवाड़ समझ रही है। देश के १? दर्जन प्रतिभाशाली और कार्यनिष्ठ नौजवान आज एक सत्य सिद्धान्त के लिये अपने शरीरों का धीरे धीरे, बड़ी साधना से, होम कर रहे हैं। यह 'नरमेध यज्ञ' कभी व्यर्थ नहीं जा सकता। इस महती-साधना के प्रबल प्रभाव से अंग्रेजी साम्राज्य भी ध्वन्स हो सकता है।

लाहौर षड्यन्त्र के अभियुक्त वर्तमान कानूनों की रूह से भी कसूरवार हैं या नहीं, यह बात अभी नहीं कही जा सकती। मामला अभी चल रहा है; मालूम नहीं, अदालत से वे दोषी प्रमाणित होंगे या निर्दोष। यदि वे दोषी साबित भी हो गए, तो भी उन्हें राजनीतिक अपराधी ही कहा जायगा। उन पर राजा जार्ज के राज्य को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न करने का अभियोग ही तो लगाया गया है—यह राजनीतिक अपराध नहीं तो क्या है। इस अपराध के अभियुक्त स्वार्थवश यह काम नहीं करते। वे गलत राह के राही भले ही हों, मगर वे खुदगर्ज़, पापी और दुष्ट मनोवृत्ति वाले कदापि नहीं होते। उन के दिलों में लगन होती है, दिमाग़ में विचार शक्ति होती है और शरीर में काम करने की ताक़त। वे कुरबानियां करते हैं—दूसरों की भी और अपनी भी। उन के कार्य की निन्दा की जा सकती है, भाव की नहीं। देशभक्ति को अपराध कहना स्वयं अपराध है। इसी कारण संसार भर में राजनीतिक अपराध के अपराधियों को 'साधारण' न समझ कर 'विशेष' समझा जाता है। उन्हें कैद इस लिये किया जाता है कि उन का आज़ाद रहना देश की प्रचलित शासन प्रणाली के लिये ख़तरनाक होता है। इस कारण उन्हें देश के सामूहिक जीवन से पृथक् तो अवश्य कर दिया जाता है, परन्तु उन के मस्तिष्क या शरीर को कोई कष्ट नहीं दिया जाता। वे जो कुछ चाहें, पढ़ और लिख सकते हैं। उन्हें अच्छा भोजन दिया जाता है; अच्छे कपड़े पहिनाये जाते हैं, और अच्छे ढंग से—राज्य का मेहमान समझ कर—रक्खा जाता है। यह सब इस लिये कि उन्हें शारीरिक कष्ट देना कानून को अभीष्ट ही नहीं। परन्तु इस अभागे गुलाम देश में कुल-वधुओं का ज़बरदस्ती सतीत्वनाश करने वाले और बूट की ठोकरों से निरीह मज़दूरों की हत्या करने वाले विदेशी नरपिशाच थोड़े दिनों की 'ससुराली कैद' देकर चाहे भले ही छोड़ दिये जांय, परन्तु जो नवयुवक आज़ादी के दीवाने बन कर उस के लिये सब कुछ कुरबान करने को तैयार हों,—उन्हें कुचल देने में, उन्हें यम-यातना पहुँचाने में, कभी ढील नहीं की जा सकती।

पञ्जाब सरकार ने, थोड़े दिन हुए, एक विज्ञप्ति निकाल कर इस मामले पर लीपापोती करने का प्रयत्न किया था। परन्तु उस विज्ञप्ति में केवल बीमार अभियुक्तों के साथ विशेष व्यवहार करने की बात ही कही गई थी—वर्तमान विशेष परिस्थितियों के प्रभाव से जो मांग उत्पन्न हुई है, उस का निर्देश तक भी इस में नहीं किया गया था। जो बात इस विज्ञप्ति में कही गई है, वह जेल के नियमों में पहले ही से मौजूद है। इस कारण, यह कहना कि इस विज्ञप्ति के द्वारा इन अभियुक्तों की मांग सरकार ने पूरी कर दी है—सर्वथा अनुचित है।

कुछ ही वर्ष हुए इङ्गलैण्ड के तत्कालीन प्रधानामात्य श्रीयुत् लायडजार्ज ने आयरिश वीर श्रीयुत् मैक्स्विनी की भूख-हड़ताल की कोई परवाह नहीं की थी। श्री लायडजार्ज इसे साम्राज्य के 'मान का सवाल' समझते थे। परिणाम यह हुआ कि वीर मैक्स्विनी शहीद हो गए और उस 'नरमेध यज्ञ' के प्रताप से आयर्लैण्ड शीघ्र ही आज़ाद होगया।

सुना है, किसी ज़माने में देवताओं और राक्षसों की लड़ाई में देवताओं के सेनापति इन्द्र को किसी अमोघ अस्त्र की आवश्यकता थी। परन्तु ऐसा अस्त्र कहीं मिलता नहीं था। देवता

लोग क्रमशः हारने लगे, यह देख कर ऋषि दधीची ने कठोर तपस्या प्रारम्भ की-पूर्ण उपवास शुरू किया। कुछ महीनों की कठोर तपस्या के बाद उन का देह प्राण-शून्य हो गया। जिस समय वह मरे, उस समय उन के शरीर में सिर्फ़ सूखी हड्डियों पर पतला चाम ही शेष रह गया था। ये सूखी हड्डियां इतनी मज़बूत और प्रभाव शालिनी सिद्ध हुई कि वे इन्द्र का वज्र बनी। इस अमोघ वज्र के प्रभाव से देवता लोग विजयी हो गए। राक्षस-सेना इस वज्र की न मार सह सकी। कह नहीं सकते कि दधीची की वह घटना सत्य है या नहीं, परन्तु यह हमें पूर्ण विश्वास है कि वीरवर भक्तसिंह और दत्त यदि इस कठोर उपवास में यह देह त्याग कर अमर शहीद बन गए—तो उन के कंकाल इस विदेशी हुकूमत को हिन्दोस्तान से उखाड़ फेंकने में अवश्य कामयाब होंगे।

३. पञ्जाब में नादिरशाही.

कांग्रेस का इस वर्ष का अधिवेशन पञ्जाब में होना है। यह अधिवेशन अत्यधिक महत्व-पूर्ण है, क्योंकि इस में असहयोग आन्दोलन को पुनर्जीवित करने का प्रस्ताव पेश होगा। लाहौर कांग्रेस के अवसर पर ही देश का राजनीतिक ध्येय पूर्ण-स्वाधीनता उद्घोषित किया जायगा। भला पञ्जाब की सरकार इन भयंकरतम घोषणाओं को अपने ही घर के केन्द्र में होता हुआ देख कर चुपचाप किस तरह बैठ सकती है। यदि कांग्रेस से पूर्व ही, वह सम्पूर्ण देश के नेताओं को यह बता न कर दे कि 'यह पञ्जाब है पञ्जाब! कुछ हंसीठट्टा नहीं!' तो बात ही क्या हुई। इस लिये वह अपने हाथ दिखाने पर तुल गई है। पञ्जाब के अधिकांश राजनीतिक नेता और कार्यकर्त्ता गिरफ़्तार कर लिये गए हैं। घर घर तलाशियां हो रही हैं। अनेक कार्यकर्त्ताओं के पीछे— जिन्हें सरकार किसी भी बहाने से गिरफ़्तार नहीं कर सकी-शिकारी कुत्तों की तरह तीन तीन, चार चार सी० आई० डी० के आदमी छोड़ दिए गए हैं। जेलों में अभियुक्तों की वैध मांगें भी पूरी नहीं की जा रहीं। यहां तक कि सरकार कांग्रेस के लिये उचित स्थान तक देने में भी आनाकानी कर रही है।

पञ्जाब के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि पञ्जाबकेसरी लाला लाजपतराय के देहान्त के बाद वहां सारे प्रान्त का कोई एक नेता नहीं रहा। उन के बाद पञ्जाब में जो प्रमुख राजनीतिक कार्यकर्त्ता हैं, उन में डा० सत्यपाल को मुख्य समझा जाता था। डाक्टर साहब कांग्रेस के पुराने महारथी हैं। कड़ी से कड़ी विपत्ति और और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी आप ने कांग्रेस का साथ नहीं छोड़ा। कांग्रेस को लाहौर में निमन्त्रित करने वाले डैपूटेशन के भी आप ही मुखिया थे—और अब अपना कर्तव्य समझ कर आप आगामी कांग्रेस के लिये दिन रात परिश्रम कर रहे थे। सरकार की इस दमन नीति के पहले शिकार भी आप ही बने। दिल्ली में दिए गए एक भाषण के कारण दिल्ली सरकार ने डाक्टर साहब को गिरफ़्तार कर लिया और अदालत ने उन्हें दो साल की कैद दे दी। महात्मा गांधी के शब्दों में डाक्टर साहब का वह भाषण कोई ऐसा असाधारण गरम भाषण नहीं था, जो प्रायः व्याख्याता लोग राजनीतिक सभाओं में न दिया करते हों। ज़रासा प्रयत्न करने पर उस तरह के अनेकों भाषण अख़बारों में प्रति मास पढ़े जा सकते हैं। परन्तु सरकार को अभीष्ट तो यह था कि डाक्टर साहब को कुछ दिनों के लिये, ख़ास कर कांग्रेस तक के लिये, अपना 'शाही मेहमान' बना लिया जावे। सरकार

महारानी ने अपनी यह इच्छा एकदम पूरी कर ली।

इस के बाद लाहौर षड्यन्त्र का अभियोग शुरू हुआ। जेल में अभियुक्तों के साथ वह व्यवहार किया जाने लगा, जो बदमाश से बदमाश गुण्डों के साथ भी नहीं किया जाता। तेजस्वी नवयुवकों ने इस के विरोध में भूख हड़ताल शुरू की, परन्तु सरकार ने इस की ज़रा भी परवाह नहीं की। यहां तक कि उस अदालत ने, जिस में कि यह षड्यंत्र अभियोग चलाया जा रहा है, अभियुक्तों की इच्छा और अनुमति के बिना ही सरकारी खर्च से उन के लिये वकील खड़े कर के मामले को जारी रखने की व्यवस्था दे दी। परन्तु हाईकोर्ट से व्यवस्था न मिलने के कारण यह नादिरशाही जारी न की जा सकी। अदालत में अभियुक्तों के हाथों में हथकड़ियां डाल कर उन्हें पोलीस के सिपाहियों के साथ बांधने का प्रयत्न किया गया। पञ्जाब के जेलों के अधिकारी इस से भी एक कदम आगे बढ़े। अभियुक्तों की भूख-हड़ताल तुड़वाने का प्रयत्न करने के लिये श्रद्धेय गणेशशंकर विद्यार्थी को अदालत ने यह अनुमति दे दी थी वह जेल में जाकर अभियुक्तों से मिल सकते हैं, परन्तु जेल के अधिकारियों ने अदालत को इस भूल-भरी आज्ञा को, जो "यह पञ्जाब है !" में बट्टा लगाती थी, का पालन न होने दिया। पञ्जाब की पोलीस एक क़दम और भी आगे बढ़ी। लोग अभियुक्तों की पैरवी के लिये धन संग्रह करने के उद्देश्य से शहर में जुलूस निकालते थे, सरकार ने उन्हें ग़ैर क़ानूनी इक़रार दे दिया। जुलूस पर डण्डे बरसाये गए, लोगों को सड़कों पर घसीटा गया। इतना ही नहीं, अभियुक्तों से मिलने जुलने तथा उन्हें देखने की इच्छा से जो लोग सैण्ट्रल जेल के बाहर जमा होते थे, उन्हें भी पोलिस ने धमकियां दीं। आज-कल अख़बारों के अदालत में जाने वाले सम्वाददाताओं की तलाशियां की जाती हैं। स्त्रियों के बाल खोल कर यह देखा जाता है कि कहीं उन में कोई वस्तु तो नहीं छिपा हुआ। और यह सब किया जा रहा है क़ानून की रक्षा के नाम पर !

हम पंजाब सरकार की इस नादिरशाही से ज़रा भी दुखी या चिन्तित नहीं। हमें तो इन अत्याचारों का परिणाम बहुत लाभकर ही प्रतीत होता है। पंजाब में इस समय कोई प्रभावशाली नेता न बचा था, सरकार ने अपनी मूर्खता से आजकल वहां लीडर पकाने की भट्ठी तैयार कर दी है। इन कष्टों की अग्नि में, इस तप में, जो नवयुवक सफलता पूर्वक पकेंगे—उन के तपे हुए सोने के समान उज्ज्वल चरित्र का प्रान्त भर कायल हो जायगा, और वे लोग ही प्रान्त के भावी नेता बन जायेंगे। उन में जो कमज़ोरियां हैं, जो बुराइयां हैं, उन्हें वह अग्नि-परीक्षा भस्म कर देगी। वे कुन्दन की तरह उज्ज्वल और पवित्र बन जावेंगे। पहले हमें भय था कि साम्प्रदायिकता के गढ़ पंजाब में कांग्रेस सफल किस तरह होगी, परन्तु अब ये घटनाएं देख कर हमारा वह भय जाता रहा है। जानने वाले जानते हैं कि सरकार की इस नादिरशाही की कृपा से पंजाब में अब वह युग आ गया है कि कांग्रेस को गाली देने वाला व्यक्ति अब पहले की तरह वहां यश प्राप्त नहीं कर सकता। जनता अब कांग्रेस के साथ है। ईश्वर करे कि प्रान्त की जागृति में ये कष्ट अग्नि में ईंधन के समान सिद्ध हों।

४. लार्ड जार्ज लायड का त्याग-पत्र

मिश्र के हाई कमिश्नर लार्ड जार्ज लायड के त्याग-पत्र ने ब्रिटिश साम्राज्य की आन्तरिक राजनीति में सनसनी पैदा कर दी है। इंग्लैण्ड की

पार्लियामेन्ट में इस त्याग-पत्र के प्रश्न को ले कर अनुदार दल के अनुयायियों ने मज़दूर सरकार के विषय में असन्तोष उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। इस प्रसंग में मज़दूर सरकार की तरफ़ से जो जवाब दिए गए थे, उन से पता लगता है कि मिश्र में जार्ज लाइड ने जो नीति स्वीकार की हुई थी, उस से अनुदार सरकार भी सन्तुष्ट नहीं थी। यदि अनुदार सरकार का शासन जारी रहता तो असम्भव नहीं था कि उन्हें भी जार्ज लाइड को मिश्र से वापिस बुलाना पड़ता। परन्तु इस समय अनुदार दलने मज़दूर दल को बदनाम करने में किसी प्रकार की ढील नहीं की। मिश्र में जार्ज लाइड के त्याग-पत्र देने पर वहाँ की जनता ने जो भाव प्रकट किए हैं, उन से पता लगता है कि जार्ज लायड वहां भी अपनी संकीर्ण नीति और स्वेच्छ-चारिता के कारण अप्रिय बने हुए थे। गत वर्ष इन्होंने मिस्र की कैबिनट के जनता को सभा करने की स्वाधीनता देने का प्रस्ताव स्वीकार करने पर राजा फॉद द्वारा मिश्री पार्लियामैन्ट बर्खास्त करा कर अपनी कुटिलता का परिचय दिया था। यही नहीं, ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा का बहाना कर के नील नदी पर ब्रिटिश जहाज़ी बेड़ा भी तैनात किया था।

मिश्र वालों ने इस स्वेच्छाचारिता का प्रतिवाद किया, परन्तु उन को कुछ न चली। जार्ज लायड की यह स्वेच्छाचारिता केवल जनता के लिए ही असन्तोष जनक नहीं थी, वहां की सिविल सर्विस भी-मज़दूर सरकार की विज्ञप्ति के अनुसार-उन के व्यवहार से तंग थी। ऐसा मालूम होता है कि मि० जौर्ज लायड मिश्र वालों से १९२१ में मिली स्वाधीनता को छीनना चाहते थे और उसे फिर से पराधीन-उपनिवेश की श्रेणी में ले जाना चाहते थे, परन्तु इन के इस विचार से अनुदार दल और मिश्र की सिविल सर्विस सहमत नहीं थी। ऐसे अप्रिय आदमी का हाई कमिश्नर जैसे उत्तर दायित्वपूर्ण पद पर टिकना मुश्किल था।

इस घटना के कारण मज़दूर सरकार से भारतवर्ष जैसे देशों को विशेष उम्मीद लगाने की सम्भावना हो सकती है, परन्तु हमारी सम्मति में इस प्रकार की सम्भावना ठीक नहीं। मज़दूर-सरकार ने यह जो कुछ भी किया है वह बाधित हो कर किया है। हां, यदि इंग्लैण्ड की सरकार भविष्य में उपनिवेशों तथा अधीन राष्ट्रों के सम्बन्ध में किए गए वायदों को पूरा करने की नीति को स्वीकार करे और दृढ़ता तथा दूरदर्शिता के साथ परिवर्तन करे, तो मि० जार्ज लायड के त्याग-पत्र का स्वीकृत करना ब्रिटिश साम्राज्य की नीति में एक शुभ परिवर्तन हो सकता है। मज़दूर सरकार के प्रतिनिधि ने पार्लियामेन्ट में जवाब देते हुए कहा है कि जार्ज लायड आंग्ल-मिश्र सन्धि के अनुसार शासन नहीं करते थे। यदि यह सत्य है, तो हमें आशा करनी चाहिए कि मज़दूर सरकार भारतवर्ष के सम्बन्ध में किए गए वायदों को पूरा करने में तथा भारतीय जनता की आवाज़ को उचित सन्मान देने में संकोच न करेगी। केवल भारतवर्ष ही नहीं, सीलोन आदि अन्य अधीनस्थ ब्रिटिश उपनिवेशों के सम्बन्ध में भी ब्रिटिश सरकार के सन्मुख यह प्रश्न उपस्थित हो रहा है, कि वह साम्राज्यवादी लोगों के प्रभाव में आकर उन को खुश करने के लिए अपनी प्रतिज्ञाओं का भंग करें या उन की उपेक्षा कर अपनी प्रतिज्ञाओं का पालन करें। हमारी यह धारणा है कि सीइमन कमीशन की जो भी रिपोर्ट प्रकाशित होगी, वह भारत को स्वराज्य देने की प्रतिज्ञा में पूर्ण नहीं हो सकेगी। साइमन कमीशन भी जार्ज लायड की तरह

भारत की जनता की उपेक्षा कर, इंग्लैण्ड द्वारा की गई प्रतिज्ञाओं को ठुकरा कर मनमाने ढंग से काम कर रहा है। दुःखकी बात यह है कि मज़दूर दल भी इस कार्य में साइमन कमीशन का सहयोग दे रहा है। क्या मज़दूर सरकार का यह कर्तव्य नहीं कि वह मिश्र के प्रश्न की तरह ईमानदारी और सचाई के साथ १८५८ और १९१७ की घोषणा के विपरीत कार्य करने वाले शासकों को इस बात के लिए बाधित करे कि वह इन घोषणाओं की स्पिरिट के अनुसार भारत का शासन करें। यदि वह ऐसा न करें, तो उन के साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जाय जैसा कि मिश्र के हाई कमिश्नर के साथ किया गया है।

५. सहवास-वय-समिति की रिपोर्ट

सहवास-वय-समिति (The Age of Consent Bill Committee) की रिपोर्ट प्रकाशित हो गई है। कमेटी की सिफारिशें निम्न लिखित हैं—

१. सहवास-सम्बन्ध के लिये आयु की न्यूनतम अवधि १५ वर्ष कर दी जाए।

२. भारतीय दण्ड विधान में १५ बरस से छोटी उमर वाली कन्याओं के साथ सहवास करना अपराध करार दिया जावे।

३. इस अपराध का नाम "वैवाहिक दुराचार" रक्खा जावे।

४. किसी १८ बरस से छोटी लड़की के साथ —पति के अतिरिक्त—सहवास करना अपराध समझा जावे। (अर्थात् वेश्यावृत्ति के लिये न्यूनतम आयु की अवधि १८ बरस हो।)

५. किसी लड़की का विवाह १४ बरस से छोटी उम्र में न किया जाय।

६. इस अपराध के दण्ड स्वरूप कोई विवाह गैर क़ानूनी करार न दिया जा सके।

७. सरकारी तौर पर 'वैवाहिक रजिस्टर' रक्खे जावें। इन में वर और वधु की ठीक ठीक आयु दर्ज की जाय। विवाह में दोनों पक्षों के अभिभावकों का यह कर्तव्य हो कि वे वर और वधु की आयु उस रजिस्टर में अवश्य दर्ज करवावें।

८. बच्चों के जन्म को सरकारी रजिस्टर में, समय की एक निश्चित अवधि तक, दर्ज करवाना आवश्यक कर दिया जाय।

९. इस 'वैवाहिक दुराचार' अभियोग का अभियुक्त ज़मानत पर छोड़ा जा सके।

१०. इस अपराध पर दण्ड की सीमा इस प्रकार रक्खी जावे—(क) १२ वर्ष से छोटी आयु वाली पत्नी के साथ यह अपराध करने पर १० वर्ष की कड़ी या सादी कैद या जुर्माना। (ख) १२ से १५ वर्ष की पत्नी के साथ यह अपराध करने पर १ वर्ष की सादी या कड़ी कैद या जुर्माना, या कैद और जुर्माना दोनों।

११. स्त्रियों में इन मामलों की निगरानी रखने के लिये स्त्री-पोलीस नियुक्त की जाय। आवश्यकता पड़ने पर अदालतों में व्यभिचार या 'वैवाहिक दुराचार' सम्बन्धी अभियोग उपस्थित होने पर स्त्री जूरर भी नियुक्त की जांय।

१२. क़ानून में इस तरह के संशोधन किये जांय कि कोई पति अपनी १५ वर्ष से छोटी उमर की विवाहिता पत्नी को अपने साथ रहने के लिए बाधित न कर सके।

१३. स्त्री पुरुषों में अधिकाधिक जागृति उत्पन्न करने और उन्हें इस नियम की जानकारी देने का प्रयत्न किया जाय।

एसेम्बली के पिछले अधिवेशन में सरकार ने यह घोषणा की थी कि शिमला अधिवेशन में यह विधान पुनः पेश किया जायगा। इस रिपोर्ट पर अपनी आलोचना हम उसी समय करेंगे। इस समय इतना ही कहना पर्याप्त है कि हमारी सम्मति में यदि सहवास वयकी न्यूनतम अवधि १६बरस और लड़कियों के विवाह की न्यूनतम अवधि भी १६ बरस ही रक्खी जाती तो अधिक उपयुक्त होता। एक बात और। सहवास के सम्बन्ध में क़ानून बनाते हुए लड़कों के विवाह की न्यूनतम आयु भी अवश्य निश्चित कर देनी चाहिये। वह अवधि २० वर्ष से कम तो कदापि न होनी चाहिये।

६. कौन्सिल बहिष्कार का प्रश्न

पिछले दिनों अलाहाबाद में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन हो गया। कमेटी का अधिवेशन अत्यधिक महत्वपूर्ण था। दिल्ली में कांग्रेस की कार्य समिति ने यह निश्चय किया था कि व्यवस्थापिका सभाओं के कांग्रेसी सदस्य शीघ्र ही कौंसिलें छोड़ कर देश को रचनात्मक कार्य के लिये तैयार करने के उद्देश्य से बाहर चले आवें। इस निर्णय पर बड़ा गरमागरम बहस हुई। बहुत से कांग्रेसी सदस्यों को इतना शीघ्र कौन्सिलों का नरम गद्दियां छोड़ देना अभीष्ट नहीं था। इसी लिये अलाहाबाद में कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन बुलाया गया। इस अधिवेशन में एक समझौते का प्रस्ताव, जिसे महात्मा गांधी ने उपस्थित किया था—स्वीकार हुवा। इस प्रस्ताव के अनुसार कौन्सिल बहिष्कार का प्रश्न लाहौर कांग्रेस तक के लिये स्थगित कर दिया गया है। यह प्रस्ताव उपस्थित करते हुए महात्मा जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था— "मैं केवल समझौते के उद्देश्य से ही यह प्रस्ताव पेश कर रहा हूं। १९२४ में भी केवल समझौते के उद्देश्य से ही मैं ने कौंसिलों में जाने के सम्बन्ध में स्वराज्यपार्टी की नीति का विरोध नहीं किया था।" १९२४ में माननीय पं० मोतीलाल नहरू कौंसिलों में प्रवेश करने के पक्ष में थे। अब ५ वर्ष के अनुभव से आप को यह विश्वास हो गया है कि कौंसिलों में जाकर होहल्ला मचाने से देश का कोई कल्याण नहीं हो सकता।

अलहाबाद में जो समझौता हुआ है, उस से हमें सन्तोष नहीं हैं। अलाहाबाद में तो कौंसिल बहिष्कार को केवल ५ मास के लिये स्थगित ही कर दिया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि लाहौर कांग्रेस न केवल कौंसिलों के बहिष्कार की घोषणा करेगी, अपितु १९२१ की तरह पञ्चविध बहिष्कार की घोषणा करेगी। हमें तो यह भी असम्भव प्रतीत नहीं होता कि तब, लोग जोश में आकर टैक्स तक अदा न करने का प्रस्ताव भी स्वीकार कर दें। परन्तु इस के बाद व्यवहार में देश कितना असहयोग कर सकेगा, यह देखने की बात है। हमारा विचार है कि लाहौर कांग्रेस में कौंसिल बहिष्कार का प्रस्ताव स्वीकार हो जाने पर भी कौंसिलों के अनेक कांग्रेसी सदस्य अपना पद-त्याग करते हुए हिचकिचाहट अनुभव करेंगे। अनेक लोग तब कांग्रेस का साथ छोड़ने तक को भी तैयार हो जावेंगे। परन्तु उन लोगों की सम्मति का मान कर के देश भर को आगे बढ़ने से रोक देना घातक सिद्ध होगा। कौंसिलों के अनेक कांग्रेसी सदस्य सचमुच केवल इसी योग्यता के ही हैं कि वे कौंसिल भवन में गरमा-गरम स्पीचें झाड़ा करें। वे बाहर आकर कोई उपयोगी रचनात्मक कार्य कर सकते हैं— ऐसा हमें विश्वास नहीं। यह भी हम स्वीकार करते हैं कि कौंसिल छोड़ कर, बाहर देशमें भी कोई रचनात्मक कार्य न करने की अपेक्षा कौंसिलों के अन्दर गरमागरम स्पीचें झाड़ना ही अधिक उपयोगी कार्य है। अतः हमारा यह दृढ़ मत है कि कांग्रेस के जो कौन्सिलर अपने को रचनात्मक कार्य करने के अयोग्य समझते हैं, उन्हें कांग्रेस के सदस्यत्व से त्याग-पत्र देकर लिबरल फिडरेशन में सम्मिलित हो जाना चाहिये। उस अवस्था में स्वराज्य प्राप्ति के लिये कठोर रचनात्मक कार्य तो कांग्रेस अपने ज़िम्मे ले ले, और कौन्सिलों के अन्दर का कार्य लिबरल फिडरेशन के सपुर्द कर दिया जाय। कांग्रेस और लिबरल फिडरेशन— ये दोनों संस्थायें एक ही संस्था के दो विभिन्न भाग बन सकें तो अच्छा, अन्यथा ये दोनों अलग अलग संस्थायें रहते हुए भी, दोनों परस्पर भाई चारे से काम करें। मालूम नहीं, हमारा यह स्वप्न पूरा होगा या नहीं।

कन्या गुरुकुल समाचार

ऋतु

वर्षा के कारण चारों ओर हरा मखमली ग़लीचा बिछा हुआ है। वृक्षों पर सुन्दर मन-लुभावने पत्ते, फूल और फल दृष्टि गोचर हो रहे हैं। लीची और आमों के पेड़ खाली होते ही अमरूद, खट्टे, नाशपाती आदि पेड़ फलों से सुशोभित हो रहे हैं। वर्षा के कारण खेतों में नदी और नाले चल रहे हैं। कन्या गुरुकुल के पीछे की रिसपना नदी, जो वर्ष में १० या ११ मास बिलकुल सूखी पड़ी रहती है, आजकल हरद्वार की गङ्गा बन रही है। किन्तु यहां की भूमि इतनी पोरस है कि जो दृश्य एक घंटे पूर्व था वह पीछे नहीं रह जाता। प्रातः से सायंकाल तक कभी एक दो घंटे भगवान भास्कर के दर्शन हो जावें तो लोग अपने को धन्य मानते हैं। कपड़ों के सूखने की नौबत नहीं आ रही है। मंडी से सब्ज़ी और फल भी दुर्लभ हो रहे हैं। कमरों के अन्दर बैठ कर ही दिन गुज़ारना पड़ता है। किन्तु पहाड़ों की शोभा अनिर्वचनीय आनन्द देती है।

स्वास्थ्य

ब्रह्मचारिणियों का स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। रोगीशाला का द्वार बन्द है। कोई रोगी नहीं है। हां, वर्षान्त के कारण फोड़े फुन्सियां तंग कर रही है, परन्तु वह भी बहुत नहीं।

सत्रान्तावकाश

सत्रान्तावकाश इस वर्ष प्रथम श्रावण से कर दिया गया है। विद्यालय में नई पढ़ाई नहीं हो रही हैं। प्रायः सभी अध्यापिकायें जिन्हें छुट्टी का अधिकार था, गई हुई हैं। जो हैं, वह कार्य कर रही हैं। विद्यालय उसी भांति खुलता हैं और कन्याओं को पिछला पाठ याद कराने का प्रबन्ध है, शेष समय वे छुट्टी मनाती हैं। बड़ी कन्यायें कपड़े सीने, चर्खा कातने, खड्डी का काम सीखने में अधिकाश समय लगाती हैं तथा धनुष वाण चलाना सीखती हैं।

महाविद्यालय

महाविद्यालय में २३ मास की छुट्टी थी। वहां भी कन्यायें सिलाई, चर्खा, खड्डी आदि के काम में अपना अधिकांश समय देती हैं तथा छोटी कन्याओं की देखरेख भी करती हैं।

गुरुकुलीय चर्खासंघ

लगभग साठ कन्याओं ने एक चर्खा संघ स्थापित किया है और प्रतिदिन नियम पूर्वक एक-एक मुड़ अवश्य कातती हैं। उन का प्रयत्न यह हो रहा है कि अपने लिये खादी स्वयं बनावें। किन्तु अभी तक अच्छा खद्दर तैय्यार नहीं हो सका है। सीखने के लिये मिलके सूत पर अभ्यास कराया जा रहा है। आशा है कि शीघ्र ही चर्खे का सूत सफलता पूर्वक चल सकेगा।

लोकमान्य दिवस

ब्रह्मचारिणियों ने यह दिन बड़े उत्साह से मनाया। बड़े उत्तम २ भाषण हुये, कवितायें पढ़ी गईं और देश सेवा के लिये बड़ा उत्साह फैला।

षाण्मासिक परीक्षायें

सत्रान्त के एक सप्ताह बाद छमाही की परीक्षायें प्रारम्भ होंगी। प्रायः सभी विद्यार्थिनियां उत्सुक हैं कि उत्तमाङ्कों में उत्तीर्ण हों, इस लिये परिश्रम कर रही हैं।

वार्षिक उत्सव तथा नवीन कन्याओं का प्रवेश

इस वर्ष वार्षिक उत्सव तथा प्रवेश के सम्बन्ध में बहुत से पत्र आ रहे हैं, परन्तु इस का अभी तक कोई निश्चय ही नहीं हुआ है। सम्भवतः दशहरे या दीपावली पर इस की आयोजना की जा सके। नवीन कन्याओं के प्रवेश सम्बन्धी बहुत से फार्म भरे जा चुके हैं और नित्य प्रति पत्र आ रहे हैं किन्तु स्थानाभाव से प्रवेश का निश्चय नहीं हो रहा है। स्थायीभवन का निश्चय होते ही इस का भी निर्णय हो जायगा। अतः तब तक प्रतीक्षा करनी चाहिये।

सचित्र

सुचारु सूची शिल्प पत्रावली

सलाई और क्रोशियेकी दस्तकारी सिखलाने की सस्ती और अनूठी विधि

इस प्रकार के पत्र इंग्लैण्ड अमरीका इत्यादि देशों में तो बहुत दिनों से निकलते हैं। परन्तु भारत में हिन्दी भाषा द्वारा प्रत्येक वस्तु के लिये अलग अलग कार्ड की रीति से इस कार्य को सिखलाने का यह पहला ही प्रयत्न है। जो कार्य पसन्द हो उसी के अनुकूल दो तीन आने खर्च कर कार्ड खरीद लो और घर बैठे बिना किसी की खुशामद के बनालो। अब तक निम्न लिखित कार्ड (१४×७) प्रकाशित हो चुके हैं:—

पत्र नं०	मूल्य	पत्र नं०	मूल्य
१—दीर्घ सूची प्रारम्भिक प्रयोग ११ चित्र	।)	५—पुरुषों का लम्बा मौज़ा [सचित्र]	=)
२—बड़ी सादी बनियान [सचित्र]	=)॥	६—पुरुषों का सरल दस्ताना [सचित्र]	=)॥
३—पुरुषों का कुर्ता [सचित्र]	=)॥	७—स्त्रियों का फूलदार कालर [सचित्र]	≡)
—बालिका को ऊनी जर्सी [दुरंगा]	≡)	पुरुषों का बुन्दकीदार मौज़ा [सचि]	=॥)

८ कार्डों का पूरा सैट मूल्य १।=)॥ के स्थान में केवल १) रुपया

कुछ सम्मतियाँ—

सरस्वती इलाहाबाद— यह पत्रावली नारी मात्र के लिये बड़ी उपयोगी है। छपाई सुन्दर भाषा सरल और मूल्य बहुत ही कम।

प्रताप लाहौर—कन्या पाठशालाओं और स्कूल की लड़कियों केलिये बड़े काम की चीज़ है।

गृहलक्ष्मी प्रयाग—हम इन कार्डों का हृदय से प्रचार चाहते हैं।

महारथी देहली—यह कार्ड सस्ते होने के कारण कन्याओं के लिये बड़े उपयोगी हैं।

मैनेजर "ज्योति"

कोठी नम्बर २१, २२ राजपुर रोडदेहरादून।

Regd. No. A. 1711

वर्ष १०] अगस्त १९२९ [संख्या ४



वार्षिक मूल्य ४॥) प्रति संख्या ।)

सम्पादक—
विद्यावतीसेठ बी. ए., चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

विद्यार्थियों, स्त्रियों से ४) विदेशका मूल्य ६)

विषय सूची।



लेखकों से निवेदन

१. ज्योति में लेख, कविता आदि भेजने वाले महानुभावों को अपने लेख सुस्पष्ट अक्षरों मे कागज़ के एक ओर ही ,हाशिया छोड़ कर लिख कर भेजने चाहियें।

२. लेख बहुत लम्बे न होने चाहिएँ। 'ज्योति' पत्रिका के लगभग चार पृष्ठों के लायक लेख हों तो अति उत्तम है।

३. लेखों को घटाने बढ़ाने तथा संशोधित करने का संपादक को पूर्ण अधिकार है।

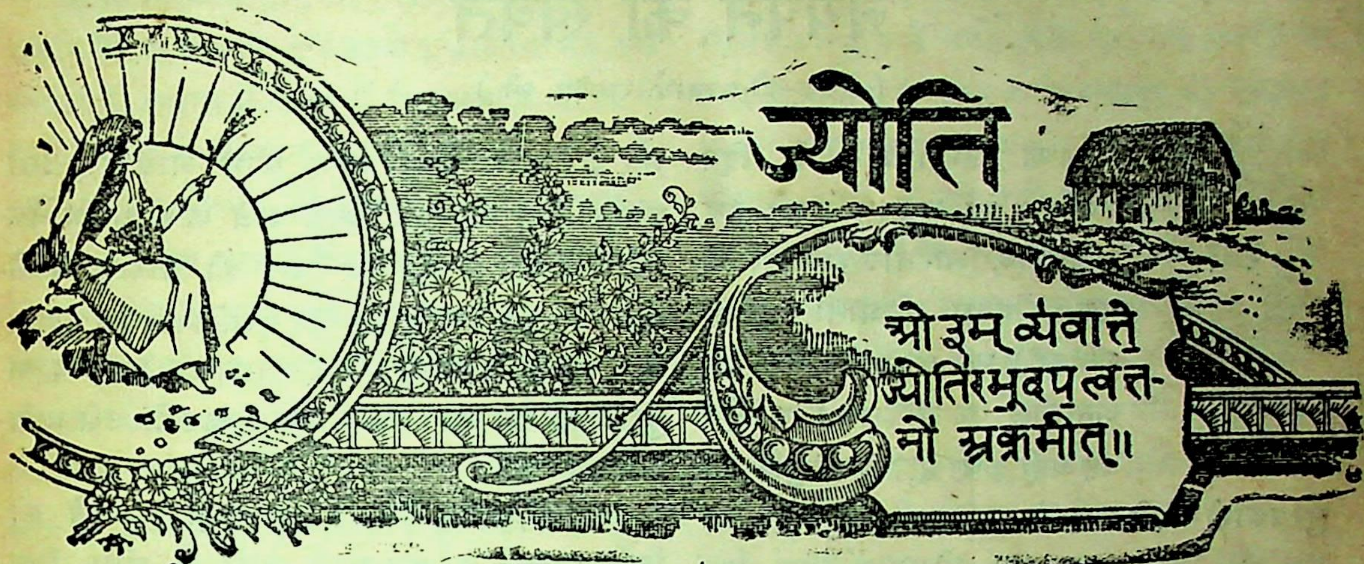


ज्योति सम्बन्धी पत्र व्यवहार— अथवा—

आचार्या कन्या गुरुकुल — **सम्पादक ज्योति**

कोठी नं० २१, राजपुर रोड — गुरुकुल कांगड़ी

(देहरादून) — यू



विविध विषय विभूषित सुन्दर मासिक पत्रिका.

वर्ष १० | श्रावण १९८६ * अगस्त १९२९ | संख्या ४

अवसान



(कविवर गोपालशरण सिंह)

रटता रहा जो नित्य नाम प्राण वल्लभ का,
हो गया अचानक है मौन वह काष्ठ कीर।
तीर पर तीर लगते हैं दिन रात किन्तु,
हिलता नहीं है कभी नेक भी अहो! शरीर।

रुक गई आप से ही आप आंसुओं की धार,
चुक गया सारा इन लोचनों का नीर।
सुख दुख एक सा हुवा है अब मेरे लिये
बढ़ गई ऐसी मृदु मन की गंभीर पीर॥

नयेपन का खबत

(लेखक-श्री आचार्य रामदेव जी)



आज "कृष्ण जन्माष्टमी" के दिन "नयेपन का खबत" लिखते हुए अजेयवीर, भारतीय सभ्यता के एक श्रेष्ठतम विधाता, मुरली मनोहर कृष्ण की प्रतिमूर्त्ति मेरे अन्तस्तल पर अंकित हो रही है। यह वही कृष्ण है, जो बांसुरी की मुग्धकारी मीठी लय के साथ गाता था—

"नायं हन्ति न हन्यते ।"

'यह आत्मा न किसी को मारता है और न खुद मारा जाता है।' आर्य संस्कृति में मनुष्य जीवन के लिये जो प्रेरक सिद्धान्त है, उसे एक वाक्य में बन्द कर के वह गुन गुनाता था—

"तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्यायरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥

'दुनियां में तुम काम करो और खूब काम करो मगर उन में लिप्त मत होवो। इसी से तुम्हें अपना लक्ष्य प्राप्त होगा।'

कृष्ण प्राचीनता की एक पवित्रतम और उज्वल स्मृति है। उसे अपने ध्यान में लाकर मैं आज इन, नयेपन के खबत के बीमार लोगों को, पुरानेपन की कुछ झांकियां दिखाने के इलावा और क्या चीज सुनाऊं ? इन दिनों, जब कि नयेपन का खबत किसी संक्रामक बीमारी की तरह देश भर में व्याप्त हो रहा है, सम्भव है कि मेरा यह पुराना आलाप बिल्कुल बेसुरा मालूम हो। लोग आज कल कृष्ण की बांसुरी को भी तो 'गंवारू बाजा' कहने लग गए है। मगर जिस तरह लोग आजकल उसी बांसुरी को अङ्गरेज़ी बैण्ड बाजे के साथ अधिक भड़कीले रूप में सुन कर उस की तारीफ़ करने लगते हैं, उसी तरह यह भी मुमकिन है कि नयेपन के खबत के ये मरीज़, हिन्दोस्तान की तहज़ीब के पुरानेपन का नये रूप में दर्शन कर के उसे ग्राह्य समझने लगें।

अच्छा, तो नयापन है क्या चीज़ ? अपने को शिक्षित कहने का दम भरने वाले वे लोग, जिन की ज्ञान चक्षुएं विदेशी राज की चमक-दमक से चकाचौंध हो गई हैं—समझते हैं कि संसार में जो कुछ अच्छा है, वह सब नया है और जो कुछ मूर्खतापूर्ण, अपरिवर्तन प्रिय और बुरा है-वह सब पुराना है। उन की समझ में नयापन तर्क, युक्ति, परीक्षण और विचार शक्ति का प्रतिनिधि है और पुरानापन अन्ध विश्वास, मिथ्या और रूढ़ी का परिणाम है। ये लोग कभी यह जानने का प्रयत्न नहीं करते कि प्राचीन भारतीयों के सामाजिक, राजनीतिक या वैयक्तिक आदर्श क्या थे। अपने गौराङ्ग महाप्रभुओं की नकल में ये लोग भी बड़े अभिमान के साथ इस बात का दावा करते हैं कि हमारे पूर्वपुरुष मूर्ख, जड़वादी और असभ्य थे। परन्तु मैं उस पुराने भारतवर्ष का प्रतिनिधि बन कर इन नयेपन के खबत के मरीज़ों से पूछता हूँ कि मुझे कोई उदाहरण देकर बतलाओ कि नयापन है क्या चीज़ ? किसी बात के सम्बन्ध में तुम स्पष्ट रूप से दो रेखाएं डाल कर इस बात का दावा करो कि इस रेखा के पूर्व की तरफ़ पुरानापन है और पश्चिम की तरफ़ नयापन। क्या तुम मुझे यह विभाग कर के दिखा सकते हो ?

ये नयेपन के खबती लोग मेरे इस सवाल का जवाब देने से इन्कार नहीं करते। ये लोग मेरे इस सवाल के जवाब में कहते हैं कि मनुष्य जीवन के हर एक पहलू में जो कुछ अच्छा और बुद्धिपूर्वक है, वह सब नया है और जो कुछ रद्दी और बन्धन—मय है, वह सब पुराना है। यह एक मोटा असूल मान कर ये लोग इस बात का दावा करते हैं कि मनुष्य के वैयक्तिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन में जो तरक्की नयी दुनियां कर गई है, पुराने ज़माने के लोग उस का ख़्वाब लेना भी नहीं जानते थे— मैं ज़रा ग़लती कर गया। पहले ज़माने में तो कहा जाता था, मनुष्य का वैयक्तिक सामाजिक और राजनीतिक जीवन, परन्तु अब इस क्रम को उलट कर यों कहना चाहिये—मनुष्य का राजनीतक, सामाजिक और वैयक्तिक जीवन। क्योंकि आज-कल जीवन का सब से अधिक महत्वपूर्ण भाग राजनीतिक है, उस के बाद सामाजिक और उस के बाद वैयक्तिक।—ख़ैर, मैं कह रहा था कि नयेपन के बीमार लोगों का कहना है कि राजनीति शास्त्र (Politics) में प्रजान्तन्त्र (Democracy) का भाव आदर्श समझा जाता है। यह प्रजातन्त्र शासन बिल्कुल नये ज़माने की ईज़ाद है। पुराने हिन्दोस्तानी यह नहीं जानते थे कि प्रजातन्त्र शासन किस चिड़िया का नाम है। वे लोग तो तीन ही किस्म की शासन व्यवस्था जानते थे-पहला राजतन्त्र-जिस में वंश परम्परागत राजा को ईश्वर का अवतार समझ कर उस की सब आज्ञाएं मानी जाती थीं और दूसरा और तीसरा कुलीन तन्त्र या पुरोहित तन्त्र यानी कभी बहुत से कुलीन ख़ानदान मिल कर मुल्क पर हकूमत करते थे और कभी धर्म के ठेकेदार पुरोहित राजा बन बैठते थे। प्रजा की उन दिनों कोई आवाज़ नहीं थी। राजा जिस तरह से चाहता था, उसी तरह से मनमानी हकूमत करता था। सामाजिक क्षेत्र में इन लोगों का विचार है कि प्राचीन भारत जन्मगत वर्ण-व्यवस्था की ज़ंजीरों में इस तरह जकड़ा हुआ था कि अभी तक, इस बीसवीं सदी के उजियाले में भी वे ज़ंजीरें टूट नहीं सकी हैं। इन लोगों का विश्वास है कि पुराने भारत में ब्राह्मण लोग समाज पर मनमानी हकूमत करते थे। शूद्रों पर भारी अत्याचार किये जाते थे, उन की स्थिति गुलामों से भी बद-तर थी। इसी तरह देश के आधे भाग स्त्री समाज को पैरों की जूती समझा जाता था। उन पर पर्दा आदि के बन्धन इस तरह जकड़ दिये गए थे कि उन्हें स्वाधीनता के वायु मण्डल में सांस लेने का मौका ही न मिलता था। वैयक्तिक आचार के क्षेत्र में भी, इन लोगों की राय में प्राचीन युग से नवीन युग बहुत उत्तम है। इन का कहना है कि आज जिन देशों को संसार का नेता कहा जाता है, उन के निवासियों का वैयक्तिक आचार भी अब क्रमशः बहुत उन्नत होता चला जाता है। उदाहरण के लिये ये लोग अमेरिका का नाम पेश करते हैं। अमेरिकन लोगों ने महसूस किया कि शराब पीना व्यक्ति के लिये बुरा है-उन्होंने कानून पास कर के अमेरिका में शराब पीना सदा के लिये जुर्म करार दे दिया। इसी तरह से मनुष्य जीवन के हर एक पहलू को मद्देनज़र रखते हुए इन लोगों का यकीन है कि पुराना सभी कुछ बुरा है और नया सभी कुछ अच्छा है।

नयेपन का यह खबत केवल यहीं तक ही सीमित नहीं रहा। वह जीवन की छोटी छोटी बातों में भी अपना असर दिखा रहा है। लोगों ने नयेपन को हर एक पहलू में अच्छा समझ कर एक यह असूल भी बना लिया है कि नयेपन की

उपज पश्चिम के देशों से होती है और पुरानेपन का किला हिन्दोस्तान है, अतः हिन्दोस्तान का जो कुछ अपना है, वह सब त्याज्य है और जो कुछ यूरोप और अमेरिका का है-वह सब ग्राह्य है। इसी लिये ये नयेपन के ख़बत के मरीज़ अपनी भाषा, अपना रहन सहन और अपने रीतिरिवाजों को छोड़ कर विदेशी भाषा, विदेशी चाल चलन और विदेशी रहन सहन को अख्तियार करते जा रहे हैं।

आज इस लेख में मैं यह सिद्ध करना चाहता हूं कि वास्तव में इस नयेपन के खबत में जो कुछ अच्छा है, वह सब पुराना है और जो कुछ उथला, भड़कीला और गुमराह करने वाला है-वह नया है। मैं बड़े संक्षेप में मनुष्य जीवन के तीनों पहलुओं-राजनीतिक, सामाजिक और वैयक्तिक-की दृष्टि से इस सम्बन्ध में विचार करूंगा।

राज-शास्त्र वर्तमान समय का सब से अधिक महत्वपूर्ण शास्त्र है। वर्तमान राज-शास्त्र की सब से बड़ी ईज़ाद प्रजातन्त्र (Democracy) को समझा जाता है। परन्तु क्या यह तथ्य है कि प्राचीन लोग सदैव एक तन्त्र या पुरोहित-तन्त्र शासन को ही पसन्द करते थे ? दूसरी ओर क्या यह सिद्ध नहीं हो गया कि संसार का पूर्वीय खण्डन ही एक समय प्रजातन्त्र शासन प्रणाली का घर और पोषक रहा है ? मुझे अथर्ववेद के उस मन्त्र को यहां उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं, जिस में सभी अनुवादकों के अनुसार—राजा को चुनने का स्पष्ट वर्णन आया है। (७-२) इस मन्त्र में कहा है कि राजा को 'सभा' और 'समिति' की अनुमति से राजकार्य करना चाहिये। यहां सभा और समिति का अभिप्राय क्रमशः मन्त्रीसभा और लोकसभा है। मुझे ब्राह्मणों का वह उद्धरण भी यहां देने की आवश्यकता नहीं, जिस में 'विराज्य' अर्थात् राजारहित राष्ट्रों का वर्णन आता है और जिन में निर्वाचित राजा के राज्याभिषेक के समय उसे अध्वयु द्वारा डण्डे से पीटने का इस लिये विधान है कि कहीं राजा अपने को दण्ड से ऊपर न समझ ले। यह विधान रोम के इस कानूनी सिद्धान्त का सीधा-विरोध है कि राजा कोई अपराध नहीं कर सकता। साथ ही मुझे महाभारत का वह श्लोक भी यहां उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं, जिस में कहा है कि राजा राजसिंहासन पर बैठने से पूर्व यह प्रतिज्ञा करता है—

"मैं सदैव देश को ब्रह्म समझूंगा। और विधिपूर्वक जो नियम बनाये जायंगे, उन का मैं बिना विरोध पालन करूंगा और अपनी इच्छा के अनुसार कोई काम नहीं करूंगा।"

(शान्तिपर्व ५६। १०६। १०७)

ये सब प्रमाण घृणा के साथ यह कह कर रद्द कर दिये जायंगे कि ये तो दुनियां से बहुत दूर, प्रकृति की एकान्त गोदी में बैठे हुए उन सन्तों और महात्माओं की सदिच्छाएं मात्र ही हैं, जो दुनियां से दूर रह कर विचारों का तानाबाना बुना करते थे— कभी इस देश में ये बातें व्यावहारिक रूप में नहीं आईं। चाहे कुछ भी क्यों न हो, ये सिद्धान्त— मैंने केवल वे प्रमाण ही उद्धृत किये हैं, जिनका दूसरा अर्थ हो ही नहीं सकता—कम से कम इतना तो अवश्य सिद्ध करते हैं कि प्राचीन भारतीय प्रजातंत्र की भावना तथा उस के विस्तृत प्रयोगों से अपरिचित नहीं थे। इसी कारण से, मैं यह बताने की कोशिश भी नहीं करूंगा कि सम्पूर्ण वैदिक साहित्य में एक राष्ट्र पर दूसरे राष्ट्र की विजय का कोई वर्णन नहीं है। चक्रवर्ती सम्राट्

की कल्पना केवल उस सार्वभौम साम्राज्य की कल्पना है, जो अपना मुख्य सम्राट् स्वयं चुनता है। इस साम्राज्य के अधीनस्थ सम्पूर्ण राष्ट्र अपने आन्तरिक कानून बनाने में पूर्ण स्वतन्त्र हैं, परन्तु वे एक दूसरे पर आक्रमण नहीं कर सकते। 'आर्य' और 'दस्यु' का भेद आचार-सम्बन्धी हैं, जाति-सम्बन्धी नहीं। महाभारत में भी हम पढ़ते हैं कि प्राचीन काल में प्रत्येक राजा ने कुछ सन्यासियों की एक परामर्श-समिति बनाई हुई थी। ये सन्यासी अन्तर्राष्ट्रीय नेता होते थे। इन में एक सन्यासी अवश्य ऐसा होता था, जिस का जन्म किसी शत्रुराष्ट्र में हुवा हो। इस समिति को यह भी अधिकार था कि यदि राजा किसी दूसरे देश के हितों के विरुद्ध कोई कानून बनाने लगे तो उस कानून को अस्वीकार कर दें। महाभारत (अनुशासन पर्व ६१। ३२-३४।) में यह भी कहा है कि यदि राजा राष्ट्र का नाशक सिद्ध हो तो उसे जनता मार भी सकती है (निहन्यते)। कौटिल्य ने कहा है—"प्रकृति कोपः सर्व कोपेभ्यो गरीयान्।" अर्थात् जनता (प्रजा) का क्रोध सब क्रोधों से बड़ा है।

हमें बताया जाता है कि प्राचीन राजा लोग अपने दैवीय अधिकार से शासन करते थे। परन्तु वास्तव में स्मृतिकार लोगों की यह दृष्टि नहीं है। शुक्रनीति (अध्याय १. ३७५-३७८ IV, II. २५६) में लिखा है—

"राजा को ईश्वर ने प्रजा का सेवक बनाया है। प्रजा उस की सेवाओं के लिये उसे कर देती है। वह स्वामी या प्रभु केवल इसी लिये है कि वह रक्षा करता है।"

इस के बाद (७। ३३६ में)—

"क्या एक उत्तम रथ पर सवार हो कर कुत्ता भी एक राजा के समान, सुन्दर प्रतीत नहीं होता? क्या इसी लिये कवियों ने राजा की ठीक उपमा कुत्ते से नहीं दी?"

यहां तक कि शुक्रनीति (१। ७५५) में (Recall) की प्रथा का प्रारम्भिक रूप भी प्राप्त होता है। आचार्य शुक्र ने राजा को सलाह दी है कि वह उस राजकर्मचारी को बर्खास्त कर दे, जिस के विरुद्ध १०० नागरिकों ने अभियोग स्थापित किया हो। आचार्य शुक्र इस से भी एक क़दम और आगे गए हैं; उन्होंने मन्त्रियों के उत्तर-दायित्व के सिद्धान्त को भी प्रतिपादित किया है। उन का कथन है—"क्या उस राज्य में कभी उन्नति हो सकती है, जिस का राजा मन्त्रियों से भय न खाता हो।......जो राजा अपने पारिषदों और मन्त्रियों की सलाह नहीं सुनता, वह शासक के रूप में एक चोर है, वह प्रजा का धन लूट रहा है।" राजनीति शास्त्र के उस महान पण्डित ने राजा को सलाह दी है-"राजा सदैव अपने पारिषदों, राजकर्म-चारियों, और सभा के सदस्यों की खूब सोच विचार कर दी गई सलाहों पर ही अमल करे, अपनी इच्छा से वह कोई कार्य न करे।" जैसा कि मैंने कहा है, मैं इन प्रमाणों की शिक्षाओं पर विशेष बल नहीं दूंगा। मैं अब ऐतिहासिक प्रमाणों की ओर आता हूँ। सम्भवतः यहां कुछ ऐसे लोग भी हो सकते हैं जो रामायण को केवल एक काल्पनिक वस्तु समझते हों। ऐसे लोग इस तथ्य को कोई महत्ता नहीं देंगे कि रामचन्द्र ने लंका को जीता, परन्तु उसे अपने साम्राज्य का अंग नहीं बना लिया; इतना ही नहीं, उस ने लंका के स्वराज्य में ज़रा भी बाधा न दे कर उसे रावण के भाई को ही सौंप दिया। परन्तु बौद्ध संघों के सम्बन्ध में तो कोई सन्देह नहीं हो सकता? क्या संसार भर में कोई और धर्म ऐसा है, जिस का संगठन इस प्रकार प्रजातन्त्र शासन के सिद्धान्तों पर किया गया हो! महात्मा बुद्ध ने

यह सिद्धान्त कहां से सीखा कि प्रत्येक बात का अन्तिम निर्णय भिक्षुओं के मत गिन कर ही किया जाय ? यदि उस ज़माने में प्रजातन्त्र शासन की पद्धति नहीं थी तो महात्मा बुद्ध ने सन्थागाघ्र (Assembly Hall) का उद्घाटन संस्कार किस प्रकार किया था ? उस युग में भी, जिसे सभी लोग ऐतिहासिक मानते हैं,—यह इस लिये कि इस से पूर्व के युग को अनैतिहासिक कहा जाता है—हमें राजा के निर्वाचन के अनेक उदाहरण मिलते हैं। गोपाल (७३०—४०) नाम का एक सैनिक का पुत्र प्रकृति (प्रजा) द्वारा राजा बना दिया गया। प्रधानामात्य भान्दी की अध्यक्षता में एक लोक सभा हुई जिस में हर्ष वर्धन (६०६—४७) को उत्तरीय भारत का सम्राट् निर्वाचित किया गया। प्रजा की सब श्रेणियों ने मिल कर रुद्रदेव (१३५—५०) को पूर्वीय भारत का शासक चुना था। इन तथ्यों पर कोई आशंका नहीं करता, क्योंकि इन पर आशंका की ही नहीं जा सकती। इन की पुष्टि शिलालेखों और राजकीय खरीतों तक से होती है। फिर, उस प्रजातन्त्र के सम्बन्ध में क्या कहा जायगा, जो ईसा की चौथी शताब्दी तक विद्यमान था ? इस प्रजातन्त्र का वर्णन केवल भारतीय—हिन्दू बौद्ध और जैन-इतिवृत्त में ही नहीं है, अपितु ग्रीक और लैटिन साहित्य में भी इस का वर्णन मिलता है। महाभारत का कथन है कि प्रजातन्त्र में सभी एक समान (सदृशःसर्वे) हैं। महात्मा बुद्ध का जन्म स्वयं शाक्य प्रजातन्त्र में हुवा था। भारतवर्ष के इतिहास में केवल राजा वेन को ही अहिंसात्मक क्रान्ति द्वारा गद्दी से नहीं उतारा गया था, अपितु ऐतिहासिक युग में राजा बिन्दुसार को भी उस की प्रजा ने अपने पुत्र के लिये गद्दी छोड़ देने को बाधित किया था।

अब मैं सामाजिक क्षेत्र में आता हूं। जिन लोगों पर यह नयेपन का खब्त सवार है, उनमें यह कहना एक फैशन बन गया है कि वर्णव्यवस्था ही भारतवर्ष की अवनति का मूल कारण है। ये लोग इस सम्बन्ध में अपने दिमाग़ को तकलीफ़ देने की कभी मेहरबानी नहीं करते कि प्राचीन भारतीय स्मृतिकारों ने जिस वर्णव्यवस्था का प्रतिपादन किया है वह मनुष्य समाज के लिये अच्छी है या बुरी। सिर्फ़ वर्णव्यवस्था के वर्तमान विकृत स्वरूप को देख कर पुराने ज़माने को गालियां देना कहां की अक़्लमन्दी है। शुक्रनीति में यह स्पष्ट रूप में कहा है कि वर्ण केवल कर्म पर ही आश्रित होता है। वर्ण का सम्बन्ध भोजन और विवाह से ज़रा भी नहीं।

प्राचीन वर्णव्यवस्था क्या थी, यह बात ऋग्वेद के पुरुष सूक्त के उस मन्त्र से जानी जा सकती है, जिस में कहा है कि ब्राह्मण इस सामाजिक शरीर का मस्तिष्क हैं, क्षत्रिय बाहु हैं, जो आन्तरिक और बाह्य रक्षा के प्रतिनिधि हैं। वैश्य इस समाज शरीर के उरू या जंघाए हैं; ये पेट, मेदा, हृदय और जंघा का काम करते हैं। मनुष्य शरीर के ये सब भाग जिस तरह पोषक पदार्थों के निर्माण, विभजन और आत्मीकरण द्वारा स्वास्थ्य को बनाने तथा बढ़ाने में सहायक होते हैं उसी तरह वैश्य भी सामाजिक स्वास्थ्य अर्थात् वैभव की वृद्धि करते हैं। शूद्र इस राष्ट्र-शरीर के पैर हैं, जो मोटी मिहनत के प्रतिनिधि हैं।

समाज में वैश्य सब अधिक संख्या में होते हैं, क्यों कि इन में किसान, शिल्पी और उद्योग-जीवी श्रेणीयां सम्मिलित हैं। स्वाभाविक रूप से प्रत्येक देश की बहु संख्या यही काम किया करती है। क्षत्रिय अर्थात् सैनिक लोग उस से भी कम संख्या में होते हैं। शूद्र उस से भी कम

संख्या में। ब्राह्मण संख्या में सब से न्यून होते हैं। ब्राह्मणों का कार्य समाज के विचारों तथा आचार का नेतृत्व करता है। सुप्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने अपनी रिपब्लिक में भी इसी वर्णव्यवस्था से मिलती जुलती एक स्कीम का ही प्रतिपादन किया है।

प्राचीन काल में स्त्रियों की स्थिति बहुत बुरी थी-इस बात पर बहुत अधिक बल दिया जाता है। परन्तु स्वयं वेद में स्त्रियों की जिस स्थिति का वर्णन उपलब्ध होता है, इसे भुला दिया जाता है। वेद में स्त्री को साम्राज्ञी कहा है। वह सभी जगह साम्राज्ञी बन कर रहती है। घर में उसी का राज्य है। रस्किन ने स्त्रियों की आदर्श स्थिति के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किये हैं, वेद में भी स्त्रियों की ठीक वही स्थिति है। वेद स्त्री और पुरुष दोनों को महत्व पूर्ण और आवश्यक तो समझता है, परन्तु दोनों में जो स्वभाविक भेद है, उसे भी नहीं भुला देता। स्त्री का साम्राज्य घर में है और पुरुष का साम्राज्य घर के बाहर। परन्तु इस का यह अभिप्राय नहीं कि घर के बाहर स्त्री का कोई स्थान नहीं। जिस तरह घर के मामलों में भी स्त्री के लिये पुरुष की राय आवश्यक है। ठीक उस तरह बाहर के मामलों में पुरुष के लिये स्त्री की राय भी आवश्यक है। स्त्री पुरुष दोनों परस्पर पूरक हैं, एक ही नहीं।

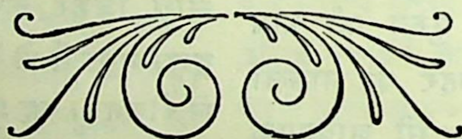
इस सम्बन्ध में एक और बात भी बहुत महत्वपूर्ण है। संसार के अन्य किसी देश अथवा धार्मिक समुदाय में किसी स्त्री को इलहाम होने का कहीं वर्णन उपलब्ध नहीं होता। इलहाम जब कभी होता है तो वह पुरुष को। परन्तु वेद की बहुत सी स्त्री ऋषिकाएं भी हैं। हमारी सम्मति में इन स्त्रियों ने वेद के उन सूक्तों के अर्थों का सब से पूर्व ज्ञान प्राप्त किया था। परन्तु जो लोग वेद को मनुष्यकृत मानते हैं और जिस सूक्त पर जिस ऋषि का नाम दर्ज है उस ऋषि को उस सूक्त का रचयिता मानते हैं, उन की राय में तो वेद के बहुत से सूक्त स्त्रियों के भी बनाये हुए हैं। मैं पूछता हूँ कि क्या किसी दूसरे इलहाम समझे जाने धर्म ग्रन्थ में भी किसी स्त्री को यह स्थान प्राप्त है? इस अवस्था में यह कहना कि प्राचीन भारत में स्त्रियों की स्थिति बहुत अवनत थी, बिल्कुल निराधार समझना चाहिये।

अब वैयक्तिक जीवन की बात बाकी है। यह दावा करना कि वर्तमान मनुष्य समाज का वैयक्तिक आचार प्राचीन काल से अधिक उन्नत हो गया है, सिर्फ एक गुस्ताख़ी भरी हिम्मत ही समझनी चाहिये। इस लिये इस सम्बन्ध में मुझे अधिक विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं। मेरी राय में नयेपन के खबत के शिकार मौजूदा दुनियां की इस सम्बन्ध की सिर्फ़ एक ही प्रवृत्ति का कुछ अभिमान के साथ ज़िकर कर सकते हैं। यह प्रवृत्ति है कानून द्वारा मनुष्यों के वैयक्तिक जीवन को तबाह होने से रोकना। यह प्रवृत्ति प्रशंसनीय है या निन्दनीय, इस सम्बन्ध में मुझे कुछ भी वक्तव्य नहीं है। वर्तमान समय में यह प्रवृत्ति, यह इलाज, वैयक्तिक आचार को उन्नत करने के लिये कहां तक इस्तेमाल में लाया जारहा है, इस सम्बन्ध में भी मुझे यहां कुछ नहीं कहना। मैं यहां सिर्फ़ इतना ही सिद्ध करना चाहता हूँ कि पुराने ज़माने में भी यह बात मौजूद थी और तब इस बात का इस्तेमाल आजकल की बनिस्बत अधिक अच्छी तरह किया जाता था। इस कारण यह

इलाज भी नया नहीं, पुराना ही है। आज बड़े फ़ख से इस बात का दावा किया जाता है कि अमेरिका ने कानून बना कर शराब का पीना बन्द कर दिया है। यद्यपि इस कानून की मौजूदगी में भी वहां छिपै तौर से हर साल लाखों रुपयों की शराब उड़ती है, फिरभी निस्सन्देह अमेरिका का यह काम तारीफ़ के योग्य है। परन्तु क्या प्राचीन भारत में यह बात नहीं थो। महाभारत मूसल पर्व के दूसरे अध्याय में कहा है—"आहुक जनार्दन, राम और भद्र—इन चारों को आज्ञा से सम्पूर्ण नगर में फिर से यह घोषणा करदी गई कि इस घोषणा के बाद से वृष्णी और आन्धक इन दोनों जातियों में से कोई व्यक्ति शराब और इसी किस्म के अन्य मादक द्रव्य न बनावे न पीवे। कोई ऐसा करेगा तो उसे सम्बन्धियों के साथ प्राणदण्ड दिया जायेगा।"

इस के अतिरिक्त अन्य स्मृति ग्रन्थों में आचार-शास्त्र के सिद्धान्त के रूप में तो शराब का निषेध किया ही गयो है।

नयेपन का यह खबत अपने साथ जो बुराइयां लाया है, उनका वर्णन यहां करने से यह विषय बहुत लम्बा हो जायगा। आज प्राचीन भारतीय सभ्यता के प्रमुख महापुरुष-जिन्हें उन की इसी विशेषता के कारण पोछे से अवतार भी मान लिया गया-के जन्मदिन मैं पाठकों की सेवा में यह निवेदन करना चाहतो हूं कि वे नयेपन की इस संक्रामक बीमारी के शिकार न बन कर प्रत्येक बात में नया क्या है और पुराना क्या है-इस बात की मीमांसा अवश्य करें। मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि यदि वह बुद्धि पूर्वक यह करने का प्रयत्न करेंगे तो उन्हें पुराना सभी कुछ भयंकर न जान पड़ेगा और नया सभी कुछ आकर्षक न जान पड़ेगा।



देहात ही राष्ट्र के प्राण हैं

(लेखक-श्रीयुत प्रिंसिपल छबीलदास जी बी.ए.)

देहातों की जागृति के बिना स्वराज्य प्राप्ति का विचार स्वप्न-मात्र है ।



आज १९२९ में संसार की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति १८८५ व १९०० की अपेक्षा भारतवर्ष के स्वराज्य-संग्राम के लिए अधिक अनुकूल है । संसार के बहुत बड़े भाग को स्थायी दासता की जंजीरों में जकड़ रखने वाले सब से बड़े मुज़रिम इङ्गलैण्ड की पोज़ीशन आज वैसी मजबूत नहीं रही, जैसी आज से ३०, ४० वर्ष पूर्व थी । व्यापारिक और आर्थिक मैदान में तो स्पष्टतया अमेरिका उस से बाज़ी मार ले गया है । पूर्व में जापान में भी काफ़ी ज़बरदस्त प्रतिस्पर्द्धी पैदा हो चुकी है । चीन के स्थायी 'पीले खतरे' ने भी पश्चिम के लालची भेड़ियों को लाल आंखें दिखला २ कर बहुत हद तक स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है । रूस के बोलशेविक राज्य ने न केवल इङ्गलैण्ड के वरन् सारे संसार के साम्राज्य-वादियों और पूंजीपतियों के दिल में कंपकपी पैदा कर दी है । पड़ोसी फ्रान्स की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई स्थलशक्ति तथा हवाई शक्ति इङ्गलैण्ड को परेशान कर रही है । गत महायुद्ध में पराजित और अपमानित जर्मनी के हृदय में बदले की प्रचंड अग्नि धधक रही है । इङ्गलैण्ड की आन्तरिक अवस्था भी इङ्गलैण्ड को शोक सागर में डाल रही है । कैनाडा, दक्षिण अफ्रीका, आयरलैण्ड, न्यूज़ीलैण्ड और आस्ट्रेलिया इत्यादि उपनिवेश दिन प्रतिदिन "मदरलैण्ड" इङ्गलैड के विरुद्ध उत्पात मचाते जा रहे हैं, जिस से इङ्गलैण्ड का दिल बैठा जा रहा है । आयरलैंड वाले इङ्गलैंड के राष्ट्रीय—गीत "गाड सेव दि किंग" को आयरिश जाति का अपमान समझते हैं । दक्षिण अफ्रीका के देशभक्तों की आखों में 'यूनियन जैक" कांटे की तरह खटक रहा है, कैनेडावाले दूसरे स्वतंत्र देशों की तरह हर जगह अपने राजदूत भेजने पर हठ कर रहे हैं । "मातृभूमि" इङ्गलैड के हम सब "सुपूतों" ने इङ्गलैंड को चैलेंज दे दिया है कि भविष्य में हमारी इच्छा और परामर्श के बिना कोई युद्ध न छेड़ो । मिश्री नवयुवकों ने भी स्वतंत्रता देवी की उपासना के लिये सिर और धड़ की बाज़ी लगा रक्खी है । यह सब घटनायें भारत के शत्रु इङ्गलैंड की कमज़ोरियों को प्रकट करती हैं । आओ, ज़रा उन शक्तियों का भी अध्ययन करें जिन के बल पर भारतवर्ष स्वतंत्रता प्राप्त करने का यत्न कर रहा है ।

निस्सन्देह पिछले ४०, ५० वर्ष से इण्डियन नेशनल कांग्रेस ने स्वतंत्रता का आन्दोलन चला रखा है । समाचार पत्रों से तो ऐसा दिखाई पड़ता है, मानो मैदान फतह होने ही वाला है, परन्तु बहुत दुःख और शोक से लिखना पड़ता है कि हम अपनी शक्तियों का बहुत ही ग़लत अनुमान कर रहे हैं ।

गिनती के कुछ एक वकील, डाक्टर या दूसरे स्वतंत्र रोटी कमाने वाले सज्जन अपने सांसारिक कामकाज से फुर्सत के कुछ मिनट

निकाल कर जलसों और कान्फ्रेन्सों पर लम्बे २ और जोशीले व्याख्यान दे देते हैं अथवा कुछ प्रस्ताव पास कर दिये जाते हैं जिन को शायद ही कभी क्रियात्मक रूप मिलता हो। बस यहीं तक हमारी शक्तियों की सीमा है। भारतवर्ष के ७ लाख देहातों में बसने वाले २६ करोड़ नर नारियों का स्वराज्यान्दोलन से रत्ती भर भी सम्बन्ध नहीं। यदि महात्मा गान्धी जी के असहयोगान्दोलन के दो तीन वर्षों के सुनहले अध्यायों को निकाल दिया जाय तो भारत का शेष राजनीतिक इतिहास इतना रूखा, फीका, निस्सार और शोचनीय है कि जिस का कोई ठिकाना ही नहीं। बीमारी, दरिद्रता, अविद्यान्धकार तथा छोटे बड़े नौकरशाही के एजण्टों के प्रतिदिन के अत्याचारों से तंग आये हुए भारत के करोड़ों किसानों और मज़दूरों को ही स्वतंत्रता और स्वराज्य की आवश्यकता है, परन्तु कांग्रेस की ओर से आज तक उन के पास स्वराज्य का सन्देश पहुंचाने का कोई संगठित प्रयत्न नहीं किया गया। यही कारण है कि जनसाधारण की आवाज़ और शक्ति पीठ पर न होने से नौकरशाही को सदैव हमारी राष्ट्रीय मांग ठुकराने का साहस होता है। आखिर इस का कोई इलाज भी है?

इलाज स्पष्ट है। जब तक हिन्दोस्तान के टिड्डीदल किसान और मजदूर स्वतंत्रता के पूरे पूरे लाभ समझ नहीं पाते, तब तक हमारे नेताओं के सारे प्रयत्न निष्फल हैं।

इसके लिए अत्यावश्यक है कि कांग्रेस जातीय सेवकों का एक ऐसा दल तैयार करे जो कि महाद्वीप भारतवर्ष के २६ करोड़ ग्राम निवासी किसानों और मज़दूरों तक स्वतंत्रता का सन्देश पहुंचा सकें।

इतिहास तो पुकार २ कर कह रहा है कि रूस, आयरलैंड, अमेरिका, जापान, चीन इत्यादि देशों को दासता के बन्धनों से मुक्त कराने वाले जोशीले नवयुवकों ने ही देहात के गरीबों की झोंपड़ियों तक स्वतन्त्रता का सन्देश पहुंचाया था। यह जीते शहीदों और नवीन सन्यासियों का दल कहां से भरती होगा? चन्द टकों के लिए अपना शरीर हृदय तथा मस्तिष्क, नहीं नहीं अपनी अन्तरात्मा तक, बेच डालने वाले क्लर्कों और नौकरशाही के कर्मचारियों में से ऐसे देश सेवक नहीं मिल सकेंगे। आठों पहर निन्यानवें के फेर में पड़े हुए व्यापारियों और दुकानदारों से भी इस प्रकार की आशा करना व्यर्थ है। धार्मिक और साम्प्रदायिक जगत् के नेता—भारत के ब्राह्मण, पुरोहित, काज़ी मौलवी और साधु फ़कीर तो आगामी संसार के सुखस्वप्न देखने, अपने हलवे मांडे का फ़िकर करने, अछूतों, विधवाओं और पददलित लोगों को उभरने न देने और धर्मान्धता की आग सुलगा कर मज़हबी दीवानों को ग़ाज़ी और शहीद के फ़तवे देकर नौकर शाही के हाथ मज़बूत करने में मस्त हैं। देश इन से तो कभी का निराश हो चुका है। हां, शिक्षित नवयुवकों और विद्यार्थियों का ही एक दल है जिन का निःस्वार्थ आत्म-त्याग, शारीरिक और मानसिक शक्तियां तथा बलिदान मातृभूमि की बेड़ियां काट सकते हैं।

अङ्गरेजों ने अपने राज्य की मज़बूती, तथा कामकाज चलाने के लिये और भारतवासियों को दिमाग़ी तौर पर हरा कर सदा गुलाम बनाये रखने के लिये सारे देश में स्कूलों और कालेजों का जाल बिछा रखा है। परन्तु मनुष्य सोचता कुछ है, और हो कुछ और जाता है। अङ्गरेजी राज्य के कल

पुर्ज़े तैय्यार करते वक्त भारतवासी नवयुवकों को स्वतंत्र देशों के इतिहास, स्वाधीनता के संग्राम तथा वीरों और वीराङ्गनाओं के हंसते २ जान पर खेल जाने की कथाएं भी पढ़ाई गईं। भारत के नवयुवकों की खोपड़ी में भी मस्तिष्क तथा मस्तिष्क में विचार शक्ति थी । स्वाभाविक-रूपसे उन के मन में प्रश्न उठे कि जब असभ्य से असभ्य और मूर्ख से मूर्ख जातियां भी प्रयत्न कर उन्नति और स्वाधीनता के शिखर पर पहुंच सकती हैं तो कोई कारण नहीं कि राम व कृष्ण के वंशज, भीमार्जुन की संतानें, शिवाजी, प्रताप, बुद्ध तथा शंकर के उत्तराधिकारी निराशा की दल-दल में पड़े सड़ते रहें। प्रकृति ने श्वेताङ्ग शासकों को भारतवासियों के मुकाबले में कोई भी विशेषता प्रदान नहीं की। फिर उन का क्या हक़ है कि वे इस प्रकार आकर एक ऐसी जाति पर शासन करें जिस की सभ्यता, वेशभूषा, साहित्य, धर्म तथा इतिहासादि सब कुछ उन से भिन्न हैं। अंगरेज़ी कालिजों और यूनिवर्सिटियों में शिक्षित नवयुवक लोग ही इन समस्याओं को समझते हैं। केवल वह लोग ही पाश्चात्य कूटनीति और उस्तादी के दांवपेंच को भांप सकते हैं।

देश के सौभाग्य से अंगरेज़ों के पास इतनी नौकरियां ही नहीं कि जिन में वह हर साल के पास होने वाले हज़ारों ग्रेजुएटों और अण्डर ग्रेजुएटों की खपत कर सकें।

एक पढ़ा लिखा बेकार नवयुवक बहुत ही सफल एजीटेटर और स्वतंत्रता का सन्देश वाहक बन सकता है।

कांग्रेस इस सचाईका अनुभव करे और नवयुवकों के साधारण जीवननिर्वाह का प्रबन्ध कर के उन के द्वारा देहात तक स्वराज्यान्दोलन पहुंचाने का बन्दोबस्त करे।

जो नवयुवक हंसते २ फांसी की टिकटी को गले लगा लेते हैं, जो जेलखानों और अण्डेमान को सुसराल से भी बढ़ कर सुख दायक मानते हैं, क्या वे साधारण निर्वाह पर अपने देशवासियों तक स्वराज्य का सन्देश पहुंचाने का पवित्र कार्य नहीं करेंगे? जहां कौंसिलों के चुनाव पर, बड़े २ जलूसों और कांग्रेस के अधिवेशनों पर प्रति वर्ष लाखों रुपये स्वाहा कर दिये जाते हैं, वहां जातीय-सेवकों की पलटन तैयार करने के लिये भी फण्ड जमा हो सकते हैं । आख़िर धार्मिक संस्थाएं और शिक्षणालय भी तो साधारण आर्थिक सहायता और सहानुभूति के बल पर ही चल रहे हैं, फिर कोई कारण नहीं दीखता कि इस महान और आवश्यक कार्य के लिए फ़ण्ड क्यों न जमा हो सकें।

आज तक "क्रान्ति चिरजीवी रहे" "साम्राज्य-वाद का सत्यानाश" के नारों की आवाज़ें केवल बड़े २ नगरों में भोग विलास और सुख का जीवन व्यतीत करने वाले, और भर पेट रोटी खाने वालों की ओर से आ रहे हैं। जिस दिन भारतवर्ष के सात लाख देहातों में बसने वाले भूखे, अशिक्षित, पददलित, अपमानित और पशुओं से भी बुरा जीवन गुज़ारने वाले करोड़ों किसानों और मज़दूरों ने भी यह नारा लगाया, उसी दिन भारत की दासता की जंजीरें चूर चूर हो कर गिर पड़ेंगी। अत्याचार और अन्याय का नाम न रहेगा। परन्तु यह तभी होगा जब स्वतंत्रता देवी के पुजारी—भारत के सुशिक्षित नवयुवक उन तक स्वराज्य का सन्देश पहुँचा चुके होंगे।



मरण, त्यौहार

—:*:*:*:*:*:*:—

("एक भारतीय आत्मा")

नाशने सागर तरंगें चीर कर,—गगन से भी कठिन स्वर गम्भीर कर,—
तरलता का मधुर आश्वासन दिये, किन्तु ओलों से इरादों के लिये—
सन्धि का सन्देश भेजा है यहां;
पूंछ कर:—"किस के कलेजा है यहां ?"
"राज-पथ की गालियां हम ने सहीं, प्रार्थनाएं पुस्तकें रच कर कहीं,
"श्रेष्ठ हैं; वह विपिन है अपना अहा—वध गजेन्द्रों का नहीं होता जहां !
"है रिपोर्टों में कलेजा छप रहा,"
देश के 'आनन्द—भवनों' ने कहा।
"कुरसियों की है मधुर स्वाधीनता, छोड़ देंगे हम, गुलामी, दीनता,
"थैलियां हों दे सकें हम गालियां, हो सकें साम्राज्य की 'घर वालियां'"
देश का स्वातन्त्र्य गर्वित था जहां—
पुण्य-पुर के केहरी दल ने कहा !
"है हमें निर्वासनों में हरि मिला, और तप करते, विजय का वर मिला,
"तप करो" गड़बड़ करो मत, तप करो, शान्ति में मत' क्रान्ति का आतप करो"
बंग—युग से, कोटि शिर झुकते जहां,
भूल पथ, उस पांडिचेरी ने कहा।
"ले कृषक सन्देश, कर बलि-वन्दना, ध्वज तिरंगे की किये बहु अर्चना,
"घूमता चरखा लिये, गिरि पर चढ़ो, ले अहिन्सा शस्त्र आगे को बढ़ो"
साबरमती पर क्यों न हम से नाज़ हो:—
"अब जवाहर शीश, मेरा ताज हो।"
'चमकते नक्षत्र थे, ग्रह भी बड़े, हां सुधाकर थे, उतरते से खड़े !
'नाश का आकाश में तम तोम था, फैल कर भी, विवश सारा व्योम था !
उस समय, सहसा सफेदी बढ़ उठी, मोम की दीपें, सुलगती, कह उठीं:—
"नाशजी ! नक्षत्र यदि लाचार हैं, श्री सुधाकर भी उतरते द्वार हैं,

"तो चलेंगी, तेल कर निज कामना, आइये, मिट कर करेंगी सामना।
"जानती हैं, ज़ोर घर की वायु का" जानती हैं समय अपनी आयु का।
"जानतीं बाज़ार दर अपना अहो,
"जानतीं हैं, दृष्टि के दिन, मत कहो।
"जानती हैं—सब सबल के साथ हैं, किन्तु रवि के भी हज़ारों हाथ हैं।
"वे कलेजे ही, कठिन 'तम' लाद कर, अब श्मशानों को स्वयं आबाद कर,
"एक से लग एक, हम जलती रहें, और बलि—बांहनें, बढ़ें, फलती रहें;
"सूर्य की किरनें, कभी तो जायँगी! जलन की घड़ियां, उन्हें ले जायँगी।"
(थी जहां पर भट्टियां सब बुझ पड़ीं; विश्व में चिनगारियां आगे बढ़ीं।
देव जीने दो, विमल चिनगारियां, ये चमकती आत्मा बलि की क्यारियां।)
जग पड़ीं, वे तुच्छसी चिनगारियां,
कोटि कण्ठों को उन्हीं पर वारियां?
जम्बुकेश, चलो!—जहां संहार है, वन्य पशुओं का लगा बाज़ार है!
आज सारी रात कूकेंगे वहां, मोम दीपों का मरण त्यौहार है!!



"बूअली"

[फ़ारसी का एक विस्मृत कवि]

(ले०—श्री पं० चमूपति जी एम० ए०)



रत की गर्दन पर विदेशी भाषा का जुआ विदेशी शासन के साथ पड़ा है। कल मुसलमान राजाओं की राज-भाषा फ़ारसी थी तो आज अंग्रेज शासकों की शासन-भाषा अंग्रेजी है। कल फ़ारसी का अनुशीलन भारत के फ़ारसी आक़ाओं की फ़ारसी भाव-भंगी को सहसा अवगत करलेने, उनके संकेतों पर फ़ारसी ढंग से नाचने और उनकी फ़ारसी हां में फ़ारसी हां मिलाने के लिये किया जाता था, तो आज अंग्रेज़ी का अध्ययन मुख्यतया अंग्रेजों की "नीच" चाकरी के लिये किया जाता है। कल कायस्थों की फ़ारसी के नाम से कुछ निरर्थक बेजोड़ से जुमले ऐसे तराशे जाते थे जिन का वास्तविक सुसंगत अर्थ तो कुछ निकले नहीं और जो उल्टा सीधा टूटा फूटा कुछ प्रयोजन निकल ही आये तो वह ऐसा हो कि सुनते ही श्रोताओं के पेट में सौ सौ बल पड़ जांय, तो आज हिन्दोस्तानियों की अंग्रेजी पर खूब फबतियां उड़ाई जाती हैं। अंग्रेजों के ठट्ठे मखौल में बाबू और बबूल समानार्थक हैं।

अचम्भा यह नहीं कि भारत ने परदेसी बोली की यह अधूरी नकल कैसे उतारी। कोई भी देश दूसरे देश के आचार विचार को अपनाएगा तो उस की गति वही होगी जो हंस की चाल चलने वाले कौए की! अचम्भा यह है कि इन नक़ली दूसरों की दृष्टि में नक़ली—हंसों में से कुछ २ हंस हर युग में ऐसे निकलते रहे जो असली हंसों को उन की अपनी चाल में मात करते रहे। साहित्य सरोवर के कुछ हंस सार्वभौम होते हैं। उन पर देश विदेश की छाप नहीं होती। इस में सन्देह नहीं कि ऐसा प्रतिभाशाली साहित्यिक लाखों में एक होता है और वह भी किसी किसी भाग्य-शालिनी शताब्दी में जन्म लेता है। साधारण जनों का मनोविकास अपने ही देश की भाषा में हो सकता है। भाषा की परतन्त्रता भाव की परतन्त्रता का परिणाम भी होती है और कारण भी। हम जिस जाति की भाषा में बोलते हैं, उसी के विचारों को उधार लेकर सोचते हैं। उसी के भावों की नकल से प्रेरित तथा उत्तेजित होते हैं। एक शब्द में भाषा से हमारा मानसिक जीवन अपना नहीं, पराया हो जाता है। हमारा विचार दूसरे का, हमारा मनोव्यापार दूसरे का, हमारा वाग्व्यवहार दूसरे का। सार यह कि हमारा सम्पूर्ण मनन और आचरण दूसरोंका हो जाता है।

और यही किसी सभ्य जाति की वास्तविक पराधीनता है।

आज जिस कवि-शिरोमणि का कवित्व आप के सन्मुख उपस्थित किया जायगा, वह भारत-मानस के उन चमत्कारी मरालों में से है जिन की सरस्वती सर्व-देश-गामिनी, सर्व-काल-कल्लोलिनी, सर्व-वाग्-विहारिणी होती है। "ब्राह्मण" मुगल काल का कवि है। वह सुन्दर, सरस, मधुर, और फ़ारसी में ऐसा सरल, तरल, स्वाभाविक और फिर ललित सुकोमल कविता करता है कि पहले ही प्रसिद्ध 'कन्दे पारसी' का मज़ा आजाता है। मानो फ़ारसी भाषा को यह प्रशंसा-परक सीठा अभिधान "ब्राह्मण" के कवित्व ही के कारण मिला है। शेर क्या है, मिश्री की डलियां है। फिर मज़ा यह है कि फ़ारसी रबाब का नग्मा हिंदी है— फारसी तन्त्री में तान भारेत की भरी है। गीता और उपनिषद् के भाव गुलिस्तां और बोस्तां की भाषा में छिप नहीं सके। ब्राह्मण ने मुन्शी नहीं, मौलवी होकर भी अपना ब्राह्मणत्व स्थिर रक्खा है। जैसे भाषा का अधिकार देश की सीमाओं को पार कर गया है, वैसे ही भावों का औदार्य भी मतमतान्तरों के घेरे में बन्द नहीं रहा। ब्राह्मण यज्ञोपवीत पहिनता है। वह ब्राह्मणत्व के इस पावन "स्मारक" को संभाल कर रखता है, और इस ब्रह्म-सूत्र में बंधा देवालय में जाता है, परन्तु कभी कभी उसे इसलामी "तसबीह" से भी छुआ छोड़ता है। ऐसे समयों में उसे इन दो साम्प्रदायिक सूत्रों में समानता प्रतीत होने लगती है। अभिन्नता का भान होता है। विश्व-प्रेम, निष्काम-कर्म, आत्म-रति, सन्तोष, अध्यात्म-दृष्टि—यह ब्राह्मण की काव्य-तंत्री की मुख्य तानें हैं। दर्शन उस का अभेद है। भौतिक संसार में ही भूतातीत अध्यात्म की झांकियां लेता है। कहता है, तत्व-बोध की अवस्था से साधारण व्यवहार की दशा को प्राप्त हुआ हूं। और यह लोक-परलोक-बन्ध और मोक्ष के बीच का आव जाव लाखों बार हुआ है। दूसरे शब्दों में मुक्ति से पुनरावृत्ति का साक्षात् अनुभव रखता है। संक्षेप में "ब्राह्मण" के उद्गारों का सार पाठकों के सम्मुख रख दिया गया है। अब पाठकों और कवि के बीच में और अधिक व्यवधान न रहकर उस की कविता का साक्षात् रसास्वादन कराता हूं।

ब्राह्मण का नाम चन्द्रभानु है। एक कविता के अन्त में अपना उपनाम "बिरहमना" न देकर अपने आप को अपने निज नाम 'चन्द्रभानु' से स्मरण करता है। लिखता है:—

ब मिर-ओ-माह रसद रौशनी ज़ि खाके दरश।
बवद ज़ि खाके-दरश चश्मे चन्द्रभां रौशन॥

फ़ारसी में न का अनुस्वार हो जाता है। यहां चन्द्रभानु शब्द में श्लेष है। शेर का भाव यह है:—

चमके देहली-धूल से, चन्द्रभानु के नयन।
चमकें देही-धूल से, चन्द्र-भानु के नयन॥

पहली पंक्ति में चन्द्रभानु का अर्थ है चन्द्र और सूर्य ; दूसरी में कवि का अपना नाम है। धूलि का चमत्कार जो हो सो हो, कवि के नाम के साथ चन्द्र और भानु-(मिहर और माह)-चमक उठे हैं।

ब्राह्मण ने अपना उपनाम "ब्राह्मण" चाहे इस लिये रखा हो कि वह ब्राह्मण-कुलोत्पन्न था, परन्तु जैसे उस की रचना के अध्ययन से पता लगता है, उस के विचार व्यवहार में वास्तविक–गुण कर्म का-- ब्राह्मणत्व भी समाया हुआ है। कहता है:—

अज़ बरहमन मख्वाह कारे दिगर।
कि अज़ो जुज़ दुआ न भी आयद॥

* * *

और विप्र को काज क्या, सिमरे नित जगदीश।
सिमरे नित जगदीश औ', दे छिन छिन आशीष॥

* * *

सन्तोष की प्रशंसा में कहता है।

कीमियाएस्त क़िनाअत चो दरामद ब-अमल।
आंचि ज़ीं ख़ाक तवां याफ्त ज़िज़र न तवां याफ्त॥

* * *

परम सिद्धि सन्तोष है, करे पूर्ण सब काम।
राख रसायन यह कहां, मिले स्वर्ण के दाम॥

आत्म-गर्व की गरिमा दर्शाने का "कौसर" के किनारे प्याला तोड़ दिया है—

तैराब बाद गुलशने हिम्मत की बर्हमन।
लब-तश्ना जाम बर सरे-कौसर शिकस्तई॥

* * *

मनमें हृदयोद्यान में, आत्म गर्व के फूल।
पटका प्याला रे तृषित! जा सुरसरि के कूल॥

मूल में "कौसर" आया है जो इसलामी बहिश्त का हौज़ है। मैंने अनुवाद में "सुरसरि" कर दिया है। इसके किनारे प्याला तोड़ना वैराग्य की पराकाष्ठा है।

इसी अभिप्राय को एक और प्रकार से यों कहते हैं:—

"आँ ख़ुश्क सबज़ा-एम कि दर मौसिमे बहार।
यादे नसीमो ख्वाहिशे, शब नम नमी कुनेम्॥

* * *

हूँ वह सूखी घास जो, आई देख बहार।
ओस-कनी मांगे नहीं सुमिरे नहीं बयार॥

फिर कहता है:—

चूं तिफ़्ले गुंचा-एम बख़ूने जिगर ग़रीक़।
लब तरब आबे चश्मय-ए ज़म ज़म नमी कुनेम्॥

* * *

कलिका-बाला की तरह, बूड़े रति के रंग।
क्यों सुरसरि के अर्थ से, वृथा छुवावें अंग॥

यहां मूल में "ज़म ज़म" है जो कि मक्के के निकट मुसल्मानों का पवित्र ताल है। उसे भी मैंने 'सुरसरि' कर दिया है।

यहां तक तो मिलती मुराद को लेते न थे। अगले शेर में परायी सम्पत्ति से अपनी आपत्ति को प्रियतर माना है। अपने दुःख को पराये— दूसरे के दिये—सुख से अच्छा समझा है:—

पेश अर न बवद शेवनै मा कसन गिरिफ्त-अस्त्।
गुल गर न बवद गुलख़ने मा कसन गिरिफ़्त अस्त्॥

* * *

हर्ष न दे विधना न दे, हर नहिं सकता शोक।
विकसित कुंज नहीं न हो, भट्ठी उज्वल ओक ॥

* * *

श्री कृष्ण की गीता का सार, निष्काम कर्म, ब्राह्मण की उक्तियों में ओत-प्रोत है। कहता है:—

दिल हासिये मुद्दआ-ए-मा याक़।
सद चीज़ ब तर्के-मुद्दआ याक़ ॥

* * *

सार काम की सिद्धि का, समझा मन अनजान।
त्यागी वर की कामना, पाये सब वर-दान ॥

और देखिये—

बरहमन अज़ तो हमीं बिह कि गोशा-गीर शवी।
कि मुद्दआ हमा दर तर्के—मुद्दआ बाशद ॥

* * *

ब्राह्मण उत्तम रति यही, हो रति से उपराम।
ज्यों ज्यों त्यागे कामना, त्यों त्यों साधे काम ॥

एक और स्थल पर कहता है:—

दर जुर्आ-ए-न ख़ुस्त कि आयद ज़ि जामे-इश्क़।
अव्वल ज़ि यादे अहले ख़िरद मुद्दआ रवद ॥

* * *

रति के प्याले का सखे, था यह पहिला घूंट।
जहां छू गये होंट झट, गई कामना छूट ॥

प्रेमियों की प्रार्थना ही निराली है— मांगते हैं भी और फिर कुछ नहीं मांगते।

दुआ-ए-अहले-मुहब्बत ज़ि मुद्दआ स्तबिरूं।
दुआ कुनन्द घले यादे मुद्दआ न कुनन्द ॥

* * *

काम-लेश से दूर है,
प्रेमिक की आशीष।
सुध विसार निज इष्ट की,
सिमिरे नित जगदीश ॥

* * *

ब्राह्मण की उक्तियों में कहीं कहीं नैष्कर्म्य-सिद्धान्त की झलक भी मिलती है। यथा—

ज़िबे सबाति-ए क़स्रे-ज़माना दानिस्तम्।
कि नक़्श बेहुदा बर रू-ए-आब ख़्वाहम कर्द ॥

पेख अथिर संसार को, लहा यही भव सार।
बहते जल पर खींचता, रेखा चित्रण-हार ॥

संसार की अस्थिरता का वर्णन करते हुए एक और स्थल पर एक गम्भीर दार्शनिक तत्व कह गये हैं—

आलम ब चश्मे-अह्ले-बसर जुज़ सराब नेस्त।
आबादिये ज़माना बग़ैर अज़ ख़राब नेस्त ॥

मृग तृष्णा संसार को, कहते मनुज सुजान।
होता बिना विनाश के, देखा नहि निर्माण ॥

इसी रहस्य को उर्दू के कवि ग़ालिब ने अधिक

प्रेम के मार्ग में बुद्धि बाधा है। कहते हैं:—

गामे न गुज़ारे-म् कि अज़ ख़ुद न हिरासेम।
मारा ख़िरदे आक़िबत अंदेश बला शुद ॥

* * *

जहां उठाया पग हुए,
वहीं भावि से भीत।
दूर-दर्शि मन हो रहा,
अपना आप अमीत ॥

मेरी एक उर्दू कविता में आया है:—

नाला-ए-सूर मेरी आक़िबत अंदेशी है।
पेशे इम्रोज़ा है फर्दा-ए-क़यामत मुझ को ॥

* * *

दूर-दर्शिता है मुझे, प्रलय मेघ की गाज।
कल होगी यम-यातना, भव्य भोग जो आज ॥

हम ब्राह्मण के नैष्कर्म्य का वर्णन ऊपर कर आये हैं। जाते २ कर्म का स्मरण हो आया है।

न जिन्से इल्म बदस्त आमदो-न नक़्दे अमल।
असर कुजा बतिही दस्तिये हुआ बाशाद् ॥
नहीं ज्ञान-धन-राश है नहीं कर्म-धन साथ।
मोघ प्रार्थना श्रम बिना लौटी खाली हाथ ॥

तू सर कशीदा बख़्वाबे गरूरो ग़ाफ़िल अज़ां।
कि राह बर दमे-तेग़स्तो हम रहां रफ़्न्द ॥

* * *

उर लगाय क्या सो रहा, ग़ाफ़िल! गर्व गरुर,
पथ दुर्गम क्षुर-धार सा, साथी पहुँचे दूर ॥
चि बस्तई दिले आज़ादारा ब कुहना र बात।
निशस्ता गाफ़िल! अज़ अन्देशाहा-ए-रोह-सरात ॥
टिका अचेत हृदय कहां? जीर्ण सराय असार।
वैतरणी के वेग को, दिया नितान्त बिसार ॥

मूल में "सरात" था जो तलवार की धार सा स्वर्ग को जाने वाला पुल है। मैंने उसे वैतरणी कर दिया है। नदी को तरना और पुल को पार करना एक ही बात है।

प्रभु की देहली पर खाली हाथ न जा; क्या ले जा!

दरां मक़ाम कि शरमिन्दगी तिही दस्तीस्त।
मगर बदस्त कसे नामा-ए-सियाह बरद ॥
लाज बड़ी होती जहां, जा कर खाली हाथ।
और नहीं ले चल सखे! कालख मन की साथ ॥

पुण्य नहीं, पाप ही समर्पण कर। सार यह कि अपना कुछ न रख। सर्वस्व दे दे।

बल से परन्तु जटिल शब्दावलि में कहा है:—

मेरी तामीर में मुज़्मर है इक सूरत ख़राबीकी।
हयूला बर्क़-ख़िर्मन का है ख़ूने-गर्म देहकाँ का।
है मेरे निर्माण में, निहित विनाश-विधान।
गाज गिरेगी खेत पर, सोता हुआ किसान ॥

अभिप्राय यह कि विनाश और निम्र्माण-यह दोनों क्रियाएं संसार के विकास में साथ साथ चलती हैं। कारण का विनाश हो तो कार्य का निर्माण है। ब्राह्मण और ग़ालिब का कहना यह है कि अपने भाग्य-निर्माण की क्रिया को देख कर प्रसन्न न हो। पांसा उलट कर देखो तो इसी भविष्य के निर्माण ने सारे भूत-भवन को चौपट कर दिया है और जो आज का उज्वल भावी है वही कल का जीर्ण शीर्ण भूत हो जायेगा। भूत मात्र की क्षण भंगुरता के आधार पर क्षणिकवाद की स्थापना हुई है जिस का परिणाम बौद्धों का दारुण दुःख-वाद है। वेद ने इस नैराश्य-प्रवृत्ति का उपाय एक अद्भुत युक्ति से किया है। वहां कहा है:—

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभय ꣳ सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्यामृत मश्नुते ॥

विनाश तो संसार में हो ही रहा है परन्तु विनाश की प्रत्येक क्रिया आगामी सम्भूति का साधन है। इस लिये निराशा का अवसर नहीं; उलटा आशा का मौक़ा है। बच्चे के शरीर में विनाश की क्रिया न हो तो वह बढे ही न। शरीर के पुराने कोष्ठों का विनाश है, नये कोष्ठों का बनना निर्माण है। समाज से कुप्रथाओं का हटाना विनाश है, सुप्रथाओं का चलाना निर्माण। नैतिक दृष्टि से दुराचार का त्याग विनाश है, सदाचार का ग्रहण निर्माण। विनाश के द्वारा मृत्यु से छुटकारा होता है, सम्भूति से जीवन-जिसे

वेद ने अमृत कहा है-उपलब्ध होता है । थोड़े से शब्दों में उपदेशों का दरिया बहा दिया है। ब्राह्मण और गालिब निर्वेद तक रह गये हैं । वेद कहता है, भुवन-भावन भगवान् के राज्य में भावात्मक भावना को बहुत स्थान है ।

सम्भवतः ब्राह्मण की योग-सोपान में निर्वेद एक कदम है । उस के हृदय में प्रेम की आग प्रज़्वलित है ।उस यत्र तत्र आग जलती प्रतीत होती है ।

ईं हमा आतिशे इश्क़स्त कि अफ़रोख़्ता अंद ।
कि दरो बाद यके आब यके ख़ाक यके स्त ॥
विधि ने चहुं दिसि प्रेम की, दी ज्वाला भड़काय।
पृथिवि जल औ वायु के, दिये विभेद मिटाय ॥

प्रेमोन्माद का मारा भेद-भाव को भूल जाता है । उसे अपने हृदय की आग की लपटें सारे संसार को जाज्वल्यमान-या भस्मसात्-करती प्रतीत होती हैं । इस अभेद भावना में तर्क की गति कहां ?

ताहरे अंदेशा राबर औजे मानी राह नेस्त् ।
आलमे मक़सूद अज़ अंदेश-ए-मा बरतर अस्त् ॥
तत्व-ज्ञान-गति गहन है, देख देख दृग दंग ।
हार गया इस व्योम में, उड़ उड़ तर्क-विहंग ॥

* * *

दर हरीमे ख़ासे-ऊ पीरे-ख़िरद रा बार नेस्त ।
अक़्ल अगर हमराह बाशद रुख़सते ऊता दरस्त ॥
सखि ! उस आंगन में नहीं, तर्क-तात का गौन ।
देहली तक मति जा सके, आगे पूछे, कौन !

संसार को मित्रस्य चक्षुषा" देखने की बात आप भी प्रायः किया करते हैं । इस में ब्राह्मण की स्थिति कुछ और है ।

दुश्मनां रा दोस्त पिन्दारम् चिजा-ए-दोस्तां,
आक़दर मश्के-मुहब्बत शुद कि दिल अज़ कीना मांद॥
शत्रु मित्र बन उर बसे, नहीं मित्र को ठौर ।
हृदय प्रीति से पुर गया, देख द्वेष ! उर और ॥
बदस्त आबर्द ने—दुनिया हुनर नेस्त ।
यके रा गर तवानी दिल दबस्त आर ॥
विश्व-विजय कौशल नहीं, बिजयी विश्व-अमीत ।
जग-जिगीषु ! जौहर दिखा, मानव का मन जीत ॥
तावा न अगर ब लाल दिही दर हिसाब नेस्त ।
तू दिल शिकस्त ई न कि गौहर शिकस्तई ॥
दिल तोड़े का दण्ड दे ? नहीं लाल कुछ माल ।
तोड़ा दिल, दिल दे सखे, तोड़ लाल दे लाल ॥

कूप्स्थ होने और इसी स्थिति में दोनों लोक देख लेने का ब्राह्मण को बहुत चाव है—कहता है—

पा बदामा कश्म्-ओ सर ब गिरेबो आरम् ।
चूं मरा बर दो जहां मैले तमाशा बाशद ॥
उभय लोक की गति लखूं , नयन जुगल लूं मीच ।
दूँ मस्तक उर पर गिरा, लूं पसरे पग खींच ॥

यक गाम बिरूं नामदम् अज़ रव्वेश बरहमन ।
तये रहे ई मर्दला बे जुंबिशे-पा-शुद ॥
एक कदम छोड़ा नहीं, ब्राह्मण ! अपना ठाव ।
सारी मञ्ज़िल काट दी, बिना हिलाये पांव ॥

हर्गिज़ अज़ ख़ाना पये कस्बे-तमन्ना न रवम् ।
सैरे-आलम-कुनयो यक क़दम अज़ज़न खम् ॥
ब्राह्मण कुत्सित काम हित, क्या छोड़े निज ठांव ।
करे सैर ब्रह्माण्ड की, बिना हिलाये पांव ॥

दर हर चि नज़र कुनी सफा-ए दिगर अस्त ।
हरजा कि रवी बहरे-तो जाए दिगर अस्त ॥
गर गोशे तो आशना-ए- आवाज़ शवद ।
हर लहज़ा ज़ि-हर तरफ सदा-ए-दिगर अस्त ॥

जहां देखिये रूप है, जहां ठहरिये ठौर।
चहुं दिस श्रोत्र सुजान को क्षण क्षण फल श्रुति और

इसी लोक में परलोक की झांकी:—

मियाने-ए-कालिबो जाने दिगर न ख्वाहम रफ़्त।
अज़ी मकां ब मकाने दिगर न ख्वाहम रफ़्त॥
हमीं जहां-स्त कि दारद जहां जहां मामी।
अजीं जहां ब जहाने दिगर न ख़्वाहम रफ़्त॥
लोक और नहीं ढूढ़िये, गहिये और न गात।
यही भवन सिगरे भवन, ऊपर-अवर-संघात॥

यहीं पर लोक और अवर लोक मिल गये हैं

प्रेम की मस्ती में भावुक अपने आप को भूल जाता है। वह न काशी का रहता है न काबे का। और तो और मैखाने मदिरा हाट का भी नहीं रहता।

मस्ते-इश्कम काबा-ओ-बुतख़ाना रा गुम करदा अम्।
अज़-रहे-मस्ती रहे मैख़ाना रा गुम करदा अम्॥
हम मतवाले प्रेम के, खो बैठे हर बाट।
काशी काबा खो दिये, खोदी मदिरा-हाट॥

इसी अवस्था में उसे सब आलय देवालय प्रतीत होते हैं। कहता है:—

आदमी खाना ओ-बुत खाना ओ-मैख़ाना यकेस्त।
ख़ाना बिसियारबले साहिबे हर ख़ाना यकेस्त॥
मानव घर औ देव घर, औ मदिरा घर एक।
घर वाला प्रभु एक है, घर के रूप अनेक॥

इसी बात को फिर कहता है—

दर मेक़ामे कि सर अज़ रिश्ता बरारंद बिरूं।
निज़्दे अरबाबे-नज़र सुबहा ओ जुन्नार यकेस्त॥
फूट रहे निज स्रोत से, पन्थ पुनीत अनेक।
उसी के सीकर सूत्र में तसबी माला एक॥

मूल में यज्ञोपवीत था मैं ने "तसवीह" के ख़याल से माला कर दिया। यज्ञोपवीत ब्राह्मण का 'ब्रह्म–सूत्र' है। उस पर कहता है—

मरा ब रिश्त-ए जुन्नार उल्फ़ते ख़ास स्त।
कि यादगार मन अज़ बर्हमन हमीं दारम्॥
इस पावन द्विज-सूत्र से, मुझे स्नेह विशेष।
बूढ़े "ब्राह्मण" का यही, है पुनीत अवशेष॥

अपने प्यारे के मुंह से परदा हटाना चाहता है। सम्भवतः मुझ को मुंह दिखाने की इच्छा नहीं। कहता है—ले? मैं आंखें ढके लेता हूँ। तू अपना मुंह ढक कर संसार में अँधेर मत कर, तू सूर्य है। तू दर्शन का स्रोत है, और दृश्य दोनों का अयन है।

मरा हिजाब सज़ाद् आफ़ताब रा चि हिजाब।
तू बे नक़ाबदरा मन नक़ाब ख़्वाहम कर्द॥
दिन कर को क्या ओट हो, दिन कर दर्शन-अयन।
तुम संवरण तजो प्रभो! मैं हूँ संवृत-नयन॥

चोला फाड़ डालने की इच्छा है-सांसारिक व्यवहार का चोला, वेष-भूषा का चोले और इस शरीर का चोला-सब चोले उतार फेंकने पर ऐक्य के दर्शन होते हैं। लिखते हैं

दरख़ुरे जामा-ए-हर मर्द गेरेबां दोज़ंद।
लेकिन आं जामा कि साज़ंद पिये चाक यकेस्त॥
जन जन का तन माप कर, चोले सिये अनेक।
फाड़ दिये जब प्रेम ने, सभी चीथड़े एक॥

अपनी आध्यात्मिक स्थिति के सम्बन्ध में कहते हैं:—

मन कीस्तम् अज़ राहे दराज़ आमद ए।
अज़ ऐन हक़ीकत ब मजाज़ आमद ए॥
अज़ मैकदा-ए-इश्क़ दरीं दैरे-कुहन।

सदबार बिरूं रफ़्त-ओ-बाज़ आमद प॥
विमल ज्ञान के शिखर से उतरे धूसर बाट।
ऊजड़ मठ आ जा रहे, छोड़ प्रेम-मद-हाट॥

कवि के कथन में एक बात जो विशेष ध्यान देने योग्य है वह उस का "प्रेम-मद-हाट से' "उजड़ मठ" में सैंकड़ों बार आना और सैकड़ों बार जाना। दर्शन की भाषा में इसे मुक्ति से बन्धन और बन्धन से मुक्ति की प्राप्ति कहेंगे। इस कथन में ब्राह्मण वेद के इस सिद्धान्त को दोहराता है:—

ये यज्ञेन दक्षिण या समक्ता इन्द्रस्य साकम मृतत्वमानश। तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृणीत मानवं सुमेधसः ऋ. १०. ६२. १

जो यज्ञ और दक्षिणा में रंगे हुए हैं और जिन्हों ने परमेश्वर की मित्रता रूपी अमृत (मोक्ष) को प्राप्त किया है ऐसे बुद्धिमान विद्वानों ! तुम्हारा कल्याण हो। फिर मानव जन्म को ग्रहण करो !

वेदों में दार्शनिक विचार

परमेश्वर के गुण

(ले०—श्री पं० धर्मदेव जी वेदवाचस्पति)



उपर्युक्त प्रमाणों तथा युक्तियों के आधार पर यह तो मानना पड़ता है कि इस विनश्वर जगत् का कोई चेतन कर्ता है, जो इस संसार को उत्पन्न करता, धारण करता और नष्ट करता है। परन्तु वह कैसा है ? उस का क्या स्वरूप है ? उस का गुण कर्म स्वभाव क्या है ? इस प्रश्न पर इस समय हम ने विचार करना है। पहिले एक प्रकरण में कतिपय प्रमाणों के आधार पर हम यह दिखा चुके हैं कि परमात्मा इस संसार का उत्पादक है, वह इस जगत का आदि कर्ता है। यदि हम यह स्वीकार कर लें (जैसा कि हम पूर्व सिद्ध कर आये हैं) कि परमात्मा सृष्टि का आदि कारण, कर्ता है तो वह स्वयं-सत्ताक होना चाहिए। उस की सत्ता के लिए किसी दूसरे की अपेक्षा नहीं होनी चाहिए। क्योंकि यदि उस की सत्ता के लिए भी किसी अन्य की आवश्यकता होगी तो परमात्मा सृष्टि का, आदि कारण, कर्ता न होगा ; परन्तु वह वस्तु आदि कारण होगी जो परमात्मा का कारण है। परन्तु क्योंकि परमात्मा ही सृष्टि का आदि कारण है अतः वह स्वयं सत्ताक होना चाहिए। इस लिए वेद में स्थान २ पर उसे 'स्वयम्भू' कहा गया है। अथर्ववेद १०।८।४४"अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू......" इत्यादि मंत्र में परमात्मा को 'स्वयम्भू' स्वयं सत्ता कहा गया है। उसी प्रकार यजुर्वेद, ४०।८ "सपर्यगात्...... परिभूः स्वयम्भूः" में तथा यजुर्वेद, २३। ६३- "सुभूः स्वयम्भू, प्रथमोन्त महत्यर्णवे। दधेह गर्भ मृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः। में उसी प्रकार "त्वं हि मन्यो......स्वयम्भू" ऋ०। १०। ८३। ४। में भी उसे 'स्वयम्भू' कहा गया है।

यदि परमात्मा ही सृष्टि का आदि कर्ता और स्वयं सत्ताक है तो वही सारे संसार का पति होना चाहिए। उसी के नियमों के अनुसार यह संसार चलना चाहिए। क्योंकि उसे किसी अन्य की अपेक्षा नहीं और यह संसार उस के आश्रित

है। अतएव अथर्व०, २० । १२१ । १ में उसे "ईशानमस्य जगतः" कहा है। और यदि वह संसारोत्पादक परमेश्वर ही इस संसार का अधिपति है तो वह पूर्ण (Perfect) होना चाहिए। क्योंकि यदि वह पूर्ण नहीं तो वह इस संसार के अविचल, स्थिर, शाश्वत नियमों का निर्माता नहीं हो सकता। परन्तु क्योंकि वह इस जगत् का उत्पादक तथा स्वामी भी है अतः वह पूर्ण होना चाहिए। अतएव अथर्व०, १० । ८ । ४४ । में परमात्मा के गुण वर्णन करते हुए उसे "न कुतश्चिनोनः" कहा है। अर्थात् परमेश्वर में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं। वह परिपूर्ण है—

परन्तु यदि वह पूर्ण है तो वह एक होना चाहिए। परन्तु दो या दो से अधिक नियन्ताओं की वहां आवश्यकता होती है जहां एक से काम न हो सके, जहाँ अकेला अपूर्ण हो। परन्तु क्योंकि वह पूर्ण है इस लिये वह एक ही होना चाहिए। अतएव उसे ऋग्वेद ।१०।१२१।१।में"पतिरेक आसीत् तथा अथर्व० २ । २ । १, २ में "एक एव भुवनस्य यस्पतिः" और अथर्व०, ४ । २ । १ 'एको राजा जगतो बभूव" इत्यादि मंत्रों में एक ही परमात्मा बताया गया है। अथर्व १३ । ४ । १६—२० में बड़े ज़ोरदार शब्दों में परमात्मा की अनेकता का खण्डन किया गया है। ओर अन्त में "स एव एक एक वृदेक एव" कह कर परमात्मा की एकता का प्रतिपादन किया है। इस प्रकार के परमात्मा की एकता का प्रतिपादन करने वाले शतशः मंत्र वेदों में मिलते हैं। उन मंत्रों का यहां पर विशेष उल्लेख न कर चतुर्थ अध्याय में ही विस्तार पूर्वक उल्लेख किया जायगा।

इस के अतिरिक्त परमात्मा जड-भिन्न (non-matter) अर्थात् चेतन स्वरूप (Spiritual) होना चाहिये। क्यों कि यदि वह पदार्थ (Matter) के कुछ अवयवों के संयोग से बना हुआ है तो उस का बनाने वाला उस के अतिरिक्त कोई और होना चाहिए। परन्तु ऐसा होने से वह स्वयम्भू न रहेगा। अतएव उसे प्रकृति (non-matter) मानना चाहिए; जैसा कि यजुर्वेद, ३२ । ३ । में कहा है-'न तस्य प्रतिमा अस्ति+यस्य नाम महद्यशः'। अर्थात् जिस परमेश्वर का नाम ही महान् यशस्वी है, उस का कोई रूप वा आकर नहीं इसी प्रकार यजुर्वेद, ४० । ८ । में परमात्मा को 'अकायमव्रणमस्नाविरम्' कहा गया है। अर्थात् उस परमेश्वर का कोई शरीर नहीं। वह व्रण तथा नस नाड़ियों से रहित है।

इन गुणों के सिवाय परमात्मा में अविकृति भी माननी चाहिए। वह परिवर्तन शील न होना चाहिए, क्योंकि वह पूर्ण है। परिवर्तन में दो कार्म्म हो सकते हैं, क वस्तु का अपने पूर्व रूप से बड़ा होना, ख- अथवा वस्तु का अपने पूर्व रूप से छोटा होना। इस प्रकार यदि परिवर्तन होने से परमात्मा में कुछ घटता है तो वह अब अपूर्ण हो जायगा, और यदि उस में कुछ बढ़ती होती है तो वह पहिले अपूर्ण मानना पड़ेगा। इस लिए परमात्मा को पूर्ण मानते हुए साथ ही अपरिवर्तन शील भी मानना पड़ेगा। अतएव उसे 'अजर' (न जीर्ण होने वाला)तथा 'युवा'कहा गया है। अथर्व०,१०।८।४४ में परमात्मा का "अजुर्य युवानं" विशेषण है। इसी प्रकार अथर्व० । ६ । १ । २, का युवानं और अथर्व०, ५ । १ । ४ का अजुर्य शब्द परमात्मा की अपरिवर्तन शीलता का परिचायक है।

परमात्मा सीमा रहित होना चाहिए। क्योंकि सीमित होने का तात्पर्य किसी दूसरी वस्तु से प्रतिबद्ध होना अर्थात् उस के स्थान से अलग हो कर अपनी स्थिति रखना है। परन्तु यदि परमात्मा

सीमित है तो वह किस से सीमित है? यदि परमात्मा को सीमित करने वाली वस्तु Spiritual है तो परमात्मा एक न रहेगा। और क्योंकि परमात्मा एक ही है अतः वह प्रतिबाधक वस्तु कम से कम Spiritual नहीं हो सकती। और यदि वह सीमित करने वाले वस्तु प्राकृतिक (Material) है तो वह सावयव होगी। उस अवयवों को मिलाने वाला उस से अतिरिक्त कोई और होना चाहिये। अपनी निकट तम सत्ता की अपेक्षा करता है, इस लिए आदि कर्ता की वहां भी सत्ता होनी चाहिए। जहां वह वस्तु है। अर्थात् वह दैनिक सीमा रहित या सर्व व्यापक होना चाहिये अतएव वेदों में स्थान २ पर उसे सर्वव्यापक कहा गया है। अथर्व० ४। २३। ४। में उसे 'विभु' और अथर्व ७। २१। १। में 'एकोविभूः' कहा है। इसी प्रकार 'ततो वितष्ठे भुवनानि विश्वाः॥ अथर्व०, ४।२०।७ तथा 'सपर्यगात्......परिभू' यजु० ४० । ८। आदि मंत्र भी उस की सर्वव्यापकता का वर्णन कर रहे हैं। इन के अतिरिक्त निम्न मंत्र अत्यन्त स्पष्ट तया प्रभावमय शब्दों में परमात्मा की विभुत्ता का वर्णन कर रहे हैं—

"तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य
"तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः। यजु० ४०। ५॥

"प्रजापते नत्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव॥
ऋ०। १०। १२१। १०

"उतेयं भूमिर्वरुणस्यराज्ञः इतासौ द्यौर्बृहती दूरे अन्ता॥
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प्य उदके
निलीनः॥ अथर्व०। ४। १६। ३

अर्थः—वह परमात्मा गति करता भी है और नहीं भी करता। वह सब से दूर है और सब के निकट भी है। वह सब के अन्दर विद्यमान है। तथा वही सबके बाहर भी विद्यमान है॥ १॥ हे परमेश्वरः आप के बिना कोई भी इस सारे संसार में व्याप्त नहीं हो रहा है॥ २॥ यह भूमि तथा यह दूर तक फैला हुआ द्युलोक और दोनों समुद्र वरुण के अधिपत्य में है। वह परमात्मा जल की छोटी से छोटी बूंद में भी रम रहा है॥ ३॥

इतना ही नहीं वह केवल तीनों लोकों में व्याप्त नहीं है। वह तो 'परोदिवः पर एना पृथिव्या अथर्व०, ४। ३०। ८॥ भी कहा गया है। अर्थात् वह परमेश्वर इस पृथिवी लोक तथा द्युलोक से परे भी है। इसी प्रकार अथर्व०, १०। ७। ८। में भी प्रश्न रूप से इसी भाव को दर्शाया है। मंत्र इस प्रकार है—

"यत्परमवमं यच्च मध्यम प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम्।
कियता स्कम्भः प्रविवेश तत्र यन्न प्राविशत
कियत्तद्बभूव॥"

अर्थः—प्रजा पति परमात्मा ने जो ये उत्तम, मध्यम तथा अधम—द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक पृथवी लोक रचे हैं। उन में वह सर्वाधार स्कम्भ परमात्मा कितने अंश से प्रविष्ट हुआ और कितना अंश ऐसा था जो इन तीनो लोकों में व्याप्त न था।

इसी प्रकार ऋग्वेद, १०। ६०। ४। मंत्र परमात्मा की सर्वव्यापकता वर्णन कर रहा है, और उपर्युक्त मंत्र का उत्तर प्रतीत होता है। उस में लिखा है कि 'परमात्मा का तृतीय चतुर्थांश इन तीनों लोकों से परे है और इस त्रिभुवन में उस का एक चतुर्थांश है। उसी एक चतुर्थांश से वह इन जड़ चेतन वस्तुओं में व्याप्त है। इस प्रकार परमात्मा को सर्व व्यापक माना गया है।'[1]

जिस प्रकार परमात्मा देश सीमित नहीं, उसी प्रकार वह काल सीमित भी न होना चाहिए क्योंकि यदि किसी काल में उस की उत्पत्ति मानी

१. त्रिपादूर्ध्व उदैत पुरुषः पादोऽस्येहा भवत् पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि॥ ऋ०।१०।६०।४॥

जावे तो उस का कोई कारण मानना पड़ेगा, जिस से उसे स्वयम्भू मानने में विरोध आता है। अत: एव उसकी उत्पत्ति नहीं माननी चाहिए। यदि उस की उत्पत्ति नहीं हुई तो उस का अभाव भी नहीं हो सकता, क्योंकि जो स्वयम्भू है उस का रहना आवश्यक है, वह न रहे ऐसा नहीं हो सकता। सद्वस्तु का अभाव नहीं हो सकता अतः परमात्मा काल-सीमित नहीं होना चाहिए

इस लिए अथर्व० १० । ७ । ३१ तथा १३ । १ । ६ में-'यदजः प्रथमं सम्बभूव' तथा 'तत्र शिश्रिये अज एक पादो ऽहंहद्‌ द्यावापृथिवीबलेन'-परमात्मा को 'अज' या अजन्मा कहा है। इसी प्रकार अथर्व० १० । ८ । ४४ 'अमृतं अजरं…" तथा अथर्व० १६ । ४ । २ । में 'अमृतो मर्त्येष्वा' अमर या मृत्यु रहित कहा गया है:—

इन सब गुणों के अतिरिक्त परमात्मा में ज्ञान भी होना चाहिए। बिना ज्ञानवान् (Intilligent) हुए उस में कर्तृत्व की कल्पना नहीं हो सकती; विशेषतः सृष्टि विषयक कर्तृत्व की कल्पना। सृष्टि में प्रत्येक घटना या कार्य नियमों का परिणाम मात्र है। अतः उन का नियामक भी ज्ञानवान् होना चाहिए। इसी कारण यजु० ४० । ८ । में परमात्मा को 'कवि-मनीषी' कह कर पुकारा गया है। इसी प्रकार अथर्व । २० । ३४ । १ । में तथा ऋग्वेद ७ । ८७ । ५ । में क्रमशः 'मनस्वान्' तथा वरुण को 'गृत्स' और अथर्व० १० । ८ । ४४ में 'धीरः' विशेषण परमात्मा के ज्ञानवान् होने में प्रमाण स्वरूप हैं।

क्योंकि परमात्मा सर्वव्यापक, त्रिकाल स्थित और ज्ञानवान् है अतः वह सर्वज्ञ होना चाहिए। सब देश तथा काल की वस्तुओं के ज्ञान से युक्त होने का नाम ही सर्वज्ञ है। अएतव निम्न मंत्रों में परमात्मा को सर्वद्रष्टा या सर्वज्ञ कहा गया है। मंत्र निम्न हैः—

धामानि वेद भुवनानि विश्वा……"।

अथर्व० २ । १ । ३ ।

"यो विश्वानि विपश्यति भुवना संच पश्यति॥

६ । ३४ । ४ ।

अर्थः—वह (परमात्मा) सब भुवनों तथा उन के नाम, जन्म और स्थानों को जानता है॥ १॥ जो (परमेश्वर सारे संसार को व्यष्टि तथा समष्टि की दृष्टि से देखता है॥ २॥ इसी प्रकार वरुण सूक्त (अथर्व० ४ का० १६ सू०) के निम्न मंत्र 'सर्वज्ञ' परमात्मा का वर्णन कर रहे हैं।

"बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति॥ १॥

"यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्।

"द्वौ संनिषद्य यन्मंत्रयेते राजा तद्वेद वरुणस्तृतीयः॥ २॥

उतो यो द्यामतिसर्पात् परस्तान्न स मुच्याते वरुणस्य राज्ञः।

दिवः स्पशः प्रचरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अतिपश्यन्ति भूमिम्॥ ३॥

सर्वं तद्राजा वरुणो विचष्टे यदन्तरा रोदसी यत्परस्तात्।

संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी निमिनोति तानि॥ ४॥

अर्थः—इन सब पदार्थों का महान् स्वामी सब वस्तुओं को अत्यन्त समीपस्थ की भांति देखता है॥ १॥ जो ठहरता है, जो चलता है, और जो किसी को ठगता है, जो छिप कर फिरता है, तथा जो कुटिलता का व्यवहार करता है और दो आदमी बैठ कर जो गुप्त मंत्रणा करते हैं राजा वरुण (परमात्मा) उन सब को जानता है॥ २॥ जो द्युलोक से भी परे चला जावे वह वरुण के पाश से मुक्त नहीं होता। अनन्त दर्शन शक्तिवाले इस के दूत सब जगह घूमते फिरते रहते हैं। वे इस भूमि से परे भी देखते हैं॥ ४॥ इस द्युलोक तथा पृथिवी के बीच में जो कुछ विद्यमान है, वरुण वह सब जानता है। वह सब मनुष्यों के सब निमेषों को भी जानता है और जिस प्रकार जुआरी पासों को

डालता है उसी तरह सब पदार्थों को व्यवस्थित करता है ॥ ५ ॥

ये सब मंत्र बड़ी सुन्दरता से परमात्मा का वर्णन कर रहे हैं। परन्तु इस के अतिरिक्त परमात्मा धर्मात्मा (Moral) भी होना चाहिये। क्यों कि वह अन्तरात्मा द्वारा प्रेरणा करने वाला है। यदि वह स्वयं धार्मिक नहीं तो औरों को किस तरह अपने से उच्च अर्थात् धार्मिक बना सकता है। और क्योंकि वह पूर्ण है, इस लिये भी वह धार्मिक होना चाहिए। जो धार्मिक गुण मनुष्यों में अपूर्णावस्था में हैं वे उस में अन्यूनावस्था में होने चाहियें। क्योंकि धार्मिक गुण पूर्णता के पूरक हैं और पाप पूर्णता के अभाव स्वरूप हैं। इस लिये परमात्मा धार्मिक होना चाहिए। उस में किसी प्रकार पाप किसी भी रूप में नहीं होना चाहिए। इस लिये यजु० । ४० । ८ में परमात्मा को 'शुद्ध महापाप विद्धम्' । कहना बिलकुल उचित जान पड़ता है।

यदि परमात्मा धार्मिक है तो उसे दयालु भी होना चाहिए; क्योंकि दयालुता धर्म का एक अंश है, और क्रूरता पाप है। इस लिए वेद में उसे स्थान स्थान पर 'सुशेवः[1]' 'शकर[2]' तथा सूपायनः'[3] कहा गया। ऋ० । ७ । ८७ । ७ ॥ योमृडयति चक्रुषे चिदागः' मंत्र में भी परमात्मा को दयालु बताया गया है। और क्योंकि परमात्मा, धर्मात्मा, तथा दयालु है अतः उसे न्यायकारी भी होना चाहिए। बिना न्यायानुकूल व्यवहार करने के वह दयालु नहीं हो सकता। धार्मिक दयालुता ही का नाम न्याय है। न्याय करने का तात्पर्य कर्ता को उस के पाप पुण्य के अनुसार फल देना है। इस लिये न्याय कारिता के विचार के साथ २ कर्म फल दातृत्व का विचार भी स्वयं सम्बद्ध है। इसी लिए निम्न मंत्रों में परमात्मा को न्यायकारी तथा कर्म फल दाता कहा गया प्रतीत होता है। ऋग्वेद, ७। १०४। १२ में लिखा है-"तयोर्यत्सत्यं यत रहजीय स्तदित्सोमो अवति हन्त्यासत्" ॥ इसी प्रकार निम्न दो मंत्र भी, जिन का अर्थ अत्यन्त स्पष्ट है, इसी बात को दर्शा रहे हैं।—"न वाउसोमो वृजिनं हिनोति नक्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्। हन्ति रक्षो हन्त्यासत्"१ तथा 'छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्य वाख्यति तं सृजन्तु"२— ॥ इत्यादि।

साथ ही यदि परमात्मा जगत् का रचयिता, अधिपति, पूर्ण तथा न्यायकारी और कर्म फल दाता है तो वह सर्वशक्तिमान् भी होना चाहिए, क्योंकि शक्ति सम्पन्न हुए वह उपर्युक्त गुणों को कायम नहीं रख सकता, उस का आधिपत्य सफल नहीं हो सकता। इस का तात्पर्य यह नहीं कि सर्वशक्तिमान् होकर परमात्मा नियम विरुद्ध कार्य भी कर सकता है। क्योंकि वैसा करने से वह न्यायकारी तथा धार्मिक नहीं कहा जा सकता। इस लिए उस में सर्व शक्तिमान् का उसी हद तक उपयोग समझना चाहिए, जिस हद तक रहता हुआ वह धर्मिकता तथा न्याय करिता के गुणों को कायम रख सके।

अतएव साम १।१ ११ में परमेश्वर की स्तुति कर के कि हे शूर परमात्मन्! दूध रहित गौओं की तरह हम तेरी स्तुति करते हैं। फिर आगे लिखा है

'न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनयिष्यते।' अर्थात् हे शूर परमेश्वर, आप के

१-अथर्व० ६। १। २।
२-यजु० १६। ४१।
३-ऋ० १। १। ९।

§१—ऋग्वेद. ७। १०४। १३.
२.—अथर्व. ४। १६। ६.

समान न कोई दिव्य या पार्थिव पदार्थ है और न होगा। एवमेव अन्य बहुत से ऐसे मन्त्र हैं जिन में परमात्मा को बल स्वरूप या अत्यन्त बलशाली कहा गया है। वेद में उसे 'सहः'[1] 'सहसा प्रतिष्ठितः,'[2] 'इन्द्र बाबहुः'[3] 'अच्युतच्युत्ः'[4] 'तृविनृम्ण,'[5] 'विश्वकर्मा,'[6] 'विश्वतो बाहुः'[7] तथा 'शविष्ठ,'[8] आदि "कहा है इन सब का यही तात्पर्य है कि परमात्मा सर्व शक्तिमान है।

परमात्मा सर्वशक्तिमान् है इस लिये वह सब कुछ कर सकता है, ऐसा नहीं समझना चाहिये। क्योंकि यदि वह ऐसा करे तो वह न्यायकारी नहीं हो सकता। वेद में तो उसे आनन्दस्वरूप बताया गया है। वह अपनी सर्वशक्तिमत्ता का दुरुपयोग नहीं कर सकता। उसे, सुशेवः,[9] 'शंकरः'[10] और 'सूपायनः, कहा गया है। अर्थात् वह परमात्मा सुखदायक कल्याण कारी और शान्ति प्रद है।

इस प्रकार जो इस जगत् का कर्ता परमात्मा है वह सृष्टि कर्ता होने के अतिरिक्त स्वयम्भू परिपूर्ण एक चेतन अपरिवर्तनशील सर्वव्यापक अनादि अनन्त सर्वज्ञ ज्ञानवान् धार्मिक दयालु न्यायकारी कर्मफलदाता सर्व शक्तिमान् और आनन्द स्वरूप है।

§अभित्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः॥ साम १।१ ११

१—अथर्व १३।४।५०, ५१

२—अथर्व १९।५२।२

३—अथर्व १९।६।१

४—अथर्व २०।३५।९

५—ऋक् १।४३।७

६—ऋक् १०।८१।५।७

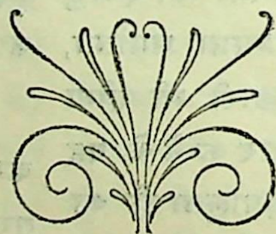
७—ऋक् १०।८१।३

८—ऋक् ८।६६।१२

९—अथर्व ६।१।२

१०—यजु १६।४१

११—ऋक् १।१।९



क्रान्ति

तोड़ दो वीरो यह दीवार ॥

गूंज उठी है गगन-गर्भ में क्रान्ति चण्डिका की हुंकार ।
अब न बांध रख सकते तुम को लाख हथकड़ी कारागार ॥ १ ॥
तुम स्वतन्त्र हो, है स्वतन्त्रता, सब का जन्म सिद्ध अधिकार ।
कौन भला फिर रख सकता है, तुम को यहां बन्द कर द्वार ॥ २ ॥
केवल अपने मस्तिष्कों को कर दो तुम स्वतन्त्र इकबार।
सभी तरह की फिर स्वतन्त्रता, तुम्हें करेगी खुद स्वीकार ॥ ३ ॥
अपने घर में आप कैद हो, अपने ही हैं पहरेदार ।
बंध कर अपने आप आप ही, मचा रहे हो हाहाकार ॥ ४ ॥
एक बार गरदन अकड़ा कर, देखो अपनी दृष्टि पसार ।
अभी झुका जाता है आकर, इन चरणों में यह संसार ॥ ५ ॥
लात मारदो छूत छात को, जात पाँत को दो फटकार ।
गल सड़ हुई रूढ़ियां भद्दी, इन सब का कर दो संहार ॥ ६ ॥
डालो कुचल प्रमाणवाद को, युक्तिवाद का ले आधार ।
अपनी शुद्ध बुद्धि से सीखो, करना स्वयं स्वतन्त्र विचार ॥ ७ ॥
शासक-शासित ऊंच नीच या, धनी मजूर आदि व्यवहार ।
इस से बढ़कर अस्वाभाविक, नहीं विश्व में अत्याचार ॥ ८ ॥
नाम धर्म का ले टट्टी की, ओट खेलते जो कि शिकार ।
अब न एक क्षण भर चलने दो, उन का यह कुत्सित व्यापार ॥ ९ ॥
तुम हो तरुण, तुम्हारे ही इन, कन्धों पर है यह सब भार ।
कातर नयनों से तुम को, ही यह जननी है रही निहार ॥ १० ॥

वागीश्वर जी विद्यालंकार

परीक्षा

(ले०—श्रीमती अंजना देवी आर्य, विशारदा हिन्दी प्रभा कर)



शीला ने कमरे में प्रवेश करते हुये कमला को पुकारा पर कमला अखबार पढ़ने में इतनी तन्मय हो रही थी कि उसे कुछ सुनाई न दिया। तब शीला ने पास आकर कमला को हिलाते हिलाते कहा—"शीला ! क्या सो गई हो।"

कमला चौंक पड़ी। उस ने सिर ऊंचा कर के कहा—"क्या है बहिन!" शीला पास बैठ गई। उस ने पूछा—"कौन सी पत्रिका है?" अखबार शीला को देते हुए कमला ने कहा—"देखो न क्या ठीक लिखा है; पर कोई ऐसा करे तो न।" शीला ने पत्रिका हाथ में से लेली वह पढ़ने लगी—समय के रंग बदल जाने के पश्चात् भी पुरुषों का अत्याचार दूर नहीं हुआ, उलटा दिन दिन बढ़ रहा है।

युवकों में हृदय-हीन दल की बढ़ती हो रही है। वह केवल धन और तन चाहते हैं! हृदय नहीं, कन्या सुन्दर हो, उस का पिता धनवान हो। प्रेम, प्रेम उन के लिये तुच्छ है, गुणों की उन्हें आवश्यकता नहीं। उन्हें मोटर चाहिये, विलायत का खर्च चाहिये। अपनी नाक सुमेरु पहाड़ की तरह लम्बी और हिमालय की तरह मोटी हो तो कोई हर्ज नहीं, परन्तु कन्या का यह दोष उस के सभी गुणों पर पानी फेर देने वाला है। वे एक साथ पांच पांच कन्याओं पर दृष्टि रखते हैं, बाज़ारी माल की तरह रूप और धन का भाव पड़ता है। विवाह के बाद पत्नी को चाहे ज़हर भी दें तो उसे भी अमृत समझ कर पान कर लेना चाहिये; मार पीट करें तो उसे पुष्पवर्षा समझनी चाहिये; कटु वचन कहें तो उन्हें प्रेम-भाव समझने चाहिये। चाहे तो पत्नी का हृदय-सिंहासन पर बिठा ले या ठुकरा दे। चाहे वासना तृप्ति का साधन माने, चाहे मन मानस की अधिष्ठात्री स्त्री को कोई अधिकार नहीं, उस का विरोध करना ही उसे नरक में पहुँचाने के लिये पर्याप्त हो जाता है। ऐसा करने पर वह 'पापिष्ठा' कहलावेगी ! पर प्रश्न यह है, क्या यह सब सहन करना उचित है? अत्याचार का सहन करना भी पाप होता है; अतः अपना कर्तव्य अवश्य पालन करना चाहिये। जो युवक ऐसा करें, उन का बायकाट करना चाहिये। आजन्म अविवाहित रहना अच्छा है, परन्तु ऐसे लोगों को दण्ड न देना महा पाप है।

शीला की मुखाकृति गम्भीर हो गई, उस ने कहा—"हां लिखा तो ठीक है।"

कृष्ण लाल जी ने कुर्सी खींचते हुए कहा—"देखो, रामेश्वर नाथ का पत्र आया है। अभी तक उस का सन्देह बना ही रहा सन्तुष्टि नहीं हुई।"

दुर्गावती ने पत्र कृष्ण लाल के हाथ से ले लिया जिस में लिखा था—

प्रिय वर,

प्रणाम।

आप ने विवाह की तिथि पूछी है। किन्तु मेरा विचार है कि मुझे एक बार फिर कन्या को देख लेने का अवसर मिलना चाहिये। यद्यपि मैं फोटो देख चुका हूँ और मेरे मित्रों ने मेरी सन्तुष्टि भी कर दी है। परन्तु मित्रों के कहने की कौन बात का उतना मूल्य नहीं, और फोटो से तो कुछ ठीक ठीक पता चला ही नहीं करता। यह ठीक है कि एक बार मैं उसे देख भी चुका हूँ। पर वह चार वर्ष पहले की बात है। तब मैं विलायत जा रहा था उन दिनों मेरे विचार कुछ दूसरी तरह के थे अब बात और है। आशा है आप जल्दी मौक़ा देंगे।

आपका

रामेश्वर

दुर्गावती ने एक लम्बी श्वांस ली। पत्र लौटाते हुए कहा—"कल युग जो है इसी लिये तो लोग बेटी का होना बुरा मानते हैं। पर मेरी शीला में कोई दोष तो है ही नहीं। हज़ारों रुपये उस की विलायत की पढ़ाई पर लगा दिये, कहीं किसी ज़रा सी बात के लिये इन्कारी कर दी तो सारा किया कराया मिट्टी में मिल जावेगा। सब कुछ जानता तो है। अब न जाने क्या बाकी रहा है। अच्छा लिख दो, मंजूर है,,।

× × ×

कृष्णालाल कानपुर के रहने वाले हैं। उन को सट्टे के काम में पिछले वर्षों खूब लाभ हुआ था। अपने रहने के लिये कानपुर में ही उत्तम बंगला बनवा रखा था। घर में किसी वस्तु की कमी नहीं थी। आप के केवल एक ही संतान है, जिस का नाम शीला है। उस की माता का नाम दुर्गावती है अपनी कन्या शीला को इन लोगों ने बड़े लाड़-प्यार से पाला है। उसे पुत्रों से भी अधिक प्यार करते हैं। वह चाहते थे कि उन की शीला का किसी ऐसे घर विवाह हो जहां उसे बहुत सुख मिले। इसी लिये कानपुर में ही सेठ किशोरीलाल के पुत्र रामेश्वरनाथ के साथ कुछ वर्षों से सगाई कर दी है। "रामेश्वरनाथ देखने में अच्छा, हृष्ट पुष्ट और सुन्दर युवक है। कानपुर में ही माता पिता की संरक्षता में उस ने बी. ए. किया था। उन्हीं दिनों लाला कृष्णलाल ने अपनी कन्या के लिये सन्देश भेजा था। रामेश्वरनाथ की इच्छा विलायत जाने की थी सेठ किशोरी लाल ने तब कृष्णलाल जी से कहा था कि यदि तुम विलायत का खर्च देदो, तो आज से यह लड़का तुम्हारा हुआ।

* * *

आज कृष्णलाल जी के बंगले में खूब सफ़ाई हो रही है। कृष्णलाल स्वयं प्रत्येक बात का निरीक्षण कर रहे हैं। अपनी ओर से वह कोई बात उठा रखना न चाहते थे। कुछ क्षणों में घर के द्वार पर एक मोटर खड़ी हो गई। मोटर से तीन पुरुष उतर कर भीतर आये। ला० कृष्ण लाल ने आगे बढ़ कर सेठ किशोरीलाल से हाथ मिलाया। सब लोग बातें करते करते ड्राईङ्ग रूम में आकर बैठ गये। आज ड्राईङ्ग रूम की प्रत्येक वस्तु आखों में चका चौंध पैदा कर रही थी। कमरा असाधारण सज धज के साथ सजाया गया था कुछ देर तक बातों का खूब ज़ोर रहा। सहसा कमरे में सन्नाटा छा गया। रामेश्वरनाथ के ठीक सामने वाला द्वार खुला। रामेश्वर ने सामने देखा—ज़री के काम की सुनहरी रंग की साड़ी पहने स्लेटी परदे को हटाती हुई शीला द्वार के पास आकर खड़ी हो गई। मानो बादलों को चीर कर चन्द्र का उदय हुआ हो। साड़ी की श्यामलता में पूर्णचन्द्रवत मूर्त्ति को देख कर रामेश्वर उन्मत हो गया। वह टक-

टकी लगा कर कुछ क्षणों तक शीला की ओर देखता रहा। वह अपने को भूल गया था। कृष्ण-लाल जी ने सन्नाटा भंग करते हुए शीला से कहा "आओ बेटी! यहां आओ।"

धीरे धीरे पांव रखती हुई शीला मेज़ के पास आई। रामेश्वर चौंक पड़ा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह स्वप्न देख रहा हो। उसी उन्मत्त दशा में एक सुन्दर कागज़ पर लिख दिया-"मुझे स्वीकार है,,।

परन्तु थोड़ी ही देर बाद उस की निराशा की सीमा न रही, जब ही लज्जामयी शीला ने सकुचाते हुए एक गुलाबी कार्ड पर यह लिख कर उस के सामने रख दिया—"मुझे स्वीकार नहीं"।

जल-चिकित्सा

ले०—पं० देवराज जी विद्यावाचस्पति

जब हम आमाशय में भोजन डालते हैं, तब यह पाचक रस के द्वारा पचने लगता है। जब तक आमाशय के गढ़े पर वर्तमान पोषक नाड़ियों के बड़े जाल का जीवनीय वैद्युतिक बल पर्याप्त बलवान् नहीं होता तब तक इस में रासायनिक परिवर्तन आरम्भ नहीं होता है। इस का परिणाम यह होता है कि अम्लता उत्पन्न हो जाती है, पश्चात् सड़ांद पैदा होने लगती है,इस से आमाशय ग्रहणी और बृहदन्त्र में क्षोभ पैदा हो जाता है। यह अस्वास्थ्यकर द्रव्य आंतों में गुजरता है। आंतों से इस द्रव्य को रसायनियां खैंच कर रक्त में डाल देती हैं। इस प्रकार यह शरीर की धातुओं (Tissues) में पहुंच जाता है। वहां यह शरीर के प्रतिकूल समझा जाकर शरीर के लिये अन्य हानि कर पदार्थ के साथ इस को बाहिर फेंकने का प्रयत्न करता है। यदि इस को बाहिर फेंकने की सामर्थ्य हुई तो छाले, फफोले, फुन्सियां, दाद आदि उभार निकल आते हैं या दस्त लग जाते हैं। इन के द्वारा शरीर का मल दूर होकर शरीर स्वस्थ होजाता है। यदि शरीर में मल को बाहिर फेंकने की सामर्थ्य न हुई अर्थात् जीवनीय शक्ति कमज़ोर हुई तो अङ्ग विकार को बिना प्राप्त हुए नहीं रहते परिणाम यह होता है कि शोथ ज्वर आदि उपद्रव प्रकट होते हैं और कभी २ सारा ढांचा ही बदल जाता है और मृत्यु हो जाती है।

पोषक नाड़ियों में वर्तमान विद्युत् शक्ति ही शरीर में रक्त सञ्चार का कारण है। यकृत् रक्त में से विषैले पदार्थ को इकट्ठा कर के जो पित्त बनाता है उसको बनाने वाली भी वही पोषक नाड़ियों की विद्युत्-शक्ति है। इसी से यकृत् को शक्ति मिलती है जिस से वह खांड या saccharine matter और रक्त की वृद्धि के लिये रक्त कण बनाता है। वृक्क में स्थित uriniferous tubes को यही शक्ति देती है कि जिस से वे नलियां रक्त में से मूत्र और अन्यविषों को खैंच लेती हैं। मान्स अस्थि आदि धातुओं को यहां से ही शक्ति मिलती है, इसी से वे अपने २ अभीष्ट पदार्थ को रक्त में से ग्रहण कर के अपना भरण पोषण करते हैं।

इन नाड़ियों की जीवनीय शक्ति या विद्युत् शक्ति को ganglionic या organic कहते हैं। यही शरीर का जीवन है। जितना ही शरीर के भिन्न २ बलों के रूप में इस शक्ति का सञ्चार होगा उतना ही शरीर की क्रियाएं स्वस्थ रूप में होंगी। विद्युत् इच्छा की प्रकाशक है। मस्तिष्क में उत्पन्न होती है। इन पोषक वात तन्तुओं में भी यही पदार्थ है। उसी से सब पोषण आदि का कार्य चलता है। यह विद्युत् शक्ति शरीर में अधिक व्यापक रूप में उत्पन्न होती है। यह विषय 'प्राणि चुम्बक' पर लिखी गई पुस्तकों में विस्तार से मिलेगा। शरीर के सौत्रिक तन्तु और चौम्बकिक सिद्धान्त की मात्रायें शरीर में अत्यधिक विस्तृत हैं। इसी लिये शरीर की चौम्बकिक शक्ति या विद्युत् शक्ति का ज्ञान रोग चिकित्सा या स्वास्थ्यरक्षा के लिये आवश्यक है। जल चिकित्सा से विद्युत् शक्ति को बलवान बना कर रोग चिकित्सा और स्वस्थ्य रक्षा की जाती है।

आमवात

यह एक व्यापी शिकायत है। मैं इसे रोग विशेष नहीं कह सकता हूं। यह पोषक अङ्गों में उत्पन्न विकारों का एक चिह्न विशेष है। यह पीड़ा, दाह और उभार का कारण है। मांस पेशियों और वात नाड़ियों के कोषों में इस का स्थान है। कोषों में जब वह द्रव नहीं रहता जो मान्स पेशियों और वात नाड़ियों को तर रख कर उन्हें गति करने में सुगमता पैदा करता है, तब आमवात उत्पन्न होता है। कोषों में यह द्रवविशेष रक्त से प्राप्त होता है। मिथ्या आहार विहार के कारण जब रक्त में से यह द्रवविशेष कोषों को नहीं प्राप्त होता और जब मान्स पेशियां तथा वात नाड़ियां सूखे कोषों में गति करने लगती हैं तब पीड़ा, दाह और शोथ उत्पन्न हो जाते हैं। कोषों की जीवनीय शक्ति नष्ट हो जाती है और तब अङ्ग अगतिशील दृढ़ हो जाता है। आमवात का कारण रक्त दुष्टि और प्राण शक्ति की हीनता है।

आमवात में चाहे वाष्प दी जाय, चाहे छींट और स्पञ्ज की पट्टियां बांधी जावें, चाहे गर्म और ठण्डे पानी से स्नान कराये जावें, कष्ट प्रद स्थान पर डूश का प्रयोग किया जाय तब तक कुछ लाभ नहीं होता जब तक जिह्वा लाल रहती है, उस पर मैल की तह चढ़ी रहती है। जिह्वा का लाल होना या उस पर मैल को तह चढ़ा होना सिद्ध करता है कि आमाशय यकृत आंतों की अन्तः श्लैष्मिक कला में चिरस्थाई शोथ है। जब तक यह शोथ दूर न हो जावे, तब तक आमवात दूर नहीं हो सकता। इस शोथ का मुख्य कारण पोषक नाडियों की प्राण शक्ति की क्षीणता है, अतः आमवात की यथार्थ चिकित्सा पोषक वात नाडियों को बलवान करना है।

गृध्रसी (Sciatica)

[Sciatic nerve] श्याटिक नर्व में उपस्थित आमवात को गृध्रसी कहते हैं। यह पीड़ा श्रोणी प्रदेश से आरम्भ होती है और नीचे ऊरू तथा जङ्घा के पीछे से हो कर पांव तक पहुंचती है। इस के कारण बहुत से व्यक्ति निकम्मे हैं। इन में से कुछ तो सर्जनों के कृत्रिम उपायों के कारण ऐसे हो गये हैं। पोषक बलों की जागृति के सिवाय और कोई तरीका नहीं है जो अङ्ग को जीवन दे सकता हो। छाले डालना, लोशन लगाना चीरा देना, खुरचना या कपिङ् करना आदिउपाय रोग को बढ़ाते हैं, शोथ को भी कम नहीं करते बढ़ाते ही हैं और जो कभी न कभी उरुसन्धि में वर्तमान उपास्थि (cartilage) को मोटा कर देते हैं और हड्डी को कप (cup) से बाहर कर देते

हैं। हड्डी जोड़ से हट कर बाहिर निकल जाती है। कई डाक्टर दर्द को कम करने के लिये मार्फिया (अफीम का सत) को सूची वेध से मान्स के अन्दर डाल देते हैं। इस से दर्द कुछ काल के लिये शान्त हो जाती है और रोगी रोग मुक्त समझ लिया जाता है। इस प्रकार प्रायः किया जाता है। यदि प्रारम्भ से ही पोषक बलों की वृद्धि की जावे, पूर्ण विश्राम दिया जाय और ठण्ड से बचाया जाय, साधारण पौष्टिक भोजन पर रक्खा जाय त्वचा को कवोष्ण जल और भाफ लगाई जाय तो आराम आ जाता है। अन्य घातक प्रयोगों को छोड़ कर प्रारम्भ से ही इन का प्रयोग करना चाहिये।

क्षय (consumption)

यह कभी न हो यदि पेट ठीक रहे या पाकस्थली में विकार उत्पन्न न हो। फुफ्फुस हज़ारों छोटी २ वायु प्रणालिकाओं से व्याप्त रहते हैं। ये नलियां भी सूक्ष्म वायु प्रणालिकाओं से ढकी रहती हैं। जिस मान्स में या जिन तन्तुओं में ये पड़ी होती हैं उस की रचना भी बहुत सूक्ष्म होती है। जहां इतनी सूक्ष्म रचना हो वहां आवश्यक है कि उस को नया बनाने के लिये जो सामान हो वह अवश्य उत्तम होना चाहिये क्योंकि यह रचना प्रतिक्षण तीव्र कार्य करती हुई शरीर के अन्य भागों की तरह टूट रही है। जिन मनुष्यों की पाचन शक्ति दुर्बल है या जिन्हें भोजन पर्याप्त नहीं मिलता अथवा जिन का भोजन तुच्छ होता है उन का रक्त अशुद्ध हो जाता है। इसी अशुद्ध रक्त से फेफड़ों की बारीक रचना बनाये जाने को होती है। प्रकृति इसे रचना के लिये लगातो है यत्न होता है, पता लगता है कि रचना इस से नहीं बन सकती। फिर इस अस्वस्थ निकम्मे पदार्थ को शरीर से बाहिर फेंकने के लिये यत्न होता है। इसी यत्न के रूप में उभार (Tubercles) और फोड़े (abscess) निकल आते हैं। इन का निकलना शरीर में से रोग को दूर करने के लिये प्रकृति की ओर से यत्न है। फेफड़े के वे भाग, जहां इस प्रकार के यत्न आरम्भ होते हैं, नष्ट हो जाते हैं। परन्तु उन नष्ट स्थानों के ऊपर एक तह आ जाती है। इस तह को Cicatrix कहते हैं। इस तह के द्वारा उभार और फोड़ों के स्थान के चारों ओर नालियों के मुख के बन्द हो जाने से हानि रुक जाती है, परन्तु साथ ही नालियों का विस्तार और वायु लेने की योग्यता कम हो जाती है। ऐसे मनुष्यों के फेफड़ों की शक्ति पहिले से कमज़ोर पड़जाती है। तो भी हज़ारों ऐसे रोगी मनुष्य स्वस्थता के साथ जीवन व्यतीत करते हैं और पूर्ण बुढ़ापे तक की उमर भोगते हैं।

कमज़ोर भोजन, हवा रहित बन्द मकानों में रहना, अत्यन्त परिश्रम, आदि के कारण अजीर्ण, रक्तजिह्वा, ज्वर, खांसी रोग हो जाते हैं। इन के होने से सूचित होता है कि वायु प्रणालिकाओं की श्लैष्मिक कला में शोथ फैल गई है। ऐसे समय छाती के ऊपर क्षार वा दाहक पदार्थ प्रयोग किये जावें तो वे त्वचा के द्वारा अन्तः प्रविष्ट हो कर शोथ को अधिक २ बढ़ा देते हैं और साथ ही फफोलों को उत्पन्न कर के जीवन शक्ति को बहा देते हैं। स्वाभाविक कमज़ोर फेफड़ों में एक बार आरम्भ हुआ वास्तविक रोग कभी २ ऐसे अस्वाभाविक उपायों से आराम भी हो जाता है। ज्योंही इस रोग के कारण उपस्थित हों तो निम्न लिखित सावधानतायें लेनी चाहियें, जिन में मुख्य २ ये हैं—वनस्पति का भोजन, स्वच्छ खुली वायु, विश्राम, जलचिकित्सा का हलका प्रयोग। जब खांसी और कफ का निकलना आरम्भ हो जावे तो समझलो कि रोग आरम्भ हो चुका है।

ऐसी अवस्था में यदि रोगी सावधान हो जावे तो रोगी नीरोग हो जाता है।

खांसी

(Bronchitis)

बड़ी या छोटी श्वास प्रणाली और वायु नलिकाओं की शोथ को खांसी कहते हैं। गले में ठण्ड लग जाना, ऊंचा और लम्बा बोलना या गाना, आमाशय की शोथ ये इस रोग के मुख्य कारण हैं। शोथ जिस समय श्वास प्रणाली के ऊपर के ही हिस्से में हो तो थोड़ी सी सावधानी से नष्ट हुई cilia वाली तह शीघ्र ही बन जाती है। यह आवरण श्वास प्रणाली के ऊपर के सिरे से लेकर छोटी वायु प्रणालिकाओं के बारीक सिरों को छोड़ कर शेष सब पर फैला होता है। ये छोटे cilia या बिन्दु लगातार हिलते रहते हैं। इतने गति शील होते हैं कि इन्हें शरीर से पृथक् कर के बाहिर किसी गर्म mucilage में रक्खा जावे तो भी गति करते रहते हैं। इन के कारण श्लैष्मिक कला में वर्तमान श्लेष्मा प्रतिक्षण हिलती रहती है, ताकि पड़ी २ सड़ न जावे और सड़ने से वात नाड़ियों तथा cellular tissue को ख़राब न करे।

श्वास प्रणाली के सिर की शोथ cilia को स्थान च्युत कर देती है। श्लेष्मा में गति होनी बन्द हो जाती है। फिर श्लेष्मा सड़ने लगती है। सड़ने से Cellular tissue और वात नाड़ियों में क्षोभ प्रारम्भ हो जाता है। फिर उस सड़ी हुई श्लेष्मा को बाहिर फेंकने के लिये यत्न आरम्भ होता है अर्थात् खांसी उठती है। यह वही यत्न है जो cilia स्वस्थ अवस्था में करता था। श्वास प्रणाली के शिखर पर का cilia ज़ोर से खांसने से बाहिर फेंक दिया जाता है। सूक्ष्म दर्शक यन्त्र से कफ़ को देखने से cilia उस में दिखाई पड़ते हैं। श्वास-प्रणाली के ऊपर के हिस्से से जो खांसी उठती है वह तभी आराम होती है जब cilia अपने स्थान में आ जाता है। इस के लिये गीला कपड़ा या गीली फलालैन एक दिन रात गले पर लपेट रखना चाहिये। इस से शोथ दूर हो जावेगी और अङ्गों को शक्ति प्राप्त करने में मदद मिलेगी।

यदि प्रारम्भिक हलकी श्वास प्रणाली की शोथ की उपेक्षा की जावे तो वह शोथ वायु नलिकाओं से नीचे उतर कर फुफ्फुस में पहुंच जाती है। तब रोग का स्वरूप भयानक हो जाता है। इस के लिये गले पर राजिका प्रलेप (mustard plaister) १०, २० मिनिट लगाना उत्तम है। रात को फलालैन का गीला ऊनी कपड़ा गले पर लपेटना चाहिये। प्रातः काल जागने पर गले और छाती को ठण्डे पानी से धोना चाहिये। छाती से नीचे तक सम्पूर्ण शरीर शीतकाल में गर्म पानी में रक्खा जावे। दुपहर से पहिले २० मिनिट तक साधारण गर्म पानी से सेक भी करना चाहिये। तौलिये से छाती को खूब मलना चाहिये। दुपहर के पश्चात् ७० अंश फा० के जल से १० मिनिट तक सीवन स्नान कराना चाहिये। पांव १०५ अंश फा० के जल में पड़े रहें। इस जल में कुछ राई का चूर्ण भी पड़ा रहे। १० दिन तक लगातार ऐसा ही किया जा सकता है। फिर प्रातः स्नान और तीसरे पहर सीवन स्नान रख कर शेष सब बन्द कर सकते हैं जब तक कफ बन्द न हो। मान्स तथा अन्य सब उत्तेजक पदार्थों का सेवन छोड़ देना चाहिये। इस प्रकार दुर्बल मनुष्य को भी तीन सप्ताह से अधिक पुरानी खांसी के आराम होने में नहीं लगते। छाती को ठण्ड न

लगने दो। ठण्ड के समय छाती पर गर्म कपड़ा रक्खो जिस से पसीना आवे।

Chronic Pulmonary consumption.

(पुरातन फुफ्फुस क्षय)

जब खांसी में कफ़ कुछ रङ्गीन, काला हरा सा आने लगे गाढ़ा २ होजावे और कभी २ रक्त की रेखा भी उस में पहिचान में आवे तो समझो कि रोग ने फुफ्फुस के शरीर पर आक्रमण कर लिया है। उस समय इसे फुफ्फुस क्षय कहते हैं। जब यह अवस्था हो और फेफड़ों से पस निकलती हो, गाठें (Tubercles) पड़ गई हों, उस समय ठंडे २ ही शरीर का उपर का आधा हिस्सा कोसे जल में भीगे हुए तौलिये से मलना चाहिये। फिर ऊपर के हिस्से को ढक कर यही क्रिया शरीर के नीचे के भाग पर करनी चाहिये। जहां पसीना आता हो वहां साबून लगा कर फिर तौलिये से मलना उत्तम है।

क्षय रोग भिन्न २ अनेक कारणों से होता है। कारणों के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये। प्रायः ठण्ड लगने से होता है, या बिना अभ्यास के गर्मी से एक दम ठण्ड में जाने से होता है, वायु के ठण्डे झोकों में बैठने से भी होजाता है, गीले कपड़े पहने हुए सोने से भी होजाता है। यदि फेफड़े पहिले ही पर्याप्त दुर्बल हों तो फेफड़ों में सीधी शोथ हो सकती है, चाहे श्वास प्रणाली में शोथ न हो और कफ़ भी बिलकुल न आता हो, सांस लेना कठिन होता है और तीव्र वेदना का अनुभव होता है।

यह ठीक है कि जो फेफड़े की बीमारी से मुक्त होते हैं अजीर्ण से पीड़ित हो जाते हैं। अजीर्ण के कारण आमाशय, आंत और यकृत की श्लैष्मिक कला में चिरस्थायी शोथ उत्पन्न हो जाती है। शरीर इसे निर्जीव भागों में फेंकने का यत्न करता है इस का परिणाम यह होता है कि फफोले, फोड़े फुन्सियां और दाद आदि निकल आते हैं। बहुत से इसी प्रकार मृत्यु से बच चुके हैं कि उन के टूटे हुए अङ्ग ने स्वस्थ अङ्ग से शोथ ग्रहण करली है। परन्तु जब शरीर शोथ को बाहर भेजने में असमर्थ होता है तब जोवन शक्ति देने वाले अङ्गों में से जो सब से निर्बल होता है वही आक्रान्त हो जाता है और रोग भयानक रूप में प्रकट होता है। जिस मनुष्य को माता पिता से ही कमज़ोर फेफड़े मिले हैं उसे क्षय की बहुत सम्भावना रहती है। दरिद्र भोजन, दूषित वायु वाले स्थानों में निवास, अतिश्रम आदि कारण अजीर्ण, रक्तजिह्वा, ज्वर, कास (श्लैष्मिक कला की शोथ का वायु प्रणालिकाओं में प्रसार) को उत्पन्न कर देते हैं।

उन सब अवस्थाओं में जिन में शोथ एकदम आरम्भ हो जाती है हमारी लघु जल चिकित्सा अद्भुत प्रभाव दिखलाती है। उस समय जितना गर्म पानी सहारा जासके उतने गर्म पानी में कपड़ा भिगो भिगो कर शोथ युक्त स्थान पर आध घंटे तक सेक करना चाहिये। फिर गर्म पानी में तौलिया भिगो कर निचोड़ कर पौण घण्टा तक लपेट दे। फिर एक मिनट तक ८६ अंश फा. के जल में शरीर को खूब मलते हुए स्नान करे यदि दर्द फिर भी जारी रहे तो गर्म पानी से फिर सेक करे और गर्म पानी में भीगा निचोड़ा कपड़ा लपेटे जब तक दर्द शान्त न हो जाय। फिर छाती पर गर्म कपड़ा लपेट दे। एक सप्ताह से कई सप्ताह तक गर्म कपड़ा रात दिन पहिनाये रखना चाहिये। जिस दिन दर्द बिलकुल शान्त हो जाय उस से अगले दिन प्रातः काल साबुन मलकर और गीले तौलिये से शरीर को रगड़ कर स्नान कराना चाहिये। कई

दिनों तक बिलकुल शान्त होकर बिस्तर पर लेटा रहे। यदि दर्द फिर शुरू हो तो फिर वही गर्म पानी से सेक और तौलिये से छाती को लपेटने की प्रक्रिया करे। जब सांस लेने में दर्द बिलकुल शान्त हो जावे तो प्रातः साधारण जल के द्वारा साबुन मलकर शरीर को तौलिये से मलते हुए स्नान करावे, गर्म पानी में खड़ा रक्खे, गीला कपड़ा लपेटे और बिलकुल शान्त रहे। तीसरे पहर ८६ अंश फा० जल से सीवन स्नान कराना चाहिये। इस समय छाती पर गर्म पट्टी रक्खे। रात को सोने से पहिले १०५ अंश फा० के राई के जल में ३ मिनट तक पांव रक्खे। फिर ठण्डे भीगे कपड़े से पांव पूंछ डाले। फिर रूई की जुराब पहिने। जुराब के पञ्जे साधारण जल में भीगे होने चाहियें और उस पर भेड़ की शुष्क ऊन होनी चाहिये।

मांस तथा सब उत्तेजक पदार्थों का सेवन छोड़दे, काफ़ी और मसाले भी नहीं लेने चाहियें। दूध साधारण पेय वस्तु के तौर पर नहीं लेना चाहिये क्योंकि यह भारी है। प्रथम दिन थोड़ा और हलका भोजन लेना चाहिये।

जब मनुष्य स्वस्थ हो जावे तब भी लगभग ठण्डा पानी बहाता हुआ कपड़ा लपेटना, गर्म गद्दे पर खड़ा होना, गर्म जल में खड़ा होना, छाती पर गर्म कपड़ा रखना, गीला कपड़ा लपेटा हो तो छाती पर सूखा कपड़ा रखना, यह प्रक्रिया प्रातः काल जागने पर करनी चाहिये, ८५ अंश के जल से सीवन स्नान करना चाहिये। तीसरे पहर या सायंकाल गर्म गद्दा निकाल देना चाहिये। जबतक रक्तसञ्चार बिलकुल ठीक न हो जावे तब तक गर्म या शीत उपचारों से रक्तसञ्चार को उत्तेजित न करना चाहिये। जब शोथ बढ़ रही हो तब स्वेदन जितना गर्म हो उतना अच्छा है, परन्तु जब वेदना शान्त हो तब ऐसा न करे क्योंकि तब ऐसा करना कमज़ोर कर देगा और क्षोभ उत्पन्न करेगा। ठण्ड में जाना हो तो श्वास यन्त्र (Respirator) लेकर जावे। सोने का कमरा ठण्डा हो तो वहां भी यन्त्र साथ रक्खे।

फेफड़ों की शोथ को शान्त करना बहुत कठिन और भयानक काम है। इस का कारण यह नहीं कि फेफड़े में बारीक नलिकाओं का समूह है, परन्तु फेफ़ड़े चूंकि निरन्तर गतिशील रहते हैं और लगातार रक्त को ओषजन देते रहते हैं तथा गंदी हवा को बाहर फेंकते रहते हैं।

शोथ कैसे पैदा होती है

शरीर में शिराएं अशुद्ध रक्त को शरीर में से लेकर हृदय में पहुंचाती हैं और धमनियां हृदय से शुद्ध रक्त को लेकर शरीर में पहुँचाती हैं। इन रक्तवाहिनी नाड़ियों के साथ इन्हें गति देने के लिये मान्स पेशियां लगी रहती हैं। मान्स पेशियों में वातनाडियों के कारण संकोच विस्तार की गति होती रहती है। उस गति के कारण शिराओं में रक्त सञ्चार होता रहता है। वात नाडियों में जिन केन्द्रों से प्राण (विद्युत शक्ति) का सञ्चार होता है। उन केन्द्रों से आती हुई प्राण शक्ति थोड़ी भी न्यून हो जावे तो रक्त की गति मन्द पड़ जाती है और शिराओं में रक्त स्थिर होजाता है हृदय में नहीं पहुंचता। स्थिर रक्त में सञ्चित हुए मलों को निकालने का भार फेफड़े, जिगर, गुर्दे, ग्रन्थियां, और त्वचा आदि पर विशेष पड़ जाता है। इस के प्रति अति श्रम के कारण ये अङ्ग रोगी हो जाते हैं और सम्पूर्ण शरीर विषैला होजाता है। विष के कारण शरीर टूटने लगता है और मृत्यु उपस्थित होती है। जहां २ यह विष इकट्ठी होती है वहां २ शोथ उत्पन्न हो जाती है।

इस शोथ का मूल कारण पोषक वात नाड़ियों की जीवन शक्ति का कम हो जाना है अतः तीव्र या चिरस्थाई शोथ को दूर करने के लिये पोषक वात नाड़ियों में बल पैदा करना चाहिये। इस के लिये यदि वेदना तीव्र हो तो उष्णस्वेद करना चाहिये और उष्ण गद्दे पर चुप चाप लिटाना चाहिये। जब कुछ आराम मालूम हो तो गर्म पानी में भीगा निचोड़ा कपड़ा रोगी के उदर पर लपेट दें। ऊपर से गर्म कम्बल उढ़ादें। आध घण्टे तक इसी प्रकार पड़े रहने दें। फिर लपेटे कपड़े को हटा दें, साधारण पानी में कपड़ा भिगो कर उदर को खूब मलें या ७५ अंश फा० जल में १ मिनिट तक खूब मलते हुए स्नान करावें। इतने पर भी यदि वेदना शान्त न हो तो फिर उष्ण स्वेद की प्रक्रिया करें और गर्म पानी में भीगा कपड़ा उदर पर लपेटें जब तक दर्द शान्त न हों। ऐसा करने से शोथ अवश्य बैठ जावेगी। जब दर्द शान्त हो जाती है तब बन्धन खुल जाते हैं, रक्त सञ्चार होने लगता है, भूख लगती है।

आमाशय की शिकायतें

आमाशय की शिकायतों के अनेक कारण होते हैं। यदि उन कारणों का ठीक ज्ञान हो जाय तो चिकित्सा में अशुद्धियां न हुआ करें। मुख्य कारण दिमाग से अत्यधिक काम लेना है। दिमाग से अत्यधिक काम लेने में, यह जीवनीय शक्ति। (प्राण शक्ति वा विद्युत् शक्ति) जो आमाशय में उत्पन्न भोजन के रस में रासायनिक परिवर्तन विशेष उत्पन्न कर रही है, अपने केन्द्र से दिमाग़ की ओर खिच जाती है। इस का परिणाम यह होता है कि अम्लता उत्पन्न हो जाती है। आमाशय में बने हुए रस में उत्पन्न अम्लता आमाशय और ग्रहणी के अन्तरावरण को क्षुब्ध कर देती है। यहां से यह अम्लता आन्तों में जाती है। आंतों से यह रक्त में प्रविष्ट होती है। यह विकृत रस विकृत रक्त को उत्पन्न करता है और उस विकृत रक्त से शरीर के तन्तु विकृत बनते हैं। विकृत रक्त शरीर में चक्कर लगाता हुआ सूक्ष्म वात संस्थानिक सूक्ष्म तन्तुओं के साथ सम्बद्ध होता है। इस सम्बन्ध से वात नाड़ियां क्षुब्ध हो जाती हैं और उन की शक्ति मारी जाती है, क्योंकि उनके आश्रय के लिये स्वस्थ पदार्थ प्राप्त नहीं होता है।

जब मनुष्यों के पेट बिगड़ जाते हैं तब वे उन्हें ठीक करने के लिये साधारणतया औषधियों का सेवन करते हैं। औषध सेवन से तात्कालिक आराम मिल जाता है। औषध आमाशय को कार्य करने के लिये बाधित कर के शिकायत अधिक बढ़ा देते हैं। आमाशय को अधिक उत्तेजित करने के दुष्परिणाम रूप में शिकायत अधिक बढ़ जाती है। उदाहरण के लिये—जब अम्लता उत्पन्न हो जाती है तब क्षार, सोडा, मैग्नीशिया आदि का सेवनरूप उपाय किये जाते हैं कि अम्लता दूर हो जावे। जहां तक आमाशय के उस समय के पदार्थों के साथ सम्बन्ध है अम्लता को वे क्षार उदासीन कर के शान्त कर देते हैं, परन्तु चूंकि सम्पूर्ण क्षार जीवन शक्ति या वात नाड़ियों की विद्युत् शक्ति को क्षीण करते हैं, अतः आराम क्षणिक होता है और तकलीफ़ अधिक स्थिर हो जाती है और अगली बार जब भोजन आमाशय में लिया जाता है तब यह अनुभव में आती है। इस प्रकार आमाशय और ग्रहणी का चिरस्थाई रोग प्रायः उत्पन्न हो जाता है। मनुष्य सोडे के लगातार प्रयोग के बिना नहीं रह सकता है। सोडा निरन्तर प्रयोग करते २ कुछ समय के पश्चात् आराम देना बन्द कर देता है। तकलीफ़ अत्यन्त दीर्घ काल

तक के लिये स्थिर हो जाती है। अन्त को मृत्यु ही रोगी को दुःख से छुड़ाती है।

स्मैड्ले कहता है कि जब कभी मुझे अम्लता उत्पन्न होती है जो कि अतिश्रम के कारण होती है तब मैं विश्राम के सिवाय और कोई प्रतिकार नहीं करता हूँ। वह कहता है कि मैं साधारण भोजन लेता रहता हूँ। भोजन में किसी उत्तेजक पदार्थ चटनी, चाट, मसाले रायी, मिर्च, या Pastry आदि का प्रयोग नहीं करता हूं। दिमाग़ को पूर्ण विश्राम देता हूँ जो जीवन शक्ति दिमाग ने पोषक नाड़ियों से खैंची है उसे लौटाता रहता हूं। बहुत से मनुष्य बेचैन और चिन्तित हो जाते हैं यदि उन के आमाशय में अम्लता उत्पन्न हो जाय। वे इस को लेकर कभी आराम नहीं लेते हैं। पहले एक इलाज करते हैं और फिर दूसरा। अब सोडा लिया तो फिर ब्रान्डी या अन्य कोई उत्तेजक पदार्थ। इस प्रकार लेते ही रहते हैं जब तक कि श्लैष्मिक कला की चिरस्थाई शोथ वास्तविक रूप में प्रारम्भ न हो जावे। मैं अम्लता से कष्ट पाता रहता हूं जब तक यह विश्राम और भोजन से दूर न चली जावे। यदि कई दिन लगातार लग जावें तो भी कोई क्षति नहीं होती। अम्लता को दूर करने के यत्न, जिन में प्राकृतिक उपायों द्वारा जीवनीय शक्ति को बढ़ाने की अपेक्षा अन्य उपाय अवलम्बन किये जाते हैं, वातिक क्षोभ को बढ़ाते हैं।

तमाखू और अफ़ीम आमाशय रोग के बड़े सफल कारण हैं। ये दोनों जीवन शक्ति का ह्रास करते हैं, अम्लता और आध्मान उत्पन्न करते हैं। विनाशक आदतों के होने से तब तक दूर नहीं होते जब तक वे आमाशय और वात नाड़ियों को आगे के लिये बिल्कुल निकम्मा नहीं कर छोड़ते। आमाशय को आवृत रखने वाली श्लैष्मिक कला प्रथम आहत होती है। इस के आहत होने से जिह्वा लाल और मल से लदी हुई हो जाती है। फिर वह शोथ, निस्सन्देह, वात नाड़ियों में फैल जाती है और इस के कारण जिह्वा श्वेत हो जाती है। सहानुभूति के कारण दिमाग़ भी बचता नहीं है। आमाशय का आवरण करने वाली श्लैष्मिक कला ग्रहणी और आंतों में भी गई होती है, पित्त वाहिनी नाली में से गुज़रती हुई ऊपर यकृत में पहुंची होती है, और पैङ्क्रियास में भी जाती है। ये सब आपस में सम्बद्ध होने से आमाशय की श्लैष्मिक कला में विद्यमान शोथ इन में भी सञ्चार कर जाती है। यदि मनुष्य का शरीर मज़बूत हो तो बिना किसी प्रकार की बाधा पहुंचाये दीर्घ काल तक बढ़ती रहती है। परन्तु किसी दिन यदि अधिक भोजन किया, या उत्तेजक पदार्थ अधिक खा लिये, या ठण्ड का तीव्र आघात हुआ तो सब गाड़ी की गाड़ी फुंक जाती है और सम्पूर्ण शोथ सम्बन्धी कार्य किसी निर्बलतम अङ्ग में जमा हो जाता है चाहे वह अङ्ग फेफड़े हों, चाहे यकृत् हो, आमाशय वा आंतें हों। ऐसे समयों में रक्त मोक्षण, छाले डालना, और कैलोमल प्रभृति विरेचन तत्काल और तीव्रता से प्रयोग में लाये जाते हैं कि किसी प्रकार शोथ कम हो जावे परन्तु इस के साथ जीवन का बल और रक्तगत जीवनीय शक्ति इतनी कम हो जाती है कि फिर वह प्रायः कभी पूर्वावस्था को प्राप्त नहीं होती। उष्ण जल से स्वेद, शरीर को लपेटना, साधारण भोजन और विश्राम शायद ही कभी पूर्ण इलाज न करते हों और रोगी को बिना हानि के न करते हों।

जब किसी मनुष्य की जिह्वा असाधारण लाल, फटी हुई, दाह युक्त हो तब समझना चाहिये कि जीवन ख़तरे में है। यदि विश्राम और साधारण

इलाज किया जाय तो बिना कोई हानि उठाये कारण दूर किया जा सकता है। परन्तु उन सब अवस्थाओं में जिन में जिह्वा की यह अवस्था होने दी जाती है सप्ताहों के इलाज से कुछ नहीं होता किन्तु इलाज में महीने लग जाते हैं।

मैल चढ़ी हुई शोथ युक्त जिह्वा बतलाती है कि रक्त गन्दा है।

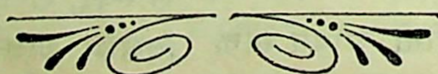
बदबूदार पदार्थ फेफड़ों से आता है आमाशय से नहीं। जब कोई जिह्वा हमेशां ही मैल से परिप्लुत रहे तब शीत के तीव्र आघात से टाइफ़स ज्वर उत्पन्न हो सकता है। जिह्वा की मलिन अवस्था में तीव्र विरेचन का प्रयोग अवस्था को दस गुणा बढ़ा देता है। गर्म और ठण्डे पानी में भीगी चद्दरों से त्वचा को उत्तेजित करना, तुषार स्नान, शीत जल स्नान या पानी से भरी या भीगी चद्दर का लपेटना, प्रति दिन ५, ६ या अधिक गिलास ठण्डे पानी के होठों से सिप करते हुए पीना, उत्तेजक पदार्थ, चाय और सब से अधिक मांस का त्याग करना, रोगी के बल के अनुसार जल चिकित्सा की राशि नियत करना, नेचर को कार्य करने देना इस लिये कि दिन में अधिक जल के प्रयोग के द्वारा त्वचा और सम्पूर्ण शरीर की अधिक उत्तेजना से कोई हानि उत्पन्न न हो जाय, यह उचित उपाय है। यह ध्यान रखना चाहिये कि शरीर को अधिक स्नान कराने से त्वचा से बहुत अधिक मल के निकल जाने से शरीर का बल, किसी प्रकार घातक परिणाम को दिखलाता हुआ, कम हो जाय।

आमाशय के रोग अनेक विभिन्न कारणों होते हैं। कारणों को देख कर चिकित्सा कर चाहिये। बिलकुल एक ही चिकित्सा सर्वत्र नहीं हो सकती है।

आध्मान (Flatulency)

भोजन के परिपाक काल में रासायनिक क्रि द्वारा उत्पन्न गैसों के कारण आमाशय के जाने को आध्मान कहते हैं। आध्मान हो जावे लोग ब्रान्डी लेते हैं, तमाखू पीते हैं, और उत्तेजक पान पीते हैं। ये सब उन कारणों को गुणा बढ़ा देते हैं जिन से रोग हुआ होता है।

प्रारम्भ २ में पोषक घात नाड़ियों की ज़ोरी के कारण आध्मान होता है। पहिले अम्ल उत्पन्न होती है और फिर उफान उठता है आमाशय और आन्तों में गैस उत्पन्न होती है मज़बूत स्वस्थ मनुष्यों को आध्मान नहीं होता जिन को यह हो जावे उन्हें धैर्य रखना चाहिये उन को चाहिये कि उचित भोजन करें और विश्र लें। हरे शाक, उत्तेजक पदार्थ, छोड़ दें जब आमाशय अधिक शक्ति सम्पन्न होकर कार्य प्रारम्भ न करे। तब आध्मान दूर हो जावेगा। अन्य कि प्रकार से यह आराम न होगा।



सरिते !

(ले०—कुमारी पुरुषार्थवती आर्य)

सजनि ! कहां से बही आ रही,
चली किधर—किस ओर ।
किस के लिये मचा है हिय में,
यह आन्दोलन-घोर ॥ १ ॥

कितने ही सूने पन का कर,
डाला है अवसान ।
अगणित-हृदयों में छेड़ी है,
मूक व्यथा, अन जान ॥ २ ॥

बिछा हुआ प्रकृति का अञ्चल,
तेरा स्वागत-सार ।
चूम २ कर वृक्ष झूमते,
ले २ निज उपहार ॥ ३ ॥

सतत तेरे मन-रंजन को,
पक्षी करते कल्लोल ।
हंसाने को तुझे सदा ही,
बोलें मीठे बोल ॥ ४ ॥

तारावलियों के दीपक,
धीरे २ बुझ जाते ।
स्नेह-शून्य हो कर मानो,
रह जाते, पथ दिखलाते ॥ ५ ॥

नीरव-कुञ्ज हुए मुखरित सुन,
तव निनाद-गम्भीर ।
मतवाली-प्यासें पी तुम को,
होतीं अधिक-अधीर ॥ ६ ॥

कितने निर्झर दिखा चुके, तुम-
—को अपना हिय, चीर ।
किन्तु, न भरता उन से तेरा,
शोक-उदधि—गम्भीर ॥ ७ ॥

किस के लिये सतत विहाग यह
यह अनन्त-सा रोदन ।
नीरस-प्रान्तों में बखेरती हो,
अपना भीगा-मन ॥ ८ ॥

पीड़ा में क्रीड़ा करती हो,
लुटे हुये-से भाव ।
किस अतीत से सीख लिये हैं,
यह सोने-से चाव ॥ ९ ॥

क्या आगे बढ़ कर पाओगी,
अपना चिर आराध्य ?
चलो, चलें मिल कर तव सरिते,
मिटे हृदय की साध ॥ १० ॥

निकारगुआ में साम्राज्यवादी अमेरिका

(लेखक— ञ, त्र, ज्ञ,)

यदि सब से पहिले 'स्वतन्त्रता' 'समानता और 'भ्रातृभाव' का जय घोष फ्रांसने किया है तो सब से पहले उन का अमल में लाने वाला संयुक्त राज्य अमेरिका है। वह सब को समान देखना चाहता है—स्वात्मनिर्णय के सिद्धान्त को मानता है। दासता को दूर करता है। पर वही अमेरिका आज एक कट्टर साम्राज्यवादी राष्ट्र बना हुआ है। इंग्लैण्ड की तरह उस की महत्वाकांक्षाएँ मनुष्यता का विरोध कर रही हैं। आज अमेरिका सारे संसार का साहुकार है। उसने संसार में आर्थिक साम्राज्य की स्थापना का श्री गणेश कर दिया है। मध्य और दक्षिणी अमेरिकन राष्ट्रों में तो उसका आर्थिक प्रभुत्व है ही। इन देशों में लगाई हुई पूंजी और अमेरिकन नागरिकों की रक्षा के नाम पर, स्वतन्त्रता का पुजारी अमेरीका उन देशों में सेनाएं भेज रहा है। इस प्रकार के हत भाग्य देशों में से निकारगुआ भी एक है। इस का शासन अमेरिकन सैनिकों के द्वारा होता है। अन्य साम्राज्यवादियों की तरह अमेरिकन भी यही रट्ट लगाते हैं कि हम तो उस देश की भलाई के लिए ही यह कष्ट उठा रहे हैं। कहीं निर्वाचन में गड़बड़ न हो, लोगों पर दबाव डाल कर वोट न लिए जांय— इसी लिए हम निकारगुआ में अपनी शक्ति का अपव्यय कर रहे हैं। पर वास्तविक बात तो यह है कि अमेरिका के निकारगुआ में विशेष स्वार्थ हैं जिन का उल्लेख हम आगे करेंगे।

मध्य अमेरिका में निकारगुआ एक छोटा सा प्रदेश है। १९वी. सदी के उत्तरार्ध में अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन इस के सम्बन्ध में झगड़ते रहे हैं। यदि निकारगुआ के नकशे पर दृष्टि पात किया जाय तो इस लड़ाई का कारण पता लग जायगा। निकारगुआ में सेन जौन नदी है। वह निकारगुआ की खाड़ी में गिरती है। यदि यहां एक नहर खोदी जाय तो प्रशान्त और अटलान्टिक महासागर मिल जाएंगे और व्यापार का मार्ग बहुत सस्ता हो जायगा। उस समय पनामा की नहर न थी, वह महा युद्ध शुरू होने के बाद ही खुली है। सब से पूर्व इस बात पर अंगरेजों का ध्यान गया और इसे हथियाने की कोशिश करने लगे।

१७२० में अंगरेज़ों ने मध्य अमेरिका में पैर पसारने शुरू कर दिए। मौस्किटो के किनारे पर अपना प्रभाव जमा लिया और उस के शासक की जमाइका के अंगरेजी-शासक द्वारा रक्षा की जाने लगी। धीरे धीरे उन्होंने अपनी सेना को मौस्किटो में पहुँचा दिया और वहां पर उत्पन्न होने वाली लकड़ी की लूट भी शुरू कर दी। १७८३ की वार्सेल की सन्धि के अनुसार होण्डुरस को छोड़ कर मध्य अमेरिका के और सब प्रदेश अंगरेजों को छोड़ने पड़े। अब स्पेन ही एकाधिकारी बन बैठा। पर मध्य अमेरिका की रियासतों ने एक संघ बनाया और स्पेन को भगा दिया। पर संघ बहुत देर तक स्थिर न रह सका। उस में मतभेद उत्पन्न हो गए। इंग्लैण्ड तो मौके की ताक में था ही, उस ने भी धन और शस्त्रों की सहायता से एक दूसरे को लड़वाया। अब उस के लिए क्षेत्र खाली था। होण्डुरस ग्वौटे मेला और रौटाने भी मिला दिए॥

उसने संयुक्त राज्य को बता दिया कि ज़ोनडेल नोर्ट पर अंगरेज़ लोग इस लिए अधिकार कर रहे हैं कि भावी में जो नहर बननी है, उस का प्रभुत्व अंगरेजों के हाथ में रहे। अमेरिकन लोग इतने मूर्ख नहीं थे कि अपने क्षेत्र में किसी को टांग पसारने दें। उन्होंने निकारगुआ को सहायता दी और अंगरेज़ों के मनसूबे पूरे न होने दिए। १८४९ में एक अंगरेज-कम्पनी ने निकारगुआ की सरकार से नहर बनाने के लिए विशेषाधिकार मांगे। पर कम्पनी असफल हुई; हां अमेरिकन कम्पनी को अधिकार मिल गए। अमेरिकन लोग विशेषाधिकार मांग किसी के दिल में सन्देह नहीं पैदा करना चाहते थे। उन्होंने कहा कि इस कैनाल का वे ही उपयोग कर सकेंगे जो कि निकारगुआ के स्वामित्व को मानें। जो राष्ट्र इस को न माने उसका कोई हक़ नहीं था कि वह नहर का उपयोग करे। यह सब ब्रिटेन का बायकाट करने के लिए किया गया था। इस पर अंगरेज़ों ने शोर मचाया और यह निर्णय हुआ कि अमेरिका और ब्रिटेन दोनों में से कोई भी इस प्रदेश पर अपना अधिकार नहीं करेगा और न ही नहर पर किसी को विशेषाधिकार मिलेगा।

इसके दस वर्ष बाद फिर एक सन्धि हुई। इस में अंगरेज़ों की क्षति हुई। उन्हें मौस्किटो के किनारे की संरक्षकता से हाथ धोना पड़ा और होण्डुरस तथा जोटेमेला को खाली करना पड़ा। अब ग्रेटाउन—शैन जौन डेल नोर्ट—भी निकारगुआ के हाथ में चला गया। इस समय अमेरिका की शक्ति बढ़ रही थी और ब्रिटेन क्रिमियन युद्ध में लगा हुआ था इस लिए उसे ये शर्तें मान लेनी पड़ीं। इस प्रकार अशान्त महासागर से अंगरेजों का अधिकार कम कर दिया गया। अब अमेरिका ने २० वर्ष तक आराम लिया और कोई हस्तक्षेप नहीं किया। ब्रिटेन और निकारगुआ का मौस्किटो के किनारे पर झगड़ा हो रहा था। आस्ट्रिया के सम्राट् का फैसला ब्रिटेन के पक्ष में हुआ। अब वह फिर मौस्किटो के चीफ के नाम पर अंगरेजों को काम करने का मौका मिल गया। पर अमेरिका इस बात को कब सह सकता था। इस के साथ ही एक और महत्व पूर्ण घटना हो गई। अंगरेजो कम्पनी ने लैस्सेप के द्वारा पनामा की नहर बनवाने का प्रबन्ध किया, अब तो अमेरिका का पारा आसमान तक चढ़ गया। जिस प्रकार स्वेज की नहर का किसी दूसरे के हाथों जाना अंगरेजों के लिए घातक है, उसी प्रकार पनामा की नहर का भी दूसरों के हाथ में जाना अमेरिका के लिए घातक था। वशिङ्गटन और लण्डन में खूब चिट्ठी पत्री हुई। अमेरिका को पूर्ण विश्वास था कि यदि कोई देश उसके क्षेत्र में उस से लड़ेगा तो अमेरिका की जीत होगी। अन्त में १९०० में सन्धि हुई और पनामा की नहर पर अमेरिका का पूर्ण अधिपत्य स्वीकृत कर लिया गया।

लैस्सप इस नहर को बनाने में असफल हो गया और अमेरिका ने इसे बनाया। यद्यपि इससे बहुत लाभ हुए हैं पर इस का उद्देश्य युद्ध सम्बन्धी था। मध्य और दक्षिणी अमेरिका में संयुक्त राज्य अपनी मनमानी करता है। संयुक्त राज्य अपने हित के लिए ही सब देशों को अपने प्रभाव में किए हुए है। निकारगुआ के सम्बन्ध में बोलते हुए भूतपूर्व राष्ट्रपति कूलिज ने कहा था—हम अमेरिकन नागरिकों के जन, धन की रक्षा के लिए प्रत्येक स्टैप लेने को तैयार हैं। पूंजीपति अपने धन की रक्षा के लिए अपनी सरकार की सेना की सदा सहायता पाते रहे हैं। जिन नागरिकों की रक्षा के लिए

अमेरिका प्रत्येक स्टैप लेने के लिए उद्यत है, उन की संख्या १५० हैं। वास्तव में मुख्य बातें—जिन को लक्ष कर वह अपनी नीति का उपयोग करता है—तेल, उन देशों में लगाई हुई पूंजी, व्यापार, प्रैस्टिज, और भावी कैनाल हैं। यद्यपि अमेरिका को पनामा की नहर से बहुत लाभ पहुंच चुका है, पर यह जिस उद्देश्य के लिए बनाई गई थी, उसे वह पूर्ण नहीं करती। विशेषज्ञों ने उसे युद्ध के लिए अनुपयुक्त बताया है। उस में एक से अधिक जहाज नहीं जा सकते और न ही कोई रक्षा का प्रबन्ध है। इस दृष्टि को लक्ष्य में रख कर वह निकारगुआ पर अधिकार जमाए हुए है और यदि यह भावी नहर उसके हाथ न रहे तो उसके स्वार्थों के लिए प्रजातन्त्र अमेरिका निकारगुआ को पददलित कर रहा है।

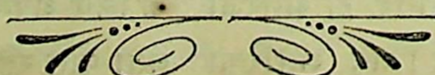
१९०९ से लेकर निकारगुआ में ३ क्रान्तियां हो चुकी हैं। १५ वर्ष से अमेरिकनों का सैनिक शासन है। अमन, कानून और सभ्यता के नाम पर यह अभिनय किया जा रहा है। सिर्फ निकारगुआ ही अमेरिकन साम्राज्यवादियों के प्रभुत्व में नहीं आया अपितु अन्य मध्य और दक्षिण अमेरिका के प्रदेश भी अपनी फूट का मजा चख रहे हैं। अब वे लोग संगठित हो कर सामान्य शत्रु-संयुक्त राज्य-से बदला लेना चाहते हैं।

१९१२ से अमेरिका ने निकारगुआ के राजस्व पर अपना अधिकार कर लिया है। डिआज़ के नेतृत्व में दकियानूसी लोगों ने निकारगुआ को अमेरिकन पूंजीपतियों के हाथ बेच डाला और उन की कृपा पर, उन की जूठन पर मोटे होते रहे। इस के बाद मोंकाडा भी अमेरिकनों के पक्ष में चला गया। इस का बहुत ही अधिक नैतिक पतन हो गया और डिआज़ से भी अधिक यह अमेरिकनों का टूल बन गया पहले तो इस का विरोध होता रहा पर पीछे से अन्य उदार दल वाले भी इस के पक्ष में आ गए क्यों कि वे दृढ़ नहीं थे। सकासा ने अमेरिका के विरुद्ध लड़ाई की। मोंकाडा को सकासा की तरफ़ से लड़ने के लिए हथियार मिले पर वह कूलिज को नाराज़ नहीं कर सकता था। अन्त में सकासा भी अमेरिकन शक्ति के सामने घबरा गया और उसने लड़ाई छोड़ दी। अब एक, केवल एक ही माता का सच्चा सपूत रह गया है जो कि अपने सुख दुख की पर्वाह न करता हुआ, जंगलों में भटकता हुआ, अमेरिकन शक्ति को समय समय पर पछाड़ देता है—वह है सेना पति औगस्टो कैलडेस सिण्डिनो।

कोई भी राष्ट्र तब तक सुशिक्षित नहीं हो सकता, जब तक कि वह स्वयं शासन करने के योग्य न हो। मैकौले

सरकार न तर्क है और न वाक् चातुर्य-यह शक्ति है। आग की तरह यह खतरनाक सेवक और भंयकर स्वामी है। इसे एक क्षण के लिए भी स्वच्छन्द नहीं होने देना चाहिए। वाशिंगटन

स्वतन्त्रता की लता को समय समय पर देशभक्तों और अत्याचारियों के खून से सींचते रहना चाहिए। यह इस का स्वाभाविक खाद है। जेफरसन





१. जलचिकित्सा

ज्योति के पाठकों को विदित है कि कई मास से ज्योति में पं० देवराज जी विद्या वाचस्पति की अप्रकाशित पुस्तक 'जल चिकित्सा' प्रकाशित की जा रही है। भारत वर्ष में एलोपैथिक' आयुर्वेदिक तथा यूनानी चिकित्सा प्रायः प्रयोग में आ रही है। परन्तु कुछ वर्षों से जल चिकित्सा सम्बन्धी प्रयोगों का प्रचार भी जनता में धीरे २ बढ़ रहा है। लोग गरीबी के कारण दवाई खरीदने में असमर्थ हो गये हैं। चिकित्सा शास्त्र में निपुणता लाभ किये बिना ही, चिकित्सा करने वाले बहुत से पैदा हो गये हैं और बढ़ते जा रहे हैं। गरीब भारतवासी रोगों तथा इन चिकित्सकों—दोनों से ही तङ्ग हैं। इसी लिये बहुत से सज्जनों तथा देश के हित चिंतकों का ध्यान गरीब प्रजा के दुखों की ओर खिचा है। इसी का परीणाम यह हुआ है कि प्राकृतिक भोजन और प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति का प्रचार देश में हो चला है। लोगों में जहां इन पद्धतियों से शारीरिक, आर्थिक आदि अनेक प्रकार के लाभ होंगे, वहां संयम और तपस्या के जीवन से अनेक आत्मिक लाभ भी होंगे। देश की स्वतन्त्रता के युद्ध में तपस्वी और संयमी जीवनों की बहुत आवश्यता है। अनेक प्रकार के स्वादु और रसीले भोजन त्याग कर कच्चे भोजन का अहार निस्सन्देह परमात्मा की प्रेम भरी गोद का आनन्द दिलाता है। जल चिकित्सा के उपासकों के लिये प्राकृतिक भोजन का सेवी होना बहुत आवश्यक है।

जल चिकित्सा बहुत प्राचीन है। वेद में 'जल ही सब भेषज (औषध) है' ऐसा स्पष्ट लिखा है। अवलोकन करने से पता लगा है कि ईसासे भी ... पूर्व हिपोक्रटस के समय जल चिकित्सा का प्रचार था। आयुर्वेद में जल और उस के प्रयोगों की महिमा वर्जित है। यह जल चिकित्सा पद्धति हमारे देश में बहुत काल पूर्व से लुप्त प्राय सी हो रही थी। पाश्चात्य वैज्ञानिकों के प्रभाव से अब इस का फिर प्रचार होना आरम्भ हो गया है। प्रायः ऐसा समझा जाता है कि जो मनुष्य वाष्प स्नान, कटिस्नान, और मेहन स्नान करता और कराता हो वह सम्पूर्ण जल चिकित्सा को जानता है और समस्त रोगों का इलाज कर और करा सकता है। परन्तु ऐसा समझना भूल है। जल चिकित्सा बड़ी विस्तृत है। एक २ रोग के लिये जल के प्रयोग की विधि पृथक् २ जाननी आवश्यक है। बिना

ऐसा जाने जल के प्रयोग से रोगी और चिकित्सक दोनों ही भारी हानि उठाते हैं।

हमें बड़ा हर्ष है कि पं० देवराज जी विद्यावाचस्पति ने एक २ रोग की पृथक् २ चिकित्सा पद्धति का वर्णन किया है। यह पुस्तक लोगों का बड़ा उपकार करेगी। पुस्तक का दाम एक रुपया रक्खा है। पैकिङ्ग पोस्टेज पृथक् है। पुस्तक पौकेट साइज़ में है। १० पुस्तकों से अधिक पुस्तक खरीदने वाले बुकसेलरों को ३० प्रतिशतक कमीशन दिया जाता है। जो इस पुस्तक का ग्राहक होना चाहें वे शीघ्र मंगावें। पुस्तक गुरुकुल पुस्तक भंडार, गुरुकुल कांगड़ी, ज़िला सहारनपुर के पते से मिल सकती है॥

२. सभापति कौन हो ?

लाहौर-कांग्रेस का सभापति कौन हो?—यह प्रश्न देश के सम्मुख उपस्थित है। कांग्रेस की स्वागतसमिति ने प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों के बहुमत के अनुसार महात्मा गान्धी को सभापति मनोनीत किया था। पर महात्मा जी ने इस सम्मान को अस्वीकृत कर दिया है। महात्मा जी का कहना है कि "मैं आफिस काम की तफ़सील में उतरने के लिए प्रायः अयोग्य हो गया हूँ, लेकिन अगर मैं कोई पद स्वीकार करता हूँ तो अपने स्वभाव के अनुसार उसकी तफ़सील में उतरना मेरे लिए आवश्यक होगा।" गान्धी जी की दूसरी युक्ति यह कि "जमाना जिस रफ़ार से तरक्की कर रहा है, उसके मुकाबले मेरी गति धीमी है। मेरे और नई पीढ़ी के बीच में एक खाई सी खड़ी है। मैं उनकी मण्डली में भौंदू नज़र आता हूं, लेकिन मैं स्वयं तो अपने को भौंदू नहीं समझता। किन्तु जब उनके बीच में रह कर काम करने का सवाल आता है, तब मैं अनुभव करता हूँ कि मुझे पिछली पंक्ति में बैठना चाहिये और उमड़ती हुई लहर को अपने ऊपर होकर बह जाने देना चाहिये।" इसी लिए गान्धी जी बूढ़े नेताओं को सलाह देते हैं कि उन्हें चाहिये कि वे "ये जमाने की रफ़ार को परखें, नहीं तो जो चीज वे अपनी सहज उदारता से नहीं देंगे, वह उनसे जबर्दस्ती छीन ली जायगी।" यह सब होते हुए भी राष्ट्र और राष्ट्र के नेता गांधी जी पर दबाव डाल रहे हैं कि वे अपने निर्णय पर पुनः विचार करें। वे अनुभव करते हैं कि इस संकटमय काल में—जब कि कांग्रेस के अपने ही कैम्प में दलबन्दियां हैं, पंजाब में नेताओं की वैय्यक्तिक महत्वाकांक्षा रंग ला रही है, देश में हिन्दु-मुस्लिम समस्या का विकट प्रश्न है, ब्रिटिश कूटनीति से मोर्चा लेना है—यदि कोई चतुर खवैय्या हो सकता है, तो वह है बूढ़ा बाबा। महात्मा गांधी ने ही कलकत्ता कांग्रेस में सरकार को चुनौती दी थी कि यदि १९२९ की ३१ दिसम्बर तक नेहरु-योजना को स्वीकृत न किया गया, तो वे पूर्ण स्वतन्त्रतावादी हो जायंगे और असहयोग आन्दोलन का पुनर्जन्म करेंगे। महात्मा की इसी घोषणा को सन्मुख रख कर देश ने बागडोर उनके हाथ में सौंपी है, पर उन्होंने उपरोक्त कारणों से उसे लेना अस्वीकृत कर दिया है। महात्मा गांधी ने जिन कारणों को पेश किया है, उन में वजन है। महात्मा जी का स्वास्थ्य अब इजाजत नहीं देता कि वे छोटे मोटे कामों पर भी निगरानी रख सकें। अधिक कार्य करने से उनका बोझ लगातार घटता जा रहा है। देश को चाहिए कि वह उन्हें आराम भी लेने दे। क्षणिक लाभ की आशा से वह उस महती विभूति को खो न बैठे। महात्मा जी की दूसरी आपत्ति यह है कि देश उनके साथ नहीं है। इस समय ऐसे बहुत से लोग, हैं जो "महात्मा

गांधी की जय" के नारे लगाते हैं, पर महात्मा द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चलने का कष्ट नहीं करते। जब तक महात्मा को पूर्ण विश्वास न होगा, तब तक वे कभी भी इस पद को स्वीकार नहीं करेंगे। इसके अतिरिक्त इस संकटमय परिस्थिति में महात्मा गांधी जितना तटस्थ होकर सहायक या लाभप्रद हो सकते हैं, उतना सभापति बन कर नहीं। वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि "क्षेत्र-विशेष के लिए मुझ में जो खूबियां हैं, उनका प्रयोग मैं उस हालत में और भी अच्छी तरह कर सकूंगा जब कि मैं हर तरह के पद भार से मुक्त रहूँगा।" महात्मा गांधी १९२० से देश के सामाजिक जीवन पर प्रभाव डालते रहे हैं। राष्ट्र के वर्तमान जीवन पर यदि किसी व्यक्ति की छाप दीखती है, तो वह महात्मा ही है। असहयोग के नाज़ुक और संकटमय काल में कांग्रेस के सभापतित्व को स्वीकार किए बिना ही साबरमती का तपस्वी अपने तपोबल से सम्पूण राष्ट्र का सचालन कर रहा था, वह सर्वाधिकारी था, देश उस के इशारों पर मर मिटने के लिए तय्यार था। जब तक जनता का इस तपस्वी पर प्रेम, श्रद्धा और विश्वास बना हुआ है, तब तक उसके सभापतित्व को स्वीकार करने और न करने से देश का बनता और बिगड़ता नहीं।

अब प्रश्न यह है कि इस "कांटे के ताज" को कौन पहने? देश में दो ही व्यक्तियों पर नजर जाती है, एक हैं महात्मा गांधी और दूसरे जवाहर लाल नेहरु। महात्मा ने "कांटे के ताज" को पहनने से इन्कार कर दिया है, इस लिए युवक भारत के उज्वल रत्न के सिर पर ही यह कंटीला सेहरा बांधना होगा। "उनकी वाणी में जोश है, कृति में उत्साह है, मन में त्याग की आग है, आत्मा में स्वाधीनता का तेज है।" युवक भारत की नब्ज़ का पारखी यही कहेगा कि वह एक स्वर से जवाहर की चमकीली आभा का लालसी है। जिन लोगों ने कलकत्ता कांग्रेस देखी है, वे अनुभव कर सकते हैं कि सर्वत्र यदि किसी व्यक्ति का दबदबा था, तो वह भारत माता के युवक—रत्न का। लोग कहा करते थे कि हमें 'बाप-नेहरू' का स्वराज्य नहीं चाहिए, हमें चाहिए 'बेटे-नेहरू' का। नेहरू वह है जिसने गांधी के विरोध करते हुए भी मद्रास में पूर्ण स्वतन्त्रता का बिगुल बजा दिया था। युवक नेहरू माता की परवाह नहीं करता, पिता की परवाह नहीं करता और न पत्नी की परवाह करता है; यदि किसी की परवाह करता है, तो वह है—देश। उसके हृदय में देश-प्रेम का भट्टी धधक रही है। वह भट्टी पूंजीवाद, भूमिवाद और साम्राज्यवाद का ध्वंस कर के ही शान्त होगी। उसने वीरता, दृढ़ संकल्प, सत्यनिष्ठा, साधना, सरलता और सचाई से नवयुवकों को अपनी मुट्ठी में कर लिया है, वह किसानों और मज़दूरों का रक्षक है। देश का भला इसी में है कि नवयुवकों के प्राण जवाहर लाल ही इस सेहरे को पहनें। जवाहर जूझेगा और प्रचण्ड वेग से जूझेगा, वह उथल उथल मचा देगा, क्रान्ति कर देगा वह आग लगावेगा और रणचण्डी का नाच नचावेगा जिससे सम्पूर्ण भारत का काया-कल्प हो जायगा, नवीन प्रभात और नव-युग का उदय होगा।

३. नौकरशाही और प्रैसीडैण्ट पटेल

इण्डिया—गजट में प्रकाशित हुआ है कि व्यवस्थापिक सभाओं के "१५ वें और १७ वें नियम के होते हुए भी सभापति को किसी मसविदे से सम्बन्ध रखने वाले प्रस्ताव—जो कि मसविदा पेश करने वाले सदस्य द्वारा किया गया हो—को

रोकने या देर करने का किसी प्रकार का अधिकार नहीं प्राप्त होगा और न ही।" वह इस प्रकार के प्रस्ताव को रोकने या देर करने के किसी प्रकार के अधिकार का उपयोग कर सकेगा, बशर्ते कि सभापति को इण्डिया-एक्ट द्वारा स्पष्ट रूप से वह अधिकार न दिया गया है।" यह विज्ञप्ति उस कशमकश का परिणाम है जो कि सभापति पटेल के "पब्लिक सेफ्टी बिल" सम्बन्धी निर्णय से उत्पन्न हुई थी। श्री पटेल ने सरकार को सलाह दी थी कि या तो वह मेरठ षड्यन्त्र के मामले को उठा ले या पब्लिक सेफ्टी बिल को। दोनों का एक साथ चलना असम्भव है। क्योंकि दोनों के आधारभूत सिद्धान्त एक हैं। बिल पर भाषण करता हुआ प्रत्येक सदस्य उन पहलुओं की विवेचना करेगा जो कि मेरठ षड्यन्त्र केस से सम्बन्ध रखते हैं। ऐसी अवस्था में प्रेसीडेण्ट को २३ वीं धारा की तीसरी उपधारा के अनुसार सदस्यों को न्यायालय के विचाराधीन विषयों पर भाषण देने से रोकने के लिए समय समय पर टोकना पड़ेगा। इस अवस्था में प्रत्येक सदस्य को अपने आधारभूत अधिकार—विचारस्वातन्त्र्य एवं भाषण स्वातन्त्र्य—से हाथ धोना पड़ेगा, वे लोग बिल के गुण दोषों पर ठीक तरह अपने विचार प्रकट नहीं कर सकेंगे, बहस एक मात्र धोखा ही होगा। पर नौकरशाही ने श्रीयुत् पटेल की सलाह न मानी। तब उन्हें बाधित होकर, हाउस के अधिकारों की संरक्षा के लिए बिल को रोक देना पड़ा। इससे नई स्थिति उत्पन्न होगई। गृहसदस्य श्रीयुत् क्रेरार का कहना था कि "प्रेसीडेण्ट प्रत्येक सदस्य के भाषण को नियन्त्रित कर सकता है, वह सरकार के कार्य में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त सरकार इस बात को अधिक अच्छी तरह समझती है कि वर्तमान शासन विधान के अनुसार सरकार कौन सा बिल पेश कर सकती है?" लार्ड इरविन ने केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओं की संयुक्त बैठक में घोषणा करदी कि सरकार शीघ्र ही ऐसा कानून बनाने जा रही है, जिस से भावी में इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न न हो सके। उसी घोषणा का परिणाम है कि आज भारत सचिव की सहमति से व्यवस्थापिका सभाओं के नियमों में उपरोक्त परिवर्तन कर दिया गया है। इसका परिणाम यह होगा कि प्रेसीडेण्ट को अनुमानिक और स्वाभाविक अधिकारों—जिनसे उसने पब्लिक सेफ्टी बिल और रिज़र्व बैंक बिल को रोका है—से हाथ धोना पड़ेगा। नौकरशाही सदा ही दूसरों के अधिकारों को सन्देह की दृष्टि से देखती रही है। इसी का परिणाम है कि आज असेम्बली के सभापति के अधिकार छीने जा रहे हैं। उस पर वज्रपात किया गया है। व्यवस्थापिका सभाओं का सभापति उसके अधिकारों की रक्षा करता है, वह सदा इस बात पर ध्यान देता है कि कहीं बहुमत अल्पमत के अधिकारों को अनुचित रूप से कुचलता तो नहीं। यदि सरकार समझती है कि उसने इस नियम को बना कर एसेम्बली की इच्छा पूर्ति की है, उसने राष्ट्र का भला किया है तो उसे कम से कम एसेम्बली की सलाह तो ले लेनी चाहिए थी। इण्डिया-एक्ट की ६७ वीं धारा की ६ ठी उपधारा के अनुसार गर्वनर-जनरल की सहमति से एसेम्बली नियमों में परिवर्तन कर सकती है, यद्यपि सरकार के मार्ग में कोई प्रतिबन्ध नहीं है। प्रेसीडेण्ट हाउस का स्वामी हो सकता है, पर उसकी शक्तियों का स्रोत तो स्वयमेव वह हाउस ही है। वह चाहे उसकी शक्तियों को घटाए या बढ़ाए—पर इस प्रकार संसार के प्रतिनिधिसत्तात्मक देशों की पद्धति के विरुद्ध आचरण करना नौकरशाही को ही शोभा

देता है। हाउस आफ़ कामन्स के क्लर्क ने इस पद्धति का विरोध किया था। वह इसे व्यवस्थापिका सभा के सम्मान और आदर के विरुद्ध समझता था। कहा जाता है कि भारत सचिव श्रीयुत् वेजवुड बेन बड़े भारी पार्लमैण्टेरियन हैं। यदि यह सत्य है तो क्यों उन्होंने ब्रिटिश पार्लमैंट की परम्परा अनुश्रुति, अधिकार और सम्मान के विरुद्ध "भारतीय पार्लमैण्ट" के नियम- परिवर्तन की अनुमति दे दी ? यह इस बात का सूचक है कि सरकार "भारतीय-पार्लमैण्ट" की इच्छाओं पर्वाह नहीं करती, यह इसे एकमात्र बहस मुबाहसा करने वाली सभा समझती है। नौकरशाही ने हाउस की पर्वाह किए बिना इन नियमों का निर्णय कर प्रेसीडैण्ट पटेल और एसेम्बली को चैलैञ्ज दिया है। यह राष्ट्र का अपमान है। राष्ट्र के प्रतिनिधियों का कर्तव्य है कि वे इस का उचित उत्तर दें।

४. ब्रिटेन और मिश्र की सन्धि

इंग्लैण्ड और मिश्र का झगड़ा निपटाने के लिए जो प्रस्ताव हुए हैं, उन को ब्रिटेन के पर राष्ट्र कार्यालय ने प्रकाशित किया है। उन में नीचे लिखी १६ शर्तें हैं।—

१. मिश्र पर ब्रिटेन का सैनिक अधिकार समाप्त हो जायगा।

२. वर्तमान बन्धुत्व को दृढ़ करने के लिए सन्धि जनित मित्रता स्थापित की जायगी।

३. ब्रिटेन वादा करता है कि वह राष्ट्रसंघ में शामिल किये जाने की मिश्र के प्रार्थना-पत्र का समर्थन करेगा।

४. अगर किसी तीसरे राष्ट्र से झगड़ा होगा तो मिश्र और ब्रिटेन—दोनों, राष्ट्र-संघ तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के अनुसार झगड़े को शान्ति से निपटाने के लिए प्रयत्न करेंगे।

५. दोनों में से कोई भी देश पर राष्ट्रों में इस सन्धि के विरुद्ध कोई काम न करेगा।

६. मिश्र में रहने वाले विदेशियों के जान माल की रक्षा का उत्तर दायित्व मिश्री सरकार पर होगा।

७. युद्ध में मिश्र ब्रिटेन का साथ देगा और सब प्रकार की सुविधा—बन्दरगाहों, हवाई जहाज़ों के अड्डों और सड़कों का प्रयोग भी सम्मिलित है—देगा। इस में १४ वीं धारा अपवाद है।

८. अगर मिश्री सेना को विदेशी शिक्षकों की आवश्यकता होगी, तो उन पदों पर अंग्रेज ही नियुक्त किए जावेंगे।

९. स्वेज नहर की रक्षा के लिए जितनी अंग्रेज़ी सेना की आवश्यकता होगी, वह ३२ देशान्तर रेखा तक ही कुछ निश्चित स्थानों पर रहेगी। इस से मिश्र के स्वामित्व में किसी प्रकार की बाधा नहीं होगी।

१०. मिश्री सरकार जिन विदेशी अफसरों को नियुक्त करेगी, वे ब्रिटिश ही होंगे।

११. ब्रिटेन इस बात का वायदा करता है कि वह विशेष अधिकार प्राप्त राष्ट्रों (Capitulatory powers) से सिफारिश करेगा कि वे अपने दूतावास के न्यायालयों का अधिकार संयुक्त-न्यायालय को सौंप दें और विदेशियों पर भी मिश्री कानून लगने देना मान लें।

१२. मिश्र का राजदूत लण्डन में और ब्रिटेन का कैरो में रहेगा। कैरो में ब्रिटिश राजदूत को अन्य सब राजदूतों से ऊँचा समझा जायगा।

१३. सूदान की स्थिति १८९९ के समझौते के अनुसार होगी। इस समझौते में परिवर्तन हो सकता है।

१४. इन शर्तों से राष्ट्र संघ के नियमों और कैलोग—पैक्ट को क्षति नहीं पहुंचेगी।

१५. इन शर्तों के लगाव या व्याख्या करने में अगर कोई ऐसा झगड़ा खड़ा हो जाय जो आपस में तय न हो सके तो राष्ट्र संघ के आधार भूत नियमों का उपयोग किया जायगा।

१६. यह सन्धि २५ वर्ष तक जायज़ रहेगी।

इस में कुछ एक महत्वपूर्ण बातें हैं, उन पर विचार करना आवश्यक होगा। सब से प्रथम और सब से मुख्य शर्त यह है कि मिश्र पर से ब्रिटेन का सैनिक अधिकार समाप्त हो जायगा। यह शर्त

अपने में अत्यधिक बल रखती है। इस से मिश्र को आन्तरिक स्वामित्व प्राप्त होता है। पर हमें ध्यान रखना चाहिये कि अंगरेजी सरकार किसी उदारता के भाव से इस स्वाधीनता को नहीं दे रही। वह दुनिया के सन्मुख मिश्र की स्वाधीनता घोषित करती है, पर साथ में यह भी कहती है कि "कम से कम" पांच साल तक मिश्री सेना और पुलिस में ब्रिटिश अफसर रहेंगे। अर्थात् आन्तरिक शान्ति रक्षा का कार्य भी मिश्री सरकार न कर सकेगी। यह ही नहीं, "कम से कम" पांच साल तक तो यह कब्ज़ा रहेगा ही, पर अधिक से अधिक कितने साल तक रहेगा-इस का कोई उल्लेख ही नहीं किया गया। इस के अतिरिक्त स्वेज नहर की रक्षा के लिए भी स्थान स्थान पर ब्रिटिश सेना रहेगी। जब तक भारत पराधीन है, तब तक स्वेज नहर पर से ब्रिटिश सेना का उठना असम्भव है। मिश्री सेना को शिक्षा देने के लिए यदि विदेशी अफसरों की आवश्यकता होगी वे ब्रिटिश ही होंगे। इन सब बातों से स्पष्ट है कि ब्रिटेन का सैनिक अधिकार किस हद्द तक कम हुआ है।

दूसरी बात यह है कि अब तक विदेशियों के जान माल की रक्षा का उत्तर दायित्व ब्रिटेन को प्राप्त था, पर अब मिश्री सरकार उसे करेगी। इस के अतिरिक्त विदेशियों पर भी मिश्री कानून लागू होंगे-यद्यपि संयुक्त न्यायालय उनका निर्णय करेगा। अन्तरिक-स्वामित्व की यह दूसरी झलक है, पर यदि विशेष अधिकार प्राप्त राष्ट्र अपने दूतावास के न्यायालयों से ही स्व-देशियों के अभियोगों का निर्णय कराने पर तुले रहेंगे और ब्रिटेन की सलाह नहीं मानेंगे, तो ब्रिटेन को चुप रहना पड़ेगा। वह उन राष्ट्रों के आगे मिश्र की मांग का समर्थन करेगा, उस का इतना ही कर्तव्य है-उस ने गारण्टी नहीं दी कि यह अधिकार अवश्य ही प्राप्त हो जायगा।

तीसरी बात सूडान से सम्बन्ध रखती है। मिश्री राष्ट्रवादी सूदान को मिश्र का अविभाज्य अंग समझते है। पर ब्रिटेन सूदान को मिश्र से सदा ही पृथक् रखना चाहता है। सूडान पर अधिकार कर के वह मिश्र को अपने कब्जे में रख सकता है। सूडान से नील नदी निकलती है। मिश्र का जीवन नील नदी पर आश्रित है। ब्रिटिश सरकार सूदान पर अधिकार मिश्र की बागडोर अपने हाथ में रख सकती है। इस के अतिरिक्त सूदान में रूई बहुत तादाद में उत्पन्न होती है। लंकाशायर और मांचेस्टर के पूंजीपतियों का पेट भरने के लिए ब्रिटिश सरकार इस प्रदेश पर अपना अधिकार बनाए रहेगी। ब्रिटेन की कपास-पिपासा सूडान को साम्राज्यवाद के चंगुल में फंसाए रहेगी। यह देख भाल कर सन्धि में लिखा गया है कि १८६६ के समझौते—जिस के अनुसार सूडान पर मिश्र और ब्रिटेन दोनों का अधिकार है-में परिवर्तन भी किया जा सकता है।

मिश्र में हाई कमिश्नर का पद उठा दिया गया है। अब उस के स्थान पर ब्रिटिश राजदूत होगा पर उस की स्थिति सब राज दूतों से ऊंची रहेगी। यह ब्रिटेन की अधिकार-लिप्सा का द्योतक है। १४ वीं धारा मिश्र के मार्ग में बाधक है। यदि वह अपनी सेना इकट्ठी कर के तथा भूमध्य सागर के राष्ट्रों की नैतिक सहायता प्राप्त कर पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करे, तो कैलॉग पैक्ट और राष्ट्र संघ के नियम उस के मार्ग में बाधक होंगे। ब्रिटेन किसी को तभी स्वतन्त्रता देता है जब कि वह देने के लिए बाध्य होता है। यदि जौहन बुल की खुशामद करोगे तो वह लात मारेगा। यदि लात मारोगे तो खुशामद करेगा। "लातों के देव बातों से नहीं मानते" वाली कहावत यहां चरितार्थ होती है। यद्यपि यह सन्धि २५ वर्ष के लिए की गई है, पर यह मिश्र की अपनी शक्ति पर निर्भर है कि वह इस का किस हद्द तक लाभ उठाता है और इस के बन्धनों को तोड़ कर पूर्ण स्वतन्त्रता के मार्ग में पग रखता है।

कला कौमुदी

लेखिका श्रीमती ओ३म्वती देवी

चित्र कला कौशल सम्बन्धी अनुपम पुस्तक-इस के द्वारा लेखिका ने क्रोशिये के कार्य को बड़ा ही सरल बना दिया है। बिना किसी प्रकार के पहिले ज्ञान के कन्यायें और स्त्रियें केवल इस की ही सहायता से अनेक प्रकार की बिनावट लेसें, फ़ीते, कपड़े इत्यादि बनाना सहज में ही सीख सकी हैं। पुस्तक में इतना विषय है कि किंचित इस से कई गुना दाम की पुस्तकों में भी न होगा। प्रत्येक वस्तु तथा बिनावट का बनाना चित्र देकर बड़ी सरल रीति से सिखाया गया है। देखिये समाचार पत्र इस के विषय में क्या कहते हैं।

„ट्रिब्यून" (अंग्रेज़ी का प्रसिद्ध दैनिक) लाहौर—स्त्रियों के लिये उपयोगी पुस्तक है। अनेक चित्रों द्वारा वस्तु बनाने की विधि बड़ी सरलता से समझाई गई है। सुन्दर नमूने की लेसें, टेबल क्लाथ, बच्चों के सुन्दर कपड़े और अन्य कई वस्तुओं का बनाना बड़ी सुन्दर रीति से बतलाया गया है। पुस्तक की उपयोगिता के विचार से मूल्य बहुत कम है।

"मतवाला" (कलकत्ता)-यह पुस्तक हमारी बहिनों के बड़े समझ की है। छपाई बहुत अच्छी, कागज़ बहुत अच्छा मोटा चिकना आर्ट। सुचारु शिल्प पत्रावली कार्ड गृहस्थियों के बड़े काम की चीज़ है।

"कर्मवीर" (खांडवा)— ······पुस्तक में सादे फन्दे से लगाकर तरह तरह की वस्तुओं के बनाने की विधि बड़ी सरलता से समझाई गई है जिसे पढ़कर साधारण पढ़ी लिखी स्त्री भी इस कार्य को सीख सकती है। इस का मूल्य लागत को देखते कम है।

"माधुरी" (लखनऊ)-ऐसी पुस्तकों की हिन्दी साहित्य के लिये बड़ी आवश्यकता है। आशा है इस पुस्तक का अच्छा प्रचार होगा जिस से इस प्रकार की और पुस्तकें भी प्रकाशित की जा सकें। लेखिका और प्रकाशिका दोनों को बधाई।

शीघ्र आर्डर भेजिये मूल्य १॥)

कला कौमुदी तथा शिल्प पत्रावली का पूरा सैट लेने पर २॥=)॥ के स्थान में केवल २।) में दिया जायगा।

कन्या पाठशालाओं और पुस्तक विक्रेताओं को विशेष रियायत

मैनेजर ज्योति—

कन्या गुरुकुल

राजपुरा रोड कोठी नं० २१-२२ देहरादून

गङ्गा... पं० रमेशचन्द्र पब्लिशर के लिये गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में मुद्रित।

Regd. No. A. 1711

वर्ष १०] सितम्बर १९२९ [संख्या ५



वार्षिक मूल्य. ४॥) प्रति संख्या ॥)

सम्पादक—
विद्यावतीसेठ बी. ए., चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

विद्यार्थियों, स्त्रियों से ४) विदेशका मूल्य ६)

विषय सूची।



लेखकों से निवेदन

१. ज्योति में लेख, कविता आदि भेजने वाले महानुभावों को अपने लेख सुस्पष्ट अक्षरों में कागज़ के एक ओर ही, हाशिया छोड़ कर लिख कर भेजने चाहियें।

२. लेख बहुत लम्बे न होने चाहिएँ। 'ज्योति' पत्रिका के लगभग चार पृष्ठों के लायक लेख हों तो अति उत्तम है।

३. लेखों को घटाने बढ़ाने तथा संशोधित करने का संपादक को पूर्ण अधिकार है।



ज्योति सम्बन्धी पत्र व्यवहार— अथवा—

आचार्या कन्या गुरुकुल **सम्पादक ज्योति**

कोठी नं० २१, राजपुर रोड (देहरादून) गुरुकुल कांगड़ी यू.पी.



विविध विषय विभूषित सुन्दर मासिक पत्रिका.

वर्ष १० | भाद्रपद १९८६ * सितम्बर १९२९ | संख्या ५

हो जाओ बलिदान

(ले०— श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार)

हो जावो बलिदान वीरवर ! हो जावो बलिदान ॥
जिसकी पावन रज से है यह देह हुई निर्माण ।
जिसका पवन निरन्तर चलता इसमें बन कर प्राण॥
उसी तुम्हारी मातृभूमि पर आई विपद महान ।
स्वार्थ परायण करते इसका पद पद पर अपमान ॥
कुछ भी तुम में है मनुष्यता कुछ भी है अभिमान ।
यदि अपनी जननी जनकों की हो असली सन्तान ॥
तो तुरन्त इन अत्याचारों का कर दो अवसान ।
जगत चकित हो तुम को देखे हो जावे हैरान ॥

मेरी जीवन-कथा के कुछ पृष्ठ

[आर्य समाज के कतिपय प्रभावशाली नेता]

(ले०—श्री आचार्य रामदेव जी)

क.

पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी.

(१)



मेरे पिता पंजाब के एक सुप्रसिद्ध रईस सरदार कोर्डियन और स्यू-टर थे। सरकार साहब के साथ मेरा बड़े स्नेह का सम्बन्ध था। मैं उन्हें अपना आदरणीय बड़ा भाई समझा करता था। जिन दिनों मेरी आयु केवल ८ बरस की ही थी, उन दिनों आर्य समाज के सुप्रसिद्ध नेता पं गुरुदत्त बीमार हुए। उन की बीमारी बहुत बढ़ गई।। कुछ लोग तो उन के जीवन से भी निराश हो चले थे। सरदार साहब पं गुरुदत्त के भक्तों में से थे। पण्डित जी की बीमारी का समाचार सुन कर वह उन्हें अपने साथ स्वास्थ्य सुधार के लिये मरी पहाड़ पर लेगए। मेरे पिता और मैं भी मरी में थे। हम सब लोग एक ही मकान में रहते थे। मैं उन दिनों बालक ही था, तथापि मैं अपना काफी समय उन्हीं के पास व्यतीत किया करता था। पण्डित जी भी मुझ से बहुत स्नेह करते थे।

एक दिन रात के समय बात चीत के सिल-सिले में सरदार साहब ने पंडित जी से पूछा कि बृहदाख्यक उपनिषद् में लिखा है कि गर्भवती स्त्री उक्षन का भक्षण करे। उक्षन का अर्थ है बैल। लिहाजा उपनिषदों में मांस भक्षण का विधान है। और अवश्य ही प्राचीन आर्य गाय का मांस भी खाते थे।

पंडित जी ने इस बात का क्या जवाब दिया-यह मुझे स्मरण नहीं। परन्तु इतना मुझे अवश्य याद है कि पण्डित जी उस समय उठ कर बैठ गए थे, और खूब धारावाहिक रूप से सरदार साहब के तर्क का खण्डन कर रहे थे। सरदार साहब का भी वैदिक साहित्य में अच्छा प्रवेश था, अतः खूब गहरी शास्त्रीय चरचा चल पड़ी। मैं उस शास्त्रीय चरचा को भले ही समझ नहीं रहा था, परन्तु उस में मुझे सचमुच एक विशेष प्रकार का स्वाद अनुभव हो रहा था। जो थोड़ी बहुत बातें मेरी समझ में आती थीं, उन से मुझे पण्डित जी का पक्ष अतीव प्रबल मालूम हो रहा था। मैं एक टक स्थिर दृष्टि से पण्डित जी के प्रतिभापूर्ण चेहरे पर दृष्टि जमाये हुए था। सरदार साहब जो सवाल करते थे, पण्डित जी एक दम उस का समाधान कर देते थे। इस वाद विवाद में घंटों निकल गए। बीच बीच में सरदार साहब ने अनेक बार मुझे सोने के लिये चले जाने को कहा। परन्तु उन्हें क्या मालूम था कि वह शास्त्रीय चरचा पूरी तरह समझ में न आने पर भी मैं उस में कितना मज़ा लेरहा हूं। पिता जी ने भी दो चार बार मुझे सोने के लिये बुलाया, परन्तु मैं उठा नहीं। ११ बजे सरदार साहब ने पण्डित जी से कहा—पण्डित जी आप बीमार हैं। आप के लिए अधिक देर तक जागना उचित नहीं।

इतनी देर तक आप को जगाये रख कर मैंने भी अच्छा नहीं किया। इस समय आराम कीजिये—फिर कल यही चर्चा करेंगे।"

परन्तु पण्डित जी इस तरह मानने वाले नहीं थे। उन्होंने कहा—"मेरी नींद अब मारी गई है। जब तक आप को लाजवाब न कर दूंगा तब तक नहीं सोऊंगा।"

सरदार साहब भी आखिर नौजवान ही थे। वाद विवाद पुनः प्रारम्भ होगया। दोनों वीर १ घन्टे तक और भिड़े रहे। ठीक १२ बजे के बाद जाकर सरदार साहब पूरी तरह से लाजवाब हो गए। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार कर लिया कि मेरी वह धारणा भ्रान्त थी। तब जाकर वह वादविवाद समाप्त हुआ।

१८ बरस हुए, अपने इतिहास का प्रथम खण्ड लिखते हुए मुझे उपनिषद् प्रकरण में इसी विषय पर लिखने का अवसर हुआ था। तब तक मुझे यह तो स्मरण नहीं था कि पं० गुरुदत्त ने इस शंका का क्या समाधान किया था। परन्तु पण्डित जी के धार्मिक उत्साह, प्रतिभा और समझाने की शक्ति का जो चित्र मेरे हृदय में उस समय अंकित हुआ था— वह आज तक भी कायम है। सच्ची लगन का वह एक जीता जागता उदाहरण था। इस छोटी सी घटना ने मुझ बालक के कोमल हृदय पर स्थायी प्रभाव डाला। इस ने मुझे अधिक और गम्भीर स्वाध्याय के लिए प्रेरित किया। यहां तक कि बड़े हो कर अधिक पढ़ना मेरी मनोवृत्ति का एक भाग बन गया। आज जब डाक्टर लोग मुझे मेरे स्वास्थ्य सुधार के लिये मुझे कम पढ़ने का आदेश करते हैं और प्रयत्न करने पर भी मैं अपने को इस आदेश के पालन में असमर्थ पाता हूं, तब मैं कभी कभी, पण्डित गुरुदत्त की उस दिन वाली घटना को मीठे रूप में कोसा करता हूं।

(२)

आज से ३५, ४०, बरस पूर्व आर्य समाज के सदस्यों की संख्या तो अब की अपेक्षा कम थी, परन्तु उन दिनों के आर्य-पुरुषों में उत्साह और लगन की मात्रा बहुत अधिक थी। उन दिनों में समाज के उत्सवों में जो नगर कीर्तन हुआ करते थे उन की चमक दमक तो शायद आज कल के समान न होती हो, परन्तु उन दिनों के नगर कीर्तन में आर्यसज्जन जिस उत्साह, प्रेम और लगन का प्रदर्शन किया करते थे— वह अब कहीं दिखाई नहीं देती।

करीब ३८ बरस हुए पेशावर आर्य समाज का वार्षिकोत्सव देखने का मुझे अवसर मिला था। पं० गुरुदत्त जी भी पेशावर ही थे। मरी पहाड़ वाली हमारी सारी टोली पेशावर चली आई थी। हम लोग एक किराये के मकान में रहते थे। पेशावर समाज के उस नगर कीर्तन का दृश्य आज तक भी मेरी आँखों में अंकित है। नगर कीर्तन हो रहा था—सब सज्जन—चाहे वे जवान हों, बूढ़े हों या बच्चे—खुल कर गा रहे थे। क्रम से अनेक भजन-मण्डलियां, गाती हुई प्रचार कर रही थीं। मैं भी एक मण्डली में सिर हिला हिला कर असाधारण ऊँची स्वर में गा रहा था। उन दिनों आर्य समाज के उत्साह ने मुझ में गाने का शौक भी पैदा कर दिया था। आज जबकि मैं यत्न कर के भी एक लाइन तक नहीं गा सकता—यह याद कर के मुझे हैरानी होती है कि बचपन के उन सुहावने दिनों में मैं खूब दिल खोल कर गाता था, और उन दिनों मेरा स्वर भी कम से कम बुरा नहीं था। कुछ लोगों ने देखा कि एक क्षीण लड़का

खूब ऊँची स्वर से गारहा है, वे अपना मनबहलाव करने का प्रलोभन न रोक सके। मुझे मंडली से अलग बुला कर उन्हों ने मुझे चारों ओर से घेर लिया। वे मुझे उत्साह दे देकर मेरा गाना सुनने लगे। मैं भी निस्संकोच भाव से अपना उन्मुक्त संगीत सुनता रहा।

किसी ने कहा-"एक लैक्चर भी दो।"

मैं झट से लैक्चर के लिये भी तैयार होगया। मूर्त्तिपूजा के खण्डन में गरज गरज कर एक लैक्चर दे डाला।

धीरे धीरे एक एक कर के वे लोग खिसकने लगे। जब अपना लैक्चर समाप्त कर के मैंने चारों ओर निगाह दौड़ाई, तब नगर कीर्तन कहीं दिखाई न दिया। न मालूम सब मण्डलियां किस ओर को बढ़ गई थी। पेशावर के बाजारों में वैसे भी काफ़ी भीड़ रहती है। नगर के मार्ग मेरे जाने हुवे नहीं थे— इस भीड़ भड़क्के में मैं भटक गया और दो एक घंटों तक उसी तहर घूमता फिरा।

सरकार साहब ने जब मुझे अपने पास न देखा तब उन्हें चिन्ता हुई। उन्हों ने अपना नौकर मेरी तालाश में भेजा। परन्तु वह मुझे ढूंढ न सका कुछ देर बाद भाग्य से, उन लोगों में से जिन्हों ने मुझे अलग बुला कर मेरा गाना सुना था, दो चार व्यक्तियों ने मुझे भटकता हुवा देख कर पूछा— "तुम यहां कैसे घूम रहे हो?"

मैंने कहा—"मुझे रास्ता याद नहीं रहा।"

एक आदमी ने पूछा-"तुम ने कहां जाना है?"

मैंने कहा—"आर्य समाज के नज़दीक?"

उसी आदमी ने फिर पूछा—"तुम किस के लड़के हो।"

मैंने उत्तर दिया-"पं० गुरुदत्त विद्यार्थी का। मुझे उन्हीं के पास ले चलो।"

मैं थक गया था। वह आदमी मुझे गोद में उठा कर आर्य समाज मन्दिर में ले आया। पंडित जी गैलरी में बैठ कर कुछ सज्जनों से बात चीत कर रहे थे। मुझे उस व्यक्ति ने उन्हीं के पास ले जा कर खड़ा कर दिया। पंडित जी ने एक दम मुझे गले लगा कर पूछा—"कहां गुम हो गए थे?"

मैंने उन्हें अपनी सारी कहानी कह सुनाई। मेरे व्याख्यान देने की बात सुन कर वह बड़े खुश हुए। उन्हों ने मेरी पीठ ठोकर कहा—"शाबास! किसी समय तुम भी कुछ बन जाओगे।"

पण्डित जी ने फिर पूछा—"यह तो बताओ कि तुम यहां पहुँचे किस तरह?"

मैंने कहा—"आप का नाम लेकर।"

उन्हों ने पूछा—"मेरा नाम क्यों लिया। पिता जी का या सरदार साहब का नाम क्यों नहीं लिया।"

मैंने बाल सुलभ स्पष्ट वादिता से कहा-" उन्हें जानता ही कौन है! आप तो नेता हैं। आप को सभी लोग जानते हैं, यही सोच कर मैंने यह चालकी की।"

पण्डित जी खूब हंसे। प्यार से मेरे सिरपर हाथ फेरते हुए उन्हों ने कहा-"बड़े चालाक हो।"

पण्डित जी जब तक जीवित रहे, मुझ से बड़ा स्नेह करते रहे। वह मुझे योग्य बनाने के लिये जान बूझ कर मुझ से वादविवाद छेड़ देते थे—मुझ से तरह तरह के प्रश्न करते थे। बच्चों को प्यार करना उन के स्वभाव में शामिल था। अवसर पाकर वह बच्चों सेही खेलते। उन के मनो-विनोद का यही सर्वश्रेष्ठ साधन था। अकसर अपनी जेब में खाने की कोई चीज़ भर कर वह बच्चों से कहते कि जो यह चीज़ छीन लेना, यह उसी की हो जायगी। ऋषि दयानन्द के बाद आर्य

समाज का वह सर्व श्रेष्ठ नेता, पञ्जाब यूनिवर्सिटी का योग्य तम एम० ए० और विज्ञान के क्षेत्र का वह चमकता हुवा सितारा जब इस तरह उन्मुक्त भाव से बच्चों में बिल्कुल हिलमिल कर खेलता था— तब वह दृश्य सचमुच पवित्रतम और स्वर्गीय होता था। आज जब मैं वह दृश्य स्मरण करता हूँ तब यही ख्याल आता है कि महापुरुषों में वास्तव में ही सरलता की पराकाष्ठा होती है।

ख.

मास्टर दुर्गाप्रसाद

(३)

एक दिन मैं कहीं इधर उधर से घूम फिर कर घर वापिस आया तो देखा कि एक बहुत ही भव्य मूर्ति के कोई सज्जन घर के बरामदे में कुर्सी पर बैठ कर सरदार साहब से बात चीत कर रहे हैं। मैं विस्मय और श्रद्धा से उस महात्मा की ओर देखने लगा। लम्बा चौड़ा डाल डौल, गठा हुवा शरीर, लम्बी दाड़ी, गोरा रङ्ग और बिलकुल सफ़ेद ही बाल। सिर और दाड़ी मूंछ के सभी बाल चाँदी के तरह उजले थे। इस पर भी चेहरे पर कोई झुर्री नहीं थी— चेहरा तपे हुए कुन्दन की भाँति दमक रहा था। मैं स्तब्ध भाव से खड़ा रह कर उस पवित्र मूर्ति की ओर देखने लगा। मेरी उमर उन दिनों लगभग १२ बरस की ही होगी। वह सरदार साहब से माँस भक्षण के विरोध में बातचीत कर रहे थे।

उन दिनों लाहौर आर्य समाज में मांस भक्षण के सम्बन्ध का मत भेद हाल ही में उठा था, परन्तु तब तक इस प्रश्न पर वहां दो समाजें न बनी थीं। मास्टर साहब मांस भक्षण के कट्टर विरोधी थे। वह डी. ए. वी. मिडल स्कूल के हैड मास्टर थे। यह सवाल उठते ही उन्होंने स्कूल से एक साल की छुट्टी लेली और शहर में मांस भक्षण के बर्खिलाफ़ आन्दोलन करने लगे। इसी बीच में आर्य समाज में दो पार्टियां बन जाने पर उन्होंने स्कूल से त्याग-पत्र देदिया। तब वह दिन रात समाज सेवा का कार्य ही करने लगे। नगर में उन्होंने एक निरामिमशभोजन प्रचारणी सभा कायम था। लाहौर में उन का एक निजू प्रेस भी था। इस प्रेस का नाम विरजानन्द प्रेस है। यह आज तक भी कायम है। इस प्रेस से मस्टर साहब (Harbinger of Health) नाम का एक अंग्रेज़ी पत्र निकालते थे। इस के सम्पादक भी वह स्वयं ही थे। निरामिश भोजन के तो वह इतने कट्टर हिमायती थे कि इन्हें अपने समय के संसार भर के निरामिश भोजियों में एक विशेष स्थान प्राप्त हो गया था। यूरोप और अमेरिका के अधिकांश निरामिश-भोजन-प्रचारकों से उन का पत्र व्यवहार था।

मास्टर साहब का आचार भी बहुत उन्नत और पवित्र था। वह आजीवन ब्रह्मचारी रहे। स्वाध्याय का तो मानो उन्हें व्यसन था। वैदिक और अंग्रेज़ी साहित्य दोनों की गम्भीर गम्भीर पुस्तकें आप दिन रात पढ़ा करते थे।

मास्टर दुर्गा प्रसाद के दर्शन करते ही मैं इतना प्रभावित हुवा कि उन के यहां आने जाने लगा। वह मुझ से स्नेह करने लगे। मुझे वह मांसविरोध में हिन्दी की छोटी छोटी पुस्तिकाएं पढ़ने के लिये दिया करते थे। मास्टर साहब सुप्रसिद्ध यूरोपियन विद्वान एण्ड्रो जैक्सन डेविड के अनन्य भक्त थे। अनेक वर्षों के बाद, जब मैं अंग्रेज़ी की किताबें पढ़ने लायक हो गया, तब उन्हों ने डेविड साहब की (Beyand the Valley) नामक एक पुस्तक पढ़ने को दी। इस पुस्तक में ऋषि दयानन्द के सम्बन्ध

में यह निम्न लिखत वाक्य मैंने इतनी अच्छी तरह घोट लिया था कि वह मुझे अभी तक याद है—

अपने विद्यार्थि जीवन के व्याख्यानों में मैं सदैव इस वाक्य को अवश्य और बड़े जोश के साथ उद्धृत किया करता था। यह वाक्य सुना कर कहा करता था—"शीघ्र ही वह समय आने वाला है जब यूरोप और अमेरिका के महाद्वीप भी वैदिक धर्म के नाद से गूंज उठेंगे, जब लण्डन और न्यूयार्क के गिरजों पर भी 'ओ३म्' के झण्डे फहराने लगेंगे'

मास्टर दुर्गा प्रसाद की समस्या भी उन के स्वाध्याय की तरह बढ़ी चढ़ी हुई थी। वह नमक बिल्कुल नहीं खाते थे। अनेक वर्षों तक वह केवल दिन में एक ही समय भोजन करते रहे। इतने बड़े विद्वान होते हुए भी वह भोले इतने थे कि धर्म के नाम पर वह अनेक बार दुष्ट लोगों से ठगे भी गए। मास्टर साहब ने (Veda made easy) नाम से दो पुस्तकें भी लिखी थीं। इन पुस्तकों में ऋग्वेद के कुछ सूक्तों का सरल ढंग से अंग्रेज़ी और संस्कृत में अनुवाद किया गया है। मेरी रायमें इन दोनों पुस्तकों का आर्य समाज के अंग्रेज़ी साहित्य में एक विशेष स्थान है। आज भी यह पुस्तकें पढ़ते हुए मेरे मानसिक नैत्रों के सन्मुख उस ऋषि तुल्य भव्य मूर्ति का चित्र खिंच आता है।

(४)

लाहौर आर्य समाज का सन् १८९८ का वार्षिकोत्सव डी. ए. वी. कालिज की नई इमारत में हुआ था तब तक समाज में दो दल नहीं बने थे। सम्भवतः सम्मलित आर्य समाज का वह अन्तिम ही उत्सव था। दिनों आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब का वार्षिक अधिवेशन भी लाहौर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव के साथ हुआ करता था। १८९२ के इस अधिवेशन में सभा के सम्पूर्ण अधिकारी बदल दिये गए। उस से पूर्व ला० हंसराज प्रधान थे। उन की जगह मा० दुर्गा प्रसाद जी प्रधान चुने गए थे।

इन दिनों लाहौर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव के प्रधान का कार्य भी सभा का प्रधान ही किया करता था। नया चुनाव होजाने पर भी सन् १८९२ वार्षिकोत्सव का प्रबन्ध ला० हंसराज जी हाथ में ही रहा।

इधर जलसा हो रहा था। उधर थोड़ी दूर पर एक हाल में आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब की बैठक हो रही थी। ला० हंसराज जी सभा में थे, इस लिये जलसे का प्रबन्ध ला० अमीर चन्द कर रहे थे। उन दिनों आर्य समाज में मांस भक्षण का सवाल ज़ोरों पर था। प्रोग्राम के अनुसार जब पं० वासुदेव नामक एक गायक के भजन गाने की बारी आई तब वह एक भजन गाने लगा, जिस की पहली दो लाईनें निम्नलिखित थीं।—

कचौरी की क़दर तुम क्या जानते हो।
तुम तो हड्डियां ही सदा चबा जानते हो॥

लोग इस भजन को खूब मज़ा लेकर सुन रहे थे कि ला० अमीरचन्द ने पं० वासुदेव को गाने से रोक दिया। उन की दृष्टि में यह भजन आक्षेप योग्य था। लोग ऊंची स्वर से चिल्लाये—"शर्म ! शर्म !" परन्तु उप प्रधान महोदय ने इस की कोई परवाह नहीं की। प्रोग्राम के अनुसार अब मास्टर दुर्गा प्रसाद का व्याख्यान होना चाहिये था। लाला अमीरचन्द के आदेशानुसार वह व्याख्यान के लिये खड़े तो हुए, परन्तु लोगों के फिर "शर्म, शर्म" चिल्लाने के कारण उन्हें बैठ जाना पड़ा। लोग चिल्लाये—"भजन ! भजन !" परन्तु ला० अमीरचन्द ने मास्टर साहब ने कहा कि मैं प्रधान हूं।

इस लिये मेरी आज्ञा से आप को अपना व्याख्यान शुरू कर देना चाहिये। मास्टर साहब नियन्त्रण के कट्टर हिमायती थे, वह फिर से अन्य प्रकार लैक्चर के लिये खड़े हो गए परन्तु लोगों की चिल्लाहटों के मारे वह अपना व्याख्यान शुरू न कर सके।

यह शोर प्रतिनिधि सभा में भी सुनाई दिया, ला० हंसराज जी शीघ्रता से मण्डप में पहुँचे। सारी बात सुन कर उन्होंने आज्ञा दी "भजन को बीच में बन्द करना उचित था। वह भजन फिर से गाया जावे।"

फिर क्या था पं० वासुदेव को आग्रह से लगातार ५, ६ बार वही भजन गाना पड़ा। एक एक लाईन के बाद तालियाँ पिटती थीं। पूरे ४५ मिन्ट तक सिर्फ यही एक भजन गाया जाता रहा।

इस भजन के बाद मास्टर साहब अपने लैक्चर के लिये खड़े हुए। व्याख्यान के लिये आपने विषय भी पूरी तरह से दार्शनिक ही चुन रक्खा था। मास्टर साहब का वह व्याख्यान आर्य समाज से दूसरे नियम पर था—"ईश्वर न्यायकरी होते हुए दयालु किस तरह हो सकता है।" ऐसे होहल्ले के बाद इतना गम्भीर व्यख्यान देना आसान काम नहीं था। परन्तु मास्टर साहब का व्याख्यान देने का ढंग इतना रोचक और आकर्षक था कि उन के लम्बे व्याख्यान में एक भी श्रोता अपने स्थान से नहीं हिला। पूरी शान्ति के साथ सब लोग यह दार्शनिक व्याख्यान सुनते रहे। मास्टर साहब की वाणी में कुछ ऐसा आकर्षण था।

(५)

सन् १८९२ के चुनाव से आर्यजनता का रुख स्पष्ट हो गया। यह देख कर मांस भक्षण के हिमायती लोगों को भय हुआ कि कहीं डी. ए. वी. कालिज की प्रबन्ध-समिति से हम लोगों की मुख्यता जाती न रहे। उन्हें यह विश्वास हो गया कि यदि यही अवस्था रही तो पं० गुरुदत्त विद्यार्थी का दल ही कालिज की प्रबन्ध समिति में बहु मत प्राप्त कर लेगा। पण्डित जी कालिज में वेद वेदाङ्गों की शिक्षा देने के पक्ष में थे—इस का अभिप्राय यह था कि कॉलिज का स्वरूप ही बदल डाला जावे।

डी. ए. वी. कॉलिज की समिति के निर्वाचन के लिये तब तक यह नियम था कि जो समाज कालिज को एक निश्चित राशि एक साथ दे दे, उस की अन्तरङ्ग सभा के सम्पूर्ण सदस्य डी. ए. वी. कालिज-समित के सदस्य समझे जाते थे। यह डी. ए. वी. कॉलिज समिति ही प्रबन्ध-समिति का प्रति तीन वर्षों के बाद निर्वाचन किया करती थी। इस कालिज समिति में लाहौर आर्य समाज के सदस्यों का बहुमत था। और लाहौर आर्य-समाज में पं० गुरुदत्त के अनुयाईयों का बहुत बड़ा प्रभाव था। इस लिये यह लगभग निश्चित ही था कि नये चुनाव में प्रबन्ध समिति की रचना बिल्कुल बदल जावेगी। नये निर्वाचन सन् १८९४ में होने थे अतः दूसरे पक्ष के लोगों ने १८९३ में अनार कली बाज़ार में एक नई समाज की स्थापना कर दी, और पुरानी आर्य समाज, जिस का मन्दिर बच्छोवाली में था, को नज़ायज़ करार दे दिया। यही काम पञ्जाब के अन्य भी कई नगरों में किया गया।

परन्तु लाहौर आर्य समाज के उत्साही सदस्यों को यह धांधली सह्य न हुई। वे चुप चाप यह अनर्थ देखते रहे। शान्ति पूर्वक परन्तु दृढ़ निश्चय से वे लोग चुनाव के दिन की प्रतीक्षा करने लगे। आखिर वह दिन भी आही

गया। डी. ए. वी. कॉलिज के हॉल में कॉलिज—समिति का अधिवेशन होना था। वच्छोवाली समाज के सभी सदस्य, जिन में मा० दुर्गा प्रसाद और ला० केदारनाथ भी शामिल थे, निम्न लिखित गीत गाते हुए, जलूस बना कर सभा—स्थान की ओर चले—

सदाकत के लिये गर जान जाती है तो जाने दो।
मुसीबत पर मुसीबत गर आती हो तो आने दो॥

मैं भी इस मण्डली में शामिल था। और खूब उत्साह के साथ वह गीत गा रहा था।

यही मण्डली डी॰ ए. वी. कॉलिज के दरवाज़े पर पहुँची, वहां अनेक वालंटियर खड़े थे। उन में से एक वालंटिअर ने कहा-"टिकट दिखाओ! टिकट!"

ला० केदारनाथ वच्छोवाली आर्य समाज के मन्त्री थे। उन्होंने पूछा—टिकट कैसा? हम लोग तो नियमानुसार मैम्बर हैं। हमें अन्दर आने दो।"

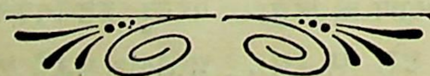
वालंटिअर कोई बेवकूफ़ नौजवान था। उस ने बहस न कर के अपनी ताकत से काम लेना चाहा। जोश में आकर उसने मंत्री जी पर हाथ चला दिया। फिर क्या था। लोगों ने लाठियों से उस की ख़बर ली। सब वालन्टीयर भगाए गये मंडली वही भजन गाती हुई सहन में दाखिल हुई। इस समय तक सभा भवन के बाहर एक मज़बूत ताला जड़ दिया गया। इस भवन में ला० हंसराज प्रिन्सपल डी. ए. वी. कॉलिज; ला० लालचन्द प्रधान प्रबन्ध समिति और देश भक्त लाला लाजपत राय—जो पीछे से देश के सर्वश्रेष्ठ कोटी के नेता बने—आदि कलिज पर्टी के नेता बन्द होकर बैठे थे।

वच्छोवाली समाज के सभी सदस्य सहन में ज़मीन पर ही बैठ गए। ला० दुर्गाप्रसाद खड़े हो कर व्याख्यान देने लगे। थोड़े ही दिन पूर्व डी. ए. वी. कालिज़ के हिमायती बाबा छज्जूसिंह ने एक लेख में लिखा था कि हमें चाकू के बल पर यह लड़ाई कायम रखनी चाहिये।, मास्टर दुर्गाप्रसाद इस ऐतिहासिक सभा में छाती को नंगा कर के खड़े हो गए और उन्हों ने कहा—"मेरे भाईयो! तुम चाकू के बल पर लड़ाई जारी रखना चाहते हो। मैं बूढ़ा हूँ। मैं मांस नहीं खाता, इस लिये तुम्हारी नज़र में और भी अधिक कमज़ोर हूं। तुम मांस खाते हो और अपने को ताकतवर समझते हो। यदि तुम में किसी को साहस है, तो वह आवे और मुझ वृद्ध की नंगी छाती पर चाकू चलावे।'

परन्तु कोई न आया। वह बूढ़ा शेर सच मुच ऐसा ही बीर था।

पीछे महात्मा मुन्शीराम जी के समझाने पर वच्छोवाली समाज के सदस्यों ने इस झगड़े को बढ़ाना उचित नहीं समझा। यदि वे चाहते तो अपनी शक्ति या अदालत की मदद कॉलिज पर अवश्य ही अधिकार कर सकते थे। परन्तु महात्मा मुन्शीराम जैसे उदार नेता की मौजूदगी में आर्य सज्जनों ने, घर में ही लड़ाई ठानना उचित नहीं समझा।

उस दिन से आर्यसमाज में महात्मा दल और कल्चर्ड दल नाम से दो दल बन गए कालान्तर में इन का घास पार्टी और मांस पार्टी तथा आजकल इन के नाम गुरुकुल दल और कालिज़ दल है।"



अर्थशास्त्र का काल और कर्ता

(लेखक— एक अर्थशास्त्री)



प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन में कौटिल्य के अर्थशास्त्र का समय निश्चित करना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि जिस समय यह ग्रन्थ बना उस समय की हिन्दू सभ्यता का यह ग्रन्थ सूचक है। इन पृष्ठों में उन युक्तियों को इकट्ठा किया जायगा जो कि इस बात को पुष्ट करती हैं कि कौटिल्य अर्थशास्त्र चाणक्य का बनाया हुआ है जो कि चन्द्रगुप्त का मन्त्री था और इसलिए चौथी सदी ई० पू० से सम्बन्ध रखता है। संस्कृत साहित्य का अध्ययन करने वालों को ज्ञात है कि चाणक्य और कौटिल्य एक ही व्यक्ति हैं। वास्तव में चाणक्य के अनेक नाम थे। हेमचन्द्र ने अभिधानचिन्तामणि में इनका परिगणन इस प्रकार किया है—

> वात्स्यायनो मल्लनागः कुटिलश्चणकात्मजः ।
> द्रामिलः पक्षिलस्वामी विष्णुगुप्तोऽङ्गुलश्च सः ॥

यह बात भी किसी से छिपी नहीं है कि चाणक्य का सम्बन्ध सम्राट् चन्द्रगुप्त से था। यह बात बहुत से स्रोतों से जानी जा सकती है— विष्णु पुराण में लिखा है—

"नवैतान्नन्दान् कौटिल्यो ब्राह्मणः समुद्धरिष्यति ......कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तं राज्येऽभिषेक्ष्यति" भागवत पुराण में लिखा है—

"नवनन्दान् द्विजः कश्चित् प्रपन्नानुद्धरिष्यति ......स एव चन्द्रगुप्तं वै द्विजो राज्येऽभिषेक्ष्यति" मत्स्यपुराण में लिखा है—

"कौटिल्यः चन्द्रगुप्तं तु ततो राज्ये ऽभिषेक्ष्यति।" वायु और ब्रह्माण्ड में—

"चन्द्रगुप्तं नृपं राज्ये कौटिल्यः स्थापयिष्यति" लिखा है। हेमचन्द्र स्थविरावली चरित में चाणक्य का वृत्तान्त देता है जो कि कौटिल्य को नन्दों का नाश करने वाला और चन्द्रगुप्त का पोषक बताता है। हेमचन्द्र 'नन्दिसूत्र' में-जो कि एक जैनी धर्मग्रन्थ हैं, यह प्राकृत भाषामें है— चाणक्य को चन्द्रगुप्त का अर्थसचिव लिखता है। जैन ग्रन्थ (ऋषिमण्डल प्रकरण वृत्ति) में चाणक्य की चन्द्रगुप्त के साथ सन्धि का वर्णन है जिसने कि नन्दों को कतल कर उनका राज्य छीन लिया। बौद्ध ग्रन्थों में से इस बात का पता देने वाले ग्रन्थों में 'विनयपिटक' पर बुद्धघोष की 'समन्तपासादिका' टीका और महानामस्थविर की 'महावंश टीका' के नाम लिए जा सकते हैं। कामन्दक में नन्दराज्य के पतन और चन्द्रगुप्त के सिंहासनासीन होने के वर्णन है—

> यस्याभिचारवज्रेण वज्रज्वलनतेजसः ।
> पपात मूलतः श्रीमान् सुपर्वा नन्दपर्वतः ॥
> एकाकी मन्त्रशक्त्या यः शक्त्या शक्तिधरोपमः ।
> आजहार नृचन्द्राय चन्द्रगुप्ताय मेदिनीम् ॥
>
> (१. ४-५)

यही बात मुद्राराक्षस का आधार बनती है। अन्त में हम 'अर्थशास्त्र' का भी प्रमाण उसके लिए दिखा सकते हैं। वह इस प्रकार है—

> येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः ।
> अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम् ॥

कौटिल्य का चाणक्य से राजनीतिक विषय में इतना सम्बन्ध है। अब हम यह सिद्ध करेंगे,

कि कौटिल्य अर्थशास्त्र का लेखक है। यह बात संस्कृत वाङ्मय से भली भाँति सिद्ध होती है। इस प्रमाणता के दो मुख्य स्रोत हैं— (१) कामन्दक का नीति शास्त्र।

(२) दण्डी का दशकुमार चरित। कामन्दक अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में लिखता है—"उस विद्वान् विष्णुगुप्त को प्रणाम हो जिसने कि अर्थशास्त्र के महासागर में से राजनीति शास्त्र रूपी सुधा को पृथक् किया। यह शास्त्र राजाओं को बहुत प्रिय है। इसलिए मैं इस महाविद्वान् के शास्त्र का संक्षिप्त सार बनाऊँगा।

दर्शनात् यस्य सदृशो विद्यानां पारदृश्वनः।
राजविद्या प्रियतमा संक्षिप्तग्रन्थमर्थवत्॥ (१. ७)

दूसरा प्रमाण दशकुमारचरित का है। सोमदत्त-उत्पत्ति कथा में चाणक्य और कामन्दक दोनों का नीतिशास्त्र में प्रामाणिकों के तौर पर कथन है। जैसे "कौटिल्य—कामन्दकीयादिनीतिपटल कौशलं ......"। आठवें अध्याय में चाणक्य के विषय में यह ध्यान देने योग्य बात कही है—

"......इदमिदानीमाचार्य विष्णुगुप्तेन मौर्यार्थे षड्भिः श्लोकसहस्रैः संक्षिप्तं"। राजा के दैनिक कर्तव्यों के विषय में बहुत कुछ चाणक्य के अनुसार कहा गया है। इस प्रकार ये भाव अर्थ शास्त्र से लिए गए हैं—

"आयव्ययजातं अन्हः प्रथमे अष्टमे भागे श्रोतव्यम्" "द्वितीये अन्योऽन्यं विवदमानानां प्रजानां आक्रोशैः दह्यमानकर्णः कष्टं जीवति" "तृतीये स्नातुं भोक्तुञ्च लभते" "चतुर्थे हिरण्य प्रति ग्रहाय हस्तं प्रसारयन्नेव उत्तिष्ठति" "पंचमे मंत्रचिन्तया महान्तमायासमनुभवति......मिथ सम्भूयः दोषगुणौ दूतचारवाक्यानि.........उपजीवति" "षष्ठे स्वैरविहारः मन्त्रो वा सेव्यःस" "एतमे चतुरङ्गबलः प्रत्यवेक्षणप्रयासः"—

इस प्रकार दण्डी के अर्थशास्त्र से लिए ये उद्धरण इस बात के और भी अधिक पोषक हैं कि एक अर्थशास्त्र विषयक ग्रन्थ अवश्य था और वह चाणक्य का लिखा हुआ था।

संस्कृत के अन्य ग्रन्थों में से जो कि कौटिल्य अर्थशास्त्र का जिक्र करते हैं—जैनों का नन्दिसूत्र, पंचतन्त्र और सोमदेव का नीतिवाक्यामृत है। अन्त में हम कालिदास रचित रघुवंश पर मल्लिनाथ-कृत टीका में से बहुत से उद्धरण कौटिल्य के अर्थशास्त्र के लिए दिखला सकते हैं। कालिदास के भी कई मुहावरे कौटिल्य से लिए प्रतीत होते हैं।

अब तक हमने प्राप्त प्रमाण यह सिद्ध करने के लिए कि (१) कौटिल्य का सम्राट् चन्द्रगुप्त से राजनीतिक सम्बन्ध था (२) कौटिल्य अर्थशास्त्र की एक ग्रन्थ के तौर पर सत्ता थी, इकट्ठे किए हैं। अब यह दिखाना शेष रह गया है कि यह ग्रन्थ एक वैयक्तिक लेखक का लिखा हुआ है, न कि एक सम्प्रदाय का, जैसे कि अन्य बहुत से ग्रन्थ लिखे गए है।

प्राचीन विषयों में प्रामाणिक जर्मन विद्वान् प्रो० जैकोबी ने इस विषय पर विचार किया है। वह हिलब्रान्त के इस कथन से-कि 'कौटिल्य अपने आप इस ग्रन्थ का लेखक नहीं—सहमत नही हैं। हिलब्रान्त के इस कथन का आधार 'इति कौटिल्यः' 'नेति कौटिल्यः'—जो कि ग्रन्थ में कम से कम ७२ वार आया है—इन वाक्यों का होना है। इन्हीं से यह ग्रन्थ एक सम्प्रदाय का है, यह सिद्ध किया जाता है। ग्रन्थ में अपना नाम आना भारतीय ग्रन्थों के लिए साधारण है। इसका

अभिप्राय यह है कि (१) जिस ग्रन्थकार के नाम से वह ग्रन्थ है, वह सम्प्रदाय का प्रवर्तक है। सम्प्रदाय के विचार गुरू से शिष्य इस प्रकार परम्परा से स्थिर रहते हैं। (२) इस प्रकार आते हुए विचार पीछे आने वाले शिष्यों ने पुस्तकरूप में कर दिए हैं। इन दोनों से कोई भी बात कौटिल्य के विषय में नहीं कही जा सकती। कौटिल्य की ऐतिहासिक स्थिति इस बात पोषण नहीं करती। कौटिल्य जैसे मनुष्य का उपरिलिखित प्रकार से एक सम्प्रदाय का प्रवर्तक होना सम्भव नहीं है। कामन्दक ने विष्णुगुप्त व कौटिल्य को अपना गुरू लिखा है। इस से संम्प्रदाय का न होना ही सिद्ध होता है। कामन्दक अपने गुरु का ही अनुकरण करने वाला नहीं, पर अन्य 'राजविद्याविदः' का भी। उसका कौटिल्य से मत भेद भी है। अर्थशास्त्र की अन्तःसाक्षियां भी यही बात सिद्ध करती हैं। कौटिल्य अपने से पूर्व के आचार्यों का बार बार—१४४बार से कम नहीं–ज़िकर करता है। और उन सब भागों में उन आचार्यों से अपनी सम्मति की भिन्नता दिखाता है। समालोचना करता है।—एतत् कौटिल्यदर्शनम्—यह केवल एक बार आया है। यह समालोचना और सम्मति भेद इसी बात को प्रामाणित करता है कि यह ग्रन्थ एक व्यक्ति ने रचा है। न कि सम्प्रदाय ने। यदि यह ग्रन्थ एक सम्प्रदाय में बना होता और कौटिल्य की मृत्यु के बहुत पीछे लिखा गया होता तो 'इति कौटिल्यः' 'नेति कौटिल्यः' आदि का क्या अर्थ होता और पूर्व आचार्यों से भेद दिखाने का क्या अभिप्राय होता?

दूसरे, हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि अर्थ शास्त्र के दो बड़े भागों में–अध्यक्ष प्रचार, कण्टकशोधन और योग वृत्तम्— किसी विरोधी आचार्य का उल्लेख नहीं। इन भागों का सम्बन्ध विशेष कर क्रियात्मक बातों से— जैसे पुलीस, बजट आदि— ही है। इन बातों का सम्प्रदाय से क्या सम्बन्ध? ये तो एक क्रियाशील राजनीतिज्ञ द्वारा ही लिखे जाने चाहियें। इन बातों में कौटिल्य को कोई विरोधी आचार्य भी नहीं मिलता, जिस की कि वह समालोचना करे, 'क्यों कि ये विषय ऐसे सम्प्रदायों— जिनका कि क्रियाशील राजनीति से सम्बन्ध नहीं है—के हैं ही नहीं। यही बात 'प्रायशः' शब्द से भी स्पष्ट होती है, जो कि प्रारम्भिक पंक्ति में आता है।

हमें इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि चाणक्य अपने पूर्व आचार्यों का जिक्र किस प्रकार करता है। वह पूर्व आचार्यों के लिए एक वचन और बहुवचन दोनों का प्रयोग करता है। बहुवचन की अवस्था में उसका अभिप्राय सम्प्रदाय से होता है और एक वचन की अवस्था में अकेले आचार्य व लेखक से। यह बात ध्यान देने योग्य है कि ये नाम एक ही क्रम में कई स्थानों पर आते हैं। सम्भवतः यह क्रम काल के अनुसार नहीं हैं परन्तु समालोचना आदि की सुगमता के लिए है। जिन सम्प्रदायों का जिकर कौटिल्य ने किया है वे केवल अर्थशास्त्र के ही न थे पर, धर्मशास्त्र के भी। ऐसा प्रतीत होता है कि कौटिल्य से पहले केवल अर्थशास्त्र का कोई स्वतन्त्र सम्प्रदाय नहीं था।

अर्थशास्त्र की लेखन शैली पर ध्यान देने से भी यह बात स्पष्ट हो जावेगी कि कौटिल्य एक स्वतन्त्र लेखक था। भारतवर्ष में वाङ्मय के विकास को हम तीन विभागों में बांट सकते हैं। पहली अवस्था में परम्परागत चले आते हुए विचारों और श्लोक मन्त्र आदि को एकत्रित कर ग्रन्थ बने। ये ग्रन्थ भिन्न २ सम्प्रदायों में बने यथा—

उपनिषदें, ब्राह्मण, वेद आदि। दूसरी स्टेज में सूत्रों की रचना—ये भी सम्प्रदायों में बने। तीसरी स्टेज में भाष्यों का निर्माण हुआ। भाष्य सम्प्रदायों के विरोध में नहीं बनते, पर विभिन्न ग्रन्थकारों द्वारा बनाए जाते हैं। इस प्रकार सम्प्रदायों में बने ग्रन्थ; सूत्रों (धर्म, गृह्य, श्रौत) की शैली पर हैं। और पृथक् स्वतन्त्र लेखकों के (यास्क का निरुक्त, पतञ्जलि का महाभाष्य) ग्रन्थ 'भिन्न प्रकारके हैं। इनमें सूत्रों पर अपनी दृष्टि से भाष्य किया होता है। यही बात कौटिल्य के अर्थ शास्त्र में है। इस प्रकार अर्थशास्त्र; सूत्र और भाष्य-दोनों का रूप है। ग्रंथ के अन्त में लिखा है—

दृष्ट्वा विप्रतिपत्तिं बहुधा शास्त्रेषु भाष्यकाराणाम्।
स्वयमेव विष्णुगुप्तश्चकार सूत्रञ्च भाष्यञ्च॥

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ सम्प्रदाय में नहीं बना है, पर एक ही लेखक ने लिखा है। अब हम इसी बात को सिद्ध करने के लिए पुस्तक की अन्तः साक्षियां दिखाएंगे:—

(१) सुखग्रहणविज्ञेयं तत्वार्थपदनिश्चितम्।
कौटिल्येन कृत शास्त्रं विमुक्तः ग्रन्थविस्तरम्॥
(१.१)

(२) सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च।
कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः॥

(३) एवं शास्त्रमिदं युक्तमेताभिस्तन्त्रयुक्तिभिः।
अवाप्तौ पालने चोक्तं लोकस्यास्य परस्य च॥
(१५,१)

(४) धर्ममर्थञ्च कामं च प्रवर्तयति पाति च।
अधर्मानर्थविद्वेषानिदं शास्त्रं निहन्ति च॥

(५) येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्॥
(Ibid)

कहा जा सकता है ये श्लोक पीछे से मिलाए गए हैं। पर प्रो० जैकोबी के कथनानुसार यदि उनको पुस्तक से निकाल दिया जाय तो निर्दिष्ट अध्याय अपूर्ण मालूम होंगे। इन अन्तःसाक्षियों से कौटिल्य का स्वतन्त्र लेखक होना स्पष्ट है। अब अब हम उन वाक्यों को उद्धृत करते हैं जिन से कि यह समझा जा सकता है कि चाणक्य ने—जो कि चन्द्रगुप्त का मन्त्री था—यह ग्रन्थ चन्द्रगुप्त के लिए बनाया—

(१) अप्रणीतो हि (दण्डः) मात्स्य न्यायमुद्भावयति।
बलीयानबलं हि ग्रसते दण्डधराभावे। तेन गुप्तः प्रभवति (१, ४, २)

(२) विद्याविनीतो राजा हि प्रजानां विनये रतः।
अनन्यां पृथिवीं भुङ्क्ते सर्वभूतहिते रतः॥
(१'५, २)

(३) तद्विरुद्धवृत्तिरवश्येन्द्रिय श्चातुरन्तोऽपिराजा सद्योविनश्यति (१, ४, ३)

(४) देशः, पृथिवी, तस्यां हिमवत् समुद्रान्तमुदीचीनं योजन सहस्र परिमाणं आतर्यक्चक्रवर्तिक्षेत्रम् (९, १३५—६)

पहले वाक्य में चन्द्रगुप्त अपने किये काम को न्याययुक्त समझता है। जिस से कि चन्द्रगुप्त ने अपने शक्तिशाली राज्य द्वारा विद्रोह को शान्त किया और नन्द के समय की अशान्ति को दूर किया। 'तेन गुप्तः प्रभवति' का अभिप्राय यह हो सकता है—"इस कारण से—विद्रोह के शान्त होने और अशान्ति दूर होने से—गुप्त अर्थात् चन्द्रगुप्त 'प्रभवति' फूलता फलता है। अन्य तीन वाक्य भी हमारी सम्मति में चन्द्रगुप्त द्वारा स्थापित सम्पूर्ण भारत में हिमालयसे समुद्र पर्यन्त (हिमवत् समुद्रान्तरं) और चारों दिशाओं में (चातुरन्तोऽपि राजा) एक राज्य का निर्देश करते हैं। इस प्रकार यद्यपि सीधा निर्देश कहीं नहीं है, पर अप्रत्यक्ष निर्देश चन्द्रगुप्त की एक सत्ता का द्योतक है। यदि अर्थशास्त्र का 'अच्छी प्रकार अध्ययन किया जावे तो इस प्रकार के निर्देश ढूंढे जा सकते हैं जो कि उस समय की इस प्रसिद्ध घटना पर थोड़ा बहुत प्रकाश डाल सकें।

अरी धधक उठ !!!

(लेखक— श्रीयुत 'नवीन')

अरी, धधक उठ धक धक कर तू महानाश की भट्टी प्यारी,
बढ़ आने दे ये अपनी लपटें लप लप करती हत्यारी।
धुआँधार अम्बर हो जावे, क्षितिज लालिमा से रंजित हो,
वसुधा की विभूतियां आज चिता की गोदी में संचित हों।
एक एक क्षण में सहस्र युग के जलने की हो तैयारी।
अरी, धधक उठ धकधक कर तू महानाश की भट्टी प्यारी।१॥

रंगे, खून से हाथ, लोचनों में प्रपञ्च का कज्जल छाया,
मस्तिष्क में मोह–मदिरा ने अपना चिर नव रंग जमाया।
हिय में घृणा-भाव घुस बैठा स्नेह-भावनाएँ रोती हैं,
अन्तरतर में कायरता की कुत्सित लीलाएँ होती हैं।
अरे, अग्नि के पुञ्ज, कहाँ हैं तेरी दहन-शक्तियां सारी।
बढ़ आने दे वे अपनी लपटें लपलप करती हत्यारी ॥२॥

रोम रोम में आग लग उठे, झुलस जल उठे केश पाश यह,
त्वचा जले ऐसी कि अग्नि का पुञ्ज दिखाई दे बस अह रह ;
मज्जा की घृत–आहुति से आमन्त्रित हो लपटें बढ़ आवें।
मांस-पिण्ड की, अस्थि–खण्ड की भेंट चितामें हां चढ़ जावे,
यों जीवन का घृणित मोह-मद-शत्रु जल जाये यह व्यभिचारी।
अरी, धधक उठ धक धक कर तू महानाश की भट्टी प्यारी ॥३॥

जकड़ा हुआ शरीर तपस्या तप्त बने, जंजीरें टूटें,
असम्भावनाओं की हिम्मत के रह रह कर छक्के छूटें ;
जीवन और मरण का सिंह द्वार नया खुल जावे, सजनी,
आज उगा दे सूर्य्य नया, हो जाये शेष अमा की रजनी ;
कर दे भस्मीभूत शृङ्खलाओं की कड़ियाँ न्यारी न्यारी।
अरी, धधक उठ धकधक कर तू महानाश की भट्टी प्यारी ॥४॥

गतानुगति की, परिपाटी की मूढ़ प्रथायें घुसी हुई ये—
धर्म्म-बेलि की पत्ती पत्ती बना रही हैं छुई-मुई ये ;
आग, लपक कर इन्हें खींच ले तू अपनी गोदी में, रानी,
आ, झकझोर मूढ़ता को भस्मावशेष कर दे, कल्याणी,
तू मत देख, धड़कने दे री इस हिय की धुकधुकी बिचारी ।
खूब धधक उठ, धकधक कर, तू महानाश की भट्टी प्यारी ॥५॥
जड़ता बनी धर्म्म-भूषण, शठता आचार्य्या बन बैठी है,
भूत दया का रूप धरे इस ओर नपुंसकता ऐंठी है,
सामाजिक औदास्य भाव बन गया भाग्य का फेर निराला,
निरुत्साह, दौर्बल्य, भीति भय का पड़ गया हृदय पर पाला;
करदे नष्ट आज सदियों का संचित यह कुभाव अविचारी ।
अरी, धधक उठ धकधक कर तू महानाश की भट्टी प्यारी ॥६॥
आज, हृदय के खण्ड, नेह पय पालित, वत्सों को माताएं—
जीवित भेंट चढ़ाने को बढ़ बढ़ कर के अर्पित कर जाएँ ।
भर जायें विस्तृत प्राङ्गण के कोने कोने में वैरागी,—
जिनकी आँखों में मस्ती, ओठों पर हो स्मित रेखा जागी;
सिर पर कफ़न बाँध आए आहुति देने ये विकट प्रहारी ।
अरी, धधक उठ धकधक कर तू महानाश की भट्टी प्यारी ॥७॥
आज, सुलग ऐसी कि कहीं भी लौ का ओर न छोर रहे री,
उदधि सलिल सी लहराती लपटों का पुञ्ज कृशानु बहे री,
हँस हँस कर तू , अरी हसन्ती, अन्त अनन्त सृष्टि का करदे,
अंगारों को तू मां की वत्सलता-विमल वृष्टि में भरदे ;
बस कठोरता और शुष्कतामय आदेश रहे भयहारी ।
अरी, धधक उठ, धकधक कर तू महानाश की भट्टी प्यारी ॥८॥
शत शत सुख की अभिलाषाएं छिन में छार छार हो जाएँ,
कई सहस्र हृदय की दुर्बलताएँ पल भर में जो खो जाएँ ;
लक्ष लक्ष लोचन में चमके प्राण दान की निर्मम ज्वाला,
कोटि कोटि कण्ठों से सर्वनाश का हो उद्घोष निराला ;

झटक झूम झकझोर भस्म करदे निसर्ग की तुङ्ग अटारी।
अरी, धधक उठ धकधक कर महानाश की भट्टी प्यारी ॥९॥
आज सृष्टि-संहार-भार हिय हार बना तेरा, मतवाली,
तेरी इन कराल दाढ़ों में मृत्यु खेलती है विकराली ;
भाल देश पर दहन-समस्या की, गहरी रेखाएँ अंकित,
रक्ताकांक्षा से तेरी यह जिह्वा कुछ लपकी, कुछ शंकित ;
मेरी हृदय-शिला पर कर ले पैनी अपनी लपट-कटारी।
अरी, धधक उठ धकधक कर तू महानाश की भट्टी प्यारी ॥१०॥
आशा और मुक्ति की व्याकुलता अब निखर उठे कुन्दन-सी,
लगन लग उठे, और झुके, आदर्श चरण में अभिवन्दन-सी
क्रन्दन क्रन्दन रणहुङ्कार दिशाओं में भर जाये ऐसे,—
ज्वालामुखी पहाड़ों में विस्फोट घोष भर रहता जैसे ;
एक एक चिनगारी बन जाये नवजीवन की संचारी।
अरी धधक उठ धकधक कर तू महानाश भट्टी प्यारी ॥११॥
मान और मर्यादा छूटी, बिखर गई गरिमा क्षण भर में,
रण हुंङ्कारकारिणी शक्ति लुप्त हो गई आह, अम्बर में,
गिरि गह्वर में, बन उपवन में, अथवा किसो शून्य प्रान्तर में,
डोल रहे हैं कुछ दीवाने ले आशा प्रदीप निज कर में,
कब से खोज रहे हैं तुझ को सर्वनाश की ओ चिनगारी !
अरी, धधक उठ धकधक कर तू महानाश की भट्टी प्यारी ॥ १२ ॥
आज सव्यसाची खाण्डव विपिन-दहन फिर से दिखला दे,
अग्नि-कुमारों को आग से खेलना तू फिर से सिखला दे,
दिखला दे कि मरण ही जीवन है, रण प्राङ्गण ही गीता है;
सिखला दे, ओ आग, कि महाशान्ति तुझ से ही परिणीता है,
तेरी अनुगामिनी बनी नव प्रभात की ऊषा सुकुमारी।
क्यों झिझके री धधक-धधक तू महानाश की भट्टी प्यारी ॥१३॥
जल, थल, शून्याकाश अग्नि का कुण्ड बने विकराल भयंकर,
वर्त्तुल महाव्योम कक्षा बन जाए उसकी परिधि निरन्तर,

महाकाल का भाल नेत्र खुल जाए, आग लगे प्रलयंकर,
सर्व-भक्षिणी जीभ लपलपाती लपटें उट्ठें अभ्यन्तर ;
जीवन मोह, शिथिलता, कायरता जल जाएँ बारी बारी।
अरी, धधक उठ धक धक कर, तू महानाशकी भट्टी प्यारी ॥१४॥
चट चट करती धू धू करती, हा-हा हू हू-कार मचा दे,
अपने शोलों के फूलों से मेरा आंगन आन रचा दे,
अरी, नचादे अपनी लपटें, इधर उधर सब ओर निराली,
काली की जिह्वा सी रक्त-शोषिका लौ लपके मतवाली,
धुआँ उठे, पाखण्ड जले, हिय खण्ड भुने, देखें त्रिपुरारी।
अरी धधक उठ, धक धक कर तू महानाशकी भट्टी प्यारी ॥१५॥
अम्बर से अंगारे बरसें, जलद धुआँ बन कर मँडरावें,
वज्रघोष से सुप्त रोष की भौंहें विकराली चढ़ जावें,
अँगड़ाई लेकर विद्रोह फट पड़े अब ज्वलन्त भूधर सा,
आज रिक्त आकाश दिखे रण-चण्डी के खाली खप्पर सा,
भर दे, हां खप्पर भर दे, लोहू से नहीं लपट से आ री।
आज धधक उठ धक धक कर, तू महानाशकी भट्टी प्यारी ॥१६॥

—'प्रताप' से



राम्से मेक्डोनल्ड की जीवन-स्मृतियाँ

(अनुवादक—स्ना०शंकरदेव विद्यालंकार)



"जब मैंने अपनी कुमारावस्था में, लण्डन नगरी में प्रवेश किया था, तब मेरे खीसे में आधा क्राउन तक भी विद्यमान नहीं था। उस समय सप्ताह में १० शिलिङ्ग लेकर लिफाफों पर पते लिखने का काम स्वीकार करके मैंने अपनी जीवन-यात्रा का प्रारंभ किया था। चाय पीने तक के लिए उसके पास पैसे न थे, इस लिए गरम पानी पीकर वह अपना गुजरान कर लेता था।"

'सण्डे एक्सप्रसे' का कहना है कि आज से कई वर्ष पूर्व ब्रिटेनिया को द्वितीय बार के प्रधान मन्त्री राम्से मेकडोनल्ड ने एक मुलाकात में अपना उपरोक्त प्रकार का वृत्तान्त सुनाया था। आज के प्रधान मंत्री के प्रारंम्भिक जीवन की यह दुःख भरी गाथा आज के तरुणों या यों कहिए भविष्य के नेताओं के लिए प्रेरणा पद और अनुकरणीय बात बन सकती है।

* * *

स्कॉटलैण्ड के ईशान कोण में स्थित, दो हज़ार आदमियों की छोटी बस्ती वाले लोसी माउथ गांव में मेरा जन्म हुवा। इस गांव के एक ओर मच्छियारे लोग अपना व्यवसाय चलाते थे और दूसरी ओर किसान लोग हल चला कर अपना गुजरान किया करते थे। मैं किसानों वाले विभाग में रहता था। जिस समय बड़े बड़े ज़मीदार लोग गरीब ग्रामीणों को अपने देश से खदेड़ कर निकाल देते थे और जिन दिनों में स्कॉच लोगों और ज़मीदारों का विरोध मज़बूत हो रहा था, उन दिनों मेरा बालपन व्यतीत हो रहा था। मुझे अच्छी प्रकार याद है कि बड़े ज़मीदार छोटे किसानों की जमीन को हड़प कर लिया करते थे। तथापि छोटे किसानों के कुमार एबर्डीन युनिवर्सिटी में उच्च शिक्षा के लिए पहुँचते थे और ज़मीदारों के घमण्डी और अपढ़ पुत्र न्यायालयों के दरवाज़े खटखटाया करते थे। मेरा विद्यार्थी जीवन साधारणतया व्यतीत हुवा। पाठशाला में जाने पर मुझे प्रतीत होता था कि हम कहां गन्दगी में आ गये। मुझे रमणीय जंगलों और सुंदर कुञ्जों में विहार करना पसन्द था। जहां तक मुझे याद है कि मेरा कोई भी सहपाठी सार्वजनिक रूप में प्रसिद्ध नहीं हुवा है, तथापि वे विभिन्न स्थानों में उत्तरदायित्व पूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उन में से कितने ही, जहाज़ों के कप्तान हैं, कुछ एक उपनिवेशों में काम कर रहे हैं, एक आध एबर्डीन में सर्जन हैं तथा बाकी सहपाठी अन्य स्कॉच लोगों की तरह व्यापार वाणिज्य में लगे हुए हैं। बाल्यकाल से ही मुझे राजनीति का विषय बहुत प्रिय है। स्कॉटलैण्ड के जिस प्रदेश में मेरा निवास था, वह प्रदेश प्रायः क्रान्तिकारी मनोवृत्ति वाला था।

अपने विद्यार्थी जीवन के बाद मुझे अपनी आजीविका का प्रश्न हल करना था। मेरी दृष्टि खेती पर गई और मैंने खेती करना प्रारंभ किया। खेती बाड़ी का काम मुझे पसन्द आया। खेती की कठिनाईयां मुझे विशेष नहीं प्रतीत हुईं। आस पास के किसानों के जीवन ने मुझे मुग्ध कर

दिया। उन में से प्रायः प्रत्येक कृषक जितना बाइबिल का अध्ययन करता था उतना ही वह बाँसुरी का भी अभ्यास किया करता था, और साथ ही वह गीत गाने में भी खूब रस लेता था। बस, 'वसन्त ऋतु आई कि वह सारा प्रदेश हल की आवाज़ के साथ गीतों की ध्वनि से गूंज उठता।

* * *

मैं उन किसानों से केवल एक बात में पृथक् रह जाता था। मैं उनकी जागृति में भाग नहीं ले पाता था और गीत भी नहीं बना सकता था। आजीविका के लिए काम धन्धे में लगना मेरे अध्यापकों को पसन्द नहीं आया। उन्होंने मेरी माता के साथ सलाह कर मुझे फिर पाठशाला में बिठाया। मुझे आधी फीस पर प्रविष्ट किया गया। मेरी इच्छा एबर्डीन युनिवर्सिटी में जाने की थी, परन्तु उस समय ऐसे संयोग न थे कि मैं वहां जा सकूँ। उस समय तक विद्यार्थियों की उच्च शिक्षा के लिए 'कार्नेगी ट्रस्ट' आदि की सुविधाएँ नहीं हो पाई थीं। तथापि युनिवर्सिटी की शिक्षा न मिलने के कारण मुझे कभी शोक नहीं हुआ। यह मेरी पूर्ण मान्यता है कि अधिकांश मनुष्यों को युनिवर्सिटी की शिक्षा फायदे की जगह हानि अधिक पहुँचाती है।

* * *

कुछ समय के लिए शिक्षक का काम करने के बाद मैं ब्रिस्टल में एक व्यक्ति के यहां निजू मंत्री के पद पर काम करता रहा। इस काम के साथ साथ ही मेरी यह भी अभिलाषा थी कि मैं 'रॉयल कालेज ऑफ़ साइन्स' जैसे किसी विद्यालय में से 'विज्ञान' पढ़ने के लिए छात्रवृत्ति (स्कॉलर शिप) प्राप्त करूँ। उस समय विज्ञान का विषय मुझे बहुत अच्छा लगता था। ब्रिस्टल में रहते हुए मेरी यह अभिलाषा पूर्ण न हो सकी और मुझे लण्डन में आना पड़ा। लण्डन में मैं उस समय तक किसी से परिचित न था। हाँ दो एक व्यक्तियों के विषय में कुछ जानकारी अवश्य रखता था। अन्त में युवकों के एक अख़बार में राजनीति तथा अन्य विषयों पर लेख लिखने वाले, एक सोलीसिटर के कारकून से मेरी मित्रता होगई और मैं उसके साथ रहने लगा। अब उस व्यक्ति का क्या हुवा। सो मैं नहीं जानता। जब मैं लण्डन पहुँचा तब मेरे पास आधा क्राउन तक भी न था। इतना भी मेरे पास होता तो मैं बहुत खुश होता।

* * *

पहले मुझे 'साईक्लिस्ट टूरीङ्ग क्लब' में, सप्ताह में केवल दस शिलिङ्ग के वेतन पर, कागजों पर पता लिखने का काम मिला। इतना तो खाने पीने में ही निकल जाता था। लेकिन सिर पर आए हुए कर्ज़ को पूरा करना तथा फूटी कौड़ी के बिना लण्डन में रहना कितना कठिन काम है, इसका मुझे पूर्ण अनुभव होगया।

'साईक्लिस्ट टूरिङ्ग क्लब' की नौकरी पूरी करने के उपरान्त मैं सप्ताह में पन्द्रह शिलिङ्ग के वेतन पर एक दुकान में क्लार्क का काम करने लगा। इतने में भी मेरी गुज़रान आदि बड़ी कठिनता से चलता था। इसी में से मैं अपनी माता का पोषण करता था तथा लण्डन की बिरबक कॉलेज और हाईबरी इन्स्टीट्यूट की फीस भी देता था। अपनी छुट्टियां स्कॉटलैण्ड में बिताता और पैसा बचाता था। मैं यह सब कैसे कर लेता था—यह भी बतला देता हूँ। अपने भोजन का कच्चा सामान अपने घर से मंगाता था। और बाकी का थोड़ा बहुत सामा-

न किंग्स क्रौस के पास वाली छोटी छोटी दुकानों से खरीद लेता था। चाय या काफ़ी पीने के लिए मेरे पास पैसे न होते थे, इस लिये चाय के बदले गरम पानी पीकर काम चलाता था। आदत पड़ जाने के बाद गरम पानी पीने में और ही स्वाद आता है।

*　　*　　*

दुपहर के समय मैं आल्डर्स गेट स्ट्रीट में आई हुई 'पीयर्स एण्ड प्लेन्टी' नामक दुकान में अपना भोजन करता था। इस प्रकार भोजन करने में मेरे प्रति दिन सात आठ पेन्स खर्च होते थे।

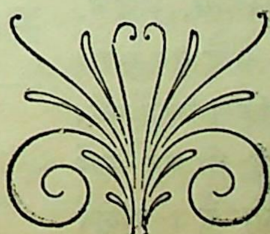
*　　*　　*

थोड़े समय के बाद मुझे एक सप्ताह में एक पौण्ड के वेतन पर एक स्थान पर हिसाब किताब रखने का काम मिल गया। पर यहां पर भी मैं अधिक समय नहीं रहा।

*　　*　　*

मेरे एक मित्र ने मुझे अपनी रसायनशाला में काम करने का अवसर दिया और मुझे थोड़ा रासायनिक कार्य भी सौंपा। अब मैं प्रातः, मध्यान्ह और साँझ सारे समय घर पर काम करने लगा। इसका वही परिणाम हुआ जो होने वाला था। मेरा स्वास्थ्य बहुत गिर गया। पास मैं पैसा भी न था इस लिए अच्छा होते ही मुझे पुनः काम ढूंढना पड़ा। नेशनल लिबरल क्लब के मंत्री को मैं जानता था। उसने मुझे कहा कि मि० थामस लॉग को एक निजू मंत्री की आवश्यकता है। अनिच्छा होते हुए भी मुझे वह कार्य स्वीकार करना पड़ा। मैंने सोचा कि विज्ञान और राजनीति-शास्त्र इन दोनों में अपने मन को बाँटे हुए रखना ठीक नहीं, और साथ ही रोगी रहने कारण मैं परीक्षा की आवश्यक तैयारी भी नहीं कर पाया था, इस लिये मैंने राजनीति और पत्रकार के धन्धे में पड़ने का निश्चय किया। मि० लॉग के साथ मैं चार वर्ष तक रहा। इस अरसे में मैंने एक पत्रकार (संपादक) के रूप में स्वतन्त्र कमाई करने की शक्ति प्राप्त कर ली। जिस वर्ष मि०लॉग हाउस ऑफ कॉमन्स में निर्वाचित हुए, उस वर्ष मैं उन से अलग होगया। आगे जाकर मैं साम्य-वादी लेख लिखने लगा। मैं लण्डन आते ही सोशलिस्ट पार्टी में सम्मिलित हो गया था। परन्तु उन दिनों यह बात बहुत साधारण समझी जाती थी।

(अपूर्ण)



वेदों में दार्शनिक विचार

अथ तृतीयोऽध्यायः

यह संसार क्यों बनाया ?

[लेखक— श्री पं० धर्मदेव जी वेदवाचस्पति]

जीवात्मा



विचारपरम्परा से अब तक हम प्रकृति तथा परमात्मा का स्वरूप दिखा चुके हैं। प्रकृति स्वभाव से अनादि तथा अनन्त है, और यह सृष्टि भी प्रवाह से अनादि तथा अनन्त है। अनादिकाल से सृष्टि तथा प्रलय का चक्र चलता आ रहा है और चलता रहेगा। परमात्मा सृष्टि तथा प्रलय का करने वाला है। परन्तु सृष्टि यदि प्रवाह से अनादि है और परमात्मा उसका करने वाला है तो परमात्मा किस के लिए यह सृष्टि रचता है। और क्यों रचता है ? कौन इस संसार का भोग करता है ? प्रकृति जड़ वस्तु है वह भोग नहीं कर सकती। और क्यों कि प्रकृति भोग्य वस्तु है, तथा भोक्ता और भोग्य एक नहीं हो सकते इस लिये भी प्रकृति को भोक्ता किसी हालत में नहीं कह सकते और यदि परमात्मा इस जगत् का भोक्ता है तो उसका 'न-तस्य प्रतिमा अस्ति'[1] इत्यादि मंत्रों में क्यों वर्णन किया गया है। वह "अकायं, अव्रणं, अस्नाविरं"[2] क्यों कहा गया है। यदि वह स्वयं भोग करता है तो वह 'अकामः'[3] किस तरह कहा जा सकता है, यदि वह भोक्ता है तो वह 'कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः' कैसे हो सकता है। संक्षेप में वह 'ईश्वर' क्यों कहा जाए। इस लिए यदि प्रकृति जड़ और भोग्य वस्तु है, और परमात्मा इस सृष्टि का कर्ता, धर्ता, हर्ता तथा शरीर रहित है तो ये दोनों—प्रकृति और जीवात्मा-संसार के भोक्ता नहीं कहे जा सकते। इनके अतिरिक्त कोई और ही भोक्ता होना चाहिए। और वह चेतन होना चाहिये क्योंकि विना चेतनके वस्तुओं का ज्ञान नहीं हो सकता। इन्द्रियां जड़ हैं, अतः वह भी ज्ञान ग्राहक नहीं जा सकतीं यद्यपि वे ज्ञानसाधन अवश्य हैं। और साथ ही एक इन्द्रिय सब प्रकार के रूप, रस, गन्ध आदि विषयों का ज्ञान कर भी नहीं सकती। प्रत्येक इन्द्रिय का एक २ निश्चित विषय है। सब इन्द्रियां अपने २ विषय का ज्ञान करती हैं और उन से अतिरिक्त कोई और ही वस्तु उन सब ज्ञानों में सम्बन्ध स्थापित करती है। इस लिये इस संसार का भोक्ता प्रकृति तथा ईश्वर से भिन्न कोई तीसरी वस्तु माननी पड़ती है। इसी कारण लिखा है:—

> "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाय समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
> तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥
> ऋ० । १ । १६४ । २०॥

अर्थः— साथ मिले जुले दो मित्र सुपर्ण एक ही वृक्ष पर साथ २ रहते हैं। उनमें से एक मीठा

१. यजु० । ३२ । ३ ।

२. यजु० । ४० । ८ ।

३. अथर्व० १० । ८ । ४४

फल खाता है, और दूसरा भोग न करता हुआ केवल प्रकाश करता है।[1]

इस मंत्र में संसार को वृक्ष से तथा जीव और परमात्मा को दो पक्षियों से उपमा देकर सारा रहस्य स्पष्ट कर दिया है। इस संसार में प्रकृति, आत्मा तथा परमात्मा ये तीन वस्तुएं है। प्रकृति भोग्य वस्तु है जिसका एक सुपर्ण (जीवात्मा) भोग करता है। दोनों सुपर्ण (जीवात्मा तथा परमात्मा) कुछ गुणों के साम्य से 'सयुज' तथा 'सखा हैं। परन्तु ये दोनों बिलकुल समान नहीं। इन में सब से मुख्य भेद यह है कि इन में से एक (जीवात्मा) संसार का भोग करता है दूसरा (परमात्मा) इस संसार का भोग नहीं करता वह केवल साक्षी द्रष्टा मात्र है।

परन्तु फिर प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि जीवात्मा चेतन है और परिणामतः प्रकृति से उत्पन्न नहीं होता तो यह कहां से आता है, इस को कौन पैदा करता है। यही प्रश्न ऋग्वेद १। १६४। ४। में इस तरह किया गया है—

"को ददर्श प्रथमंजायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति।
भूम्या असुरसृगात्माक्व स्वित् को विद्वाँसमुपागात् प्रष्टमेतत्॥

अर्थः— प्रथम जायमान इस विश्व को किसने देखा ? अर्थात् किसीने नहीं। (क्योंकि) अस्थि वाले (इस दृश्य संसार) को अस्थिरहिता (अदृश्य प्रकृति) धारण करती है। पृथ्वी से यह स्थूल प्राण तथा तदुपलक्षित सूक्ष्म शरीर आदि होते हैं। परन्तु शरीर से सम्बद्ध यह चेतन जीव कहां से होता है ? कौन मनुष्य इस प्रश्न को पूछने के लिये तत्व ज्ञानी विद्वान् के पास जाता है।

वस्तुतः यह विचारणीय है कि यह आत्मा कहां से आता है। क्या यह उत्पन्न होकर शरीर के साथ नष्ट होजाता है, या अनादि है। यदि यह जीव उत्पन्न होकर शरीर के साथ नष्ट हो जाता है तो इसे उत्पन्न कौन करता है। यदि परमात्मा उत्पन्न करता है तो वह भिन्न २ तथा अत्यन्त विरुद्ध परिस्थितियों में क्यों पैदा करता है। किसी को जन्म से सुखी तथा किसी को दुःखी क्यों बनाता है। यदि वह अपनी इच्छा से कोई शरीर बना कर जीव को दे देता है तो वह न्यायकारी किस तरह कहा जा सकता है। फिर मनुष्य 'वयं अनागाः स्याम ? इत्यादि प्रयत्न क्यों करें, जब कि फल देना परमात्मा की स्वेच्छाचारिता पर निर्भर है। परन्तु यदि परमात्मा स्वेच्छाचारी नहीं; वह प्रत्येक मनुष्य को उसके कर्म के अनुसार फल देता है तो मनुष्य का आधुनिक जीवन किस कर्म का परिणाम है। क्या यह शरीर मनुष्य को अपने पूर्व किये गये-कार्य के मुताबिक मिला है ? क्या इस शरीरवाला जीवात्मा तथा इस से पहिले जन्म में काम करने वाला जीवात्मा एक था ? और इसी प्रकार क्या उससे भी पूर्व उसे कर्म के अनुसार शरीर मिला था और उस जन्म में कर्म करने वाला तथा तत्परिणामी फल के भोगने वाला जीवात्मा एक था। इस तरह कर्मानुसार जन्म ग्रहण का सिद्धान्त मानने पर सृष्टि तथा प्रलय के अनादि प्रवाह के साथ २ जीवात्मा को भी अनादि काल से सत्ता माननी पड़ेगी। अर्थात् जीवात्मा उत्पत्ति रहित या अनादि स्वीकार करना होगा। इसी लिये यदि वेद के निम्न लिखित सिद्धान्त (Proposition) ठीक हैं कि—

(i) सृष्टि प्रवाह से अनादि है।

(ii) परमात्मा न्यायकारी तथा कर्मों के

१. बहुत से भाष्य कर्ता यहां 'द्वा सुपर्णा' से मुक्त तथा अमुक्त जीव का ग्रहण करते हैं।

अनुसार फलदाता है।

(iii) इस संसार का भोक्ता ईश्वर तथा प्रकृति से भिन्न तीसरा (जीवात्मा) है।

तो युक्ति शृंखला के अनुसार यह भी मानना पड़ता है कि:-

(iii) कि वह भोक्ता जीवात्मा उत्पत्ति-विनाश रहित होना चाहिए। इस लिए अथर्व० । ९ । १० । ८ । में लिखा है:-

"अनच्छये तुरगातु जीवमेजद्ध्रुवं मध्य आपस्त्यानाम् ।
जीवो अमृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः॥"

अर्थ—परमेश्वर शरीरों के बीच में रहने वाले, अविनाशी, शीघ्र गति करने वाले जीव को गति देता हुआ तथा प्राणशक्ति से सम्पन्न करता हुआ रहता है। विनाश रहित जीवात्मा अपने कर्मों के कारण अथवा अपनी शक्ति के कारण मरणधर्मा शरीर के साथ समान स्थानवाला होकर विनश्वर जगत् के बीच विचरता है। अथवा न मरने वाला जीवात्मा अपने पाप पुण्य कर्मों के कारण मरण-धर्मा शरीर के साथ समान स्थान वाला होकर जगत् में बार बार आता है। अर्थात् जीवात्मा नित्य है, किन्तु देह अनित्य है। भले बुरे कार्यों के कारण इस संसार में बारबार आना पड़ता है। शरीर मरता है, किन्तु आत्मा नहीं मरता।

इसी प्रकार ऋ० । १ । १६४ । ३८ में जीव को आमर्त्य बताया गया है।

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्तान्यन्यं चिक्युर्न
निचिक्युरन्यम् ॥"

अर्थ–अमरणधर्मा नित्य यह आत्मा मरणधर्मा भौतिकदेह के साथ एक स्थान में रहने वाला होता है। इस प्रकार का देह विशिष्ट आत्मा भोग से गृहीत है, अर्थात् भोग करता है। और यह जीव (शुभ कार्य से) ऊपर आता है अर्थात् उच्च-योनि को प्राप्त करता है तथा (अशुभ कर्म से) नीचे बुरी योनियों में जाता है। इस प्रकार देह विशिष्ट आत्मा तथा शुद्ध आत्मा दोनों विभाग पूर्वक सदा वर्तमान रहते हैं। और दोनों लोक में सर्वत्र गमन करने वाले तत्तत्कार्यफल भोग के लिये लोकान्तरों में गति करते हैं। मनुष्य गण एक (देह विशिष्ट) को जानते हैं और एक (विशुद्ध आत्मा) को नहीं जानते।

इस मंत्र में स्पष्ट शब्दों में जीव को अमर्त्य तथा देह को मर्त्य कहा गया है। क्यों कि जीव शरीर में रहने वाला है, इस लिये उसका अनुमान होता है। इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर लिखा है । "अपश्यं गोपाम निपद्यमानम्" ऋ० । १० । १७७ । ३ ॥ और "इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृतागृहे । अथर्व० १० । ८ । २६ ॥

अर्थः–मैंने अविनाशी, इन्द्रियों के रक्षक जीवात्मा को देखा है ॥ १ ॥ यह आत्मा देवता कल्याण करने वाली, जरारहित, तथा अमर है और मनुष्य के घर अर्थात् शरीर में निवास करती है ॥ २ ॥

इस प्रकार इन सब मंत्रों के आधार पर यह कह सकते हैं कि वेद में प्रकृति तथा परमात्मा की भांति जीव को उत्पत्तिविनाशरहित माना गया है।

जीव अनेक हैं जीवात्मा की अनेकता इतनी अधिक स्पष्ट है जितना दिन में सूर्य का प्रकाश, तथापि क्योंकि दर्शन में सब प्रकार के

१–ऋग्वेद । ७ । ८७ । ७ ।

विचारभेद पाये जाते हैं इस लिए इस विषय पर भी थोड़ासा प्रकाश डालना आवश्यक हो गया है। परमात्मा एक है, प्रकृति भी है। परन्तु जीवात्मा एक है यह नहीं कहा जा सकता। यदि सब प्राणियों में एक जीवात्मा होता तो सभी प्राणी एक ही तरह काम करते। सब में एक समय में एक प्रकार की इच्छा और एक ही वस्तु लेने का प्रयत्न तथा तज्जन्य रागद्वेषादि होने चाहिए। परन्तु ऐसा कहीं दिखाई नहीं देता। प्रत्येक मनुष्य पृथक २ इच्छा, रागद्वेष आदि में फँसा हुआ है। यदि एक ही जीवात्मा हो तो कर्मों का फल देना ही असम्भव हो जावे इस लिये अनेक जीवात्माओं का मानना अनिवार्य है। जैसा कि निम्नलिखित मंत्रों में लिखा भी है।

"यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे। तस्य यदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं नवेद" ॥ ऋ। १। १६४। २१॥

"यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागम निमेषं विदथा भिस्वरन्ति। उतो विश्वस्य भुवनस्य गोपा स मा धीरः पाकमत्रा— विवेश" ॥ ऋ०। १। १६४। २२॥

अर्थ—जिस संसाररूपी वृक्ष में मीठा फल खाने वाले जीवात्मारूपी पक्षी रहते हैं और सन्तान उत्पन्न करते हैं। उस वृक्षका जो मीठा फल है उन्हें जीव नहीं प्राप्त कर सकते जो पहले परमात्मा को नहीं जान लेते ॥ १॥ अनेक पक्षी अर्थात् जीवात्मा जहां अमृत के भाग के प्रति खण्ड रहित हो कर ज्ञान के साथ पहुंचते हैं वह सम्पूर्ण जगत् का स्वामी और रक्षक धीर परमात्मा मुझ पवित्र आत्मा में प्रविष्ट है ॥ २॥

इन दोनों मंत्रों में सुपर्ण शब्द का बहुवचनान्त प्रयोग किया जाता है जिस से जीवात्मा की अनेकता का सिद्धान्त स्पष्टतया मालूम हो जाता है।

अन्त में एक और प्रश्न विचारणीय रह जाता है जिस का उपरिलिखित [Proposition] से सम्बन्ध है। जीवात्मा नित्य है और सृष्टि भी प्रवाह से अनादि है और सृष्टिकर्ता परमात्मा भी नित्य है। अब विचारना यह है कि क्या जीव एक बार ही जन्म लेकर रह जाता है या प्रत्येक सृष्टि में बार २ जन्म लेता है। अथवा क्या एक बार के कर्मों से ही वह हमेशा के लिए स्वर्ग या नरक में चला जाता है, या कर्मानुसार उसका पुनर्जन्म होता है। जिस युक्ति परम्परा के आधार पर हमें जीव को अनादि मानना पड़ा है उसी तरह हमें जीव का प्रत्येक सृष्टि में अपने कार्य के अनुसार जन्म लेना भी मानना पड़ा है। जीवात्मा यदि एक बार ही जन्म लेता है तो फिर वही प्रश्न उपस्थित होता है कि वह जन्म जीव को किस तरह मिला। उसके लिए यदि जीव के पुरातन कर्म कारण माने जावें तो उसके पूर्वजन्म की कल्पना करनी पड़ेगी। इस लिये परमेश्वर को न्यायकारी तथा कर्मानुसार कर्मफल-दाता मानने पर जीवकी अनादि सत्ता तथा पुनः २ जन्म लेना स्वीकार करना पड़ता है।

क्या यह सिद्धान्त—पुनर्जन्म—वैदिक ऋचाओं में पाया जाता है, इस पर हमें विचार करना है।

जीवन गीत

गद्य-गीत

(ले०—श्री पं० नरेन्द्र जी विद्यालंकार,)

(१)

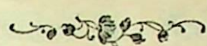
एक प्रसून,
उर्वी के आंगन में,
सहस्र पंखुड़ी खोल कर—
इन्दु कला की तरह खिला।
उसने, निज परिमल से
वन कुञ्जों को सरस किया;
मधु मक्खी को मधु दिया,
रसिकों को सौरभ से मत्त किया।
कवि के हृदय में गीत उपजाए,
तत्त्वज्ञानी को विचार स्फुटित कराये,
और अन्त में, देव पूजा के निमित्त
जन्म दाता से जुदा हो कर
निज जीवन दिया
प्रभु! ऐसा जीवन दो!!

(२)

एक वृक्ष ने
घनी छाया रची,
गृहविहीन को आश्रय दिया,
ग्रीष्म संतप्तको आश्रय दिया,
शीतल पवन फैला कर
जग को अनन्दित किया।
और स्वयं, प्रचण्ड शीत में
स्वयं ठिठर कर देह तजी
फिर, उसी शुष्क देह को
माघ की शीत निशामें,
अग्निसात् कर के—
दीन कृषक के शीर्ण शरीर को
चेतनता दे गया!!
प्रभु! ऐसा जीवन दो।



दुलाली,



(ले० पं श्री कृष्ण पांडे कलकत्ता)

(क)



दुसाधों के महल्ले में दुलाली से बढ़ कर और कोई सुन्दर कन्या न थी। उस के रूप को देख कर अड़ोसी पड़ोसी सीतल दुसाध के भाग्य की सराहना करते थे, क्यों कि दुसाधों के घर में ऐसी सुन्दरी कन्या का जन्म लेना कोई कम आश्चर्य की बात न थि, यह एक असाधारण घटना थी। लेकिन दुलाली, जन्म से ही अभागी थी। उसके जन्म के कुछ दिनों बाद ही कारख़ाने के अंग्रेज़ मैनेजर को मारने के अपराध में उस के पिता सीतल को एक वर्ष जेल की हवा खानी पड़ी। वर्ष भर तक किसी प्रकार दुःख सुख से दुलाली को पाला पोसा। सीतल जब जेल से छूट कर आया उस समय दुलाली प्रायः डेढ़ वर्ष की थी।

जेल से आकर सीतल वहां से डेरा डंडा उठा उठा रघुनाथ पुर चला गया। एक छोटा सा कच्चा फूस का घर, उस के पास ही छोटासा खेत, दो गाय बस यही उस की सम्पत्ति थी। इस से वह किसी तरह अपना गुजारा कर लेता था।

धीरे २ दिन बीतने लगे, समय के साथ २ लोग सीतल को जेल की बदनामी को भूल गये। उस के एक और लड़की हुई। परन्तु दुलाली के साथ उस के रूप की तुलना नहीं हो सकती, वह काली थी, रंग के अनुसार मा बाप ने उस का नाम रक्खा काली।

उमर के साथ २ रूप ने भी अपना उभार दिखाया, दुलाली बाल्यवस्था को लाँघ कर यौवनावस्था के दायरे पैर रख चुकी थी। किसी उर्दू शायर के शब्दों में उस की-आधी है जवानी आधा है लड़क पन उनका। दो दगाबाज़ों के कब्ज़े में है जीवन उनका"— वाली अवस्था थी। उस का अल्हड़ पन, चंचलता, शोखी, बात चीत का ढंग-सभी बातें गजब की थीं। दुसाध युवक उस को पाने के लिये अपनी तकदीर आजमाई करते थे। एक दूसरे को पिछे पछाड़ने में व्यास्त था। सभी युवक अपना प्राण देने को तैय्यार थे। इसे लेकर आये दिन एक न एक घटना होई जाती थी। अन्त में छतर पुर स्टेशन के लाईन मैन मनुआ ने इस होड़ में बाजी मार ली। व्याह के साथ बादही दुलाली पति के घर चली गई। सीतल ने दो वर्ष बाद ही काली का व्याह भी कर दिया और जमाई को घर जमाई बना लिया।

(ख)

दुलाली जैसी सुन्दरी स्त्री मिलने से मनुष्य की खुशी का ठिकाना न रहा। वह अपने भाग्य को सराहने लगा। भला दुसाधों में ऐसा रूप लावण्य कहां? यह तो बड़े बुढ़ों के पुण्य का प्रताप है जो ऐसी रूपवान स्त्री मिली। अतः वह दुलाली को पाकर मस्त-पागल-हो गया।

वह हरवक्त दुलाली को अपने सामने रखता, कभी आंखों की ओट नहीं होने देता। आस पास

में और भी रेल के खालासी रहते थे, यह सब अपनी कमाई का अधिकांश भाग ताड़ी पीने में ही खर्च कर देते थे। गर्मी के दिनों में क्वाटर के सामने वाले मैदान में खुली चांदनी के नीचे बैठकर दिन भर की थकावट दूर करते, किसी के हाथ में मादल, किसी के हाथ में बंसी किसी के हाथ में झांझ–सब कोई मिल कर नशे में नाचते कूदते और गाते बजाते थे। जाड़े के दिनों में माल गाड़ी से उड़ाये हुए कोयलों की धूनी के चारों तरफ़ इन की मजलिस जमती थ।

मनुआ इस मण्डली में सब से ज्यादा ताड़ी-शराब-पिता था, उस पर उस का स्वभाव भी चिड़चिड़ा था अतः सब गुस्सा विचारी दुलाली पर ही उतरता। वह प्रायः नशे में बदहास गाली बकता हुआ आता और दुलाली के कुछ कहने सुनने पर उसे मार धाड़ कर बिना कुछ खाये पिये ही सो जाता। भोर को जब नशा उतरता तो रात की पड़ी हुई रोटी खा कर कम्पनी का दिया हुआ कई जगह कारी लगा हुआ ब्लू कमीज पहन, साफा बाधते २ अपनी ड्युटी पर चला जाता। फिर बारह बजे–रोटी खाने को वक्त दुलाली की खोज होती। यह काण्ड प्रायः नित्य ही होता,

बिचारी दुलाली इन सब अत्याचारों को चुप चाप सहती थी। रात भर रोते बीतती और दिन को घर के काम काज में इस दुःख को भूलने की चेष्टा करती। दुलाली के रूप और उस पर इस तरह के अत्याचार होते देख कर अनेक युवकों के मन में फिर आशा का संचार हुआ, वे उसके पाने की चेष्टा करने लगे। कभी २ मनुआ की अनुपस्थिति में कोई पान देता, कोई तमाकु देता, कोई घर के काम में मदद देने का आग्रह करता, कोई बातों ही बातों में मनुआ की ओर से उसका मन फेरने की चेष्टा करता और कोई हिम्मत करके मनुआ को छोड़ उसे दूसरे के साथ व्याह करने की सलाह देता। लेकिन दुलाली ने इन सब को ऐसी फटकार बताई कि फिर और आगे बढ़ने की इनकी हिम्मत ही नहीं हुई। सब के सब पस्त हिम्मत हो चुप चाप बैठ गये।

देखते २ दो वर्ष बीत गये। इन दो वर्षों में मनुआ की कई जगह बदली हुई आखिर वह भतना स्टेशन पर स्थाई रूप से रहने लगा। दुलाली भी अब यौवन की प्रथम अवस्था को पार कर चुकी थी। अब वह चार सन्तानों की जननी है। लेकिन मनुआ अभी भी दुलाली को आंखों की ओट नहीं होने देता।

(ग)

लड़क पन से ही मनुआ का स्वभाव जिद्दी एवं चिड़चिड़ा था। उसे जरासी बात पर ही झट से क्रोध आजाता और उस अवस्था में वह भयानक से भयानक काम करने में भी नहीं हिचकता।

दुलाली का व्याह हुए आज लगभग पांच वर्ष होगये। कई वार हाथा जोड़ी करने पर भी मनुआ उसे उसके माता पिता से मिलने को भेजने के लिये तैयार नहीं हुआ। इस बार होली के अवसर पर बहुत कहने सुनने और एक सप्ताह के भीतर ही लौट आने के वादे पर मनुआ किसी तरह राजी हुआ। लेकिन जाते २ दुलाली को उसने चेता दिया कि वादा टलने पर उसे कठोर दण्ड भोगना पड़ेगा।

आज पांच वर्षों के बाद दुलाली ने मां बाप का मुह देखा, छोटी बहन से गले मिली— बाल्य काल के क्रीडा स्थल को देख कर उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। पर कितना परिवर्तन होगया? खोजने पर भी उसे वह पुराने स्थान अपने लड़क-

पन के लीला क्षेत्र न मिले। पहले जहाँ वह अपनी हम जोलियों के साथ आंख मिचौनी खेलती थी उस मैदान में आज एक ब्रहत्काय अट्टालिका खड़ी है, जिस छोटे से पोखरे में वह नित्य आकर बांसन मांजती न्हाती धोती थी वह आज एक स्वच्छ-बड़े तालाब के रूप में परिवर्तित हो गया है, कांटेदार बड़े के बदले मेंहदी के गाछ लगे हुए हैं, चारों ओर बगीचा लगा हुआ है, जिस में नाना भांति के देशो बिदेशी फल फूल के गाछ लगे हैं, बीच २ में लाल कंकरों की सड़क बनी हैं, कहीं लोहे या पत्थर की कुर्सियां कायदे से रक्खी हुई हैं। बंगले के फाटक हर मार्बेल पत्थर में काले अक्षरों में खुदा है—

"SHANTI LODGE."

अपने घर में भी उसने अनेक परिवर्तन देखे। वृद्ध माता पिता और भी वृद्ध हो गये हैं, छोटी बहन काली दो लड़कों की मा हो गई है, वह पति के साथ सुख से गृहस्थी चला रही है। उसका पति बाबू लाल कोचवानी करता है, महल्ले भर में वह भला आदमी समझा जाता है। मकान की अवस्था भी बदल गई है, दूध दही बेचने एवं महल्ले में अन्य लोगों की गाय दुहने जाने से महीने के अन्त खर्च बाद देकर कुछ न कुछ बच हो जाता है। अस्तु, देखते २ एक सप्ताह बीत गया, दुलाली एवं उसके माता पिता किसी को भी इसका ध्यान नहीं रहा। वृद्ध माता पिता और छोटी बहन के अनुरोध से दुलाली और भी चार दिन ठहर गई। इसके अलावा इतने दिनों के बाद मिली हुई स्वतंत्रता ने भी उसे रहने को मजबूर कर लिया। किन्तु गये बिना तो काम नहीं चल सकता, अतः फिर नई बहू की तरह रोते २ दुलाली ने पति गृह को प्रस्थान किया।

इधर आठ की जगह बारह दिन होते देख मनुआ के गुस्से का पारा एक दम सात डिगरी पर पहुँच गया। उसने घर में पैर रखते ही दुलाली को ताले में बन्द कर दिया बिचारी दो दिन तक बन्द कोठरी में भूख प्यास से छटपटाती रही, किन्तु मनुआ को दया नहीं आई। अन्त में लड़कों के चिल्लाने एवं उसकी मार खाने की शक्ति को देख कर उसने उसको और भी कठोर दंड देने के विचार से कोठरी से निकाल कर उसके सब कपड़े छीन यह कह कर घर से निकाल दिया कि—"जहां इतने दिन रही, वहीं जाकर रह।" दुलाली इस अपमान को सह न सकी, वह रोती २ पितृ गृह को चली गई। मा बाप ने उसकी अवस्था देख उसे आंसुओं से स्नान करा कर अपनी गोद में स्थान दिया।

(घ)

दो चार दिन के बाद हठात मनुआ खुली भुजाली लिये सास ससुर के सामने आकर खड़ा हो गया। उसकी लाल २ आंखे और अनर्गल बकना देख कर लोग समझ गये कि इस समय यह क्रोध और शराब के नशे में ज्ञान शून्य हो रहा है। बुढ़िया सास ने डरते २ अपने पास बिठा कर खाने के लिये कितना कहा किन्तु न मालूम क्यों वह बिना कुछ खाये ही गाली बकता वहां से उठ कर चल दिया।

शाम को बाबूलाल अपनी नौकरी से आकर जैसे ही बैठा कि फिर गांव की भट्टी से शराब पीकर एक सिरे से स्त्री पुरुष सब को गाली बकते २ मनुआ आपहूँचा। उसके एक हाथ में शराब की बोतल और दूसरे हाथ में भुजाली थी। बाबूलाल को उस का इस तरह बदहवासी में बकना अच्छा न लगा, इसके अलावा वह पहले से ही उससे कुछ

चिढ़ा हुआ था। अतः उसने मनुआ का हाथ पकड़ कर कहा—

"मनुआ, यह कोई शराब की दुकान या अवारों का अड्डा नहीं है, भले आदमियों का घर है। यहां पर बेहुदा बकना ठीक नहीं है।"

जलती आग में घी की आहुती पड़ गई। इतनी देर तक वह अकेला बकते २ थक गया था, लेकिन अब यह बाधा पाकर उसका शोक फिर से उबल पड़ा। वह खुली भुजाली लिये बाबूलाल की ओर झपटा। "हैं हैं यह क्या करता है।" कहने और अपना बचाव करने के पहले ही मनुआ ने उस पर भुजाली का प्रहार कर दिया।

पास में ही गनपत सिंह दरोगा रहते थे। खबर पाते ही आऊट पोष्ट से कानिष्टबलों को बुला कर उन्होंने बड़ी कठिनाई से खून से भरी भुजाली सहित मनुआ को पकड़ कर चलान कर किया। उधर बाबू लाल को कुछ युवक कानिष्टबलों की सहायता से हस्पताल ले गये। काली "अरे मेरा बाबू तू कहां गयारे।" मर्म स्पर्शी स्वर में रोने लगी। और दुलाली! उस की अवस्था विचित्र थी। मुंह काला पड़ गया, सिर से पांव तक पसीने से भींग गई, मुंह से एक शब्द तक नहीं निकला। चुप चाप बैठी २ देखती रही और "यह क्या हुआ?" सोचने लगी।

(ङ)

हस्पताल पहुंचने के पहले ही बाबूलाल की मृत्यु होगई। डिपटी मजीस्ट्रेट ने मामला दौरा सुपुर्द्द कर दिया। मनुआ के पक्ष में कोई नहीं था। गांववालों ने अपनी गवाही में कहा— "मनुआ बहुत ही बद मिजाज आदमी है, लड़ाई झगडा करना उसका स्वभाव है।" बाबूलाल की स्त्री की ओर से वकील पैरवी कर रहा था। अतः अदालत में यह सिद्ध होगया कि मनुआ के किये हुए प्रहार से ही बाबूलाल की मृत्यु हुई है। मनुआ ने भी इस बात को भरी अदालत में स्वीकार किया।

अपमानित होने के बाद ही दुलाली का मन मनुआ से फिर गया था। उस पर बहनोई की हत्या से तो उस पर और भी अश्रद्धा हो गई। उस के हृदय में बदला लेने का भाव उदय हुआ। उसने सोचा—

"अदालत में सच्ची बात ही कहूंगी। इससे भले ही उसे दस बीस वर्ष की जेल या देश निकाला हो जाय, मगर ऐसे खुनी के साथ रहना ही ठीक नहीं।"

किन्तु जब उसने सुना कि मनुआ को फांसी होगी तो उस के हृदय में एक प्रकार का धक्का लगा। जेल नहीं, देश निकाला नहीं, एक दम फांसी! उसने मनुआ के दंड की कामना जरूर की थी, परन्तु ऐसी कठोर दंड की नहीं। फिर उस के मन में आया—"जैसा कर्म किया, उसका वैसा ही फल भोगे, इस में मेरा या किसी दूसरे का क्या दोष है?" वह अपने ऊपर किये गये मनुआ के अत्याचारों को जितना ही सोचने लगी उतना ही मनुआ के प्रति उसका हृदय कठोर होता गया। उसने फिर देखा—विचारा—"अब मनुआ के प्रति उसके हृदह में प्रेम कहां रहा? वह बन्धन तो बहुत दिन हुए, मनुआ ने स्वयं ही छिन्न भिन्न कर दिया। तब फिर उसे बचाने का क्या प्रयोजन? नहीं चाहे जो हो मैं सच्चा बयान ही दूँगी। लेकिन फांसी...... ! ओह!—इसके आगे वह कुछ नहीं सोच सकी।

* * * *

दौरा अदालत में आज तिल रखने की भी जगह नहीं है। लोग ठसा ठस भरे हैं। मनुआ के

प्रति विचारपति की क्या राय होगी. इसका अनुमान लोगों ने पहले ही लगा लिया। सभी समझते हैं-उसे फांसी होगी।

एक २ कर के सभी गवाहियां पूरी होगई। अन्त में अन्तिम गवाह दुलाली की पुकार हुई। प्यादे ने आवाज लगाई-

"दुलाली हाजिर"

सामने से वर्षोन्मुख गम्भीर आसाढ़ी मेघ की भांति धीर मूर्ति दुलाली विषाद मय गम्भीरता के साथ जनता को भेदती हुई आगे बढ़ी। अदालत में सन्नाटा छागया। वह इस नीरवता के बीच में अपने धैर्य की रक्षा करती हुई धीरे २ जज की कुर्सी के पास जाकर खड़ी हो गई। जनता दारुण उत्कंठा से फलाफल की प्रतीक्षा करने लगी। जज ने जिज्ञासा पूर्ण दृष्टि से उस की ओर देखा। उसने विषाद पूर्ण स्वर में कहा-

"धर्मावतार! मेरा पति निर्दोष है।" दुलाली की आंसू भरी आंखें नीचे झुक गईं, उसके स्वर और हाव भाओं से एक तरह की भीषण दृढ़ता स्पष्ट रूप से झलकने लगी। हृदय की समस्त वेदना को मथ कर उसने सन्नाटा भंग करते हुए कहना शुरू किया—

"धर्मावतार! इस में मेरे पति का कुछ भी दोष नहीं है। मेरे बहनोई बाबूलाल ने मुझे इस बार जबर्दस्ती रोक रक्खा और मुझे बेइज्जत किया था। मेरे पति को इस बात की खबर लगते ही वह यहां आगये और बाबूलाल को देखते ही क्रोध वश प्रहार कर बैठे......"। इतना कह कर दुलाली चुप होगई उसका स्वर अदालत में एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक गूंज उठा। दर्शकों ने रोकी हुई सांस ली और फिर सन्नाटा छा गया। दुलाली जिधर से आई थी उधर ही दोनों हाथों से मुह ढक कर चली गई।

विचारे पति ने मनुआ को बारह वर्ष सपरिश्रम कैद की आज्ञा सुनाई। दुलाली के माता पिता ने उस दिन से उसे घर से निकाल दिया।

दुलाली अकेली पति गृह में अपने लड़कों का पालन पोषण करने लगी।

(संकलित)



चिढ़ा हुआ था। अतः उसने मनुआ का हाथ पकड़ कर कहा—

"मनुआ, यह कोई शराब की दुकान या अवारों का अड्डा नहीं है, भले आदमियों का घर है। यहां पर बेहुदा बकना ठीक नहीं है।"

जलती आग में घी की आहुती पड़ गई। इतनी देर तक वह अकेला बकते २ थक गया था, लेकिन अब यह बाधा पाकर उसका शोक फिर से उबल पड़ा। वह खुली भुजाली लिये बाबूलाल की ओर झपटा। "हैं हैं यह क्या करता है।" कहने और अपना बचाव करने के पहले ही मनुआ ने उस पर भुजाली का प्रहार कर दिया।

पास में ही गनपत सिंह दरोगा रहते थे। खबर पाते ही आऊट पोष्ट से कानिष्टबलों को बुला कर उन्होंने बड़ी कठिनाई से खून से भरी भुजाली सहित मनुआ को पकड़ कर चलान कर किया। उधर बाबू लाल को कुछ युवक कानिष्टबलों की सहायता से हस्पताल ले गये। काली "अरे मेरा बाबू तू कहां गयारे।" मर्म स्पर्शी स्वर में रोने लगी। और दुलाली! उस की अवस्था विचित्र थी। मुंह काला पड़ गया, सिर से पांव तक पसीने से भींग गई, मुंह से एक शब्द तक नहीं निकला। चुप चाप बैठी २ देखती रही और "यह क्या हुआ?" सोचने लगी।

(ङ)

हस्पताल पहुंचने के पहले ही बाबूलाल की मृत्यु होगई। डिपटी मजीस्ट्रेट ने मामला दौरा सुपुर्द कर दिया। मनुआ के पक्ष में कोई नहीं था। गांववालों ने अपनी गवाही में कहा— "मनुआ बहुत ही बद मिजाज आदमी है, लड़ाई झगडा करना उसका स्वभाव है।" बाबूलाल की स्त्री की ओर से वकील पैरवी कर रहा था। अतः अदालत में यह सिद्ध होगया कि मनुआ के किये हुए प्रहार से ही बाबूलाल की मृत्यु हुई है। मनुआ ने भी इस बात को भरी अदालत में स्वीकार किया।

अपमानित होने के बाद ही दुलाली का मन मनुआ से फिर गया था। उस पर बहनोई की हत्या से तो उस पर और भी अश्रद्धा हो गई। उस के हृदय में बदला लेने का भाव उदय हुआ। उसने सोचा—

"अदालत में सच्ची बात ही कहूंगी। इससे भले ही उसे दस बीस वर्ष की जेल या देश निकाला हो जाय, मगर ऐसे खुनी के साथ रहना ही ठीक नहीं।"

किन्तु जब उसने सुना कि मनुआ को फांसी होगी तो उस के हृदय में एक प्रकार का धक्का लगा। जेल नहीं, देश निकाला नहीं, एक दम फांसी! उसने मनुआ के दंड की कामना जरूर की थी, परन्तु ऐसी कठोर दंड की नहीं। फिर उस के मन में आया—"जैसा कर्म किया, उसका वैसा ही फल भोगे, इस में मेरा या किसी दूसरे का क्या दोष है?" वह अपने ऊपर किये गये मनुआ के अत्याचारों को जितना ही सोचने लगी उतना ही मनुआ के प्रति उसका हृदय कठोर होता गया। उसने फिर देखा—विचारा—"अब मनुआ के प्रति उसके हृदह में प्रेम कहां रहा? वह बन्धन तो बहुत दिन हुए, मनुआ ने स्वयं ही छिन्न भिन्न कर दिया। तब फिर उसे बचाने का क्या प्रयोजन? नहीं चाहे जो हो मैं सच्चा बयान ही दूँगी। लेकिन फांसी...... ! ओह !—इसके आगे वह कुछ नहीं सोच सकी।

* * * *

दौरा अदालत में आज तिल रखने की भी जगह नहीं है। लोग ठसा ठस भरे हैं। मनुआ के

प्रति विचारपति की क्या राय होगी इसका अनुमान लोगों ने पहले ही लगा लिया। सभी समझते हैं-उसे फांसी होगी।

एक २ कर के सभी गवाहियां पूरी होगई। अन्त में अन्तिम गवाह दुलाली की पुकार हुई। प्यादे ने आवाज लगाई-

"दुलाली हाजिर"

सामने से वर्षोन्मुख गम्भीर आसाढ़ी मेघ की भांति धीर मूर्ति दुलाली विषाद मय गम्भीरता के साथ जनता को भेदती हुई आगे बढ़ी। अदालत में सन्नाटा छागया। वह इस नीरवता के बीच में अपने धैर्य की रक्षा करती हुई धीरे २ जज की कुर्सी के पास जाकर खड़ी हो गई। जनता दारुण उत्कंठा से फलाफल की प्रतीक्षा करने लगी। जज ने जिज्ञासा पूर्ण दृष्टि से उस की ओर देखा। उसने विषाद पूर्ण स्वर में कहा-

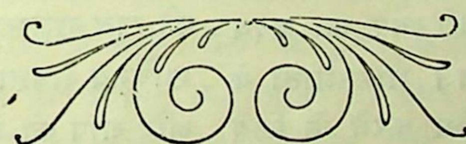
"धर्मावतार! मेरा पति निर्दोष है।" दुलाली की आंसू भरी आंखें नीचे झुक गईं, उसके स्वर और हाव भाओं से एक तरह की भीषण दृढ़ता स्पष्ट रूप से झलकने लगी। हृदय की समस्त वेदना को मथ कर उसने सन्नाटा भंग करते हुए कहना शुरू किया—

"धर्मावतार! इस में मेरे पति का कुछ भी दोष नहीं है। मेरे बहनोई बाबूलाल ने मुझे इस बार जबर्दस्ती रोक रक्खा और मुझे बेइज्जत किया था। मेरे पति को इस बात की खबर लगते ही वह यहां आगये और बाबूलाल को देखते ही क्रोध वश प्रहार कर बैठे......"। इतना कह कर दुलाली चुप होगई उसका स्वर अदालत में एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक गूंज उठा। दर्शकों ने रोकी हुई सांस ली और फिर सन्नाटा छा गया। दुलाली जिधर से आई थी उधर ही दोनों हाथों से मुह ढक कर चली गई।

विचारे पति ने मनुआ को बारह वर्ष सपरिश्रम कैद की आज्ञा सुनाई। दुलाली के माता पिता ने उस दिन से उसे घर से निकाल दिया।

दुलाली अकेली पति गृह में अपने लड़कों का पालन पोषण करने लगी।

(संकलित)



अमर शहीद देशभक्त श्री यतीन्द्र दास

(जीवन परिचय)

देश-भक्त यतीन्द्र नाथ दास की अजय आत्मा गत १३ सितम्बर को अमिट जीवन-सन्देश देकर चल बसी। आप की अवस्था इस समय २५ वर्ष की थी। आप का जन्म १९०४ में भवानीपुर—कलकत्ता में हुआ था आप के पिता का नाम श्री बंकिम बिहारी दास है। आप के दादा मुन्सिफ़ थे जिन की मृत्यु हुए आज १२ वर्ष हो गये है। १९१४ में आप की पूजनीया माता का देहान्त हुआ। उस समय आप सिर्फ़ १० वर्ष के थे। आप दो भाई थे। श्री किरणचन्द्र दास आप के छोटे भाई हैं। अभी आप की अवस्था १५, १६ वर्ष के करीब है। ये अन्तिम समय तक पंजाब जेल में अपने भाई यतीन्द्र की सेवा शुश्रूषा करते रहे। आप की एक छोटा बहन भी थी जिस का देहान्त पूर्व ही हो चुका था।

श्री यतीन्द्रनाथ में बाल-पन से ही देश-प्रेम, दृढ़ता और त्याग के लक्षण दीख पड़ते थे। आप के दिल में शुरू से ही एक आग, एक व्यग्रता, एक लगन और एक वेदना मौजूद रहती थी। आप के हृदय में देश-स्वातन्त्र्य का हाहाकार हमेशा उठा करता था। इस के साथ ही आप का हृदय बड़ा शान्त, दृढ़ और स्थिर था। भारतमाता के आह्वान पर अपने को सतत होम करने के लिये आप तैयार रहते थे। आप का जीवन त्याग और तपस्या, सेवा और लगन का जीवन था।

१९२० में श्री यतीन्द्रनाथ 'भवानीपुर-कलकत्ता के मित्र-स्कूल से मेट्रिकुलेशन पास कर कलकत्ते के दक्षिण सबरबन कालेज में—जो अब आशुतोषकालेज कहलाता है—भर्ती हुए। १९२१ में असहयोग आन्दोलन शुरू होने पर कालेज छोड़ कर आप भी आन्दोलन में शरीक हुए और कार्य-कर्ता की हैसियत से दक्षिण-कलकत्ता काँग्रेस-कमिटी में शामिल हो गये। उस समय १९२१ में पश्चिम-बंगाल में ज़ोरों की बाढ़ आ गई थी। मनुष्य बहुत दुःखित थे। आपने अपने साथियों के साथ शीघ्र वहां जा कर उन की सेवा की और लोगों को कष्ट से बचाया। वहां से लौटने पर आप सविनय अवज्ञा के अपराध में गिरफ़्तार कर लिये गये, पर शीघ्र ही ४ दिन बाद छोड़ दिये गये। असहयोग में आप को पूरा विश्वास था, पर आप के पिता को यह पसन्द न था कि यतीन्द्र राजनीति के झगड़े में फँसे। आप ने कई बार यतीन्द्र को राजनीति से अलग हो जाने को कहा। पर यतीन्द्र इस बात के लिये राज़ी नहीं थे। परिणामस्वरूप यतीन्द्र को घर छोड़ना पड़ा। घर छोड़ कर आप कांग्रेस दफ़्तर में रहने लगे। उस समय आप दस रु० के ट्यूशन पर गुज़र करते थे। उस में से भी कुछ बचा कर आप कांग्रेस के काम में लगाते थे। बहुत बार फरही फांक कर आप को रात गुज़ारनी पड़ी थी। उसी समय फिर आप सविनय अवज्ञा के अपराध में गिरफ़्तार किये गये और आप को १ महीने की सादी सज़ा हुई। जेल से लौटने के बाद तुरन्त ही १९२२ में फिर आप को बड़ा बज़ार में विदेशी वस्त्र बहिष्कार में पिकेटिंग करने के अपराध में गिरफ़्तार कर लिया गया और ३ माह सादी कैद की सज़ा हुई। इस समय आप हुगली जेल में रखे गये थे। जेल में आप बहुत दुर्बल हो गये। जेल से छूटने के बाद आप कई

महीने बीमार रहे। इस के बाद पिता ने आप को घर बुला कर कलकत्ते के अशुतोष-कालेज़ में भर्ती कर दिया। पढ़ाई से बचे हुए समय में देश की मुक्ति के लिए आप कठिन परिश्रम किया करते थे। प्रथम श्रेणी में आप इण्टरमीडियेट परीक्षा में सफल हुए और बङ्गवासी कॉलेज के बी० ए० में पढ़ने लगे। १९२४ में आप दक्षिण-कलकत्ता-कांग्रेस-कमिटी के सहकारी मन्त्री निर्वाचित हुए और बहुत ही उत्साह और साहस के साथ कार्य का सम्पादन किया। उसी साल आप के अथक प्रयत्न से दक्षिण-कलकत्ता-तरुण-समिति की स्थापना हुई जिस का उद्देश्य गरीब—दुःखियों, विधवाओं तथा असमर्थों की सेवा करना था। समिति के पास एक पुस्तकालय तथा नवयुवकों की शारीरिक शिक्षा और खेल के लिए सामान आदि का प्रबन्ध था।

१९२५ में आप फिर दक्षिण-कलकत्ता-कांग्रेस-कमिटी और दक्षिण-कलकत्ता-तरुण-समिति के सहकारी मन्त्री निर्वाचित हुए। आप देशोद्धार के लिए बहुत ही अच्छा कार्य कर रहे थे कि आप ५ नवम्बर १९२५ को बङ्गाल के काला-कानून के अपराध में गिरफ़्तार कर लिए गये। ३ वर्ष बाद १९२८ में आप छोड़ दिये गये। एक बार तो आप जेल में मरते मरते बचे थे। गिरफ़्तारी के बाद आप कई जेलों में घुमाये गये। अन्त में आप मैंमन-सिंह जेल में लाये गये। वहाँ आप के साथ बहुत बुरा वर्ताव किया जाता था। एक दिन तो जेल के सुपरिण्टेन्डेन्ट से उस के अपशब्द कहने पर आप की हाथा-पाई भी हो गई थी, जिस में आप को बहुत बुरी तरतह पीटा गया था। इस झगड़े के कारण आप पर मार-पीट का मुकदमा चलाया गया। इस पर आप ने अनशन प्रारम्भ किया। जेल सुपरिन्टेण्डेन्ट के माफ़ी मांगने और खेद प्रगट करने तथा आप की सभी असुविधायें दूर किये जाने पर आपने अनशन तोड़ा। इस के बाद ही आप मियाँवाली जेल (पंजाब) भेज दिये गये। वहाँ आप के साथ बहुत बुरी तरह से वर्ताव किया गया—अच्छा भोजन और रहने के लिये अच्छा स्थान नहीं दिया गया। इस से आप का स्वास्थ्य बहुत ख़राब हो गया और थोड़े दिनों में आप सूख कर कांटा हो गये थे। आप के संबन्धी आप को जेल में देखना चाहते थे, उन को इजाज़त नहीं मिली। इसी बीच आप की छोटी बहन का सेवाशुश्रूषा के अभाव के कारण देहान्त भी हो गया पर आप को बहन से मिलने तक की इजाज़त नहीं मिली।

अन्त में २९ सितम्बर १९२८ को आप की रिहायी हुई। यद्यपि बहुत दिन जेल में रहने के कारण आप बहुत दुर्बल पड़ गये थे फिर भी जेल से मुक्त होने के बाद आप अपने जीवन का एक एक क्षण देश-सेवा में लगाने लगे। गत कलकत्ता-काँग्रेस के अवसर पर आपने बड़ी ख़ूबी के साथ स्वयं सेवकों का संगठन किया था। काँग्रेस का अधिवेशन समाप्त होने के बाद आप दक्षिण-कलकत्ता-स्वयं-सेवक दल के नायक नियुक्त हुए। जेल से छूटने के बाद कलकता के बंगवासी काँलेज के थर्ड इयर में फिर नाम लिखाया था। तीसरी बार फिर आप दक्षिण-बंगाल-कांग्रेस-कमिटी और तरुण-समिति के सहायक मंत्री नियुक्त किये गये थे। आप अखिल-भारतीय स्वतन्त्र दल तथा युवक दल के सदस्य भी थे। बंगाल का स्वयं-सेवक दल इन की देख रेख में बहुत सा संगठित हो रहा था कि आप लाहौर षड्यन्त्र के अभियोग में गिरफ़्तार कर लाहौर

भेज दिये गये। आपने श्री दत्त और श्री भगत के अनशन की सहानुभूति में तथा सभी राजनैतिक कैदियों के साथ अच्छा बर्ताव किये जाने के उपलक्ष में अनशन प्रारम्भ किया था। ६३ दिन अनशन के बाद गत १३ सितम्बर को आप इस पृथ्वी पर अपनी अमर कीर्ति छोड़ कर चल बसे। परमात्मा आप की आत्मा को शान्ति दे और हम उन के देश वासियों को उन का त्याग, साहस, दृढ़ता, नैतिक बल और देश-प्रेम।

आंसू

(ले०—श्री प्रियहंस)

मोती ये मेरी माला के ॥

(१)

बिखर गए सब हंसते हंसते,
कुछ मेरी आंखों के रस्ते,
छलक छलक दिल में जा बसते,
थे अमूल्य, पर अब तो सस्ते,
ले लेगा क्या कोई आके ॥ मोती०

(२)

चलो, नहीं कोई यह मेला,
करो भई ! सब दूर झमेला,
रहने दो बस मुझे अकेला,
मैं न इन्हें बेचूं ले धेला,
कोई मत अब इनको ताके ॥ मोती०

(३)

जो चाहे लेना वह आवे,
अपना साथ हृदय दे जावे,
फिर कोई न इसे लौटावे,
सौदा यह जिसके मन भावे,
ले जाये वह देख दिखा के ॥ मोती०





१. यतीन्द्र और विजयः—

स्वतन्त्रता बलि चाहती है, बलि के बिना देवी स्वतन्त्रता सन्तुष्ट नहीं होती। स्वतन्त्रता की बलि-वेदी पर अबतक न जाने कितने वीर भिन्न भिन्न देशों में समर्पित हो चुके हैं, पर इन भारतीय वीरों का बलिदान उन सब से निराला है। दीवाने तात्कालिक आवेश में सब कुछ कर सकते हैं और करते हैं, पर इनका दिवानापन कितना अनूठा निकला। इन का अवेश क्षणभङ्गुर न था, इन्हों ने तो दिन नहीं, सप्ताह नहीं, मासों तक भूखे रह कर, तिल तिल करके अपने को उस पवित्र वेदी पर समर्पित कर दिया जिस पर कि शायद इस से अधिक पवित्र बलि अबतक न चढ़ी थी। इसी से आशा होती है कि अब ज्यादह होम करने की जरूरत न पड़ेगी, वह काल निकट है जब कि इन आहुतियों की ज्वाला में हमारे पाप और हमारी पराधीनता, हमारे कष्टों के साथ जल जायगी।, जब कि हम आज़ाद होंगे, सब बन्धनों से-चाहे वे सामाजिक हों या राजनैतिक—ऊपर होंगे।

उन के दिल में एक भट्टी धधकती थी। इस भट्टी में उन्हों ने अपने खून, मज्जा, मांस—सब की आहुति दे डाली। उस दिन उन की चिता की भस्म को न जाने कितने नवयुवकों ने अपने घर ला कर रक्खा होगा, पर पता नहीं किसी ने उस आग से अपनी भट्टी को भी धधकाया है या नहीं। देखने से तो पता लगता है कि अब वह आग जिस में दास और विजय ने अपनी आहुति दी है बुझने की नहीं, कितने ही नवयुवकों ने उस दिन उन की चिता की आग के ताप से अपनी हरी समिधाओं को सुखा लिया है ताकि वो कभी भी उस धधकती हुई आग में धक धक कर के जोर से जल सकें। यदि ऐसा ही क्रम जारी रहा तो निस्सन्देह भारतीय पराधीनता के इतिहास की तरह हमारी स्वाधीनता का इतिहास भी अनूठा होगा, निराला होगा और उस इतिहास के निर्माता होंगे यतीन्द्र और विजय, ब्रोस्टल तथा सैन्ट्रल जेल के वीर कैदी। हमारी प्रबल अभिलाषा है कि ब्रोस्टल तथा सैन्ट्रल जेल के कैदियों को ही उपर्युक्त सन्मान न प्राप्त हो, पर भारत के सभी राजनैतिक कैदी भी इस में हिस्सा बटाएँ।

अन्त में 'ज्योति' की पाठक-पाठिकाओं की ओर से हम यतीन्द्र और विजय के अदृश्य चरणों में अपना सिर झुकाते हैं, और यह निश्चय है कि इस प्रकार हम भी अपने हृदय में वही भट्टी जलाने में समर्थ हो सकेंगे जो कि इनके हृदयों में जलरही थी।

२. राजनीतिक कैदी

आज भारतवर्ष के सम्मुख एक बड़ी विकट समस्या उपस्थित है, और वह है-राजनीतिक कैदियों की। पराधीन भारत के लाल दासता की बेड़ियों को तोड़ने के लिए, पराधीनता के कलंक को धोने के लिए, छट पटाते हैं, वे नौकर शाही से मोर्चा लेते हैं। नौकरशाही उन के इस दुस्साहस और धृष्टता को सहन नहीं कर सकती। वह अमन और कानून के नाम पर 'ईश्वर की देन' की रक्षा के लिए इन "बलवाइयों" को जेलों में ठूंस देती है और उनके साथ अमानुषिक व्यवहार करती है। तरह तरह के अत्याचार करती है। सभ्य संसार के जेल एक प्रकार के शिक्षणालय हैं, जहां पर प्रत्येक व्यक्ति समाज में रहने के योग्य बनाया जाता है, पर पराधीन भारत की जेल नौकरशाही की वह कारखाना हैं जहां कि भलों को बुरा, बुरों को नीच, नीचों को राक्षस और राक्षसों को पिशाच बनाया जाता है। यह वह मैशीनरी है जिस में चोर, लुटेरे और गठकतरे तैय्यार होते हैं। इन्हीं जेलों में इन्हीं लुटेरों और गठकतरों के साथ उन लोगों को रखा जाता है जो कि स्वाधीनता की सुधा पीने के लिए सिर पर कफन बांधे फिरते हैं। उन के साथ वही व्यवहार किया जाता है जो कि डाकुओं और हत्यारों के साथ होता है। इस के विपरीत गोरी चमड़ी वालोंका-चाहे उन्होंने बड़े से बड़े खून किए हों-स्वागत किया जाता है, सब प्रकार की सुविधा दी जाती है। क्यों? क्यों कि उन की चमड़ी गोरी है। दीवाने नौजवान इस अन्याय और अत्याचार को सहन न कर सके। उनकी आत्मा ने विद्रोह कर दिया। वे देख नहीं सकते थे कि मां के आह्वान पर मर मिटने वाले कीड़ों और मकौड़ों की जिन्दगी बसर करें और उन का खून चूसने वाले ऐय्याशी करें। उन्हों ने सरकार को चुनौती दे दी कि राजनीतिक कैदियों के साथ वही व्यवहार किया जाय जो कि यूरोपियनों के साथ होता है। उन्हें विशेष-श्रेणी का कैदी समझा जाय, सब को इकट्ठा रखा जाय, खान, पान और प्रकाश की सुविधा दी जाय। पढ़ने, लिखने और अखबारों का प्रबन्ध किया जाय। ये शर्तें थीं जो कि अन्याय के विरुद्ध विद्रोह करने वालों की आत्मा ने सरकार के सम्मुख पेश कीं। सरकार भला इस चुनौती पर क्यों ध्यान देती-उस का "प्रेस्टिज" जाता रहता। उसने इन अग्नि के पतंगों की धमकी को गीदड़ भभकी समझा। उसने उपेक्षा, अवहेलना और अपमान पूर्वक इन छोटी मोटी शर्तों को ठुकरा दिया। सरकार की करनी से सिद्धान्त के उपासकों की अन्तरात्मा क्षुब्ध हो उठी। चिता रोहण की तय्यारियां शुरु हो गईं। अनशन प्रारम्भ हुआ। जीवन और मृत्यु का विकराल संग्राम होने लगा। अखबार पढ़ने वाले किसी अज्ञात आशंका के भय से दम साध कर कम्पित हाथों से अखबार खोल कर जीवन और मृत्यु के संग्राम का दर्शन कर ठण्डी आह भरते थे। भारत की अन्तरात्मा कांप उठी। पर नौकर शाही के कानों पर जूं तक न रेंगी, उसका सिंहासन न हिला। वह स्थिर भाव से इन 'अबोध बालकों' की ओर उपेक्षा पूर्ण दृष्टि से देख कर हंसती रही, संग्राम विकराल होता गया। एक, दो, तीन कर के दिन गुज़रते गए। सप्ताह गुज़र गए। एक मास होगया। उफ़ दो मास भी बीत गए। नौकर शाही के कान खड़े हुए। 'जांच समिति' का अभिनय किया गया, पर निष्फल। मृत्युञ्जय युवक इस जाल में न फंसे, अपने निश्चय पर दृढ़ रहे—पर मां काली प्रसन्न न हुई। यतीन्द्र ने

अपना होम कर दिया। भारत में उथल पुथल मच गई, हाहाकार मच गया पर नौकरशाही का दिल न पसीजा। वह इन युवकों का मद चूर करने के लिये अनशन-बिल-वज्र हाथ में लिए खड़ी थी। देखते ही देखते फूंगी विजय ने आत्मबलिदान कर मां के मस्तक पर सौभाग्य का लाल टीका लगा दिया। भगतसिंह और दत्त में होड़ होने लगी। यतीन्द्र ने बाज़ी लगा दी। आग चारों ओर फैल गई। मेरठ और अमृतसर, काकोरी और चौरा-चोरी के कैदी भी बढ़ २ कर हाथ बटाने लगे। पर मां काली प्रसन्न न हुई, उसकी भूख शान्त नहीं हुई। वह नरबलि चाहती है। इधर नौकर-शाही अपना दिल कड़ा किए आराम कर रही है। उस पर असेम्बली के अविश्वास-प्रस्तावों का कोई असर नहीं। वह इस प्रश्न को महत्ता ही नहीं देना चाहती। शायद नौकरशाही समझती हैं कि यतीन्द्र ने अपनी और अपने साथियों की रियायत कराने के लिये यह "दंगा" किया है, यतीन्द्र ने अपनी रिहाई के लिए यह 'अनर्थ' किया है, फुंगी विजय ने पीले कपड़े के लिये यह "उत्पात" मचाया है। यदि सरकार यह समझती है, तो वह इस भ्रम को जितनी जल्दी दूर कर सके, उतना ही उस का भला है। अनशन करना मामूली बात नहीं है। श्रीयुत् जिन्हा के शब्दों में हम कह सकते हैं कि जो आदमी भूख-हड़ताल करता है, वह साधा-रण मनुष्य नहीं, वह आत्मा से प्रेरित हुआ हुआ ही इस भयंकर हथियार का प्रयोग करता है। कोई पीले कपड़े के लिए हड़ताल नहीं करता। इस सिस्टम में ही दोष हैं। यह मशीनरी ही बिगड़ी हुई है। जब तक इस का सुधार नहीं हो जाता, वर्णभेद को दूर नहीं किया जाता, तब तक यह संग्राम जारी रहेगा। इस समस्या का हल सर-कार के हाथ में है। यदि वह बुद्धिमानी से कार्य करना चाहती है तो साहस और दृढ़ता के साथ राजनैतिक कैदियों की शर्तों को स्वीकार कर अपनी नीतिमत्ता का परिचय दे। अब कमेटियों से विश्वास उड़ चुका है। १९२० से लगातार जेल जांच समितियां बैठती रही हैं-पर उन का फल कुछ न हुआ। अब तो आवश्यकता है साहस की। भारत-सरकार को चाहिए कि वह ब्रिटिश सरकार से शिक्षा ले जिस ने कि कॉसग्रेव को आजन्म कैद कर उसी से सुलह नामा किया था। यदि नौकरशाही इस विकट परिस्थिति में भी अपनी आन और मान की पर्वाह कर "प्रेस्टिज" की रक्षा के लिए दमननीति का आश्रय लेगी, मदमाते युवकों पर वज्र-प्रहार करेगी, मृत्यु का आलिङ्गन करने वालों पर अत्याचार करेगी तो उसे ध्यान रखना चाहिए कि आग की लपटें और भी विकराल रूप धारण कर लेंगी, प्रचण्ड दावानल सर्वत्र व्याप्त हो जायगा। अत्या-चार की खुली तलवार उन के सत्य की ज्योति को और भी अधिक फैलादेगी। करागार का अन्ध-कार उन की महिमा को और भी अधिक उज्वल कर देगा। धू धू करती हुई आग की लपटें उन की कीर्त्ति को और भी प्रसारित कर देंगी। सरकार को समझ लेना चाहिए कि शहादत व्यर्थ नहीं जाती। शहीदों के खून की एक एक बूंद उन रणबांकुरों को जन्म देती है जो कि अत्याचार और अन्याय के दांत खट्टे कर देते हैं। ईसामसीह जीते हुए वह काम न कर सके जो उन की शहादत ने कर दिया। दधिची की हड्डियों ने असुरों को भगा दिया। मैक्स्विनी कीशहादतने आयर्लैण्ड को स्वतन्त्र कर दिया। क्या इन बलिदानों से स्वाधीनता-देवी प्रसन्न न होगी ? बैस्टाइल के कारागार में फ्रैञ्च राज्यक्रान्ति की नींव रखी गई, के

बन्दीगृह में आयरिश स्वाधीनता की स्थापना की गई, क्या बोर्स्टल और सैण्ट्रल जेल में भारत की स्वतन्त्रता निहित है ?

३. श्री पटेल की शानदार विजय

हम गतांक में ज्योति के प्रेमी पाठकों के सन्मुख लार्ड इरविन के उस भाषण का उल्लेख कर आए हैं, जिस में उन्होंने श्रीयुत पटेल के "बौल्शेविक-बिल" सम्बन्धी निर्णय की नुकता-चीनी की थी। यह भाषण असेम्बली के सभापति तथा हाउस के सम्मान का घातक था, इस लिए श्रीयुत् पटेल ने आवश्यक समझा कि इस का प्रतिकार किया जाय। वायसराय से लिखा पढ़ी हुई और उसे नीचा देखना पड़ा। असैम्बली के शिमलासैशन में श्रीयुत् पटेल ने उस लिखा-पढ़ी को वक्तव्य के रूप में पेश किया। श्रीयुत् पटेल का दावा है कि धारासाभाओं के नियमों की व्याख्या करना—चाहे वह अशुद्ध ही क्यों न हो-पूर्णतया उन के सभापतियों के ही हाथ में है। यदि सरकार उन से असन्तुष्ट है, तो उस का इलाज यह है कि इण्डिया एक्ट की ६३Cधारा की चौथी उप-धारा के अनुसार एसैम्बली में प्रेज़िडैण्ट के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव किया जाय। श्रीयुत् पटेल की दूसरी स्थापना यह है कि नियमों या कानूनों की व्याख्या करने में सब से सुरक्षित पथदर्शक उस की भाषा ही है, उन नियमों या कानूनों को बनाने वालों की "मौलिक-इच्छा" नहीं। इस विषय में मत-भेद हो सकता है, पर लार्ड इरविन को कोई अधिकार नहीं कि वह "मौलिक-इच्छा" का ढिंढोरा पीटे। वायसराय के भाषण पर श्रीयुत् पटेल की तीसरी आपत्ति यह है कि यह भाषण एसेम्बली और उस के सभापति के सम्मान और अधिकार पर वज्रपात है, और वैध परम्परा के विपरीत है। इस के साथ ही श्रीयुत् पटेल वायसराय को याद दिलाते हैं कि अभी तक किसी भी उपनिवेश में सम्राट् के प्रतिनिधि ने व्यवस्थापन-विभाग पर यह आक्रमण नहीं किया। ब्रिटेन की लोक-सभा की भी तो यही परम्परा है। यह ठीक है कि वायसराय को भारतीय-विधान की ६३ B (३) धारा के अनुसार भाषण करने का अधिकार प्राप्त है, पर उस अधिकार का सभापति के निर्णयों पर नुकता-चीनी करने के लिए प्रयोग करना नौकरशाही को ही सुहाता है। पार्लियामेण्ट के भाषणों में सम्राट् केवलमात्र मन्त्रि—मण्डल की नीति—जिस के लिये मन्त्रिमण्डल पूर्णतया उत्तरदायी होता है, की घोषणा करता है, उस का काम सभापति की आलोचना करना नहीं। जब वायसराय के कार्यों पर असेम्बली आलोचना नहीं कर सकती तो वायसराय का भी कर्तव्य है कि वह भी असेम्बली और उस के अध्यक्ष की टीका टिप्पणी न करे। वायसराय को ध्यान में रखना चाहिए कि ब्रिटिश पार्लमेण्ट—जिस की परम्परा और अनुश्रुति के अनुसार "भारतीय-पार्लमेण्टको ढाला जा रहा है—उस व्यक्तिको दण्ड भी देती है जो उस की अवज्ञा करता है, उसके अधिकारोंपर कुठाराघात करता है। पार्लमैण्ट की अधिकार-रक्षा के लिए ही तो चार्ल्स प्रथम का सिर धड़ से अलग कर दिया गया था, जेम्स द्वितीय और उसके पुत्र को देश निकाला दिया गया। लोकसभा के सम्मानकी रक्षा के लिए ही आस्क्विथ, ग्लैडस्टन और लान्सबरी ने सरदार सभा को धमकी दी थी। मध्यकाल में जब कि स्टुअर्टों का ब्रिटेन पर प्रभुत्व था, जब वे लोग समय समय पर धारा सभा पर आक्रमण करते हुए नहीं चूकते थे, तब भी स्पीकर लैन्थाल कह देता था, "इस स्थान

पर मेरी आंखें स्वयं देख नहीं सकती, न मेरी जीभ स्वयं बोल सकती हैं, हाउस—जो कि मेरा स्वामी है जिसका मैं सेवक हूं, मुझे जैसा चलावेगा, उधर ही चल दूंगा।" उसी तान में अपनी तान मिला कर श्रीयुत् पटेल कहते हैं कि 'वायसराय महोदय तुम्हारा यह कृत्य संसार के इतिहास में अनोखा है। प्रैसिडैण्ट की हैसियत से तुम्हारा प्रतिवाद करना अवश्यक है। इस चार दिवारी के भीतर मैं ही सर्वेसर्वा हूँ।' यह ठीक है कि श्रीयुत इरविन को अपनी भूल समझ में आगई और उन्होंने श्रीयुत् पटेल को विश्वास दिलाया है कि वह और उन के उत्तराधिकारी सदा ही वैध उपायों का आश्रय लेंगे और पार्लमैण्ट्री परम्परा, अनुश्रुति और परिपाटी के स्वाभाविक विकास में अड़चन न डालेंगे। उस दिन सत्येन्द्रचन्द्र मित्र के अविश्वास-प्रस्ताव पर कानून सदस्य श्रीयुत् बी. एल. मित्र ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा कर दी कि सरकार अब एसेम्बली से सलाह लिए बिना—अत्यधिक अवश्यकता को छोड़ कर—नियमों में परिवर्तन न करेगी, यह ठीक है कि वह उसके निर्णय से बाध्य नहीं। हमें विश्वास है कि प्रत्येक राष्ट्रवादी जो कि धारा सभाओं की परम्परा के विकास को महत्ता समझता है—श्रीयुत् पटेल की शानदार विजय से प्रसन्न होगा। श्रीयुत् पटेल की;धारा सभाके सम्मानकी रक्षाके लिए सर बैसिल ब्लैकिट कमाण्डर-इन-चीफ और सरजेम्स क्रेरार से मुठभेड़ हुई और उन्हें नीचा देखना पड़ा, आज नौकरशाही का प्रधान भी उस दृढ़व्रती से टक्कर खाता है और परास्त होता है।

श्रीयुत्पटेल ने केवल मात्र लार्ड इरविन को ही नहीं पछाड़ा, पर नौकरशाही की सम्पूर्ण मेशीनरी को ही ढीला कर दिया। उस दिन सरकार-बहादुर ने कानून बनाया कि प्रैसिडैण्ट के स्वाभाविक और अनुमानिक अधिकार छीने जाते हैं, पर तीन सितम्बर को ही श्रीयुत् पटेल ने नौकरशाही को स्तब्ध कर दिया। कांग्रेस—दल के ह्विप श्रीयुत् मित्र ने प्रस्ताव किया कि 'नियम-परिवर्तन में सहमति प्रदान कर भारत-सचिव ने असैम्बली का विश्वास खो दिया है, और लार्डइरविन ने इस विषय में जो भाग लिया है वह निन्दनीय है......।' श्रीयुत् पटेल ने कहा कि लार्डइरविन का नाम यदि इस प्रस्ताव में रखा जायेगा तोयह प्रस्ताव पेश ही नहींहो सकता क्योंकि असैम्बली को गर्वनर जनरल के कार्यों पर टिप्पणी करने का अधिकार नहीं। पर श्रीयुत् मित्र का कहना था कि वर्तमान नियमों के अनुसार लार्ड इर्विन के कामों पर भाषण नहीं किया जा सकता, प्रस्ताव में नाम न आने का कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं। इस पर बहस चलती रही। सरकार ने इस प्रस्ताव का विरोध किया, पर श्रीयुत् पटेल ने बार बार गृहसदस्य और कानून सदस्यसे पूछा कि क्या मुझे स्पष्ट रूप से अधिकार प्राप्त है? पर वे बेचारे क्या करते? आखिर पटेल ने प्रस्ताव के इस अंश को ग़ैर क़ानून करार दिया और घोषणा कर दी कि "मुझे निश्चय है कि प्रत्येक विचार कारिणी समिति के सभापति—यदि वह समिति का सम्यक् संचालन करना चाहता है—के पास आनुमानिक और स्वाभाविक अधिकार होते हैं और होने चाहिए। मैं मानता हूँ कि ये अधिकार असीमितहैं और इन का दुरुपयोग किया जा सकता है, पर इस का इलाज तो उस समिति के ही हाथ में है—अर्थात् अधिकारों का दुरुपयोग करने वाले सभापति को च्युत कर दिया जाय—इस का इलाज यह नहीं है कि प्रस्तावों या कानूनों द्वारा उन अधिकारों को—जो कि हाउस और चेयर की स्थिति के

लिए बहुत आवश्यक हैं–को ही छीन लीया जाय ।" इसी प्रकार जब सोलह सितम्बर को गृहसदस्य सर क्रेरार "अनशन-बिल" पर वक्तव्य पेश करने के लिए खड़े हुए तो श्रीयुत् नियोगी ने आपत्ति की कि स्थायी नियमों के अनुसार गृहसदस्य इस अवस्था में कोई वक्तव्य नहीं दे सकते। उन्होंने विचारार्थ बिल पेश किया है, वे बहसका उत्तर दे सकते हैं। मनोरंजक बहस छिड़ गई। अन्त में श्री युत् पटेल ने आज्ञा दे दी और कहा कि हाउसके लाभके लिए स्टेटमैन्ट करने की आज्ञा देता हूं और यह अधिकार मुझे सदा प्राप्त रहेगा। इस हाउसका यह अलिखितकानून है।" दोनों बार नौकरशाही को नीचा देखना पड़ा। मानोंश्रीयुत् पटेल ने कह दिया कि "तुम जो चाहो कानून बनाओ। तुम मेरे अधिकारों को छीन नहीं सकते। मैंने ये अधिकार तुम से नहीं प्राप्त किए हैं, पर इस पद की नैसर्गिक स्थिति से।" वास्तव में पटेल इतिहास का निर्माण कर रहा है।

४. सारदा–बिल

भारतीय व्यवस्थापिक सभा के गत अधिवेशन में सारदा–बिल पास हो गया है। भारत के सिर से बड़ा भारी कलंक का टीका जाता रहा। संसार के सभ्य देशों के सन्मुख एसेम्बली के सदस्यों की परीक्षा थी, हर्ष का विषय है कि वे इस परीक्षा में सफल हुए। नई पीढ़ी आशा और आशंका से एसैम्बली की ओर देख रही थी, उनके हृदय ठण्डे हुए। पर धर्म का ढिंढोरा पीटने वालों के प्राण सूख गए, शास्त्र और शरियत का अपमान हो गया। दकियानूसी मौलवियों और पण्डितों में खलबली मच गई। पर समय बदल रहा है। उस की रफ़्तार बहुत तेज है। यह बिल तीन साल से विविध रूपों में देश के सन्मुख उपस्थित था। श्रीशारदा के कार्य और काल की गति के प्रभाव से आज वह पास भी हो गया। धर्मके नाम पर विषय–वासना को पूरा करने वालों की मुराद पूरी न हुई। लड़कों और लड़कियों की विवाहकी उम्र १८ और १४ करदी गई। रूढ़ियों की शृंखला में बंधे हुए भारत की निद्रा पर सती–प्रथा–निषेधक–बिल के बाद यह दूसरा बड़ा आघात था। उस समय भी धर्म की दुहाई दी गई थी। पर समय ने बता दिया कि न धर्म बिगड़ा और न ही हिन्दुसमाज का नाश हो गया। आज भी कुछ लोग धर्म के नाम पर इस बिल का विरोध करते हैं, पर हमें विश्वास है कि कुछ ही दिनों में यह शोर भी शान्त हो जायगा। शायद शास्त्रों और शरियतों के और ही भाष्य होने लगें। इस बिल के विरोधियों की दूसरी कक्षा वह है जो कि बिल के उद्देश्यों से पूर्णतया सहमत होते हुए भी इस महान् सुधार को कानून द्वारा नहीं करना चाहती। वह व्यक्तियों के मामलों में स्टेट का हस्तक्षेप सहन नहीं कर सकती। उन का कथन है कि यदि आप समाज सुधार करना चाहते हैं तो समाज को उस के लिए तय्यार कीजिए, बालविवाह की खराबियों का प्रचार कीजिए, समाज की अन्तरात्मा को जगाइये; उस पर कानून द्वारा प्रहार न कीजिए। हम इस प्रकार के विरोधियों के भावों को किसी अंश तक न्याय्य एवं उचित समझ सकते हैं, पर हमें कोई आशा नहीं दिखती कि शीघ्र ही देवबन्द और बनारस में भी नये प्रकाश की ज्योति जगमगाएगी। इस के अतिरिक्त हम इस बात को अच्छी तरह अनुभव करते हैं कि आज भारत में बाल–विवाह के विरोध में काफ़ी प्रबल वायुमण्डल विद्यमान है। शारदा बिल का देश के कोने कोने में जो स्वागत हुआ है–वह इस उन्नति का परिचायक है। स्त्रियों में इस सम्बन्ध में जो जागृति

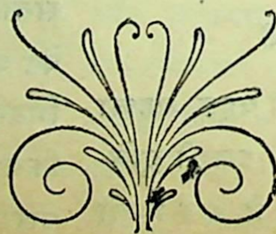
हुई उस का इसी बात से अनुमान किया जा सकता है कि उस दिन "अन्तर्राष्ट्रीय स्त्री संघ" में ब्रिटिश प्रतिनिधियों के विरोध करते हुए भी श्रीमती रामराव ने लड़कों और लड़कियों की कम से कम १८ और १६ वर्ष की विवाह की उम्र का प्रस्ताव पास करा लिया। इस जागृति के होते हुए भी बहुत से लोग प्राचीन परम्परा के प्रभाव से, वेद और कुरान के नाम से, अथवा पण्डों या पुरोहितों के प्रभाव से, अपनी अन्तरात्मा की आवाज़ को दाब कर जलते हुए नरक-कुण्ड में अपने नौनिहाल बच्चों को फैंक देते हैं। शारदाबिल उन व्यक्तियों के हृदय में साहस और दृढ़ता का संचार करेगा। पर इस द्वितीय कक्षा के विरोधियों की सुर में सुर मिला कर हम यह अवश्य कहेंगे कि कानून की मशीनरी का प्रयोग बहुत समझदारी और बुद्धिमत्ता से किया जाय। लोगों को वृथा कष्ट न दिया जाय। इस का सब से अच्छा तरीका यही है कि गांव गांव में इस बिल का प्रचार किया जाय और जनता को शिक्षित किया जाय। यदि जनता में शिक्षा का प्रचार किया जायगा, उन्हें बाल विवाह का हानि लाभ बताया जायगा तो इस बिल का दुरुपयोग होने की सम्भावना ही नहीं। शीघ्र ही जनता अपने विचारों की सतह को उन्नति शील विचार धारा के साथ ला खड़ा करेगी।

५. गोलमरी की हड़ताल

वर्तमान सभ्य संसार में श्रम की बहुत महत्ता है। व्यावसायिक क्रान्ति के साथ ही इसकी बुनियाद डाली गई थी। कार्लमार्क्स ने इस भावी वट वृक्ष के पौदे को सींचा था। व्यावसायिक और आर्थिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय स्थिरता, श्रम की स्थिरता के साथ बढ़ने लगी। पूंजीपतियों और भूमिपतियों को श्रमियों की शक्ति का भान होने लगा। महासमर ने कसर पूरी कर दी। रशिया में मज़दूरों और किसानों का आधिपत्य हो गया। चार पांच साल बाद श्रेणीतन्त्र के गढ़ ब्रिटेन में भी मज़दूर-सरकार की स्थापना हो गई। जर्मनी में साम्यवादियों का प्रभुत्व बढ़ने लगा। अमेरिका में मि० फ़ोर्ड ने मज़दूरों को न्याय अधिकार देकर व्यावसायिक जगत् में क्रान्ति कर दी। फ्रांस इस आपत्ति का पहले ही यथोचित इलाज कर चुका था। आज भिन्न भिन्न देशों के अन्दर कम्यूनिज़्म और सोशलिज़्म, फ़ेज़िस्म और बोल्शेविज़्म के आकर्षक मूलमंत्रों की ध्वनि श्रम की महत्ता की सूचना देती है। पर पराधीन भारत का दुर्भाग्य है कि यहां मजूर अभी अच्छी तरह संगठित नहीं हुए। वे अभी अन्धकार में पड़े हैं। पूंजीपतियों और साम्राज्यवादियों—दोनों का ही कुचक्र चल रहा है। पर धीरे धीरे दशा बदल रही है, नई ज्योति और नए प्रकाश के शुभलक्षण दिखाई देने लगे हैं। आज भारत में भी स्थान स्थान पर अपने अधिकारों की रक्षा के लिए लड़ते हुए मजूरों के समाचार पढ़ने को मिलते हैं। आज कल बिहार प्रान्त के गोलमरी स्थान पर "टिन-प्लेट व्यवसाय" के मज़दूरों ने ६ मास से हड़ताल की हुई है। शुरु शुरु में मिलमालिकों ने समझा था कि शायद मामला जल्द ही सुलझ जाय, भूख से सताए मज़दूर लोग आत्मसमर्पण कर दें; पर पेट की पर्वाह न कर अपने अधिकारों पर मर मिटने वाले मज़दूरों ने दासतापूर्ण आत्मसमर्पण न किया। यह देख कर मिलमालिकों के क्रोध का पारावार न रहा। मजूरों को उनकी करनी का फल चखाने का निश्चय हुआ। तीन रुपए से लेकर पांच रुपए तक प्रति दिन के हिसाब से पठानों को भाड़े पर रखा गया ताकि वे मजूरों को

डराते रहें, पीटते रहें। इसका परिणाम यह हुआ कि ३०० मजूर घायल होगए। मज़दूर-संघ का अध्यक्ष आज पठानों की कृपा से रुग्ण-शय्या पर आराम कर रहा है। मजूरों के शान्तिपूर्ण धरनों पर १४४ धारा लगा दी गई। उन्हें उनके घरों से निकाल दिया गया। बचा खुचा माल पुलिस उठा ले गई। मजूरों के नलके बन्द कर दिए गए। पूर्णतया अत्याचार का शासन (Reign of Terror) था। सरकार से फ़रियाद की गई, पर कोई फल न हुआ। बिहार कौंसिल में अविश्वास का प्रस्ताव पास हुआ, पर बिहार सरकार के कानों पर जूं तक न रेंगी। मजूरों और पूंजीपतियों के झगड़े को शान्त करने के लिये "ट्रेड-डिस्प्यूट-एक्ट" के अनुसार जांच समिति बैठाने की प्रार्थना की गई है, पर सुनवाई कहां। सब आरज़ू और मिन्नतें वृथा हुईं— भगवान् के दरबार में ग़रीब को सुनाई न हुई। आखिरकार असेम्बली ने टिन-प्लेट कम्पनी के 'संरक्षण' को रद्द कर दिया। गोरे अख़बार झुंझला उठे। "इंग्लिशमैन" ने कहना शुरु कर दिया 'कि कांग्रेस अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए मजूरों को टूल बना रही है। क्या सुभास बाबू ने लिलूहा के हड़तालियों को नहीं कहा था कि मजूरों की समस्या का सम्बन्ध स्वराज्य आन्दोलन से है। क्या महत्वकांक्षी जवाहरलाल ने अपने बूढ़े पिता को असेम्बली में फसाद करने के लिए प्रेरित नहीं किया ? क्या सरकार इस बन्दर घुड़की के आगे दब जायगी ? उसका फ़र्ज़ है कि वह वास्तविक स्थिति देखे, किसी के बहकाने में न आवे।'

पर समस्या अभी तक न सुलझी। सरकार ने उपेक्षा कर दी। व्यवसाय-सदस्य श्री भूपेन्द्रनाथ मित्र तो कह बैठे कि ट्रेड-डिस्प्यूट-बिल तो ५०००० हड़तालियों के मामले में लगाया जा सकता है, ५००० में नहीं। पूंजीपतियों के प्रतिनिधि तथा मुम्बई के मिलमालिकों के संघ के अध्यक्ष श्री मोडी ने सरकार को लताड़ा कि उसने क्यों "जांच समिति" नहीं बैठाई। सरकार के ख़ैरख़्वाह उससे भागते दिखाई दिए। अवस्था बड़ी जटिल है। दोनों पक्ष अड़े हुए हैं। इधर मज़दूर भूखे मर रहे हैं और उधर कम्पनी की उत्पत्ति में ६० % कमी हो गई है, फिर भी झगड़ा शान्त होने के लक्षण नहीं दीखते। सरकार का कर्तव्य है कि वह स्थिति की गम्भीरता को अनुभव करे और इसका एक दम इलाज करे।



* ओ३म् *

गुरुकुल कांगड़ी के पुस्तक भण्डार

की

अमूल्य पुस्तकें

१०) रु० से अधिक की पुस्तकें खरीदने वाले को १५% और २०) से अधिक की पुस्तकें खरीदने वाले को २०% कमीशन दिया जावेगा।

१. भारतवर्ष का इतिहास १म भाग	१॥)	श्री आचार्य्य रामदेव जी कृत
२. भारतवर्ष का इतिहास २य "	१॥)	"
३. पुराणमत पर्य्यालोचन	३)	"
४. सन्ध्या का अनुष्ठान	॥)	श्री पं० सातवलेकर जी कृत
५. यजुर्वेद अध्याय ३०	१)	" "
६. " " ३२	॥)	" "
७. " " ३६	॥)	" "
८. ब्रह्मचर्य	१।)	" "
९. बालकों की धर्मशिक्षा १म भाग	~)	" "
१०. " " २य "	≈)	" "
११. अष्टाध्यायी वृत्ति	१॥)	श्री पं० गंगादत्त जी (स्वा० शुद्धबोध तीर्थ जी
१२. भौतिकी		बालफोर स्टूअर्ट की सुप्रसिद्ध अंग्रेजी फिज़िक्स के आधार पर म० गोवर्धन जी बी० ए० द्वारा लिखित।
१३. रसायन	॥)	विलियम एस. फर्नो की प्रसिद्ध अंग्रेजी कैमिस्ट्री का आर्य्य-भाषा में म० गोवर्धन जी बी० ए० द्वारा अनुवाद।

निम्न लिखित पुस्तकें तिहाई मूल्य पर दी जावेंगी

१. रुद्र देवता का परिचय	॥)	श्री पं० सातवलेकर जी
२. ऋग्वेद में रुद्र देवता	॥=)	,, ,,
३. वैदिक प्राण विद्या	१)	,, ,,
४. वेद का स्वयंशिक्षक १ म भाग	१॥)	,, ,,
५. वेद का स्वयं शिक्षक २ य भाग	१॥)	,, ,,
६. केनोपनिषद्	२।)	,, ,,
७. शतपथ बोधामृत	॥)	,, ,,
८. वैदिक सभ्यता	≡)	,, ,,
९. वेद में चर्खा	॥)	,, ,,
१०. वैदिक-सर्प विद्या	॥)	,, ,,
११. ३३ देवता विचार	=)	,, ,,
१२. वैदिक उपदेश माला	॥)	,, ,,
१३. संक्षिप्त वैदिक मनुस्मृति	॥)	स्वर्गीय श्रीस्वामी श्रद्धानन्द महार
१४. संस्कृत प्रथम पुस्तक	=)	श्री पं० भीमसेन जी शर्मा
१५. ,, साहित्य पाठावली २ य भाग	=)	
१६. संशोधित साहित्य दर्पण	२)	
१७. कविता मंजरी	।)	गुरुकुल के ब्रह्मचारियों द्वा संग्रह
१८. कविता कुसमाञ्जली १ म भाग	-।)	,, ,,
१९. कविता कुसमाञ्जली २ य भाग	।-)	,, ,,

निम्न लिखित पुस्तकें चौथाई मूल्य पर दी जावेंगी

१. आचार, अनाचार और छूत छात	=)	स्वर्गीय श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी
२. पारसी मत और वैदिक धर्म	=)	" "
३. ईसाई पक्षपात और आर्य्य समाज	=)	" "
४. मानव धर्म सार	=)	" "
५. मातृ भाषा का उद्धार	=)	" "
६. विस्तार पूर्वक संध्या विधि	=)	" "
७. पंच महायज्ञ विधि	=)	" "
८. आदिम सत्यार्थ प्रकाश	॥)	" "
९. उत्तरा खण्ड की महिमा	॥)	" "
१०. वैदिक ईश्वर वाद	=)	पं० सातवलेकर जी
११. अकाल से बचने के उपाय	॥)	बाबू कृष्णगोपाल जी श्रीवास्तव
१२. मृतक श्राद्ध पर विचार	=)॥	श्री पं० इन्द्रजी विद्यावाचस्पति
१३. स्वर्ण देश का उद्धार	॥=)	" " "
१४. वेद और आर्य्य समाज	=)	श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी
१५. स्वा० दयानन्द और उनकी तालीम (उर्दू)	॥=)	म० राधाकृष्ण जी महता
१६. राजस्थान की वीर रानियां	|=)	पं शिवव्रतलाल जी
१७. वेद और पशु यज्ञ	|)	जे. पी. चौधरी
१८. राष्ट्रीय आन्दोलन	१॥)	म० प्रभुलालजी मीतल
१९. भारत गीताञ्जली	|-)	श्री माधवजी शुक्ल
२०. गल्पाञ्जली	॥|)	पं० शिवनारायण जी द्विवेदी

कला कौमुदी

लेखिका श्रीमती ओ३म्वती देवी

चित्र कला कौशल सम्बन्धी अनुपम पुस्तक इस के द्वारा लेखिका ने क्रोशिये के कार्य को बड़ा ही सरल बना दिया है। बिना किसी प्रकार के पहिले ज्ञान के कन्यायें और स्त्रियें केवल इस की ही सहायता से अनेक प्रकार की बिनावट लेसें, फ़ीते, कपड़े इत्यादि बनाना सहज में हो सीख सकी हैं। पुस्तक में इतना विषय है कि किंचित इस से कई गुना दाम की पुस्तकों में भी न होगा। प्रत्येक वस्तु तथा बिनावट का बनाना चित्र देकर बड़ी सरल रीति से सिखाया गया है। देखिये समाचार पत्र इस के विषय में क्या कहते हैं।

„ट्रिब्यून" (अंग्रेज़ी का प्रसिद्ध दैनिक) लाहौर—स्त्रियों के लिये उपयोगी पुस्तक है। अनेक चित्रों द्वारा वस्तु बनाने की विधि बड़ी सरलता से समझाई गई है। सुन्दर नमूने की लेसें, टेबल क्लाथ, बच्चों के सुन्दर कपड़े और अन्य कई वस्तुओं का बनाना बड़ी सुन्दर रीति से बतलाया गया है। पुस्तक की उपयोगिता के विचार से मूल्य बहुत कम है।

"मतवाला" (कलकत्ता)-यह पुस्तक हमारी बहिनों के बड़े समझ की है। छपाई बहुत अच्छी, कागज़ बहुत अच्छा मोटा चिकना आर्ट। सुचारु शिल्प पत्रावली कार्ड गृहस्थियों के बड़े काम की चीज़ है।

"कर्मवीर" (खांडवा)— ......पुस्तक में सादे फन्दे से लगाकर तरह तरह की वस्तुओं के बनाने की विधि बड़ी सरलता से समझाई गई है जिसे पढ़कर साधारण पढ़ी लिखी स्त्री भी इस कार्य को सीख सकती है। इस का मूल्य लागत को देखते कम है।

"माधुरी" (लखनऊ)-ऐसी पुस्तकों की हिन्दी साहित्य के लिये बड़ी आवश्यकता है। आशा है इस पुस्तक का अच्छा प्रचार होगा जिस से इस प्रकार की और पुस्तकें भी प्रकाशित की जा सकें। लेखिका और प्रकाशिका दोनों को बधाई।

शीघ्र आर्डर भेजिये — मूल्य १॥)

कला कौमुदी तथा शिल्प पत्रावली का पूरा सैट लेने पर २॥।≈)॥ के स्थान में केवल २।) में दिया जायगा।

कन्या पाठशालाओं और पुस्तक विक्रेताओं को विशेष रियायत

मैनेजर ज्योति—

कन्या गुरुकुल

राजपुरा रोड कोठी नं० २१—२२ देहरादून

गङ्गाराम पाठक प्रिन्टर तथा पं० रमेशचन्द्र पब्लिशर के लिये गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में मुद्रित।

Regd. No. A. 1711

वर्ष १०] अक्टूबर १९२९ [संख्या ६

251 275

ज्योति



वार्षिक मूल्य. ४॥)
प्रति संख्या ॥)

सम्पादक—
विद्यावतीसेठ बी. ए., चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

विद्यार्थियों, स्त्रियों से ४)
विदेशका मूल्य ६)

विषय सूची।



लेखकों से निवेदन

१. ज्योति में लेख, कविता आदि भेजने वाले महानुभावों को अपने लेख सुस्पष्ट अक्षरों में कागज़ के एक ओर ही, हाशिया छोड़ कर लिख कर भेजने चाहियें।

२. लेख बहुत लम्बे न होने चाहिएँ। 'ज्योति' पत्रिका के लगभग चार पृष्ठों के लायक लेख हों तो अति उत्तम है।

३. लेखों को घटाने बढ़ाने तथा संशोधित करने का संपादक को पूर्ण अधिकार है।



ज्योति सम्बन्धी पत्र व्यवहार—

आचार्या कन्या गुरुकुल
कोठी नं० २१, राजपुर रोड़
(देहरादून)

अथवा—

सम्पादक ज्योति
गुरुकुल कांगड़ी
यू.पी.



विविध विषय विभूषित सुन्दर मासिक पत्रिका.

वर्ष १०	आश्विन १९८६ ※ अक्तूबर १९२९	संख्या ६

अन्धे की अभिलाषा

(ले०—श्री जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द')

(१)

क्या रखा है शिथिल देश में जिसे देखना चाहूं आज,
कानों को भी करुण-कथा सुनने में जब आती है लाज।
तरस रहीं बरसों से पर मिटी नहीं अभिलाषा एक,
पूरी कर देना हरि आंखों की तुम से है आशा एक॥

(२)

स्वतन्त्रता की बलि वेदी पर गाते हुए विजय का गान,
जब प्रसन्न मतवाले सैनिक, करते हों अपना बलिदान।
केवल तभी, तभी, क्षणभर को करके मुझ पर दया महान्,
मेरी इन अन्धी आंखों को ज़रा खोल देना भगवान्॥

असहिष्णु स्वामी दयानन्द !

(लेखक—श्री आचार्य्य रामदेव जी)

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् । आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात् । अथर्व. १८ । १ । ६ ॥



वास्तव शुद्ध सत्य को प्रकाशित करने के लिये रोषयुक्त, बाण की तरह तीक्ष्ण, दूसरों के हृदय पर अपना प्रभाव डालने वाली सुखोत्पादक वाणी का प्रयोग करने वाले बहुत ही विरले पुरुष होते हैं। क्यों कि इस प्रकार की वाणी का प्रयोग केवल वे ही पुरुष कर सकते हैं जिन के हृदय में उस उद्देश्य के लिए मन में लगन हो और सचाई के लिये सब कुछ स्वाहा कर देने का साहस हो। उथले दिल से निकली हुई वाणी, साहित्यिक सौन्दर्य युक्त होती हुई भी अपना वह प्रभाव नहीं रखती जो एक सच्चे और अनुभव करने वाले पुरुष के मुख से निकली वाणी का होता है। यह वाणी रोषयुक्त होती हुई भी सुख देने वाली होती है। यह रोष और यह तेजस्विता एक सुधारक की वाणी में अधिक मात्रा में होती है। एक राजनीतिज्ञ अपने कार्य में पूर्ण विश्वास रखता हुआ भी इतनी रोष पूर्ण तथा तेजोमयी वाणी का प्रयोग नहीं करता जितना एक सुधारक करता है। राजनीतिज्ञ पुरुष का कार्य सामजिक समस्याओं को सुलझाना है। इस लिये उसे दूसरों से समझौता करना पड़ता है। परन्तु एक सुधारक किसी से समझौता करने नहीं आता उसे केवल सामाजिक समस्याओं को ही सुलझाना नहीं होता अपितु उसे त्रैकालिक सत्य के प्रचार के लिये, बिना समझौता किये, अपने विचारों को दूसरे लोगों तक पहुंचाना होता है। उस के सामने एक ही मार्ग है। जिस पर वह सब को लाना चाहता है। उस के लिये दो विकल्पों के अतिरिक्त और कुछ नहीं। इस लिये उस का कार्य एक राजनीतिज्ञ की अपेक्षा अधिक कठिन है। उसे इस कार्य के लिये अधिक कठोरतासे काम लेना होता है। अतएव वह बुराइयों को दूर करने के लिये अत्यधिक रोषयुक्त वाणी का प्रयोग करता है। महर्षि दयानन्द भी इसी तरह के अपराधियों में से एक हैं जिन्होंने रोगी के तात्कालिक सुख की परवाह न करते हुए उस के जख़्म पर अपना तेज़ नश्तर लगा कर उस के मवाद को निकाल कर दूर फेंक दिया है। इसी कारण बहुत से दर्शक तथा रोगी के कुछ एक सम्बन्धी भी उस डाक्टर को भयंकर तथा उग्र समझने लग गए हैं। उन्हें उस चिकित्सक में असहिष्णुता की गन्ध आती है। उस के व्याख्यानों और कार्यों में सर्वत्र असहिष्णुता ही दिखाई देती है। परन्तु किसी पर असहिष्णुता का दोष लगाने से पूर्व या उस के विषय में अपनी सम्मति प्रकाशित करनेसे पहले यह जांच लेना आवश्यक है कि अमुक पुरुष किस भाव से वह कार्य कर रहा है। यदि चिकित्सक रोगी को रोग से शीघ्र मुक्त करने के उत्तम भाव से उस के जख़्म पर अपना नश्तर चलाता है तो उसे भयंकर वा उग्र नहीं समझना चाहिये। महर्षि दयानन्द ने मनुष्य समाज की भलाई के लिये यदि कठोर वाणी का उपयोग किया है तो वह असहिष्णु नहीं कहे जा सकते। यदि वह विपक्षियों में कोई भी अच्छाई और सचाई न देखते और सब दोष ही

दोष देखते तो उन्हें असहिष्णु कहना वास्तविक तथा उचित था परन्तु जिन्होंने उन की स्पिरिट को समझा है और उन के लेखों और व्याख्यानों को ध्यान से सुना और पढ़ा है वे जानते हैं कि महर्षि का हृदय कितना विशाल तथा उदार था। सत्यार्थ-प्रकाश की भूमिका में स्वामी जी महाराज लिखते हैं—"मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य जानने वाला है। तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्या आदि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है। परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी कोई बात नहीं रखी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है।.........इस (ग्रन्थ) में यह अभिप्राय रखा है कि जो २ सब मतों में सत्य २ बातें हैं वे २ सब से अविरुद्ध होने से उन का स्वीकार कर के जो २ मत मतान्तरों में मिथ्या बातें हैं उन २ का खण्डन किया है। इस में यह भी अभिप्राय रखा है कि जब मतमतान्तरों की गुप्त वा बुरी बातों का प्रकाश कर विद्वान् अविद्वान् सब साधारण मनुष्यों के सामने रखा है, जिस से सब से सब का विचार होकर परस्पर प्रेमी हो के एक सत्य मतस्थ होवें। यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ तथापि जैसा इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर याथातथ्य प्रकाश करता हूं, वैसे दूसरे देशस्थ वा मनुष्योन्नति वालों के साथ भी वर्तता हूँ। जैसे स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्तता हूँ वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों को भी वर्तना योग्य है।" आगे लिखते हैं—"इस लिये जैसा मैं पुराण, जैनियों के ग्रन्थ, बायबिल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देख कर उन में से गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्य जाति की उन्नति के लिये प्रयत्न करता हूं, वैसा सब को करना योग्य है।" इसी प्रकार प्रत्येक अनुभूमिका में इसी विचार को स्वामी जी महाराज प्रकट करते हैं। वह लिखते हैं—'सच तो यह है कि इस अनिश्चित क्षणभंगुर जीवन में पराई हानि करके लाभ से रिक्त रहना और अन्य को रखना मनुष्यपन से बहिः है। इस में जो कुछ विरुद्ध लिखा गया हो उस को सज्जन लोग विदित कर देंगे। तत्पश्चात् जो उचित होगा माना जायगा। क्योंकि यह लेख हठ दुराग्रह ईर्ष्या द्वेष वादविवाद और विरोध घटाने के लिये किया गया है न कि इनको बढ़ानेके अर्थ।" इन वाक्योंसे स्वामी दयानन्द की उच्च भावना और मनोवृत्ति का उचित ज्ञान हो जाता है। दिल्ली में सब धर्म वालों की एक कान्फ्रेंस की आयोजना करने का भी यही एक मुख्य प्रयोजन था कि सब मत मतन्तारों के विरोध मिट जाय। स्वामी जी महाराज दूसरे धर्मों में दोष ही दोष देखते थे इस विचार के विरोध में सत्यार्थप्रकाश की भूमिका के शब्द स्पष्ट कह रहे हैं। जिस समय स्वामी दयानन्द को अपना कार्य करना था उस समय उन के लिये यही उचित था कि वे हिन्दुओं को अपनी बुराइयां दिखाते और उन बुराइयों को दूर करके प्राचीन आर्य मर्यादा का शुद्ध स्वरूप उनके सन्मुख रखते। ईसाइयों और मुसलमान प्रचारकों के प्रभाव से अधिकांश हिन्दू समाज के दिल में यह विश्वास बैठ गया था कि भारतीय प्राचीन ग्रन्थों में कुछ भी उपादेय वस्तु नहीं है। बाइबल और कुरान ही शान्ति और मोक्ष के प्राप्त कराने वाले हैं। बड़े २ शिक्षित हिन्दू भी अपने धर्म ग्रन्थों से ऊबा चुके थे और अन्य मतों में दीक्षा ले रहे थे। महर्षि दयानन्द ने उन्हें अपने धर्म (हिन्दू धर्म) की वास्तविक बुराईयों को दूर करने को कहा और साथ ही अपने प्राचीन आर्य ग्रन्थों की तरफ उनका

ध्यान आकर्षित किया। इस के अतिरिक्त ईसाइयों और मुसलमानों के इस दावे को अशुद्ध सिद्ध कर दिखाया कि उन के धर्मों में सब सचाई ही सचाई है। उन के ग्रन्थों में जो सचाइयां है उन्हें वह स्वयं खुले हृदय से स्वीकार करते हैं और जो उन के अन्धविश्वास पूर्ण विश्वास उन पर प्रकाश डालना भी अपना कर्तव्य समझते हैं। इस लिये महर्षि दयानन्द को असहिष्णु कहना उन के समय की परिस्थिति न जान कर उन पर झूठा दोष लगाना है। यह सत्य है कि महर्षि दयानन्द ने सत्य का कड़वा घूंट हम सब को पिलाया है। इस कारण कइयों को रुलाया और उन के मन को दुखाया भी है। परन्तु इस का परिणाम अत्यन्त सुखमय सिद्ध हुआ है। हिन्दू समाज और कतिपय अंशों में मुसलमान समाज में भी बुरा मवाद निकल गया है। उन के शरीर में नव जीवन का सञ्चार हो गया है। इस परोपकार को हिन्दू समाज ने अब अच्छी तरह से समझना शुरु कर दिया है। वह दिन भी बहुत दूर नहीं कि जब मुसलमानों की वेदियों से महर्षि दयानन्द के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति के शब्द सुनने में आएंगे।

यह सब कुछ होने पर भी आर्य समाज को अपना कर्तव्य समझ लेना चाहिये। महर्षि दयानन्द ने जो कुछ किया वह उचित तथा न्याययुक्त किया। उस समय की परिस्थितियों के अनुसार किया। इस समय आर्य समाज ने जो करना है वह आज कल की परिस्थितियों को देख कर करना है। जो परिस्थिति महर्षि दयानन्द के समय थी वह आज नहीं। इस लिये वैदिक धर्म के प्रचार के लिए जिस उपाय को स्वामी दयानन्द ने पकड़ा था, वह उपाय आज लाभप्रद न होगा। इस समय दूसरे धर्मों के केवल खण्डन ही करने की आवश्यकता नहीं। जो दावा उस समय पौराणिक, जैन, ईसाई या मुसलमान करते थे वह दावा वे आज नहीं करते। उन्होंने अपनी स्थिति को अब समझ लिया। इस समय आर्य समाज का काम साफ किये हुए जंगल में वाटिका लगाने का है। इस समय उस का कर्तव्य ऐसे फूल लगाना है कि जिन की शोभा और सुषमा से वाटिका खिल उठे, जिन की सुगन्धि तथा मीठी मुस्कान से राही का दिल उस की ओर आकर्षित होजाए। इस आर्य समाज ने ऐसे फूल अपनी वाटिका में बोने हैं जो दूसरों के घरों में जाकर उन्हें सुगन्धित कर दे और दूसरों के गले की माला में पड़ कर उनको उच्च बनादे। इन्हीं विश्व व्यापी सुन्दर मनोहर सुरभित पुष्पों की अञ्जलि से हम महर्षि दयानन्द की वस्तुतः पूजा कर सकते हैं।



झांकियां !!!

ऋषि के हृदय की कुछ तरंगें।

(ले०—प्रो० पं० चन्द्रगुप्त जी विद्यालङ्कार गुरुकुल कांगड़ी)

(१)



ल की रात मैं आजन्म नहीं भूल सकूंगा। मेरे पूजनीय पिता ने मुझे कितनी बड़ी आशा बंधाई थी। उन्हों ने कहा था—आज रात महादेव के दर्शन होंगे। उन के मुंह से महादेव की शक्तियों का वर्णन सुन कर मैं चकित और स्तब्ध हो गया था। वे कहते थे—उसी ने इस संसार की रचना की है और वह इच्छा करते ही इस सारे संसार का नाश कर सकता है। हमारा वह नया मकान बहुत से लोगों ने मिल कर कितने परिश्रम से बनाया है, परन्तु महादेव की इच्छा मात्र से ही यह मकान हवा में मिल सकता है। महादेव की इन अतुलनीय शक्तियों की कल्पना भी मेरे हृदय में एक गुदगुदी पैदा कर देती थी। सोचता था—वह जब आएँगे तब उन से क्या कह कर मिलूंगा। मैं हैरान था कि पिता जी आज इतनी महान् शक्ति से मिलने जा रहे हैं परन्तु इन के मुंह पर किसी असाधारण भाव की झलक क्योंकर दिखाई नहीं देती ?

मैं अभी बालक ही हूं तो क्या हुवा ! क्या बालकों को अपने पिता से मिलने का अधिकार नहीं होता। अपनी माता की भी बड़ी खुशामद कर के मैंने कल व्रत धारण किया था। सारा दिन उत्कण्ठा और उत्साह से मैं शिव जी के नामों का जाप करता रहा। जब रात हुई तो महादेव के दर्शन की कामना से मैं मन्दिर में प्रविष्ट हुवा। बड़े ज़ोर की नींद आ रही थी मेरे आस पास के सब लोग वहीं सो गए थे, परन्तु मैं अपने मुंह पर पानी के छींटे दे दे कर जागता रहा—क्या इसी हिम्मत पर ये लोग मुझे व्रत और जागरण के अयोग्य समझते थे। इतनी मिहनत से जागा परन्तु नतीजा क्या निकला ! महादेव नहीं आए, आया उन का वाहन 'चूहा'।

क्या सचमुच यह पत्थर का छोटा सा टुकड़ा ही महादेव है। यह चेतना शून्य जड़, पत्थर ईश्वर कैसे मान लिया गया। आश्चर्य है, मेरे बुद्धिमान पिता जी भी इसी को सर्वशक्तिमान् मानते हैं। मेरी माता भी इसी महादेव की पूजा कर के ही भोजन करती है। यह सब क्या मामला है। कहीं ये सब लोग धोके में तो नहीं पड़े हुए ? पिता जी कहते हैं कि यह पत्थर की मूर्ति हिमालय पर रहने वाले महादेव की प्रतिनिधि मात्र है। वे चाहे जो मानें, मेरा तो इस महादेव से जी नहीं भरा। यह तो चूहों की अपेक्षा भी कमज़ोर है, मैं इसकी पूजा क्यों करूं ! मैं असली महादेव की पूजा करूंगा। मुझे मालूम नहीं कि वह कहां है। परन्तु मैं उसे अवश्य ही खोज निकालूंगा। वह यदि हम सब का पिता है तो क्या मुझे दर्शन न देगा ! दुनियां के इस लेन देन में क्या रक्खा है। अभी उस दिन पिता जी ने सिर्फ़ थोड़े से रुपयों के लिये ही उस बेचारे भगतू किसान को किस बे-रहमी से पीटा था। बड़ा होकर मैं इन झंझटों में

न पड़ूंगा। मैं सच्चे महादेव को खोजूंगा। मेरा दिल कहता है कि महादेव मुझे अवश्य मिलेंगे।

(२)

ओह ! इस उल्लू की आवाज बड़ी भयंकर है। सारी रात मैं इसे भूत समझ कर कांपता रहा हूँ। इस पेड़ पर बैठे हुए वैसे भी नींद लेना तो असम्भव ही था। यदि मैं अपने को धोती के सहारे तने पर बांध न देता तो उल्लू की यह भयंकर आवाज़ सुन कर मेरे नीचे गिर जाने में सन्देह नहीं था। इस प्रकार छिप २ कर भागने से मेरा क्या बनेगा ? भूख कितना तंग कर रही है ? यदि इस समय घर में होता तो मेरी प्यारी मां मुझे न जाने कौन सी मिठाई खिला रही होती। मेरी माता सचमुच स्वर्ग की देवी है। मेरे भाग आने के कारण उसे कितना दुःख हुआ होगा ! मैं यहां उल्लू की आवाज़ से डर कर सोने नहीं पाया, वहां मेरी माता मेरे दुःख में नहीं सोई होगी। अपनी माता की प्रेममयी स्मृति मुझ कठोर की आंखों में भी आंसू ला रही है। चलूं मां की गोद में लौट चलूं। इन झंझटों में क्या रखा है।

पिता जी ने मेरी खोज के लिये आदमी भेजे होंगे। यह थोड़ी ही दूर पर हमारे गांव से आती हुई पगडण्डी दिखाई पड़ रही है। मुझे ढूंढते हुए अवश्य ही कुछ न कुछ आदमी इस ओर निकलेंगे। क्यों न इस पेड़ से उतर कर इस पगडंडी के किनारे बैठ जाऊं, जब कोई घर वाला आएगा तो उस के साथ घर लौट चलूंगा। पिता जी से कोई बहाना कर के ही काम चल जायगा। हां, यह क्या दुःखद स्मृति याद आ रही है। यह तो वही पगडंडी है, जिस पर से होकर लोग मेरी प्यारी बहिन की हड्डियां नदी में फेंकने गए थे। मेरी बहिन ! प्यारी बहिन ! वह मुझे अकेला छोड़ कर सदा के लिए कहीं चली गई। उफ़, वह दिन कितना भयंकर था मुझे भली प्रकार याद है, उस दिन किसी ज़रा सी बात पर मैं और मेरी बहिन बड़े ज़ोर से हंसे थे। इस के बाद बहिन ने कहा था "मूल ! मेरे पेट में दर्द हो रहा है।" मैं पिता जी को इस बात की सूचना देकर अपने एक मित्र के साथ कहीं बाहर चला गया था। एक घंटे के बाद जब मैं घर लौट कर आया तब देखा कि मेरी बहिन कय पर कय कर रही थी। मैं घबरा कर चिल्ला उठा, "लक्ष्मी !" मेरी ओर आंखे फेर कर उसने बड़े कष्ट से पुकारा, "मूल !" बस, थोड़ी ही देर में सब ख़तम हो गया !

मृत्यु क्या है ? यह मैं समझ नहीं पाया हूँ। प्रतिदिन नई नई समस्याएं मेरे सामने आकर खड़ी हो रही हैं। घर लौट चलने से क्या होगा ? अब माता की जुदाई से घबराता हूँ, कौन कह सकता है कि कल ही वह मेरी बहिन की तरह मुझ से ही नहीं छीन ली जा सकती ? केवल घर लौट चलने से ही तो उसे स्थिरता पूर्वक पा नहीं सकता। फिर पिता जी मेरा विवाह कर देना चाहते हैं। इस गड़बड़ झाले में फंस गया तो उद्धार असम्भव हो जायगा। ना भाई, मैं घर नहीं लौटूंगा। अब और आगे बढ़ने में ही ग़नीमत है। चलूं, अभी प्रातःकाल ही है, किसी निर्जन दिशा की ओर निकल चलूं।

(३)

कितना भयंकर अधःपतन है। यही आर्य जाति कभी संसार की शिरोमणि थी। पाखण्ड, मूर्खता, निर्लज्जता और पशुता का यह महान निदर्शन मेरे लिये कल्पना से भी परे की चीज़ था। मैं इस कुम्भ के मेले में किन आशाओं से गया था। सोचा था कि साधुओं के इस बड़े जमघट में, मैं

शायद कोई सच्चा योगी प्राप्त कर सकूं। मेरे दिल में जो जिज्ञासा की तीव्र ज्वाला जल रही है, उसे शायद इस मेले में आया हुआ कोई पूर्ण योगी शान्त कर सके। परन्तु हाय, यहां तो अपने देश की दुरवस्था का नंगा चित्र दिखाई दे रहा है। मैं अपने वैयक्तिक घर की आग बुझाने की फ़रमाइश लेकर आया था परन्तु यहां देखा कि सारा नगर ही जला जा रहा है। क्या यही वे सर्वत्यागी सन्यासी और साधु हैं? किस हिम्मत पर ये लोग अपने इस निर्लज्जता पूर्ण पाखण्ड की प्रदर्शनी कर रहे हैं। धर्म के नाम पर संसार के सब बड़े २ पाप खुलेआम किये जा रहे हैं। यहां ब्रह्मचारियों की सन्तानें हैं, नांगों के बच्चे हैं, वैरागियों के महल हैं, और उदासियों के झूलेदार हाथी हैं। यही लोग भारत वर्ष के गुरु हैं! यह जाति अब तक बची कैसे हुई है, यही एक बड़ा आश्चर्य है। ये लोग अपने जुलूस किस बेशर्मी से निकालते हैं, मानो कोई दिग्विजय करके आ रहे हों। एक गलित कुष्ठ का मरीज़ खुश होकर अपने पीप से भरे दुर्गन्धित घावों की प्रदर्शनी कर रहा है। अधःपतन अपनी पराकाष्ठा तक पहुँच चुका है।

नरक का यह जीता जागता कल्पनातीत दृश्य अपनी आंखों से देख लेने के बाद मैं इन जंगलों में बेचैन सा होकर घूम फिर रहा हूं। मेरे दिल में ऐसी तेज भट्टी जल रही है जिस की बदौलत गंगा का यह शीतल जल भी मेरे लिये ठंडा नहीं रहा। यह आग मुझे हर समय तड़पाती रहती है। इसी तड़प की बदौलत मैं कितने जंगलों को छान आया अब यही पेड़ पत्ते और यह गंगा नदी ही मेरे सलाहकार और मित्र हैं। भारत वर्ष की आत्मा मृत्यु शय्या पर पड़ी है परन्तु इस का भौतिक शरीर आज भी उतना ही पवित्र और सुन्दर है। बन में पक्षी चहचहा रहे हैं, नदी के किनारे पर मोर बोल रहा है। नदी की यह नीली क्षीण धारा कैसा हृदय ग्राही झर्झर शब्द कर रही है। इच्छा होती है, सब कुछ भुला कर इन बनों में पागल की तरह घूमता फिरूं। अहा, देव स्वरूप भारत का यह भौतिक शरीर आज भी कैसा पवित्र और हृदय ग्राही है। यह सब कुछ वही है। परन्तु इस देश में बसने वाली जाति अब 'वही' नहीं रही।

यह क्या? मेरी आंखों में आँसू आ रहे हैं। चल कर इन्हें नदी के शीतल जल से धो डालूं। इस प्रकार आंसू बहाने से क्या बनेगा?

(४)

एक साथ सब से लड़ाई बोल दी है। ख़ूब घमासान होगी। मेरे साथ कोई मानवीय शक्ति नहीं है। नये पुराने सभी मेरे शत्रु हैं। मुझे केवल इन पुरानी लकीर के फ़क़ीर पाखण्डियों से ही नहीं लड़ना यह पश्चिम का चमकता हुआ दम्भ पूर्ण पाखंड मेरी आंखों में और भी अधिक खटकता है। इस विशाल भारत के सम्पूर्ण मतमतान्तरों से मेरी लड़ाई है। सारा संसार इस विचित्र लड़ाई को आश्चर्य के साथ देखेगा। मैं भाई को भाई से लड़ाऊंगा, पुत्र को पिता से लड़ाऊंगा और पत्नी को पति से लड़ाऊंगा। सदियों के बाद एक वार फिर संसार इस अद्भुत लड़ाई को देखेगा।

वह मूर्ख मुझे रियासत का प्रलोभन देता था। मैं यदि मूर्ति पूजा का बिरोध बन्द कर दूँ तो यह मुझे इस लाखों की सालाना आमदनी वाले मन्दिर का महन्त बना देगा। मूर्ख अपनी छोटी सी रियासत को ही संसार की सब से अधिक कीमती वस्तु समझता है। यह नहीं जानता कि एक ही दौड़ में इस की रियासत को पार किया जा सकता है।

ना समझ लोग मौत की धमकियां देकर डरा रहे हैं। इन्हें मालूम नहीं कि यदि मैं मौत से घबराता होता तो घर छोड़ कर ही क्यों निकलता! ना समझ हैं न। मृत्यु की धमकी देने वाले लोग भी कितने कायर होते हैं। मैं अकेला हूँ, फिर भी यह पांच सात मिल कर मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। संसार की कोई शक्ति अब दयानन्द को अपने मार्ग से एक इञ्च भी पीछे नहीं हटा सकती

क्या मैं इस गौरवमयी सभ्यता का उद्धार कर सकूंगा? क्या अपने पूर्वजों के उज्वल चरित्रों की लाज बचा सकूंगा? क्या इस गरिमाशाली देश के निवासियों को मूर्खता और गुलामी को दूर कर सकूंगा? अकेला हूं तो क्या हुआ। ईश्वर मेरी सहायता करेंगे। यदि यह सब करते हुए मुझे सफलता न मिली तो भी कोई चिन्त की बात नहीं। यह सब न कर सकूंगा तो न सहा, अपनी जान तो दे सकूंगा।

आज मेरी आंखों में बलात् आंसू आरहे हैं। यही चितौड़ की वह पुण्यभूमि है जिस पर स्वतन्त्र-भारत की रक्षा के लिये वीर आर्यों ने अन्तिम वार अपने प्राण अर्पण किये थे। ये खण्ड-रात जयमल और फत्ता के निवास स्थान हैं, इसी उजड़े हुए दुर्ग की स्वतन्त्रता बचाने के लिये राणा प्रताप अपने गिनती के सहायकों के साथ आयु पर्यन्त जंगलों में भटकता रहा। सब से बढ़ कर, यही वह वीरभूमि है जिस की लाज बचाने के लिये सती पद्मिनी अपनी सम्पूर्ण सखियों के साथ अग्नि में भस्म हो गई। उस अदृश वीरांगना सती पद्मिनी की पुण्य स्मृति मुझे पुलकित किये देती है। ऐ चितौड़ दुर्ग के भग्न खंडरातो! तुम भारत वर्ष की सब से अधिक मूल्यवान सम्पत्ति हो। यह चितौड़ की गरिमाशाली वीरभूमि धन्य है!

सामने पश्चिम दिशा में, सूर्य अस्त हो रहा है। उस की अन्तिम किरणों से चित्तौड़ के खंडरात केसरिया रंग के हो उठे हैं। आज से सैंकड़ों बरस पूर्व इस क्षत्रियभूमि चित्तौड़ की वीर प्रसवा कोख से सहस्रों आत्महुत राजपूत इसी केसरिया रंग में रंगा बाना पहिन कर अनेकों बार मातृभूमि की स्वातन्त्र्य रक्षा के लिए युद्ध क्षेत्र में निकल चुके हैं। कहीं उन्हीं राजपूतों की पुण्य स्मृति में ही तो सूर्य प्रतिदिन इन वीरता के खंडरातों को उसी कुर्बानी के रंग से नहीं रंग देता! यह कैसा मर्म स्पर्शी हृदय है! ऐ वीर-प्रसवा चित्तौड़ भूमि के कमज़ोर निवासियो! एक बार आंख उठा कर देखो, तुम्हारी नामर्दी से खिज कर आज चित्तौड़ माता स्वयं ही केसरिया बाना पहिन कर युद्ध के लिये तैय्यार हो रही है। माता के अयोग्य पुत्रो! मां के हृदय की इस तीव्र जलन को समझो। बड़े भाग्य से तुम्हें चित्तौड़ सी जन्मभूमि प्राप्त हुई है। तुम राणा प्रताप के वायुमण्डल में सांस लेते हो, सती पद्मिनी के कुओं का जल पीते हो जयमल और फत्तो की भूमि का अन्न खाते हो। क्या कहते हो, सारा भारतवर्ष ही आज पराधीन और नामर्द बन गया है, हम अकेले क्या करें? नहीं, तुम वीर पुत्र हो तुम्हारे मुंह से यह बात शोभा नहीं देती। राणा प्रताप के वंशधर ऐसा बहाना नहीं कर सकते।

वह सामने दुर्ग के नीचे कुछ राजपूत गड़रियों के बालक भेड़ें चरा रहे हैं इन सब पर भी तो सूर्य का केसरिया प्रकाश ही पड़ रहा है। परन्तु ये लोग कितने निश्चिन्त और मस्त हो कर आपस में हंसी मखौल कर रहे हैं। मानो कुछ हुवा ही नहीं है। मानो ये राणा प्रताप के वंशज ही नहीं। चलूं, यह दृश्य अब देखा नहीं जाता। पिता! क्या तेरी

द्वैतवादी शंकराचार्य्य



ले०—आयुर्वेद विशारद पं० नारायणदत्त सिद्धान्तालंकार



अद्वैतवाद के प्रथम आचार्य्य स्वामी शङ्कराचार्य्य समझे जाते हैं। शङ्कराचार्य्य ने संसार में वस्तु की ३ अवस्थाओं को स्वीकार किया है—सत्य, मिथ्या तथा अलीक।

सत्य उस वस्तु का नाम है जिस का दर्शन पारमार्थिक अवस्था में रहे। ब्रह्म ही एक मात्र ऐसी वस्तु है।

मिथ्या उस वस्तु का नाम है जिस का दर्शन व्यावहारिक अवस्था में ही रहे पारमार्थिक अवस्था में न रहे। यह दृश्यमान संसार इस का उदाहरण है।

अलीक उस वस्तु का नाम है जिस का दर्शन व्यावहारिक तथा पारमार्थिक दोनों ही अवस्थाओं में न हो। जैसे आकाश के फूल। खरगोश के सींग।

सत्य मिथ्या तथा अलीक ये तीनों शब्द शङ्कराचार्य के पारिभाषिक हैं। व्यावहारिक भाषा में मिथ्या तथा अलीक ये दोनों शब्द पर्य्यायवाची समझे जाते हैं, पर शङ्कराचार्य के शब्द-कोष में इन में ज़मीन आस्मान का फ़र्क है। शङ्कर संसार को अलीक कभी न कहेंगे, आकाश के फूल उन के मत में मिथ्या नहीं हो सकते। इस का कारण क्या? यदि शंकराचार्य केवल ब्रह्म ही के अस्तित्व को स्वीकार करते तो इन तीनों विभागों का क्या तात्पर्य्य? यदि उन के मत में प्रकृति सिद्ध संसार का अस्तित्व बिलकुल न होता तो इसे अवश्य खरगोश के सींग के समान अलीक कोटि में डाल देते। यह बात उन्हें तथा अन्य नवीन वेदान्तियों को भी असह्य है। प्रकृति शब्द शंकराचार्य को अवश्य सहन नहीं हुआ। उस के स्थान पर माया शब्द प्रयुक्त किया। माया का लक्षण क्या है? ठीक वही जो योग दर्शन के भाष्य में व्यासमुनि ने प्रकृति का किया है। वेदान्त मत में माया का प्रसिद्ध लक्षण निम्न हैः—

नासद्रूपा न सद्रूपा माया नैवोभयात्मिका।
सदसद्भ्यामनिर्वाच्या मिथ्याभूता सनातनी॥

माया सनातनी—सदा से रहने वाली है। सनातनी शब्द उसके अस्तित्व को ज़ोरदार शब्दों में प्रकट करता है। लक्षण किया है—इसे न सत् कह सकते हैं न असत्, यह सत् असत् उभय रूपिणी भी नहीं। सत् तथा असत् शब्द इसे प्रकट नहीं कर सकते।

व्यासमुनि योग भाष्य में ठीक ऐसे ही शब्दों का प्रयोग करते हैं। उनके मत में प्रकृति या प्रधान का लक्षण निम्न हैः—

"निःसत्तासत्तं निःसदसद् अव्यक्तं नाम"

प्रकृति या प्रधान न सत् है नाही असत्, सत् असत् के बाहर है, अव्यक्त है—उस का स्वरुप नहीं जान सकते।

दोनों लक्षण एक ही भाव को लिए हुए हैं, एक ही प्रकार के शब्दों में किए गए हैं।

शङ्कराचार्य चाहते अवश्य थे कि एकब्रह्मवाद की ओर जायं। इस के लिए उन्होंने यथाशक्ति प्रयत्न किया। ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण माना। प्रकृति परमाणु आदि को जगत् का कारण मानने वाले सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक को तर्क से नष्ट करने का पूर्ण प्रयत्न किया। पर शत्रुओं पर विजय पाने के अनन्तर जब अपना नया अद्वैतवाद का महल तैय्यार करने लगे तो उस में सफल न हो सके! जगत् बनाने में ब्रह्म को पूर्ण न देख कर अनादि माया का आश्रय लिया। माया का स्वरूप वही माना जो व्यास ने प्रकृति का। नाम में तो अवश्य परिवर्तन कर दिया पर स्वरूप में परिवर्तन न कर सके। ख़ैर, परिवर्तन तो हो गया। आगे चले संसार का अस्तित्व नष्ट करने। वहां भी इसे नास्ति कहते हुए घबड़ाए और दो शब्द घड़े—मिथ्या तथा अलीक। संसार के अस्तित्व से इन्कार करते २ रुक गए—कह दिया "यह अलीक नहीं"। व्यवहार में दृष्टि गोचर होता है परमार्थ में नहीं इस लिए यह मिथ्या है। मिथ्या होता हुआ भी है अवश्य" क्यों कि अलीक नहीं।

शङ्कराचार्य्य अद्वैतवादी उस अवस्था में कहे जा सकते थे जब संसार को अलीक कहते हुए न घबड़ाते। पहले तो प्रत्येक आचार्य्य स्वीकार करते हैं कि परमार्थ में आत्मा के साथ प्राकृतिक संसार का सम्बन्ध नहीं रहता। अपनी दृष्टि इस से परे कर लेता है। एकमात्र आनन्दमय ब्रह्म को ध्यान का लक्ष्य बना लेता है। लक्ष्य में इतना लीन हो जाता है कि अपने आप को भी भूल जाता है। अद्वैत का अनुभव करता है। पर क्या उस के अद्वैत को अनुभव करने से संसार नष्ट हो गया? उत्तर नहीं में देना पड़ेगा क्योंकि अन्य सब व्यवहारी जन तो उस का साक्षात् कार कर ही रहे हैं—यही भाव निम्न योग सूत्र में प्रकट किया गया है—"कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात्"।



जल-चिकित्सा

[लेखक— श्री पं० देवराज जी विद्यावाचस्पति]

जिगर की शिकायतें।

इन के मुख्य चिन्ह शरीर का पीला रंग हो जाना जी मचलना, विवमिषा, जिह्वा पर मल जमना, सिर दर्द, मुख वैरस्य, तबियत का गिर जाना, रक्त में चक्कर लगाते हुए पित्त का मस्तिष्क में पहुंच कर वात नाड़ियों को क्षुब्ध करने से पागल पन इत्यादि हैं। जिस समय जिगर काम ठीक नहीं करता है उस समय वह रक्त में से पित्त को पृथक् नहीं कर सकता है। पित्त रक्त में चक्कर लगाता रहता है। और शरीर के जिस भाग के साथ स्पर्श में आता है उसी भाग को रोगी कर देता है। अत्यधिक थकावट और अनुचित भोजन के कारण पोषक वात नाड़ियां कमज़ोर पड़ जाती है और इसी कारण रक्त में से पित्त पृथक् नहीं होता है। रक्त में इतना अधिक पित्त इकठ्ठा हो जाता है कि रोग को कामला कहते हैं। जो पित्त ग्रहणी में आता है वह इतना कड़वा, तेज़ और जलाने वाला होता है कि श्लैष्मिक कला में विद्यमान ज्ञान तन्तु इस की उपस्थिति को सहन नहीं कर सकते हैं तत्काल इसे या तो वमन के द्वारा ऊपर से बाहिर निकाल देते हैं या दस्तों के द्वारा नीचे से बाहिर निकाल देते हैं।

इसके लिये सब से पहिले यह आवश्यक है कि आमाशय में कुछ भी भोजन न डालाजाय। भोजन डालने से क्षोभ में वृद्धि होगी। जिगर जब बिलकुल काम न करता हो तब आमाशय, ग्रहणी और आंतों का ख्याल कर के थोड़ा २ साधारण भोजन खाते रहो। जब तक उन में काम करने की ताकत न आजावे कोई उत्तेजक पदार्थ मत खाओ। चाय, कौफी, मान्स और दूध मत ग्रहण करो। आटे के वे पदार्थ जिन में निशास्ता अधिक हो, हरेशाक मत खाओ। परन्तु आलू का आटा थोड़ा खा सकते हो।

आमाशय और आंतों पर गर्म पानीसे स्वेदन करो फिर ठण्डे पानी में तर चद्दर का प्रयोग करो, फिर शरीर को गीले कपड़े से लपेट दो। जब कभी बहुत थकावट से पित्त वृद्धि हो जावे, तब गीला कपड़ा लपेटने से शीघ्र शान्त होती है। साधारणतया एक बार पर्याप्त है। परन्तु यदि तकलीफ़ अधिक हो तो दो तीन दिन में एक बार करते रहें। यदि जिगर का रोग पुराना हो गया हो तो निम्न लिखित प्रकार से जिगर को लपेटना बहुत लाभप्रद है। शरीर को रात दिन गीले कपड़े से लपेटना बहुत लाभदायक है। ७० अंश फा० के या ठण्डे जल में १५ मिनिट बैठ कर स्नान करना चाहिये, कभी कभी राई वाले गर्म पानी में पांव भी रखने चाहियें। जो मनुष्य गर्म मुल्कों में गये हैं, वहां बहुत अनियम से रहे हैं, उन का जिगर कभी २ बिलकुल काम करना बन्द कर देता है। यह कभी ठीक नहीं होता है। परन्तु सावधानी रखने से और जल चिकित्सा के हल के और सरल उपाय करते रहने से आयु जल्दी समाप्त नहीं होती चलती रहती है। इन रोगियों को पित्त की वमन नहीं देखी जाती इन का जी नहीं मचलाता, भूख खूब लगती है, परन्तु जो कुछ भोजन वे लेते हैं उस से उन का पोषण होता नहीं दीखता, रंग फीका पीला सा हो जाता है, रक्तमें रक्ताणुओं की बहुत कमी हो जाती है। ऐसे रोगियों का कुछ नहीं किया जा सकता

है। एलोपैथिक और हाइड्रोपैथिक कितनी भी तीव्र चिकित्सा की जाय केवल उन के जीवन को छोटा ही कर देगी और कष्ट बढ़ायेगी। फिर भी भोजन, विश्राम और शरीर पर जल का हल का प्रयोग सावधानी के साथ करना ही चाहिये। जल का प्रयोग करते हुए ध्यान रक्खें कि जीवन शक्ति बहुत कम हो चुकी है। यदि रोग में कुछ भी फर्क न मालूम हो तो निम्न लिखित प्रकार से पेट पर गीला कपड़ा रक्खो। इस विधिको स्टोमक पैक (Stomach pack) कहते हैं:—

आमाशय अतिक्षुब्ध हो तो रोगी को शय्या पर पूर्ण विश्राम करने दो। भोजन बिलकुल न दो। ठण्डा पानी बार २ होठों से सिप कराओ। एक दोहरा तौलिया ठण्डे पानी से भिगो कर निचोड़ कर आमाशय पर रक्खो। ऊपर से मोटा गर्म कम्बल उढ़ाओ कि शरीर का तापमान सुरक्षित रहे। दस दस मिनिट के बाद तौलिया उसी प्रकार बदल २ कर रक्खो। जब तक बीमारी ठहर न जावे तब तक पानी के सिवाय कुछ भी भोजन मत दो। आमाशय में जब तक क्षोभ है तब तक भोजन से एक दो दिन तक भी परहेज़ रखने से कोई हानि नहीं है। अनेक भयानक रोगियों में केवल यही एक इलाज लगता पाया गया है।

ऐसी अवस्थाओं में कैलोमल यद्यपि जीवन का नाशक है तथापि इसका प्रयोग कर ही डालते हैं। पैत्तिक आक्रमणों में जिगर और आमाशय पर राई का प्लस्तर निस्संकोच प्रयोग कर लिया जाता है। इस वानस्पतिक प्रयोग से ऐसी कोई हानि की सम्भावना नहीं जैसी पारदीय प्रलेपों के लगाने से छालों के कारण हानि होने की सम्भावना है। यदि अत्यन्त तीव्र दर्द के दौरे आवें तो गर्म पानी से सेक करें गर्म पानी में स्नान और गर्मपानी में भीगा कपड़ा भी लपेटना चाहिये।

गुर्दे के रोग—

गुर्दे, त्वचा, यकृत् और फेफड़े ये चार मुख्य साधन शरीर में से मलों को बाहिर फेंकने के हैं। यदि त्वचा और जिगर शरीर और रक्त में से मलों को निकालने में सुस्त पड़ जायं तो काम का बोझ गुर्दों पर आपड़ता है। यदि गुर्दे और त्वचा अपने काम में ढीले पड़जावें तो जिगर पर काम का बोझ आपड़ता है। इसी प्रकार अन्यों के विषय में भी समझना चाहिये। शरीर में से जैसे पाखाने को आंत बाहिर फेंकती हैं वैसे ही रक्त मेंसे मूत्र को छान कर गुर्दे मूत्राशय में लाते हैं और पीछे वह बाहर निकल जाता है। गुर्दे जब रोगी होते हैं तब मूत्र के अतिरिक्त अन्य कई पदार्थ (रक्त का द्रव भाग, रक्त का जीवन, मधु, खांड इत्यादि) भी रक्त में से निकलने लगते हैं।

सब प्रकार की शराबें, गर्ममसाले, रसोइये की आविष्कृत भोजन सम्बन्धी अनेक पेचीदगियां रक्त में घूम कर गुर्दे और जिगर के पास आते हैं और कहते हैं कि हम से इस रक्त को बचाओ। ये पदार्थ गुर्दों में शोथ पैदा करते हैं। गुर्दे रक्त को साफ करने का काम भली प्रकार नहीं कर सकते हैं। इसका बोझ या तो जिगर पर जा पड़ता है या जिगर से गुर्दों पर आपड़ता है या दोनों से त्वचा और फेफड़ों पर चला जाता है। इन पदार्थों के कारण जहां शोथ पैदा हो जाती है वहीं का काम ढीला पड़ जाता है।

जब गुर्दे रोगी होते हैं तब गुर्दों के स्थान पर कमर में दर्द प्रतीत होती है। वहां बेचैनी

सी मालूम होती है। मूत्र बन्द हो जाता है। जो कुछ आता है वह गाढ़े पीले वा लाल रङ्ग का होता है।

ऐसी अवस्था में आध घण्टे तक गर्मपानी में कपड़ा भिगो कर सेक करना चाहिये। पीठ पर दर्द के स्थान में सेक करें और शरीर के आगे भी सेक करें। इस से जिगर, आमाशय और गुर्दे तीनों में उन की कार्य करने की शक्ति बढ़ जावेगी। सेक करने के पश्चात् ठण्डेजल में या कोसे जल में कपड़ा भिगोकर मध्य भाग को खूब रगड़ें। फिर मध्यभाग पर गीला कपड़ा लपेटें। २, ३ घण्टे के पश्चात् कपड़ा बदलते रहें। १०० से १०५ अंश फा० गर्मजल में १५ मिनट तक बिठाकर स्नान करावें। फिर गीला कपड़ा पेट पर लपेट दें। कपड़ा दिन रात लिपटा रहने दें या केवल दिन भर ही लपेटें। कपड़े के ऊपर गर्म कपड़ा लपेट दें जिस से गर्मी सुरक्षित रहे। ठण्डे पानी के ६ से ८ तक गिलास दिन भर में पिलादें। इस से रक्त शुद्धि अच्छी प्रकार हो जावेगी।

गुर्दे की बीमारी में सब उत्तेजक गर्मपदार्थ, मिर्च मसाले, और मैदा की बनी चीज़ें, मांस सर्वथा छोड़ दें।

मधुमेह

इस रोग की चिकित्सा दवाइयों से बहुत ही कम होती है। गुर्दों में और विशेषतया वृक्कान्त्रों (malphigioetubes) में शोथ उत्पन्न करने के कारणों को छोड़ने के स्थान में अधिक मात्रा में प्रयोगकरने से यह रोग उत्पन्न हो जाता है। ऐसा समझा जाता है कि रोगी के बल को कायम रखने के लिये अधिक २ उत्तेजक पदार्थ देने चाहियें। इस लिये नाना प्रकार की शराब और मान्स का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में आरम्भ कर दिया जाता है। इस से रचना दुगने वेग से नष्ट होने लगती है। यदि कुछ भी सहायता न कर के रोगी को वैसे ही छोड़ दिया जाता तो भी रचना का इतना विनाश न होता जितना तब होने लगता है जब रोगी के बल की रक्षार्थ उत्तेजक पदार्थों का सेवन बढ़ा दिया जाता है।

शोथ का कारण रक्त में रहता है। उत्तेजक पदार्थ और अनुचित भोजन के कारण रक्त रोगी हो जाता है। इस के रासायनिक धर्म बिगड़ जाते हैं। रक्त के द्वारा रोग गुर्दों में और वृक्कान्त्रों में पहुंच जाता है।

चिकित्सा के लिये मधुमेह के रोगी के भोजन पर अधिकार करना चाहिये। वृक्क रोगों के सम्बन्ध में कहे गये सब उत्तेजक आदि पदार्थ बिलकुल रोक देने चाहियें। मान्स बिलकुल छुड़ा देना चाहिये। गर्म पानी से हलकी स्वेदनक्रिया करे। ८० अंश फा० जल से सावन स्नान कराना चाहिये। ८० अंश का जल अधिक ठण्डा मालूम हो तो आरम्भ में ६० अंश का जल प्रयोग करना चाहिये। इस रोग में जीवन शक्ति बहुत मन्द पड़ जाती है अतः जल चिकित्सा के अतः जल तीक्ष्ण प्रयोग करते हुए बहुत सावधान रहना चाहिये।

आंतों के रोग

आतों में बहुत भयानक रोग हो जाता है। आंतों की श्लैष्मिक कला का शोथ बहुत भयानक रोग है। यदि इसे प्रारम्भ में ही न सम्भाल लिया जाय तो यह घातक परिणाम उपस्थित करता है। श्लैष्मिक कला झड़ झड़ कर निलकने लगती है। कभी २ इस में रक्त की रेखा भी दीखा करती है। जब आंतें ढीली ही रहने लग जावें तो समझना

चाहिये कि वात नाड़ियां कमज़ोर पड़ गई हैं और रोग भयानक परिणाम उपस्थित कर सकता है।

ऐसी अवस्था में सीवन स्नान बहुत उपयोगी है। यदि शरीर में बल पर्याप्त हो तो ठण्डे पानी से स्नान लेवें। साथ ही सौषुम्नकाण्ड को रगड़ते रहें तो बहुत लाभ होगा। साधारण स्नान के समय आंतों को रगड़ना चाहिये। हो सके तो शरीर के मध्य भाग को खूब लपेट भी दिया करें।

यदि आंतों में चिरस्थाई शोथ हो जावे और श्लेष्मा झड़े तो सम्पूर्ण शरीर को ही बल देने के लिये अत्यन्त शीत प्रयोगों के दुष्परिणामों से बचे रहने में सावधान रहना चाहिये। पहले २०, ३० मिनिट तक गर्म पानी से हलका स्वेदन कर। फिर ८० से ८५ अंश फा० जल से ५ मिनिट तक सीवन स्नान करें आंतों को हाथों से आहिस्ता २ मलते रहें। यदि ८०, ८५ अंश का जल अधिक ठण्डा मालूम होता हो तो ६० अंश का जल लें। प्रातः जागने के पश्चात् और मध्यान्ह के समय साधारण जल से स्नान करें साथ ही पेट पर गीला कपड़ा लपेटें। सायं काल के समय १५ मिनिट तक केवल सीवन स्नान करें उसी समय पांव गरम कम्बल में लपेट रक्खें।

सब प्रकार के उत्तेजक पदार्थ छोड़ दें, मान्स छोड़दें, कम से कम जब तक श्लेष्मा का निकलना बिलकुल बन्द न हो जावे। अधिक व्यायाम न करें, मानसिक उत्तेजना से अलग रहें। इस रोग में प्रायः स्रंसकों (opiates) का विशेष प्रयोग) किया जाता है निस्सन्देह वे पीड़ा को हलका कर देते और किसी हद्द तक स्राव को बल पूर्वक रोक देतेहैं परन्तु चूंकि स्रंसक पदार्थ पोषण के प्रतिकूल होते हैं अतः शान्ति क्षणिक होती है, और दुष्परिणाम बहुत बड़ा होता है।

कीड़े भी आन्तों में रोग पैदा कर देते हैं और बहुत क्षोभ पैदा करते हैं, और ऐसी शिकायतें पैदा करते हैं जो शरीर के अन्य भागों में प्रकट होती है। साधारण देखने वालों को इन का सम्बन्ध आन्तों से नहीं मालूम पड़ता आन्तों में कृमियों के हो जाने से मृगी के दौरे आते हैं, जी मचलता है, भोजन के लिये इच्छा उत्कट हो जाती है, चुटकी भरने के सी दर्द प्रायः हो जाती है।

इस के लिये साधारण स्फुर्ति को देने वाले इलाज करने चाहियें। मध्य भाग पर बस्थन का प्रयोग करना चाहिये, खाली पेट २½ पाव ठण्डा जल दिन में चार बार पीना चाहिये। कीड़ों को जड़ से निकाल डालना बड़ा कठिन है। परन्तु आयुर्वेदिक प्रयोगों को मिलाकर चिकित्सा की जाय तो सफलता हो सकती है।

दस्तावर पदार्थों का लगातार प्रयोग चाहे कितनी ही थोड़ी मात्रा में हो, अन्त को वह रोग उत्पन्न कर देगा। बहुत से मनुष्यों का यह विचार कि आंतें हमेशा खुली रहनी चाहियें प्रायः आन्तों कीश्लैष्मिक कला को नष्ट कर देता है। जब तक विरेचक पदार्थों का प्रयोग जारी रहता है आंतें कभी साधारण अवस्था में नहीं आतीं। आंतें कई दिन या एक सप्ताह तक भी सुस्त पड़ी रहें तो कोई हानि नहीं हैं। उत्तेजक पदार्थ और तमाखू आंतों की वात नाडियों की शक्ति को नष्ट करते हैं, अनियमितता और रोग उत्पन्न करते हैं।

गलशोथ (Sore throat)

गले में खाज हो वा सूजन हो, कोई फोड़ा निकल आया हो, गले में धूल मट्टी वा धुआं लग

गया हो, ठण्ड लग गई हो तो गलशोथ ही कही जाती है।

ऐसी अवस्था में ठण्डे पानी में कपड़ा भिगो कर कपड़े की चार तहें करके गले के चारों ओर लपेटो। ऊपर से गर्म कपड़ा लपेट दो कि गर्मी उत्पन्न होवे। यदि अच्छी प्रकार गर्मी उत्पन्न न हुई तो हानि होगी। यदि शोथ अधिक हो तो गीला कपड़ा प्रति पन्द्रह मिनिट के पश्चात् बदल दो।

यदि गलशोथ किसी अन्य रोग के उपद्रव रूप में हो तो भोजन के विषय में सावधान होना आवश्यक है। मान्स तथा अन्य उत्तेजक पदार्थ बिलकुल त्याग दो। दिन भर में ४,५ गिलास ठण्डे पानी के पी जाओ। होठों से सिप करते हुए पिओ। जिस समय पीड़ा मालूम हो उस समय पानी के कई सम्मच उसी प्रकार पी जाओ। गल शोथ के लिये राई के प्लास्टर का भी प्रयोग किया जा सकता है। प्रयोग करते समय टांगे राई के पानी में १५ मिनिट तक डुबो रखनी चाहियें। जल १०५ अंश फा० का लेना चाहिये।

प्रतिश्याय या नासाशोथ

मस्तक पर ठण्डा भीगा कपड़ा रक्खो, फिर एक बर्तन में ठण्डा पानी भर कर उस में नाक डुबोवो। नाक से पानी ऊपर खैंचो। खैंचते समय जीभ को ऊपर की तरफ मोड़ कर जीभ की नोक को पीछे तालू के साथ लगा रक्खो। ऐसा करने से पानी आसानी से नाक से चढ़ कर मुख में भर जावेगा। पानी मुख में भर जावे तो कुल्ला कर दो। इस प्रकार ३,४ मिनिट तक नाक से पानी पियो। रोग की प्रबलता के अनुसार दिन में कई वार पीओ। रात को सिर पर कपड़ा लपेट कर रक्खो। नाक से यदि ख़ून बहता हो तो भी इस प्रकार पानी पीना चाहिये। साथ ही गर्दन के पिछले उभार पर ठण्डा कपड़ा रखना चाहियें।

Typhus fever

टाइफ़स ज्वर का कारण भी रक्त दुष्टि है। दुष्ट भोजन से तथा त्वचा, जिगर और गुर्दों इन शोधक अङ्गों के सुस्त पड़ जाने से किसी भी समय में यह रोग उत्पन्न हो सकता है।

यह ज्वर इन लक्षणों से आरम्भ होता है—चक्कर आना, बलक्षय, तन्द्रा, जिह्वामालिन्य-दुर्गन्धित श्वास, लघु और तीव्र नाड़ी, गर्मी की अति वृद्धि, त्वचा ठण्डी।

रोग की चिकित्सा का उद्देश्य यह है कि पोषक वात नाड़ियों में जीवन शक्ति की वृद्धि की जावे। विशेषतया आमामाशय के गढ़े में वर्तमान वात नाड़ियों में जीवन शक्ति बढ़ाई जावे। क्यों कि सम्पूर्ण अन्तरङ्गों की जीवन शक्ति की कुञ्जी ये ही हैं। यदि ये स्वस्थ अवस्था में उत्तेजित की जावें तो वे रक्त के लिये उत्तम पदार्थ को भेज कर रोग को दूर कर देंगी।

इस रोग की चिकित्सा इस प्रकार करनी चाहिये—एक चटाई पर दरी बिछाओ। दरी पर दो कम्बल बिछाओ। कम्बल पर साधारण जल में भीगी चद्दर बिछाओ। गर्म पानी में निचोड़ा कपड़ा पीठ और कन्धों के नीचे रक्खो। ऐसा ही दूसरा कपड़ा शरीर के ऊपर रक्खो। कम्बल पर बिछी गीली चद्दर में शरीर को लपेट दो, टांगों और पावों को भी लपेट दो। फिर ऊपर कम्बल लपेट दो। फिर गर्म पानी से भरा हुआ बर्तन ऊपर रक्खो। उस पर कम्बल की दूसरी तह लपेट दो। खूब बांध दो। इस सब क्रिया करने से पहिले बग़ल के गढ़ों में भीगा निचोड़ा पतला कपड़ा भर दो। आध घंटे तक इसी प्रकार लपेट रक्खो।

फिर सब खोल दो और साधारण पानी में भीगा कपड़ा रक्खो। फिर सूखे तौलिये से शरीर पोंछ डालो। ध्यान रक्खो ठण्ड न लगने पावे। जब तक दूसरी वार क्रिया करने का अवसर न आवे रोगी को गर्म कम्बल ओढ़ाये रक्खो। फिर दूसरी बार यह सब लपेटने की क्रिया करो। दो बार यह वेष्टन क्रिया कर चुकने के पश्चात् रोगी को स्वच्छ वस्त्र पहिना कर नर्म बिस्तर पर आराम करने के लिये लिटादो। छः २ घण्टे के पश्चात् रातदिन इसी प्रकार दो २ वार वेष्टन क्रिया करो, जब तक ज्वर कम न हो जावे। ज्वर जैसे २ कम होता जावे वेष्टन संख्या घटाते जाओ।

यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि यह ज्वर बल को बहुत अधिक क्षीण कर देता है। रक्त और तन्तु गन्दे मादे के कारण विषयुक्त हो जाते हैं जो न निकाला जावे तो शीघ्र सड़ने लगता है और निश्चय से जीवन को नष्ट करता है। यदि वेष्टन क्रिया और गर्म पट्टियों से भी आंतें काम न करने लगें तो गर्म पानी में साबुन घोलकर बस्ति (ऐनिमा) दो। धड़ पर रात दिन गीला कपड़ा रक्खो। दो २ घण्टे के बाद कपड़ा बदलते रहो, यदि थकावट बहुत अधिक न हो। गीला कपड़ा धड़ पर से उतारने के बाद खूब धो डालो क्यों कि यह शरीर में से बहुत से गन्दे पदार्थ खैंचकर गन्दा होजाता है। चादरें और कम्बल भी खूब साफ़ कर डालने चाहियें और फिर उन्हें खुली हवा में डाल रखना चाहिये।

धड़ पर वेष्टन क्रिया के साथ टांगो पर भी वेष्टन क्रिया जारी रखनी चाहिये। साधारण जल में कपड़े की पट्टियां भिगोकर टांगों पर लपेटी जाती हैं। उपर से गर्म कपड़ा कम्बल आदि लपेटे जाते हैं।

इन सब क्रियाओं से त्वचा जिगर और गुर्दे अच्छी प्रकार कार्य करने लग जाते हैं और रक्त को अच्छी प्रकार शुद्ध करते हैं। ज्योंहि ये अङ्ग क्रिया शील होते हैं त्योंहि प्रकृति स्वयं इलाज करने लगती है।

यदि शिर विशेष आक्रान्त हो जैसा कि प्रायः होता है तो गर्दन के पीछे और पृष्ठवंश के ऊपर के हिस्से पर राई की पुल्टिस बांधो। जब सूख जावे तब उतार डालो और ताज़ी बांधो कि रक्तिमा बनी रहे। गले पर लगातार गीली पट्टी लिपटी रहे बार २ इसे गीला करते रहो और अन्य वेष्टनों के साथ इसे बदलते रहो। बुखार उतरने तक बराबर करते रहो अन्त को कमज़ोरी बढ़ जावेगी। जब त्वचा बहुत गर्म हो जावे तो ठण्डे पानी से स्पंजिङ्ग करो। बहुत बार मत करो क्यों कि अत्यन्त निर्बलता होने और थकान होने का भय है। स्पञ्जिङ् के लिये ६५ अंश से ७० अंश फा० तक का जल लो। ज्वर की तीव्रता में ठण्डा पानी सिप कराओ। जब प्यास लगे तब पानी पिलाओ। याद रक्खो पानी रक्त को साफ़ करता है।

बुखार चढ़ता हो तो जितना कम भोजन दो उतना ही अच्छा है। भोजन द्रव होना चाहिये। अरारोट, सागूदाना खाने के लिये दो। रोटी मान्स आदि ठोस पदार्थ बिलकुल मत दो। बुखार उतरते हुए जब कमज़ोरी अधिक अनुभव हो तो अरारोट या सागूदाना दो। ढ़ाई पाव जल में एक बड़ा चम्मच ब्रान्डी भी मिला कर दो। जैसे २ बल आता जावे, उचित भोजन बढ़ाते जाओ। अन्य प्रकार की उत्तेजक शराब, मसाले तथा ऐसे ही मिठाई, मैदे आदि के भोजन बिलकुल मत दो, क्यों कि ये जिगर को और रक्त को ख़राब करते हैं।

असीम दया का एक कण भी इस अभागी आर्य जाति को न मिलेगा !

(५)

उस दिन कुम्भ के मेले में धर्म का पाखण्ड देखा था, आज यहां दिल्ली में वीरता, राजशक्ति और क्षत्रित्व का पाखण्ड देख रहा हूँ। यही भारतवर्ष की राजशक्ति के ठेकेदार राजा लोग हैं। कितनी बेशर्मी से ये लाखों रुपया फूंक कर अपनी कायरता का निदर्शन करा रहे हैं एक विदेशी युवराज के स्वागत के लिये यह दरबार बुलाया गया है और ये लोग विदेशी चमक दमक सामान से सज धज कर इतने प्रसन्न हो रहे हैं कि मानों इन्हीं के सन्मान के लिये यह दरबार किया गया है। अपनी प्रजा से प्रति वर्ष करोड़ों रुपया चूस कर ये जीवन्मृत लाशें अपना साज सिंगार किया करती हैं। कभी इन्हीं के पूर्व पुरुष स्वतन्त्र भारतवर्ष के गौरवभूत शासक हुआ करते थे। छत्रपति शिवाजी और राणा प्रताप की सन्तानों का यह भारी अधःपतन भारतवर्ष के अभाग्य का सब से प्रबल प्रमाण है। इन के शरीर में अभी तक उन वीरों का रक्त बह रहा है। क्या उस राजपूती रक्त को फिर से खौलाया नहीं जा सकता ?

हां यह एक विचित्र तमाशा है कि आज इस दुरवस्था में पड़कर भी भारतवासी अभी तक अपने को धर्म का ठेकेदार समझते हैं। प्रतिदिन नये नये मत मतान्तरों की सृष्टि हो रही है। भारतवर्ष एक तो वैसे ही कमज़ोर और पराधीन है, उस पर धर्म के नाम पर खड़े किये गये ये भेदभाव तो इस जाति का नाम भी मिटा देंगे। इन्हीं दिनों नवीन वेदान्ती, ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज, थियोसोफिस्ट, अहमदिये आदि अनेक नए २ मत खड़े किये जा रहे हैं। क्या इन सब को भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति के पुनरुद्धार के नाम पर एक झन्डे के नीचे नहीं लाया जा सकता ? इन सब की नसों में भी तो प्राचीन आर्यों का खून ही बह रहा है। एक वार यत्न कर देखूं। यहां सब मतों के संस्थापक और आचार्य आए हुए हैं इन्हें बुला कर अपनी बात समझाऊँ तो यह एकता असम्भव नहीं है। जिस मार्ग का अनुसरण करके एक समय भारतवर्ष सुखी, सम्पन्न और संसार की सभ्यता का गुरु था क्यों न फिर हम लोग मिल कर उसी प्राचीन मार्ग का अनुसरण करें। धर्म का उद्देश्य एकता और समाज में शान्ति स्थापना होना चाहिये, वैर भाव और लड़ाई झगड़ा नहीं। एक बार जी जान से यत्न कर देखता हूँ, फल ईश्वर के हाथ है।

(६)

जिस प्रकार कपड़ा फट जाने पर मनुष्य उसे उतार कर नया वस्त्र धारण कर लेता है उसी प्रकार मृत्यु भी एक जीर्ण शरीर का परिवर्तन मात्र ही है। प्राणिमात्र के लिये मृत्यु एक अत्यन्त भयङ्कर कल्पना है, इस का कारण यही है कि दो जीवनों में मृत्यु एक ऐसा स्थूल व्यवधान है जिसे भेद कर देख सकना बुद्धिमान से बुद्धिमान मनुष्य के लिये भी सुगम नहीं है। मृत्यु एक ऐसे गाढ़ अन्धकार के समान है जिस में कुछ भी दिखाई न देने के कारण हा भय प्रतीत होता है। ईश्वर की दया से मैं इस भय से मुक्त हूँ। आज मैं अन्तिम रुग्णशैया पर पड़ा हुआ हू, शीघ्र ही यह मेरा रुग्णशरीर अपने प्राकृतिक तत्वों में लीन हो जायगा। यह शरीर भी कितना क्षणभंगुर है। थोड़े दिन पूर्व ही मेरे समान स्वास्थ शरीर शायद भारत भर में कोई न था, ज़रा से भोजन विकार से ही इस शरीर की यह दशा हो गई।

जगन्नाथ ने मुझे विष दिया है, वह मूर्ख है, दूसरों का बहकाया हुआ है। मैं इसे हृदय से क्षमा करता हूं। ईश्वर करे कि वह सकुशल अपना जीवन बचा सके। अब तक वह नैपाल पहुँच ही चुका होगा। पिता! यद्यपि तेरे न्यायपूर्ण शासन में अपने किये का फल अवश्य मिलता है तथापि मैं सच्चे हृदय से प्रार्थना करता हूँ कि जगन्नाथ को कोई दण्ड इस लिये मत देना कि उस ने दयानन्द को पीड़ा पहुंचाई है।

पिछले ६० बरसों में निरन्तर यत्न कर के जगत में मैंने अपना एक स्थान बना लिया था, अब उस से जुदा होने लगा हूँ। मुझे इस बात का ज़रा भी शोक या चिन्ता नहीं है। इच्छा थी कि अपनी सम्पूर्ण शक्तियां लगा कर एक बार इसी जन्म में इस देवस्वरूप भारत को संसार के मध्य देशों में वही स्थान दिला सकता जो कि किसी समय इसे प्राप्त था, परन्तु अब अपने इस जीवन में यह न देख पाऊंगा। मेरे अनुयाइयों को यह चिन्ता ही रही कि आर्यसमाज के इस नन्हे से पौधे की विपरीत वायुओं से अब कौन रक्षा करेगा? उन्हें भय है कि समाज सुधार का वह कार्य जो मैंने अभी प्रारम्भ ही किया था, कहीं मेरी मृत्यु से बन्द ही न हो जाय। परन्तु मुझे इन में से एक भी चिन्ता नहीं है। जहां तक मेरा वश था वहां तक मैंने अपनी ओर से एक भी बात नहीं उठा रक्खी। जो बात ईश्वर की इच्छा के आधीन है, उस की व्यर्थ चिन्ता करके मनुष्य मुफ़्त में ही हैरान हुआ करता है।

बचपन में मैं अपनी कुछ वैयक्तिक जिज्ञासाओं का उचित उत्तर प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा में घर से निकला था। घटना-चक्र से मेरा उद्देश्य क्रमशः अपने से बढ़ कर मनुष्यमात्र तक व्याप्त हो गया। इस सब में ईश्वर का ही हाथ था इस सम्पूर्ण जगत् का कोई छोटे से छोटा कार्य भी उस की इच्छा के प्रतिकूल नहीं हो सकता। मेरी इस असामयिक मृत्यु में भी उस की कोई प्रबल इच्छा ही कार्य कर रही है—यही सोचकर मैं ज़रा भी चिन्तित नहीं हूँ। मुझे तो यही प्रतीत होता है कि मेरी मृत्यु के बाद आर्यसमाज का यह नन्हा सा पौधा और भी अधिक वेग से फूले फलेगा। मैं अकेला था, परन्तु ईश्वर ने मेरी सहायता की। विरोधियों ने मेरी हत्या करने के लिये अनेकों बार कोई बात उठा न रक्खी थी, परन्तु ईश्वर की इच्छा से कोई मेरा बाल भी बांका न कर सका। इन थोड़े से वर्षों में मुझे जो इतनी सफलता प्राप्त हुई है वह सब ईश्वर की इच्छा का ही फल था। मैं तो केवल निमित्त मात्र ही था।

शीघ्र ही अब उस अनन्त में मिलने वाला हूं। इस संसार की सब समस्याओं तथा चिन्ताओं से मेरा छुटकारा हो जावगा। अहा! ईश्वर कितना दयालु है। पिता! अब दयानन्द तेरी उन्मुक्त गोद में लोटेगा। परम पिता तेरी इच्छा पूर्ण हो !!!



रात कि प्रभात

(ले०—श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार)

आज की रात निराली चढ़ी, इसे रात कहूं कि प्रभात कहूं। टेक

(१)

जिससे सब की आंखें झपकी, उससे उसकी ज्वाला लपकी,
इस को अब मन्द समीर कहूं, अथवा प्रलयंकर वात कहूं ॥

(२)

धरती का भय भाग रहा, सब सोय रहे वह जाग रहा।
बाल कहूं इस को अथवा, अगले युग का गुरु तात कहूं ॥

(३)

यह चूहा चढ़ कर नाच रहा, भक्तों की जड़ता जांच रहा।
इक आज मिला सुननेवाला, मैं रोज़ पते की बात कहूं ॥

(४)

इस पर चूहा मूछें ताने, नहीं चित्त इसे शंकर माने।
इस को संशय का मेघ कहूं, अथवा सविता नवजात कहूं ॥

(५)

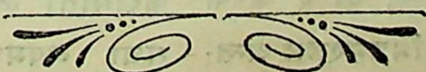
उठिये अब यों नहिं सो रहिये, इस को शंकर न पिता कहिये।
मैं पौरुष का गलभार कहूं, मैं लक्ष्मी का विनिपात कहूं ॥

(६)

यह बालक यों कुछ बोल रहा, कुछ तर्क तुला पर तोल रहा।
मैं इस को भेरी नाद कहूं, आलस पर वज्राघात कहूं ॥

(७)

रजनी न इसे कहिए काली, यह सूरज की छिटकी लाली।
इस पत्थर को उदयचाल का मैं, सीस मरीचि-स्नात कहूं ॥



वह भी देखा, यह भी देख

(ले०—श्रीयुत् छबीलदास जी बी० ए०)



हमने लड़कपन में स्कूल से लौटते हुए एक दिन रामलीला चौक में एक मदारी को खेल करते हुए देखा था। हजारों लोग—बच्चे बूढ़े तथा जवान नर-नारियों की भीड़ जमा थी। मदारी ने कई चकित करने वाले खेल दिखला कर अन्त में राख की चुटकी से रुपये बनाना आरम्भ कर दिया, और तीन चार मिनट में सैकड़ों रुपयों का ढेर लगा दिया। हम सब लड़के मुंह खोल कर उस मदारी के भाग्य की प्रशंसा कर रहे थे, और आपस में कहते थे कि वह मनुष्य कितना बड़ा धनी होगा। वह तो कई कारखानों वा मिलों का मालिक और लाखों बीघे ज़मीन का जागीरदार होगा। इसके सुन्दर तथा आकाश से बातें करने वाले, महलों में न जाने कितनी सुन्दर राजकुमारियों को आश्रय मिला होगा। उस समय हमारा ध्यान उसके फटे पुराने कपड़ों—तथा उसके स्थान २ पर इसी प्रकार के खेल दिखलाने की ओर बिलकुल ही नहीं गया। दस मिनट पीछे हम देखते क्या हैं कि रुपयों का ढेर एक दम दृष्टि से ग़ायब हो गया, और मदारी ने अपनी झोली फैला कर भिखमंगों जैसे करुणापूर्ण स्वर में दर्शकों से अपने खेल की मज़दूरी तथा दान मांगना आरम्भ कर दिया। मांगने का नाम सुन कर हंसी खुशी से खेल देखने वाले शौकीन एक २, दो २ करके खिसकने लगे। हमारा सारा मित्रमण्डल अन्त-तक वहां उपस्थित रहा। उस बेचारे को तीन घण्टे लम्बे २ और थकाने वाले घण्टों के खेल तथा बकवाद की मज़दूरी से इतने पैसे भी न जुट सके कि जिस से उसकी तथा उस के उस बीबी बच्चों की पेटपूजा हो सके। खेल समाप्त हुआ, हम सब प्रसन्न होने के स्थान में उलटे दुःखी होकर घर लौटे। हम सब बालकों के छोटे से दिमाग़ में कारण समझ न आया कि क्यों ऐसा योग्य व्यक्ति जिसके हाथ में राख की चुटकी से रुपये बनाने की शक्ति तथा करामात हो, भूखों मर रहा है।

कई वर्ष बीत गये हमने लड़कपन से होश सम्भाला। कालेज की शिक्षा पाई। ग्रेजुएट बने, कई विद्वानों की पुस्तकों के अध्ययन का अवसर मिला, देशाटन भी किया। बचपन की उस मदारीवाली घटना का वास्तविक कारण भी जान पड़ा, परन्तु उसके साथ ही एक और दृश्य देखा, जो बचपन के उस मदारी वाले दृश्य से भी अधिक करुणाजनक तथा आश्चर्यमय था।

हमारी समझ में आगया था कि मदारी के खेल केवल हाथ की सफ़ाई तथा भुलावा ही होते हैं। वह सच्चा करामाती नहीं। यदि सचमुच ही करामात उसके हाथ में होती तो वह पापी पेट के लिये इधर उधर कभी न भटकता फिरता, तथा उसके इस प्रकार भूखों मरने की नौबत कभी न आती। युवावस्था में तो हमने सचमुच के करामाती लोगों को भूखों मरते और दारिद्र्य तथा अपमान का निरानन्द जीवन गुज़ारते देखा है। संसार में भिन्न धर्मों तथा मतों के अनुयायी अपने अपने धर्म के प्रवर्तकों

को करामात दिखलाने वाला मानते हैं। लाखों करोड़ों नरनारियों का विश्वास है कि ईसामसीह मुर्दों को जिलाता था; कृष्ण ने छोटी अंगुली से गोवर्धन पहाड़ उठाया; नानक ने मक्का का मुंह फेर दिया तथा मुहम्मद ने चांद के दो टुकड़े कर दिये थे। क्या कभी हमने अपनी आंखों के सामने प्रतिदिन सच्ची करामात दिखाने वालों का भी ध्यान किया है, जो एक २ दाने के हज़ार २ दाने पैदा कर देते हैं? क्या ऊबड़ खाबड़ धरती को कठोर श्रम से रम्य उद्यान बना देने वाले किसान और माली करामात नहीं कर रहे हैं? क्या पत्थर की मोटी झोटी चट्टान को सुन्दर मनोहर मूर्ति में परिवर्तित करने वाला मूर्तिकार अपने बुरुश तथा कलाकौशल से जीते जागते आकर्षक चित्र बनाने वाला चित्रकार; कपास के टेढ़े मेढ़े रेशों को राजों महाराजों तथा सुकुमारियों के पहिनने योग्य सुन्दर वस्त्रों का रूप देने वाला जुलाहा; तथा पशुतुल्य बुद्धिहीन बच्चों को कई वर्षों के लगातार प्रयत्न से सुशिक्षा देकर, लेखक, दार्शनिक, व्यवसायक, सेनापति, राजमंत्री, वकील, डाक्टर, एंजीनियर, वैज्ञानिक, आविष्कारक तथा मन्त्रद्रष्टा बनाने वाला अध्यापक कम करामाती है? विधि का विधान भी बड़ा ही विचित्र है। ऐसी २ आश्चर्य में डालने वाली अलौकिक करामातों को हाथ की अङ्गुलियों में रखने वाले लोग दारिद्र्य तथा निर्धनता से कष्ट उठा रहे हैं, तथा निकम्मे, आलसी और दूसरों के पसीने की कमाई पर गुलच्छर्रे उड़ाने वाले लोगों की ही समाज में प्रधानता तथा प्रतिष्ठा है। बुद्धि फिर चकराई। इस घटना का रहस्य कौन बतलाये? इस गुत्थी को कौन सुलझावे?

अपनी पूर्व की धर्म पुस्तकों और धर्माचार्यों ने कहा "कुछ नहीं, पूर्व जन्म के कर्म हैं।" कर्मन की गति न्यारी रे ऊधो" तथा "वेज़री का न कर गिला ग़ाफ़िल, रख तसल्ली कि यूं मुकद्दर था" इत्यादि। मुझ संशयात्मा को यह उत्तर युक्तिपूर्ण न जचा। यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो तथा अरिस्टोटल ने कहा "यह (Inevitable Necessity) बातें अवश्यम्भावी हैं तथा मानव सभ्यता के विकास के लिये परमावश्यक हैं। मन इन बातों से भी घबराता गया। कवियों, लेखकों तथा अन्यान्य कला विशारदों ने कहा-"यदि कोई इस जन्म में दुःखी है तो अगले जन्म में उसी ने रेशम के झूलों पर झूलना है। इस अस्थायी संसार के सुख दुःख तो क्षणभङ्गुर हैं, वास्तविक सुख तो मनुष्य को आने वाले स्वर्गराज्य में मिलेगा। दिल ने इन खोखली तथा ऊपरी सारहीन बातों को मानने से भी इन्कार कर दिया। अन्त में साम्यवाद का साहित्य पढ़ा तो (Economic Interpretation of History ... ...) इतिहास की आर्थिक तथा भौतिक व्याख्या पढ़ कर इस मन का आश्वासन हुआ। इस के साथ ही पता चला कि रूस देशवालों ने (If a man will not work, neither shall he eat)"आवश्यक श्रम का सुनहला तथा न्याय पूर्ण सिद्धान्त" रख कर समाज रचना की नींव रखी है। हृदय से आवाज़ आई-घबराओ मत, उदास न हो, समय आगया है जब तेरे सच्चे करामाती लोगों के हाथ शासनकी बागडोर होगी। आलसी आदमी के भाग्य में रोना और दाँतों का पीसना होगा। कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की कमाई पर आनन्द नहीं उड़ा सकेगा। मेरे मुख से निकला 'तथास्तु'॥

वेदों में दार्शनिक विचार

पुनर्जन्म

(ले०—श्री पं० धर्मदेव जी वेदवाचस्पति)



कतिपय पाश्चात्य विद्वानों का कथन है कि पुनर्जन्म का सिद्धान्त यद्यपि उपनिषदों तथा स्मृतियों में पाया जाता है, तथापि वेद में इस सिद्धान्त के कोई चिन्ह नज़र नहीं आते। मि० मोनियर विलियम्स, एम. ए. सी. आई. ई. अपनी "Religious thought and Life in India" नामक पुस्तक में लिखते हैं—The doctrine of matempsychosis or transmigration of souls, which became an essential characteristic of Brahmanism and Hinduism in later times has no place in the Religion of the Veda"

अर्थात् पुनर्जन्म का सिद्धान्त, जो कि ब्राह्मण-धर्म तथा हिन्दू धर्म में एक विशेषता रखता है, वैदिक धर्म में अपनी कोई सत्ता नहीं रखता।

परन्तु हमें जानकर अत्यन्त आश्चर्य होता है कि पुनर्जन्म जैसा सिद्धान्त जो कि उपनिषदों तथा मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में कूट २ कर भरा हुआ है, जो कि ब्राह्मण धर्म वा हिन्दू धर्म में अपनी विशेष स्थिति रखता है, वह पुनर्जन्म का सिद्धान्त वेद में नहीं पाया जता। मनु महाराज अपनी स्मृति में प्रतिपादित पुनर्जन्म के सिद्धान्तों को वेदानुकूल मानते हैं। इस लिए हमें विचार यह करना है कि क्या वास्तव में पुनर्जन्म का सिद्धान्त वेद सम्मत है या उपनिषदकारों वा ब्राह्मणों की अपनी खोज हो। जीवात्मापरक जिन मंत्रों को पेश किया जा चुका है, वे मंत्र इस विषय में पर्याप्त सहायक हो सकते हैं। अथर्व० । ६ । १० । ११ । मन्त्र इस प्रकार है।

"अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्"

स सध्रीचीः स विषूचीर्वसानः आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तः।

अर्थ—आने और जाने के मार्गों द्वारा भ्रमण करने वाले, अविनाशी, इन्द्रियों के रक्षक जीवात्मा को मैंने देखा है। वह (शरीर के) साथ भी चलने वाला है और अलग हो कर भी चलने वाला है वह प्रेम का निवासक भुवनों में बार २ आता है। इस मन्त्र में "आ च परा च पथिभिश्चरन्तम्' तथा 'आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तः" ये दो क्रियाविशेषण जीवात्मा को पुनः २ जन्म लेने का या पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार पूर्व उद्धृत मन्त्र (अ० १ । १६४ । ३८ का 'अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतः' वाक्य भी जीवात्मा के नीच तथा उच्च योनि में आने का वर्णन करता है। क्या यह मंत्र पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं कर रहे ? इतना ही नहीं और भी कतिपय मंत्र पेश किये जा सकते हैं। जिनमें स्पष्ट तथा सरल शब्दों में पुनर्जन्म का वर्णन किया है। अथर्व० १० । ८ । २६ मंत्र इस विषय में ध्यान देने योग्य है वह मन्त्र इस प्रकार है—

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतो मुखः।

अर्थः—हे (जीव !) तू स्त्री, तू पुरुष, तू कुमार तथा तू ही कुमारिका है, तू वृद्ध होकर दण्ड से

सहारे चलता है और तू ही उत्पन्न होकर सर्वत्र मुख वाला हो जाता है।

इस मन्त्र में जहां यह प्रतीत है कि तीनों अवस्थाओं बाल्य, युवा तथा वार्धक्य में एक स्थिर वस्तु रहती है। और यह चेतन शरीर केवल परमाणु" पुञ्ज का बना हुआ नहीं जिस से अवस्था भेद से मनुष्य भेद हो जावे। परन्तु जन्म से ले कर मरण पर्यन्त मनुष्य अपने को एक ही समझता है। वह सोचता है जब मैं बालक था कैसा स्वच्छन्द विहार किया करता था किसी प्रकार की चिन्ता न थी, जवानी में कैसा बलिष्ठ था, सैंकड़ों मील लगातार बिना किसी प्रकार की तकलीफ़ महसूस किये चल लेता था, परन्तु अब बुढ़ापे ने ऐसा आ घेरा है कि लाठी के बिना घर से पैर भी नहीं निकलता। इस प्रकार मनुष्य का जन्म से मृत्यु पर्यन्त एक सूत्र से जुड़ा हुआ अपने को अनुभव करना सिद्ध करता है कि पाञ्चभौतिक शरीर या विचार धाराओं (Passes of thoughts) के अतिरिक्त भी कोई वस्तु है, जो शरीर के घटकों (cells) या विचारों की तरह समय समय पर परिवर्तित नहीं होती, प्रत्युत सदा स्थिर है। वह जीवात्मा न केवल एक जन्म ही स्थिर रहता है प्रत्युत वह दूसरा जन्म भी लेता है। वह कभी मनुष्य का शरीर धारण कर लेता है, और कभी स्त्री का। वह कभी कुमार रूप में दिखाई देता है और कभी कुमारिका की शकल में। यह शरीर भेद सिवाय जन्म भेद के सम्भव नहीं।

अतः यह मानना पड़ता है कि किसी जन्म में स्त्री का शरीर धारण करता है और किसी जन्म में पुरुष के शरीर में प्रकट होता है। वास्तव में एक आत्मा के कारण मनुष्य एक ही है। परन्तु चोले (शरीर) के भेद से भिन्न २ जन्मों में भिन्न मालूम पड़ता है आज जो बालक अपने को ...... का पुत्र समझता है और अपना नाम......कहता है, पूर्व जन्म में कहीं अपने को...कहा करता था और ......का पुत्र समझता था ? उस ने अपना शरीर बदल लिया है। वास्तव में वह वही है जो पहले था। इस का भेद वास्तविक नहीं। वास्तव में गीता के निम्न श्लोक की भांति मनुष्य चोले की तरह अपना चोला बदलता है। स्वयं नष्ट नहीं होता। गीता का वचन है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा—
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ गीता अ० २।
श्लोक २२॥

यही भाव हमें दूसरे रूप में उपर्युक्त मन्त्र में दिखाई देता है, इसी प्रकार एक और मन्त्र इसी पुनर्जन्म के सिद्धान्त का पोषक है—

"उतैषां पिता उतवा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः। एको ह देवः मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स ह गर्भे अन्तः॥"

अर्थः—यह (आत्मा) इन का पिता, इन का पुत्र, इन का ज्येष्ठ भाई इन का कनिष्ठ भाई है। यह देव मन में प्रविष्ट हो कर पहले जन्मा हुआ है। वही फिर गर्भ में आता है। एक ही मनुष्य भिन्न २ व्यक्तियों के साथ भिन्न २ सम्बन्ध होने के कारण किसी का पुत्र, किसी का पिता, किसी का ज्येष्ठ भाई तथा किसी का कनिष्ठ भाई बन जाता है। इस मन्त्र में 'प्रथमो जातः' पहले उत्पन्न हुआ हुआ यह विशेषण पुनर्जन्म का स्पष्ट शब्दों में समर्थन कर रहा है। अब तक यह विषय बहुत विवादास्पद रहा है। इस विषय के कतिपय अन्य मन्त्र भी

१—यह एक सच्ची घटना है जो दैनिक पत्र 'लीडर' से उद्धृत की गई है।

प्रारम्भ के रूप में उपस्थित कर दिये जावें तो अनुचित न होगा। अथर्व० ११।८ ३३ मंत्र इस प्रकार है—

"प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विष्वङ्ङ्वि गच्छति। अद एकेन गच्छत्यद एकेन गच्छ ीहैकेन निषेवते"॥

अर्थः—मुख्य मृत्यु होने पर मनुष्य की तीन विविध प्रकार की गतियां होती हैं। एक मृत्यु पर (अच्छे काम करने से) मनुष्य उस उत्तम योनि को प्राप्त होता है। और एक मृत्यु पर फिर वह इसी (मनुष्य) योनि में आजाता है।[२] साधारणतीः तो मनुष्य की कई प्रकार की मृत्युएँ होती हैं। मनुष्य के शारिरिक या आत्मिक दृष्टि से बिल्कुल कमज़ोर या पतित हो जाने को भी मृत्यु कहा गया है। ऋग्वेद के निम्न मन्त्र शारीरिक स्वाथ्य के गिर जाने पर उसे फिर लाने के लिये कहा गया है—

"पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौः देवी पुनरन्तरिक्षम्।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां या स्वस्ति॥

"इस मन्त्र में स्वास्थ्य नाश का मृत्यु की तरह वर्णन किया गया है। इसी प्रकार इसी बात को दिखलाने वाले अन्य कई मन्त्र हैं। परन्तु स मान्य मृत्युओं के अतिरिक्त एक मुख्य मृत्यु प्रसिद्ध मृत्यु है, जो आत्मा के शरीर से पृथक हो जाने पर होती है। वह आत्मा शरीर से निकल कर अपने कर्मों के अनुसार भिन्न योनियों में प्रविष्ट होती है। इसी बात को हम इस मन्त्र में 'अद एकेन गच्छति, इस पद से जतलाया गया है, यदि कोई महाशय इस पद से ईसाईयों और मुसलमानों की भांति, नित्य स्वर्ग या नित्य नरक के सन्देश कल्पना करे तो कुछ समय के लिये उन की कल्पना को हम स्वीकार कर सकते हैं। परन्तु 'इहैकेन निषेवते' पाद से पुनः इसी जन्म में आने का कथन किया है। इसी मृत्यु के बाद पुनः योनि में आना पुनर्जन्म ही कहलाता है। 'इहैकेन' पद से और कोई अभिप्राय नहीं लिया जा सकता। इस के साहचर्य से 'अद एकेन गच्छति' पद का भी यही अभिप्राय प्रतीत होता है कि कभी मनुष्य उच्च योनि को प्राप्त होता है और कभी नीच योनि को।

२—इस में कोष्ठान्तर्गत शब्द ऊपर से जोड़े गये हैं॥

अन्त में एक मन्त्र को उद्धृत कर इस विषय को यहीं समाप्त करते हैं। अथर्व ११।४।१४ मंत्र है।

"अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः॥

अर्थः—मनुष्य गर्भ के अन्दर श्वास लेता है और छोड़ता है। हे प्राण! जब तू प्रेरणा करता है तब ही वह मनुष्य फिर उत्पन्न होता है।

माता के गर्भ में पड़े हुए बालक में ६ ठे या ७वें मास में प्राणन शक्ति आ जाती है। उस समय वह अर्धचेतनावस्था में होता है और माता के प्राण की प्रेरणा से वह फिर पैदा होता है अर्थात् जिस प्रकार पूर्व जन्म में मनुष्य माता के गर्भ में ९, १० महीने उत्पन्न हुआ था उसी प्रकार इस जन्म में पुनः जन्म लेता है। 'स जायते पुनः' वाक्य पुनर्जन्म का द्योतक कहा जा सकता है। पुनर्जन्म शब्द की इस मन्त्र से व्युत्पत्ति की गई है। शब्द में भेद है भाव में नहीं।

इस लिये उपरि लिखित कतिपय प्रमाणों के आधार पर हम मि० मोनियर विलियम्स की सम्मति को कभी स्वीकार नहीं कर सकते। ऊपर के मंत्र पुनर्जन्म के सिद्धान्त का बड़े रोचक तथा सुन्दर शब्दों में प्रतिपादन कर रहे हैं' इस लिये प्रकृति आत्मा तथा परमात्मा की नित्यता से पुनर्जन्म का सिद्धान्त भी वेदों में देख पाते हैं॥

फूलों की अभिलाषा।

(ले०-स्ना० शंकरदेव विद्यालंकर)

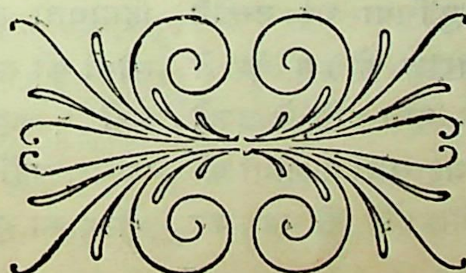
राजाओं के मणि-मुकुटों पै चढ़ने की है चाह नहीं ?
लगे लगे या इसी डाल पै हम सूखें परवाह नहीं !
पिस जायेंगे घुल जायेंगे जीवन-दीप बुझा देंगे।
जिस मालीने जन्म दिया है, उन चरणों पै चढ़ जायेंगे।

(२)

देवार्चन की माला बनना हम को है स्वीकार नहीं ?
सम्राटों के दरबारों में जाने को तैय्यार नहीं।
दीर्घकाल से बाट जोहते, पाने को विजयी लाल !
जिस के गल में हम गिर जावें, बन कर सुन्दर जयकी माल।

(३)

जन्म भूमि की विजय दुन्दुभि जिस दिन नाद करेगी ?
स्वर्गलोक से देवि स्वतंत्रता जिस दिन भू पर उतरेगी।
जिस दिन अंचल फैला देगी पूजा को ये भारत माँ !
उस झोली में बरस पड़ेंगे ये, जीवन देंगे अपना माँ !



मातृ-शक्ति

एक सच्ची ऐतिहासिक राजनीतिक गल्प

(ले०—श्रीमती कुमारी लज्जावती जी)



हात्मा गांधी जी ने असहयोग का शंख बजा दिया था। हज़ारों की संख्या में युवक स्कूलों और कॉलिजों को छोड़ कर स्वतंत्रता के युद्ध में भाग लेने के वास्ते बढ़ रहे थे। स्थान २ पर विदेशी कपड़ों की होली जलाई जा रही थी। शराब की दुकानों पर स्वयं-सेवक पहरा दे रहे थे। विलायत से कपड़े सिला और धुला के पहनने वाले परिवार खद्दर के वस्त्र पहिन कर स्वतंत्रता देवी की आरती उतारने के वास्ते स्वराज्य मन्दिर की ओर पग बढ़ा रहे थे। हिंदू और मुसलमान, राम और रहीम के, शङ्ख और अज़ाँ के झगड़े को छोड़ कर, परमात्मा के विशाल आकाश के नीचे इकट्ठे, गले में जनेऊ पहिन कर और हाथ में तसबीह लेकर भारत-जननी की अर्चना कर रहे थे। इस देश के इतिहास में नवीन अध्याय लिखा जा रहा था। हिमालय से कन्याकुमारी तक यह विशाल भू-मण्डल एक नवीन रङ्ग में रङ्गा गया था। उस रङ्ग की लाली से नौकरशाही की आंखें चुंधिया गई उन्होंने घबरा कर इङ्गलैण्ड के युवराज को इस देश में बुला कर भारतवासियों के राज-भक्ति के जज़बे को अपील किया। इधर महासभा ने लोगों को युवराज के स्वागत में शामिल होने से मना कर दिया।

अपूर्व दृश्य था। एक ओर संसार की सब से शक्तिशाली गवर्नमेंट थी और दूसरी ओर दुबला पतला नन्हें से शरीर वाला प्राणी गाँधी। लोग यह अच्छी तरह जानते थे कि गवर्नमेंट का कहना मानने पर, युवराज के स्वागत में भाग लेने पर, पदवियाँ जागीरें, वेतन-वृद्धि तथा अन्य रूप में उन्हें पारितोषिक मिलेंगे। किन्तु दूसरी ओर युवराज का बायकाट करने पर, गाँधी के पीछे चलने पर उन्हें बेड़ियां और हथकड़ियाँ पहिन कर जेलखानों में जाना पड़ेगा। बेंतों की मार सहनी पड़ेगी और फ़ाक़ाकशी करनी पड़ेगी। (उन दिनों भारत की नौकर शाही की आंखों में अहिंसा वाद में विश्वास करने वाले राजनैतिक क़ैदी वैसे ही अखरते थे जैसे आज कल हिंसा वादी क़ैदी) पर तो भी कुछ थोड़े से व्यक्तियों को छोड़ कर शेष सारा देश, एक मन से, एक भाव से और आन्तरिक श्रद्धा से गाँधी के पीछे चल रहा था। युवराज जहां जाते, वहां ही लोग उनका स्वागत करने के स्थान पर हड़ताल करते और सभाएं करके उनके बायकाट के प्रस्ताव पास करते। बहुतेरी जगह शासकों और गवर्नमेंट के हिमायती लोगों को दूर से भोले भाले देहाती लोगों को तमाशा दिखाने का वायदा करके, और कहीं २ नक़द रुपये देकर किराये के आदमी लाकर, वहाँ खड़े करने पड़े, जहां युवराज की मोटर को गुज़रना था।

× × ×

संयुक्त प्रांत की शान और नवाबों की प्यारी नगरी लखनऊ में युवराज आने वाले थे। ज़ि

के शासकों को उनके स्वागत को पूरी तरह सफल बनाने की बड़ी चिन्ता थी। उन्होंने शहर की सजावट में गरीब किसानों की गाढ़े पसीने की कमाई के रुपयों को दिल खोल कर खर्च कर देने का निश्चय किया, और कांग्रेस के प्रभाव को नष्ट करने के लिये अपना दमन-चक्र चला दिया। राज-विद्रोह के अपराध में पहिले शहर के और फिर ज़िले के कार्यकर्ताओं को चुन-चुन कर जेल में डाल दिया गया। परन्तु फल वही हुआ जो ऐसे समय हुआ करता है। ज्यों ही एक कार्यकर्त्ता गवर्नमेंट की दमननीति का शिकार होता, त्यों ही दूसरा उसकी जगह संभाल लेता। गवर्नमेंट ने झुंझला कर दमन-चक्र की गति को और भी तेज कर दिया। उधर उस गति से राष्ट्रीयता की भावना का पौदा और भी पनपा। स्कूलों के लड़के भी छुट्टी के दिन सड़कों पर "जय-जय पावन हिन्दुस्तान" और "हिन्दुस्तान हमारा है" के गीत गाते हुये घूमते दिखाई देने लगे। शहर में बिना इजाज़त जुलूस निकालना बन्द हो गया। कांग्रेस स्वयंसेवकों ने उस आज्ञा को तोड़ने का निश्चय लिया। वक्त पर जब वालंटियरों की एक टोली राष्ट्रीय गीत गाते गाते उस आज्ञा को तोड़ने निकली तब उस टोली के पीछे पीछे कुछ छोटे लड़के भी "भारत माता की जय" के नारे लगाते हुए चल पड़े। उन स्वयंसेवकों को तो दण्ड मिलना ही था, किन्तु क्रोध से पगली हुई पुलिस ने उन लड़कों को भी गिरफ़्तार कर लिया। उनके नेता बालक को १२ बेंत लगाये जाने की सज़ा हुई। बहुत से लोगों का ख्याल था कि लड़का सज़ा सुनके माफ़ी माँग लेगा, पर हुआ कुछ और ही। सज़ा सुनते ही बहादुर लड़के ने अदालत में "भारत माता की जय" का नारा लगा दिया। सज़ा दिये जाने के समय भी जब तक उस में शक्ति रही, ज्यों ही उसकी पीठ पर बेंत पड़ता त्यों ही वह बोल उठता "भारत माता की जय" बारहवें बेत के पड़ते ही वह वीर लड़का बेहोश होकर गिर पड़ा। उस दिन शाम को शहर में लोगों की एक विराट सभा हुई। कहते हैं लखनऊ में उससे पहिले किसी सभा में उतनी अधिक संख्या में लोग इकट्ठे न हुये थे। उस रात हज़ारों मनुष्यों ने लोकमान्य के चित्र के चरणों में सिर झुका के शपथ ली कि वह युवराज के स्वागत में किसी प्रकार का भी भाग न लेंगे। इस घटना के कुछ दिन बाद शहर के लोगों ने सुना, कि लखनऊ के प्रसिद्ध रईस और जमींदार राय हरनारायण ने अपने गाँवों के उन सभी आदमियों को, जिनके घर के पास से गुज़रना भी वह अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते थे, उस दिन के लिये, जिस दिन युवराज लखनऊ में आने वाले थे, अपने घर दावत दी थी, और २००००) की थैली स्वागत के लिये किराये के आदमी बाहर से लाने के लिये प्रभु चरणों में भेंट की थी।

× × ×

लगभग ६ महीने हुए, लखनऊ के हरनारायण, जो युवराज के लखनऊ आने के बाद "सर" बना दिये गये थे—के घर डाका पड़ा था। डाकू मुखों पर नकाबें डाले हुए थे। किन्तु जाते जाते उन में से एक ने राय साहब को सम्बोधन करके कहा "युवराज के आगमन के समय आपने महासभा के आदेश की अवहेलना करके, युवराज के स्वागत में अपनी थैलियों का मुंह खोल के जो देशद्रोह किया था, उसी का फल है।" तब से पुलिस स्थान २ के क्रान्तिकारी युवकों को पकड़ कर उन्हें नाना प्रकार से तङ्ग करती, धमकियां देती और

अनेक प्रकार प्रलोभन भी देती। आखिर प्रलोभनों में आके एक लड़के ने, पुलिस को सब भेद बता दिया था। फल स्वरूप प्रांत भर में तलाशियों और गिरफ्ताहियों की धूम मची हुई थी।

इन्हीं दिनों का ज़िक्र है, बनारस की एक तङ्ग गली में छोटे से मकान में एक वृद्धा बैठी चरखा कात रही थी। थोड़ी सी भी आहट होती तो वह चौंक कर दरवाज़े की ओर देखने लगती पर किसी को आता हुआ न देख कर फिर अनमनी सी होकर अपना चरखा कातने लगती। संध्या हो गई। वृद्धा ने चरखा उठा के रख दिया, और दिया जलाने के लिये उठी। इतने में ही छोटा सा बिस्तरा कन्धे पर उठाये हुए एक युवक ने अन्दर प्रवेश किया। वृद्धा ने उसे देखकर उत्सुकता से पूछा "कहो बेटा क्या ख़बर लाये ?"

युवक—अम्मां ! जो सुना था वह सच ही था। भय्या ने सरकारी गवाह बनना स्वीकार कर लिया है।

वृद्धा—क्या तुमने उसे मेरा सन्देश दिया था।

युवक—हाँ, दिया तो था, किन्तु पुलीस ने उन्हें बहुत पक्की पट्टी पढ़ा रखी है। मैं भय्या को इतना कमज़ोर न समझता था।

उस रात उस घर में चूल्हा न जला। वृद्धा ने सारी रात करवटें बदलते हुये व्यतीत की। सुबह जब वह बिस्तरे में से उठी तो उसने ठण्डी आह भर के कहा "हे भगवन् इससे तो मैं वन्ध्या ही अच्छी थी"।

लखनऊ में हवालात की कोठरी में १६ वर्ष का युवक जगमोहन चारपाई पर लेटा हुआ था कि पुलिस इन्स्पैक्टर के साथ एक युवक और घूंघट निकाले हुये महिला ने अन्दर प्रवेश किया। इन्स्पैक्टर साहब को इस बात का पूरा विश्वास था कि उन दोनों व्यक्तियों में से कोई भी जगमोहन को गवाही देने के बरख़िलाफ़ कुछ न कहेगा। युवक इससे पहिले कई बार जगमोहन से मिल चुका था। वह हमेशा उसे गवाही देने के लिये पक्का ही किया करता था। महिला पुराने ख्याल वाली और अनपढ़ थी। उसकी बाबत इन्सपैक्टर ने खूब छानबीन कर ली थी। उन्हें विश्वास था कि वह अपने पुत्र को जान बूझ के जेलखाने न भेजेगी, इस लिये वह उस परदा नशीन स्त्री को असुविधा न देने की ख्वाहिश से बाहर चले गये।

उनके जाते ही महिला ने घूंघट उठा कर, धीमी किन्तु रोष भरी आवाज़ में कहा "यह क्या सुनती हूँ जग्गू।

जगमोहन के पांव के नीचे से मानों धरती निकल गई। उसने कभी स्वप्न में भी यह ख्याल न किया था कि उस की माँ सरकारी गवाह बनने के लिये उसको भर्त्सना करेंगी। उसने कुछ उत्तर न दिया।

वृद्धा—जग्गू क्या यह सत्य है कि वायदा मुआफी पाके सरकारी गवाह बनना स्वीकार कर लिया है ?

युवक—(बहुत संकोच से) जो कुछ किया है उसे सच सच बताने में क्या हर्ज है ?

वृद्धा—अगर जो कुछ अकेले तुमने किया है, वही बताने की बात होती तो फिर तुम्हें वायदा मुआफी देने की क्या ज़रूरत थी।

युवक—(कुछ निर्भयता से) बात यह है कि अम्माँ मुझ से पहिले धर्मदेव नामक एक अभियुक्त ने पुलीस को सब कुछ बता दिया, इस लिये मैं किसी तरह भी बच न सकता था।

वृद्धा—तो अब तुमने कितने साल जीने के लिये परमात्मा से प्रतिज्ञा पत्र लिखवा लिया है ?

युवक—(आश्चर्य से) मैं आपकी बातका अर्थ नहीं समझा।

वृद्धा—अदालत अधिक से अधिक तुम्हें मृत्यु दण्ड दे सकती है। उसी से घबरा कर तुमने देश-द्रोह का कलंक अपने माथे लगाया है ? पर मैं तुम से पूछती हूं जग्गू ! कि यदि आज इसी हवालात में तुम्हारे दिल की धड़कन बन्द हो जाय या गवाही देने से पहिले ही अकस्मात् हैज़े या प्लेग से तुम्हारी मृत्यु हो जाय, तब ?

युवक जगमोहन के दिल पर इन सीधे सादे शब्दों ने बड़ा असर किया, तो भी उसने उत्तर देने के लिये कहा "तब तो लाचारी है"।

वृद्धा—तो क्या इसी क्षणभंगुर जीवन के लिये देशद्रोह करने लगे हो ? उसी मृत्यु से बचने के लिये, जिस से तुम किसी तरह बच ही नहीं सकते, मित्रों और साथियों से विश्वासघात करने लगे हो, जग्गू ? यदि तुम्हारी जगह मैं होती तो कहीं, उदयवीर और नरेन्द्र सरीखे लड़कों के विरुद्ध गवाही देने की अपेक्षा मैं मरना कहीं अच्छा समझती।

युवक—पर अम्मा ! तुम तो हमेशा मुझे वहां नरेन्द्र से मिलने से मना किया करती थी ?

वृद्धा—वह इस लिये कि मुझे उनके विचारों से गहरा मतभेद था। वह मतभेद आज भी है। एक काम को न करना और बात है किन्तु किसी काम को करके, उस के परिणाम स्वरूप कष्टों से डर के मुआफ़ी माँगना और अपने साथियों से विश्वासघात करना कायरता है, बुज़दिली है और अत्यन्त कमीनापन है। जग्गू ! तुम से कायर पुत्र पाने से तो मैं वन्ध्या ही अच्छी थी। तुम ने मेरे दूध को कलंकित कर दिया।

* * *

लखनऊ के सेशन जज ने जगमोहन और उसके साथियों के मुकद्दमे का फ़ैसला सुना दिया। जगमोहन को ७ साल के लिये सपरिश्रम कारागार-वास का दण्ड दिया गया।

अदालत की कार्यवाही समाप्त होने पर जग-मोहन की मां ने (जो अदालत में मौजूद थी) अपनी अँगुली से लोहू निकाल के जगमोहन के माथे पर तिलक लगाते हुए कहा "बेटा ! तुम ने मेरे दूध की लाज रख ली। आज मैं पुत्रवती हुई।

—पंजाबकेसरी से



जल-चिकित्सा

[लेखक—श्री पं० देवराज जी विद्यावाचस्पति]

स्कार्लैट फीवर

इस ज्वर में शुरू २ में गले में पीड़ा, जी मचलाना, आंखों में सूजन, ठण्ड लगना और फिर शरीर गर्म होना, चेहरे और बाहु पर लाल २ धब्बे पड़ जाना आदि लक्षण होते हैं।

चिकित्सा के लिये रात दिन गीला कपड़ा लपेट रक्खो। दुपहर को बुखार बढ़ने लगे तो साधारण पानी में भीगा कपड़ा धड़ पर बार २ रक्खो। गले को गीले पतले कपड़े से लपेट कर ऊपर से गुलबन्द लपेट दो। रात दिन लपेटे रक्खो प्रति घण्टे के पश्चात् कपड़ा बदलते रहो। बदलते हुए दूसरा कपड़ा रखने से पहले गले पर ठण्डा पानी डालकर हाथ से रगड़ो। जब तक सारा शरीर लाल न होजावे यह सब क्रिया जारी रक्खो। फिर शरीर को ठण्ड से बचाओ स्नान कराते समय शरीर को हवा से बचाओ। अब ठण्डे पानी का प्रयोग हानि करेगा। परन्तु रोगी को चाहिये कि ठण्डा पानी सिप करता रहे। दिन में ४, ५ गिलास पी डाले, इसी प्रकार रात में भी पी डाले। तीन २ घंटे के पश्चात् धड़ पर का वेष्टन गीला कर २ के बदलते रहना चाहिये।

भोजन अत्यल्प दो। शराब, मान्स, चाय, कॉफ़ी, तथा अन्य गर्म मसाले आदि उत्तेजक पदार्थ मत दो।

जिस समय रोग पूर्णरूप से फूटेगा उस समय शरीर खुरदरा और छिलकों वाला होजावेगा। यदि इस अवस्था में ज्वर न हो तो कोई चिकित्सा न करो। क्योंकि यदि त्वचा का घर्षण किया जायगा तो नई त्वचा देर में बनेगी। यदि कुछ बुखार प्रतीत होता हो तो ८५ अंश फा० के जल से स्पञ्ज करो। इस बीमारी से छूटने में सात दिन लगेंगे।

स्कार्लैटिना

स्कार्लैट ज्वर का ही हलका रूप है। उसी प्रकार इस की भी चिकित्सा होती है। स्कार्लैट फ़ीवर में त्वचा और त्वचा के श्लैष्मिक भाग की तीक्ष्ण शोथ होती है। खसरे आदि विस्फोटक ज्वरों की तरह का ही यह ज्वर है। एक या दो दिन में दूर नहीं हो सकता है। सात दिन का अपना काल पूरा करता है। जलचिकित्सा से इन विस्फोटक ज्वरों में विशेष उपकार होता है। औषध चिकित्सा से आगामी जीवन के लिये रोग का कुछ अंश शरीर में बना ही रहता है और कई अवस्थाओं में तो शरीर बिलकुल निकम्मा होजाता है।

चेचक

इसके इलाज में विस्फोटक ज्वर के इलाज की जिस प्रकार विधि लिखि है उसी प्रकार करनी चाहिये।

मिर्गी, अपस्मार

यह भयानक और घातक रोग है। जो लोग शराब पीते हैं, घनि भोजन करते हैं और आराम से पड़े २ दिन काटते हैं, व्यायाम नहीं करते हैं उनको यह रोग प्रायः होता है।

इस रोग में डाक्टर लोग विरेचन देते हैं और जोंक लगाते हैं। इनसे आयु क्षीण होती है। जब तक रोगी सब प्रकार के उत्तेजक पदार्थ छोड़ कर सादा जीवन व्यतीत नहीं करता और व्यायाम नहीं करता तब तक शरीर नष्ट ही होता है।

इस रोग में निम्न लक्षण प्रायः पाये जाते हैं शरीर के एक हिस्से में आक्षेप और दूसरे हिस्से में अर्धङ्ग, दिमाग़ का भारीपन। दिमाग़ में रक्त या पानी भरजाने से दिमाग़ में भारीपन होजाता है। रक्त भर जाने से जो मिर्गी होती है उसे Sanguineous (पैत्तिक) कहते हैं। रक्त के पतला होने से जब दिमाग़ में पानी भर कर यह रोग प्रकट होता है तो इसे Serous (श्लैष्मिक) कहते हैं। पैत्तिक अपस्मार में नाड़ी कठोर और पूर्ण होती है, चेहरा सुर्ख़ होता है, सघोष श्वास होता है। श्लैष्मिक अपस्मार में नाड़ी मन्द और चेहरा फीका होता है। इनसे अतिरिक्त ऐसा भी अपस्मार मिलता है जिस में दिमाग़ का किसी प्रकार का भारीपन नहीं होता। अपस्मार के इस भेद को वातिक अपस्मार कहते हैं। वातिक अपस्मार में वेग का आक्रमण सहसा होता है, पहिले कोई सूचना नहीं होती। वातिक अपस्मार के वेग के पश्चात् सिर में कुछ दर्द मालूम हुआ करती है। साथ ही कभी २ भार का बोध, निद्रा और चक्कर भी शामिल होते हैं। साधारणतया मिर्गी में श्वास अधिक गहरे होते हैं, चेहरा और आंखें लाल होती हैं, नाक से प्रायः रक्त गिरता है। वेग के समय रोगी भूमि पर गिर पड़ता है, मूर्छा आजाती है, श्वास काठिन्य हो जाता है यद्यपि पहिले मन्द और नियमित होता है तथापि पीछे अधिक तीव्र, अनियमित और निर्बल हो जाता है। कभी २ श्वास रुक २ कर आता है और उस में आक्षेप उठते हैं। स्वर यन्त्र और श्वास प्रणाली में कफ़ भर जाने से श्वास सघोष हो जाता है। मुख में गाढ़ा २ थूक इकट्ठा हो जाने से निकला करता है।

इस रोग के पहिले दिमाग़ की शक्ति विषम हो जाती है, सिर में ख़ून भर जाता है, सिर से ख़ून लौटना बन्द होजाता है।

जो मनुष्य रक्त से भरे हुए होते हैं, बहुत मोटे होते हैं, जिन की गर्दन छोटी और मोटी होती है उनको यह रोग प्रायः होता है। शराब बहुत पीने से भी यह रोग हो जाता है।

इस रोग की चिकित्सा में डाक्टर लोग रक्त का दबाव कम करने के लिये शरीर में से रक्त निकलवाते हैं, विरेचक औषधियां देते हैं। इन उपायों से न तो पोषण होता है और नाहीं जीवनीय शक्ति मिलती है, उल्टा वे उपाय कम करते हैं और अन्त को बिलकुल समाप्त कर देते हैं। इस रोग में किन्हीं ख़ास कमज़ोर नाड़ियों में रक्त भर जाता है। ये नाड़ियां रक्त को आगे धकेल नहीं सकतीं अतएव जिस अङ्ग की नाड़ियों में रक्त भर जाता है वह अङ्ग भारी लगने लगता है। अतः चिकित्सा के लिये उचित है कि जो अङ्ग पूर्व की अपेक्षा भारी प्रतीत होने लगा है उस अङ्ग की वात नाड़ियों को शक्ति दी जावे। रक्त सञ्चार में लगने वाली वात शक्ति का केन्द्र आमाशय के गढ़े में है। इस केन्द्र को बलवान बनाने से रक्त सञ्चार ठीक होता है तथा किसी अङ्ग में रक्त इकट्ठा नहीं होता। अतः रोग की उचित चिकित्सा के लिये वात शक्ति के केन्द्र को पूर्व निर्दिष्ट प्रकारों से बलवान बनाने का प्रयत्न विशेष करना चाहिये।

लकवा Paralysis

ऐच्छिक गति के बल की कमी या नाश के रूप में यह रोग होता है। इस रोग का कारण अप-

स्मार भी है। अर्थात् जिस रोगी को मिर्गि की बीमारी हो उस रोगी को यह रोग हो सकता है। दिमाग़ से वात नाड़ियों में बहते हुए शक्ति के प्रवाह में बाधा डालने वाले किसी पदार्थ से यह रोग हो सकता है। मादक और शामक द्रव्यों का लगातार प्रयोग भी इस रोग का कारण है। शारीरिक शक्ति को जो पदार्थ क्षीण करते हैं वे भी इस रोग के कारण हैं। एक सूत्र में कहा जाय तो पोषण सम्बन्धी वात नाडियों में विद्युत् शक्ति या जीवन शक्ति की केवल कमी से यह रोग होता है।

लकवा रोग वंशानुगत नहीं होता। पिता माता से पुत्र को कमज़ोर शरीर अवश्य मिल सकता है जिस में इस रोग के होने के लिये प्रवृत्त हो। यदि कमज़ोर शरीर वाला मनुष्य भी स्वास्थ्य के स्वाभाविक नियमों का पूरा पालन करे, अनुचित उत्तेजक खाना पीना छोड़दे, स्वास्थ्य के लिये हानिकारक बिना विश्राम लिये पढ़ने की आदत न रक्खे, दुर्वासनाओं को त्याग दे, विनाशक परिणाम पैदा करने वाले तम्बाकू, सूंघनी, अफ़ीम आदि पदार्थों से बिलकुल परहेज़ रक्खे तो इस रोग के लिये माता पिता से प्राप्त प्रवृत्ति से सर्वथा मुक्त हो जावेगा।

इस कलेवा की बीमारी में जो भाग निश्चेष्ट हुआ हो, उस में प्रायः अनुभवशक्ति तो विद्यमान रहती है परन्तु वह उस भाग को हिला नहीं सकता। ज्ञान तन्तु ठीक अवस्था में रहते हैं, परन्तु वे गति की नाडियों को कार्य करने के लिये उत्तेजना नहीं दे सकते। इस रोग के कभी २ ऐसे बीमार भी देखने में आते हैं जिनके अङ्गों में न अनुभव होता है और न गति। यहां पर गति की नाड़ियां और ज्ञान की नाड़ियां जो साथ २ रहती हैं दोनों हो जीवन शक्ति से रहित होती हैं। मल और मूत्र को रखने और बाहिर फेंकने की शक्ति मन्द पड़ जाती है, इनका धारण या तो नहीं करतीं या अधूरा करती हैं।

अनेक बार ऐसा होता है कि मनुष्य चङ्गे भले रात को सोते हैं और प्रातः काल उन्हें यह लकवे का रोग हुआ होता है। इस रोग के होने के पहिले निम्न चिह्न हुआ करते हैं–हाथों पांवों में दर्द दौड़ने लगती हैं, अङ्ग झुक जाते हैं, मांस-पेशियों में मरोड़ आरम्भ होते हैं, शरीर के कई भाग ठण्डे पड़ जाते हैं, भुजाओं में बल न रहने से भार नहीं उठाया जा सकता, पृष्ठ वंश के नीचे के हिस्से में ठण्ड और कंपकंपी आरम्भ हो जाती है, चक्कर आते हैं इत्यादि। शुरू २ में इन लक्षणों की कुछ परवाह नहीं की जाती है जब ये तीव्र हो जाते हैं तो कह दिया जाता है कि आमवात का रोग होगया है।

जब ये लक्षण शरीर में उपस्थित हों तब मनुष्य को स्वास्थ्य के साधारण नियमों पर विशेष ध्यान देना चाहिये। लकवे का रोग आने से बहुत पूर्व जिह्वा लाल हो जाती है, सूज जाती है, फट जाती है, अथवा जिह्वा पार्श्वों पर तो लाल होती है और पृष्ठ पर सफेद होती है। यदि इन लक्षणों पर ध्यान न दिया जाय तो शरीर के लिये बड़ा दुष्परिणाम उपस्थित होता है।

इसके लिये चाहिये कि आमाशय और आंतों के कार्यों को कभी न बिगड़ने दें और वात नाड़ियों के कार्य में कभी हानि न आने दें। वात नाड़ियों को उत्तेजित करने वाले पदार्थों के सेवन से नाड़ियां अधिक बलहीन बनती हैं। इस लिये साधारण भोजन, नियमपूर्वक उचित स्नान

जारी रखना चाहिये। पृष्ठवंश को खूब रगड़ना चाहिये, पीठ पर ठण्डा पानी डाला जाय, ठण्डे पानी में भीगा कपड़ा रक्खा जाय, सीवन स्नान ठण्डे जल से कराया जाय, फिर गर्म पानी से पीठ को और आगे के भाग को सेका जाय। फिर गीला कपड़ा लपेटो। फिर पीठ को सूखा रगड़ो, धड़ को गीले कपड़े से लपेट दो, साधारण भोजन खाने को दो, शुद्ध हवा में रक्खो यही इस रोग की चिकित्सा है।

हृद्रोग

यदि मनुष्य के शरीर में जिगर ठीक काम करता रहे और हम शरीर के प्रत्येक हिस्से में रक्त सञ्चार की क्रिया को ठीक रक्खें तो हृद्रोग का कोई चिह्न नहीं मिलता। बहुत से मनुष्य नाड़ी की थोड़ी सी विषमता हो जाने से और हृदय में कुछ धड़कन मालूम होने से घबरा जाते हैं। जितने मनुष्य अजीर्ण रोग से ग्रस्त होते हैं और जल्दी क्षुब्ध होने वाले होते हैं उनको इस प्रकार से हृदय के कार्य में व्यतिक्रम अनुभव हुआ ही करता है। परन्तु जहां यह रोग अपने वास्तविक रूप में पाया जाता है, वहां इस के प्रभाव को शान्त करने के सिवाय कुछ नहीं किया जा सकता है। यह कार्य अन्य किसी उपाय की अपेक्षा जलचिकित्सा के हलके उपायों से सुगमता से किया जा सकता है। रोगी को आयु और बल तथा रोग के कारणों के अनुसार चिकिसा में भेद पड़ जाता है।

रोगी को दुष्पच और उत्तेजक भोजन छोड़ देने चाहियें, मान्स न खाना चाहिये। हरे शाक, शलगम, गोभी, कच्चे या तले हुए शाक न खावे। बहुत निशास्ते वाले भोजन चावल, सागूदाना, गेहूँ आदि न खावे। गोभी का केवल फूल का हिस्सा खाया जा सकता है।

हृद्रोग से आक्रान्त व्यक्ति केवल स्वाद की दृष्टि से यदि भोजन खाना न छोड़ेंगे और अपनी इच्छा पूर्तिकी दृष्टि से यदि भोजन खाना न छोड़ेंगे और केवल शरीर के पोषण के निमित्त भोजन लेने का कठोर व्रत न धारण करेंगे तो वे हमेशा अचानक मृत्यु होने के भय में रहेंगे। बहुत सारे तो आत्म संयम और व्रत धारण किये बिना मृत्यु का ग्रास बनते ही हैं।

इस रोग में चिकित्सा का उद्देश्य यह है कि हृदय की शोथ दूर की जाय, कमज़ोर नाड़ियों पर जो दबाव है उसे दूर किया जाय, और पेशियों में नवजीवन का सञ्चार किया जाय। रक्त को ग्रहण करने और सारे शरीर में फेंकने के लिये हृदय को निरन्तर जीवन भर कार्य करना पड़ता है। हृदय के दक्षिण और वाम प्रकोष्ठ बीमार हो गये तो भी वे एक मिनिट के लिये भी कार्य छोड़ कर विश्राम नहीं ले सकते। हमारी टांग, घुटने, बाहु और कलाई की मान्स पेशियां कमज़ोर पड़ जावें, सख़्त हो जावें और सुकड़ जावें तो उन्हें उसी प्रकार गति देने से हमें पीड़ा का अनुभव होता है और कार्य नहीं होता। इसी प्रकार यदि हृदय की मान्स पेशियां सख्त हो जावें सुकड़जावें और सूजजावें तो एक विशेष हद्द पर जाकर अपना काम बन्द कर देती हैं। हृदय ठहर जाता है। और मनुष्य मर जाता है।

यद्यपि हृद्रोगियों की चिकित्सा उन के बल और आयु के भेद के अनुसार एक जैसी नहीं है, भिन्न २ है, तथापि कुछ सामान्य निर्देश किया जा सकता है।

प्रातःकाल जगने पर जब रोगी बिस्तर पर बैठा हो तब उस के धड़ के ऊपर के हिस्से को ८० अंश फा० के जल में भीगे हुए और निचोड़े हुए

तौलिये से रगड़ो। फिर इसे सुखा कर ऊन का वस्त्र पहनादो। फिर धड़ के नीचे के हिस्से को उसी प्रकार रगड़ो। फिर इसे भी गर्म कपड़ा पहिनादो। धड़ से नीचे के भाग को गर्म रखना बहुत आवश्यक है। दुपहर से कुछ पहिले पिण्डलियों तक टांगें ६० अंश के राई के जल में डुबो कर रक्खो। धीरे २ जल का ताप मान १००, १०५ अंशों तक बढ़ाओ, जहां तक रोगी सहार सके। इसी समय सिर पर ठण्डे पानी का कपड़ा रख कर सिर को ठण्डा रक्खो। १०, १५ मिनिट तक यह प्रक्रिया करो। फिर टांगों और पांव को ८० अंश के जल में भीगे तौलिये से रगड़ो। फिर सुखाओ और सूखे हाथ से मल डालो। तीसरे पहर ६० अंश राई के जल में ३ मिनिट तक पांव रक्खो। फिर ६० अंश के जल में तौलिया भिगो कर निचोड़ कर उस से उदर को लपेटो और पांव को गरम रक्खो। इस प्रकार पौण घण्टे तक करते रहो। यदि बेचैनी हो तो केवल २० मिनिट तक ही रक्खो। फिर उदर पर स्पञ्ज करो। सोने के समय हृदय से ठीक नीचे राई की पुल्टिस बांधो। जब तक स्थान लाल न हो जावे तब तक बांधे रक्खो। फिर इसे उतार डालो और स्थान को सुखादो।

इन रोगों में ८० अंश के जल से सीवन स्नान करना बहुत अच्छा है। अथवा इतना ठण्डा हो कि ठिठरन न मालूम हो। २० मिनिट से ४० मिनिट तक लेना चाहिये। यह स्नान लेते हुए पांव किसी बर्तन में गर्म पानी डाल कर उसमें डुबो कर रखने चाहियें। टांगों और जांघों पर साधारण जल में भीगी पट्टियां लपेट दो। ऊपर से गर्म कपड़ा लपेट दो। २, ३ घण्टों के अन्तर से बदलते रहो। कभी २ हृदय पर स्पञ्ज रख कर उस पर गर्म पानी डालते हुए गीला रखते हैं। यदि यह प्रक्रिया क्षोभ न उत्पन्न करे तो बड़ी लाभदायक है। ऐसी कोई भी प्रक्रिया नहीं करनी चाहिये जिस से एक दम धक्का लगे। बार २ ठण्डा पानी सिप करते रहना बहुत ही उपयोगी है।

मूर्छा में या तबियत के गिरने में (syncope or faintness) रोगी के कपड़े एक दम उतरवा देने चाहिये। हृदय पर राई की पुल्टिस लगानी चाहिये। साथ ही हाथ पांव १०० अंश के जल में डुबो कर रखने चाहियें। फिर सब सुखादें। फिर शरीर को कम्बल से ढककर शरीर के अन्य भागों को रगड़ो, सिर और चेहरे को ठण्डे पानी से स्पञ्ज करो। सिप करने के लिये पानी दो।

जब वेग शान्त हो जावे, मनुष्य को लिटादो और पांव की एड़ियों पर राई की पुल्टस बांधो, और आंतों के नीचे के भाग पर हलके गर्म पानी से सेक करो। सिर को गीला रक्खो और शरीर के शेष भाग को खूब गर्म रक्खो।

कभी २ आमवात का आक्रमण हृदय पर हो जाता है, हृदय की मांस पेशियां कठोर हो जाती हैं, उन में चाक (चूना) निक्षिप्त हो जाता है इस प्रकार हृदय की जीवन शक्ति कम हो जाती है। हृदय की कपाटियों के अस्थिकरण में कपाटियों में चूने की रचना हो जाती है।

हृदय पर आमवात का यह आक्रमण बड़ा भयानक है, क्योंकि हृदय की मान्स पेशियों को आराम बिलकुल नहीं मिलता। शरीर की अन्य पेशियों की तरह ये लचक और जीवन शक्ति को खो बैठती हैं। इस पर कठिनता यह है कि सेक कर या अन्य उत्तेजक या शामक जल के प्रयोग से हृदय पर असर डालकर सीधे ही लचक और जीवनीय शक्ति को हम प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

इस के लिये उपाय यह है कि उत्तेजक पदार्थों का ग्रहण छोड़ दिया जाय और तरल सुपच भोजन का सेवन किया जाय। यह रोग चाहे किसी प्रकार हुआ हो चिकित्सा का उद्देश्य शोथ को दूर करना है। शोथ किसी प्रकार भी हो उस से रक्त सञ्चार में बाधा पड़ती है और यह शोथ हृदय को अधिक बल से रक्त फेंकने का काम करने के लिये बाधित करती है। इस प्रकार शोथ और अधिक बढ़ जाती है।

जो लोग स्नेह बहुत खाते हैं उन के हृदय पर स्नेह का सञ्चय हो जाने से हृदय की गति में बाधा पड़ जाती है। अफ़ीम, मार्फ़िया आदि पदार्थ मस्तिष्क का कार्य बन्द कर के रक्त का सञ्चार अतिमन्द कर देते हैं। हृदय मन्द पड़ जाता है इस लिये जिन को ऐसी बुरी आदत हो उन्हें चाहिये कि हृदय की रक्षा के लिये यह आदत एक दम छोड़ दें।

योषापस्मार (Hysteria)

रोगी के कपड़े उतार दो। शरीर को हाथ से रगड़ना आरम्भ करो। सिर को गीला करो। १०० अंश के जल में रोगी को रख दो। जब तक अन्दर रहे खूब रगड़ो। विशेषतया हृदय के स्थान को रगड़ो और साथ ही पृष्ठ वंश के नीचे के हिस्से को रगड़ो। यदि रोगी बहुत नाज़ुक न हो तो ठण्डा पानी पृष्ठ वंश के नीचे के हिस्से पर डालना बहुत अनुकूल पड़ेगा। जब रोग का वेग शान्त हो जावे तब रोगी को बिस्तर पर कम्बलों के बीच में रखो, और पांव के पञ्जों पर राई की पुल्टिस बांधो। सिर अच्छी प्रकार लपेट दो। कुछ गर्म चीज़ आंतों पर भी रख दो। रखने के लिये गर्म जल से भरा हुआ रबड़ या मोमजामें का थैला अच्छा होगा। यदि खुले पानी में नहाने का मौका न हो सके तो सीवन स्नान करा दो। स्नान के लिये जल ८० अंश हो और पांव १०५ अंश राई के जल में डूबे रहें। शरीर का मलना, ठण्डे पानी का प्रयोग पूर्ववत् जारी रहे।

(विसर्प Erysipelas)

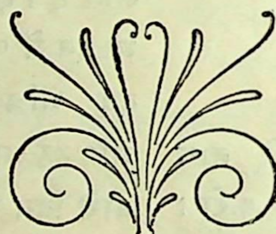
यह स्पर्श से फैलने वाला रोग है। त्वचा में streptococcus erysipelatis नाम के जीवाणु के बैठ जाने से यह रोग होजाता है। ठण्ड, ज्वर त्वचा और श्लैष्मिक कला की स्थानिक अत्यधिक रक्तिमा इस के लक्षण हैं। पहिले या दूसरे दिन त्वचा पर लाल २ चौड़े २ उभार पैदा हो जाते हैं। त्वचा के नीचे छोटी २ रक्तवाहिनियों के फट जाने से रक्त इकट्ठा हो जाता है और ये उभार गाढ़ेलाल रङ्ग के होते हैं। अक्रान्त हिस्से फूल जाते हैं। इन में दर्द भी होतो है। खुजली और दाह भी इन में पाई जाती है। वात प्रधान रोग हो तो दर्द अधिक होती है; पित्त प्रधान हो तो दाह; और श्लेष्म प्रधान हो तो खुजली विशेष होती है। चौथे दिन उभार लुप्त हो जाते हैं। दिन के बाद रोगी स्वस्थ होना आरम्भ कर देता है। यदि मूत्र रोध हो जावे, मूत्र में albumin आवे, त्वचा में पूय युक्त लाल फुन्सियां निकलें, स्वरयन्त्र के संयोजक तन्तुओं में पानी भर जावे अर्थात् स्वरयन्त्र में शोथ हो जावे तो यह रोग लगातार विषम होता जाता है। यदि रोग स्वयं उत्पन्न हुआ हो तो स्वास्थ्य प्राप्त करते २ स्वयं दूर हो जाता है। यदि यह रोग चोट के कारण हुआ हो या संयोजक तन्तु में शोथ के कारण हुआ हो, जिस शोथ से फोड़ा बन सकता हो तो यह भयानक होता है शरीर के किसी भाग में रक्त सञ्चार बन्द हो जाने से और उस पर पूय जनक क्रिमियों के आक्रमण।

से मृत हुए अंग में उत्पन्न यह रोग बहुत भयानक होता है।

यदि रोग हलका हो तो चिकित्सा के लिये ७० अंश के जल में स्पञ्ज भिगोकर त्वचा को धोना चाहिये। फिर ठण्डे पानी में स्पञ्ज भिगो कर निचोड़ कर आक्रान्तस्थानों पर बांध दें। स्पञ्ज न मिले तो नर्म कपड़े का प्रयोग करना चाहिये। इस के ऊपर ऊनी गर्म कपड़े की पट्टी लपेट दें।

यदि आक्रमण भयानक हो तो गर्म पानी से १५ मिनिट तक सेक करो। फिर ऊपर निर्देश की हुई प्रक्रिया करो। जब तक बुखार दूर न हो जाय यह सब प्रक्रिया दोहराते रहनी चाहिये।

सारे शरीर की चिकित्सा के लिये प्रातः जागने पर शरीर को गर्म पानी में भीगी चादर से लपेट दो। ८६ अंश जल से दिन में दो बार सीवन स्नान कराओ। रात को १५ मिनिट आंतों को जगह को गर्म पानी से सेकदो। फिर पूर्ववत् धड़ पर पट्टी लपेटो। सीवन स्नान करते हुए पांवों को १०५ अंश के राई के जल में रखो।



प्रतीक्षा

(ले०—कविवर श्री गोपालशरण सिंह)

(१)

प्राण धन आवेंगे लगावेंगे गले से मुझे
मन को मुदित यह भावना बनाती है।
रोम रोम में है सुधा-स्रोत सी बहाती वह,
प्रचुर-प्रसन्नता न उर में समाती है।
रूप-रस-प्यासी दृग-फल-अभिलाषी आंख,
पलक प्रसून-पुञ्ज-पांवड़े बिछाती है।
सांस भी हुलास-भरी नेक रुकती है नहीं,
बार बार आती और बार बार जाती है

(२)

बह रही तरल तरंग अंग अंग में है,
प्रेम की तरंगिणी तरंगित है तन में,
मन में छिपाए छिपती है अभिलाषा नहीं,
झलक रही है आशा रुचिर वदन में।
त्यों त्यों देखने को दृग होते हैं अधीर और
ज्यों ज्यों अब हो रहा विलम्ब आगमन में
जान पड़ता है उन्हें लाने को यहां तुरन्त,
आतुर हैं प्राण उड़ जाने को पवन में ॥

माता की ममता

(ले०—श्री पं० विश्वम्भर सहाय 'प्रेमी' वैदिक धर्म विशारद)

(१)



अमावस्या की अंधेरी छाई हुई है। दीप-मालिका का शुभ उत्सव मनाया जा रहा है। इधर उधर दीपक जल रहे हैं भिन्न २ प्रकार का कृत्रिम प्रकाश गलियों में फैल रहा है। लोगों में उत्साह है, जीवन है। बच्चों में मिठाई खाने का चाव है तो देवियों में अपने प्रकाशमय गृह के अन्दर अपने कुटुम्बी जनों के एकत्रित अवलोकन करने का प्रेम है। भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक यही भाव जागृत है।

इस उमंग, उत्साह, उल्लास के अवसर पर नई उमंगों के साथ पशु पक्षी भी उत्साहित दीख पड़ते हैं। उन में भी मनुष्यों ने अपने उत्साह के साथ २ नवीन उत्साह उत्पन्न कर दिया है। किसी २ ने तो अपने गाय, बैल, बछड़े, बछिया, घोड़े, बकरी आदि पशुओं के पैर सिर रंग दिये हैं, जिससे वे सुन्दर प्रतीत होने लगें।

इसी उत्साह के समय राधा अपने एक मात्र पुत्र की बाट जोह रही है। पूरे छत्तीस घंटे प्रतीक्षा करते बीत चुके हैं। वह नहीं जानती कि उसका पुत्र कौन कहां ले गया। उसके समस्त जीवन का प्राण-धन एक मात्र पुत्र ही घर में शेष रह गया है। पति को मरे हुए तो कई वर्ष बीत गये और घर में कोई भी नहीं है। काली निशा उसे भंयकर प्रतीत हो रही है। मन को शान्ति देने वाला कोई भी नहीं है। उसके मुख पर गहरा विषाद छा रहा है। बार २ टिमटिमाता हुआ दीपक उठाती है और द्वार पर जाकर 'मनमोहन' को पुकारती है। माता का प्रेम भी अनोखी वस्तु है उसके हृदय की निर्मल प्रेम धारा का समझना दुष्कर कार्य है।

(२)

मनमोहन की अवस्था इस समय सत्रह वर्ष के लगभग है। अपने पिता की जीवन अवस्था तक तो वह पढ़ता लिखता रहा। उस ने पंद्रह वर्ष की ही आयु में इन्ट्रेंस परीक्षा पास कर ली थी। पठन काल में उसका स्वभाव बड़ा विलक्षण था। पढ़ने लिखने में वह बड़ा होशियार था। थोड़े समय ही में वह अपना पाठ याद कर लेता था। वह बड़ा मसखरा था। उससे सभी मास्टर प्रसन्न रहते थे। सहपाठी भी उससे प्रसन्न रहते। कुछ ने तो उसे अपने मनोविनोद की सामग्री ही समझ रक्खा था। पिता की मृत्यु के बाद मनमोहन सामाजिक राजनैतिक सभी कार्यों में विशेष भाग लेने लगा। लोग उसको बड़े आदर की दृष्टि से देखते। दीनों की रक्षा करना उसका मुख्य उद्देश्य था। उन बातों में वह विशेष भाग लेता जिन में पड़ते हुए अन्य लोग घबराते थे।

इतना होते हुए भी मनमोहन माता का बड़ा आदर सत्कार करता था। मातृ-सेवा करने में वह सदैव संलग्न रहता। उसकी सदैव यही धारणा रहती कि वह माता को किसी प्रकार का भीकष्ट न होने दे। माता भी प्रति पल उसके प्रेम में निमग्न रहती। उसे अच्छे से अच्छा भोजन राती।

(३)

चतुर्दशी के एक प्रातः काल मनमोहन घर से गंगा तट पर स्नान के लिये गया। मन्द मन्द समीर चल रही थी। तट पर जाकर उसने अपने वस्त्र रख दिये। वस्त्र रखने के पश्चात् उसे एक प्रकाशमय ज्योति दृष्टि पड़ी। उस का मन उसी की ओर आकृष्ट हो गया। उसने अपने वस्त्रों को वहीं पर छोड़ दिया और अपनी सारी सुधि भूल कर उस प्रकाशमयी ज्योति की ओर चल दिया। पता नहीं कि वह ज्योति क्या थी। यह केवल उसके मन का ही एक भ्रम था। वह उस मायाविनी ज्योति के पीछा करने में बेसुध हो गया। परन्तु वह ज्योति उससे उतनी ही दूर रही, जितनी वह प्रथम अवलोकन के समय थी। मनमोहन अपने आपको भूला हुआ था, परन्तु पग उसी के पीछे पड़ रहे थे। कुछ दूर आगे जाने पर घना जंगल आया। कांटे-दार छोटी २ झाड़ियां मार्ग में पड़ने लगीं। ऐसी दशा में भी वह उसी के पीछे जा रहा था। उन विपत्तियों का उसे अनुभव ही नहीं होता था।

वह मनमोहन—जो एक दिन विचारपूर्वक काम करने वाला कहा जाता था—आज अपनी सुधबुध ऐसी भूल बैठा कि उसे यह पता ही नहीं रहा कि यह कहां पर किस दिशा में जा रहा है। सूर्यदेव की तीक्ष्णता भी समाप्त होने लगी। प्रातः काल से चलते २ उसे तीसरा पहर हो गया। सायंकाल के चिन्ह प्रगट होने लगे। मनमोहन को इस समय प्रतीत होने लगा कि जिस मायविनी ज्योति के पीछा करने में वह अपनी सुध खो बैठा है, वही अब आंखों से ओझल होती जा रही है। उसे अब थकान प्रतीत होने लगी। इन्द्रियां शिथिल पड़ने लगी और वह व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

भयानक जंगल है। वहां कोई उसकी सुधि लेने वाला नहीं। कोई किसी प्रकार का खानपान का सामान नहीं। मीलों चल चुकने के कारण उसके पैर भी शिथिल पड़ गये। ऐसी अवस्था में वह धैर्यहीन होकर बेसुध होगया।

(४)

मनमोहन उस रात्री को वहीं झाड़ियों में अशक्त पड़ा रहा। प्रातःकाल हुवा, पक्षियों का कल-रव उसके कानों में सुनाई पड़ा। उस के मुख से निकला-आशा देवी! तू मुझे इस भयंकर जंगल में कहां पटख गई!"

हतभाग्य मनमोहन फिर आशावादी बनकर आगे की ओर चल पड़ा परन्तु वह पहली मूर्त्ति प्रोत्साहन देने वाली अब कहां थी? बड़े बल के साथ वह तट की ओर बढ़ा। साहस करके उसने जलपान किया और फिर अपना मार्ग लिया।

(५)

राधा को रात्रि समय एक वृद्ध किसान ने मनमोहन के वह वस्त्र जो उसने गंगा तट पर छोड़ दिये थे, लाकर दिये। राधा ने उससे पूछा कि वह उन्हें कहां से लाया है। किसान ने सारा पता बता दिया।

पुत्र प्रेम में पागल हुई राधा आहें भरने लगी। उसको निश्चय हो गया कि उसका प्यारा पुत्र नदी में डूब गया है। वह घर से बाहर निकली और नदी की ओर चल दी। तट पर जा कर उसने चारों ओर अपने प्यारे पुत्र को पुकारा, परन्तु मनमोहन वहां कहां था। वह जानती थी कि सुशिक्षित मनमोहन रास्ता भी नहीं भूल सकता। दिन में घर से आया था इस लिये किसी

हिंसक पशु द्वारा भी नहीं सताया गया होगा। मन में दो ही विचार थे या तो वह नदी में उतर गया या वह कहीं किसी के साथ चला गया। प्रथम विचार उसके मन में अधिक चुभता था। इसी कारण वह पुत्र प्रेम से विह्वल होकर नदी में डूबने को उद्यत हो गई। ज्यों ही वह डूबने को तैयार हुई त्यों ही किसी ने कहा "मनमोहन जीवित है। आत्म हत्या न करो।"

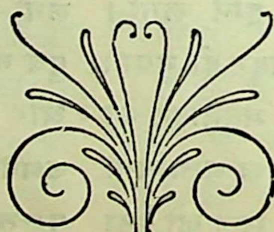
राधा ने चारों ओर देखा परन्तु उसे कोई भी दिखाई न पड़ा। अन्त में उसने उसी ओर बढ़ना प्रारम्भ कर दिया जिस ओर पहिले दिन मनमोहन गया था।

(६)

पूरे एक वर्ष बाद मनमोहन बग़ल में एक छोटी सी पुटलिया दबाये गंगा तट पर बैठा हुआ कुछ खा रहा था। आस पास बहुत से साधुओं ने अपना डेरा डाल रक्खा था। गंगा के किनारे उस दिन बड़ा मेला था। बहुत से यात्री साधु दर्शन कर रहे थे मनमोहन के वस्त्र वह नहीं थे जिन्हें सर्व साधारण सांसारिक जन पहिनते हैं, किन्तु साधुओं के समान गेरुआ वस्त्र थे। बाल बढ़े हुए थे। यद्यपि उसका रूप लावण्य पहिले के समान ही देदीप्यमान हो रहा था तथापि उसके पग आदि उतने कोमल नहीं रहे थे जितने कि पहिले थे।

पुत्र प्रेम की भूखी राधा एक वर्ष से पथ की भिखारिनी बनी हुई फिर रही है। हृदय में पुत्र मिलन की आशा है। उसके हृदय में शुभ भावनायें किलोल करती हैं परन्तु उसको पुत्र-दर्शन अभी नहीं हो पाया। दैवयोग से राधा आज उस बड़े मेले पर साधुओं में अपना पुत्र खोजने को आ पहुंची।

उसे भय था कि उसका पुत्र कहीं साधुओं में न मिल जाय। वह नेत्र फाड़ २ कर अपने प्यारे पुत्र को खोजती फिर रही थी। वह दैवात् तट की ओर बढ़ी। घाट पर अपने प्यारे पुत्र को गेरुआ वस्त्र पहिने और कुछ खाते देखा। हृदय उमड़ आया। उसने उसे झपट कर गले लगा लिया और माता की पवित्र ममता ने उन दोनों बिछड़े हुओं को फिर से मिला दिया। राधा के मुख से उस समय यही निकला "बेटा तू यहां कहां ?"।



स्त्रियों के अधिकार

(ले०—श्री मती सीतादेवी विशारदा)



एक प्रसिद्ध 'एडवर्ड कारपेन्टर' नामक अंग्रेज़ विद्वान् ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि वर्तमान काल में तीन प्रकार की स्त्रियां हैं। (१) घरेलु स्त्रियां—जिन्हें कि क्रीतदासी समझा जाता है। बच्चे पैदा करना तथा सारा दिन चूल्हे चक्की में लगा रहना ही उनकी दिनचर्य्या है। न उनमें कोई शिक्षा है, न सभ्यता है। हर समय चार दिवारी के अन्दर बन्द रहने के कारण दीन दुनिया का भी उन्हें कोई ज्ञान नहीं होता। अशिक्षिता होने के कारण वह किसी भी कार्य्य में पति को सम्मति वा सहायता नहीं दे सकती। पुरुष उन्हें केवल अपनी कामवासनापूर्ति का साधन ही समझते हैं। अतः वह अर्धाङ्गिनी वा गृहिणी पद के सर्वथा अयोग्य है।

(२) वर्तमान शिक्षिता— यह स्त्रियां जो कि सुशिक्षित तथा सभ्य श्रेणी में गिनी जाती हैं, शिक्षिता होने पर भी यह अपने देश जाति वा धर्म से सर्वथा विमुख होती हैं, देश के प्रति इनके दिल में कोई भी प्रेम वा श्रद्धा के भाव नहीं होते। इन की शिक्षा उपन्यास पठन तथा फ़ैशन तक ही सीमित होती है; यह घरेलु स्त्रियों से सर्वथा विपरीत होती हैं। चमकीले भड़कीले वस्त्राभूषणों से अपने को तितली की तरह सुन्दरी बनाने में ही उनका सारा दिन व्यतीत होता है। घर के आवश्यक कार्य्य करना वह अपना अपमान समझती हैं अतः वह गृहिणी पद के सर्वथा अयोग्य होती हैं।

(३) वेश्यायें—जिनका पेशा व्यभिचार है; इसी कार्य्य द्वारा इनकी आजीविका चलती है। वह अपने सौन्दर्य तथा यौवन को बेच कर अपना पेट पालती हैं, और जिसका उत्तर-दायित्व वर्तमान समाज पर है।

इस प्रकार लिखकर लेखक स्त्रियों से प्रश्न करता है कि प्रत्येक स्त्री को सोचना चाहिये कि वह इनमें से किस श्रेणी में है। उसकी क्या अवस्था है। इस प्रश्न को गंभीरता पूर्वक विचारने से ज्ञात होता है कि स्त्री-जाति की अत्यन्त ही शोचनीय अवस्था है, कई अज्ञ लोगों का विचार है कि इन्हें तो ईश्वर ने पैदा ही इन्हीं कार्यों के लिए किया है। हमें इतिहासाध्ययन से ज्ञात होता है कि प्रारम्भ काल से ही स्त्रियों की यह अवस्था नहीं चली आती है, अपितु वर्तमान समाज की क्षुद्रता तथा अविद्या के कारण यह अवस्था होगई है। जब कभी भी स्त्रियों को अवसर मिला तो उन्होंने उस कार्य्य को सुचारु रूप से पूर्ण करके दिखाया। क्या नूरजहां, महारानी विक्टोरिया, अहिल्याबाई, लक्ष्मीबाई, तथा अन्य कई देवियों का राज्यशासनकाल अन्य राजाओं से किसी क़दर कम रहा ? क्या महारानी लक्ष्मीबाई रण में महाराणा, पृथ्वीराज वा शिवाजी की तरह वीरता से नहीं लड़ीं ? क्या गार्गी मैत्रेयी, सुलभा इत्यादि ने ब्रह्मविद्या में महर्षि याज्ञवल्क्य को परास्त नहीं किया ? तथा लोपामुद्रा आदि कई देवियां वेदों की ऋचाकर्त्री नहीं हुई। इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि यदि इन्हें

अवसर दिया जाय तो यह उन्नति कर सकती हैं। कई सौ वर्षों से पुरुषों की अज्ञानता तथा अत्याचारों से स्त्रीजाति की ऐसी हीन अवस्था होगई है, जिस से ऐसा ज्ञात होता है कि मानो अनादि काल से यह इसी प्रकार चली आती हो। यद्यपि महर्षि दयानन्द तथा अन्य कई महानुभावों की कृपा से बहुत सुधार हुआ है, तथापि अभी अत्यन्त असन्तोषजनक अवस्था है। अभी ९८६ फी सदी स्त्रियां निरक्षरा हैं, उन की मूर्खता के कारण पुरुष जाति उनके अधिकारों को कुचल कर उन्हें दबाने का प्रयत्न करती है। स्त्रियों को भी इस बात की स्वतन्त्रता हो कि यदि उन की इच्छा हो तो आजन्म कुमारी रह कर देश की सेवा कर सकें; यह न होना चाहिये कि यदि कोई भी ऐसे कार्य के लिये अग्रसर हो तो उसे ऐसे लाञ्छन लगाये जायें जिससे कि और किसी का सहास ही न हो। पुत्र की तरह पुत्री को भी अधिकार होना चाहिये कि पिता के पश्चात वह भी कुछ सम्पत्ति की अधिकारिणी हो, यह नहीं कि यदि कोई पुत्र न हो तो अन्य सम्बन्धी तो उसकी सम्पत्ति के अधिकारी हैं, परन्तु पुत्री को कोई अधिकार ही नहीं। इसी प्रकार अन्य अधिकार भी मिलने चाहियें जिससे एडवर्ड कारपैन्टर लिखित तीन श्रेणियों से भिन्न एक ऐसी आदर्श श्रेणी बने जिन्हें ऐसी शिक्षा हो जिससे उन्हें अपने देश धर्म व सभ्यता का कुछ ज्ञान हो; हर समय वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर तितली ही न बनी रहें, अपितु देश के कार्यों को अपना मुख्य कर्तव्य समझें। आधी संख्या में होने से उनका भी यह कर्तव्य है कि संसार की समस्याओं को सुलझाने में पुरुषों का हाथ बटायें। जब इस प्रकार उन्नति हो जायगी तो तीसरी श्रेणी का भी सुधार हो जायगा, यह बात तो निश्चित ही है कि जब तक स्त्री जाति उन्नत न होगी, तब तक पुरुषों को किसी भी कार्य में सफलता मिलना असम्भव है। अतः समाज का मुख्य कर्त्तव्य यही है कि उन्हें उन्नत करे। तभी स्वराज्य संग्राम तथा अन्य कार्यों में सफलता मिल सकेगी।

——:*:——

प्रियतम, देर से सुनती आरही हूं कि तुम शीघ्र ही स्वतन्त्रता की घोषणा करने वाले हो। मेरा विचार है कि उस स्वाधीनता के युग में तुम्हें नये नियम-विधान बनाने की आवश्यकता होगी। इस दशा में, मैं तुम्हें याद दिलाना चाहती हूं कि स्त्रियों के स्थान को न भूलना; उन के सम्बन्ध में अपने पूर्व पुरुषों की अपेक्षा अधिक उदार बनना।……… यदि तुम ने स्त्रियों के अधिकारों के सम्बन्ध में विशेष ध्यान न दिया, तो मैं तुम्हें चेतावनी देना चाहती हूं कि हम लोग सब आपत्तियां सह कर एक बड़ी क्रान्ति खड़ी कर देंगी। हम तुम्हारे उन नियमों को स्वीकार नहीं करेंगी, जिन्हें बनाते हुए हमारी आवाज़ नहीं सुनी गई होगी।

श्रीमती एबीगेल

(अमेरिका के एक राष्ट्रपति की पत्नी और एक राष्ट्रपति की माता का अपने पति के नाम पत्र)

एक युद्ध यात्रा

(सत्यार्थप्रकाश के षष्ठसमुल्लास के आधार पर)

(ले०—पं० हरिशरण जी सिद्धान्तालङ्कार)



पाठक गण ! राजा चित्रसेन का नाम आपने सुना होगा । वह बड़ा धीर था, गम्भीर था, सर्व गुण सम्पन्न था, परन्तु उस में अत्माभिमान की अधिकता थी । इसी दोष के कारण उस ने हमारे एक अभिन्न मित्र का अपकार किया । उस का बदला लेना हमारा धर्म था, [1] इसी का विचार करके हमने उस राजा से युद्ध किया । उसयुद्ध यात्रा को हम आप के सन्मुख उपस्थित करते हैं ।

जब हम अपने राष्ट्र से चलने लगे तो हमने सब से प्रथम [2] राजधानी की अच्छी प्रकार व्यवस्था की, उस का प्रबन्ध कर दिया । फिर [3] हमने यात्रा संबन्धी सम्पूर्ण वस्तुएं सुव्यवस्थित कर दीं । तम्बू[4] इत्यादि गड्डों पर लदवा दिये । खूब[5] विश्वस्त सुपरीक्षित व्यक्तियों को गुप्तचर के स्थान पर नियुक्त किया । वे सब हमारे पास शत्रुओं की गुप्त बातें पहुंचा देते थे ।

हमने[6] अपने मैदान, जलयुक्त तथा झाड़ी झंखाड़ वाले तीनों प्रकार के मार्गों को अच्छी प्रकार सुधार लिया । छः[7] प्रकार के बल—"हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे, शस्त्रास्त्र और रसद"—को अपने साथ ले लिया और[8] युद्ध के लिये दृढ़ निश्चय के साथ चल पड़े । हमारे सब सैनिक बड़ी ज़ोर से चिल्ला २ कर कहते थे कि हम शत्रुओं को मारेंगे, हम उन के मुख्य व्यक्ति सेनापति इत्यादियों को मारेंगे, हम इसे मारेंगे इत्यादि । अर्थात् हमारे सैनिकों के अन्दर लड़ने के लिये पूर्ण उत्साह था ।

[9]हमारे यहां कई आदमी ऐसे थे जो कि अन्दर से शत्रु के साथ मिले हुए थे और ऊपर से हमारे मित्र थे और शत्रु के पास हमारी बातें भेज दिया करते थे । जब इस बात का पता चला तो हमारे राजा ने उन सब को निकाल दिया ।

[10]ऐसे ही पहिले एक आदमी हमारे राजा से रूठ कर चला गया था । कुछ काल के उपरान्त वह फिर हमारे राजा के पास आया और अपने किये पर क्षमा माँग कर रहने की आज्ञा माँगी । इस को सुन कर उसे रहने की आज्ञा तो दे दी; मगर फिर भी राजा को उस पर सन्देह था कि कहीं यह शत्रु से मिल कर न आया हो, इस लिये उसने उस की देख भाल के लिये कुछ सैनिकों को नियुक्त कर दिया । राजा का अनुमान ठीक निकला । वस्तुतः ही वह शत्रुओं से मिल कर अया था । उसे तुरन्त निकाल दिया गया ।

इस प्रकार सब विघ्नों को निवारण कर के

१. मित्रस्य चैवापकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः ॥ मनु० । अ० ७ ॥
२. कृत्वा विधानं मूले तु ।
३. यात्रिकं च यथाविधि ।
४. उपगृह्यास्पदं चैव ।
५. चारान् सम्यग् विधाय च ॥ मनु० । अ० ७ ॥
६. संशोध्य त्रिविधं मार्गम् ।
७. षड्विधं च बलं स्वकम् ।
८. साम्परायिककल्पेन यायादरिपुरं शनैः ॥ मनु । अ० ७ ॥
९. शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरोभवेत् ॥ मनु । अ० ७ ॥
१०. गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः ॥ मनु० । अ० ॥

हमने[11] शकट व्यूह बना कर युद्ध के लिये प्रस्थान किया। बीच[12] में जिस ओर से शत्रु के आने का भय होता था उसी ओर हम अपनी सेना को फैला देते थे। [13]अपने राजा को हमने पद्मव्यूह के अन्दर खूब अच्छी प्रकार सुरक्षित रक्खा था।

[14]अपने सेनापतियों को हमने चारों ओर भेज रक्खा था, जिस से कि वे बतला देते थे किधर से शत्रु आ रहा है—[15]बस उसी ओर अपनी सेना का मुख मोड़ देते थे।

बीच में एक सराय में हमने डेरा डाला। उस के कुछ दूर चारों ओर थानों[16] को नियुक्त किया। उस में बड़े विश्वस्त आदमी रक्खे जो कि शत्रु से मिलने का कभी स्वप्न भी न लें। [17]हमने प्रत्येक दिशा वालों को कोई न कोई चिन्ह बतला दिया था, जिस से कि जिस ओर से सेना आये उसी दिशा वाला हमें उस चिन्ह द्वारा सूचना दे दे।

हम अपने डेरे पर थे कि इतने में हमें बिगुल की आवाज़ें सुनाई दीं। बिगुल का निर्देश हमने दक्षिण दिशा वालों को किया था। हम एक दम तय्यार हो कर दक्षिण की ओर चल पड़े।

[18]बीच में जहां कहीं मैदान आता था वहाँ हम रथ और घोड़ों से, जहाँ जलयुक्त स्थान आता था वहाँ नौकाओं और हाथियों से तथा झाड़ी झंखाड़ वाले स्थान में बाण, तलवार, ढाल से लड़ते थे।

[19]वहां राजा हम सब से हमारी कुशल पूछता था, हमें आशीर्वाद देता था जिससे कि हमारा उत्साह और भी अधिक बढ़ता था। राजा अच्छी प्रकार हमारी परीक्षा भी किया करता था कि ये कैसा लड़ते हैं। हम सब खूब अच्छी प्रकार लड़ा करते थे।

[20]जब हमने शत्रु सेना में प्रवेश करना होता था तो दुधारे खड्ग के समान व्यूह बना कर प्रवेश करते थे। दोनों ओर से शत्रु सेना को नष्ट करते चलते थे और आगे बढ़ते चलते थे। इस प्रकार करते २ हम शत्रु के डेरे तक पहुँच गये और उसे [21]चारों ओर से घेर लिया। [22]वहाँ हमने इनकी बावड़ी तालाब, खाई इत्यादियों को तोड़ डाला। [23]उनके जल को भी दूषित कर दिया।

[24]रात्रि में कभी २ हम शत्रु सेना को डराने के लिये तोप इत्यादि भी छोड़ देते थे जिससे कि शत्रुओं में एक दम खलबली मच जाती थी और

११. यायात्तु शकटेन वा। मनु०। अ० ७।
१२. यतश्च भयमाशंकेत्ततो विस्तारयेद्बलम्।
१३. पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत सदा स्वयम्।
मनु०। अ० ७।
१४. सेनापति बलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत् ७।
१५. यतश्च भयमाशंकेत् प्राचीं तां कल्पयेद्दिशम्॥
मनु० अ० ७।
१६. गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान्
१७. कृतसंज्ञान् समन्ततः॥ मनु०। अ० ७।
१८. स्यन्दनाश्वैः समे युध्येदनूपे नौद्विपैस्तथा। वृक्षगु-
ल्मावृते चापैरसिचर्मायुधैः स्थले॥ मनु०। ७
१९. प्रहर्षयेद् बलं व्यूह्य तांश्च सम्यक् परीक्षयेत्।
मनु०। अ० ७।
२०. सूच्या वज्रेण चैवैतान् व्यूहेन व्यूह्य योधयेत्।
मनु०। अ० ७।
२१. उपरुध्यारिमासीत्। मनु०। अ० ७।
२२. भिन्द्याच्चैव तडागानि प्राकारपरिखास्तथा।
मनु०। अ० ७।
२३. दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम्।
मनु०। अ० ७।
२४. समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा।
मनु०। अ० ७।

सब के हृदयों में शत्रु का ही डर जम जाता था। अस्तु, इस प्रकार हमने शत्रु को जीत लिया।

[२५] उन्हें जीत कर हमने उनके बड़े २ विद्वानों तथा ब्राह्मणों का भली भांति सत्कार किया। जिनका उस युद्ध में नुकसान हुआ था उन्हें निर्वाहार्थ धन दिया। [२७] सारे दल में अभयदान का ढिंढोरा पिटवा दिया। इस प्रकार उनके सब बड़े २ आदमी हमारे पक्ष में आ गये। उनकी देखादेखी साधारण मनुष्य भी उन्हीं पर आश्रित होने के कारण हमारे पक्ष में हो गये। [२८] उनके अन्दर हमने अपने रीतिरिवाजों को डालकर उन्हीं के जो जो शास्त्रोक्त रीतिरिवाज थे उन्हीं को स्वीकार किया।

[२९] उनका राजा मरा नहीं था। उसे हमने रत्न इत्यादि चीज़ें भेंट कीं और अच्छी प्रकार उसका सत्कार किया। इससे जो राजा हमारा किसी समय शत्रु था आज वह हमारा मित्र बन गया और इस प्रकार हमें एक मित्र की प्राप्ति हुई। उस मित्र से उस युद्ध के पश्चात् हमारे कई कार्य सिद्ध हुए। उनका फिर कभी सविस्तार वर्णन करेंगे।

२५. जित्वा सम्पूजयेद्देवान् ब्राह्मणांश्चैव धार्मिकान्

२६. २७. दद्यात्परिहारांश्च, ख्यापयेदभयानि च ॥

मनु० । अ० ७ ।

२८. प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यान् यथोदितान् ।

२९. रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैः सह ॥ मनु० । अ०७ ।

जो व्यक्ति किसी चीज़ को अपना पसीना बहा कर उत्पन्न करता है, उसे उस चीज़ पर अपना अधिकार सिद्ध करने के लिये किसी ईश्वरीय इलहाम की ज़रुरत नहीं है !

जी० इङ्गरसोल.

स्वाधीनता के वृक्ष को समय समय पर देश भक्तों का खून और अत्याचारियों का अत्याचार अवश्य चाहिये। इन्हीं के आधार पर ही यह पौधा पनपता और फलता फूलता है। यही इस का स्वाभाविक खाद है।

टी० जैफरसन.

हमें सभी जगह यह सिखाया जाता है कि "जीवन पवित्र है", "स्वाधीनता पवित्र है" और "वैभव पवित्र है"। परन्तु हमें यह कहां सिखाया जाता है कि "प्रसन्नता पवित्र है" ? क्या तुम जानते नहीं,—यही प्रसन्नता ही तो है जिस के आधार पर जीवन, स्वाधीनता और वैभव पवित्र बनते हैं।

जेम्स मैकी.

पड़ाव पर—

—यही तो सराय है न ?
कब से चला था, अब
पहुँच सका हूँ आज !!
सुनो, सुनते हो अरे !
'वह' तो बहुत दूर !—
जानते हो न 'उसे', जो
बोलता बहुत कम
देखता है बड़ी दूर—
भेदिनी, गहनतम
दृष्टि से क्षितिज पर ?
वह तो न आज कभी
पहुँच सकेगा यहाँ !
इधर खड़े हैं जमे
सावन के जलधर ।
देख, सन्नाटा कैसा
खींचे है पवन आज,
उमड़ उठी ले अब
अँधियारी, और 'वह' ?—
वन के निबिड़तम
कुञ्ज बीच, अथवा
राह के किनारे किसी
गुमटी में बैठ लेगा ।

देखा है किसी ने उसे ?
बड़ा ही अजब राही;
जोहता न जाने बाट
किसकी है, और फिर
पीछे मुड़ मुड़ कर
देखता है जब तब।
कभी वट-दुग्ध से
पलाश-पत्र लिख कर
राह के किनारे रख
देता है जतन से;
कोई अज्ञात गीत
गाता है, विचित्र सी
लिपि में लिखता है कुछ।
वह देखो—अन्धकार !
कड़क !! तुषारपात !!!
ठहरो, न बन्द करो
द्वार, अभी ज़रा देर
बिजली चमकने दो
शायद पथिक 'वह'
दीख पड़े उस ओर !
—यही तो सराय है न ?
कब से चला था, अब
पहुँच सका हूँ आज !!

—'प्रियहंस'

चरित्र-चर्चा

(ले०—स्ना० शंकरदेव विद्यालंकार)

जोन ऑफ आर्क

फ्रान्स के इतिहास वेत्ताओं ने अभी हाल में ही एक खोज के उपरान्त, एक विचित्र परन्तु सत्य परिणाम निकाला है। जिसके कारण समस्त यूरोप में सनसनी मच गई है। यह इतिहास विदित घटना है कि फ्रान्स की स्वाधीनता की पुजारिणी जोन ऑफ आर्क को अंगरेज़ों ने जीते जी आग में जला कर मार डाला था।

परन्तु पन्द्रहवीं शताब्दी के कुछ ऐतीहासिक पत्रे प्राप्त हुए हैं जिनसे यह बात प्रमाणित होती है कि ओर्लियन्स की यह कुमारी अँग्रेज़ों के शिकञ्जे से निकल कर भाग गई थी। अंग्रेज़ी सेना के सिपाहियों ने एक दूसरी ही कुमारी को आग में जलाया था। जोन इस प्रकार अँग्रेज़ों के हाथ से निकल कर सन् १४३६ में मेट्ज़ के क़िले में चली गई थी और वहाँ इसने लक्सम्बर्ग के सरदार के साथ विवाह भी कर लिया था।

इस ऐतिहासिक अन्वेषण के कारण यूरोप में खलबली का होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि इसी देवी जोन को युद्ध में मरा हुवा जान कर उसके विषय में सहस्त्रों गीत और कवितायें गाई जाती हैं, उस पर अनेक नाटक और उपन्यास लिखे जा चुके हैं, उसके नाम पर बड़े भारी साहित्य का निर्माण हो चुका है।

× × ×

सफल सम्पादक मि० स्कॉट

सुविख्यात दैनिक पत्र 'मेञ्चेस्टर गार्डियन, के सम्पादक श्री सी० पी० स्कॉट के त्यागपत्र के समाचार ने अख़बारनवीसों के मनों को ठीक उसी प्रकार विस्मयान्वित कर दिया है जिस प्रकार मिस्टर ग्लैडस्टन ने सन् १८६४ में अपने प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र देकर राजनीतिज्ञों के हृदयों को आश्चर्य चकित कर दिया था। सन् १८६४ में लोगों की यह धारणा बनी हुई थी कि मिस्टर ग्लैडस्टन के सिवाय अब कोई राजनीति के विषय में कुछ नहीं सोच सकता। उस समय की राजनीति में जो स्थान मि० ग्लैडस्टन का था वही स्थान आज की अख़बारी दुनियां में मि० स्कॉट का है। मि० ग्लैडस्टन ने राजनीति में एक क्रान्ति की और मि० स्कॉट ने संपादन कला (Journalism) में एक महान् परिवर्तन को देखा है।

आज पूरे ५७ वर्ष तक पूर्ण लगन और अध्यवसाय के साथ संपादन का काम करके ८३ वर्ष की अवस्था में मि० स्कॉट निवृत्तिनिवास स्वीकार करते हैं। तथापि अब भी 'मेञ्चेस्टर गार्डियन' एक प्रकार से मि० स्कॉट की छत्रछाया में ही रहेगा। जिस प्रकार एक दीपक अपने निर्वाण के समय आत्मार्पण द्वारा दूसरे प्रदीप को प्रज्वलित कर जाता है। उसी प्रकार मि० स्कॉट अब अपने सुपुत्र को उच्च पद पर बिठा रहे हैं, जिसने उनके नीचे रह कर अख़बारनवीसी का अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया है। मि० स्कॉट का जीवन बहुत साधनामय, तपस्वी और उत्तरदायित्व पूर्ण है।

एक बार की बात है कि मि० स्कॉट अपना कार्य पूर्ण करके बहुत सवेरे ही अपने घर को जा रहे थे। उस दिन उनके कार्य की

ड्यूटी रात्रि को थी । मि० स्काॅट शीघ्रता से अपनी साईकल चलाते हुए आगे को बढ़ रहे कि इतने में पुलिसमैन ने उन्हें अटका कर पूछा—"कहाँ काम करते हो"। मि० स्काॅट ने कहा "गार्डियन ऑफिस में"। पुलीसमैन ने तो उन्हें कोई कम्पोज़िटर ही मान लिया और फिर सहानुभूति प्रकट करने के लिए उनसे कहने लगा—"मुझे चिन्ता होती है कि इतनी वृद्धावस्था में तो तेरा मालिक तुझ पर रहम करेगा।"

उस दिन एक कम्पोज़िटर से प्रगीत होते हुए मि० स्काॅट ने आज ५७ वर्ष तक 'गार्डियन' का संपादन प्रतिकूल अवस्थाओं और संयोगों में करते हुए अपनी ज़िन्दगी उसी के लिये लगा दी है। आज ८३ वर्ष की उमर में अपना स्थान छोड़ते हुए लोगों का उन पर आश्चर्य करना स्वाभाविक ही है। बहुत से तो यह माने बैठे थे कि यह बूढ़ा अपनी मृत्यु पर्यन्त संपादक की कुरसी छोड़ने का नहीं। क्योंकि अब तक तो लोग उन को साईकल पर बैठ कर ऑफ़िस में जाते हुए देखा करते थे।

मि. स्काॅट ने सन् १८७२ में 'गार्डियन' का संपादकत्व अपने हाथ में लिया था। यह मि. स्काॅट की योग्यता थी कि उन्होंने मि० सी० एफ़० मान्टेग्यू और श्री. एल. टी. हौबहाउस जैसे प्रसिद्ध लेखकों को अपनी ओर आकर्षित किया। 'गर्डियन' की नीति 'लिबरल' होने पर भी मि० स्काॅट ने उचित अवसरों पर लिबरल पार्टी के कार्यों एवं विचारों की सदा शुद्ध दिल से टीका की है। भगवान करे 'गार्डियन' सदा ही इसी प्रकार सत्य का सिपाही बना रहे।

÷ ÷ ÷ ÷

वीर श्रेष्ठ भगतसिंह

बड़ी व्यवस्थापिका सभा में बम्ब फैंक कर स्वयमेव पुलिस को आत्मसमर्पण करने वाले तथा लाहौर की जेल में तीन तीन महीने की लम्बी अवधि पर्यन्त उपवास कर के अपनी शारीरिक विभूति को स्वाधीनता वेदी पर अर्पित कर देने वाले स्वाधीनता के पुजारी भगतसिंह की जीवनकथा के दो उज्वल पृष्ठ निम्न प्रकार हैं।

(१) "छुटपन में एकबार भगतसिंह अपने काका की गोद में बैठा हुआ था उसके काका किसी अंग्रेज़ के साथ बात चीत कर रहे थे। भगतसिंह कुछ देर तक उस साहब की ओर देखता रहा और फिर गोदी में से एक दम कूद कर सामने बैठे हुए साहब के टोप को उन के सिर पर से उठा कर अपनी गली में दूर भाग गया।

उस के काका ने पूछा—प्यारे भगत! "यह क्या किया?" बिना किसी संकोच के भगतसिंह ने जवाब दिया—"वन्दे मातरम्"—ये लोग भला हमारे देश में क्यों कर आए हैं?"

भगतसिंह के काका जिन के सामने यह घटना घटित हुई थी वे भी एक कट्टर विप्लववादी हैं, उन का शुभ नाम है अजीत सिंह। वे निर्वासित हैं और आज ब्राज़ील में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं!

(२) एक बार की बात है कि भगत सिंह के एक मित्र ने इस से पूछा—"तुम्हें सरकार पकड़ ले तो तुम्हें डर तो नहीं लगेगा न?"

"अहो, इस में डर की क्या बात है" कह कर भगत सिंह ने एक मोमबत्ती जलाई और उस पर अपना हाथ रख दिया। उस के कमीज़ की बाँह जलनी प्रारंभ हुई, परन्तु भगतसिंह का हाथ वहां से तनिक भी हटने न पाया और नाहीं मुख से एक छोटा सा शब्द तक निकला!!

भगतसिंह क्या है—मूर्तिमान् तप और निष्ठा। अपनी धुन के पक्के, इस वीर के चरणों में शतशः वन्दन!!!

———



१. हम खुशी क्यों मनायें ?

आज इस दीवाली के दिन में एक बार खूब गम्भीर हो कर विचार करने वाले व्यक्ति के मुंह पर हंसी और आंखों में आंसू आये बिना नहीं रह सकते। हम लोग ये खुशियां क्यों मना रहे हैं। वैयक्तिक अथवा परिवारिक दृष्टि से इस गये गुज़रे ज़माने में भी अपनी इच्छाओं और उद्देश्यों के अनुसार हमारे लिये सुख अथवा दुख के अवसर उपस्थित हो सकते हैं, परन्तु हमारी हतभाग्य जाति के लिये सामूहिक रूप से, आज कौन सा खुशी का अवसर आ उपस्थित हुवा है; यह सच-मुच एक समस्या है। आज जब कि भाई, भाई के खून का प्यासा हो रहा है; हम लोग गुलामी की बेड़ियों में जकड़े हुए हैं; इस प्रकार हर्षोत्सव मनाना क्या सङ्गत कहा जा सकता है ?

सुनते हैं—आज के दिन हमारे पुरखा अपने अनन्त वैभव की प्रदर्शनी किया करते थे; सुनते हैं—आज के दिन हमारे देश का एक सर्वप्रिय सम्राट् बहुत समय बाद अपनी प्रजा से दिल खोल कर मिला था। यह सब सत्य है। परन्तु आज इस घड़ी में उस अतीत को याद करने से क्या होगा ? भला कभी कोई दिवालिया अपने प्राचीन वैभव को याद कर के आठ आठ आंसू न गिरा कर खुश भी हुवा है।

तो फिर क्या हम लोग एक निर्जीव शव को ही सजा रहे हैं; एक खाली सन्दूक पर बड़े बड़े ताले जड़ कर उसे कुबेर का ख़ज़ाना बनाने का यत्न कर रहे हैं,—कुछ काग़ज़ के फूलों पर इतर डाल कर उन्हें सचमुच का प्राकृतिक सजीव फूल बनाने की इच्छा कर रहे हैं ?

—नहीं, इस सब का उद्देश्य किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न करने का नहीं है। हमारे आज के इस समारोह का उद्देश्य कुछ और ही है। हमारा आज का यह हास्य अपने को खुश करने के लिये नहीं है। आज हम लोग सचमुच रोने के लिये ही हंस रहे हैं; अगले वर्ष भर तक आधा पेट खाने के लिये ही उत्तम सहभोज कर रहे हैं। इन सब का एक अभिप्राय है।

मूर्ख संसार समझता है कि आज के दिन हम आर्यजाति के लोगों की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहता। दुनियां देखती है कि आज के दिन हम लोग दीये जलाते हैं, अपने घरों को सजाते हैं, अच्छा भोजन करते हैं, नये वस्त्र पहिनते हैं। संसार के लिये यह सब प्रसन्नता के चिन्ह हैं।

परन्तु यह सब प्रसन्नता के चिन्ह उन लोगों के लिये हैं जो सामान्य अवस्था में हैं। हम लोग आज असाधारण दशा में हैं इस लिये कभी कभी हमारे रोने का अभिप्राय हंसना होता है। और कभी कभी

हमारी हंसी रोने की अपेक्षा भी अधिक करुणाजनक होती है। आज हमारी स्थिति उस दिवालिये की सी है जो किसी विशेष अवसर पर स्वयं रोने के लिये उन बड़े बड़े सन्दूकों की प्रदर्शनी करता है—जिन में कि एक समय उस का अतुल वैभव रहा करता था। ठीक उसी दिवालिये की तरह हमारी आज की दीवाली का अभिप्राय भी कुछ और ही है। हम लोग वर्ष भर बचत कर के आज जो वस्त्र पहिनते हैं; वर्ष भर आधा पेट खा कर आज जो स्वादु पदार्थ खाते हैं,—उन सब का उद्देश्य भी केवल उथली खुशी मनाना ही नहीं है।

दुनियां भर में तेज़ मुकाबला हो रहा है। हम लोग एक समय इस मुकाबले में, इस बड़ी होड़ में, सब से आगे थे; परन्तु आज दुर्भाग्यवश हम लोग पिछड़ गये हैं। अतः इस पिछड़ी दशामें, जब कि हम में से ९० प्रतिशत् लोग अजीर्ण से नहीं, अपितु साधनों की कमी से पेट भर खाना नहीं पाते, जब कि हम में से एक बहुत बड़ी संख्या तपस्या के भाव से नहीं, परन्तु वस्त्रों की कमी के कारण सरदी गरमी सहती है—अगर हम लोग दीये जलाते हैं, नये वस्त्र पहिनते हैं, उत्तम भोजन करते हैं; तब इस का अभिप्राय खुशी मनाना नहीं अपितु अपने दिलों में उसी दिवालिये की तरह एक जलन पैदा करना होता है।

आज इन भड़कीले साधनों द्वारा हम लोग, उस दिन, जिस दिन कि हमारे यशस्वी पूर्वज लक्ष्मीमाता की पूजा किया करते थे, जिस दिन मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम अपने घर वापिस आये थे—अपने हृदयों में एक कभी न बुझने वाली जलन पैदा करने चले हैं। ईश्वर करे कि आज का दिन हम सोते हुवों के लिये एक ठोकर का काम करे; हम अनुभव करने लगें कि सच्ची दीपमाला मनाना एक गुलाम जाति का काम नहीं है। उस दीपमाला के दिन की ओर हम तेज़ी से बढ़ें जिस दिन, दीयों की पंक्तियां—सचमुच हमारे प्रसन्नता से प्रकाशित हो रहे हृदयों की वास्तविक प्रतिनिधि होंगी।

२. वायसराय की घोषणा

पिछले जून मास में, इङ्गलैण्ड जाने से कुछ ही दिनों पूर्व, लार्ड इरविन महोदय ने शिमला की चैम्सफोर्ड क्लब के समक्ष देश की वर्तमान परिस्थिति पर एक भाषण दिया था। यह भाषण राष्ट्रीय दृष्टि से बहुत ही निराशा पूर्ण, अनुदार और आक्षेप योग्य था। देश भर में इस भाषण ने असन्तोष की लहर उत्पन्न कर दी थी। भारतीय-लिबरल दल के प्रमुख और प्रशंसित दैनिक पत्र "लीडर" ने तो यहां तक लिख दिया था कि 'लार्ड इरविन से भारतवर्ष का किसी दृष्टि से भी कोई भला नहीं हो सकता। वह समस्याओं को सुलझाना नहीं जानते, उलझाना जानते हैं। वे शीघ्र ही कुछ मास का अवकाश लेकर अपनी जन्मभूमी में जा रहे हैं। वर्तमान परिस्थितियों में लार्ड इरविन अपना, साम्राज्य का और भारत-वर्ष का जो सब से बड़ा हित कर सकते हैं, वह यही है कि वे फिर इस अभागे देश में वापस आने का कष्ट न उठावें।'

परन्तु वायसराय महोदय जाकर भी वापस आगए। और आते ही उन्होंने सम्पूर्ण देश का ध्यान अपनी तरफ़ खींच लिया। किसी को मालूम नहीं था कि वह वहां क्या करने गए थे, और क्या कर के वापस आए हैं। मगर इस देश में वापस आते ही उन्होंने जो कुछ किया, उस से लोगों ने यही अनुमान किया कि यह भारत-सरकार का प्रमुख व्यक्ति सचमुच भारत का अग्रदूत बन कर ही इङ्गलैण्ड गया था। पुराने राष्ट्रीय नेताओं ने वायसराय की उदार-हृदयता के मुक्त कण्ठ से

गीत गाए, गरम से गरम नवयुवक नेता और लाहौर काँग्रेस का मनोनीत सभापति जवाहर भी थोड़ी देर के लिये स्तम्भित सा हो गया,-वायसराय को घर से लौट कर वापस न आने की सलाह देने वाला "लीडर" लार्ड इरविन को खुले हृदय से स्वागत करने लगा। आज हम भी मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं कि लार्ड इरविन चाहे और कुछ हों या न हों एक ऊंचे दर्जे के राजनितिज्ञ अवश्य है। पूरे ३३ बरसों तक निरन्तर जनता की भावनाओं को बड़ी उपेक्षा से ठुकरा कर फिर इच्छा होने पर १ सप्ताह के अन्दर ही अन्दर जादूगर के समान प्रजा के हृदय में उच्च स्थान प्राप्त कर लेना एक प्रथम श्रेणी के मंजे हुए राजनितिज्ञ का ही काम है।

कहते हैं, जब लार्ड इरविन महोदय विलायत गए थे, तब अनुदार दल के नेता भूतपूर्व प्रधान मन्त्री मि० बाल्डविन, भूतपूर्व भारतसचिव लार्ड बर्कनहैड, भूतपूर्व वायसराय लार्ड रीडिङ्ग आदि अनेक प्रभावशाली व्यक्तियों ने उन्हें भारतीय सुधार योजना में नई वृद्धि करने के बख़िलाफ़ खूब उकसाया था। लार्ड इरविन स्वयं अनुदार दल से सम्बन्ध रखते थे अतः इस बात की पूरी सम्भावना थी कि लार्ड इरविन उनकी रटाई हुई बातें ही इङ्गलैण्ड की वर्तमन सरकार से निवेदन कर देते।- इस पर उदारदल के नेता मि० लायड जार्ज भी इस सम्बन्ध में अपने जन्म के बैरी अनुदार लोगों का सगे बापकी तरह साथ दे रहे थे। फिर भी लार्ड इरविन न डिगे और न डिगे। वह भारत की परिस्थितियों को नाजुक समझते थे, वह जानते थे कि साइमन कमीशन पर देश का विश्वास नहीं और कमीशन के बहिष्कारक लोगों को अपने प्रयत्न में पूरी सफलता प्राप्त हुई है, वह अनुभव करते थे कि साइमन कमीशन की नियुक्ति द्वारा ब्रिटिश सरकार ने जो भूल की है उस का प्रायश्चित्त किया जाय; काँग्रेस ने जो एक वर्ष तक औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग को ही अपना ध्येय बना लिया है—उस की उपेक्षा करना भी वायसराय महाशय को नीत्तिमत्ता पूर्ण प्रतीत न होता था। इस कारण उन्हों ने भारत सचिव और प्रधानमन्त्री के समक्ष भारत वर्ष की सच्ची परिस्थितियां खोल कर रख दीं। आशावादी लोगों का कहना है कि वर्तमान भारत सचिव मि० बैन पहले ही से भारत के हिताकांक्षी हैं, अतः इन दोनों भारत सरकार के सर्वोच्च शासकों की सम्मिलित उदारता अतः बुद्धिमत्ता फलवती हुई; इस सम्पूर्ण समुद्रमन्थन का नतीजा निकला—"वायसराय की घोषणा।"

३घोषणा का अभिप्राय.

वायसराय की इस ऐतिहासिक घोषणा में दो बातों की सूचना दी गई थी, जिन्हों ने सम्पूर्ण राष्ट्रीय भारत को, कम से कम थोड़ी देर के लिये, चकित कर दिया। पहली बात भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने की प्रतिज्ञा के रूप में थी। वायसराय महोदय का कथन है कि 'बृटिश सरकार नेमुझे यह घोषणा करने का अधिकार दिया है कि भारत में बृटिश शासन का उद्देश्य भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दे देना है।' सन १६१७ में तत्कालीन भारत सचिव स्वर्गीय मांटेगू साहबने जो घोषणा की थी, उस में भारत को क्रमशः 'उत्तरदायित्वपूर्ण शासन' देने का वचन दिया गया था। सन १६२० में महात्मा गान्धी के असहयोग आन्दोलन का आरम्भ हुवा। लोग 'स्वराज्य' की माँग करने लगे। परिणाम यह हुवा कि जब राजा पञ्चम जार्ज के प्रतिनिधि बन कर ड्यूक ऑफ़ कैनाट महोदय भारत में आये, तब उन्होंने सम्राट का यह सन्देश सुनाया कि 'मेरा उद्देश्य भारत में क्रमशः

'स्वराज्य' की स्थापना करना है ।' परन्तु बात असल में वहीं की वहीं रही । भारत के नेताओं ने, खास कर उदार नेताओं ने देखा कि, "उत्तरदायित्व पूर्ण शासन" और "स्वराज्य" ये दोनों शब्द कुछ स्पष्ट नहीं हैं—इन से अनेक भाव निकाले जा सकते हैं। नरम नेता औपनिवेशिक स्वराज्य (Dominion Status) की मांग करने लगे। नेहरू कमिटी ने भी इसी औपनिवेशिक स्वराज्य को ही भारत का ध्येय बना दिया। कांग्रेस ने नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया। यहां तक कि महात्मा गान्धी जैसे चोटी के नेता भी इस वर्ष बृटिश सरकार से औपनिवेशिक स्वराज्य की घोषणा हो जाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं, उन्हें ३१ दिसम्बर १९२९ की रात के १२ बजे तक यह आशा रहेगी, कि न मालूम किस क्षण बृटेन भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य हो जाने की घोषणा कर दे! मौका बुरा नहीं था। वर्तमान भारतसचिव ने उसका उपयोग किया। फल यह हुवा कि 'स्वराज्य' शब्द को बदल कर 'औपनिवेशिक स्वराज्य' कर दिया गया।

परन्तु बात अब भी वहीं की वहीं है। 'उत्तरदायत्व पूर्ण शासन', 'स्वराज्य' और 'औपनिवेशिक स्वराज्य'-इन तीनों शब्दों के कोष में दिये अर्थों में तो सचमुच अन्तर हो सकता है, परन्तु बृटेन ने तीनों वार इन तीन भिन्न भिन्न शब्दों को एक ही अर्थ में प्रयुक्त किया है, इस में ज़रा भी सन्देह नहीं हो सकता। स्वयं प्रधान मन्त्री का कहना है कि भारत की जनता को १९१७ की घोषणा भूलने लगी थी अतः १९२९ में पुनः वही घोषणा, केवल शब्दों के भेद के साथ—भाव के भेद के साथ नहीं,—करने की आवश्यकता सरकारने अनुभव की है। इस घोषणा में कोई नई बात नहीं, यह किसी नई नीति की सूचक नहीं है।

मज़दूर दल को इङ्गलैण्ड की सरकार की बागडोर संभाले अभी बहुत समय नहीं हुआ। इस बीच में निस्सन्देह मज़दूर मन्त्रिमण्डल ने अपने देश की अनेक समस्याओं को बड़ी समझदारी के साथ हल किया है। मज़दूर मन्त्रिमण्डल कुछ 'करना' चाहता है, इस बात को उस ने धाक बैठा दी है। यहां तक कि उसने ईजिप्ट के साथ भी न्याय किया है। इन सब बातों को देख कर इङ्गलैण्ड के अनुदार लोग चौंक उठे हैं, ख़ास कर उन्होंने ईजिप्ट के निर्णय को तो बहुत ही अनिच्छा से सहन किया था। भारतवर्ष को बड़े बड़े सब्ज़ बाग़ दिखलाना बृटिश राजनीतिज्ञों की पुरानी राजनीतिक चाल रही है। अनुदार दल तथा लिबरल दल के नेता भी समय समय पर इसी चाल का आश्रय लेते रहे हैं। परन्तु आज जब मज़दूर सरकार ने यह चाल स्वीकार की, तब अनुदार और लिबरल दोनों चौंक उठे। उन्हें भय हुवा कि कहीं ये 'मज़दूर' सचमुच तो भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं देने लगे! अनुदार और लिबरल इन दोनों ने विस्मय से आँखें फाड़ कर और क्रोध से भौंवें चढ़ा कर मज़दूरमन्त्रिमण्डल से पूछा—'तुम जो कुछ कह रहे हो, उसे कहीं सचमुच 'मीन' तो नहीं करते!" भारतसचिव मि० बैन बेशक समझदार आदमी थे। उन्हों ने मामले को बहुत ढंग से टालने का प्रयत्न किया, वह न भारतीयों को नाराज़ करना चाहते थे और न इङ्गलैण्ड के अन्य राजनीतिज्ञों को। उन्हें अपने प्रयत्न में सफलता भी मिली। परन्तु प्रधानमन्त्री ने उनका बना बनाया खेल बिगाड़ दिया। उन्हों ने मि० बाल्डविन के एक पत्र के उत्तर में स्पष्टरूप से घोषित कर दिया कि 'वायसराय की घोषणा केवल १९१७ की राजकीय

घोषणा का स्पष्टीकरण मात्र ही है, वह किसी नई नीति की सूचक नहीं है।' इङ्गलैण्ड की पार्लियामेन्ट के वादविवाद से भी यह बात भली प्रकार स्पष्ट होगई है।

वायसराय की घोषणा में दूसरी महत्व पूर्ण बात थी राउण्ड-टेबल-कान्फ्रेन्स के सम्बन्ध में। यह ख्याल रखना चाहिये कि अब तक किसी भी अंग्रेज़ राजनीतिज्ञ ने इस कान्फ्रेन्स के लिए 'राउण्ड-टेबल-कान्फ्रेन्स' शब्द का इस्तेमाल नहीं किया, क्योंकि प्रायः 'राउण्ड-टेबल कान्फ्रेन्स' का अभिप्राय उस चीज़ से अधिक सम्माननीय होता है, जो चीज़ वायसराय महोदय की घोषणा में उद्घोषित की गई है। वायसराय महोदय का कहना है—"जब साइमन कमीशन और केन्द्रीय-समिति अपनी रिपोर्टों को पेश कर देंगी, और वे प्रकाशित हो जावेंगी; तथा जब सम्राट की सरकार भारत सरकार से सम्पूर्ण प्राप्तव्य मसाले के आधार पर इन रिपोर्टों पर विचार कर लेगी, तब देश के विभिन्न दलों; हितों और देसी रियासतों के भारत सरकार द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों को, परिस्थिति के अनुसार अलग अलग या इकट्ठा एक कान्फ्रेन्स के रूप में अंग्रेज़ी भारत और सम्पूर्ण भारत की समस्याओं पर विचार करने के लिये आमन्त्रित किया जायगा। सम्राट की सरकार की तब यह हार्दिक इच्छा रहेगी कि जो प्रस्ताव पार्लियामेण्ट के सन्मुख रक्खे जावें, उनसे अधिकतम बहुमत सहमत हो।"

वायसराय की घोषणा का यही पहलू था, जिसने भारतीय नेताओं को अत्यधिक आशापूर्ण बना दिया। हमारा मत है कि साइमन कमीशन की नियुक्ति जिस सिद्धान्त पर हुई थी, वह वर्तमान अँग्रेज़ी मन्त्री मण्डल की दृष्टि में अत्यधिक दोषपूर्ण था। यदि उन दिनों मैकडॉनल्ड प्रधानामात्य होते तो बृटेन से भारत के सम्बन्ध में वह 'भद्दी राजनीतिज्ञ भूल' कदापि न होती। इसी कारण, हमारा विश्वास है कि वर्तमान मन्त्रिमण्डल उस भद्दी भूल का थोड़ा बहुत प्रायश्चित अवश्य करना चाहता है। परन्तु यह प्रायश्चित बहुत ही उथला, शाब्दिक और निस्सार है। साइमन कमीशन जब अपनी रिपोर्ट पेश कर देगा, और उस पर भारत सरकार की राय भी ले ली जायगी, तब भारत के विभिन्न दलों तथा हितों को अलग अलग या एक साथ बुला कर सलाह मशविरा करने मात्र से भारत के शासन विधान के निर्माण में भारतीयों का हाथ नहीं हो जाता है। कान्फ्रेन्स महज़ उस रिपोर्ट पर थोड़ी बहुत रायज़नी या जो कुछ चाहे, करेगी; परन्तु इसे स्वयं कोई शासन विधान बनाने का अधिकार न होगा। फिर, इस नाचीज़ कान्फ्रेन्स के प्रतिनिधियों का निर्वाचन भी भारतसरकार स्वयं करेगी। यह स्पष्ट है कि इस कान्फ्रेन्स में सम्मिलित होना कांग्रेस का अपने मतव्यों से डिगना है। हमें तो विश्वास है कि साइमन कमीशन में यदि अधिकांश सदस्य भारतीय ही रक्खे जाते, तब भी कांग्रेस ने उस कमीशन का बायकाट ही करना था। क्योंकि काँग्रेस का सीधा ध्येय है कि भारत का शासन विधान बनाने की अन्तिम शक्ति भारतीय जनता के हाथों में ही होनी चाहिये। फिर, इस तरह महज़ सलाह मशविरे के लिये, एक मालूमी 'पार्टी' के तौर पर कांग्रेस इस कान्फ्रेन्स में क्यों जाने लगी।

इस तरह वास्तव में, वायसराय महोदय की घोषणा में कोई भी नई बात नहीं है। ध्येय की दृष्टि से वह १९१७ की घोषणा से एक इञ्च भी

इधर उधर हट कर नहीं है, और कान्फ्रेन्स की दृष्टि से वह भारत का नाम बदनाम करने वाली केन्द्रीय समिति से अधिक श्रेष्ठ नहीं है।

४. यूरोप के कुछ राजनीतिज्ञ.

अमेरिका के सुप्रसिद्ध पत्र, 'लिटरेरी डाइजस्ट' में श्री चैम्बरलेन, पोआंकारे और स्नाउडन के चरित्र का मनोरञ्जक वर्णन प्रकाशित हुआ है। 'ज्योति' के पाठकों की जानकारी के लिये उसे हम संक्षेप में यहां उद्धृत कर रहे हैं—

सर आस्टेन चैम्बरलेन

ब्रिटेन की बाल्डविन मिनिस्ट्री के परराष्ट्र-सचिव श्रीयुत् चैम्बरलेन हद्द से ज्यादह लम्बे तथा पतले हैं, पर यह लम्बा और पतलापन दूसरों पर रोब डालने वाला है। मुख पर अवर्णनीय गम्भीरता है, जो ब्रिटिश-राजनीति के जहाज को अथाह समुद्र से भी सफलता तथा शान्तिपूर्वक पार ले जाती है। वे टेढ़े मेढ़े प्रश्नों से घबराने वाले आसामी नहीं। स्थिर प्रकृति के हैं। अपनी बात पर अड़ने वाले हैं; पर साथ ही आकर्षण और नम्रता है। वे ब्रिटिश राजनितिज्ञों के मनसा एवं काया आदर्श हैं।

पोशाक बिलकुल साफ़—कहीं एक भी धब्बा नहीं। शान थोड़ी बहुत, पर अपनी सजधज की छोटी मोटी बातों पर भी सूक्ष्म दृष्टि रहती है। वेष, चाल ढाल कहीं बुरे तो नहीं—इस पर विशेष दृष्टि रहती है। मोनोकल(Monocle)—एक आंख की ऐनक—बहुत फबता है, यह कार्टून वालों के हास्य का पात्र बन चुका है, पर चैम्बरलेन का कोई कसूर नहीं, वे जन्म से ही "सब को एक आंख से देखते हैं"—एक आंख से काणे हैं—इस लिए यह उपक्रम करना पड़ता है।

राजनीति के वायुमण्डल में पले हैं। पिता अनुदार दल के प्रमुख व्यक्ति थे। दिन भर राजनीति की चर्चा छिड़ी रहती थी। राजनीति की घुट्टी ही पी; इस लिये सब ब्रिटिश राजनीतिज्ञों में सब से अधिक आप ही सुशिक्षित हैं।

पूरे आशावादी हैं। निराशा के समय भी आशा की ओर दृष्टि रहती है।

रेमण्ड पोआंकारे

गत महायुद्ध के समय फ्रांस के राष्ट्रपति तथा अनेक बार के प्रधानमंत्री पोआंकारे विचित्र जीव हैं। बहुत छोटे, पर चौड़े और फुर्तीले हैं। सिर बड़ा है, पर तेजी से हिलता है। बड़े और भारी सिर वाले आदमियों का आलस्य इन में दिखाई नहीं देता। क्रिया की साक्षात् प्रतिमा हैं। सिर के मध्यबिन्दु में खड़े हुए श्वेत बाल, श्वेत दाढ़ी और मूंछ का प्रत्येक बाल गति में दीखता है। इतने चुस्त कि एक साल—१९२७—में वह किया जो कोई न कर सका। पोआंकारे गति का देवता है। जल्दी से हाथ मिलाता है, जल्दी से बोलता है, कुछ ही मिनटों में कई मज़ेदार बातें कह जाता है। बहुत मिलनसार हैं, पर बात पचाने में सिद्धहस्त। जिसे न कहना चाहे, उसे लाख यत्न करने पर भी नहीं निकाला जा सकता।

फिलिप स्नौडन.

देश में ख्यातिप्राप्त ब्रिटिश सरकार के वर्तमान मज़दूर अर्थसचिव हैं। फिलिप स्नौडन नाटे क़द के हैं। चेहरा लम्बा है। बाइसिकल से गिरने के कारण टांग लंगड़ी हो चुकी है। भाषण करते समय मेज़ का सहारा लेना पड़ता है। आवाज़ बहुत ऊंची नहीं। भाषण में हास्य नहीं—मुस्क्यान होंठों तक ही ख़त्म हो जाती है, दिखाई नहीं

देती। पर प्रतिद्वन्द्वी सेलोहा लेने के लिए सदा तय्यार—कई बार तो उसे तंग करने में इतना मज़ा लेते हैं कि शायद बिल्ली भी चूहे को तंग करने में वह मज़ा न चख सके। खूब स्पष्टवादी हैं। खरा खोटा सुनाने में हिचकिचाहट नहीं। तानेबाज़ी में विशेष मज़ा आता है, भाषण चुभने वाला होता है, तीखापन स्पष्ट झलकता है।

स्नौडन मौका ताकने वाले नहीं, न ही कमज़ोर हैं और न ही सरलता से सुलहनामा करने वाले। वह लड़ता है और खूब लड़ता है, पर किसी "पद" के लिए नहीं मरता।

स्नौडन की प्रतिभा असाधारण है। इसी एक वस्तु के सहारे वे इतना ऊंचा चढ़ सके। इसी के बल से वह आदर्शवाद को व्यवहारवाद में परिणत कर देना चाहते हैं। इतना ऊंचा बढ़ कर भी बदले नहीं। वही पुरानी सादगी और लोगों के कष्टों को दूर करने की इच्छा सदा बनी रहती है।

५. संयुक्त-राज्य-यूरोप

समय समय पर यूरोप के राजनीतिज्ञ यूरोपियन संघ का स्वप्न लेते रहते हैं। वे लोग यूरोप को एक संघ (federation) के रूप में परिवर्त्तित कर देना चाहते हैं। उस दिन हेग और जिनेवा में फ्रांस के प्रधान मन्त्री श्रीयुत् ब्रियांद ने यही उड़ान ली थी। वे राष्ट्र-संघ की आगामी बैठक में संयुक्त-राज्य-यूरोप की स्कीम पेश करेंगे। ब्रियांद ने देखा कि मज़दूर मन्त्रिमण्डल ने ब्रिटिश राजनीति की दिशा में परिवर्तन कर दिया है, वह फ्रांस की मित्रता नहीं चाहता, उसका लक्ष्य संयुक्त-राज्य-अमेरिका की ओर है। राम्ज़े मैकडानल्ड ने अमेरिका से निश्शस्त्रीकरण सम्बन्ध में बातचीत शुरु की है, फ्रांस को पूछा भी नहीं। इस नवीन नीति का सब से अधिक प्रदर्शन उस दिन हुआ जब हेग में ब्रिटिश अर्थसचिव श्री स्नौडन ने सीधे शब्दों में यूरोपियन राष्ट्रों को चुनौती दे दी। फ्रांस चाहता है कि वह ब्रिटिश राजनीति को 'उलटी' दिशा में जाने से रोके। वह उसकी मित्रता प्राप्त करना चाहता है; इस लिए इस दशा में उसने प्रयत्न प्रारम्भ किए हैं। दूसरा कारण यह है कि इस समय सम्पूर्ण संसार में अमेरिका का आर्थिक-साम्राज्य है। सर्वत्र डालर की प्रभुता है। राजनीतिक साम्राज्यवादी यूरोप भी अमेरिका के आर्थिक साम्राज्य से नहीं बचा। गतवर्ष यूरोप पर ब्रिटेन का १६० मिलयन डालर ऋण था पर उससे कहीं अधिक—६०० मि० डा०—ऋण यूरोप पर अमेरिका का था। यूरोप आर्थिक-साम्राज्य का अभिप्राय समझता है, वह दूसरों को दास बनाना चाहता है, पर स्वयं उसका फल भोगना नहीं चाहता। इस लिए ब्रियांद ने अमेरिका के प्रभुत्व को यूरोप से दूर करने के लिए यह प्रयत्न प्रारम्भ किया है।

यूरोप के राजनीतिज्ञ यूरोप की आर्थिक-अवस्था को देख कर इस स्कीम का स्वागत करने को तय्यार हैं। उस दिन राष्ट्र-संघ की बैठक में विभिन्न यूरोपीय राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने इस का स्वागत किया था। ये लोग अनुभव करते हैं कि यूरोप की आर्थिक स्थिति बहुत डांवांडोल है। एक देश में १२ लाख बेकार सरकार की कृपा पर जिन्दगी बसर कर रहे हैं। दूसरे देश में किसानों—जो कि मुश्किल से अपने श्रम का ६ % या ७ % प्राप्त करते हैं—को आवश्यकता पड़ने पर १२ से १५ प्रति शतक पर ऋण लेना पड़ता है। कृषि प्रधान देश—जो कि अपनी खेती की पैदावार से कहीं अधिक लाभ उठा सकते हैं—को बाधित होकर "राष्ट्रीय व्यवसायों" की सृष्टि करनी पड़ती

है। इस के अतिरिक्त यूरोप के छोटे २ देशों के बीच में संरक्षण करकी दीवार व्यवसाय और व्यापार का नाश कर रही है। इसी का परिणाम है कि आस्ट्रिया, जिसकी भौगोलिक स्थिति वीआना को यूरोप के उत्तरी और दक्षिणी, पूर्वी और पश्चिमी व्यापार का केन्द्र बना सकती है, जिसमें प्रथम श्रेणी के व्यवसायवेत्ता हैं, जहां बैंकों और व्यवसाय की विश्वसनीय मशीनरी है—गरीब पड़ा है। यदि यूरोप छोटे छोटे टुकड़ों में बटा न होता, यदि आयात और निर्यात पर भारी कर न होता, यदि सिक्कों की कीमत नियन्त्रित करने के लिए यूरोप का संयुक्त कोष होता तो क्या यह सम्भव था कि वीआना और उसके २० लाख निवासी भूखों मरते? इटाली को लीजिए; उसके पास कच्चा माल नहीं: यदि व्यापक सिद्धान्तों पर यूरोपियन संघ का संगठन होता तो क्या वह बिना कठिनता के अपनी आवश्यकता पूर्ण नहीं कर सकता? पूर्वी यूरोप में १४ करोड़ आदमी निवास करते हैं, वे लोग बहुत थोड़ा उत्पन्न करते हैं और बहुत ही थोड़े का उपयोग करते हैं। क्या संयुक्त-राज्य-यूरोप की स्थापना के बाद भी वहां बाज़ार न खुलेंगे। इस स्कीम से न केवल यूरोप की आर्थिक उन्नति होगी, पर इससे युद्धों का विनाश हो जायगा। जब सब यूरोपियन राष्ट्रों के हित एक दूसरे से पूरी तरह जुड़े होंगे तब क्या सम्भव है कि वे अपने पैरों पर स्वयं कुल्हाड़ा मारें। आर्थिक, व्यावसायिक और व्यापारिक सम्बन्ध सदा से युद्धों के विनाश में सहायक होते रहे हैं, क्या इस नवीन एवं दृढ़ संगठन से युद्धों का विनाश नहीं होगा? क्या निशस्त्रीकरण की समस्या नहीं सुलझेगी?

पर जहां इस प्रकार के आशावादी दीखते हैं, वहां वास्तविक परिस्थिति का ध्यान पूर्वक दिग्दर्शन करने वालों—निराशावादियों—की भी कमी नहीं। वे अनुभव करते हैं कि यदि संयुक्त-राज्य-यूरोप की स्थापना की जायगी तो यूरोप में फ्रांस का प्रभुत्व हो जायगा। ब्रिटेन के स्वार्थ नॉन यूरोपियन देशों में हैं, इस लिए यूरोप में पूर्णतया फ्रांस का प्रभुत्व होगा। जर्मनी और इटली इस प्रभुत्व को कब सह सकते हैं? जर्मन और इटालियन पत्रों ने इस स्कीम की कड़ी आलोचना की है। उनको फ्रांस पर विश्वास नहीं। यदि यूरोप की शान्ति में कोई सब से बड़ा विघ्न है तो वह है फ्रांस। वह "सैनिक-सन्धियां" करता है। रूस और जर्मनी के विरुद्ध गुट्ट तय्यार करता है। भूमध्यसागर में इटली की सीमा के पास जहाज़ी क़िलेबन्दी कर रहा है। वह जर्मनी का रक्त चूसना चाहता है। सीरिया और दमास्कस में गोलों की वर्षा करता है। समय समय पर बालकों तथा स्त्रियों को भी सेना में भर्ती करने की तदबीरें सोचता रहता है। क्या इस प्रकार का स्वार्थी फ्रांस कभी सद्भावनाओं से प्रेरित हुआ हुआ संयुक्त-राज्य-यूरोप की स्कीम को पेश कर सकता है? जब तक यूरोपियन राष्ट्रों में यह पारस्परिक अविश्वास और ईर्ष्या का भाव रहेगा, तब तक इस संघ की कल्पना करना सर्वथा असम्भव है। यूरोप के पीछे सदियों का खूनी इतिहास है, वह इस एकता में बाधक है, पर हमारा पूर्ण विश्वास है कि नवीन राजनीतिक तथा आर्थिक धाराएं प्रबल वेग से सदियों के इतिहास को पलट सकती हैं—पर वह कब होगा, यह कहा नहीं जा सकता।

———

—:o:—

* ओ३म् *

गुरुकुल कांगड़ी के पुस्तक भण्डार

की

अमूल्य पुस्तकें

१०) रु० से अधिक की पुस्तकें खरीदने वाले को १५% और २०) से अधिक की पुस्तकें खरीदने वाले को २०% कमीशन दिया जावेगा।

१. भारतवर्ष का इतिहास १म भाग	१॥)	श्री आचार्य्य रामदेव जी कृत
२. भारतवर्ष का इतिहास २य ”	१॥।)	”
३. पुराणमत पर्य्यालोचन	३)	”
४. सन्ध्या का अनुष्ठान	॥)	श्री पं० सातवलेकर जी कृत
५. यजुर्वेद अध्याय ३०	१) ”	”
६. ” ” ३२	॥) ”	”
७. ” ” ३६	॥) ”	”
८. ब्रह्मचर्य	१।) ”	”
९. बालकों की धर्मशिक्षा १म भाग	‐) ”	”
१०. ” ” २य ”	=) ”	”
११. अष्टाध्यायी वृत्ति	१॥)	श्री पं० गंगादत्त जी (स्वा० शुद्धबोध तीर्थ जी
१२. भौतिकी		बालफोर स्टूअर्ट की सुप्रसिद्ध अंग्रेजी फिजिक्स के आधार पर म० गोवर्धन जी बी० ए० द्वारा लिखित।
१३. रसायन	॥।)	विलियम्स एस. फर्नो की प्रसिद्ध अंग्रेजी कैमिस्ट्री का आर्य्य भाषा में म० गोवर्धन जी बी० ए० द्वारा [illegible]

निम्न लिखित पुस्तकें तिहाई मूल्य पर दी जावेंगी

१. रुद्र देवता का परिचय	॥)	श्री पं० सातवलेकर जी
२. ऋग्वेद में रुद्र देवता	॥=)	,, ,,
३. वैदिक प्राण विद्या	१)	,, ,,
४. वेद का स्वयंशिक्षक १ म भाग	१॥)	,, ,,
५. वेद का स्वयं शिक्षक २ य भाग	१॥)	,, ,,
६. केनोपनिषद्	१)	,, ,,
७. शतपथ बोधामृत	।)	,, ,,
८. वैदिक सभ्यता	≡)	,, ,,
९. वेद में चर्खा	॥)	,, ,,
१०. वैदिक सर्प विद्या	॥)	,, ,,
११. ३३ देवता विचार	=)	,, ,,
१२. वैदिक उपदेश माला	॥)	,, ,,
१३. संक्षिप्त वैदिक मनुस्मृति	॥)	स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज
१४. संस्कृत प्रथम पुस्तक	=)	श्री पं० भीमसेन जी शर्मा
१५. ,, साहित्य पाठावली २ य भाग	=)	
१६. संशोधित साहित्य दर्पण	२)	
१७. कविता मंजरी	।)	गुरुकुल के ब्रह्मचारियों द्वारा संग्रहीत
१८. कविता कुसमाञ्जली १ म भाग	-।)	,, ,,
१९. कविता कुसमाञ्जली २ य भाग	।-)	,, ,,

निम्न लिखित पुस्तकें चौथाई मूल्य पर दी जावेंगी

१.	आचार, अनाचार और छूत छात	≈)	स्वर्गीय श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी
२.	पारसी मत और वैदिक धर्म	≈)	" "
३.	ईसाई पक्षपात और आर्य्य समाज	≈)	" "
४.	मानव धर्म सार	≈)	" "
५.	मातृ भाषा का उद्धार	≈)	" "
६.	विस्तार पूर्वक संध्या विधि	≈)	" "
७.	पंच महायज्ञ विधि	≈)	" "
८.	आदिम सत्यार्थ प्रकाश	॥)	" "
६.	उत्तरा खण्ड की महिमा	॥)	" "
१०.	वैदिक ईश्वर वाद	≈)	पं० सातवलेकर जी
११.	अकाल से बचने के उपाय	॥)	बाबू कृष्णगोपाल जी श्रीवास्तव
१२.	मृतक श्राद्ध पर विचार	≈)॥	श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
१३.	स्वर्ण देश का उद्धार	॥≈)	" " "
१४.	वेद और आर्य्य समाज	≈)	श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी
१५.	स्वा० दयानन्द और उनकी तालीम (उर्दू)	॥≈)	म० राधाकृष्ण जी महता
१६.	राजस्थान की वीर रानियां	।≈)	पं शिवव्रतलाल जी
१७.	वेद और पशु यज्ञ	।)	जे. पी. चौधरी
१८.	राष्ट्रीय आन्दोलन	१॥)	म० प्रभुलालजी मीतल
१९.	भारत गीताञ्जली	।-)	श्री माधवजी शुक्ल
२०.	गल्पाञ्जली	॥।)	पं० शिवनारायण जी द्विवेदी

Ready ! Ready !! Ready !!!

The Second Volume of the

"Bharat Varash ka Itihas"

(In Arya Bhasha (History of India)

(By Professor Ram Deva ji B. A. M. R. A. S.

Governor Gurukula Kangri.)

It embodies original research as regards the Commerce and culture of ancient India with America, Africa, Egypt, China, Arabia and Mesopotomia and contains new information, about systems of Government, trade, civil service regulations and social conditions of the People of India in the pre- *Buddhist period.*

Highly spoken of by the press.

Readers of the true Indian History should order at once for a copy of both volumes.

Price 1st. vol 1-8-0 } Postage
2nd vol 1-12-0 } extra

In case of delay they shall be disappointed. Booksellers for commission may correspond with the

Manager
Pustak Bhandar.
Gurukula Kangri
DIST. BIJNOR U.P.

BHIM SENI

Makaradhwaja

The Panacea of the

Hindu Pharmacopaea

Makardhwaja is one of the most ancient and noted medicines of Hindu Pharmacopaea. It invigorates the Nervous System—specially the brain—over comes exhaustion and increases the capacity for both Mental and Physical labour. It is used with great success in a Variety of diseases; such as, indigestion, dyspepsia, sleeplessness, cough catarh, influenza, loss of memory, energy and appetite.

Price. Rs. 12/-/- Per Tola.

Chyavana Pras

The name of this celebrated preparation is due to the fact that the old and debiliated *Chyvn Rishi* regained his vigour by its aid. Chyavan Pras is a sovereign cure for all kinds of cough, cold, and catarh. In Bronchitis, Laryngitis and Pharyngitis Chyavan Pras is very valuable. Patients suffering from Pthisis or people with weak heart and lungs are highly benefited by its use.

Price Rs. 4/-/- Per seer.

Bhimseni Surma.

This Surma of Bhimseni Camphor is a powerful cure for catarrhal conjunctive or gastric in origin, it removes the painful symptoms minimising the chances of relapse. It prevents granulation in the conjunctive which the frequent attacks of opthalmia bring on. For inflammation and congestion of the eye and burning sensation due to bad weather it is equally helpful.

Bhimseni Surma gives tone to the optical nerves and the retina and thereby helps correct and happy vision. *Price Rs. 3/-/- Per Tola.*

Detailed Catalogue sent free--Obtainable from :--

Manager :—

AYURVEDIC PHARMACY,

GURUKULA KANGRI,

SAHARANPUR.

सचित्र

सुचारु सूची शिल्प पत्रावली

सलाई और क्रोशियेकी दस्तकारी सिखलाने की सस्ती और अनूठी विधि

इस प्रकार के पत्र इंग्लैण्ड अमरीका इत्यादि देशों में तो बहुत दिनों से निकलते हैं। परन्तु भारत में हिन्दी भाषा द्वारा प्रत्येक वस्तु के लिये अलग अलग कार्ड की रीति से इस कार्य को सिखलाने का यह पहला ही प्रयत्न है। जो कार्य पसन्द हो उसी के अनुकूल दो तीन आने खर्च कर कार्ड खरीद लो और घर बैठे बिना किसी की खुशामद के बनालो। अब तक निम्न लिखित कार्ड (१४×७) प्रकाशित हो चुके हैं:—

पत्र नं०	मूल्य	पत्र नं०	मूल्य
१—दीर्घ सूची प्रारम्भिक प्रयोग ११ चित्र	।)	५—पुरुषों का लम्बा मौज़ा [सचित्र]	=)
२—बड़ी सादी बनियान [सचित्र]	≈)॥	६—पुरुषों का सरल दस्ताना [सचित्र]	=)॥
३—पुरुषों का कुर्ता [सचित्र]	=)॥	७—स्त्रियों का फूलदार कालर [सचित्र]	≡)
—बालिका की ऊनी जर्सी [दुरंगा]	≡।	पुरुषों का बुन्दकोदार मौज़ा [सचि]	=॥)

८ कार्डों का पूरा सैट मूल्य १।≈)॥ के स्थान में केवल १) रुपया।

कुछ सम्मतियाँ—

सरस्वती इलाहाबाद— यह पत्रावली नारी मात्र के लिये बड़ी उपयोगी है। छपाई सुन्दर भाषा सरल और मूल्य बहुत ही कम।

प्रताप लाहौर—कन्या पाठशालाओं और स्कूल की लड़कियों केलिये बड़े काम की चीज़ है।

गृहलक्ष्मी प्रयाग—हम इन कार्डों का हृदय से प्रचार चाहते हैं।

महारथी देहली—यह कार्ड सस्ते होने के कारण कन्याओं के लिये बड़े उपयोगी हैं।

मैनेजर "ज्योति"

कोठी नम्बर २१, २२ राजपुर रोडदेहरादून।

मङ्गाराम पाठक प्रिन्टर तथा पं० रमेशचन्द्र पब्लिशर के लिये गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में मुद्रित।

Regd. No. A. 1711

वर्ष १०] नवम्बर, दिसम्बर १९२९ [संख्या ७,८



वार्षिक मूल्य. ४॥) प्रति संख्या ॥)

सम्पादक—

विद्यावतीसेठ बी. ए., चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

विद्यार्थियों, स्त्रियों से ४) विदेश का मूल्य ६)

विषय सूची।



लेखकों से निवेदन

१. ज्योति में लेख, कविता आदि भेजने वाले महानुभावों को अपने लेख सुस्पष्ट अक्षरों कागज़ के एक ओर ही, हाशिया छोड़ कर लिखे हुए भेजने चाहियें।

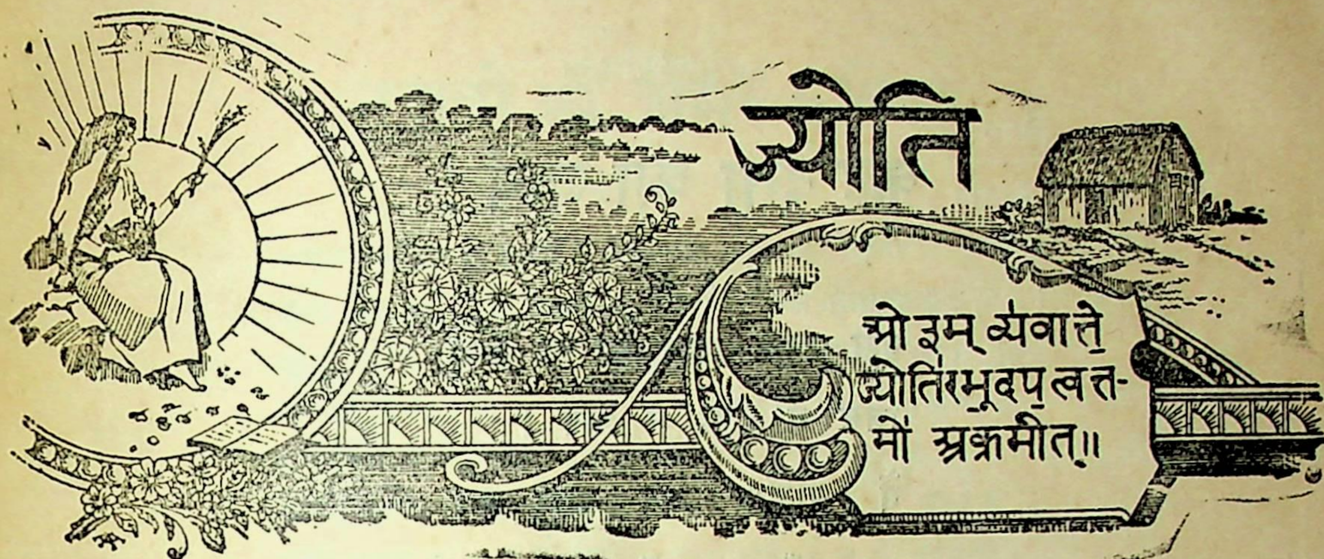
२. लेख बहुत लम्बे न होने चाहिएँ। 'ज्योति' पत्रिका के लगभग चार पृष्ठों के लायक ले हों तो अति उत्तम है।

३. लेखों को घटाने बढ़ाने तथा संशोधित करने का संपादक को पूर्ण अधिकार है।



प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार—
आचार्य्या कन्या गुरुकुल
कोठी नं० २१, राजपुर रोड
देहरादून.

सम्पादन सम्बन्धी—
सम्पादक ज्योति
गुरुकुल कांगड़
यू



विविध विषय विभूषित सुन्दर मासिक पत्रिका.

वर्ष १० | कार्तिक १९८६ * नवम्बर १९२९ | संख्या ७

स्वप्न से—

(१)

सन्मुख से, भावों से— उनके,
अन्तराल से आगे।
जागृत कर विस्मृतियों को,
उनसे भी पहले भागे॥

(२)

जागे हो ? सोने दो मुझ को,
मेरी मर्म-व्यथायें।—
उलझ २ कर मचल उठेंगी,
—इन में 'सूनी' आहें॥

(३)

निष्ठुर ! हिय को निज मीठे—
रागों से भर पाने दो।
अपनी मोहक-ज्वाला में,
इस को भी जल जाने दो॥

"अधीर"

कह देना आ जावें !

(१)

वही श्याम घन का पट ओढ़े
जिस में दीख न पावें ।
मैं रोऊँगा जब मयूर बन
तब आँसू बरसावें ॥ १ ॥

(२)

अन्धकार में व्यकुलता के
गीत जभी सुन पावें ।
अपना हृदय खोल बिजली
अन्तर की दिखलावें ॥ २ ॥

(३)

रुद्र रूप को देख डरूं तो
चन्द्र वदन ले आवें ।
झट नीला आँचल खिसका कर
हँस कर मुझे हँसावें ॥ ३ ॥

"प्रियहंस"

नक्षत्रों की अमर कविता

(श्री पं० चमूपति जी एम० ए०)

नक्षत्रों की लगी सभा में एक रात कवि आ पहुँचा।
कुछ ठिठका, कुछ झिझका, सहमा तनिक लजाया॥
इसी भाँति की थी वह टोली, समझे— है नक्षत्र नया।
आसन सरका दिया किसी ने, आंख बचा कवि बैठ गया॥
लगी कनखियां होने, मृदु संकेतों का संचार हुवा।
समझ गया कवि, सुनने को उत्सुक हैं, कुछ छेड़ो चर्चा॥
कहा व्योम बगिया के फूलो ! सखी सदा जिन की कविता।
बात पते की कही बूझ लो, है खपुष्प की क्या सत्ता॥
पृथिवी पर विज्ञान बसा है, बिजली का है राज हुवा।
प्रखर ताप के आघातों से कुम्हलाई कोमल कविता॥
पर्वत घेर लिये रेलों ने, जंगल फांक रहे कोला।
बचा धुएं से व्योम वायुयानों से भरता जाता॥
बनी जा रही हवा घोंसला खड़-खड़ गीत विमानों का।
कोकिल कू कू कहां करेगी ? चातक किसे पुकारेगा ?
स्थान कहां कर्कश कोलाहल में इन मृदु आलापों का ?
डेरा डंडा उठा रहे कविगण, भावुक कुनबा डूबा॥

× × × ×

मार कहकहा हंसे सितारे, तान उठी, कवि है भोला,
जब तक हैं नक्षत्र चमकते, निशिकुल दीप नहीं बुझता,
आगे पीछे शशितारों के घूम रही सन्ध्या ऊषा,
संभव नहीं बाल बांका हो चमत्कारिणी कविता का।
बस जायेंगे जब बन पर्वत, मनुज हृदय ऊजड़ होगा।
इस सूखे मरु-थल में हंसता इकला कवि का घर होगा॥
चकाचौंध बिजली की आंखों का बन जायेगी कोहरा।
नन्हा दीपक कवि कुटीर का ओझल पथ दर्शायेगा॥
दरिया सुखा दिये नहरों ने, रुका राग का जब सोता।
कवि की भावमयी आंखों से झरना लय का फूटेगा॥
उड़न खटोलों की खड़-खड़ से अल्प-व्योम भर जायेगा।
मानवमन की अनन्तता में हम चमकेंगे बन कविता॥

उन्माद

(१)

आतप के तापों से मेरा,
झुलस गया शैशव-सुकुमार।
ढुलक पड़ा हा ! हाथ न आया,
—पीड़ा का यह नव-व्यवहार ॥

(२)

नेही की निष्ठुर तानें सुन,
नाचा यौवन हो कर मौन।
भंग किया मतवाले ने जब,
आकर पूछा—"तुम हो कौन ?"

(३)

अनुकम्पा कांपी विह्वल-सी,
थिरक उठे प्राणों के दाम।
रोई करुणा की आशा जब,
पहुंच न पाई तेरे धाम।

(४)

भटके नयन व्यथा की डाह में,
खोया अपना सारा मान।
सिकुड़ गया अन्तर का गौरव,
—कर न सकी जब जीवन-दान ॥

(५)

हा-हा-कार अधीर निपट बन,
गया निकट को तज कर—दूर।
भूल गया मोही-ममता में,
किसी शून्य में कर के चूर ॥

—"पीड़ा"

उस पार के वन

अब कुञ्ज बीच अलसाती
आँखों से कहाँ निहारूँ
"गुच्छे ये इधर लदे हैं"
यों कह कर किसे पुकारूँ ?

वन की अंगूर-लता के
नीले फल किधर खिलारूँ
फल फूल जमा करने में
किससे अब जीतूँ हारूँ !!

* * *

कैसा प्रभात था उज्वल !
रवि रश्मि नाचती चञ्चल
वह जन्हु-सुता की कलकल
करती थी किसे न विह्वल !

प्राची ने स्वर्ण-सलिल से
तब क्यों कर स्नान किया था
फिर पहिन गुलाबी साड़ी
क्यों कुङ्कुम-तिलक दिया था ?

मोती से उज्वल दिन वे
चाँदी सी उजली रतियाँ
कलिका सा कोमल बचपन
कोयल सी प्यारी बतियाँ !!

शैशव के जादूगर ने
कैसे थे खेल खिलाये।
झरवाये मोती दृग से
अधरों पर फूल खिलाये।

क्या याद बन्धु ! वह बीती
बचपन की खेल कहानी
गंगा की मधुर किलोलें
लहरों में डुबकी खानी ?

वे वृष्टि काल के कौतुक !
जब सरिता उफन चली थी

जल-क्रीड़ा का रस लेने
तब टोली एक चली थी ?

फिर 'मुरली घाट' पहुँच कर
उतरे थे सरिता-तट पर
लहरों पर खूब तिराये
नन्हे चुन चुन कर प्रस्तर ।

अज्ञात श्रान्ति से थक कर
बैठे थे वहीं किनारे
सिकता के मृदुल घरौंदे
रच रच कर खूब खिलारे ।

मस्ती में भर हँस हँस कर
फिर बजा बजा कर ताली
भर जल की मृदु अञ्जलियाँ
आपस में खूब उछालीं ।

सरिता के नील सलिल में
फिर कूद पड़े पल भर में
लघु मीन मनोहर मानो
किल्लोल कर उठे सर में ।

मन में जो कहीं समाई
उस ओर लगेंगे जाकर
हो गया तैरना जारी
आपस में होड़ लगा कर ।

लहरों पर उछल उछल कर
छाती से जा टकराना
भँवरों में उथल पुथल कर
बढ़ बढ़ कर हाथ दिखाना ।

मस्ती में गोता भर कर
जल तल पर आन उचकना
फिर मार मार किलकारी
हँस हँस कर पीछे तकना ।

छिन में उस पार किनारे
जा पहुँचे दूर विजन में

बढ़ चले वन्य-फल चुनने
'आनन्द वाटिका' वन में।

अटवी के गह्वर उर में
सब लगे कूदने छिन में
फिर लगे विचरने, मानो-
मर्कट-शिशु मञ्जुविपिन में।

चल दिया कुञ्ज में कोई
अंगूर बनैले चुनने
बेरों की झाड़ी कोई
है लगा मस्त हो धुनने।

जिसने जो सन्मुख पाये
फल फली प्रसून बनैले
रख लिये सभी कुछ मुंह में
क्या खट्टे, मधुर, कसैले।

मीठी 'सराल' की कन्दें
पाईं जो कहीं किसी ने
है घात लग रही सब की
कैसे जा उस से छीनें।

इक टोली निरख रही है
सब बेलें बारी बारी
है इसी फ़िकर में व्याकुल
मिल पाये कन्द 'बिदारी'।

कर लिये किसी ने संचित
वनकुसुम रंगीले सुन्दर
ले पत्र अनोखे तरु के
रखता है उन में चुन कर।

देखा जो वहीं किसी ने
इक भीत चकित मृगछौना
झट मस्त हुए सब दौड़े
मनमाना देख खिलौना।

टुक नयन इधर भी फेरो
यह कौन अकेला श्यामल

एकान्त कुञ्ज के भीतर
बैठा है बालक निश्चल ?
ले एक हाथ में बंसी
मनमानी तान निराली
है छेड़ रहा, तक तक कर
नयनों से चहुं दिसि खाली ।
यह सुनो, कौन मृदु स्वर में
गाता है गान निराले—
"है सब से निराला तेरा—
यह रंग हिमालय वाले !" ।
वह देखो कई खिलाड़ी
हैं मोर पकड़ने भागे
हैरान हुआ-सा वह भी
कुछ मचल फुदकता आगे ।
"इन निकट कुञ्ज के पीछे
जाने क्या जीव खड़ा है !
उसके समीप ही भारी
पञ्जे का चिन्ह पड़ा है !"।
—यों बात एक की सुन कर
सब उधर बढ़े जो आगे,
कुछ शब्द दूर से पाकर
चौंके, फिर उल्टे भागे ।
यह बात हुई, क्रीड़ा में
जब सुधबुध सब ने तज दी
तब कहा पुकार किसी ने
"भोजन की घंटी बजली !" ।
उस पार पुकार सुनी जो
सब नदी तीर पर दौड़े
पर नहीं विपिन के अपने
उपहार किसी ने छोड़े
—टूटे अंगूर घनेरे
फल कन्द मूल लतिकायें
ले बड़ी साध से तैरे
लटका कर दायें बायें ।

यों शैशव खूब बहाया
उपवन में गंगा-जल में
पर अब तो स्नान बदा है
उसकी स्मृतियों के जल में।
वह तटवर्ती लघु वनिका
उस पार खिली फुलवारी
किस जादूगर ने रचकर
बिखरादी न्यारी न्यारी।
वे श्यामल कुञ्ज कहां हैं !
वे द्राक्षा-लता कहां हैं !
वे भोले सखा कहां हैं !
वे बाल्य विनोद कहां हैं !
तू स्वर्ण भूमि अति प्यारी
तुम विपिन मनोहर श्यामल
बिखराकर बालक अपने
क्यों दूर खड़े हो निश्चल ?
हे शैशव ! प्यारे उज्वल !
हे गंगवारि से निर्मल !
हे नील जलद से मञ्जुल !
तुम किधर हो गये ओझल !
क्या किसी जनम में प्यारे
मृगशावक से बनवासी
मिल पाओगे फिर मुझ से
हे बन्धु हिमाचल वासी ?
या स्वप्न तुम्हारे लेकर
इस नीलाम्बर के नीचे
मैं स्वप्न मयी दुनियां में
मिल जाऊंगा दृग मीचे !!*

'प्रियहंस'

---

*"उस पार के वन" का अभिप्राय गुरुकुल कांगड़ी के सन्मुख, कुलमाता के आंचल में "गंगा के उस पार" फैले हुए टेढ़े मेढ़े, श्यामल, सघन और निस्तब्ध बनों से है। इस सुन्दर कविता में गुरुकुल के विद्यार्थी-जीवन के एक पहलू का बहुत ही भावपूर्ण, सच्चा और जीता जागता चित्र अंकित किया गया है। —सम्पादक

विलियम कैसर के आत्म-संस्मरण

(अनु०— श्री मित्र)

विस्मार्क



बिस्मार्क भारी राजनीतिज्ञ था। इस ने प्रशिया और जर्मनी की सेवा की-जर्मन फैडरेशन से आस्ट्रिया का प्रभुत्व दूर कर प्रशिया के प्रभुत्व को स्थापित किया। फ्रांस से लोरेन और एलसस के प्रदेश को छीना और उत्तरी तथा दक्षिणी जर्मन रियासतों का एका कर प्रशिया के राजा के नेतृत्व में जर्मन साम्राज्य की स्थापना की। प्रतापी बिस्मार्क ने ये महान् कार्य विलियम प्रथम के शासन काल में किए थे, पर उस का मेरे साथ भी सम्बन्ध था।

मेरे पिता का नाम फ्रैडरिक तृतीय तथा पितामह का नाम विलियम द्वितीय था। विक्टोरिया मेरी दादी लगती थी। मैंने छोटी अवस्था में राजकार्य में हाथ डालना शुरू कर दिया ताकि मैं अपने आप अनुभव प्राप्त कर सकूं। बिस्मार्क की आज्ञा से मैंने पर राष्ट्र-विभाग में काम करना शुरु किया। पर राष्ट्र-विभाग का अध्यक्ष प्रिंस बिस्मार्क का पुत्र काउएट हर्बर्ट बिस्मार्क था। मेरा एक अलग कमरा था, उस में आस्ट्रिया के साथ जर्मनी का जो झगड़ा हुआ था उसका आदि से लेकर अन्त तक का इतिहास मेरे सामने रखा गया ताकि मैं उस का अध्ययन कर सकूं। बिस्मार्क और काउएट हर्बर्ट भी स्वयं मुझे शिक्षा दिया करते थे। परराष्ट्र विभाग में सब लोग काउएट हर्बर्ट से डरते थे। बिस्मार्क जो चाहता था वही होता था, काउएट हर्बर्ट उस में कुछ सलाह भी देता था। परराष्ट्र विभाग में जो भिन्न २ व्यक्ति थे, उन की कोई स्वतन्त्र सम्मति नहीं थी क्यों कि उन के सन्मुख वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति तो रखी ही नहीं जाती थी, इस लिए वे मौलिक विचार नहीं कर सकते थे। पर-राष्ट्र विभाग बिस्मार्क का टूल था, उस की बुद्धि से यह चक्र चलता था।

यद्यपि बिस्मार्क किसी से कुछ न पूछता था पर वह मुझे स्नेह से देखता था, इस से बहुत से विषयों में मेरी भी सलाह ली जाने लगी। पर बिस्मार्क को कोई भी अपने हठ से टाल नहीं सकता था।

मेरे पिता तथा दादा मुझे से नाराज़ रहते थे। वे समझते थे कि मैं बिस्मार्क की मण्डली में जा रहा हूँ। इस लिए मुझे बहुत तकलीफ़ों का सामना करना पड़ा। इंग्लैण्ड से भी कई व्यक्ति आए हुए थे, वे भी बिस्मार्क के विरोधी थे, अतः मेरे विरुद्ध मेरे पिता तथा दादा से शिकायत करते थे। यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि इंग्लैण्ड और जर्मनी के राजवंश में वैवाहिक सम्बन्ध था।

पर-राष्ट्र विभाग में काम करते समय मुझे दो बार रूस जाने का अवसर मिला। बर्लिन और स्टिफ़ैनो की सन्धि के कारण रूस और जर्मनी के सम्बन्ध बहुत ढीले पड़ गए थे—उन को फिर से पुष्ट करना इस यात्रा का उद्देश्य था। जिस समय ज़ार निकोलस ii गद्दी पर बैठा, उस समय मैं पहली वार गया। दूसरा अवसर १८८६ में हुआ। इस समय रूस पर अलैक्जैण्डर ii राज्य कर रहा था। जैस्टीन में आस्ट्रिया और जर्मनी में बातचीत हुई। इस में मैं भी उपस्थित था। इस बात चीत के

निर्णय को सुनाने और भूमध्यसागर तथा टर्की के सम्बन्ध की नीति को स्थिर रखने के लिए मैं रूस के ज़ार से मिला। बिस्मार्क ने मुझे स्टिफैनो और बाल्कन की संन्धि के विरुद्ध रूस को डार्डेनल्स और कॉन्स्टैंटीनोपल दिलाने की प्रतिज्ञा कर अपने पक्ष में करने को कहा था। साथ ही टर्की को भी किसी तरह समझौते के लिए विवश करने का प्रयत्न करना था। ज़ार ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि जब उस की इच्छा होगी वह डार्डेनल्स और कांस्टैंटीनोपल ले लेगा, उसे बिस्मार्क की सहायता की ज़रूरत नहीं। इस प्रकार मेरा उद्देश्य विफल हो गया क्योंकि रूस अब जर्मनी की सहायता नहीं चाहता था। इस समय रूस में युद्ध की तय्यारियां हो रही थीं। स्टिफैनो में जिन रूसी सैनिकों का घात हुआ था, उस का बदला लेने का प्रयत्न किया जाने लगा। रूस जर्मनी से असन्तुष्ट था। फ्रांस ने आग में घी का काम किया, उसने विरोध भाव को और भी अधिक बढ़ाया। महायुद्ध की यह नींव रखी जा रही थी। इस यात्रा में मैंने देखा कि सब आफिसर जर्मनी की ओर से उदासीन हैं। कुछ पुराने कर्मचारी विद्यमान थे, उन में से एक ने कहा कि बिस्मार्क की नीति ही का यह परिणाम है कि अब रूस और जर्मनी के ये भाव हैं। रूस ने टर्की के विरुद्ध लड़ाई की थी। उस का उद्देश्य कांस्टैंटीनोपल, डार्डेनल्स, और बाल्कन रियासतों में रहने वाले इसाईयों की संरक्षकता तथा कुछ प्रदेशों को स्वाधीन करना था। उस का उद्देश्य बर्लिन की सन्धि—जिस सभामें बिस्मार्क सभापति था—में नष्ट कर दिया गया। वास्तव में बिस्मार्क का रूस की सहायता न करने का उद्देश्य यह था कि युद्ध न हो। यदि रूस कोंस्टैंटीनोपल ले लेता तो इंगलैण्ड उस से लड़ पड़ता। पर जो कुछ हो चुका था उस का क्या किया जाय। बिस्मार्क के प्रयत्न असफल हुए। जिस समय मैं सम्राट् बना और मैं ने १८९० में ज़ार को सूचना दी कि बिस्मार्क पद-च्युत कर दिया गया है तो ज़ार ने लिखा था कि 'प्रिंस चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, अखिर तुम्हारा नौकर ही था, यदि तुम्हारा उस से मत भेद था तो तुमने उसे क्यों नहीं पदच्युत कर दिया। अच्छा, आगे से हमारे सम्बन्ध और अच्छे रहेंगे।" इस पत्र से जर्मनी को रूस का डर जाता रहा। पर अलेक्ज़ैण्डर के बाद यह स्थिति न थी। सम्राट् बनने के बाद भी मैंने रूस की यात्रा की थी। क्योंकि दादा की हिदायत थी कि मैं रूस के साथ बिगाड़ न करूं।

विलियम i के बाद मेरे पिता फ्रैडरिक iii राजगद्दी पर बैठे। यह रोगी रहते थे। अंग्रेज़ डाक्टरों ने इन्हें घेर रखा था। मैं अपने पिता से मिलना तो क्या, चिट्ठी पत्री से भी बात चीत नहीं कर सकता था। मुझे डाक्टरों से पता लगा कि पिता जी नहीं बचेंगे, इस लिए मैंने सब विभागों में पूर्ण देख रेख शुरू कर दी। ९९ दिन के बाद मैं जर्मनी का सम्राट् बना।

सम्राट् बनने के बाद मैंने सरकारी कर्मचारियों तथा सैनिक विभाग में बहुत परिवर्तन किया। विश्वस्त आदमी पदों पर नियुक्त किए गए।

अब भी बिस्मार्क ही मेरा चांसलर था। पर हम दोनों में निभ न सकी। हम में परस्पर मतभेद था। बिस्मार्क बूढ़ा था, पुराना खुर्राट था, इस लिए वह अपने सामने किसी की चलने न देता था; पर मुझे जर्मनी की आवश्यकताओं का अनुभव हो चुका था इस लिए मैं अन्धा नहीं था? मैं बिस्मार्क की अपेक्षा कहीं अधिक उदार था। हम दोनों की नीति में निम्न भेद थे—

(i) औपनिवेशिक नीति— विस्मार्क की दृष्टि में उपनिवेशों की सत्ता Political Barter के लिए थी। वह बढ़ती हुई आबादी के उन प्रदेशों में बसाने तथा कच्चा माल प्राप्त करने और उन की खपत करने का काम उन से नहीं लेना चाहता था। पर इस समय जर्मनी को उपनिवेशों की बहुत आवश्यकता थी।

(ii) नौ विभाग—वह जर्मनी के नौ विभाग को उन्नति देना आवश्यक न समझता था। उसे अपनी स्थल शक्ति पर भरोसा था। उपनिवेशों को जर्मन पूंजीपतियों और व्यापारियों ने उन्नत किया था। वे उस की रक्षा चाहते थे। इस के लिए नौसेना की आवश्यकता थी, पर विस्मार्क तो स्थलसेना को सब कुछ समझता था। जब लोग बन्दरगाहों पर ध्यान देने और नौ सेना निर्माण के लिए कहते तो वह इसकी उपेक्षा कर देता था। जर्मनी की रक्षा के लिए यह अत्यन्त आवश्यक था कि वह हैलीगोलैण्ड—जो अंगरेजों के आधीन था—को अपने अधिकार में रखे, इस की प्राप्ति के लिए नौ सेना की आवश्यकता थी।

Continental European diplomacy :— विस्मार्क का ध्यान यूरोप के महाद्वीप पर ही था—उस ने इंगलैण्ड की उपेक्षा सी कर रखी थी। इस के साथ ही लौर्ड सैलिस्बरी—इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री—के साथ उस का अच्छा सम्बन्ध था। विस्मार्क—रूस, आस्ट्रिया, रुमानिया और इटली के जर्मनी के साथ क्या सम्बन्ध हैं? तथा उनका पारस्पारिक सम्बन्ध कैसा है?—इसी में अपने दिमाग़ को लड़ाता था। वह ही एक ऐसा व्यक्ति था जो इन ५ राष्ट्रों की चालों का निरीक्षण कर सकता था। प्रजा और राजा—दोनों को उस की ज़रूरत थी, इस लिए विलियम i—यद्यपि वह विस्मार्क को पदच्युत करना चाहता था—उसे पदच्युत नहीं कर सका। यदि विस्मार्क औपनिवेशिक नीति का आश्रय लेता तो उसे यूरोप के बाहर, संसार की—विशेषतया इंग्लैण्ड की—राजनीति का परिज्ञान हो जाता। उस का दृष्टिकोण विस्तृत होता। पांच राष्ट्रों में से इंग्लैण्ड भी एक अवश्य था, पर उसे जितनी मुख्यता देनी चाहिए थी उतनी उसने नहीं दी। यह उसकी गलती थी। चूंकि विस्मार्क या परराष्ट्रविभाग का ध्यान सिर्फ़ यूरोप पर ही था—संसार की राजनीति पर नहीं, इस लिए विस्मार्क को उपनिवेश तथा नौ-सेना की महत्ता का ध्यान न हुआ। जर्मनों के लिए इंग्लिश राजनीति एक बन्द किताब के समान थी। क्योंकि इंग्लिश राजनीति का क्षेत्र यूरोप नहीं, अपितु संसार था। विस्मार्क कहता था कि उस की नीति का मुख्य उद्देश्य रूस और ब्रिटेन में सन्धि न होने देना है। मैंने उससे कहा कि तुम रूस को डार्डेनल्स और कांस्टैण्टीनोपल दे दो, इंग्लैण्ड झट लड़ाई छेड़ देगा। साथ ही मैंने बर्लिन और सैनस्टिफैनो की सन्धि के कारण रूस और जर्मनी में जो खाई खुद गई थी, उस की ओर भी निर्देश किया। पर विस्मार्क कहने लगा कि एक मध्यस्थ की हैसियत से यह मेरा कर्त्तव्य था कि मैं सम्भावित युद्ध को रोकता। उसे गर्व था कि वह यूरोप को चला रहा है— "Now I am driving Europe four-in-hand." पर उसी समय रूस और फ्रांस जर्मनी के विरुद्ध संधि कर रहे थे। विस्मार्क भ्रम में था।

जर्मनी को, व्यापारिक-उन्नति करने के लिए नौसेना की आवश्यकता थी। हैलीगोलैण्ड को अंग्रेज़ों के पंजे से छुड़ा कर अपने हाथ में करना था। इस समय उपनिवेशों की आवश्यकता थी। यदि हैलीगोलैण्ड को जर्मनी में न मिलाया और नौसेना न बनाई तो जर्मनी की

अपने व्यापार के लिए इंग्लैण्ड का मुंह जोहना पड़ता, बिना अंगरेज़ों की सम्मति के जर्मनी कुछ नहीं कर सकता, इस कारण मैं नौसेना के पक्ष में था।

जब मैं सम्राट् बना, तब मैंने भिन्न भिन्न विभागों के मन्त्रियों को आज्ञा दे दी कि वे अपनी स्वतन्त्र सम्मति के अनुसार कार्य करें। पर जब तक बिस्मार्क चान्सलर था यह होना असम्भव था। वह सब मामलों में अपनी सम्मति के अनुसार कार्य चाहता था। इस लिए मिनिस्ट्री बिस्मार्क की टूल थी और उस की इच्छा के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकती थी। यह स्वाभाविक भी था क्यों कि बिस्मार्क की अपार महत्ता थी—उसने जर्मनी में से आस्ट्रिया को अलग किया, लौरेन और एलसस को जीता, जर्मनी को एक किया। इतने बड़े प्रभावशली आदमी के रहते हुए मिनिस्टर स्वतन्त्र आचरण नहीं कर सकते थे। मुझे खलने लगा कि मिनिस्ट्री मेरी नहीं, पर बिस्मार्क की हैं, मिनिस्टर इसी के कर्मचारी हैं। एक बार की बात है कि बिस्मार्क ने साम्यवादियों का दमन करने के लिए एक कानून बनाया। उस को पास करने के लिए मैं ने एक धारा के शब्दों को कुछ कोमल कर देना चाहा, पर बिस्मार्क ने इस परिवर्तन का विरोध किया। "क्राऊन काउन्सिल" बुलाई गई। बिस्मार्क ने मेरा ज़ोरदार विरोध किया। जब मन्त्रियों से अपनी सम्मति प्रकट करने के लिए कहा गया, तो उन्हें काठ मार गया; वे चुप रहे। सम्मति ली जाने पर सबने बिस्मार्क का पक्ष लिया और मेरा विरोध किया। मुझे इस से और भी चोट पहुँची। मेरे मन्त्रियों ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि वे बिस्मार्क का विरोध नहीं कर सकते।

(iv) १८७= में वेस्टफालिया में कोयले के मज़दूरों ने हड़ताल कर दी। उन की कई शिकायतें न्याय्य थीं। उन को सुलझाने तथा मज़दूरों के कष्टों को दूर करने के लिए स्टेट काउन्सिल बुलाई गई। इसमें श्रमजीवियों और पूंजी पतियों के भी प्रतिनिधि थे। श्रमसमस्या पर विचार करना था। मैंने सोचा कि इस सभा में जो निर्णय हो जायगा उस के अनुसार कानून बना दिए जाएंगे। बिस्मार्क ने इस का विरोध किया। उस ने व्यंग किए और वह प्रोटैस्ट करने के लिए बाहर निकल आया। मुझे तथा अन्य लोगों को इस पर बड़ा भारी आश्चर्य हुआ कि वह अपने निर्णयों को इतना अधिक सच्चा समझता है। पर कार्य समाप्त नहीं हुआ और यह निश्चय हुआ कि मजदूरों की रक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक परिषद् का भी आमन्त्रण किया गया। बिस्मार्क ने इस का भी विरोध किया। मैंने बिस्मार्क से कहा कि मैं अपने शासन के प्रारम्भिक वर्ष खून से रंगना नहीं चाहता। इस लिए मैं साम्यवादियों को शस्त्रों के बल से न दबाऊँगा। बिस्मार्क और मेरा झगड़ा इस बात में था कि क्या मज़दूरों की अवस्था सुधारनी चाहिए और क्या उस में स्टेट को भाग लेना चाहिए? बिस्मार्क समझता था कि यह अवस्था शस्त्रों की सहायता से सुधर सकती है। बिस्मार्क आन्दोलनों और विद्रोहों को हथियारों से दबाना चाहता था। पर मैंने मज़दूरों की महत्ता का अनुभव किया था। जो न्याय्य था उसे मजदूरों को देना अपना कर्तव्य समझता। इस लिए मैंने मज़दूरों के हित के कानून बनाए और उन की अवस्था में परिवर्तन किया। सब से पूर्व जर्मनी में मजदूरों की अवस्था की ओर ध्यान दिया गया।

इस के अलावा बर्लिन की कांग्रेस और शासन पद्धति में भी दोनों का झगड़ा था। टर्की के सम्बन्ध में मेरी नीति फ़ैडरिक दि ग्रेट की थी और बिस्मार्क की घृणामयी।

मुझे कंज़र्वेटिव पार्टी ने सहायता दी। वह मेरी भक्त थी। लिबरल का भी मैं विरोधी न था। कई चांसलर और मन्त्री लिबरल ही थे। हाँ, ultra-Socialism का मैं विरोधी था।

शासन के प्रारम्भिक समय में बिस्मार्क की तथा मेरी पीढ़ी के लोग राजकार्य में भाग ले रहे थे। मेरे पिता फ्रैडरिक की पीढ़ी के लोग निराश थे क्यों कि फ्रैडरिक मर चुका था। इस पीढ़ी के लोगों में उदार विचार के, व्यक्ति थे, पर वे मेरे भावों को नहीं जानते थे इस लिए वे मेरे विरोधी थे। उन्होंने पिता पर जो कृपा या सहायता करनी थी वह पुत्र पर न की और मातृभूमि को सहायता न दी।

(२)

कैप्रिवि

जिस समय मैं शासन करने लगा उस समय जनरल वौन कैप्रिवि प्रधान जल सेनापति था। उसने बहुत सेवा की थी, पर अब भी पुराने जहाज़ों के बदले नए जहाजों का निर्माण करना तथा टूटे फूटे सामान को बदलना एवं नए जहाज़ बनाने की आवश्यकता थी। कैप्रिवि पुराना आदमी था। बूढ़ों में नए विचारों का घुसेड़ना कठिन होता है। वह समझता था कि जर्मनी की रक्षा के लिए स्थल सेना को ही बढ़ाना चाहिए। यदि जल सेना की उन्नति के लिए धन खर्च किया जायगा तो स्थल सेना को हानि पहुँचेगी, उसे कम कर दिया जायगा। इस लिए वह नौसेना का विरोधी था। पर बात यह न थी। यह तो था ही नहीं कि सारा रुपया स्थल सेना में लगा देना है, जितनी उसकी आवश्यकता हो दे दिया जाय। युद्ध सचिव जितना उचित समझते लेलेते। इस के अतिरिक्त Secretaryship of State for the navy की आवश्यकता थी जो वार मिनिस्ट्री से पृथक् हो। इस के आधीन व्यापार और उपनिवेशों की रक्षा हो। कैप्रिवि इन परिवर्तनों का विरोधी था। उस ने अपना इस्तीफ़ा दे दिया। वह कहता था कि नौसेना की वृद्धि नहीं हो सकती क्यों कि आफ़िसर नहीं हैं। बिना अफ़सरों के बड़ी नौ-सेना बन नहीं सकती। दूसरे मैं उस से अधिक नौ विभाग के सम्बन्ध में जानता था, इस लिए वह अपने आधीनस्थ लोगों के साथ ठीक सम्बन्ध नहीं रख सकता था। मैंने उस का इस्तीफ़ा स्वीकार कर उसे स्थलसेनापति बना दिया और उस के स्थान पर एडमिरल काउण्ट मौन्ट को नियुक्त किया।

इसी समय बिस्मार्क ने इस्तीफ़ा दे दिया। उस के उत्तराधिकारी की समस्या खड़ी हुई। जो कोई उस का उत्तराधिकारी होता उसे खूब समालोचना सुननी पड़ती। वह बिस्मार्क के पक्षपातियों की आँखों का कांटा बनता। इस लिये आवश्यक था कि बिस्मार्क की पीढ़ी से सम्बन्ध रखने वाले किसी आदमी को चुना जाय जो युद्धों में काम कर चुका हो और जिसने बिस्मार्क के नीचे काम किया हो। कैप्रिवि इस पद पर नियुक्त हुआ और आशा की जाने लगी कि वह मुझे भली सलाह देगा।

इस समय रूस के साथ सन्धि करने का प्रश्न छिड़ा, पर कैप्रिवि ने आस्ट्रिया से विरोध करना उचित न समझा, इस लिए सन्धि सदा के लिए खतम हो गई।

कंज़र्वेटिव लोगों ने कैप्रिवि का विरोध किया। बिस्मार्क भी इस में शामिल हो गया। बिस्मार्क

के पक्षपाती पत्रों तथा बिस्मार्क के भाषणों, लेखों और उद्धरणों से मुझे तंग किया गया। यह विरोधभाव हैलिगोलैण्ड को जर्मनी में मिलाने के समय और भी बढ़ा। मैं कह चुका हूं कि हैलिगोलैण्ड अंगरेज़ों के हाथ में था। वह ब्रेमन और हैम्बर्ग के लिए सदा menance था। इस के साथ कोई नौसेना बनाना भी असम्भव था। इस लिए मैंने लार्ड सैलिस्बरी से जंजीबार और विटू—पूर्व अफ्रीका—के बदले हैलिगोलैण्ड ले लिया। मैंने पूर्ण रूप से खोज कर ली थी कि जब टांगा और दारेसलाम के बन्दरगाह उन्नत होजाएंगे तो इन की कोई महत्ता नहीं रहेगी। इस लिए इंगलैण्ड से यह बंटवारा किया गया और बिना खून बहाए काम चल गया। इस प्रकार नौ सेना-वृद्धि की प्रथम शर्त पूरी हुई। पर अब बिस्मार्कियन प्रेस ने शोर मचाया। यद्यपि कैप्रिवि ने बिस्मार्क की औपनिवेशिक नीति—Political barter—के ही अनुसार काम किया था; पर थी यह राजनीतिज्ञता। बिना इस के जर्मनी की नौ सेना वृद्धि और स्कगर रैक की विजय न होती।

इसी समय काउण्ट जेटिज के School law के कारण शोर मचा। लोगों ने काउण्ट को इस्तीफ़ा देने के लिए बाधित किया और कहा कि यदि काउण्ट इस्तीफ़ा देगा तो चांसलर भी दे। कैप्रिवि ने इस्तीफ़ा दे दिया।

(३)

होहैन्लो

इस समय फिर एक चांसलर की आवश्यकता पड़ी। मैंने सोचा कि यदि चांसलर सेनापति हो कर राजनीतिज्ञ भी हो, तो वह बिस्मार्क को चुप कर सकेगा। उस समय एलसल और लोरेन प्रान्त का गवर्नर होहैन्लो था। पहले यह वेरिया का मन्त्री था। इसने, फ्रांस के साथ प्रशिया का जो युद्ध हुआ था उसमें प्रशिया का साथ दिया। इसे ही चांसलर बनाया गया। यह सदा से राजभक्त था। बिस्मार्क इसे पसन्द करता था—अतः इसने वायु-मण्डल को काफ़ी शान्त रक्खा। यद्यपि इसकी आयु बड़ी थी फिर भी इसका मुझ से अच्छा सम्बन्ध था। वे लोग इसे चाचा बुलाते थे और वैसा ही व्यवहार करते हैं।

होहैन्लो के प्रारम्भिक काल में एक घटना हुई, जिससे फ्रान्स और रूस के सम्बन्धों पर प्रकाश पड़ता है। फ्रान्स ने अलजिअर्स से अपनी सेना लाकर दक्षिणी फ्रान्स में रख दी ताकि वह समय पड़ने पर इटली या एलसस के विरुद्ध काम आसके। मैंने ज़ार को इसकी सूचना दी और कहा कि अपने मित्र को समझाओ, नहीं तो मैं भी इसके विरोधी उपायों का आश्रय लूंगा। इस समय रशियन परराष्ट्र सचिव लौबनौफ़ था। वह फ्रान्स से यात्रा कर लौट रहा था। उससे मुलाकात हुई। उसने कहा कि फ्रान्स का वायुमण्डल शान्त है, कोई डर की बात नहीं। मैंने कहा कि "जर्मन कर्मचारी के शब्दकोष में 'डर' शब्द है ही नहीं। यदि फ्रांस और रूस युद्ध चाहते हैं तो मैं रोक नहीं सकता। दोनों देशों के कर्मचारियों की एक दूसरे देश में यात्रा, उत्सव, भाषण और अख़बार इस बात की सूचना देते हैं कि ये देश युद्ध के लिए तय्यार हैं। पर जर्मनी को दोनों से डर नहीं है, उसे अपना तथा अपनी सेना का भरोसा है।" इसके साथ ही मैंने लौबनौफ से एक रशियन ऑफ़िसर का किसी फ्रैञ्च को दिए उत्तर का उल्लेख किया— "क्या तुम जर्मनी से जीत जाओगे?" उत्तर मिला- "नहीं, हम पूर्णतया पीटे जावेंगे, पर हमारे यहां प्रजातन्त्र तो स्थापित होगा। स्लाव लोग राजभक्त नहीं हैं। वे प्रजातन्त्र चाहते हैं।" वह हका बका हो गया।

परराष्ट्रविभाग से सम्बन्ध रखने वाली ३ महत्वपूर्ण घटनाएं होहैन्लो की चांसलरशिप में हुईं—१. कैसरविल्हैल्म कैनाल; २. १८९७ में सिंग-टो को मिलाना; ३. —Kruger dispatch

प्रिंस होहैन्लो ने सिंग-टो को मिलाने का बहुत प्रयत्न किया। वह समझता था कि जर्मन जहाज़ों के ठहरने के लिए कोलस्टेशनों की आवश्यकता है। इसी समय व्यापारी लोग चीन तक व्यापार करना चाहते थे। इस लिए निश्चय किया गया कि चीन में एक बन्दरगाह ठेके पर ले लिया जाय। चीन का भी इसमें हिस्सा हो। और व्यापार की रक्षा के लिए कुछ जहाज़ भी रहें। शाण्टुङ्ग प्रदेश निश्चित किया गया। यह काउ चाउ की खाड़ी पर है।

जर्मनी ने अब यह देखा कि क्या किसी राष्ट्र के साथ कोई खटपट तो नहीं होगी। रूस से सलाह लेना आवश्यक था। रशियन-चाइनीज़-डिविज़न से पता लगा कि रूस के हित टक्कर नहीं खाते। एक बार रूस के जहाज़ इस खाड़ी में आए थे, पर यहां बर्फ़ जम जाती है, अतः यह प्रदेश उनके काम का नहीं। रशियन स्क्वैड्रन के ऑफ़िसर ने रूस सरकार को लिखा है कि यहां कुछ लाभ नहीं, अतः फिर कभी जहाज़ न भेजे। इसी समय रूस के परराष्ट्रसचिव काउण्ट मुरेवीफ़ से पता लगा कि वह स्थान रूस का है। उसमें सब से पहले रूस के जहाज़ पहुँचे हैं, इस लिए जर्मनी को वहां नहीं आना चाहिये। अब तो Right of first anchorage का नया सवाल खड़ा हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय समुद्री नियमों के ज्ञाता पेरे ने इसका खण्डन किया।

१८९७ में मैंने रूस की यात्रा की। ज़ार से मुलाकात की। उसने कहा कि हमारे हित तो टिन सीन तक ही हैं। हम तुम्हारे मार्ग में बाधक नहीं होना चाहते। इसके अतिरिक्त अंग्रेज़ों ने मोक्यो स्थान पर रूसियों के लिए विघ्न बाधाएं खड़ी कर दी हैं, इस लिए यदि चिहली की खाड़ी के दूसरे किनारे पर जर्मनी का आधिपत्य होगा तो वह हमारे लाभ के लिए ही होगा। अब मैंने मुरेवीफ़ से भेंट की और उसके सामने पेरे द्वारा Right of first anchorage के सिद्धान्त का खण्डन दिखाया और ज़ार की इच्छा को भी रखा। इस प्रकार मार्ग साफ़ होगया।

१८९७ की शरद् ऋतु में समाचार मिला कि शांटुंग में दो कैथोलिक पादरी मार दिए गए हैं। कैथोलिक जगत् भड़क उठा। उपनिवेश के पक्षपातियों को अवसर हाथ लग गया और काउचाउ को हस्तगत कर लिया गया। इसी समय लण्डन में मि० चैम्बरलेन ने जापानी राजदूत बैरन कैटो के सन्मुख एंग्लो जापानीज़ 'सन्धि की आवश्यकता बताई, जिससे पूर्व में रूस की बढ़ती को रोका जा सके।

लोगों को आश्चर्य होगा कि हमने इतने महत्वपूर्ण मामले में अंग्रेज़ों की सलाह क्यों न ली? पर बात ऐसी नहीं है। पहले हमने अंग्रेजों की सहायता से कुछ Coaling stations को ठेके पर लेने या ख़रीदने के लिए समझौता करना चाहा, पर असफल। इंग्लैण्ड समझता था कि जब मैंने साथ नहीं दिया तो दूसरे राष्ट्र क्यों देंगे पर रूस को सहायता से जर्मनीने अपना काम साध लिया।

उस समय इंग्लैण्ड के साथ न देने से हमें आश्चर्य हुआ था। एक घटना—जो उस समय मुझे ज्ञात भी न थी—से इस पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। १९१८ में हेग में "The problem of Japan" नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इसका लेखक था "Ex-diplomat from the Far East"

इसमें प्रोफ़ेसर अशर—जिससे अमेरिका का परराष्ट्र विभाग अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में सलाह लेता था—की पुस्तक से एक उद्धरण दिया गया है। प्रोफ़ेसर अशर की पुस्तक १९१३ में प्रकाशित हुई। इसमें लिखा है कि १८९७ की वसन्त ऋतु में अमेरिका, फ्रांस और इंग्लैण्ड में एक गुप्त सन्धि हुई, जिसका उद्देश्य यह था कि यदि जर्मनी या आस्ट्रिया या दोनों Pan-Germanism के लिए प्रयत्न करेंगे, तो अमेरिका ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस के पक्ष में लड़ेगा। इस प्रकार जर्मनी के विपरीत १८९७ में ही संघ बनना शुरू होगया था। इसके अनुसार स्पेनिश अधीन राज्य, मैक्सिको तथा मध्य अमेरिका पर शासन Opening up of China, Annexation of coaling stations आदि भी इसी के अन्तर्गत थे। इसी लिए इंग्लैण्ड ने जर्मनी को कोल स्टेशन देने का विरोध किया। १८९७ में जर्मनी को pan-germanism का स्वप्न भी नहीं आया था और न बड़े परिमाण में Naval programme प्रारम्भ हुआ था। पहले पहले सन् १८९८ से इस का प्रारम्भ होता है। महायुद्ध से १७ साल पहले शान्तिपूर्ण कालमें यह सन्धि की गई थी। इस सन्धि को "Gentlemen's Agreement" कहा जाता है। जब इन 'सभ्यपुरुषों' ने रूस और जापान को भी अपने पक्ष में कर लिया, तब जर्मनी पर आक्रमण कर दिया। अमेरिका का U-boat डूबने का तो बहाना मात्र था, वास्तव में वह अपने मित्र फ्रांस का ध्वंस नहीं देख सकता था।

जर्मनी को इन सब बातों का कुछ भी पता नहीं था क्योंकि उसका परराष्ट्र विभाग बहुत उन्नत न था। पहले तो बिस्मार्क और काउण्ट हर्बर्ट बिस्मार्क ही इस विभाग का संचालन करते थे। उनके नीचे जो लोग काम करते थे उन्हें सब अन्तर्राष्ट्रीय बातें नहीं बताई जाती थीं। इसके बाद भी जो चांसलर आए वे जल्दी जल्दी बदलते गए। मन्त्रिमण्डल भी बदलते रहे—चांसलर चाहे जिन साथियों को चुन ले। इस प्रकार राजनीति में नैरन्तर्य नहीं रह सकता था। इसके अलावा जर्मन लोग Diplomacy में विशेष भाग भी नहीं लेते।

अब हम सिंग-टो की ओर आते हैं। यहां जर्मन व्यापार और व्यवसाय उन्नत हो रहा था। चीनी भी सहायता करते थे। सिंगटो के चुंगी घर पर चीनी झण्डा फहराता था। पूर्व में यह छठे नम्बर का बन्दर हो गया। यह व्यापारिक उपनिवेश था। रूसियों और अंगरेज़ों की तरह यहां सैनिक तय्यारियां न थी। सिंगटो की उन्नति से जापान और ब्रिटेन चिढ़े। इस लिए युद्ध आरम्भ होने पर सिंगटो को अंगरेज़ों की आज्ञा से जापान ने अपने कब्ज़े में कर लिया—यद्यपि सिंगटो जर्मनी का नहीं अपितु चीन का बन्दरगाह था।

3—Kruger-dispatch—दक्षिणी अफ्रीका में बोआरों और अंगरेज़ों का युद्ध हुआ। बोअर लोग डच थे। इनका जर्मनों से जातीय सम्बन्ध था। इस लिए जर्मन लोग डचों की सहायता करना चाहते थे। पर विलियम ii जानता था कि इसका परिणाम क्या होगा? इंग्लैण्ड से शत्रुता करना उसने उचित न समझा। पर होहेन्लो ने कहा कि "तुम 'वैध सम्राट्' हो इस लिए तुम्हें अपने सलाहकारों तथा प्रजा की बात माननी चाहिए। लोग कहते हैं कि राजा आधा अंगरेज़ है, विक्टोरिया ने उस पर प्रभाव कर रक्खा है। उसे अंगरेज़ों के प्रभाव से मुक्त करना पड़ेगा। इस लिए तुम क्रूजर को आज्ञा दे दो कि वह डचों की सहायता करे।" अनिच्छा होते हुए भी मुझे आज्ञा देनी पड़ी। उसका इंग्लैण्ड में बहुत ज़ोर से विरोध हुआ।

१९०० में जब बोअर युद्ध ज़ोर शोर से चल रहा था उस समय फ्रांस और रूस का प्रस्ताव आया कि इंग्लैण्ड दूसरे कार्य में व्यग्र है अतः उसके समुद्री व्यापार को मार देना चाहिए। मैंने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। मैंने सोचा कि रूस और फ्रांस अब इंग्लैण्ड में इस प्रस्ताव को इस ढंग से रखेंगे कि मैंने यह प्रस्ताव इंग्लैण्ड के नाश के लिए रक्खा था। इस लिए इस प्रस्ताव की सूचना और अस्वीकृति विक्टोरिया और एडवर्ड के पास भेज दी। पीछे से मुझे विक्टोरिया से से पता लगा कि जैसा मैंने सोचा था उसी ढंग का प्रस्ताव इन देशों ने इंग्लैण्ड के पास भेजा था। विक्टोरिया का भ्रम मेरे तार से दूर हुआ। सेसिल रोड्स कैरो से केपटाऊन तक रैल बनाना चाहता था। बीच में जर्मन प्रदेश भी था। मैंने रैल बनाने की आज्ञा दे दी, पर दो शर्त थी—१— रैल टबोरा के रास्ते बनाई जाय—२—जर्मनी के प्रदेश में जो रैल बने उसमें जर्मनी से ही सामान लिया जाय। रोड्स प्रसन्न हो गया। इससे पहले बेल्जियन राजा लिओपोल्ड ने उसे मना कर दिया था। रोड्स ने मुझ से कहा कि तुम बग़दाद लाइन बनाओ—यह तुम्हारा वैसा ही अधिकार है जैसा हमारा कैरो से केप टाउन तक रैल बनाने का। पर यह काम न हो सका।

मैंने इंग्लैण्ड यात्रा भी की और सब भ्रम दूर हुए। १९०० में होहन्लो ने तंग आकर इस्तीफ़ा दे दिया।

(४)

बूलो

होहैन्लो के बाद काउण्ट बूलो जर्मनी का चान्सलर बना। यह परराष्ट्र मन्त्री था। यह परराष्ट्र नीति—विशेषतया इंग्लैण्ड की नीति से—जिस से अब अधिक पाला पड़ना था—से अभिज्ञ था। चतुर वक्ता और Ready debater था—होहैन्लो में दूसरा गुण नहीं था। बूलो के साथ मेरा बहुत पुराना सम्बन्ध था। इस के अलावा उसकी आयु मेरे से कुछ ही बड़ी थी। इस से पूर्व जो चान्सलर आए थे उन में से बहुत से मेरे दादा की आयु वाले थे। वह पहला जर्मनी का 'जवान चांसलर' था, इस लिए हम दोनों का काम सरल हो गया। वह सब—प्रोफ़ेसर, कर्मचारी, आर्टिस्ट—से वार्तालाप करता और अपने विचारों को समयानुकूल बनाता था। बूलो का पिता बिस्मार्क के साथ साथ काम करता था इस लिए बूलो की शिक्षा दीक्षा भी बिस्मार्क के विचारों के अनुसार हुई थी। पर यह अपनी स्वतन्त्र बुद्धि खो नहीं बैठा था। मैंने बूलो से कहा कि हमें अंगरेज़ों से सरल सम्बन्ध रखने चाहिएं। कूटनीति का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जहाँ उन्हें पता लगा कि हम चाल चल रहे हैं वहीं वे हमारा विश्वास छोड़ देंगे। लैटिन और स्लाव लोगों को ही चालाकियों से वश में किया जाता है। इस के साथ ही मैंने उसे हर बात होलस्टीन से सावधान किया। मुझे बिस्मार्क ने भी होलस्टीन से सावधान रहने का आदेश दिया था, वही मैंने बूलो को दिया। पर शुरु शुरु में यह होलस्टीन को छोड़ नहीं सकता था—उसने परराष्ट्र-विभाग में इतना प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था कि उस की सलाह के बिना कुछ होता ही न था। वह किसी उत्तरदायित्वपूर्ण पद को नहीं लेता था, पर सलाह दिया करता था। इस का परिणाम यह हुआ कि जो कार्य सिद्ध हो गये उनका तो कुछ नहीं, पर जो असफल हुए उनका दोष होलस्टीन पर न पड़कर कर्मचारियों पर पड़ता था। अतः होलस्टीन को निकाल दिया गया। इस ने अपने आपको

हरहार्डन को सौंप दिया कि वह इस से मेरे विरुद्ध सहायता ले।

१९०१ में विक्टोरिया मर गई और तब से इंग्लैएड और जर्मनी के सम्बन्धों का काल भी ख़त्म हुआ; मरने के बाद एक सहभोज हुआ था जिस में मैं भी बोला था। मेरे भाषण से बर्लिन रहने वाला ब्रिटिश राजदूत इतना खुश हुआ और वह कहने लगा कि इस सादे और सच्चे भाषण को छपवा देना चाहिए ताकि दोनों देशों के सम्बन्ध अच्छे हो सकें। मेरी ओर से कोई आपत्ति न थी। ब्रिटिश सरकार और एडवर्ड vii के हाथ में था कि यह भाषण छपवाया जाय या नहीं। पर वह जनता के सम्मुख न आया। इस से दोनों देशों का वायु मण्डल साफ़ हो जाता।

मुझे इस यात्रा से मालूम पड़ा कि इंगलैण्ड जर्मनी से सन्धि करना चाहता है। जर्मनी आने पर चैम्बरलेन का तार आया कि क्या जर्मनी हमारे साथ सन्धि करना चाहता है या नहीं। मैंने एकदम पूछा कि यह सन्धि किस के बर्ख़िलाफ़ की जा रही है? क्योंकि इस शान्ति के समय में जर्मनी से सन्धि करने का मतलब यही था कि उसकी सेना की सहायता ली जाय। इसलिए हमारा कर्तव्य था कि हम यह पूछ लें कि हमारी सेना किस पर आक्रमण करेगी। लण्डन से उत्तर आया कि रूस के बर्ख़िलाफ़। क्योंकि रूस भारत और कांस्टैण्टीनोपल के लिए विघ्न था। इस पर मैंने दोनों देशों की सन्धियों और राजवंशों के पारस्परिक सम्बन्धों की ओर इंग्लैएड का ध्यान खींचा। इस के साथ ही मैंने कहा कि "यदि रूस की सहायता के लिए फ्रांस दौड़ा आवे तो क्या होगा? यह शान्ति का अवसर है। इस समय रूस की सेना भी बहुत अधिक है। वह प्रशिया पर आक्रमण करेगी। इग्लैंएड अपनी जल सेना से जर्मनी की बहुत कम सहायता कर सकता है। दूसरी ओर से फ्रांस उसे पीस सकता है। इस प्रकार जर्मनी को ही घाटा है।" इस पर चेम्बरलेन ने कहा कि हम तो एक दृढ़ सन्धि चाहते हैं। पर हमें तो इस बात पर विश्वास नहीं था। एक मिनिस्ट्री ने जो कुछ मान लिया है, दूसरी मिनिस्ट्री उस के अनुसार चलने के लिए बाध्य नहीं थी। इस लिए पार्लियामैण्ट की स्वीकृति आवश्यक थी। वह स्वीकृति न हुई और सन्धि टूट गई।

अब जापान और इंग्लैएड में सन्धि हो गई। रूस-जापान युद्ध में रूस हारा। अब उसे पूर्व की ओर से ध्यान हटा कर पश्चिम—बाल्कन भारत और कांस्टैण्टीनोपल—में ध्यान लगाना पड़ा। इस प्रकार जापान तो कोरिया और चीन में हस्तक्षेप करने के लिए निर्विघ्न हो गया।

१९०५ में टैंजियर की यात्रा की। पहले वर्ष की तरह इस साल भी भूमध्यसागर की यात्रा का विचार था ताकि स्वास्थ्य अच्छा हो। पर बूलो ने कहा कि स्पेन का निमन्त्रण आया हुआ है। मैंने उसे स्वीकार किया। इस के बाद उस ने मोरक्को से टैंजियर जाने के लिए भी कहा। मेरी इच्छा नहीं थी। मुझे डर था कि इस से लाभ की अपेक्षा हानि होगी। फ्रांस और ब्रिटेन चिढ़ जांएगे। डैलके को युद्ध का मौका मिल जायगा। वह मोरक्को को युद्ध का बहाना बनाना चाहता था। पर मुझे जर्मन जनता और रीशटाग की सम्मति से बाधित होकर जाना पड़ा। जब लौट कर जिबराल्टर आया तभी इस यात्रा के अशुभ परिणाम दीखने लगे।

अङ्गरेजों ने पहले जैसा व्यवहार नहीं किया। पैरिस में क्रोध और वैमनस्य बढ़ा; डेल्के ने लोगों को युद्ध के लिए उभारा, पर युद्ध सचिव और नौसचिव ने कहा कि फ्रांस अभी युद्ध के लिए तय्यार नहीं है, इस लिए युद्ध न हुआ। डेल्के ने एक पत्रसम्पादक से बातचीत करते हुए कहा थां कि युद्ध के समय इङ्गलैण्ड फ्रांस का साथ देगा। १९०५ में पैरिस के मैटिन पत्र में छपा कि डेल्के ने मन्त्रि-परिषद् में कहा है कि युद्ध के समय इङ्गलैण्ड हौल्स्टीन में १००००० आदमी उतारेगा और विल्हैल्म-कैनाल को रोक देगा। डेल्के पदच्युत हो गया। इस में प्रिंस मोनाको का काफ़ी प्रभाव था। उसका कथन था कि डैल्के शान्ति विघातक है। डेल्के के बाद यवर प्रधान मन्त्री बना। उस के साथ सन्धि शुरु हुई और उसे मोरको में पूर्ण अधिकार दे दिए।

जर्मनी में कई पार्टियां थी। उनमें आपस में मत भेद था। उसको दूर करना था। लोगों को राजभक्त बनाना था। कंजर्वेटिव राजभक्त थे और मुझे सहायता देते थे। पर वे कई कामों में आवश्यकता से अधिक अनुदार थे। उनमें से कई मंत्री, चांस्लर आदि हुए थे; उन्हें भी अनुभव अवश्य था पर वे यदि Progressive conservative होते तो अच्छा होता। उनसे सैण्ट्रलकनाल तथा कैथड्रल एवं बर्लिन के ओपरा हाउस बनाने के लिए समझौता कर लिया।

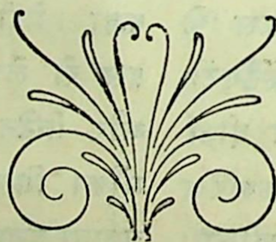
एडवर्ड vii जर्मनी की यात्रा के लिए आये। बूलो और एडवर्ड में दोनों देशों की सन्धि के लिए बात चीत हुई। एडवर्ड ने कहा कि हमारे में कोई शत्रुता तो है नहीं, फिर मित्रता की क्या ज़रूरत। वह फ्रांस का पक्षपाती था और जर्मनी का विरोधी।

१९०७ में मैं इंग्लैण्ड गया। बूलो के निर्दिष्ट पथ पर चलते हुए मैंने दोनों देशों में सद्भाव पैदा किया। बूलो के बाद हर बोन बेल्थमैन चांसलर बना।

(आगामी अङ्क में समाप्य)

---

† My Memiors. 1878—1918 By Ex-Kaiser William II



एक वानप्रस्थी

(सत्यार्थ प्रकाश के पञ्चम समुल्लासके आधार पर)

(ले०—श्री पं० हरिशरण जी सिद्धान्तालंकार)



आइये वाचकवृन्द ! हम आज आपको एक वानप्रस्थी की कथा सुनायें और देखें कि उसका जीवन कहाँ तक शास्त्रोक्त था।

वह वानप्रस्थी पहले ब्रह्मचर्याश्रम में रह कर, तत्पश्चात्[1] गृहस्थाश्रम का भी यथावत् पालन करके ५१ वें वर्ष वानप्रस्थाश्रम में प्रविष्ट हुआ।[2] अपनी धर्मपत्नी को अपने पुत्रों के पास छोड़ कर वह वन में निवास करने लगा।[3] यद्यपि उस ने उस समय अन्य सम्पूर्ण वस्तुओं का त्याग कर दिया था; तथापि[4] अग्निकुण्ड और यज्ञ के लिये आवश्यक वस्तुयें 'घृत सामग्री' इत्यादि वहां भी अपने पास रक्खी थीं। अर्थात् वह विधिपूर्वक यज्ञ किया करता था।[5] वहाँ कन्द इत्यादि फलों को ही खा कर अपना जीवन निर्वाह किया करता था।[6] वहां भी उस ने पञ्चमहायज्ञों को नहीं छोड़ा था। वह बराबर उन को विधिपूर्वक करता रहा। यदि उसके यहाँ कोई अतिथि आ पहुँचता तो वह उस की सेवा करता था। एक बार की बात है कि हम तीन चार आदमी भूले भटके वहां जा पहुंचे। हम बहुत भूखे थे, हमें प्यास भी लग रही थी। जंगल बड़ा घना था, मार्ग भटक जाने के कारण हम उस के पास पहुँच गये। उसने हमारा बड़ी अच्छी प्रकार आदर सत्कार किया—हमें बैठने को एक घास का आसन दिया। जिस पर कि वह स्वयं बैठा करता था। फिर उसने हमें कन्द इत्यादि खिला कर हमारी भूख को शान्त किया और जल भी पिलाया। तत्पश्चात् उसने हमें मार्ग बतला दिया, जिस से कि हम घर पर पहुँचे।

एक बात हमने उस के वहाँ बड़ी विचित्र देखी उस के चारों ओर सिंह, चीते इत्यादि हिंसक पशु बैठे रहते थे और उससे कुछ न कहते थे।

पाठकगण ! हमने चलते समय जो कुछ पूछा था, उसी को सुनाना प्रारम्भ किया है।

हमने उससे पूछा था—कि आप यहां बैठे २ क्या करते रहते हैं ? उसने अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त विस्तार से बताया— मैं[7] स्वाध्याय में लगा रहता हूं। अपना चिन्तन करता रहता हूँ। अपने अन्दर की कमियों को ढूंढ कर उन्हें पूरी करता हूँ[8], जितेन्द्रिय हूँ, मैं अपनी इन्द्रियों के अधीन नहीं, प्रत्युत इन्द्रियां मेरे अधीन हैं। सब[9] का

(१) ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेत्, गृही भूत्वा वनी भवेत्॥ शत० कां० १४

(२) पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्। मनु० अ० ६।

(३) संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्। मनु०। ६ अ०।

(४) अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम्।

(५) मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा।

(६) एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम्। मनु०। ६। अ०।

(७) स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यात्। मनु०। अ० ६।

(८) (९) दान्तो मैत्रः समाहितः। मनु०। अ० ६।

मित्र हूँ, मेरा किसी से भी द्वेषभाव नहीं। शायद तुम्हें मेरे चारों ओर हिंसक पशुओं को देख आश्चर्य हुआ होगा। परन्तु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। इसका कारण भी सबके साथ मित्रता ही है। जब मेरे अन्तःकरण में इनके प्रति कोई द्वेष नहीं तो साधारण सी बात है कि वे भी मुझे कुछ क्यों कहेंगे।

उसके यहां भोजन खा कर हम उसे पर्य्याप्त वस्तुएं भेंट करने लगे थे; परन्तु[10] उसने हम से कुछ न लिया।[11] सुख के लिये वह बिल्कुल प्रयत्न न करता था।[12] सदा भूमि पर सोता था।[13] पूर्ण ब्रह्मचारी था।[14] एक वृक्ष का मूल ही उसकी एक मात्र कुटिया थी। वर्षा में, आंधी में, धूप में, छाया में सर्वदा वहीं रहा करता था। फूंस की झोंपड़ी तक उसने न बनाई थी।

वाचक वृन्द ! यद्यपि यह सब कुछ था; तथापि [15]उस वृक्ष के अन्दर उसकी ममत्व बुद्धि बिल्कुल न थी। वह उसे अपना न समझता था।

(१०) दाता नित्यमनादाता। म०। अ० ६।

(११) अप्रयत्नः सुखार्थेषु।

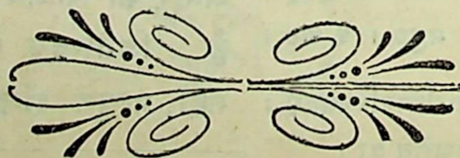
(१२) (१३) ब्रह्मचारीधराशयः।

देता था; मगर किसी से कुछ लेता न था। एवं "शरीर भाग में वानप्रस्थी की तुलना हाथ के साथ है" इस बात को उसने पूर्ण रूप से सिद्ध कर दिया था। वानप्रस्थाश्रम में स्थित वह सन्यासाश्रम की तैयारी कर रहा था। उसने सन्यासाश्रम में रह कर देश सेवा करने का पूर्ण निश्चय कर लिया था; इसी लिये वानप्रस्थी होता हुआ भी वह सन्यासाश्रम की तय्यारी कर सन्यासाश्रम में प्रविष्ट हुआ।

वाचकवृन्द ! जितनी बातें आपने इसके जीवन में देखीं उन सब का विधान मनुस्मृति में है। एवं इसका जीवन स्मार्त्त है।

शायद आप उस वानप्रस्थी का नाम जानने के लिए उत्सुक होंगे। उसका आधुनिक नाम श्रद्धानन्द है। आज कल वह सन्यासाश्रम में है। और अपने निश्चयानुसार देश की सेवा कर रहा है। उसकी सन्यासाश्रम की कथा फिर कभी अवसर मिला तो सुनायेंगे।

(१४) (१५) शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः। मनु०। अ०।



कलियुग का राक्षस

(ले०—श्रीयुत् चन्द्रगुप्त विद्यालंकार)

[१]



लखनऊ के सदर बाज़ार की एक सजी सजाई दुकान में एक बढ़िया मेज़ के सामने सुनहरी चश्मा लगाकर डाक्टर रमाकान्त एम०बी०बी० एस० बैठे थे। आप की उमर लगभग २७ बरस की थी। रङ्ग सांवला, जिस्म की मोटाई और लम्बाई साधारण थी। डाक्टर साहब को एम० बी० बी० एस का इम्तहान पास किए ६ मास बीत चुके थे। परीक्षा पास करते ही उन्होंने यह दुकान खोल ली थी। रामकान्त जब कालेज में पढ़ा करते थे तब उन का ख्याल था कि परीक्षा पास करते ही तमाम मुल्क में बस मैं ही मैं हो जाऊँगा, लोग धन्वन्तरी का अवतार समझ कर मेरा सम्मान करेंगे। उन दिनों वह प्रायः खाली बैठ कर अपनी दूकान की सजावट आदि की कल्पना किया करते थे। वह स्वप्न लेते थे कि शहर के बड़े २ धनी मेरी दूकान के बाहर खड़े हो कर अपनी बारी को इन्तजार कर रहे हैं; मैं मज़े में कुर्सी पर बैठकर "लीडर' समाचार पत्र का अध्ययन कर रहा हूँ। इतना ही नहीं उन्होंने अपनी कल्पना द्वारा दूकान के सामान, नौकरों की संख्या, रोगियों की फ़ीस, रात को फ़ीस, बाहर जाने की फ़ीस, सप्ताह की फ़ीस आदि सब बातों का तख़मीना लगा रखा था। परन्तु दुर्भाग्य यह था कि दुकान खोले हुए उन्हें ६ मास बीत गए और मासिक आय १५, २० रु० से अधिक न बढ़ी। प्रतिमास साहिबी ठाठबाट में उन्हें सैकड़ों रुपया व्यय करना पड़ता था, केवल अपनी दूकान के लिये ही उन्हें ८० रु० मासिक किराया पड़ता था। यह सब होते हुए भी डाक्टर साहब अभी तक निराश नहीं हुए थे, वह सोचते थे कि यह ज़माने का दोष है कि लोग हुनर की क़दर करना नहीं जानते। वह देखते थे कि शहर में कई बूढ़े बूढ़े सब-असिस्टेण्ट सर्जनों की तूती बोल रही है; लोग रात दिन उन्हें मक्खियों के समान घेरे रहते हैं। यह देख कर डाक्टर साहब सोचते थे कि हिन्दुस्तान सचमुच स्वराज के योग्य नहीं है, जिस मुल्क के लोग इतना अधिक भेड़ियाधसानी चाल का अनुसरण करने वाले हों, वह आज़ाद हो ही कैसे सकता है, इसी लिए तो हिन्दोस्तान को स्वराज नहीं मिलता और लोग मुफ़्त में सरकार को दोष देते हैं।

बरसात की मौसम थी। चौमासा प्रारम्भ हुए करीब एक मास व्यतीत हो चुका था। बरसात के दिन ज्यों ज्यों गुज़रते जाते थे त्यों त्यों डाक्टर साहब की परेशानी बढ़ती जाती थी। कारण यह था कि डाक्टर साहबको यह पूरा यकीन था कि जब बरसात की मौसम में मलेरिया फैलना शुरु होगा तब उन की दूकान खुद-ब-खुद चमक उठेगी। परन्तु बरसात का एक मास बीत गया और लखनऊ में मलेरिया नहीं फैला। इस बार म्यूनिसिपैलिटी मलेरिया को रोकने के लिए विशेष सतर्क थी; इस कारण डाक्टर साहब म्यूनिसिपैलिटी के मैम्बरों को भी दिल ही दिल खूब कोसा करते थे। वह सोचते थे-यह कैसी मनहूस म्यूनिसिपैलिटी है, आखिर साल भर लोगों में बीमारी के जो अणु प्रविष्ट होते रहे हैं—वे अगर निकलेंगे नहीं, तो फिर शहर का स्वास्थ्य उन्नत किस

प्रकार होगा। ये लोग इतनी बात भी नहीं समझ पाते। मालूम होता है वे सब डाक्टरों से ख़ार खाये हुए हैं। दिन भर दुकान पर खाली बैठे बैठे डाक्टर साहब सड़क पर आने जाने वाले लोगों की ओर देखा करते थे; उन्हें प्रत्येक मनुष्य के शरीर में कोई न कोई दोष देखाई देता था, किसी में मलेरिये के कीटाणु मालूम होते थे तो किसी में तपेदिक के। परन्तु अफ़सोस, कि कोई व्यक्ति उन से अपने शरीर को 'शुद्ध' करवाने नहीं आता था। जब वह देखते थे कि आस पास की बजाजी, स्टेशनरी, मिठाई आदि की दूकानों पर दिन भर ग्राहकों की भीड़ रहती है तब वह उन्हें घूर घूरकर इस प्रकार देखते थे कि मानों उन्हें बीमारी के कीटाणु बना डालने का ब्रह्मशाप दे रहे हों।

इसी प्रकार बरसात के दिन धीरे धीरे समाप्त होने लगे। एक दिन डाक्टर रमाकान्त को सहसा अपनी ख्याति का एक नया उपाय सूझ पड़ा। उन्होंने एक नया साइन बोर्ड बनवाया। इस पर उन्होंने यह इबारत लिखवाई—"डाक्टर रमाकान्त M. B. B. S. (Hons.), B. A., Eye specialist, Gold medalist in Surgery and Midwifery ; Inventor of new methods and new medicins in Medical science." इस के बाद हिन्दी में लिखा था—"यहां साधारण बुखार, दर्द, ज़ख्म फुन्सी आदि का इलाज मुफ़्त में परोपकार के भाव से किया जाता है।" इसी दिन डाक्टर साहब ने इस आशय का एक फड़कता हुआ विज्ञापन लखनऊ के अंग्रेज़ी, उर्दू और हिन्दी के पत्रों में भेज दिया।

डाक्टर साहब का यह नया आविष्कार सचमुच कामयाब हुआ। अगले ही दिन से उन की दूकान के ग्राहकों की संख्या में वृद्धि हो गई। परन्तु इसका एक परिणाम यह भी हुआ कि अब दाम देकर इलाज कराने वाले बीमारों की संख्या शून्य के समान ही बच गई। बुद्धिमान डाक्टर ने सोचा—कोई हरज़ नहीं; धीरे धीरे सब संभाल लूंगा।

एक सप्ताह के अन्दर ही जब उन के ग्राहकों की संख्या बहुत पर्याप्त हो गई, तब उन्होंने एक और कार्य प्रारम्भ किया। जो बीमार उन से दवा कराने आते थे, उन्हें वह नई नई बीमारियों के नाम बता २ कर डराने लगे। जिसे दांत में दर्द होता था उसे वह कहते थे कि तुम्हें पाईरिया हो रहा है; जिसका जिस्म ज़रा अधिक पीला देखते थे उसे कहते थे तुम्हें तपेदिक हो रहा है; इसी प्रकार किसी को वह स्नायुओं की बीमारी, किसी को आंतड़ियों की बीमारी और किसी को मैदे की बीमारी बताने लगे। डाक्टर साहब का यह नया आविष्कार व्यर्थ न गया, उन की आय बढ़ने लगी।

इसी प्रकार पाँच बरस बीत गये, डाक्टर रामकान्त की आय काफ़ी बढ़ गई। अब उन्होंने मुफ़्त दवा करना छोड़ दिया है; आज कल पर्याप्त मरीज़ उन के यहां स्वास्थ्य लाभ के लिये आते हैं। डाक्टर रामकान्त आज कल लगभग २०० रु० मासिक कमाते हैं, परन्तु उन की उच्च आकांक्षा तो हज़ारों रुपया मासिक कमाने है। इसी कारण डाक्टर साहब की अर्थलोलुपता दिन पर दिन बढ़ती चली जाती है।

(२)

लखनऊ के उत्तर की ओर—१५, २० मील की दूरी पर—सुजानपुर नाम का एक ग्राम है। इस ग्राम की आबादी एक हज़ार से ऊपर है। ग्राम की ज़मीन बहुत उपजाऊ है। सुजानपुर के जमीन्दार

का नाम वसुपति था। वसुपति एक बहुत ही नरम और दयालु स्वभाव के जमीन्दार थे। उन की आयु यद्यपि बहुत अधिक नहीं थी तथापि सम्पूर्ण ग्राम के निवासी उन्हें अपना पालक पिता समझा करते थे। वसुपति प्रत्येक बात में अपनी रैयत की भलाई का ध्यान रखते थे। युक्तप्रान्त के अधिकांश अन्य जमीन्दारों की तरह किसानों को लूटना ही वह अपना कर्तव्य नहीं समझते थे। उन का परिवार बहुत छोटा था। वसुपति का सगा भाई एक भी न था। घर में केवल एक छोटा सा बालक, पत्नी, और माता थी। उन के घर में शान्ति और व्यवस्था का राज्य था। सम्पूर्ण परिवार में परस्पर खूब प्रेम था। वसुपति अपनी माता की बहुत अधिक प्रतिष्ठा करते थे, अपनी धर्मपत्नी से उन्हें अथाह स्नेह था।

एक दिन किसी कार्यवश वसुपति लखनऊ आये। लखनऊ में वह अपने जिस मित्र के यहां ठहरे, उस का घर डाक्टर रमाकान्त के घर से बहुत निकट था। गर्मियों के दिन थे; परन्तु रात को पर्याप्त ठंड पड़ा करती थी। एक रात वसुपति को अचानक ठंड लग गई, उन्हें जुकाम और हलका-सा बुखार हो गया। बीमारी कोई बड़ी नहीं थी इस लिये उन के मित्र ने किसी बड़े डाक्टर को बुलवाने की आवश्यकता नहीं समझी; नौकर भेज कर उन्होंने अपने मित्र का इलाज करवाने के लिए डाक्टर रमाकान्त को ही बुला भेजा।

डाक्टर साहब को जब यह ज्ञात हुआ कि वह एक प्रतिष्ठित ताल्लुकेदार का इलाज करने के लिए बुलाये गये हैं तब उनकी प्रसन्नता का अन्त न रहा। वे खूब सजधजकर, पूरी तरह लैस होकर, वसुपति का इलाज करने आये। डाक्टर साहब के भाग्य अच्छे थे, इस लिए ताल्लुकेदार वसुपति का वह बुखार दो चार घंटों में ही उतर गया और सायंकाल होते होते जुकाम भी अच्छा हो गया। दिन भर डाक्टर साहब ने इस के लिए खूब दौड़धूप की। इतना अधिक यत्न उन्होंने अपनी परीक्षा पास करने के लिए भी नहीं किया था।

सायंकाल होने तक डाक्टर साहब ने फीस की एक खासी अच्छी रकम के साथ एक और बहुमूल्य वस्तु भी प्राप्त करली; यह वस्तु थी ताल्लुकेदार वसुपति का अपने इलाज पर विश्वास। सिंहदुर्ग को विजय करके छत्रपति शिवाजी इतने प्रसन्न न हुए होंगे जितने कि आज डाक्टर साहब प्रसन्न थे।

(३)

कृष्णपक्ष की अंधेरी रात थी। बरसात की ऋतु थी। बाहर टप टप करके धीरे धीरे वर्षा हो रही थी। लखनऊ के एक तिमञ्जले मकान के एक कमरे में डाक्टर रमाकान्त बड़ी ही बेचैन हालत में विराजमान थे। कमरे में बिजली का एक लैम्प जल रहा था, सामने मेज़ पर कई दवाइयां बिखरी हुई पड़ी थीं। कमरे का दरवाज़ा अन्दर से बन्द था। केवल एक खिड़की खुली हुई थी। इस खिड़की से रह रह कर वर्षा से गीली-होगई ठण्डी हवा के झोंके कमरे में आरहे थे। डाक्टर साहब बड़ी बैचैनी की दशा में थे। कमरे में पर्याप्त ठंड होते हुए भी उन के शरीर से पसीना टपक रहा था। उन्होंने गरमी से तंग आकर गले और बाहुओं के बटन खोल रखे थे।

डाक्टर रमाकान्त की इस बड़ी बैचैनी का एक कारण था। डाक्टर साहब ने अभी तक बीसियों छोटे मोटे पाप किये थे परन्तु आज एक बहुत बड़ा पाप करते हुए उन के हृदय में इस प्रकार देवासुर संग्राम होना आवश्यक ही था। बात यह थी कि ताल्लुकेदार वसुपति की धर्मपत्नी सुखदा आजकल

ऋतुज्वर से पीड़ित थी। उन्हें बहुत दिनों से ज्वर आरहा था; प्रतिदिन सायंकाल के समय ज्वर बहुत बढ़ जाता था। वसुपति अपनी पत्नी की इस बीमारी से कुछ चिन्तित हो उठे थे। उन्होंने डाक्टर रमाकान्त से अपनी पत्नी का इलाज प्रारम्भ कराया था। सुखदा को प्रतिदिन सायंकाल के समय बुखार आ जाता है, यह देखकर वसुपति को चिन्ता होने लगी थी कि कहीं उसे तपेदिक तो नहीं है। वास्तव में उनकी यह चिन्ता सर्वथा निर्मूल थी। उन्होंने लखनऊ के सरकारी सिविल-सर्जन द्वारा सुखदा की परीक्षा भी करवा ली थी। उसने सुखदा में तपेदिक का एक भी लक्षण नहीं पाया। इस के बाद डाक्टर रमाकान्त का इलाज प्रारम्भ हुआ। रमाकान्त के सौभाग्य से अथवा यूं कहिये कि सुखदा की बीमारी की भयंकर दशा व्यतीत हो चुकी थी, जिस दिन से रमाकान्त ने सुखदा का इलाज प्रारम्भ किया उसी दिन से सुखदा की बेचैनी कम हो गई यद्यपि बुखार में कोई विशेष परिवर्तन न आया। सुखदा का बुखार सायंकाल के समय अब भी तेज़ होजाया करता था। एक दिन वसुपति ने डाक्टर रमाकान्त से भी अपना यह भय प्रगट कर दिया कि सुखदा को कहीं तपेदिक तो नहीं है। डाक्टर साहब ने सुखदा के फेफड़ों की परीक्षा की। वह इसी परिणाम को पहुँचे कि सुखदा को तपेदिक बिल्कुल नहीं है, तथापि उन्हों ने उस समय कोई भी उत्तर नहीं दिया। इस के विपरीत इनके चेहरे पर एक आसुरी मुस्कराहट की झलक दिखाई दी। उसी समय उन के दिल में एक अन्धेरे कोने से शैतान ने प्रवेश किया। वसुपति से उन्हों ने कह दिया कि वह अगले दिन पुनः परीक्षा कर के अपना निर्णय प्रकाशित करेंगे। इसी दिन रात को वह एक खास काम के बहाने मोटर द्वारा लखनऊ वापिस आगये। उन के दिल में यह आसुरी इच्छा काम कर रही थी कि यदि वह सुखदा के शरीर में किसी प्रकार तपेदिक के कीटाणुओं का प्रवेश करा सकें तो बस उनकी चांदी ही चांदी है। उन्हों ने सोचा कि सुखदा का यह साधारण बुखार तो दो एक सप्ताह में उतर ही जायगा, क्यों न इस अवसर से पूर्ण लाभ उठाया जाय। जब मनुष्यहत्या का पाप उनकी आत्मा को भयभीत कर देता था, तब वह यह सोच कर अपने दिल को मनाने का यत्न करते थे कि मैं स्वयं इलाज करके उसे मृत्यु के मुंह से बचा लूंगा। फिर सोचते थे कि ये ज़मींदार लोग भी तो किसानों का खून चूस २ कर इतने धनी बने हुए हैं, क्या हमें इनको चूसने का अधिकार नहीं है। यह, एक दूसरे को चूसना ही तो प्रकृति का नियम है।

अन्त में इस देवासुर संग्राम में असुरों की ही विजय हुई। डाक्टर साहब ने एक विशेष इन्जैक्शन तैयार किया जिस में उन्होंने तपेदिक के कीटाणुओं का प्रवेश कर दिया था।

अगले दिन सुखदा को वह इन्जैक्शन करके डाक्टर साहब ने वसुपति को सूचना दी की अभी तक तो सुखदा में तपेदिक का कोई लक्षण दिखाई नहीं देता तथापि मुझे भय है कि इतनी कमज़ोरी के कारण उसे कहीं तपेदिक हो न जाय। साथ ही डाक्टर साहब ने यह भी कह दिया कि तपेदिक की पहली स्टेज प्रायः अज्ञेय होती है। अगर आजकल सुखदा उस पहली स्टेज में ही तो मैं उस सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकता। हां, तपेदिक की दूसरी स्टेज का एक भी लक्षण इस समय उस में नहीं है, यह मैं आप को विश्वास पूर्वक कह सकता हूँ।

दो सप्ताह के बाद ही सुखदा का ऋतुज्वर तो उतर गया परन्तु उसकी कमज़ोरी और

बेचैनी बढ़ने लगी। वसुपति ने उसके इलाज के लिए पूर्ण यत्न किया, सब प्रकार के उपाय किये; परन्तु सुखदा का सुन्दर मुख दिन ब दिन अधिक पीला पड़ने लगा। इस शान्तिपूर्ण सुखी गृहस्थ में दुःख का भयंकर तूफान लाकर वह पिशाच डाक्टर अपनी दोनों मुट्ठियां गरम कर रहा था।

लखनऊ के बड़े डाक्टरों की एक कमेटी द्वारा सुखदा का पुनः निरीक्षण कराया गया। उन्हों ने एक मत से उसे क्षयरोगग्रस्त पाया। उसे क्षयरोग किस प्रकार हुआ, इस सम्बन्ध में डाक्टर लोग एकमत नहीं थे। डाक्टरों की इस कमेटी ने सुखदा को नैनीताल लेजाने की सलाह दी।

अगले ही दिन वह दुखित परिवार नैनीताल के लिये रवाना हो गया। डाक्टर रमाकान्त को भी २००) रु० दैनिक पर एक सप्ताह के लिये वसुपति अपने साथ नैनीताल ले गये।

[४]

नैनीताल पहुंच कर भी सुखदा का स्वास्थ्य दिन प्रति दिन बिगड़ता ही गया। सौभाग्यवश एक दिन जर्मनी के क्षयरोग के सुप्रसिद्ध विशेषज्ञ डाक्टर मैथ्यू दो चार दिन के लिये नैनीताल पधारे। वसुपति ने उन्हें ले जाकर सुखदा की परीक्षा करवाई। डाक्टर मैथ्यू ने बहुत देर तक निरीक्षण करके कहा कि सुखदा में जान बूझ कर क्षयरोग के जीवाणु प्रविष्ट किये गये हैं। शोक यही है कि उसमें जीवाणु उन दिनों प्रविष्ट किये गये हैं जब कि वह बहुत कमज़ोर थी अतः उस की बीमारी बहुत शीघ्रता से बढ़ती चली गई है और वह दुस्साध्य कोटी तक जा पहुँची है; तथापि अपनी ओर से यत्न करना ही चाहिये, यह कह कर उन्हों ने इलाज की एक लम्बी व्यवस्था लिख दी।

डाकृर रमाकान्त को नैनीताल आये अभी छः ही दिन हुए थे कि वसुपति ने उन्हें बड़ी शान्ति के साथ नैनीताल से बिदा कर दिया। डाकृर मैथ्यू जब सैनीटोरियम में आये थे उस समय रमाकान्त 'नैनी' के सरोवर में नौकारोहण का आनन्द ले रहे थे अतः मैथ्यू साहब का परिणाम वह न जान सके थे। अपने इस सहसा अलग कर दिये जाने का अभिप्राय रमाकान्त समझ न सके। वे शंकित चित्त से लखनऊ वापिस चले गये।

वसुपति की चिन्ता अब और भी बढ़ गई। उन्हें सुखदा के रोगमुक्त होने की आशा ज़रा भी नहीं रही। घण्टों तक अपनी वृद्धा माता के साथ सुखदा के सिरहाने बैठे रहने के उपरान्त जब वह थोड़ी देर के लिये बाहिर आते थे, तब उनकी बड़ी २ आंखों में आँसू भरे रहते थे। उस समय उनका छोटा बच्चा सुशील "पिता जी! पिता जी!" चिल्लाता हुआ उन के पास आजाता था। वह झटपट अपनी आँखें पोंछ कर उसे गोद में उठा लेते थे। सुशील पूछता था—"अम्मा कब अच्छी होंगी?" वसुपति इस का जवाब नहीं दे सकते थे, वह सुशील का मुंह चूम कर अलक्षित भाव से सुदूर आकाश में किसी शून्य की ओर ताकने लगते थे। पता नहीं, इस–मूक निराशा के तीव्र भाव को वह अबोध बालक भी समझ पाता था या नहीं। हाय, इस सुखी परिवार का सम्पूर्ण सुख किस शैतान ने हर लिया!

(५)

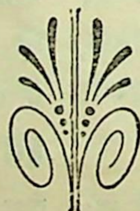
आज सुखदा इस संसार में नहीं रही। डाकृर रमाकान्त की अर्थलोलुपता में उस की पूर्णाहुति दी जा चुकी है। सुखदा का अन्तिम संस्कार कर के पुत्रवधु के शोक में दिन प्रति दिन घुलने वाली, देवी के समान सहानुभूतिपूर्णहृदया अपनी माता तथा मातृहीन बालक सुशील के साथ वसुपति लखनऊ वापिस चले आये। वसुपति दिन रात

शोकित और चिन्तित रहने के कारण बिल्कुल कमज़ोर हो गये हैं। सुखदा सचमुच उन्हें प्राणों से भी बढ़ कर प्यारी थी; डाकृरों ने उन्हें अब विशेष रूप से संभल कर रहने की सलाह दी है, अन्यथा इस चिन्तापूर्ण दशा में उन्हें भी कोई भयंकर बिमारी हो सकती है। वसुपति की माता ने इस बुढ़ापे में इतने बड़े वज्रप्रहार की कभी कल्पना भी न की थी, वह यद्यपि बहुत अधिक दुखित है तथापि वह मूर्तिमती 'माता' की प्रतिमा, अपने पुत्र का हृदय हलका करने के लिये दिन रात प्रयत्न कर के अपना दुख छिपाती है। हम उस सुशील— अभागे, मातृहीन सुशील— के लिये क्या कहें। इस बचपन में ही उसकी सुन्दर मुस्कराहट को, उसकी सुखकारी चपलता को कौन हर लेगया ! सुशील अबोध था, वह नहीं जानता था कि मृत्यु क्या चीज़ है, परन्तु वह अपनी प्राणप्यारी माता का अभाव प्रति समय अनुभव करता था।

वसुपति अपने गांव में वापिस आगये। जब शोक का प्रथम वेग कुछ शान्त हुआ तब उन्हें डाकृर मैथ्यू की रिपोर्ट की याद आई। लखनऊ के अपने अनुभवी वकील दोस्तों की सलाह लेकर उन्होंने डाकृर रमाकान्त पर यह अभियोग उपस्थित किया कि उस ने जानबूझ कर सुखदा में क्षयरोग के कीटाणु प्रविष्ट किये थे।

इस अभियोग में वसुपति ने लखनऊ के उन डाकृरों को गवाह स्वरूप अदालत में उपस्थित करना चाहा जिन्होंने कि सुखदा को नैनीताल ले जाने की सलाह दी थी; इन में से अधिकांश ने उस समय यही राय लिखी थी कि किसी आकस्मिक कारण से सुखदा को क्षय रोग होगया है। परन्तु उन में से कोई भी चिकित्सक डाकृर रमाकान्त के विरुद्ध गवाही देने को तैयार न हुआ। इस का कारण यह था कि डाक्टर लोगों ने इस मामले में सम्पूर्ण 'डाक्टर जाति' का अपमान समझा। तब लाचार हो कर वसुपति ने १५ हज़ार रुपया व्यय करके जर्मनी से डाक्टर मैथ्यू को बुलाया। उनकी गवाही तथा कुछ अन्य प्रमाणों के आधार पर अदालत ने डा० रमाकान्त को दस बरस की कड़ी कैद की सज़ा दी।

रमाकान्त आजकल नैनीताल के सैन्ट्रल जेल में कैद है। लोग कहते हैं कि अब उसका दिमाग़ सही नहीं रहा। वह अब तक भी कभी २ सायंकाल को सामने के नील सरोवर की ओर देख कर चिल्ला उठा करता है—"आहा ! आज का दिन समाप्त हो गया। मैंने २०० रुपये कमा लिये।"



महात्मा बुद्ध के वेद और ईश्वर सम्बन्धी विचार

(लेखक—श्री आचार्य रामदेव जी)



हात्मा बुद्ध को आज कल, वेद-विरोधी और ईश्वर की सत्ता से इन्कार करने वाला समझा जाता है। इस का एक कारण है। महात्मा बुद्ध के जीवन काल के प्रारम्भिक दिनों में यज्ञों में पशुहिंसा की प्रथा पूरे ज़ोरों से प्रचलित थी। ये हिंसाएं वेद के मंत्रों के साथ की जाती थीं, वेद मंत्रों के अर्थ इस प्रकार से तोड़ मोड़ कर लगाए जाते थे कि उन से इस पशु बलि का अनुमोदन प्रतीत होता था। दूसरी ओर लोगों का यह दृढ़ विश्वास था कि वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं। अतः यज्ञों में की जाने वाली यह हिंसा भी ईश्वर के नाम पर ही की जाती थी। महात्मा बुद्ध ने इस मूर्खतापूर्ण हिंसा का तीव्र विरोध किया, इस के लिये उन्हों ने उन ब्राह्मणों का भी घोर विरोध किया जो पुरोहित बन कर यज्ञों में पशु वध किया करते थे। यह सब करते हुए भी उन्हों ने वेद की प्रामाणिकता और ईश्वर की सत्ता से इन्कार नहीं किया। उन्हों ने यह सिद्ध कर दिया कि ये आजकल के ब्राह्मण वेदों के वास्तविक आदेशों से बहुत दूर पिछड़ गए हैं। ये यज्ञों में पशु-बलि करने वाले ईश्वर की वास्तविक सत्ता और स्वरूप से सर्वथा अपरिचित रह कर भी उस के नाम का ढोंग करते हैं। सच्चा ब्राह्मण कौन होता है?—इस प्रश्न पर उन्हों ने बहुत विस्तार से प्रकाश डाला है। परन्तु पीछे से उन के इस ब्राह्मण विरोध का उन के अनुयायियों ने यह अभिप्राय ले लिया कि वह वेद की प्रामाणिकता और ईश्वर की सत्ता का भी विरोध करते थे।

इस लेख में हम महात्मा बुद्ध के उन विचारों का विस्तार से उल्लेख करेंगे जिन में उन्होंने तत्कालीन ब्राह्मणों और उन के वेद ज्ञान का विरोध किया है। बौद्ध साहित्य से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि महात्मा बुद्ध स्वयं अपने को ब्राह्मण कहते थे और ब्राह्मण की परिभाषा उन्होंने स्वयं यह की है कि वह वेदज्ञानी होना चाहिये। पाठक देखेंगे कि महात्मा बुद्ध ने जिस प्रकरण में तत्कालीन ब्राह्मणों की ख़बर ली है उस में भी उन्हों ने वेद की प्रामाणिकता और ईश्वर की सत्ता से इन्कार नहीं किया। अपितु उन्होंने ईश्वर के वास्तविक स्वरूप का वर्णन करते हुए यह बताया है कि ये रूढ़िपूजक ब्राह्मण उससे बहुत दूर हैं।

इस सम्बन्ध में हम यहां महात्मा बुद्ध के जिस 'सूत्त ग्रन्थ' के उद्धरण देंगे उसका नाम है—'तविग्ग-वाच्छगोत्त सूत्त'। तविग्ग महात्मा बुद्ध का ही नाम है। इस का अर्थ है—"वेदज्ञ'।" इस का अभिप्राय यह हुवा कि महात्मा बुद्ध को वेदज्ञ भी कहा जाता था। इस ग्रन्थ में वासत्थ नामक एक ब्राह्मण से महात्मा बुद्ध का वार्त्तालाप वर्णित है।

"वासत्थ ने कहा-'हे गौतम, विभिन्न ब्राह्मणों के विभिन्न मार्ग हैं। ये ब्राह्मण अध्वर्यु, तैत्तिरीय, छन्दश, छान्दोग्य, ब्रह्मचारी, आदि भागों में विभक्त

हैं। परन्तु इन सब के उपाय भिन्न भिन्न होते हुए भी अन्त में इन सब के द्वारा फल एक ही होता है। वह यह कि मनुष्य ब्रह्म से मिल जाता है। जिस प्रकार किसी गांव के निकट अनेक मार्ग होते हैं परन्तु गांव में आ कर वे सब एक होजाते हैं उसी प्रकार अध्वर्यु, तैत्तरेय, छन्दश, छान्दोग्य, ब्रह्मचारी आदि ब्राह्मण भी अलग २ मार्ग बताते हुए एक ही ब्रह्म की ओर ले जाते हैं।'

गौतम ने पूछा—'क्या तुम्हारा विचार है कि ये सब मार्ग सत्यमार्ग हैं?'

वासत्थ ने कहा—'मेरा यही विचार है।'

'परन्तु वासत्थ!, क्या कोई त्रयी विद्या में निपुण ऐसा ब्राह्मण है जिसने ईश्वर के सन्मुख खड़े होकर उसके दर्शन किये हों?'

'सचमुच नहीं।'

'परन्तु वासत्थ! क्या इन ब्राह्मणों के किसी गुरु ने स्वयं ईश्वर के दर्शन अपनी आँखों से किये हैं?'

'सचमुच नहीं।'

'वासत्थ! क्या इन ब्राह्मणों की सातवीं पीढ़ी तक के किसी गुरु ने ईश्वर के दर्शन अपनी आँखों से किये हैं?'

'सचमुच नहीं।'

'अच्छा, क्या त्रयी विद्या के विद्वान् प्राचीन ऋषियों ने जिन्हें छन्द ज्ञान हुआ था या जिन्हों ने छन्दों की व्याख्या की थी; जिनके द्वारा उच्चारित वाक्यों को आज तक के ब्राह्मण भी बिना समझे बूझे याद किये चले आते हैं; इन अष्टक, वामक, वामदेव, विश्वमित्र, यामदग्नि, अङ्गिरस, भारद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप, भृगु आदि ऋषियों में से कभी किसी ने कहा है कि—"हमने ब्रह्म का साक्षात्कार किया है, हम ने उसे देखा कि वह अमुक स्थान पर रहता है?"

'नहीं ऐसा नहीं कहा।'

'तो क्या आज कल के त्रयी विद्या जानने वाले ब्राह्मणों का दावा यह न हुवा कि—"हम जिसे नहीं जानते, जिसका हमने साक्षात् नहीं किया, उसके मिलने का हम लोगों को मार्ग बता सकते हैं। जिस मार्ग का अनुसरण करने से ब्रह्म के साथ एकता पाई जा सकती है।" इसका यह मतलब नहीं कि उनका यह दावा मूर्खता पूर्ण है?'

'हां, इन ब्राह्मणों का यह दावा मूर्खतापूर्ण है?'

'वासत्थ! जिस प्रकार एक दूसरे का हाथ पकड़ कर चार अन्धे मार्ग प्राप्त कर लेना चाहते हों, परन्तु सब को दिखाई न देने के कारण मार्गप्राप्ति असम्भव हो, उसी प्रकार क्या इन ब्राह्मणों का हाल नहीं है जो स्वयं समझे बिना ही किसी अज्ञेय मार्ग का उपदेश किया करते हैं।

'यही बात है।'

'अच्छा वासत्थ! एक मनुष्य कहे कि इस पृथ्वी पर मैं बड़े दीर्घकाल से एक अत्यन्त सुन्दरी को प्रेम करता हूँ।'

लोग उससे पूछेंगे—'मित्र! क्या तुम्हें मालूम है वह सुन्दरतम स्त्री किस देश की है? वह किसी राजा या कुलीन की लड़की है, या किसी ब्राह्मण की कन्या है अथवा किसी व्यापारी की पुत्री है या कोई शूद्रा है?"

परन्तु वह उत्तर देवे—'नहीं।'

लोग उससे फिर पूछेंगे—'क्या तुम्हें यह ज्ञात है कि यह सुन्दर स्त्री किस कद की है, उस का शरीर कैसा है, उसका रंग कौन सा है, वह किस गांव में रहती है?'

1. Sacred Books of the East. Vol. xi. by Rhys Davids. Introduction to the Tevigga Sutta. Page-159.

वह उत्तर देता है—'नहीं।'

लोग उस से आश्चर्य से पूछें—'फिर भी तुम उसे प्यार करते हो ?'

इस पर भी वह उत्तर देता है—'हां।'

अब हे वासत्थ ! यह बताओ कि उस मनुष्य की यह बात मूर्खता पूर्ण है या नहीं ?'

'है।'

'वासत्थ ! कोई मनुष्य चौराहे में खड़ा होकर सीढ़ियां बनाने लगे, और कहे कि मैं इन्हें एक मकान पर ले जा रहा हूँ।'

लोग उस से पूछेंगे— 'मित्र वह मकान कहाँ है ? वह उत्तर दिशा में है या पूर्व में, पश्चिम में है अथवा दक्षिण में ? वह छोटा है या बड़ा ?'

वह उत्तर दे—'मुझे मालूम नहीं।'

लोग पूछेंगे— 'फिर भी तुम एक ऐसे मकान पर चढ़ने के लिये सीढ़ियां बना रहे हो, जिसे तुम जानते नहीं, जो तुम्हें दिखाई भी नहीं दे रहा है।'

वह कहे— 'हां।'

तो क्या उस की यह बात मूर्खतापूर्ण न होगी ?'

'होगी।'

'वासत्थ, ! एक और उदाहरण लो। कल्पना करो कि यह अचिरावती नदी किनारे तक भर कर बह रही है। इस के दूसरे किनारे पर एक मनुष्य आता है जिसे किसी ज़रूरी काम के लिये इस पार आना है। वह मनुष्य उसी किनारे पर खड़ा होकर यह प्रार्थना करे या डांट कर कहे अथवा आशा करे कि— "ओ दूसरे किनारे ! इस पार आजाओ !" क्या उस के इस प्रकार डांटने, खुशामद करने, स्तुति करने, आशा करने, अथवा चिल्लाने से वह किनारा इस ओर चला आयगा ?'

'कभी नहीं।'

'हे वासत्थ, ठीक इसी प्रकार एक त्रयी विद्या में निष्णात ब्राह्मण कार्य रूप में उन गुणों को अपने अन्दर नहीं लेता जो किसी मनुष्य को ब्राह्मण बनाते हैं और अब्राह्मणों का आचरण करता है और मुंह से कहता है—"मैं इन्द्र को बुलाता हूँ, वरुण को बुलाता हूँ, प्रजापति को बुलाता हूँ, ब्रह्मा को बुलाता हूं, महेश को बुलाता हूँ, यम को बुलाता हूं" क्या वे उस के पास आजायंगे ? ऐसे ब्राह्मण यदि धमकी देकर, प्रार्थना कर के या चिल्ला कर यह कहें कि 'मृत्यु के अनन्तर हम मुक्त होकर ईश्वर में मिल जायं, तो क्या उनकी यह बात पूरी होगी ?'

'अच्छा वासत्थ ! अचिरावती नदी के दूसरे पार खड़ा हुआ वह मनुष्य किसी मज़बूत ज़ञ्जीर से हाथ पैर पीठ आदि बांध कर यदि उसी किनारे पर डाल दिया जाय तो क्या वह इस पार पहुँच सकेगा ?'

'कभी नहीं, भगवन् !'

'इसी प्रकार हे वासत्थ, पांच वस्तुएं हैं जो लोभ की ओर ले जाती हैं, ये बांधने वाली ज़ञ्जीरें हैं।'

'ये पांच क्या हैं ?'

'आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा को पसन्द आने वाली, आकर्षक, और अभीष्ट वस्तुएं— जो लोभ के मार्ग की ओर ले जाती हैं। ये पांचों प्रकार के आनन्द मनुष्य को बन्धन में डालने वाले हैं। ये त्रयी विद्या में निष्णात ब्राह्मण भी इन पाँचों बन्धनों में बंधे हुए हैं; इन के खतरे से वाकिफ़ नहीं, इन में लिप्त हैं, इन से मुक्त होने का उपाय नहीं जानते। हे वासत्थ ये ब्राह्मण कहलाये जाने वाले परन्तु ब्राह्मणों के वास्तविक

कर्तव्यों से पराङ्मुख व्यक्ति जो अब्राह्मणों का आचरण करते हैं— इन पांचों बन्धनों में बंधे हुए हैं। क्या कभी यह सम्भव है कि ये लोग भी मृत्यु के अनन्तर मोक्ष द्वारा ईश्वर में मिल कर एकत्व को प्राप्त कर लें ?

वासत्थ, क्या यह कभी सम्भव है कि अचिरावती के उस पार बैठा हुआ व्यक्ति इस पार आने की इच्छा से अपना सिर लपेट कर नदी के उसी किनारे पर ही सो जाय, परन्तु फिर भी इस पार स्वयं पहुँच जाय ?'

'कभी नहीं भगवन् !'

'इसी प्रकार मनुष्य के मार्ग में पांच बाधाएं हैं। ये बाधाएं काम, ईर्ष्या, आलस्य, अहंकार और सन्देह हैं। ये त्रयी विद्या के पण्डित ब्राह्मण भी इन पाँचों बन्धनों में जकड़े और उलझे हुए हैं। ये ब्राह्मण का कर्तव्य न करके अब्राह्मणों का कार्य करने वाले ब्राह्मण इन पाँचों बाधाओं के रहते हुए भी कभी ईश्वर में मिल कर एक हो सकते हैं ?"

'हे वासत्थ तुम्हें वृद्ध और विद्वान् ब्राह्मणों ने क्या शिक्षाएं दी हैं, क्या ईश्वर के पास धन और स्त्रियाँ हैं ?'

'नहीं।'

'वह क्रोध पूर्ण है या क्रोध रहित ?,

'वह क्रोध रहित है ?'

'उसका अन्तःकरण मलिन है या पवित्र ?'

'पवित्र।'

'वह स्वयं अपना स्वामी है या नहीं ?'

'है।'

'अच्छा वासत्थ क्या इन ब्राह्मणों के पास धन और स्त्रियाँ नहीं ?'

'हैं।'

'ये क्रोधी हैं या क्रोध रहित ?'

'क्रोधी।'

'वे ईर्ष्यालु हैं या ईर्ष्या रहित ?'

'ईर्ष्यालु।'

'उन का अन्तःकरण क्या पवित्र है ?'

'नहीं, अपवित्र है।'

'वे स्वयं अपने स्वामी हैं या नहीं ?'

'नहीं।'

'हे वासत्थ ! तुम स्वयं ही ब्रह्म और ब्राह्मणों में इतना स्वभाव वैषम्य बतला रहे हो। अब बताओ कि इन दोनों में परस्पर कोई एकता और साम्य भी हो सकता है ?'

'कभी नहीं भगवन् !'

'इस का अभिप्राय यह हुआ कि ये ब्राह्मण मलिन हृदय के हैं, वासनाओं से शून्य नहीं और वह ब्रह्म पवित्र और वासना रहित है अतः ये ब्राह्मण अपनी मृत्यु के अनन्तर उस में मिल नहीं सकते।'

'अर्थात् जब ये आचार हीन ब्राह्मण बैठ कर वेद का पाठ करते हैं, या तदनुसार कोई कर्मकाण्ड करते हैं, तब उन के हृदय में तो यह होता है कि इस के द्वारा हमें मोक्ष प्राप्ति हो जायगी, परन्तु वे धोखे में होते हैं। अतः उन त्रयी विद्या के पण्डितों की विद्या वास्तव में जल रहित मरुभूमि के समान है, मार्ग रहित बीहड़ जंगल के समान है और नाशकारिणी है ?'

महात्मा बुद्ध के यह सब कह लेने के उपरान्त वह नौजवान ब्राह्मण बोला— 'मुझे बतलाया गया है कि श्रमण गौतम ही ईश्वर से साम्य प्राप्त करने के साधन जानता है।

महात्मा बुद्ध ने कहा— 'मानसाकत नगर यहां से निकट है न?'

'जी हाँ, निकट है।'

'अच्छा वासत्थ, एक मनुष्य का जन्म मानसाकत में ही हुआ हो और वह वहीं रहता हो। उस से कोई पूछे कि मानसाकत का कौन सा मार्ग है तो क्या उसे उत्तर देने में कुछ विलम्ब या कष्ट होगा?'

'कभी नहीं श्रीमन्! जब वह मनुष्य वहीं उत्पन्न हुआ और बढ़ा है तो वह अवश्य ही मानसाकत के आसपास की सब सड़कों से परिचित होगा।'

'हे वासत्थ! यह सम्भव है कि वह मानसाकत में उत्पन्न हुआ और पला हुआ मनुष्य मानसाकत का मार्ग पूछे जाने पर सन्देह में पड़ जाय परन्तु यह असम्भव है कि यह प्रश्न पूछे जाने पर कि ईश्वर में एक हो जाने का मार्ग कौन सा है, तथागत सन्देह में पड़ जाय। उसे इस में न कोई सन्देह है और न कोई कठिनाई। हे वासत्थ! मैं ब्रह्म को जानता हूं, ब्रह्म के जगत् को जानता हूँ और उस मार्ग को भी जानता हूं जिस का अनुसरण करके ब्रह्म को प्राप्त किया जा सकता है। इसे मैं उसी प्रकार से जानता हूँ जिस प्रकार कि एक ब्रह्म में साम्य प्राप्त किया हुआ और उस के जगत् में उत्पन्न हुआ मनुष्य जानता है।'

महात्मा बुद्ध की उपर्युक्त बात सुन कर वासत्थ ने कहा—'यह सुना है कि 'श्रमण गौतम' ब्रह्म से साम्य प्राप्त करने का उपाय जानता है। अतः हे गौतम, मुझे ब्रह्म में मिल जाने का मार्ग बतलाओ और इस प्रकार हे पूजनीय गौतम! ब्राह्मण जाति की विनाश से रक्षा करो।"'

इसके अनन्तर महात्मा बुद्ध ने वासत्थ को ब्रह्मप्राप्ति के साधनों पर उपदेश दिया है। यहां यह अध्याय समाप्त हो जाता है। इस प्रकरण पर टिप्पणी करना व्यर्थ है। यह स्वयं ही स्पष्ट है कि महात्मा बुद्ध ब्रह्म अर्थात् ईश्वर और वेद के विरोधी नहीं अपितु तत्कालीन ब्राह्मण कहलाये जाने वाले जनसमुदाय के पाखण्ड के विरोधी थे। वह स्वयं अपने को ब्राह्मण और ईश्वर प्राप्ति के मार्गों का जानकार कहते हैं, इस अवस्था में इन्हें नास्तिक या अवैदिक मत का संस्थापक कहना सरासर अन्याय होगा।

१. बौद्ध सुत्त ग्रन्थ, तविग्ग सुत्त, अध्याय १.।

स्मृति

उनकी स्मृति में यों रोती—
इन आंखों के ये मृदु मोती।
चुन चुन कर इन मृदुल करों से—
स्नेह सहित मैं धर लूंगा।
हैं, प्रतिबिम्बित गुण इनमें—

अनन्त प्रतीक्षा

(लेखिका—श्रीमती ऊर्मिलादेवी, 'हिन्दी प्रभाकर' मेरठ)

(१)



ला जो कुछ चाहती थी, उसे अपने मुंह से कह न सकती थी, क्यों कि उस का भविष्य उसके अपने हाथों में नहीं था, —वह अबला थी। परन्तु सतीश का नर-हृदय लीला की इस मूक-भाषा के मधुर और प्रिय भावों ही से सन्तुष्ट नहीं था; वह हृदय के स्पष्ट उद्गारों को उसके मुंह से सुनना चाहता था। पुरुष का साहसी हृदय सम्भवतः अपने भविष्य के कर्तव्य और अकर्तव्य का यथासम्भव शीघ्र निर्णय कर लेना चाहता है, इसी कारण नवयुवक सतीश ने एकाएक कुछ उदासीनता भरे स्वर में कहा—"लीला! तुम्हारे हृदय की अभिलाषा अभी तक मेरे लिये एक रहस्य है। मेरे हृदय में तुम्हारे लिये जो भाव हैं, मुझे अभी तक नहीं मालूम कि तुम्हारे दिल में भी मेरे लिये वही भाव हैं, या नहीं। सच सच कहो लीला! भगवान को साक्षी रख कर यह बतलाओ कि तुम मुझे चाहती हो या नहीं?"

लीला सिहर उठी। उस की आंखें एक बार ऊपर उठीं, और फिर नीचे झुक गईं। उन में आंसू छलछला रहे थे। सतीश ने देखा— लीला रो रही है। मानो वह कह, रही थी—यह भी कोई पूछने की बात है।

सतीश लीला के और निकट चला आया। लीला अब भी उसी तरह सिर झुकाए बैठी थी। सतीश ने जल्दी जल्दी कहना शुरू किया—"मैं जानता हूँ कि तुम्हारे पिता जी के समान मेरी जाति उच्च नहीं है। मेरे पास उतना वैभव भी नहीं है। परन्तु क्या इसी से वह मेरा अनादर कर देंगे? वह तो एक सुधार प्रेमी सज्जन हैं। क्या वह अपनी पुत्री के हार्दिक भावों की भी अवहेलना कर देंगे? नहीं, लीला, तुम भूलती हो। तुम्हारी यह चिन्ता निराधार है। उफ़; तुम तो रोती हो। सुनो, मैं क्या कह रहा हूँ। तुम मेरे साथ विवाह करना चाहती हो या नहीं—तुम्हारे उत्तर से आज मेरा भविष्य सदा के लिये निश्चित हो जायगा।" यह कहते कहते सतीश का स्वर कुछ कांपने सा लगा।

बहुत धीमी आवाज़ में लीला ने कहा—"मुझे अपना भविष्य बहुत भयंकर प्रतीत होता है सतीश! मेरे पिता कट्टर पौराणिक हैं। उनकी समाज-सुधार की बातें बस ऊपर ही ऊपर की हैं। उनका दिल सुधारप्रेमी नहीं है।" लीला बहुत कुछ कहना चाहती थी—परन्तु इस से अधिक कह न सकी।

सतीश ने अधीरता से कहा— "उन की बात जाने दो। तुम स्वयं तो तैयार हो न?"

लीला ने बड़े संक्षेप में कहा— "मेरी सम्मति तो तुम्हें......" सतीश ने देखा— लीला के आंसुओं का सोता एक बार बहुत क्षीण पड़ कर भी पुनः वेग से बहने लगा है।

(२)

लाला हरिकृष्ण अपने गांव के बड़े माननीय व्यक्ति हैं। गांव में उनकी पर्याप्त ज़मीन है। उस की आमदनी से उनका जीवन आनन्द से कटता

है। उनकी स्त्री का स्वर्गवास तभी होगया था, जब उनकी एक मात्र कन्या लीला की आयु केवल दो वर्ष की ही थी। अतएव हरिकृष्ण लीला से अत्यधिक प्यार करते थे, उन्होंने लीला के लिये जहां मन बहलाव का पर्याप्त सामान जुटाया था, वहां उसे और बातों की शिक्षा देने का भी खूब प्रयत्न किया था। वह स्वयं उसे प्रतिदिन दो घंटा नियम पूर्वक पढ़ाया करते थे।

लीला की आयु आठ साल की होजाने पर, उन्होंने उसे एक मिडिल स्कूल में भरती करवा दिया था। लीला की बुद्धि अपनी माता के सामान ही तीव्र थी। जो काम वह एक बार सीख लेती, उसे कभी न भूलती थी। अपनी योग्यता द्वारा उस ने बहुत शीघ्र, अपनी सम्पूर्ण अध्यापिकाओं को मोहित कर लिया।

लीला के पिता चाहते थे कि लीला का विवाह किसी बड़े माननीय उच्च घराने में कर दिया जावे। वह घर की तलाश तभी से करने लगे थे, जब लीला ७ वीं श्रेणी में पढ़ रही थी। अच्छे वर तथा घर की खोज करते करते लीला की आयु चौदह वर्ष की होगई। तब लीला दसवीं श्रेणी की परीक्षा की तैयारी कर रही थी। गांव में उसकी पढ़ाई का प्रबन्ध न हो सकता था, अतः लालाजी ने उसे शहर के एक अच्छे बोर्डिङ्ग हाउस में भरती करा दिया था।

(३)

लाला हरिकृष्ण ने तीसरी बार अपने प्रश्न को दोहराया—"लीला! क्या यह बात सच है?"

लीला इस बार चुप न रह सकी। उस ने बड़े साहस से स्वीकार किया—"हां, सच है।"

हरिकृष्ण को मानो आग लग गई। तथापि बड़ी कठिनता से अपने क्रोध को दबा कर उन्हों ने खिन्न स्वर में कहा—तुम ने मेरे कुल में दाग़ लगा दिया। क्या मैंने इसी लिये तुम्हें इतने लाड़ प्यार से पाला था? मैंने तुम्हें कौनसी यातना दी थी, जिस का तुमने मुझे यह दण्ड दिया है? लीला! मालूम होता है कि तुम्हारे कारण मैं अपनी बिरादरी में अब मुंह दिखाने लायक भी नहीं रहूंगा। जानती हो, इस का नतीजा क्या होगा।"

सम्भवतः लीला अपने भावों के लिये लड़ाई करने का निश्चय कर चुकी थी। उस ने उन्हें बीच में ही रोक कर कहा—"उन में दोष कौन सा है। सिर्फ जन्म की जाति छोटी होने के कारण......"

लाला हरिकृष्ण अब और अधिक बर्दाश्त न न कर सके। कन्या स्वयं इस सम्बन्ध में अपने लिये वकालत करे, उनके पुराने दिमाग़ को यह बात कभी बर्दाश्त न हो सकती थी। उन्होंने गरज कर कहा— "चुप रह निर्लज्जा! कुछ लाज तक नहीं। तुझे किस बुरी घड़ी मैंने पढ़ाना शुरू किया था! कभी आज तक सुना भी है कि वर के सम्बन्ध में किसी कन्या की राय ली गई हो। मैंने तेरे लिये यह भी किया। तुझे अच्छे अच्छे लड़कों के नाम बताये, मगर तू तैयार न हुई। अब लाई है कहीं से ढूंढ कर ऐसा कुलच्छनी लड़का—जिस के न धन है, न मान, न जाति और न नाम।"

लीला को कभी स्वप्न में भी आशा न थी कि उस के पिता, उसके लिये भी ऐसा विकराल रूप धारण कर सकते हैं। पिटी हुई ग़रीब गाय की तरह ये सब वाग्बाण सह कर भी उसने अपने हार्दिक भावों को एक वार और प्रकाशित करने का प्रयत्न किया। मगर उस की चेष्टा व्यर्थ थी। धधकती हुई आग पर रक्खे हुए तवे को जल की दो चार बूंदे ठण्डा न कर सकीं। लीला निराश होगई। वह चुप चाप सिसक सिसक कर रोने लगी।

इसके अतिरिक्त उस के पास कोई और चारा ही न था।

(४)

हरीन्द्र बाबू हाल ही में विलायत से लौट कर आये हैं। उन्होंने विलायत में रह कर आठ वर्ष तक अध्ययन किया है; कई बड़े २ ख़िताब हासिल किये हैं। आशा है कि सरकार से उन्हें कोई अच्छी नौकरी मिलेगी।

हरीन्द्र बाबू के पिता का नाम महेश राय है, आप 'रायसाहब' हैं। इलाहाबाद में आप के बहुत से मकान हैं उन्हीं में से एक को हरीन्द्र बाबू ने अपना निवास स्थान बनाया है।

एक मास व्यतीत हुआ, उन्हीं के साथ लीला का विवाह धूमधाम से हो गया है। सर्वत्र आनन्द मनाये जाने पर भी लीला को किसी ने हंसते हुए नहीं देखा। इस का चेहरा हर समय उदास बना रहता है। घर में खूब चहल पहल रहती है। हरीन्द्र बाबू की मित्र मण्डली हर समय विराजमान रहती हैं। शराब का दौरदौरा प्रायः चला करता है, कभी २ नाचना गाना भी होता है। पर लीला को इस से क्या, उस का स्थान तो एक सूना कमरा ही है। इसी कमरे में वह सारी रात और लगभग सारा दिन व्यतीत करती है। हरीन्द्र बाबू को कार्य्याधिक्य से इतना समय नहीं मिलता कि वह लीला की उदासी का कारण जान सकें।

और सतीश के सम्बन्ध में?—वह न मालूम कहां है। हां, उस के सम्बन्ध में यह किम्वदन्ती अवश्य मशहूर है कि वह कहीं बहुत दूर चला गया है; इतनी दूर चला गया है, जितनी दूर जाकर फिर वापस नहीं लौटा जा सकता। लीला का अन्तःकरण जानता है कि इस पृथिवी की सब बाधाओं और बन्धनों से बहुत ऊपर उठ जाने पर भी सतीश लीला का ध्यान नहीं भुला सका। वह किसी अदृश्य स्थान पर बैठ कर लीला की प्रतीक्षा कर रहा है। लीला को अपनी उस दिन की प्रणय-स्वीकृति स्मरण तो है परन्तु अब यह उस की सामर्थ्य में नहीं रहा कि वह सतीश की 'अनन्त प्रतीक्षा' को 'सान्त' बना सके।

भूत विज्ञान है, भविष्यत् कवित्व। भूत माता है, भविष्यत् पत्नी। भूत सदा करुणा की तरह स्नेहपूर्वक गले लगा कर रोता है, मस्तक पर आशीर्वाद की वर्षा करता हुआ रोता है, भविष्यत् केवल देखता है, नालिश करता है।

—द्विजेन्द्रलाल राय

वेदों में दार्शनिक विचार

(ले०— श्री पं० धर्मदेव जी सिद्धान्तालंकार)

कर्मफल



पुनर्जन्म का सिद्धान्त कर्म फल के सिद्धान्त के बिना अपूर्ण तथा अन्याय्य है। यदि मनुष्य का किया हुआ काम उस के लिए किसी प्रकार का फल नहीं लाता; यदि मनुष्य को उचित तथा अनुचित अपने कर्म के अनुसार इनाम या दण्ड नहीं मिलता तो मनुष्य इस संसार में अच्छे काम क्यों करे और बुरे कामों से बचने का कष्ट क्यों कर उठाये? उस अवस्था में उस के लिए अच्छे या बुरे कामों के परखने की कसौटी ही क्या है? क्यों कि परिणाम में सुखावह कार्य ही अच्छा और दुःखावह बुरा समझा जाता है। इस लिये इस जगत में सुख शान्ति तथा व्यवस्था कायम रखने के लिये कुछ नियम आवश्यक हैं। और उन नियमों के अनुसार मनुष्यों का दण्ड आदि देना भी लाज़मी है। अतएव जिस प्रकार इस जन्म में कर्मों का फल मिलना आवश्यक है, उसी प्रकार अगला जन्म भी हमारे कर्मों का फल स्वरूप होना चाहिए। कर्म फल के सिद्धान्त स्वीकार किये बिना पुनर्जन्म का सिद्धान्त समझ में नहीं आसकता। परमात्मा स्वयमेव अपनी अप्रतिहत इच्छा से मनुष्य को ऊंच नीच अवस्थाओं में पैदा कर देता है—यह कहना परमात्मा को बुरा तथा अन्यायकारी मानना होगा। जब मनुष्य भी किसी से खुश होता है, उसे इनाम देता है, तो क्या वह न्यायकारी दयालु परमात्मा मनुष्य के कर्मों की जांच पड़ताल किये बिना ही उस से नाराज़ या खुश हो जाता है? परमात्मा धर्मात्मा (moral) है, अतः उस का नाराज़ या खुश हो कर दण्ड देना हमारे पाप पुण्य के अनुसार होना चाहिए। मनुष्य को अपने कर्मों के अनुसार अगला जन्म मिलना चाहिए। अतः वेद प्रतिपादित पुनर्जन्म के सिद्धान्त को हम तभी बुद्धिसंगत कह सकते हैं जब कि वेद में हम कर्म फलका सिद्धान्त भी उपलब्ध कर सकें। अर्थात् वैदिक फिलासफ़ी के अनुसार पुनर्जन्म का कारण ईश्वरेच्छा मात्र न हो परन्तु मनुष्य के कर्म ही उस में प्रेरक हों।

इस दृष्टि से जब हम वेद का स्वाध्याय करते हैं तो सब से पहिले जो बात ध्यान आकर्षित करती है, वह है, धार्मिक जीवन बनाने का उपदेश। स्थान स्थान पर पाप से बचने का उपदेश दिया गया है, अच्छे काम करने की आज्ञा दी गई है। उदाहरणार्थः "वयं अनागाः स्याम[1], – व्यहं सर्वेण पाप्मना[2] अव मा पाप्मन् सृज[3] तथा 'एनो मा नि गां कतम च्चनाहम्[4] इत्यादि मंत्र वाक्यों से पाप से बचने की इच्छा प्रकट की गई है। यदि पाप पुण्य का कोई फल नहीं मिलता तो पाप से बचने की प्रार्थना या इच्छा व्यर्थ हैं। इतना ही नहीं, परन्तु 'यो नः पाप्मन् जहासि तमु त्वा जहिमो वयम्[5]' कह कर पाप

१—हम पाप रहित हों। ऋक्। ७।८।७।७।

२—मैं सब पापों से विगत हो जाऊँ। अ०। ३।३१।१

३—हे पाप मुझे छोड़ दे॥ अथर्व०।६।२६।१।

४—किसी दिन भी पाप को प्राप्त न होऊँ।" अथर्व०।५।३।४।

५—हे पाप जो तू मुझे नहीं छोड़ता तो मैं तुझे छोड़ देता हूं। अथर्व०।६।२६।२।

दूर करने के लिये पूरी तरह से कटिबद्ध हो जाना दर्शाता है कि वक्ता पाप से बड़े भारी अनिष्ट की सम्भावना करता है। इसी प्रकार 'सुकृतश्चरेयम्'[1] तथा 'स्वपसो अभूम'[2] कह कर अच्छे कामों की इच्छा प्रकट करना भी इसी बात को पुष्ट करता है कि कर्ता अच्छे कामों के करने से लाभ की सम्भावना करता है। इस लिये यह अनुमान करना कि वैदिक फिलासफ़ी के अनुसार अच्छे कर्मों का फल अच्छा मिलता है और बुरे कामों का बुरा फल होता है; अशुद्ध न होगा। इसी प्रकार एक वस्तु को अच्छा या बुरा कहना दर्शाता है कि एक ही वस्तु का प्रयोग काल भेद या क्षेत्र भेद से भिन्न २ प्रकार का फल देने वाला होता है। अर्थात परिणाममें सुखावह या दुःखावह होने से कोई वस्तु या काम अच्छा और बुरा कहा जाता है। दूसरे शब्दों में उत्तम वस्तु या काम का फल उत्तम और बुरे काम का फल बुरा होता है। अथर्व० ७। ११५। ३, और ४ मंत्र हैं

"यद्देषु वदा यत्समित्यां यद्वा वदा अनृतं वित्तकाम्या।
समानं तन्तुमभिसंवसानौ तस्मिन् सर्वं शमलं साद पायः॥

अर्थः—धन की कामना से जो मैंने साधारण व्यवहार में समिति में अनृत भाषण किया है एक वस्त्र को धारण करते हुए उस पाप को उस में छोड़ देते हैं।

इस मंत्र में अनृत भाषण को सर्व पापों का आश्रय बताया गया है। इसी लिये स्थान २ पर अनृत भाषण से बचने का उपदेश दिया गया है।[3] और 'छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यं वाघति तं सृजन्तु' तथा 'तयोर्यत्सत्त्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत्' मंत्र भी इसी लिये असत्यभाषी को अत्यन्त दण्डनीय बना रहे हैं। इसी कारण ही 'यथा देवेष्वमृतं यथैषु सत्यमाहितम्'[4] मंत्र में देवों (मुक्त या मोक्ष पुरुषों) का मुख्य गुण सत्यता तथा तत्परिणामी अमृतता बताया गया है। क्यों कि सत्याचरण से तथा तत् परिणामी धर्माचरण से मनुष्य देवतात्व को प्राप्त कर सकता है, वह मुक्त हो सकता है। इस लिये सत्य भाषण या सत्य आचरण सब पुरुषों का मूल माना गया है। यह सब व्याख्या वेद में प्रतिपादित नियमबद्ध कर्म फल के सिद्धान्त को पुष्ट करती है। परमात्मा सर्वान्तर्यामी तथा सर्व व्यापक है। यह सब के कामों को भली भांति जानता है। और उस के अनुकूल फल देता है। अतः 'यमयमी संवाद' में यम विवाह का निषेध करता हुआ कहता है—'महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवोधर्तार उर्विया परिख्यन्' अर्थात् महान् परमेश्वर के वीर पुत्र जो द्युलोकका धारण करने वाले हैं, वे खुली दृष्टि से देख रहे हैं। इस मंत्र में वक्ता का तात्पर्य यह है कि परमात्मा हमारे इस काम को देख रहा है। यदि हम यह काम पूरा करेंगे तो वह हमें यथोचित दण्ड देगा। क्योंकि यदि वक्ता अपने अनुचित कार्य से किसी प्रकार के दण्ड की आंशका न रखता हो तो वह उस तरह से कभी अपील न करता। क्योंकि यदि परमात्मा दण्ड नहीं देता या दे सकता तो हमारे एक काम को क्या सब कामों को देखता रहे, इस से किसी को क्यों भय वा आशंका होनी चाहिए। परन्तु वह परमात्मा बुरे कामों का दण्ड दे सकता है और देता है; इस लिये बुरा काम

१—अच्छे काम करूँ॥ अ०।१७।१।२७।

२—सुकर्मी होवें॥ अथर्व।४।२।१९।

३—शतपथ ब्राह्मण।१।१।१—४,

४—यदार्वाचीनं त्रैहायणादनृतं किं चोदिम। आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पात्वंहसः॥१०।५।२२॥ अथर्व०

५. अथर्व०।१०।३।२५।

६. ऋग्वेद।१०।१०।२।

करने में संकोच होता है। इसी प्रकार 'न तिष्ठन्ति न निमिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति' मंत्र भाग से पूर्वोक्त ध्वनि निकलती है। इस तरह पर्याप्त प्रमाणों के आधार पर सिद्ध कर दिया है कि वैदिक फिलासफ़ी के अनुसार प्रत्येक कार्य का फल मिलता है। अच्छे कार्य का फल अच्छा और बुरे कर्म का फल बुरा होता है।

"ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति' न्यायानुसार हम एक और बात का भी विवेचन कर देना चाहते हैं। उपरि लिखित प्रमाणों के आधार पर यह तो मानना पड़ता है कि प्रत्येक कर्म का फल मिलता है। क्या कोई ऐसा भी उपाय (ईश्वरोपसनादि) नहीं जिस से मनुष्य कर्म फल से मुक्त हो जावे। पाप कर के भी प्रायश्चित या प्रार्थना आदि का अनुष्ठान कर के दण्ड से मुक्त हो जावे। यह एक प्रश्न है जिस का हम यहां विचार करना आवश्यक समझते हैं। ईसाईयों का कहना है कि परमात्मा हम सब का पिता है, और वह दयालु है। इस लिये यदि हम कोई पाप कर बैठें तो प्रायश्चित आदि करने से परमात्मा अपने प्रिय पुत्रों को उस पाप के लिये दिये जाने वाले दण्ड से मुक्त कर देता है। यदि परमात्मा को पिता और दयालु कहने से हम उस से प्रार्थना कर के दण्ड से मुक्त हो सकते हैं। यदि यह मांग न्यायानुकूल तथा युक्तियुक्त है तो वेद प्रतिपादित ईश्वर को भी अपने भक्तों के दण्ड क्षमा कर देने चाहिए। क्यो कि वेदों में परमात्मा को पिता कह कर पुकारा गया है और दयालु भी कहा गया है। निम्न मंत्रों में परमात्मा को पिता करके सम्बोधन किया गया है।—

"स नः पितेवसूनवेऽग्ने सूपायनो भव......। ऋक् १, ११. १. ९॥

इन मंत्रों के अर्थ अत्यन्त स्पष्ट हैं। इन में परमात्मा को पिता कह कर पुकारा गया है। इतना ही नहीं कि परमात्मा को पिता कह कर पुकारा गया हो, प्रत्युत "त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ"[1]। मंत्र में परमात्मा को माता भी कहा गया है। पिता की अपेक्षा माता का पुत्र के प्रति प्रेम अधिक होता है। माता के निस्वार्थ तथा सच्चे प्रेम के तुल्य किसी का प्रेम नहीं। यदि परमात्मा माता तुल्य है तो उस में भी पुत्रों के लिए अतिशय प्रेम प्रवाहित होता होगा, इस की हम कल्पना कर सकते हैं। इस प्रकार जहां उसे माता पिता कहा गया है वहाँ साथ २ कतिपय मंत्रों में दयालु भी कहा गया है। परमात्मा को 'शंकरः' सुशेवः' तथा 'सूपायनः' आदि कर के पुकारा गया है। एवमेव ऋग्वेद ७।८७।७ मंत्र में परमात्मा को अपराधियों पर दया करने वाला कहा गया है। इस लिये ईसाइयों के तर्क के अनुसार हमें यह भी आशा रखनी चाहिए कि परमात्मा हमारी प्रार्थना से प्रसन्न होकर हमें दण्ड से मुक्त कर देगा।

परन्तु पूर्व इस के कि इस विषय में वेद की ऋचाओं में इस विषय का अनुसन्धान किया जावे, हमें युक्ति की कसौटी पर परख लेना उत्तम जान पड़ता है। परमात्मा हम सब का पिता है और सब

---

१. ऋग्वेद। १०। १०। ८।

"आ हि ष्मा सूनवे पितापियजत्यापये" ॥ ऋ०। १। २६। ३

"स नः पिता जनिता"। ऋ०। १०। ८२। ३।

"...सखा पिता पितृतमः पितृणाम्"... ऋ०।४।१७।१७।

"अग्निं मन्ये पितरम्"......ऋ०। १०। ७। ३।

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः। स आशिषा...... (ऋ०। १०। ८१। १ इत्यादि

पर दया रखता है, यह ठीक है; परन्तु साथ ही वह न्यायकारी भी है यह हमें न भूलना चाहिए। यदि वह दया करता है तो न्यायानुकूल दया करता है। न्याय तथा दया विरोधी शब्द नहीं समझने चाहिएं। वस्तुतः न्याय तथा दया साथ २ चलते हैं। न्याय से रहित की गई दया, दया नहीं वह केवल दया करने वालों का दिली कमज़ोरी प्रदर्शित करना है। एवमेव न्याय भी ठीक कभी दया रहित नहीं हो सकता। 'न्याय' शब्द ही समाज पर दया तथा व्यक्ति की भलाई को ध्वनित करता है। अतः न्याय रहित हो कर दया करने का कोई अभिप्राय नहीं। यदि परमात्मा न्याय का विचार किये बिना दया करता है तो वह उस समय मनुष्य की भलाई या दया नहीं कर रहा प्रत्युत उस व्यक्ति को बिगाड़ रहा है और समाज की व्यवस्था को शिथिल कर रहा है। कोई भी बुद्धिमान पुरुष किसी राजा से अपने पुत्र के प्रति की गई क्षमा (दया) न्यायानुकूल तथा उचित नहीं कह सकता। उस राजा का अपने पुत्र को क्षमा कर देना पुत्र को बिगाड़ने वाला तथा प्रजा में व्यवस्था को शिथिल कर देने वाला होगा। इस लिये यदि परमात्मा न्यायकारी, दयालु पिता है, तो हमें उस से यह आशा न करनी चाहिए कि वह प्रार्थना आदि के वश में आकर हमारे किये गए पापों का हमें फल न देगा। यह हो सकता है कि प्रायश्चित्त आदि से भविष्य में होने वाली भयंकर परिणाम की भयंकरता को बहुत कुछ कम करें, परन्तु उस परिणाम से बिलकुल मुक्त हो जावें यह सम्भव नहीं। अपथ्य कर लेने के बाद उपवास तथा औषधी आदि सेवन कर लेने से हम परिणाम की भयंकरता को कम कर सकते हैं परन्तु यह नहीं हो सकता कि अपथ्य करने का कोई असर न पड़े। इस कारण प्रार्थना तथा प्रायश्चित आदि से दण्डमुक्त होने की कल्पना युक्ति युक्त नहीं कही जा सकती।

अब हम अधिक विस्तार न कर के वैदिक ऋचाओं के आधार पर कुछ विवेचना करना चाहते हैं। वेदों में कुछ ऐसे मंत्र मिलते हैं जिन के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि परमात्मा प्रार्थना आदि करने पर कभी २ दण्ड से मुक्त भी कर देता है। उदाहरणार्थः अथर्व० १।१०। ३ है—

"एकशतं लक्ष्म्यो मर्त्यस्य साकं तन्वा जनुषो जाताः। तासां पापिष्ठा निरितःप्रहिण्मः शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नियच्छ ॥ ३॥

"एता एना व्याकरं खिले गा विष्ठिता इव। रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम् ॥ ४॥

अर्थः— मनुष्य के शरीर के साथ जन्म से ही एक सौ एक लक्ष्मियां पैदा हुई हैं। उन लक्ष्मियों में से पापी लक्ष्मियों को यहां से निकाल देते हैं। हे सकल सम्पत्ति शालिन् प्रभो! हमें कल्याण कारिणी लक्ष्मियां दो ॥ ३॥

मैंने इन पापी और कल्याण कारिणी लक्ष्मियों को पृथक् २ कर दिया है। जो पुण्य लक्ष्मियां है, वे रमण करें और जो पापी लक्ष्मियां हैं उन्हें मैं नष्ट करता हूं ॥ ४॥

इन दो मंत्रों में दो प्रकार की लक्ष्मियां बताई गई हैं। एक 'पापी' और दूसरी 'शिवा' या 'पुण्य' एक लक्ष्मी सामान्य का 'शिवा' और 'पापी' नाम से दो प्रकार का भेद करना यही दर्शाता है कि इन के फल में भेद है। जिस लक्ष्मी से परिणाम में दुःख मिलता है वह पापी है और जो परिणाम में सुखकारिका है वह 'पुण्या' है। इस प्रकार के उद्धरण यद्यपि स्पष्ट तौर से कुछ नहीं कहते तथापि कुछ इशारा ज़रूर कर रहे हैं जो हमें कर्म

फल के सिद्धान्त पर पहुँचाते हैं। उक्त कर्म फल के सिद्धान्त का न केवल संकेत मात्र ही उपलब्ध होता है, प्रत्युत कई मंत्रों में इस सिद्धान्त का स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादन भी किया गया है। उदाहरणार्थ ऋक्। ४। ५। ५। हैः—

"अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः।
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम्॥

अर्थः—भ्राता आदि बन्धुरहिता, विषय गामिनी, युवती स्त्रियों के समान पति विद्वेषिणी, दुराचारिणी पत्नी के समान मानस-सत्य रहित तथा वाचिक सत्य विहीन मनुष्यगण पापी होते हुए इस अत्यन्त अगाध शोक आदि स्थान को उत्पन्न करते हैं।—

इस मंत्र में पापाचरण का फल शोकाकुल, चिन्तित तथा दुःखित रहना बताया गया है। अर्थात् असत्य व्यवहार का फल बुरा होता है। इसी बात को निम्न दो मंत्रों से अधिक स्पष्ट करते हैंः—

"सुविज्ञातं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते। तयोर्यत् सत्यं यतरहजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत्॥ ऋ०। ७।१०४। १३॥

"न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्। हन्ति रक्षोहन्त्यासद्वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते। ऋ। ७। १०४। १३॥

अर्थः—विवेकी मनुष्य के लिये यह सुविज्ञेय है कि सत् तथा असत् दोनों प्रकार के वचन परस्पर विरोधी हैं। उन में से जो सत्य और अकुटिल हैं उनकी सोम (परमात्मा) रक्षा करता है। और असत् का वह नाश कर देता है॥ १॥ परमात्मा पापी को नहीं बढ़ाता है। वह मिथ्यावादी बलवान पुरुष को भी नहीं छोड़ता अर्थात् उसे भी दण्ड देता है। वह राक्षस तथा असत्यवादी को मारता है। वे दोनों ही परमात्मा के बन्धन में सोते हैं॥

परमात्मा (सोमः = शान्तिदायक) उचित अवस्था रखने के लिये पापी को दण्ड देता है और पुण्यात्मा की रक्षा करता है। इस मंत्र में जहां कर्मफल के सिद्धान्त को स्वीकार किया है, वहां साथ २ कर्म फल देने वाला परमात्मा बताया गया है। बौद्ध दार्शनिकों की तरह कर्मों को स्वयं फलदान का कर्त्ता नहीं माना गया। यद्यपि किये हुए कर्म का फल मिलना इतना स्वाभाविक या प्राकृतिक है कि हमें मालूम नहीं पड़ता है कि किसी व्यक्ति ने यह फल दिया है। हम समझते हैं कि क्योंकि हम ने भोजन अधिक किया था इस लिये प्रकृति के नियमों के अनुसार हमारा शरीर यंत्र खराब हो गया और हम बीमार पड़ गये। यह ठीक है कि जो कुछ फल हमें मिलता है वह प्रकृति के नियमों के अनुकूल; अत एव प्रकृति के नियमों के रूप में मिलता है। परन्तु वे नियम बिना किसी कर्त्ता के हम पर लागू होते रहते हैं यह नहीं कह सकते। इन नियमों का कोई नियन्ता होना चाहिए और उस नियन्ता को परमात्मा कहते हैं। वह उन प्राकृतिक नियमों द्वारा हम पर शासन कर रहा है। उस को इस नियंत्रण के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। हमारे श्वास प्रश्वास की तरह उस का यह काम बिलकुल स्वाभाविक है। इस लिए यह कहना कि प्रत्येक कार्य का फल मिलता है या प्रत्येक कर्म का परमात्मा फल देता है—एक ही बात है।

इसी प्रकार अनेक मंत्रों में परमात्मा को कर्मफल दाता कहा गया है। परमात्मा के प्राकृतिक नियम रूपी पाश सर्वत्र फैले हुए हैं। वह उनके द्वारा सब जगत् की व्यवस्था कर रहा है। जो मनुष्य पाप करता है, वह कभी इन से नहीं बच सकता अथर्व० ७। ८३। ३, ४ मंत्र हैं—

"उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम॥
"प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान्य उत्तमा अधमा वारुणा मे। दुष्वप्न्यं दुरितं निष्वा स्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम्॥

अर्थः-हे पाप निवारक देव! मेरे ऊर्ध्वस्थित तथा निम्न भाग के पाश को तथा मध्यम लोक में विस्तृत जाल को शिथिल करो। हे ज्योतिमय प्रभो! हम आप के नियमों में रहते हुए निष्पाप होकर बन्धन रहित मोक्ष के अधिकारी बनें॥ १॥ हे पाप निवारक देव! आप के ऊपर, नीचे तथा बीच में फैलाये हुए जो पाश हैं, उन से हमें मुक्त कीजिये, जिससे हम पुण्यलोक—मोक्ष—को प्राप्त हों।

इन दो मंत्रों में परमात्मा के सर्वत्र व्याप्त पाशों का वर्णन किया गया है। कोई पापी पुरुष उन से बच नहीं सकता। इसके अतिरिक्त एक और बात जो इन मंत्रों में पाई जाती है वह ध्यान देने योग्य है। इन मंत्रों में मुक्ति का कारण परमात्मा की इच्छा नहीं कही गई, प्रत्युत मनुष्य के उत्तम कर्म ही-मोक्ष के साधन बताये गए हैं दोनों मंत्र उत्तरार्ध इसी बात को स्पष्ट करते हैं।—

"अथा वयमादित्यव्रते तवानागसो अदितये स्याम"॥
"दुष्वप्न्यं दुरितं निष्वा स्मदथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम्"॥

इन दोनों मंत्रवाक्यों में परमात्मा से निष्पाप जीवन व्यतीत करने की प्रार्थना की गई है। इस से यह अभिव्यक्त होता है कि मोक्षप्राप्ति पापरहित होने से तथा पुण्य करने से होती है। अर्थात् पाप शून्य होने का मोक्ष स्वाभाविक परिणाम है। मोक्ष प्राप्ति ईश्वर की स्वेच्छाचारिता पर आश्रित नहीं; प्रत्युत मोक्ष वह उत्तम पद है जिसे प्रत्येक पापरहित मनुष्य प्राप्त कर सकता है। कर्मफल-सिद्धान्त के निदर्शन के लिये और अधिक क्या लिखा जावे। ईश्वरसिद्धिसूक्त अथर्व०। २०। ३४। १० में लिखा है-"यः शश्वतो महयनो दधाना न वमन्यमानाँ छव जिघान"। अर्थात् इन्द्र वह है जो अत्यन्त पापी नास्तिकों का नाश करता है। इस मंत्र में पापियों का नाश करना भी परमात्मा का स्वाभाविक गुण बताया गया है।

इसी प्रकार वरुण सूक्त में वरुण की व्यापकता का सुन्दर तथा हृदयङ्गम वर्णन करते हुए उसके सर्वत्र व्याप्त पाशों का वर्णन किया गया है[1]। वे पाश दुष्कर्म करने वालों को पाश में जकड़ लेते हैं। पापी मनुष्य दैवी दुर्घटनाओं द्वारा अपने किये का फल भोगता है। परन्तु वे पाश सत्य व्यवहार करने वाले अकुटिल मनुष्य को नहीं बांधते। इस प्रकार "छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यं वाघति तं सृजन्तु" मंत्र भाग कर्मफल के सिद्धान्त की दूसरी तरह व्याख्या कर रहा है। बुरे कार्य करने वाले पापी मनुष्य को दण्ड मिलता है और उत्तम आचरण वाला सुखी रहता है।

वेद में सत्य तथा अनृत के आधार पर पाप पुण्य का विभाग किया हुआ है। सत्य से अभिप्राय पुण्य मात्र है और अनृत (असत्य) से पाप मात्र तात्पर्य समझना चाहिए। सब पुण्य कर्मों का आधार सत्यभाषण या सत्य व्यवहार माना

१. ये ते पाशा वरुण सप्त सप्त त्रेधा तिष्ठन्ति विषिताः रुशन्तः। छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यं वाघति तं सृजन्तु॥ अथर्व। ४। १६। ६। शतेन पाशैरभिधेहि वरुणैनं मा ते मोच्यनृतवाङ्नृचक्षः। आस्तां जाल्म उदरं संश्रपित्वा कोश इवाबन्धः परिकृत्यमानः॥ ७॥ यः समाम्यो यो व्याम्यो यः सन्देश्यो वरुणो यश्च विदेश्यः। यो दैवो वरुणो यश्च मानुषः। अथर्व०। ४। १६। ८।

गया है। सब पापों का मूल कारण अनृत भाषण या अनृत व्यवहार माना गया है। शतपथ ब्राह्मण का निम्न वाक्य "अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमीति तन्मनुष्येभ्यो देवानुपैति" सच्ची वैदिक स्पिरिट को लिये हुए प्रतीत होते हैं। अथर्व० १२। ३। ५२। में अनृत को सब पापों का मूल कारण बताया गया है।—

* यदुवक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु।
राज्ञस्त्वा सत्यधर्मणो मुञ्चामि वरुणादहम्॥
अथर्व० १। १०। ३॥

अर्थः—हे मनुष्य! जिह्वा से जो तू ने झूठ बोला है, अथवा कोई बड़ा भारी पाप किया है। उस पाप से मैं तुझे सत्यधर्मा वरुण के पाश से मुक्त करता हूं। इसी प्रकार—

"यत् किञ्चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि। अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः॥
ऋक्। ७। ८९। ५॥

"यच्चिद्धि ते पुरुष त्रा यविष्टा चित्तिभिश्चकृमा कच्चिदागः। कृधी ष्वस्माँ अदितेरनागा व्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने॥ ऋक्। ४। १२। ४॥

अर्थः-हे परमेश्वर! हमने जो कोई अपराध श्रेष्ठ मनुष्यों के प्रति किया है, अथवा अज्ञान से जो आप के नियमों का हम उल्लंघन करते हैं, हे देव! उस पाप के निमित्त आप हमारा हनन न करो॥१॥ हे परमेश्वर चित्त दौर्बल्य के कारण अज्ञान से जो कोई पाप हमने किया है, हे देव! मोक्षलाभ के लिये आप हमें उस पाप से रहित कीजिये और हमारे सब पापों को शिथिल कीजिये॥ २॥

इन मंत्रों से ऐसा सन्देह होता है कि प्रार्थी को आशा है कि परमात्मा अपने भक्तों को कभी २ दण्ड से मुक्त कर देता है। परन्तु वास्तव में क्या यह मंत्र इस सिद्धान्त की पुष्टि कर रहे हैं; यह हमने विचारना है।

यदि इन मंत्रों के शब्दों पर ध्यान दिया जावे तो यह हम कदापि नहीं कह सकते कि परमात्मा अपने भक्तों को पाप का दण्ड नहीं देता। इन मंत्रों में दण्ड से बचने की प्रार्थना नहीं की गई, प्रत्युत पाप से बचने की प्रार्थना की गई है। यदि पाप के परिणाम (दण्ड) से बचने की प्रार्थना की गई होती तो हम यह कल्पना कर सकते कि परमात्मा अपने भक्तों को दण्ड से मुक्त कर देता है। परन्तु इन मंत्रों में तो पाप से बचने की प्रार्थना की गई है। इन से यह तो अनुमान कर सकते हैं कि परमात्मा की भक्ति से मनुष्य के पाप छूट जाते हैं अर्थात् उस की पाप की ओर से प्रवृत्ति हट जाती है। परन्तु मनुष्य को अपने किए गए पापों का दण्ड नहीं मिलता यह ध्वनि नहीं निकलती है। अथर्व०। १। १०। ३। में परमात्मा को 'सत्यधर्मा' कहा गया है अर्थात् वह सत्य धर्म वाला है। उसे सत्यधर्मा सम्बोधन कर के उस से अनृत या वृजिन के दण्ड से मुक्ति पाने की आशा करना दुराशामात्र है, असंगत है। इस लिये उपरिलिखित प्रथम तथा तृतीय मंत्र से तो यह परिणाम हम किसी तरह नहीं निकाल सकते कि परमात्मा अपने भक्तों को दण्ड से मुक्त कर देता है। हां द्वितीय मंत्र ऋक्। ७। ८९। ५। का 'मानस्तस्मादेनसो देव रीरिषः' पद अवश्य प्रमा-

* पृष्ठ ३२८ पहला कालम की १७ वीं पंक्ति के नीचे से ("यदवत्तु वदा—' मन्त्र से) लेकर पृष्ठ ३३० पृष्ठ, दूसरा कालम की ९ वीं लाइन तक के भाग को पृष्ठ ३३३ प्रथम कालम आठवीं पंक्ति के बाद पढ़िये।

त्मक है इस मंत्र में पाप के दण्ड-हिंसा-से बचने की प्रार्थना की गई है। जहां एक जगह यह लिखा है कि "यः शश्वतो मह्येनो दधानानवमन्यमानाँ छर्वा जघान'।" वहां दूसरे स्थान पर "मानस्तस्मा देनसो देव रीरिषः" मन्त्र से दण्ड मुक्त होने की आशा है। परन्तु हमारी सम्मति में यह मन्त्र किसी और बात का निर्देश कर रहा है। इस मन्त्र में यह दर्शाया गया है कि अनजाने किये गये पापों का दण्ड महान् नहीं होता। बड़े भारी पाप करने वाले को मृत्यु दण्ड मिलता है और अनजाने किये हुए पाप पर मृत्यु दण्ड नहीं मिलता। मनुष्य कुछ जान बूझ कर पाप करता है और कुछ बिना जाने बूझे उस से हो जाते हैं। परन्तु हरएक पाप का एक समान दण्ड मिलना अनुचित है। पाप की मात्रा तथा अतिशयिता के अनुसार दण्ड की मात्रा होनी चाहिए। इस लिए मृत्यु दण्ड तो 'मह्येनो दधानान्' बहुत बड़े पापियों के लिए बताया गया है। परन्तु जिन से कोई अनजाने पाप हो गया है उन को मृत्यु दण्ड देना अनुचित है। उपर्युक्त मन्त्र ऋक् ७। ८६। ५ में अनजाने ('अचित्ती') किये गये पाप से मृत्यु दण्ड न होने की प्रार्थना की गई है। इस लिए यदि इन मंत्रों से हम कोई परिणाम निकाल सकते हैं तो वह यह है कि जान बूझ कर किये हुए बड़े भारी पाप के लिए मृत्यु दण्ड मिलता है और अनजाने किये गये पाप के लिए मृत्यु दण्ड नहीं मिलता। पाप का दण्ड मिलता ही नहीं यह परिणाम हम इन मंत्रों से कभी नहीं निकाल सकते, अन्यथा 'यो मृडयति चकुषे चिदागो वयं स्याम वरुणे अनागाः' इत्यादि प्रार्थनाओं का कोई तात्पर्य ही नहीं रहता। इस मन्त्र में जब यह कह दिया गया है कि परमात्मा अपराधियों पर भी दया करता है तो फिर पाप से बचने की प्रार्थना क्यों की गई ? यदि परमात्मा अपराधियों पर इतनी दया करता है कि उन्हें दण्ड ही नहीं देता तो फिर पाप से बचने का कष्ट ही क्यों कर किया जाय। पाप से बचने की इच्छा इसी लिए बनी रहती है क्योंकि इस से मनुष्य को परिणाम में दुःख भुगतना पड़ता है। इस कारण उपर्युक्त मन्त्र में परमात्मा को दयालु कहते हुए भी जो निष्पाप होने की प्रार्थना की गई है उस का यही तात्पर्य है कि परमात्मा अपराधियों पर भी हित बुद्धि रखता है, उन से द्वेष कर के उन को दण्ड कभी नहीं देता। उन पापी पुरुषों की वह हित कामना करता है। यह सब कुछ होते हुए भी वे पापी मनुष्य तब तक पूर्ण सुखी नहीं हो सकते जब तक वे निष्पाप न हो जावें। इस लिए वेद मन्त्रों के आधार पर हम यह कभी नहीं कह सकते कि परमात्मा प्रार्थना आदि के वश में आकर पापी भक्त को दण्ड से मुक्त कर देता है। इस बात को अब यहीं समाप्त कर के हम पुनः अपने प्रकृत विषय पर आते हैं।

अब तक हम यह दिखा चुके हैं कि वैदिक फ़िलासफ़ी के अनुसार प्रत्येक प्राणी को अपने किये प्रत्येक कर्म का कभी न कभी कुछ न कुछ फल अवश्य मिलता है। यद्यपि प्रायश्चित्त और ईश-प्रार्थना आदि के द्वारा मनुष्य अपने को पवित्र तथा पाप रहित बना सकता है, परन्तु प्रार्थना आदि करने से परमात्मा किसी पापी को दण्ड से मुक्त नहीं करता। ईश प्रार्थना तथा प्रायश्चित्त आदि का यही लाभ होता है जैसा कि सांख्यकारिकाकार श्री ईश्वरकृष्ण ने वैदिकी हिंसा के विषय में विचार करते हुए लिखा है—

"मृष्यन्ते हि पुण्यसम्भारोपनीतस्वर्गसुधा-महाह्रदावगाहिनः कुशलाः पापमात्रोपसादितां दुःखवह्निकणिकाम्।"

---

१. अथर्व. २०। ३४। १०

परन्तु अब हमने यह विचार करना है कि पुनर्जन्म का कारण भी कर्मफल है या ईश्वरेच्छा। यद्यपि कर्मफल तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्तों का पृथक् पृथक् मिल जाना कर्मानुकूल पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वयंसिद्ध बना देता है तथापि इस विषय को कुछ अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ एक मन्त्रों का उपस्थित करना कुछ आवश्यक मालूम होता है। अथर्ववेद ११ काण्ड ८ सूक्त में कर्म की बड़ी महिमा दर्शायी गई है। इस सूक्त के आधार पर हम निश्चय पूर्वक कह सकते हैं कि परमात्मा जीवों के कर्म के अनुसार यह विश्व उत्पन्न करता है—यह एक वेद सम्मत सिद्धान्त है। विवाह का आलङ्कारिक रूप लेकर ही सृष्टि की उत्पत्ति का कुछ वर्णन किया गया है। इस सूक्त का प्रथम मन्त्र इस प्रकार है—

यन्मन्युर्जायामावहत् संकल्पस्य गृहादधि।
क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरोऽभवत्॥
अथर्व ११।८।१॥

अर्थ-जब मन्यु (मन्यते ज्ञायते सर्वं जगत् येन स परमात्मा) संकल्प के घर से जाया (जायते सर्वं जगत् यस्यां सा जाया प्रकृतिः) को लाया उस समय कौन स्त्री पक्ष के थे, कौन बराती थे और कौन मुख्य वर था?

इस प्रश्न का अगले मन्त्र में उत्तर दिया गया है—

तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे।
त आसं जन्यास्ते वराः ब्रह्मज्येष्ठ वरोऽभवत्॥
अथर्व ११।८।२॥

अर्थात् इस सलिलावस्था में तप और कर्म ही जन्य तथा बराती थे, और मुख्य वर ब्रह्म था।

इस मन्त्र से पहले मन्त्र के 'मन्यु' शब्द से यह अत्यन्त स्पष्ट होगया है कि मन्यु का अर्थ क्रोध (Fury[1]) अथवा उत्ताप (Ardour[2]) नहीं, प्रत्युत ब्रह्म (परमात्मा) है। ब्रह्म और प्रकृति के विवाह का प्रबन्ध करने वाले तप (ईश्वर का सृष्टव्य पर्यालोचन रूपी ज्ञान[3]) तथा (जीवों के) कर्म थे। सृष्ट्युत्पत्ति में इन दोनों का भी हिस्सा है। परन्तु क्या दोनों कारण स्वतन्त्र रूप से सृष्टि की उत्पत्ति में कारण हैं या किसी के आश्रित होने से ये कारण हैं। अर्थात् क्या ईश्वर को सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा स्वयं हो जाती है या उस का प्रेरक कारण कुछ और है। इस जिज्ञासा को अगला मन्त्र स्वयं पूर्ण करता है।

---

१. The Atharva Veda Sanhita-By Whitany पृष्ठ ६४०

२. The Hymns of the Atharva Veda-By Griffith Vol. II.

३. यः सर्वज्ञः यः सर्व

जल-चिकित्सा

(लेखक—श्री पं० देवराज जी विद्यावाचस्पति)

हृदय की धड़कन

यह रोग, चाहे रक्त संचार के अनियमित होने से हो और चाहे हृदय की रचना के बिगड़ जाने से हो, आमाशय के गढ़े में वर्तमान वातनाडिपुञ्ज के क्षोभ से होता है। अतएव इसकी चिकित्सा निम्न लिखित प्रकार से की जाती है। उदर पर गीला तौलिया बांधो। आमाशय के गढ़े पर गर्म पानी से सेक करो। ठंडे पानी से सीवन और पांव को स्नान कराओ। यह चिकित्सा प्रायः प्रयोग में लाई जाती है। हृदय जैसे अङ्ग की चिकित्सा के लिये छोटी से छोटी क्रिया करते हुए भी बहुत सावधान रहना चाहिये। अतः गीला तौलिया उसी समय लपेटना चाहिये जिस समय श्लैष्मिक कला और त्वचा ज्वर से अधिक आक्रान्त हों। यदि रोगी बहुत दिनों तक लम्बा खिंच जावे तो ऐसा न किया जावे। कभी कभी बीच में कुछ दिन का अवकाश दे देना चाहिये। ठण्डे खुले पानी में तो स्नान न कराया जाय, परन्तु जो जल ६० अंश से अधिक ठंडा न हो उससे स्नान कराया जाय। जिस गर्म पानी से सेक किया जाय वह अत्यधिक गर्म न हो। उपर्युक्त कुछ भी करते हुए पसलियों को स्पर्श न हो। स्पर्श होने से हृत्स्पन्द को उत्तेजना मिलती है। दबाने का काम भी बदलते रहना चाहिये। दबाने का काम लगातार जारी रखने से हृदय क्षुब्ध हो जाता है। सीवन स्नान ६० अंश के जल से लगातार आधघंटे तक लेने चाहियें। इससे हृदय की धड़कन कम पड़जाती है। पांवों को स्नान कराने से आशय में से द्रव्य के निकलने पर प्रभाव उत्पन्न होता है, और प्रायः आन्तर अङ्गों को आराम मिलता है। सारांश यह है कि चिकित्सा शामक की जाती है।

मलबन्ध

आजकल यह कहना शायद असत्य नहीं है कि पाखाना फिरने के लिये लोग जीते हैं, जीने के लिये पाखाना नहीं फिरते हैं। आंतों को खाली करने की समस्या के आगे तर्कना शक्ति की तमाम लम्बी २ दौड़ें और कल्पना शक्ति की ऊंची २ उड़ानें सब पीछे पिछड़ जाती हैं।

यह बड़े ही शोक बात है कि आंतों के विषय में इतनी चिन्ता। इस दोष में उन चिकित्सकों का भी बड़ा भारी भाग है जो न तो कर्म कुशल ही हैं और नाहिं कर्म से अभिज्ञ हैं। ये लोग पनसारी और अत्तार हैं जो चिकित्सा करते फिरते हैं, रोगी की शारीरिक अवस्था को तो पहिचानते ही नहीं, बल्कि अनेक स्थानों में मूर्खतापूर्ण कार्य कर बैठते हैं। अनेक परिवारों के साधारण नौकर जो केवल बूढ़े होने के कारण बड़े अनुभवी समझे जाते हैं इस दुष्ट आदत को छुड़ाने का बहुत यत्न करते हैं और दस्त लगा २ कर रोगी को मार डालते हैं। विरेचन द्रव्यों का अति सेवन आयु को क्षीण करता है। विरेचन द्रव्यों का सेवन करते हुए रोगी बचा भी तो उसका मरना जीना बराबर सा रहता है। उसको अपना जीवन बोझ मालूम पड़ता है। इस पुस्तक को पढ़ने वाले जो लोग आयुर्वेद शास्त्र से अनभिज्ञ हैं और चिकित्सा का कार्य नहीं करते हैं, उनको संक्षेप से यह समझाने का प्रयत्न करता हूं कि आंतें किस प्रकार कार्य करती हैं, जिससे उनको पता लगेगा कि उस कार्य में हस्ताक्षेप करना

कितना निरुपयोगी और हानि कारक है, और साथ ही आंतों का स्वाभाविक कार्य एक ऐसा कार्य है जो शरीर के लिये हानि कारक नहीं है।

आमाशय और फेफड़ों के कार्यों के द्वारा जब भोजन का रक्त बन चुकता है, तब वह रक्त शरीर के सब धातुओं की सूक्ष्मतम रक्तवाहिनियों में गुज़र जाता है। इन रक्तवाहिनियों में पोषण और निस्सरण के बड़े कार्य होने लगते हैं। पोषण कार्य से अङ्गों में स्थूल पदार्थ धरा जाता है और निस्सरण कार्य से द्रव और वायवीय भाग रक्खे जाते हैं। परन्तु सम्पूर्ण ठोस पदार्थ और बहुत सारे द्रव पदार्थ भी रक्त में थोड़ी ही देर के लिये ठहरते हैं— उनका स्थिति काल बहुत ही थोड़ा है। ठोस पदार्थ टूट जाते हैं और शिराओं की चूसने की क्रिया से फिर रक्त के प्रवाह में चले जाते हैं। यही हाल वायवीय और द्रव पदार्थों के साथ भी होता है। मस्तिष्क, अस्थि, मान्स, बन्धनी आदि का प्रत्येक भाग फिर २ द्रवीभूत होता रहता है, और श्लेष्मा, लाला, पित्त, halitus आदि का लगभग प्रत्येक बिन्दु बार २ चूसा जाता है और बार २ चक्कर लगाता रहता है। सम्पूर्ण सञ्चित हुए ठोस पदार्थ का प्रत्येक रासायनिक तत्व और इसी प्रकार सम्पूर्ण स्रावों का प्रत्येक रासायनिक तत्व रक्त में विद्यमान रहता है।

इन स्रावों में से कुछ स्रावों का यह काम है कि शरीर से टूटे हुए और द्रवी भूत हुए ठोस पदार्थ के रासायनिक समासों को उठा ले जाते हैं। ये नत्रजन के समास कहलाते हैं, क्योंकि इन में प्रधान तत्व नाईट्रोजन होता है। मूत्र के अन्दर मूत्र मार्ग से ये शरीर के बाहिर निकलते रहते हैं, और शौच के अन्दर भी मलाशय में इनका स्राव होता रहता है।

इसलिये जो पदार्थ शरीर के पोषण के लिये उपयुक्त नहीं है और यदि शरीर में रक्त के अन्दर रहे तो हानि पहुँचावे उस पदार्थ को मनुष्य की प्रकृति लगातार शौच के रूप में बाहर निकालती रहती है।

इस में कुछ भी सन्देह नहीं है, यह इतना ठीक है कि जिस समय मलाशय रक्त में से मल को खैंचने में असमर्थ हो जाता है, उस समय उस मल को निकालने का अत्यधिक कार्य त्वचा पर आ पड़ता है। स्मैड्ले ने ऐसे अनेक रोगी देखे हैं जिन की त्वचा में से मल निकलने के कारण उनकी त्वचा से शौच की तीव्र बदबू उठती रहती थी। कोई भी आदमी अपने साधारण स्वास्थ्य की अवस्था में यह बात देख सकता है कि जब पूर्व की अपेक्षा शौच की मात्रा कम आती है तब उस के मूत्र की राशि बढ़ जाती है, और इस के विपरीत जब शौच की मात्रा बढ़ जाती है तो मूत्र की मात्रा कम हो जाती है। इस प्रकार जब एक मार्ग से रक्त की शुद्धि बन्द हो जाती है तब प्रकृति दूसरे मार्ग से अधिक कार्य लेने लगती है।

इस प्रकार मालूम होता है कि मलाशय की श्लैष्मिक कला से होने वाले स्राव का नाम उसी प्रकार मल या शौच है, जिसप्रकार आमाशय की श्लैष्मिक कला से होने वाला स्राव आमाशयिक रस या पाचक रस है; अश्रु ग्रन्थियों की श्लैष्मिक कला से होने वाला स्राव अश्रु है, और बाह्य कर्ण की श्लैष्मिक कला से होने वाला स्राव कर्ण किट्ट है, इत्यादि। संक्षेप में, जिस प्रकार शरीर के अन्य स्राव हैं उसी प्रकार मल भी स्राव है। परन्तु चूंकि मल शरीर से बाहिर निकलने के लिये रक्त में से स्रुत होता है अतः इस को स्राव या अन्तः स्राव न कहकर बहिः स्राव कहा करते हैं। लोग नामों के

पीछे मरते हैं प्रक्रिया की ओर ध्यान नहीं देते। चूंकि शौच बहिः स्राव के नाम से कहा जाता है अतः लोग अपने दिमाग़ में यह बात घुसेड़ लेते हैं कि वह हमेशा वहां होता है और उसे अवश्य निकाल फेंकना चाहिये। इस बात का कुछ ख़याल नहीं करते कि निकाल फेंकने के उपायों के अवलम्बन का क्या प्रभाव पड़ेगा? ज़रा नहीं सोचते कि 'शौच आता कहां से है?' यदि इस प्रश्न का उचित उत्तर सोच लिया जाता तो संसार में शारीरिक और मानसिक कष्ट पाने वाले अनेक मनुष्यों के कष्ट दूर हो जाते और विरेचन के अभ्यासियों (colocynth eaters) की अनेक जानें बच जातीं।

'शौच आता कहां से है?' इस प्रश्न का उत्तर सीधा है कि जहां से अन्य स्राव आते हैं, अर्थात् रक्त में से। शौच उस रक्त में से आता है जो मलाशय को आवृत करने वाली श्लैष्मिक कला में वर्तमान रक्त वाहिनियों में घूमता है। कभी २ इस शौच में जीर्ण न हुए या जीर्ण न हो सकने वाले भोजन का भाग रहता है। जीर्ण न हो सकने वाले पदार्थों में उदाहरण के तौर पर फलों के छिलके, चणों की चुन्नी और गेहूं भूसा आदि पदार्थ हैं, जिन पर पाचक रस का कोई प्रभाव हुआ प्रतीत नहीं होता। शौच में ये पदार्थ गौण हैं शौच के मुख्य भाग नहीं हैं। चूंकि शौच रक्त में से बाहिर आता है अतः उस की राशि और गुण धर्म रक्त की राशि और गुण धर्म पर अवलम्बित रहते हैं जब कि वह रक्त मलाशय के आवरण में विभक्त हुआ २ है।

परन्तु चूंकि यह रक्त उन रक्त वाहिनियों में चक्कर लगाता है जिन्हें वातग्रान्थियों (ganglions) की वात नाड़ियों से शक्ति प्राप्त होती है अतः शौच सम्बन्धी स्राव भी अन्ततः उसी वातिक पदार्थ पर ही अवलम्बित रहता है ऐसा जानना चाहिये। शरीर के अन्य स्रावों के समान वात ग्रन्थियों के वातिक पदार्थ पर कारणों का प्रथम प्रभाव पड़ता है। इस प्रभावके कारण मलाशय की रक्त वाहिनियों की संकोचक क्रिया में फ़र्क पड़ जाता है। फ़र्क पड़ जाने से उस स्थान में रक्त की राशि कम हो जाती है। रक्त की राशि कम हो जाने से अन्त को रक्त में से मल का स्राव भी कम होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि **मलाशय का स्रावण कार्य इस में वर्तमान रक्तवाहिनियों की रक्त की मात्रा पर और रक्तवाहिनियों पर लगने वाली वातिक शक्ति के प्रकार पर निर्भर है।**

अब कल्पना करो कि एक मनुष्य के सम्पूर्ण शरीर में शुद्ध रक्त की बहुत बड़ी राशि मौजूद है, इतनी अधिक कि उस शरीर के सब भागों में स्रावके प्रयोजन भली भांति सिद्ध हो सकते हैं, और मलों का कार्य भी भली भांति चल सकता है। ऐसे मनुष्यों को २४ या २६ घण्टों में एक बार शौच आवेगा और वह भी ५, ६ आउन्स या दो तीन छटांक के बीच में तोल का होगा, ऐसा तब होगा जब वह पर्याप्त व्यायाम करे, बहुत देर तक न सोवे भोजन में क्षोभक पदार्थ न खावे, मानसिक चिन्ताओं और अत्यधिक परिश्रम से बचा रहे, संक्षेप में अगर वह वात ग्रन्थियों की वात नाड़ियों के प्रवाह को नियमित रक्खे। जब वह शारीरिक परिश्रम में अपनी इच्छा को नहीं लगाता है, जब उस का दिमाग़ बहुत देर तक सोता रहता है, अथवा जब वह दिमाग़ से अधिक काम लेता है तब इस में रक्त की मात्रा अधिक बढ़ जाने से रक्त सञ्चित हो जाता है, और वातग्रन्थिसम्बन्धि वात संस्थान में रक्त का विभाग विषम हो जाता है, दिमाग़

भी इस संस्थान का एक बहुत आवश्यक भाग है। इस सब का परिणाम यह है कि दिमाग़ और सुषुम्नाकाण्ड में रक्त बढ़ जाता है और मलाशय के श्लैष्मिक तथा वातिक तन्तुओं में रक्त कम हो जाता है अतएव मलाशय का स्रावण बल विषम हो जाता है और रोगी कहता है कि कब्ज़ हो गई है।

यदि स्वच्छ रक्त से पूर्ण मनुष्य अनाप शनाप वस्तुएं खाने पीने लगे तो उस के पेट की श्लैष्मिक कला और वात नाड़ियों में रक्त जमा हो जाता है जैसा कि पिछले एक रोगी के दिमाग़ में रक्त सञ्चय हो गया था। कभी २ दिमाग़ और आमाशय दोनों स्थानों में ही रक्त का जमाव हो जाया करता है। इस सब का परिणाम यह होता है कि शरीर में रक्त का प्रसार विषम पड़जाता है, और मलाशय को कुछ नुकसान पहुँचता है। रोगी कहता है कि कब्ज़ हो गई है।

दिमाग़ में या आमाशय में उत्पन्न हुए पूर्वोक्त कारण अजीर्ण के साधारण कारण हैं। जिन मनुष्यों में रक्त की मात्रा अच्छी है उन में भी इस रोग का परिणाम, इन कारणों के द्वारा, अन्त को मल बन्ध अवश्य हो ही जाता है।

परन्तु जिन व्यक्तियों में रक्त की मात्रा पर्याप्त नहीं है, उन में मलबन्ध का कारण रक्त की पर्याप्त मात्रा का न होना है, क्योंकि पर्याप्त मात्रा न होने से मल का स्राव भी, उस बहुमूल्य द्रवधातु से, पर्याप्त मात्रा में नहीं होता है। इतना थोड़ा रक्त कई अवस्थाओं में शरीर में होता है कि जीवन के दो बड़े कारख़ानों दिमाग़ और आमाशय में ही खपजाता है। इन से पोषण और ज्ञान ग्रहण का कार्य चल रहा है। इस कारण शरीर की बाह्यत्वचा को पर्याप्त रक्त नहीं मिलता और पसीना अच्छी प्रकार नहीं आता, इसी प्रकार मलाशय की अन्तस्त्वक् को पर्याप्त रक्त नहीं मिलता और पाख़ाना अच्छी प्रकार नहीं आता। बहुत से पतले दुबले, पीले, शुष्क चमड़ी वाले ऐसे व्यक्ति हैं जिन को मलबन्ध रहता है। ऐसे मनुष्यों की आंतों को दो तीन दिन में एक बार खोल देना काफ़ी है। इस से अधिक उस का रक्त सहायता नहीं कर सकता, यदि उस के रक्त से अधिक काम लिया जाय या मल खैंचा जाय तो उस रोगी को हानि होगी। उस के मल की रक्षा करना ही उचित होगा। यदि शरीर में रक्त थोड़ा हो और साथ ही रोगी के चिन्ता शोक आदि के कारण, दिमाग़ में रक्त सञ्चय हो जाने से दिमाग़ भारी हो जावे अथवा अनुचित भोजन के कारण, आमाशय में रक्त अधिक जमा हो जावे तथा इन रक्त सञ्चयों के कारण मलाशय में रक्त की कमी पड़ जावे तो अति कष्ट प्रद मल बन्ध का रोग प्रकट होता है। इस विचार से निम्नलिखित स्थापनायें स्थापित होती हैं—

१. शौच रक्त में से बाहिर स्रुत होता है।

२ दिमाग़ या आमाशय में रक्त सञ्चय हो जाने से रक्त खिंच जाता है-पोषक नाड़ियां शिथिल पड़ जाती हैं और मलाशय में रक्त की कमी से शौच नहीं बनता है।

३. इस लिये मलबन्ध का एक मात्र आधार शरीर में रक्त का विषम विभाग है।

४. शरीर में रक्त के पर्याप्त होते हुए भी अंगों में रक्त के विषम विभाग का कारण मस्तिष्क या आमाशय का क्षोभ है। शरीर में रक्त की कमी से भी रक्त का विषम विभाग हो जाता है, क्योंकि ऐसे मौके पर प्रकृति रक्त को मस्तिष्क और आमाशय में अधिक पहुंचा देती है जो जीवन के लिए सबसे अधिक आवश्यक हैं।



विचार-प्रवाह

१. अमर शहीद की अमरकथा कौन लिखेगा?

महापुरुषों के जीवन चरित्र वे प्रकाश स्तम्भ हैं, जिन को देख कर आगे आनेवाली जातियाँ और मानव समाज अपनी जीवन यात्राको सफल बना सकते हैं और श्रेय पथ की ओर जा सकते हैं। वे प्रकाशस्तम्भ भूले और भटके हुए पथिकों को सच्ची राह दिखाने का काम करते हैं। उन के जीवनों के द्वारा हम को उन की रुचियों का, उन की जीवनचर्या का, तथा उन के कार्यों का सूक्ष्म परिचय मिलता है। उन के जीवन-निर्माण में क्या क्या रुकावटें आईं, उन्होंने उस के लिये कौन २ सी तपस्याएँ कीं, इन बातों को हम उन की जीवनियों के द्वारा ही जान सकते हैं।

इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं कि अनेक महापुरुषों ने अन्य महापुरुषों की जीवन कथाएँ पढ़ कर तथा उन के चरित्रों से प्रेरणा पाकर ही अपना जीवन उन्नत बनाया। अभी हाल में ही फ्रांस के जिस वृद्धसिंह क्लीमेन्शों का अवसान हुवा है, वह लिखता है कि वह अपनी दिनचर्या में महापुरुषों के जीवन चरित्र पढ़ने पर विशेष ध्यान दिया करता था।

इतिहास शास्त्र में जीवन चरित्र लिखना एक पृथक् कला मानी गई है, जो इस समय बहुत उन्नत कला मानी जाती है। मि० आस्किथ लिखते हैं कि कई लोग समझते हैं '—जीवन लिखना सरल काम है।' परन्तु वे बड़ी भूल करते हैं। किसी पुरुष की जीवन कथा लिखना एक बड़ी ज़िम्मेवारी का काम है। चरित्रकार को जब तक चरित्र-नायक का पूरा परिचय न हो, तब तक वह सच्ची जीवनी नहीं लिख सकता। इस के लिए परिचय के साथ साथ मनोवैज्ञानिक स्वभाव चित्रण और सूक्ष्म निरीक्षण बुद्धि (Keen Observation) की बहुत अवश्यकता है।

यूरोपियन भाषाओं में यह चरित्र लेखन कला बहुत उन्नत स्थान पर पहुँच चुकी है। परन्तु भारत की प्रान्तीय भाषाओं में सुन्दर जीवन कथाएं इनीगिनी हैं। हिन्दी भाषा तो इस क्षेत्र में सर्वथा दरिद्र है। हिन्दी भाषा में भारत के राष्ट्र निर्माता

एवं युगप्रवर्तक महापुरुषों की प्रामाणिक एवं विस्तृत जीवनियों का बड़ा अभाव है। लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, देशबन्धु दास, अमर-शहीद श्रद्धानन्द जी आदि का कोई प्रामाणिक चरित्र हिन्दी में नहीं है। सौभाग्य की बात है कि लो० तिलक का चरित्र उनके पुराने साथी केलकर ने तीन बड़े २ खण्डों में लिखा है। जिसके विषय में समालोचकों की राय है कि भारत की प्राचीन भाषाओं में तो क्या, जगत् की सभ्य भाषाओं में यह चरित्र ऊँचा स्थान रखता है। लाहौर के 'पीपल' में एक समालोचक महोदय ने लिखा था कि अंगरेजी साहित्य में मि० बौसवेल्स लिखित डा० जौन्सन की जीवनी जिस कोटी की है यह तिलकचरित्र वैसी ही कोटि का ग्रन्थ है। इसी प्रकार देशबन्धु श्री चित्तरञ्जन दास की भी एक बृहत् एवं सुन्दर जीवन कथा श्रीयुक्त पृथ्वीशचन्द्र राय महोदय ने लिखी है। सुना गया है कि महाशय गोखले की एक प्रामाणिक एवं विशाल जीवनी श्री निवासशास्त्री तैयार कर रहे है। श्री केलकर लिखित तिलक चरित्र का तो अंगरेजी भाषान्तर भी हो गया है। इसी प्रकार श्री बापट महाशय ने लोकमान्य तिलक के संस्मरणों पर अंगरेज़ी और मराठी दोनों भाषाओं में दो खण्ड प्रकट किए हैं, जिन में तिलक जी के साथ जिन २ लोगों की मुलाकातें एवं चर्चायें हुई थी उन सबका सुन्दर संग्रह किया गया है।

तिलक जी के अवसान के बाद उन के साथियों एवं शिष्यों ने तिलक के विषय में विस्तृत साहित्य की रचना की है। जिन से हम को लोकमान्य के जीवन के सब पहलुओं का पूर्ण परिज्ञान होता है। उन्हों ने जीवन चरित्र एवं संस्मरणों के अतिरिक्त 'केसरी' में प्रकाशित तिलक जी के राजनीतिक, सामाजिक, और साहित्य विषयक लेखों के भी सुन्दर संग्रह प्रकट किए है। यह कितना उन्नत और कितना अध्यवसाय पूर्ण कार्य हैं। क्या हिन्दी भाषा में किसी महापुरुष के विषय में इतना साहित्य बना है? साहित्य के अनेक ऐसे क्षेत्र बिल्कुल अछूते पड़े हैं जिन को हिन्दी भाषा के सेवकों ने अब तक छूया भी नहीं है।

पुण्यश्लोक स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान हुए आज चार वर्ष हो गये परन्तु अभी तक उनका कोई प्रामाणिक, सुंदर एवं उन की सर्वतोमुखी कार्य-शक्ति को बतलाने वाला विस्तृत जीवन चरित्र नहीं लिखा गया है। दो चार छोटे मोटे चरित्र लिखे गये हैं, परन्तु साहित्य और कला की दृष्टि से उनका कोई मूल्य नहीं है। अर्जुन सम्पादक श्री स्नातक रामगोपाल जी विद्यालंकार ने एक चरित्र लिखा है जो इस अभाव को कुछ पूरा करता है। परन्तु आवश्य-कता तो एक अत्युत्तम प्रामाणिक एवं विशाल जीवन-चरित्र की है। जिस में स्वामी जी के जीवन के प्रारंभ से लेकर अन्त तक का जीवनकार्य लिखा गया हो। भिन्न भिन्न समयों में स्वामी जी के साथ जिन सार्वजनिक कार्यकर्ताओं एवं नेताओं का संन्बध रहा है, उन के द्वारा लिखे हुए संस्मरण तथा स्वभाव

चित्रण बतलाने वाले लेख विद्यमान हों। स्वामी जी के व्याख्यानों, लेखों आदि का संग्रह किया गया हो। गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी में रहते हुए स्वामी जी ने जो आध्यात्मिक साधना की थी इस का पूरा परिचय एवं वर्णन हो। स्वामी जी द्वारा लिखे हुए आवश्यक एवं उपादेय पत्रों का संग्रह भी इस में होना चाहिये।

शोक का अवसर तो यह है कि इस दिशा में अभी तक किसी सज्जन का ध्यान नहीं गया है। स्वामी जी के अवसान के चार महीने बाद ही गुजराती भाषा के एक प्रसिद्ध प्रकाशक ने स्वामी जी की जीवनकथा गुजराती में प्रकाशित की थी। उसे स्वामी के चरित्र विषयक घटनाओं को एकत्र करते हुए जो कठिनाईयां और निराशा हुई थी उसके विषय में उसने लिखा था—

"हमारे साहित्य में जीवन वृत्तान्त लिखने के लिए सामग्री की कितनी न्यूनता है, इसका प्रमाण 'तेज' का श्रद्धानन्द-अंक दे रहा है। तेज उत्तर भारत का एक उन्नत पत्र है। और वह निकलता भी है वीर श्रद्धानन्द की नगरी दिल्ली से ही। स्वामी से परिचय रखने वाले अनेक पुरुषों का उसके साथ सम्बन्ध है, परन्तु 'श्रद्धानन्द अंक' में से हमको कुछ भी प्राप्त नहीं हुवा, केवल अंग्रेजी पत्रों से उठाये हुए शोक प्रस्ताव और निवापाञ्जलियों का उसमें ढेर मिला। स्वामी जी के प्रेरणाप्रद जीवन को बतलाने वाला एक भी संस्मरण हम उस में से नहीं प्राप्त कर सके।"

हमारे जीवन चरित्र विषयक साहित्य की दरिद्रता का एक अन्य भाषा भाषी द्वारा किया हुआ यहकितना अच्छा चित्रण है। आज चार वर्ष हो गये हैं, हिन्दी भाषा में अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी का एक भी अच्छा जीवन चरित्र नहीं बन सका है। जब कि अन्यों की अपेक्षा हिन्दी भाषा में उनके जीवन चरित्र की सामग्री सुगमता से प्राप्तव्य है। यह एक बड़ा कार्य है। देखना है कि इसे कौन उठाता है। गुरुकुल कांगड़ी इस कार्य में अच्छी सहायता और सामग्री जुटा सकता है। इतना ही नहीं, गुरुकुल की स्थापना के बाद से लेकर स्वामी जी के बलिदान तक का एक पृथक इतिहास ही लिखा जा सकता है। क्योंकि गुरुकुल के इतिहास का स्वामी जी के जीवन के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध है। श्रीमान् आचार्य रामदेव जी तथा गुरुकुल के नये पुराने सब उपाध्याय इस इतिहास के लिए पर्याप्त सामग्री और अपने निजू अनुभव तथा स्मृतियां दे सकते हैं।

इस प्रकार लिखी हुई अमर शहीद की अमर गाथा के द्वारा हम उस पुण्यश्लोक के जीवन के वास्तविक मर्म और साधना को समझ सकेंगे और समझा सकेंगे। आज सामान्य जनसमाज तो यही समझे बैठा है कि श्रद्धानन्द का जीवन कार्य शुद्धि और संगठन ही है। मानो श्रद्धानन्द ने शुद्धि और संगठन के सिवाय और कुछ किया ही नहीं। जन साधारण को इस बात का क्या पता है कि वह तो महान् कर्मयोगी

होकर भी महान् आदर्शवादी था, जिस आत्मविश्वासी ने हिमाचल की बनवीथियों को छीलछाल कर एक महान् संस्था (गुरुकुल कांगड़ी) को स्थापित कर दिया और अपनी सारी जीवन साधना और तपस्या उसी के लिये लगा दी। उन्हें इस बात का क्या पता है कि वह तो बीसवीं सदी के नालन्दा विश्वविद्यालय का कुलपति था और जिस की रक्षा के लिए वह अर्धरात्रि में दण्ड लिए घूमा करता था। जनता को क्या पता है कि उस अमर शहीद की जीवन साधना का सर्वश्रेष्ठ फल तो हिमाद्रि का उद्यान (गुरुकुल) है। जिसे वह तक्षशिला की होड़ में खड़ा करना चाहता था।

अधिक क्या लिखा जाय। अमरपिता की अमर गाथा का काम प्ररम्भ होना चाहिये। जो जितना भी इस विषय में कर सकता है, वह उतना ही करने के लिए तैयार हो जाय तो भी कितनी जल्दी यह महान् कार्य किया जा सकता है। इस शुभ कार्य का श्रीगणेश, बिना किसी के कहे सुने अपने हृदय की भावना से ही, सब से पहले उस अमर शहीद के श्रेष्ठ मित्र साधुवर श्री सी० एफ० ऐंड्रूज़ ने प्रारम्भ किया था, यह बात स्वामी जी के प्रत्येक भक्त को याद रखनी चाहिये।

शंकरदेव विद्यालंकार

२. सन १९२९ ! बिदाई.

सन १९२९ के अन्तिम मास के अन्तिम दो सप्ताह भारतवर्ष के इतिहास में सदा स्मरण किये जाते रहेंगे। इन दो सप्ताहों में देश का वायुमण्डल अत्यधिक विक्षुब्ध और अनिश्चित दशा में था। हालात इतनी तेज़ी से बदल रहे थे कि कुछ समझा नहीं जा सकता था। कोई यह भी नहीं कह सकता था कि कल क्या होगा, लम्बी भविष्यवाणी करना तो दूर की बात है। १८ दिसम्बर को मि० ब्रौकवे का सदभिलाषाओं वाला प्रस्ताव बृटिश-पार्लियामैण्ट में सर्वसम्मति से स्वीकार हुवा। देश का वायुमण्डल बहुत आशापूर्ण होगया। वायसराय महोदय ने भारत के ५ सर्वश्रेष्ठ कोटि के नेताओं को २३ दिसम्बर के दिन के लिये निमन्त्रण दिया। आशा और अधिक बढ़ गई। २३ दिसम्बर की प्रातः संसार भर ने अचानक सुना कि भारत सरकार के सब से बड़े कर्मचारी और सम्राट के सीधे प्रतिनिधि वायसराय लार्ड इरविन की ट्रेन को बौम्ब को उड़ा देने का प्रयत्न किया गया है! फिर यह भी मालूम हुवा कि वायसराय महोदय इस भीषण घटना से विचलित नहीं हुए। अभी इस ऐतिहासिक दिन की सांझ की प्रतीक्षा थी। उस का परिणाम भी यथासमय मालूम होगया। आपस में कोई समझौता नहीं हो सका। आशाओं पर तुषारपात होगया। मगर अब किया क्या जाय?—इस बात के लिये देश भर की निगाह लाहौर की तरफ़ फिरी। २८ दिसम्बर के दिन संसार को ज्ञात हुवा कि कांग्रेस अपना ध्येय पूर्ण स्वाधीनता बनाने वाली है। २९ दिसम्बर को नौजवानों के सरताज, प्रथम साम्यवादी राष्ट्रपति

जवाहर ने कांग्रेस के मंच से पहली बार सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्रान्ति की घोषणा का शंखनाद किया। एशिया की कायरता पर पनपने वाला यह शक्तिशाली महासाम्राज्य वह घोषणा सुन कर बिगड़ पड़ा, कांप उठा और बौखला गया। क्रमशः सन १९२९ के अन्तिम दिन का अन्तिम क्षण समाप्त हुवा। नये वर्ष के पहले क्षण में ही देश ने बड़ी दृढता के साथ शपथ लेकर घोषणा करदी—'आज से हमारा ध्येय पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना है!'

हमारी राय में पिछले वर्ष देश का वातावरण मेघाच्छन्न था। सन १९३० के पहले क्षण ने ही वह धुन्ध साफ़ कर दी है। अब हमारे सामने अनेक मार्ग नहीं रहे, एक मार्ग है। कांग्रेस की राय में इस पूर्ण स्वाधीनता के लक्ष्य को प्राप्त करने का उपाय भी एक ही है। यह उपाय है असहयोग, जिसका दूसरा पर्याय है निष्क्रिय प्रतिरोध और जिस का विशुद्ध सात्विक नाम है— सत्याग्रह। इस स्वाधीनता के नववर्ष के उज्ज्वल प्रकाश में, जिसमें कुछ भी छिपा हुवा, ओझल या धुंधला नहीं रहा; हम लोग, हम ३२ करोड़ भारतीय, हम संसार की प्राचीनतम सभ्यता के उत्तराधिकारी, हम सदियों के गुलाम, हम देखेंगे,—नहीं, संसार देखेगा कि हम लोग कितने गहरे पानी में हैं।

३. कांग्रेस का भारी और खर्चीला स्वरूप

राष्ट्रीय कांग्रेस देश के पढ़े लिखे लोगों का सब से बड़ा वार्षिक मेला है। जो प्रान्त इस मेले को अपने यहां आमन्त्रित करता है, उसे सालभर तैयारी करनी पड़ती है। कलकत्ता कांग्रेस के पूर्ण व्यय और पूर्ण आय की संख्याओं को देख कर तो डर मालूम होने लगता है। उस कांग्रेस का पूर्ण व्यय लगभग ९२५००० और पूर्ण आय लगभग ५६०००० रुपया है। कभी कभी दिल में यह भी आता है कि जो देश अपनी इच्छा से एक बड़े जमघट के लिये प्रतिवर्ष इतना रुपया खर्च कर सकता है, वह गरीब नहीं। बंगाल का बेताज़ का बादशाह, कुछ वर्ष हुए परलोक सिधारा था। उस की दिवंगत आत्मा की पुण्य स्मृति-रक्षा के लिये १०००००० रुपयों की अपील की गई थी। देश को सिर्फ ५ लाख ही देने को कहा गया था, मगर सारा बंगाल एड़ी से चोटी तक ज़ोर लगा कर भी इस राशि का का आधा भी जमा नहीं कर सका। अभी कल की ही बात है, पंजाब केसरी की अमर शहादत को ५ लाख की श्रद्धांजलि भेंट करने का निश्चय भारत के नेताओं ने किया था, मगर इस की आधी राशि भी जमा न हो पाई। दूसरी ओर कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन पर ५, ६ लाख रुपया खर्च हो जाना तो मामूली बात है। यह रकम तो स्वागत समिति के खाते की है। इस के अतिरिक्त प्रतिनिधि और दर्शक निजी तौर से प्रति वर्ष जितना रुपया रेल का किराया तथा अन्य बातों में व्यय करते हैं, वह इस राशि से भी दुगना होता है। पिछली लाहौर कांग्रेस में महात्मा गांधी ने इस बात पर गम्भीरता से विचार किया था कि क्या इतना रुपया बचाया नहीं

जा सकता । उनका प्रस्ताव था कि कांग्रेस को अब तो एक भारी भरकम अनियन्त्रणीय मेले का स्वरूप मिल गया है, इसे फिर से एक बड़ी विचारात्मक संस्था का स्वरूप दे दिया जाय । महात्मा जी को इस बात की तो आशा नहीं कि इस तरह कांग्रेस का स्वरूप संक्षिप्त कर देने से लोगों का जो धन बचेगा, उसे वे मनिआर्डर कर के सीधा प्रधान मन्त्री भारतीय कांग्रेस कमेटी, हीविट रोड, अलाहाबाद के पते से भेज देंगे, तथापि इस प्रस्ताव द्वारा देश का रुपया, समय और शक्ति का अपव्यय होना कुछ अंश तक रुक जायगा—यह उन्हें विश्वास था ।

फिर भी विषय समिति तक ने महात्मा जी का यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया । हमारी राय में तर्क द्वारा कांग्रेस के वर्तमान व्यय और स्वरूप को बहुत भारी तो अवश्य सिद्ध किया जा सकता है, परन्तु इसे अनुपयोगी कहने के लिये साहस चाहिये । कांग्रेस का रूप अब की अपेक्षा बहुत अधिक संक्षिप्त कर देने से देश का धन बचेगा—यह भी हमारी राय में हेत्वाभास ही है । कारण यह है कि लोगों ने प्रतिवर्ष कुछ न कुछ यात्रा का बजट बनाना ही होता है । यदि कांग्रेस नियम बना कर दर्शकों का आना बन्द कर देगी तो इस से यात्रा के बजट बनने बन्द न होंगे । हां, तब लोग कांग्रेस के राष्ट्रीय त्यौहार में न आयेंगे—कहीं इधर उधर ठोकरें खाकर ही सन्तुष्ट होलेंगे । राष्ट्र का धन बचाने की सद्भावना तब भी पूरी नहीं हो सकेगी ।

एक और दृष्टि से भी हम राष्ट्रीय महासभा के रूप में परिवर्तन करने के विरोधी हैं । हमारा यह देश इतना लम्बा चौड़ा है कि इस के विशाल शरीर में एक राष्ट्रीयता की भावना भरने के लिये अखिल भारतीय ढंग के जितने अधिक मेले किये जांय, उतना ही देश का कल्याण होगा । भारतवर्ष के अनेक बड़े बड़े मेले भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिये जो उपयोगी और बहुमूल्य कार्य सिद्ध करते हैं, यह कांग्रेस का विशालकाय मेला भारत में एक-राष्ट्र की भावना को पुष्ट करने के लिये वही कार्य करता है । कांग्रेस में प्रति वर्ष एक प्रान्त दूसरे प्रान्त के चुने हुए, सुशिक्षित प्रतिनिधियों को काफी बड़ी तादाद में अपने यहां आमन्त्रित करता है, इस के द्वारा सभी प्रान्तवासियों को एक दूसरे के मिलने का अवसर मिलता है, बहुत निकट से पहिचानने का सौभाग्य प्राप्त होता है । इस दृष्टि से भी कांग्रेस का इतना महान और आकर्षक रूप देख कर हमें प्रसन्नता ही होती है । इस में सन्देह नहीं कि कांग्रेस के इस भारी भरकमपन से कुछ असुविधाएं भी अवश्य उत्पन्न होती हैं, निमंत्रण देने वाले प्रान्त पर आर्थिक बोझ भी पड़ता है । परन्तु ये दोनों दोष काफ़ी अंश तक हटाये भी जा सकते हैं । कांग्रेस ही तो एक ऐसा अवसर है, जब राष्ट्र के नवयुवकों को बड़ी संख्या में स्वयंसेवक बन कर व्यावहारिक नियन्त्रण की शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलता है । हमारे स्वयंसेवक अनुभव द्वारा ज्यों ज्यों अधिक अधिक शिक्षित और कार्य कुशल होते जावेंगे, त्यों

त्यों कांग्रेस की प्रबन्ध सम्बन्धी दिक्कतें हल होती जावेंगी।

भारी व्यय का सवाल अवश्य ही बहुत शीघ्र हल करने के योग्य है। अपने कलकत्ता और लाहौर के अनुभव पर हम कह सकते हैं कि ज़रा सा प्रयत्न करने पर खर्च में कमी करना है भी बड़ा आसान काम। जब कोई देशवासी कलकत्ते के कांग्रेस के बही खाते में नेताओं की चाय पर ही ७ हज़ार रुपया व्यय हुवा देखता है, तो उसे सचमुच दुख होता है। क्या कांग्रेस के ५,७ दिनों में भी हमारे मान्य नेता भोगवाद के इतने गहरे शिकार बने बिना नहीं रह सकते? हमारी राय में जातीय महासभा को गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के वार्षिकोत्सव से बहुत शीघ्र शिक्षा लेनी चाहिये। गुरुकुल कांगड़ी का वार्षिकोत्सव भी एक बड़ा और पढ़े लिखे लोगों का मेला है। इस का प्रबन्ध भी पर्याप्त उत्तम होता है। लोगों को रहने लिये तम्बू, पानी आदि मुफ्त में दिया जाता है। इस पर भी वार्षिकोत्सव का सम्पूर्ण व्यय ६ हज़ार रुपये से अधिक नहीं होता। क्या जातीय महासभा के अधिकारी इसी ढंग पर महासभा का अधिवेशन नहीं कर सकते?

४. लाहौर कांग्रेस

यद्यपि प्रतिवर्ष कांग्रेस की स्वागत समितियां अवश्य अपने को विशेष प्रतिकूल परिस्थितियों से घिरा हुवा बताया ही करती हैं, और स्वागताध्यक्ष के भाषण में ऐसी बातें कहना एक प्रचलित फ़ैशन-सा बन गया है, तथापि यह सभी को स्वीकार करना पड़ेगा कि लाहौर कांग्रेस की स्वागत समिति को सचमुच बहुत ही प्रतिकूल, यहां तक कि विरोधी वायु-मण्डल में काम करना पड़ा है। लाहौर के अधिकांश प्रभाव शाली नागरिक सरकार से पूर्ण सहयोग बनाये रखने में ही अपनी मानरक्षा समझते हैं, दूसरी ओर लाहौर साम्प्रदायिक वैमनस्य का सबसे बड़ा गढ़ है। वहां साम्प्रदायिक हिन्दू, साम्प्रदायिक मुसल्मान और साम्प्रदायिक सिक्ख बहुत बड़ी संख्या में हैं। इस कारण प्रारम्भ ही से लाहौर कांग्रेस की स्वागत समिति में लाहौर के सब तबकों के नागरिक सम्मिलित नहीं हुए। उस पर दुर्भाग्य से वहां की स्वागत समिति में फूट पड़ गई। लाहौर की म्यूनिसिपैलिटी तक ने स्वागत समिति की मदद नहीं की, पञ्जाब सरकार से मदद पाने की उम्मीद करना तो गधे से कस्तूरी प्राप्त करने की आशा रखना है। कांग्रेस के लिये मनचाहा स्थान तक देने से तो सरकार ने इन्कार कर दिया था। यह सब होते हुए भी स्वागत समिति को अपने प्रबन्ध में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। सभी दृष्टियों से कांग्रेस का प्रबन्ध सराहनीय पाया गया। उस में त्रुटियां अवश्य थीं। और अनेक त्रुटियां बहुत खटकती भी थीं। परन्तु हम उन का यहां निर्देश तक करना भी अनुचित समझते हैं, क्योंकि हमें मालूम है कि स्वागत समिति के कार्यकर्त्ताओं को बहुत ही प्रतिकूल परिस्थितियों में काम करना पड़ा है। निस्सन्देह स्वागत समिति के अधिकारी, विशेष कर उसके उत्साही प्रधानमन्त्री महोदय अपनी भारी

और गौरव पूर्ण सफलता पर गर्व कर सकते हैं। सम्पूर्ण देश तो उन्हें साधुवाद दे ही रहा है।

लाहौर कांग्रेस के प्रबन्ध का वह भाग जिस पर पञ्जाब गौरव कर सकता है, और जिस पर अन्य प्रान्तीय प्रतिनिधि भाई प्रसंशा-सूचक विस्मय से भरी निगाहें डालते थे, लाहौर कांग्रेस की स्त्री स्वयं-सेविकाएं थी। अनेक वर्षों से हम कांग्रेस के अवसर पर स्त्री स्वयं सेविकाओं की टुकड़ियां देखते आ रहे हैं, परन्तु इस वर्ष लाहौर का यह दल जितना सुशिक्षित, कार्य कुशल, और सेवारत था उसे देख कर, भारत की महिलाओं के भविष्य के सम्बन्ध में भी हृदय बहुत आशापूर्ण हो जाता है। यह बात तो एक खुला हुवा रहस्य ही है कि इस का अधिकांश श्रेय जालन्धर के कन्या महा-विद्यालय को दिया जाना चाहिये।

लाहौर कांग्रेस की अन्य बातों के सम्बन्ध हम जनवरी की 'ज्योति' में ही अपने विचार प्रकट करेंगे।

कला कौमुदी

लेखिका श्रीमती ओ३म्वती देवी

चित्र कला कौशल सम्बन्धी अनुपम पुस्तक इस के द्वारा लेखिका ने क्रोशिये के कार्य को बड़ा ही सरल बना दिया है। बिना किसी प्रकार के पहिले ज्ञान के कन्यायें और स्त्रियें केवल इस की ही सहायता से अनेक प्रकार की बिनावट लेसें, फ़ीते, कपड़े इत्यादि बनाना सहज में ही सीख सकी हैं। पुस्तक में इतना विषय है कि किंचित इस से कई गुना दाम की पुस्तकों में भी न होगा। प्रत्येक वस्तु तथा बिनावट का बनाना चित्र देकर बड़ी सरल रीति से सिखाया गया है। देखिये समाचार पत्र इस के विषय में क्या कहते हैं।

„ट्रिब्यून" (अंग्रेज़ी का प्रसिद्ध दैनिक) लाहौर—स्त्रियों के लिये उपयोगी पुस्तक है। अनेक चित्रों द्वारा वस्तु बनाने की विधि बड़ी सरलता से समझाई गई है। सुन्दर नमूने की लेसें, टेबल क्लाथ, बच्चों के सुन्दर कपड़े और अन्य कई वस्तुओं का बनाना बड़ी सुन्दर रीति से बतलाया गया है। पुस्तक की उपयोगिता के विचार से मूल्य बहुत कम है।

"मतवाला" (कलकत्ता)-यह पुस्तक हमारी बहिनों के बड़े समझ की है। छपाई बहुत अच्छी, कागज़ बहुत अच्छा मोटा चिकना आर्ट। सुचारु शिल्प पत्रावली कार्ड गृहस्थियों के बड़े काम की चीज़ है।

"कर्मवीर" (खंडवा)— ······पुस्तक में सादे फन्दे से लगाकर तरह तरह की वस्तुओं के बनाने की विधि बड़ी सरलता से समझाई गई है जिसे पढ़कर साधारण पढ़ो लिखी स्त्री भी इस कार्य को सीख सकती है। इस का मूल्य लागत को देखते कम है।

"माधुरी" (लखनऊ)-ऐसी पुस्तकों की हिन्दी साहित्य के लिये बड़ा आवश्यकता है। आशा है इस पुस्तक का अच्छा प्रचार होगा जिस से इस प्रकार का और पुस्तकें भी प्रकाशित की जा सकें। लेखिका और प्रकाशिका दोनों को बधाई।

शीघ्र आर्डर भेजिये मूल्य १।।)

कला कौमुदी तथा शिल्प पत्रावली का पूरा सैट लेने पर २॥=)॥ के स्थान में केवल २।) में दिया जायगा।

कन्या पाठशालाओं और पुस्तक विक्रेताओं को विशेष रियायत

मैनेजर ज्योति—

कन्या गुरुकुल

राजपुर रोड कोठी नं० २१-२२ देहरादून

गङ्गाराम पाठक प्रिन्टर तथा पं० रमेशचन्द्र पब्लिशर के लिये गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में मुद्रित।

Regd. No. A. 1711

वर्ष १०] जनवरी १९३० [संख्या ९



वार्षिक मूल्य. ४॥) प्रति संख्या ॥)

सम्पादक

विद्यावतीसेठ बी. ए., चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

विद्यार्थियों, स्त्रियों से ४) विदेशका मूल्य ६)

विषय सूची।



लेखकों से निवेदन

१. ज्योति में लेख, कविता आदि भेजने वाले महानुभावों को अपने लेख सुस्पष्ट अक्षरों में कागज़ के एक ओर ही, हाशिया छोड़ कर लिखे हुए भेजने चाहियें ।

२. लेख बहुत लम्बे न होने चाहिएँ । 'ज्योति' पत्रिका के लगभग चार पृष्ठों के लायक लेख हों तो अति उत्तम है ।

३. लेखों को घटाने बढ़ाने तथा संशोधित करने का संपादक को पूर्ण अधिकार है ।



प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार—
आचार्य्या कन्या गुरुकुल
कोठी नं० २१, राजपुर रोड
देहरादून.

सम्पादन सम्बन्धी—
सम्पादक ज्योति
गुरुकुल कांगड़ी
यू.पी.



विविध विषय विभूषित सुन्दर मासिक पत्रिका.

वर्ष १० | पौष १९८६ * जनवरी १९३० | संख्या ४

प्रतीक्षा

(१)

आएंगे अनाथिनी के नाथ, प्राणनाथ आज, सरस सनेह भरे सुख सरसाएंगे।
पूछेंगे कुशल-प्रश्न, मेटेंगे वियोग दुःख, परम पुनीत प्रेमवारि बरसाएंगे॥
चाव भरे लोचन-चकोर प्रियचन्द्र मुख-प्रेमसुधा पी के नीके मन हरसाएंगे।
एक पल आंखों से न होने दूंगी ओट उन्हें, देखूं, फिर प्राणधन कैसे तरसाएंगे॥

(२)

भूलि देह-गेह, प्रेम-आनंद-विभोर आज, बार बार द्वार पर आती फिर जाती है।
शकुन मनाती और बात नहीं भाती नेक, प्रेमगीत गाती, पाती हृदय लगाती है॥
चञ्चल दृगञ्चल में आशा-अभिलाषा लिए, मंजु कंज-लोचन के पांवड़े बिछाती है।
प्राणनाथ-आगम, समागम को सोच सोच, चारों ओर उसे वही मूरति दिखाती है॥

"श्री हरि"

"गुण-ग्रहण"

(१)

सूर्य क्या निकले, मची भगदौर सी,
मच गया कुहराम तारक-ग्राम में।
क्रोध से आरक्त उसको देख कर,
भाग कर सब छिप गए निज धाम में॥

सान्त्वना देने जो आए चन्द्रमा,
भर सुधा सी निज मधुर मुसकान में।
आ इकट्ठे फिर हुवे तारे सभी
और उन के प्राण आए प्राण में॥

हे प्रभो! मुझ में भरो उस स्नेह को
और उस मुसकान के माधुर्य को।
भाग जब भयभीत जन आवें यहां,
पायें वे विश्रान्ति के प्राचुर्य को॥

(२)

एक पर्वत सिर उठाये था खड़ा,
चल रही घनघोर झञ्झावात थी।
मेघ वृष्टि कर रही शर-वृष्टि थी,
और ओलों के पड़े आघात भी॥

वह अचल फिर भी अचल ही था खड़ा,
सह गया चुपचाप एक समान ही।
और जब खोला उसे तो स्वर्ण की,
एक चमकीली वहां पर खान थी॥

हे प्रभो! दिल को मेरे पत्थर बना,
विपद आए घोर झञ्झावात सी।
विष-बुझे कटु वचन भी बरसें यहां,
हां, पड़ें चाहे बड़े आघात भी॥

पर न इस से दिल मेरा कुछ भी डिगे,
सह सकूं चुपचाप एक समान हो।
और स्नेहीजन टटोलें जब कभी
दिल मेरा देखें गुणों की खान हो॥

(३)

राज्य में तेरे बहुत देखे प्रभो !
एक से बढ़ एक दृश्य अपूर्व ही।
हृदय को हा ! चीरते थे लोग कुछ,
और उन को अन्न देती थी मही ॥

हा ! उन्होंने बस किया फिर भी नहीं,
भूल कर उस के सभी उपकार को।
घाव गहरा कर दिया इक दूर तक,
मिल सभी करने लगे अपकार को।

घाव पर वे घाव थे हा ! कर रहे,
अस्त्र ले ले कर के नाना विध महा।
धन्य ! वसुधा ने दिया तत्काल ही
फिर भी शीतल सलिल का सोता बहा ॥

हे प्रभो ! मुझमें भी वह शक्ति भरो,
दिल दुखायें आ सनेही जब मेरे।
फूट कर मेरे हृदय से स्नेह का
स्रोत तब सुख शान्ति ही उन में भरे ॥

"उन्मुख"

बिदा !

"चले ? रुको; कुछ दूर और भी सही; छूटना तो फिर है ही।
क्या जाने फिर कब मिलना हो ? कुछ क्षण और साथ बीते ही ॥"

× × × ×

गद्गद स्वर में वे बोले—"पूछो यदि इच्छा मेरी।
मन न चाहता दूर रहे मीठी बातों से तेरी ॥
पर क्या करूँ ? विवश हूँ भाई ! ज्ञात तुम्हें तो सब कुछ।
जो स्थिति है, उस पर मेरा है क्या कुछ भी तो वश ?"

... ...

अश्रु पूर्ण नयनों से देखा उन ने मेरी ओर।
चले; भर गईं मेरी सूनी आंखों की ये कोर ॥

—बालकृष्ण बलदुवा

प्रश्नोत्तर—

"क्या सूझा है तुम्हें ? रूप की ज्वाला में जल मरना ?"
"नहीं, स्नेह-सरिता में आंखें मूंदे, सुख से बहना ॥"

—बालकृष्ण बालदुवा।

अन्तिम अभिनय

इस उपवन के आँगन में
उतरा हूँ झोली भरने
चल बीन ले चलें सजनी !
कुछ फूल आज उस घर में

उस ओर विश्व के तट पर
धूमिल आकाश के नीचे
आ पास बैठ कर गूँथें
दो मालायें दृग मीचे

इस निकट खण्डहर में चल
गलबहियाँ डाल, थिरक कर
'शिव–सती' आज बन खेलें
फिर अन्तिम वार निरख कर—

—मैं तुझे, और तू मुझ को
माला पहिनाने झुकना
ये कम्पित कर यूँ लाकर
बस तनिक देर भर रुकना

सुख की लहरों में विह्वल
कर से न हार छुट पावें
सखि ! स्वर्णमयी निधियाँ ये
मिल कर न हाय ! लुट जावें !!

—निद्रा-विभोर सी यूँ ही
बन छाया की मूरतियाँ
कर में सम्हाल दो गजरे
मन में भर प्यारी स्मृतियाँ—

—क्या प्रलय-काल तक सजनी !
लेते से मीठे सपने
हम खड़े न रह पावेंगे
उपहार थाम कर अपने ??

—'प्रियवंद'

मेरी जीवन कथा के कुछ पृष्ठ

(ले०—श्री आचार्य रामदेव जी)

आर्य समाज के कतिपय प्रभाव शाली नेता

[शहीद लेखराम]



न १८८५ में मुझे मिडल की परीक्षा देनी थी। आर्यसमाज में उस समय तक दो दल, मांस पार्टी और घास पार्टी नाम से बन चुके थे। मैं भी उसी वर्ष मांस पार्टी का एक उत्साही सदस्य बन गया और २, ३ बरसों तक इसी दल में रहा। मांस पार्टी में शामिल भी मैं एक अजीब बात पर हुआ। पहले मैं मांस भक्षण के विरोध में था, अपने इसी मन्तव्य को लेकर मैं लाला हंसराज के बड़े भाई लाला मुल्कराज जी से भिड़ पड़ा। वह आयु में मुझ से बहुत बड़े थे, मांस भक्षण के वह सब से बड़े प्रचारक समझे जाते थे। नवयुवकों में अहंभाव स्वभाव से बहुत होता है, ख़ास कर मुझ में तो इस की मात्रा बहुत बढ़ी चढ़ी थी। बालक होते हुए भी मैंने यह शपथ कर ली कि यदि मैं लाला मुल्कराज से विवाद में हार गया तो मांस खाना शुरु कर दूंगा। बहस हुई और मैं सचमुच हार गया। मैं अपने वचन पर पक्का रहा। लाला साहब ने उसी समय बाज़ार से मांस मंगवाया और मैंने उसे खाया। परन्तु अपने पुराने संस्कारों के कारण मैं २, ३ बार से अधिक मांस न खा सका, यद्यपि मांस पार्टी का तरफ़दार मैं २, ३ बरसों तक रहा। मैं उन दिनों नौमुस्लिम की तरह जोशीला था। महात्मा पार्टी की वच्छोवाली समाज में जाना मैं गुनाह समझता था, मगर फिर भी मुझे वहां हर सप्ताह जाना होता था। मांस पार्टी के नेता लाला हंसराज जी ने मेरे ज़िम्मे यह ड्यूटी लगा दी थी कि मैं उस समाज के साप्ताहिक अधिवेशन में सम्मिलित होने वाले सदस्यों तथा दर्शकों की गिनती कर के उन्हें बताया करूं।

उन्हीं दिनों बच्छोवाली समाज के एक साप्ताहिक अधिवेशन में मैंने देखा कि एक हट्टा-कट्टा, रोबदार पंजाबी जवान व्याख्यान देने के लिए समाज की वेदी पर आया। उसने लुधियाना के कपड़े का बन्द गले वाला कोट पहिना हुआ था, परन्तु कोट के ऊपर वाले बटन खुले हुए थे। सिर पर पगड़ी थी, उस का शमला बहुत लम्बा था। देखने में यह व्यक्ति एक पहलवान प्रतीत होता था। वेदी पर आते ही उसने व्याख्यान शुरु कर दिया। वह बड़ी ऊंची आवाज़ में और जल्दी जल्दी बोलता था। अपने पास बैठे हुए एक महाशय से मैंने पूछा—"यह कौन है ?"

उसने आश्चर्य से उत्तर दिया—"तुम्हें यह भी नहीं मालूम ! यह आर्य समाज के सुप्रसिद्ध विद्वान प्रचारक पं० लेखराम हैं।"

मैं व्याख्यान सुनने लगा। सुनने क्या लगा—व्याख्यान ने स्वयं मुझे अपनी तरफ़ आकृष्ट कर लिया। पण्डित जी एक घंटा तक बोले। उन का भाषण सचमुच ज्ञान का भंडार था। अपने

व्याख्यान में उन्होंने इतने अधिक वेद मन्त्रों, फ़ारसी अरबी के वाक्यों तथा यूरोपियन विद्वानों के प्रमाण और उद्धरण दिये कि मैं आश्चर्य चकित रह गया। मेरे दिल में आया, यदि व्याख्याता बनना हो तो इसे आदर्श बनाना चाहिये। मैंने सचमुच उन्हें अपना आदर्श बनाया। उस दिन के बाद से मैं जो कुछ पढ़ता, उसे जज़्ब करने की कोशिश करता। पुस्तकों पर निशान लगाने की आदत भी मैंने तभी से डाली। १०, १२ बरसों के बाद, पढ़े हुए उद्धरणों को मैं अपने रजिस्टर में लिखने लगा। आज मेरे पास इस तरह के रजिस्टर बहुत अधिक संख्या में हैं। और मैं उन्हें अपनी अमूल्य सम्पत्ति मानता हूँ। पंडित जी का व्याख्यान सुन कर मुझ पर यह प्रभाव पड़ा था कि वह संस्कृत, अंग्रेज़ी, अरबी और फ़ारसी के प्रकाण्ड विद्वान हैं। परन्तु पीछे से यह जान कर मेरे आश्चर्य की सीमा न रही कि वह संस्कृत बहुत थोड़ी जानते हैं और अंग्रेज़ी तो बिल्कुल ही नहीं जानते! हां अरबी और फ़ारसी के मंजे हुए माहिर वह अवश्य थे।

मैं चकित था कि एक भाषा का बिल्कुल ज्ञान न होते हुए भी यह उस के इतने अधिक प्रमाण किस तरह सुनाते हैं। मज़ा तो यह है कि उन प्रमाणों में से एक भी अशुद्ध नहीं होता। यह रहस्य भी एक दिन खुल गया। एक बार मैं रविवार के अतिरिक्त किसी और दिन वच्छोवाली आर्य-समाज के मन्दिर में गया। वहां एक टोली जमा थी। कौतुहल वश मैं भी उसी में शामिल होगया। वहां देखा कि पं० लेख राम जी दो ग्रैजुएटों को घेर कर बैठे हैं। एक ग्रेजूएट को वह बड़े ज़ोर से डांट बता रहे थे—"बी० ए० पास करके भी तुम अंग्रेज़ी नहीं सीखे। मैक्समूलर के एक उद्धरण का तुमने बिल्कुल अशुद्ध अनुवाद किया है।"

वह ग्रैजूएट बिल्कुल सिटपिटाया-सा हुवा था। तथापि उसे मालूम था कि पंडित जी अंग्रेज़ी बिल्कुल नहीं जानते, इस लिये साहस करके उस ने कहा—"यह आप को कैसे मालूम है?"

पं० लेखराम ने दूसरे ग्रैजूएट से कहा—"बताओ भाई, इसने क्या गलती की थी।"

दोनों नए नए ग्रेजूएट एक दूसरे से पिल पड़े। थोड़ी देर के मुबाहिसे से के बाद पहिले ग्रेजूएट ने स्वीकार किया कि उस का अनुवाद अशुद्ध था। पीछे से मुझे मालूम हुवा कि पण्डित जी सदैव ऐसा ही करते हैं। संस्कृत के उद्धरणों के लिये संस्कृतज्ञों को और अंग्रेज़ी के उद्धारणों के लिये अंग्रेज़ीदां लोगों को एक दूसरे से भिड़ा कर वह इन दोनों भाषाओं के प्रमाण जमा करते हैं। मुझ पर पण्डित जी के इस सत्यप्रेम और स्वपक्ष-पुष्टि की निष्ठा ने बहुत गहरा प्रभाव डाला। मैंने सोचा, जो व्यक्ति एक भाषा बिल्कुल न जानते हुए भी इतने अध्यव-साय से उस के प्रमाण जमा कर सकता है उस के मार्ग में कोई कठिनाई अंकुरित नहीं हो सकती।

(२)

पं० लेखराम जी जहां एक ओर अ[illegible] विद्वान थे वहां दूसरी ओर वह एक वीर शहीद की भांति निर्भीक और साहसी भी थे। मेरे एक मित्र ब्राह्मोसमाज के नेता ने इन का नाम 'आर्य समाज का अली' रक्खा हुवा था।

अपने विवाह के बाद एक दिन मैं लाला मुन्शीराम जी के निवास स्थान पर बैठा हुवा था। उन दिनों वह 'लाला जी' कहलाते थे। इसी समय पं० लेखराम जी उन से मिलने के लिये वहां आये। लाला मुन्शीराम जी इन दिनों आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के प्रधान थे। और पं० लेखराम जी सभा के एक वैतनिक उपदेशक थे।

समाज आर्यसमाज के अनेक अधिकारी समाज के आजन्म सेवकों को, जो असल में आर्यसमाज के प्राण हैं, केवल इस लिये सभा का वेतनभोगी सेवकमात्र ही समझते हैं क्योंकि अपना सम्पूर्ण समय आर्यसमाज की सेवा में व्यय कर देने के कारण उन के लिये सभा से आजीविकामात्र भृति लेना आवश्यक होता है,— परन्तु उन दिनों यह बात न थी। प्रतिनिधि सभा तब उपदेशकों का मान करना जानती थी। यहां तक कि सभा के अधिकारी प्रभावशाली प्रचारकों से चुपचाप डांट खाने में भी अपनी मानहानि नहीं समझते थे। जब पं० लेखराम जी प्रधान जी के मकान पर आये, तब प्रधान जी उठे। पण्डित जी के बैठ जाने के बाद ही वह बैठे। नमस्कार आदि के बाद प्रधान जी ने कहा—"सभा के कार्यालय से आप को सूचना दी गई थी कि इस सप्ताह आप······नगर में प्रचार के लिये जावेंगें। परन्तु अब मैंने आप का प्रोग्राम बदल दिया है। आप अब······जाइयेगा।

पण्डित जी ने पूछा—"यह किस लिये ?"

प्रधान जी ने उत्तर दिया—"मुझे विश्वस्तसूत्र से मालूम हुआ है कि···के मुसलमान आप के प्राण लेने का कुचक्र रच रहे हैं। यदि आप को अपने [illegible] की चिन्ता नहीं तो मुझे उस की परवाह करनी ही चाहिये न !"

न मालूम क्यों, पण्डित जी को क्रोध आगया। वह असाधारण जोश में आकर बोले–"लाला जी ! आप जैसे डरपोक यदि समाज में बहुत अधिक बढ़ गए तो आर्यसमाज का बेड़ा अवश्य डूब जायेगा। मैं मरने से नहीं डरता। अब तो मैं अवश्य ही वहीं जाऊंगा।"

प्रधान जी तब भी मुस्करा रहे थे। इस बार उन्होंने नियन्त्रण के नाम से काम लेना चाहा–"मैं सभा के प्रधान की हैसियत से आप का···जाना आवश्यक समझता हूँ, इस लिये अब मैंने आप का प्रोग्राम बदल दिया है। मेरी आप से प्रार्थना है कि आप मेरे बताए हुए प्रोग्राम का ही अनुसरण करें।"

अब की बार पण्डित जी ने ज़रा नरम आवाज़ में जवाब दिया। परन्तु उन की ज़िद उसी तरह कायम थी—"मुझे मालूम है कि आप को मुझ से मोह है। उस मोह में कायरतापूर्ण वकालत मिला कर आप मुझे......न जाने के लिये बाधित करना चाहते हैं। परन्तु मैं यह स्पष्ट शब्दों में कहे देता हूँ कि अब तो मैं ज़रूर ही वहां जाऊंगा। यदि आप मुझे सभा की तरफ़ से नहीं भेजेंगे तो मैं अवैतनिक अवकाश लेकर अपने किराये से ही वहां चला जाऊंगा।"

मुझे स्मरण है, उन दिनों पण्डित जी सभा से केवल ४०) रु० मासिक वेतन पाते थे। प्रधान जी भला उन की इस निर्भीक घोषणा का क्या जवाब देते। उन्होंने केवल इतना ही कहा—"आप जहां चाहें जा सकते हैं। अब मैं आप को किसी बात के लिये बाधित नहीं करूंगा। सचमुच हमारी सभा का यह सौभाग्य है कि आप जैसे वीर पुरुष की सेवा का उसे अवसर प्राप्त है।"

(३)

एक दिन लाहौर की सनातनधर्म सभा में किसी सनातनी पण्डित का व्याख्यान था। मैं भी वह व्याख्यान सुनने गया था। वह व्याख्यान मैंने बड़े ध्यान से सुना था, उस का सार मुझे स्मरण हो गया। भाषण सुनने के बाद घर की तरफ़ लौटते हुए राह में अचानक पण्डित लेखराम जी से मुलाकात हो गई। वह मेरा नाम जानते थे। उन्होंने मुझ से पूछा—"कहां से आ रहे हो ?"

मैंने कहा—"सनातन धर्म सभा के भवन से।"

उन्होंने पूछा—"वहां क्या करने गए थे !"

मैंने उत्तर दिया—"व्याख्यान सुनने।"

पण्डित जी ने पूछा—"व्याख्यान में क्या क्या बातें सुनी ?"

मैंने उस व्याख्यान सरांश पण्डित जी को सुना दिया। पण्डित जी ने मेरी पीठ पर हाथ रख कर मुझे शाबासी दी और कहा—"शाबास ! प्रत्येक चीज़ को इसी तरह ध्यान से सुना करो।"

मैंने पूछा—"क्या इस व्याख्यान की बातें ठीक हैं ?"

पण्डित जी ने एक दम उत्तर दिया—"नहीं ! मेरे पास अवश्य आना। मैं तुम्हें इन सभी बातों का विस्तृत उत्तर दूंगा।"

पण्डित लेखराम सचमुच अपने विश्वासों में इतने ही पक्के थे। उन्हें कभी यह सम्भावना तक न होती थी कि मेरे विचारों में कोई अशुद्धि या भ्रान्ति भी हो सकती है। अपने विपक्षियों से बातें तो वह बड़ी सभ्यता और शान्ति से करते थे परन्तु उनके दिल में सदा यही होता था कि यह व्यक्ति गुमराह और अशुद्ध विचारों का है।

[डाक्टर चिरंजीव भारद्वाज.]

(१)

सन् १८६८ में लाहौर नगर में "सिरमुन्नी-समाज" नाम से एक नई आर्यसमाज खुलने की मज़ेदार चरचा पढ़ेलिखे लोगों में ज़ोरों पर थी। लोगों में महशूर था कि बच्छोवाली समाज (महात्मा पार्टी की समाज) के बहुत से नौज़-वान सदस्य इस सिरमुन्नी समाज की ओर खिचे चले जा रहे हैं। ठीक संख्या पता लगाने पर मालूम हुवा कि अभी तक ६ जवान इस समाज के मैम्बर बन चुके हैं। मैं भी जवान था और अभी ताज़ ताज़ा ही कलचर्ड दल से महात्मा दल में सम्मिलित हुवा था। अपने एक मित्र से मैं ने पूछा कि भाई ! यह 'सिरमुन्नी समाज' किस चीज़ का नाम है ?

मेरे वह मित्र किसी चीज़ का वर्णन करने में सिद्धहस्त थे। उन्होंने कहा—"डाक्टर भारद्वाज नाम के एक उत्साही नौजवान हैं। अपनी अध्यक्षता में बहुत से नवयुवकों को साथ लेकर उन्हों ने इस नई संस्था की स्थापना की है। इस वास्तविक नाम सिर-मुन्नी समाज नहीं, 'आर्यधर्म सभा' है। इस सभा का उद्देश्य आर्य समाजियों में ऋषि दयानन्द के व्याव-हारिक जीवन सम्बन्धी सिद्धान्तों को अमली तौर से शुरु करना है। आज तक तो अधिकांश आर्य समाजी सिर्फ़ कहने भर को ही आर्य हैं। समाज के प्रधान तक बन जाते हैं और श्राद्ध के दिन ब्राह्मणों को भोजन अवश्य कराते हैं, माघी के दिन चावलों का संकल्प किसी ब्राह्मण के नाम पर न सही अनाथालय के नाम पर ही सही, किया जाता है। किसी ने कड़ा केश आदि सिक्खी ककार धारण कर रक्खे हैं तो कोई संध्या भी कर लेता है और साथ ही जपजी का पाठ भी; समाज भी हो आता है और गुरुद्वारा भी—लोगों को यही भय मालूम होता है कि न जाने मरने के बाद कौन सी बात सच निकले ! संध्या के साथ विष्णुसहस्र नाम का भी पाठ कर लेने में हर्ज़ ही क्या है ? यही न कि थोड़ा समय अधिक लग जायगा। परलोक की खातिर इतना ही सही। भारद्वाज बड़े उत्साही हैं। उन्हें यह बर्दाश्त नहीं। इसी कारण उन्होंने यह सभा खोली है। इस सभा का उद्देश्य है पर्दा, जन्ममूलक जात-पात, और परम्परागत रूढ़ियों को तोड़ना। सभा का सदस्य बनने के लिये व्यक्ति को एक बार

सिर के बालों का मुण्डन करवाना होता है इसी कारण लोगों ने इस सभा का नाम सिरमुन्नी समाज रख छोड़ा है।"

इस वर्णन से मैं इस सभा की ओर आकृष्ट हुआ। अपने उत्साह के कारण सभा ने लाहौर में एक विचित्र सनसनी पैदा कर दी थी। शुरू शुरू में जब किसी नए सदस्य का प्रवेश संस्कार किया जाता था, तब लोग बड़ी संख्या में कौतुहल से उसे देखने जाते थे। एक बार ला० हंसराज जी तथा पं० आर्यमुनी भी इन दर्शकों में थे। डाक्टर साहब ने स्वयं अपने घर से बिल्कुल परदा हटा दिया था, इस बात से लोगों में असन्तोष था। दूसरी ओर भारद्वाज की तारीफ़ करने वाले लोग भी थे। कहा जाता है कि भारद्वाज जी को महात्मा-दल से बड़ी आशा थी, परन्तु प० लेखराम की अमर शहादत के परिणाम स्वरूप, जब थोड़ी देर के लिये दोनों पार्टियां मिल गईं, तब वह अपने सिद्धान्तों के सम्बन्ध में समाज की ओर से निराश हो गए और उन्होंने यह आर्यधर्म सभा कायम की।

मेरे दिल में इस सभा के सदस्यों से मिलने और परिचिति बढ़ाने की इच्छा उत्पन्न हुई। दिल्ली के डाक्टर सुखदेव जी मेरे मित्र थे। यह भी इस सभा के सदस्य थे। इन्हीं के द्वारा मुझे सभा के अन्य सदस्यों से परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला। ये लोग थे— डाक्टर चिरंजीव भारद्वाज, जो इस सभा के संस्थापक और प्राण थे; डा० लब्भूराम, जो पीछे से स्थिर रूप से विलायत चले गए; म० चरण दास, जिनका अब देहान्त हो गया है; म० लक्षवीर सिंह, जिन का एक ही फेफड़ा काम करता था, फिर भी शास्त्रार्थ करने को सदा तैयार रहते थे, इन के बारे में मशहूर था कि यह कुरानशरीफ़ को सदा अपनी कांख में रखते हैं; डा० धर्मवीर, जो बरसों तक विलायत रह कर अब लाहौर में प्रैक्टिस कर रहे हैं। इन सब शक्तिशाली और दृढ़निश्चयी नवयुवकों से परिचय प्राप्त कर के मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। ख़ास कर डाकृर भारद्वाज के व्यक्तित्व ने तो मुझे बहुत प्रभावित किया। अपने अनुयाइयों पर उन का प्रभाव एक गौरव की वस्तु था। दृढ निश्चय, आत्म विश्वास, निर्भयता, अपने सिद्धान्तों का ज्ञान और युक्ति की प्रौढ़ता—ये सब बातें थीं जिन से वह अपने नवयुवकों के नेतृत्व को अधिकार-पूर्वक कायम रख सकते थे। यद्यपि बहुत से लोग मुझे तब तक कालिज पार्टी का भेदिया ही समझते थे, फिर भी डा० भारद्वाज और डा० धर्मवीर ने बहुत शीघ्र मुझे अन्तरङ्गता से अपना लिया।

(२)

मैडिकल कालिज की अन्तिम परीक्षा में डा० भारद्वाज फेल होगए थे, परन्तु उन्होंने भारत में बैठे-बैठे ही अमेरिका से एम० डी० का खिताब मंगवा लिया। इस के बाद वह बड़ौदा चले गए और मेरी उनकी मुलाकातें बन्द होगईं। बहुत दिनों बाद लाहौर ही में उन की धर्मपत्नी श्रीमती सुमंगली देवी तथा उनकी बहिन कुमारी केसरी-देवी से मेरा परिचय हुआ। डाक्टर साहब हिप्नोटिज़्म भी जानते थे। केसरी उचित माध्यम थी। उसी पर वह अपने परीक्षण किया करते थे। जिस दिन मैं डाकृर साहब के यहां पहुँचा, उन के पास लाहौर ही के एक और महाशय भी आये हुए थे। डाक्टर साहब ने मुझ से कहा—"आज हिप्नोटिज़्म का तमाशा देखिये।" मैं ने इससे पूर्व केवल एक बार ही इस विद्या का चमत्कार देखा था। अस्तु; डाकृर साहब ने केसरी पर प्रभाव किया। और मेरे साथ जो दूसरे महाशय बैठे थे, उन की तरफ़ देख कर कहा—"इन महाशय के घर पर जाओ और वहां के समाचार लाओ!"

हम लोग केसरी की तरफ़ बड़े कौतुहल से देख रहे थे। वह थोड़ी देर तो चुप रही। इस के बाद उस ने कहा—"इन के घर में सिर्फ़ एक कमरा है, इसके सामने बरामदा है, दालान बहुत तङ्ग है। इस दालान में एक युवती और एक बुढ़िया बैठी हैं। ये दोनों परस्पर गाली गलौच कर रही हैं।"

वह महाशय चौंक कर खड़े हो गए। उन्होंने कहा—"ओहो, मेरी मां और मेरी स्त्री लड़ रही होंगी।" यह कह कर वह घर चले गए।

केसरी की बात सचमुच सही थी। डाक्टर साहब हिप्नोटिज़्म से चिकित्सा भी किया करते थे।

अमेरिका की मुफ़्त में प्राप्त की हुई एम० डी० उपाधि को अपने नाम के साथ लगाते हुए डाक्टर साहब को लज्जा प्रतीत होती थी। डाक्टर धर्मवीर भी मैडिकल कालेज की परीक्षा में फेल होगए थे, और उन्होंने भी अमेरिका ही से एम० डी० की उपाधि मंगवा ली थी। अतः दोनों मित्र अपने को लज्जित अनुभव करते थे। एक दिन जालन्धर में मुझे पत्र मिला कि दोनों मित्र चिकित्सा की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये विलायत चले गए हैं।

(३)

महात्मा मुन्शीराम जी की कन्या अमृतकला का विवाह जन्म मूलक जातपांत के बन्धन तोड़ कर डा० सुखदेव जी से हुआ। देवी अमृतकला से मेरा घनिष्ट संबन्ध था। उसे मैं अपनी छोटी बहिन समझा करता था। महात्मा जी तो मेरे धर्मपिता थे ही, अतः यह सम्बन्ध और भी घनिष्ट होगया था। डा० सुखदेव जी भी मेरे पुराने मित्र थे। और यह विवाह कराने में भी मेरा बड़ा हाथ था अतः इस नवीन परिवार से मेरा घनिष्ट सम्बन्ध होना स्वाभाविक ही था।

डा० सुखदेव जी की लड़की का नाम-करण संस्कार था। मैंने तो उसमें आना ही था। डाक्टर जी ने भारद्वाज जी की धर्मपत्नी श्रीमती सुमंगली देवी को भी निमन्त्रित किया। वह आईं। संस्कार के बाद वह और मैं मिले। निश्चित रूप से हम दोनों की बातचीत का एक ही विषय हो सकता था। चिरंजीव भारद्वाज मेरे घनिष्ठ मित्र थे और वह तो उनका उत्तम-भाग ही थीं। फिर किसी और बात की चरचा का अवसर ही कहां हो सकता था। भाग्य से थे भी दोनों ही बोलने वाले। हम दोनों उन की तारीफ़ करने लगे। खूब देर तक यह मनोरंजक प्रकरण चला। विदा होते समय देवी सुमंगली ने कहा—"पत्र लिखते रहा कीजिये।"

इस समय से पूर्व मेरा किसी महिला से पत्र व्यवहार न था। इसी झेंप के कारण मैंने कहा—"पत्र व्यवहार का प्रारम्भ आप ही की ओर से होना चाहिये।"

इस के तीसरे दिन ही उन की एक चिट्ठी मेरे पास आई। और उसी दिन मैं ने उस का जवाब दे दिया। फिर तो यह पत्र व्यवहार का सिलसिला जारी ही रहा। कई मास बाद एक दिन सुमंगली देवी जी का एक पत्र मिला, इस में बहुत संक्षेप में लिखा था कि 'एक दम लुधियाना चले आइये!' मैं बड़ी चिन्ता में पड़ा। इस बात का क्या जवाब दूं। भारद्वाज जी विलायत हैं। इस देश का वायुमण्डल इस सम्बन्ध में बहुत ही संन्देहपूर्ण और विषाक्त है। यहां तो लोग वैसे ही लांछन लगाने से बाज़ नहीं आते, फिर एक देवी के घर आने जाने का मतलब तो लोग एक सीधा सबूत समझेंगे। यह प्राचीन भारत तो है नहीं कि द्रौपदी अपने को कृष्ण का मित्र कह सके, या कौशल्या अपने को जनक की सखी उद्घोषित कर सके। दूसरी

तरफ़ सुमंगली देवी मेरे मित्र की पत्नी ही नहीं, मेरी बहिन भी थी अतः इसे मैं अपना आवश्यक कर्तव्य समझता था कि बुलाये जाने पर उस की सहायता करूं। इस कारण मैं कुछ किंकर्तव्यविमूढ़ सा बन गया। बहुत देर तक यह निर्धारित ही न कर सका कि इस अवस्था में मुझे क्या करना चाहिये। अन्त में मैंने सोचा—मेरा धर्म मुझे आज्ञा देता है कि इस दशा में अवश्य वहां जाऊं। मुझे ख्याल आया—क्या हिन्दुओं की धर्म बहिनें नहीं होतीं? कौन पतित से पतित हिन्दू भी मित्र की पत्नी की सहायता करने को पाप समझेगा। बस मुझ में साहस की भावना जागृत हो गई। मैंने निश्चय कर लिया कि मैं कायर नहीं बनूंगा। लोकाचार की उपेक्षा कर के मैं अपना कर्तव्य पालन करूंगा।

दूसरे दिन मैं लुधियाना जा पहुँचा। वहां एक और कठोर परीक्षा मेरी प्रतीक्षा में थी।

बहिन सुमंगली ने मुझ से कहा कि अपनी अन्तरात्मा की आवाज़ तथा अपने पतिदेव की इच्छापूर्ण अनुमति से मैं यहां के बहुत से सामाजिक कार्यों में हिस्सा लेती हूं। यहां की कन्या पाठशाला में मैं पढाती हूं। स्त्री-समाज में मैं भाषण देती हूं। मेरे पति विलायत से प्रायः अपने सभी पत्रों में आदेश दिया करते हैं कि 'मेरे उद्देश्यों को कभी न भूलना। स्त्रियों से परदे की बुराई को दूर करना और उन्हें वैदिक सिद्धान्तों का सन्देश सुनाती रहना। प्रिये! मेरी आत्मा को तुमसे बड़ी २ आशायें हैं।' परन्तु दूसरी तरफ़ मेरे पिता मेरी इन कृतियों में अपना अपमान समझते हैं। वह कहते हैं कि सुमंगली मेरा नाक काट रही है। पहले मुझे वह तरह २ से समझाया ही करते थे परन्तु अब तो उन्हों ने मेरे इन कामों को जिस किसी तरह बन्द कर देने का निश्चय कर लिया है। वह कहते हैं कि 'कम से कम जब तक मेरे पास हो तब तक मेरी इच्छा के अनुसार ही चलो। भले घरों की लड़कियां घर में ही रहती हैं, ऐसे काम नहीं करतीं।' मुझसे अब ये बातें नहीं सही जातीं। मैं बहुत दुविधा में हूं। पति की बात मानूं अथवा पिता की। आप मुझे आदेश दीजिये कि इस अवस्था में क्या करूं।

मैं फिर चिन्ता में पड़ा। देवी सुमंगली के प्रश्न का क्या उत्तर दूं। यदि पिता की बात मानने को कहता हूं तो वह अपनी आत्मा पर अत्याचार करता है, यदि पति की बात पर दृढ़ रहने की बात कहता हूं, तो उस के परिणामों को भी मुझे ही सहन करना होगा। हे ईश्वर! अपनी बहिन को मैं क्या राय दूं!

अन्त में मेरी साहस की स्वाभाविक भावना पुनः विजयी हुई। देवी सुमंगली को मैंने यही राय दी कि वह अपने पति की आज्ञा का ही अनुसरण करे।

उसका यह निश्चय जान कर उसके पिता ने कहा-"तो फिर, अब तुम मेरे यहां नहीं रह सकती।"

उसके पिता को कभी यह स्वप्न में भी आशा न थी कि मेरी पुत्री कभी मेरी इतनी बड़ी धमकी का सामना कर सकती है, और फिर कोई अन्य व्यक्ति, चाहे वह सुमंगली का धर्मभाई ही क्यों न हो, उसे अपने घर लेजाने का साहस कर सकता है। परन्तु उन के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब कि मैंने उन से कहा—"तो फिर वह अपने भाई के घर चली आवेगी।"

यह बात उन दिनों की है, जब किसी घर से पर्दा हटाने को भी पाप समझा जाता था, और यह बात लोगों को असम्भव कल्पना प्रतीत होती थी कि कभी पर्दा भी हट जायगा। बहिन सुमंगली

तो पहिले ही तैयार थी । अब उस के पिता चकराये । जो बात कभी उनकी कल्पना में भी न आई थी, वह प्रत्यक्ष दिखाई दे गई । वह घबराये । उन्होंने झट से कहा कि सुमंगली मेरे ही पास चाहे जिस तरह रहे ।

अब उसकी बारी थी । उस ने मुझे समझा दिया कि पिता जी से यह कह दो कि यदि कभी मेरी बहन को आप इस तरह से तंग करेंगे, तो मैं अवश्य ही उसे अपने यहां ले जाऊंगा । मैंने यही बात उनसे कह दी । और मैं फिर जालन्धर लौट गया ।

इस घटना से हमारे सम्बन्ध और भी अधिक दृढ़ होगए । देवी सुमंगली ने यह घटना अपने पतिदेव को भी लिख दी थी । कुछ सप्ताहों के बाद डा० भारद्वाज का एक लम्बा चौड़ा प्रेमपत्र मेरे पास आया । इस में उन्होंने लिखा था—"पुरानी स्मृतियों के नाम पर मेरी पत्नी की खोज खबर लेते रहिये । उस के हृदय में आप के लिये विशेष अनुभूति है ।"

(४)

डाक्टर भारद्वाज विलायत से लौट आये । लाहौर रह कर चिकित्सा द्वारा आजीविका करने लगे । उसी वर्ष वह लाहौर आर्य समाज के प्रधान चुन लिये गए । मैं और वह एक प्राण दो शरीर-से बन गए । वह मुझे बुलाया करते थे—"देव!" मैं उन्हें सम्बोधन करता था— "चिरि !" मेरे घर को वह अपना घर समझते थे और उन के घर को मैं अपना घर । उन के पास फ़ुर्सत कम होती थी, फिर भी वह मेरे यहां अवश्य आते जाते थे । सम्बन्ध बहुत निकट का हो जाने पर, दोषों का ज्ञान होते रहने से, प्रायः भक्ति कम होजाती है और दया तथा प्रेम बढ़ जाते हैं । परन्तु इस मामले में मेरा उन का ज्यों ज्यों सम्बन्ध बढ़ता गया त्यों त्यों भक्ति भी बढ़ती ही गई । उन के जीवन का एक ही चरम उद्देश्य मैंने देखा, और वह था— "सत्य" । यहां तक कि उन्होंने अपने दोनों पुत्रों का नाम भी 'सत्यव्रत' और 'सत्यकाम' ही रक्खा । उन की एक कन्या थी, उसका नाम भी उन्होंने 'सत्यबाला' रक्खा । जीवन भर में सब से ज्यादः उन्होंने 'सत्यार्थप्रकाश' का ही स्वाध्याय किया । मेरे साथ मिलकर उन्होंने सत्यार्थप्रकाश का अंग्रेज़ी अनुवाद भी किया था । इस का अनुवाद करते हुए एक भी पृष्ठ शायद ऐसा न गया हो जिस पर मेरी उनकी बहस न हुई हो ।

उन का सत्यप्रेम इतना निर्मल था कि इस के लिये उन्हें लोकलाज तक की भी परवाह नहीं थी । उन के प्रधानत्व में आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर वार्षिक विवरण सुनाते हुए प्रमादवश मंत्री महोदय ने एक राशी को दो बार सुना दिया । डाक्टर साहब को यह बात इतनी खटकी कि उन्होंने ३ बार मन्त्री महोदय की इस असावधानता के लिये जनता से क्षमा प्रार्थना की ।

आर्य समाज के उसी उत्सव पर मौलवी सनाउल्ला और स्वामी योगेन्द्रपाल का मुबाहसा भी हुआ था । मुबाहिसे में स्वामी जी ~~के उत्तर~~ लोगों को नापसन्द आ रहे थे, वे कुछ कमज़ोर से प्रतीत होते थे । लोग चाहते थे कि स्वामी जी को बजाय किसी और विद्वान को खड़ा किया जाय । परन्तु स्वामी जी को हटाने से भी तो आर्यसमाज का रोब घटता था इसलिये कुछ समझदार महानुभावों ने प्रधान जी को राय दी कि आप यह सूचना दीजिये कि स्वामी जी की आवाज़ धीमी है अतः हम उनके स्थान पर स्वामी नित्यानन्द जी को खड़ा करते हैं । सत्यप्रेमी भारद्वाज इस निर्देश पर सचमुच गुस्से होगए । उन्हों ने कहा-

"चाहते हो सत्यप्रचार के लिये मुबाहसा करवाना और उस के लिए बुलवाते हो मुझे से झूठ !"

लोग भला इस बात का क्या जवाब देते। थोड़ी देर में प्रधानजी मंच पर खड़े होकर यह घोषणा करते दिखाई दिये—'हम देख रहे हैं कि हमारे प्रतिनिधि स्वामी योगेन्द्रपाल जी विषयान्तर बात करते हैं, ठीक उत्तर नहीं देते। अतः आर्यसमाज का प्रतिनिधित्व करने के लिए मैं उन के स्थान पर स्वामी नित्यानन्द जी को नियुक्त करता हूँ।"

यह घोषणा लोगों को एक चमत्कार के समान प्रतीत हुई। और इस से सब से अधिक चकित हुए स्वयं मुसलमान भाई ही। मौलवी सनाउल्ला तो इस घटना के बाद डाक्टर साहब की खूब तारीफ़ करते रहे। वह कहा करते थे, कि भाई ! समाज का प्रधान तो एक ही देखा ! स्वामी योगेन्द्रपाल इस घटना से डाक्टर जी पर बहुत नाराज़ हो गए, मगर जनता डाक्टर जी से सन्तुष्ट थी।

(५)

डाक्टर भारद्वाज को शुद्धि का प्रथम प्रचारक समझना चाहिए। बड़ौदा में रहते हुए उन्होंने डेड़ जाति के बहुत से अछूतों को आर्य बनाया था और उन की शिक्षिता कन्याओं के विवाह भी ब्राह्मण आदि कुलों में उत्पन्न पुरुषों से करवा दिये थे। इस घटना के काफ़ी देर बाद धर्मपाल मुसलमान से आर्य बना। वह पहला ग्रैजुएट मुसलमान था, जो आर्य बना। इस कारण डाक्टर साहब स्वभाव से उस की ओर आकृष्ट हुए। वह उन के घर आने जाने लगा। बहिन सुमंगली देवी को वह 'माता जी' कह कर बुलाया करता था। धर्मपाल के आने पर भारद्वाज जी ने आर्यधर्म सभा को पुनरुज्जीवित किया। मैं भी इस सभा में सम्मिलित हुवा। धर्मपाल को सभा का मन्त्री बनाया गया। धर्मपाल डाक्टर जी के घर में ही बच्चों की तरह से रहता था। भाग्य से मेरी बाहु में फोड़े निकल आये, इस कारण मुझे भी इलाज के लिये डाक्टर जी के घर लाहौर में आ जाना पड़ा। धर्मपाल ने एक अपराध किया था; जिसका यहां वर्णन करना उचित नहीं। अपनी साहसी प्रवृत्ति के कारण मैंने एक दिन साफ़ शब्दों में धर्मपाल से उस का अपराध कह सुनाया। वह भड़क उठा, और डण्डा उठा कर मुझे मारने के लिये झपटा। इसी समय बहिन सुमंगली भाग कर उस के और मेरे बीच में आगई। उनकी स्थिति में वह मुझ पर प्रहार न कर सका। मैं तो बच गया परन्तु मेरी बहिन को उस पर इतना अधिक क्रोध आया कि जब डाक्टर साहब घर वापस आये तब उस ने उन से कहा कि धर्मपाल अब यहां नहीं रह सकता।'

सारी घटना सुन कर डाक्टर जी ने धर्मपाल को मेरे पैर पकड़ कर माफ़ी मांगने को कहा। इतना तो उस ने कर दिया, परन्तु अपने अपराध के लिये वह डाक्टर जी द्वारा बताया हुवा प्रायश्चित्त करने को तैयार नहीं था। इस कारण डाक्टर जी ने उसे घर से बाहिर कर दिया। एक रात उसने रावी के किनारे काटी। फिर वह समाज के मुखियाओं के वैयक्तिक मतभेद का अनुचित लाभ उठा कर लोगों को डाक्टर जी के बर्खिलाफ़ उभाड़ने लगा। यहां तक कि डाक्टर जी के घर की छोटी छोटी घटनाओं तथा बातचीतों के आधार पर उस ने महात्मा पार्टी के सर्वमान्य नेता महात्मा मुन्शीराम जी को धोखा देने का भी प्रयत्न किया। इस मामले का पंच भी महात्मा जी

को ही नियुक्त किया गया। उन्होंने सब बातें सुन कर धर्मपाल को यह सजा दी कि वह ६ मास तक सार्वजनिक जीवन से जुदा रहे। धर्मपाल को अपने अपराध पर पश्चात्ताप तो था ही नहीं अतः वह और अधिक भड़का। उसने हम लोगों के विरुद्ध एक किताब छपवाई। इस में उस ने डाक्टर भारद्वाज के निजी चरित्र पर घृणित और गन्दे आक्षेप किये। डाक्टर साहब उन दिनों लाहौर आर्य समाज के प्रधान और आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मन्त्री थे। उन का चरित्र तो तपे हुए कुन्दन की भांति उजला और पवित्र था। उन्होंने प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग समिति में कहा कि धर्मपाल ने मेरे चरित्र पर आक्षेप किये हैं। मैं उन के लिए अदालत में नहीं जाना चाहता। इस का न्याय मैं सभा द्वारा करवाना चाहता हूँ कि वह मामले की जांच कर के यदि मुझे दुराचारी पाये तो मुझे दण्डित करे अन्यथा धर्म पाल को दण्डित किया जाय।"

सभा की ओर से धर्मपाल से उत्तर मांगा गया। उस के पास कोई आधार तो था ही नहीं जिसे वह पेश करता। उसने बहाना किया—डाक्टर जी शक्तिशाली आदमी हैं। वह सभा के मन्त्री हैं, उन के बर्खिलाफ़ कहने की हिम्मत ही कौन करेगा।

यह बात मालूम होते ही डाक्टर जी ने सभा के मन्त्रीपद से त्यागपत्र दे दिया।

अब और कोई बहाना तक न मिलने से धर्मपाल सभा को ही गालियां देने लगा। इस पर सभा के प्रधान जी की अनुमति से डाक्टर जी ने धर्मपाल पर अदालत में मानहानी का दावा कर दिया। धर्मपाल समझा कि अदालत में तो उनके चरित्र पर धूल उड़ाने का और भी अच्छा मौका है। उस ने डाक्टर जी के विचारों से मतभेद रखने वाले महानुभावों का आश्रय लिया। परन्तु वे लोग भी डाक्टर साहब के व्यक्तिगत चरित्र से इतने अधिक प्रभावित थे कि उन्होंने अदालत में यही कहा कि मत भेद होना और बात है, परन्तु व्यक्तिगत चरित्र की दृष्टि से डाक्टर साहब का जीवन बहुत उन्नत है। ब्राह्मसमाज के एक नेता जब गवाह के के कटघरे में लाये गए और अदालत ने उन से पूछा कि डाक्टर भारद्वाज के चरित्र के सम्बन्ध में आप की क्या राय है तब उन्होंने कहा—"यदि ज़रूरत हो तो मैं अपनी धर्मपत्नी या अपनी कन्या को डाक्टर जी के कमरे में रात भर अकेला उन्हीं के पास रख सकता हूं।"

अदालत ने कहा—"अब मुझे आप से और कोई प्रश्न पूछने की आवश्यकता नहीं है!"

इसी मामले में एक और घटना भी हुई जिसने डाक्टर जी के चरित्र को और भी अधिक चमका दिया। धर्मपाल जिन दिनों पुत्र की तरह से डाक्टर जी के घर में रहा करता था, उन्हीं दिनों डाक्टर साहब अपने एक नवयुवक आर्य समाजी मित्र के घर में बहुत आया जाया करते थे। एक दिन इसी मज़ाक में देवी सुमंगली ने इस नवयुवक का नाम लेकर कह दिया— "वह तो मेरा सौत है, जो तुम उसके घर में खूब आते जाते हो।" बहिन सुमंगली के इस वाक्य का नाजायज़ लाभ उठा कर धर्मपाल डाक्टर साहब से यह सवाल अदालत में पूछना चाहता था कि आप की धर्मपत्नी ने आप से यह बात कही थी या नहीं।

डाक्टर साहब के वकील ने यह आवश्यक समझा कि भारद्वाज इस घटना की याद से इन्कार कर दें। यह साफ़ था कि सुमंगली का वह अभिप्राय तो था ही नहीं जिस के लिये धर्मपाल इस वाक्य को पेश कर रहा था। तथापि

सत्यनिष्ठ भारद्वाज इस वाक्य को मिथ्या किस तरह कहते। उनके वकील ने उन्हें सलाह दी कि कह देना— 'मुझे याद नहीं।' परन्तु डाक्टर जी ने कहा— "यह भी कैसे कहूं। क्यों कि मुझे तो याद है !"

अन्त में हार कर वकील साहब इस मामले में मेरी मदद लेने लाये। मैंने भी उन्हें मदद देने से इन्कार कर दिया। साथ ही मैंने उन्हें यह भी समझा दिया कि कल्पना करो यदि मैं तुम्हारे कहने से डाक्टर साहब को इतना सा गोलमाल करने की राय भी दे दूं तो मुझे मालूम है कि वह इस मामले में मेरी सलाह भी न मानेंगे।

अन्त में खुली अदालत में धर्मपाल के वकील ने उन से यही प्रश्न किया। डाक्टर साहब ने अदालत से कहा—"क्या प्रश्न का उत्तर अवश्य दूं ?"

अदालत ने कहा—"हां।"

सत्यवीर भारद्वाज ने कहा—"यह बात सत्य है।" बस, मजिस्ट्रेट का रुख एकदम बदल गया। इस घटना के बाद उस ने बहुत अधिक गवाहियां आदि लेना भी व्यर्थ समझा। इन्हीं दिनों धर्मपाल डिप्टी कमिश्नर के पास डाक्टर साहब को राजद्रोही सिद्ध करने भी गया था। परन्तु डाक्टर महोदय को इस सत्यनिष्ठा के सामने उस की दाल न गली। मजिस्ट्रेट ने एक बहुत ही सख्त फैसला लिखा और धर्मपाल पर १००) रु० जुर्माना किया। इस निर्णय में उस ने डाक्टर जी के चरित्र की बड़ी तारीफ़ की।

महात्मा मुन्शीराम प्रथम व्यक्ति थे जिन्हों ने डा० भारद्वाज को यह मामला जीतने पर अपने अखबार में बधाई दी। धर्मपाल अभी तक समझता था कि महात्मा मुन्शीराम जी तो मेरे तरफ़दार हैं! इस घटना से वह उन से भी नाराज़ हो गया। उस ने उन के विरोध में भी एक पुस्तक लिख मारी। फलतः उसे आर्यसमाज से ही पृथक् होना पड़ा। आजकल उस ने अपने को गाज़ी महमूद धर्मपाल अब्दुल ग़फ़ूर नाम से मशहूर किया हुवा है। आर्यसमाज को गाली देकर वह अपना पेट पालता है।

यदि मेरी ये पंक्तियां पढ़ने का अवसर धर्मपाल को भी मिले तो मैं उसे साफ़ शब्दों में यह कह देना चाहता हूं कि ये पंक्तियां मैंने इस की पोल खोलने के लिये नहीं, अपितु डाक्टर जी के चरित्र की उज्ज्वलता दिखाने के लिये ही लिखी हैं।

(६)

अवस्थाओं के फेर से डाक्टर साहब को यह देश छोड़ना पड़ा। कुछ समय तक बर्मा रह कर वह मारिशस चले गए, वहां वह पोर्ट लियोस नगर में प्रैक्टिस करने लगे। डाक्टर जी के हाथ में यश था। वह शीघ्र ही हज़ारों रुपया कमाने लगे। एक मोटर भी खरीद ली। परन्तु डा० चिरंजीव चिरंजीव किस तरह होते यदि धन कमाना ही उन के जीवन का उद्देश्य होता। अपनी प्रैक्टिस शीघ्र ही बहुत अच्छी हो जाने पर उन्होंने वहां आर्यसमाज की स्थापना भी कर दी। विदेश में वह आर्यसमाज के प्रथम दूत थे। वहां उन्होंने हज़ारों भारतीयों को आर्य बना दिया। यहां तक कि मारीशस की एक पृथक् प्रतिनिधि सभा भी कायम कर दी।

धीरे धीरे मारीशस के सनातन धर्मावलम्बी भारतीयों को डाक्टर साहब का यह कार्य खटकने लगा। वे लोग एक डैपुटेशन बना कर उन के पास आये और कहा कि आप अपना यह आर्यसमाज के प्रचार का कार्य बन्द कीजिये वर्ना हम लोग भविष्य में आप से अपना इलाज करवाना ही छोड़ देंगे। आप की बजाय तब हम फिर से यूरोपियन डाक्टरों के पास ही जाया करेंगे।

डाक्टर साहब ने हंस कर कहा—"आप लोगों के मशविरे के लिये धन्यवाद । मैं अपना काम बन्द नहीं कर सकता । हां, अपने इलाज के लिये आप स्वतन्त्र हैं । चाहे आप मेरे पास आवें, या किसी और डाक्टर के पास जावें ।"

बस इस दिन के बाद से धर्म के नाम पर इस यशस्वी डाक्टर की चिकित्सा का बहिष्कार कर दिया गया । लोग धरना देने लगे । डाक्टर साहब की आय एक दम घट गई । आर्य समाजी गरीब थे, वह डाक्टर जी को उन की सेवाओं का बदला धन से न दे सकते थे । परिणाम यह हुआ कि उन का गुज़ारा भी कठिन हो गया । शीघ्र ही उन्हें मोटर बेच देनी पड़ी । धीरे धीरे नौकर हटा दिये गए । नौबत यहां तक पहुँची कि धोबी की धुलाई देने तक को डाक्टर साहब के पास पैसों की कमी हो गई । सुमंगली देवी इन दिनों सचमुच डाक्टर जी की अनथक सेवा किया करती थी । सारी उमर आराम से व्यतीत करने की आदत होने पर भी वह स्वयं कपड़े धोती थी, रोटी पकाती थी और झाड़ लेकर घर बुहारती थी ! पतिपत्नी दोनों मुस्कराते रह कर इन आपत्तियों का सामना करते थे । डाक्टर साहब ने गरीब आर्यों की सन्तानों के लिये एक स्कूल भी खोल रखा था । वह और देवी सुमंगली स्वयं ही इस स्कूल में पढ़ाया भी करते थे ।

(७)

डा० चिरंजीव मारीशस से पुनः लाहौर वापस आगये हैं । लाहौर ही में उन्होंने अपनी प्रैक्टिस शुरू की है । अब वह बिलकुल बदल गए हैं । उन्हें अब अपनी आजीविका की चिन्ता नहीं रही । चिन्ता है सिर्फ दुखपीड़ितों की सेवा करने की । वह अब किसी से कोई फ़ीस नहीं मांगते । कोई किसी रोगी को देखने के लिये अपने घर लेजाता है, तो उस से भी फ़ीस नहीं लेते । यदि कोई पूछता है—"डाक्टर साहब ! आप की फ़ीस क्या है ?"

डाक्टर साहब अपनी स्वाभाविक पवित्र मुस्कराहट के साथ जवाब देते हैं—"शून्य से लेकर १६ रु० तक, जितनी तुम्हारी सामर्थ्य हो ।"

डा० चिरंजीव का उद्देश्य अब मनुष्य की सेवा है । दरिद्रनारायण के उस सच्चे उपासक के घर जाकर एक दिन मुझे सचमुच ही एक स्वर्गीय दृश्य देखने का अवसर मिला । मेरी मौजूदगी में ही एक दरिद्र सा व्यक्ति अपनी बीमार पत्नी को डाक्टर साहब के घर लाया । वह बेचारी महीनों से बीमार थी । सूरत देखने से ही प्रतीत होता था कि मानो मौत उस से खिलवाड़ कर रही है । डाक्टर चिरंजीव ने उस की परीक्षा की । उस के लिये नुस्खा लिखा और अपने कम्पाउण्डर से कह कर उस के लिये मुफ़्त ही दवाई भी बनवा दी । इसी समय उस व्यक्ति ने बड़ी नम्रता से पूछा—"महाराज इसे खाने के लिये क्या चीज़ दूँ ।"

डाक्टर साहब ने कहा—"इसे दूध के अतिरिक्त और कोई चीज़ खाने को मत देना ।"

वह आदमी दो तीन क्षणों तक तो डाक्टर साहब की तरफ़ देखता रहा, इस के बाद उस की रुलाई फूट पड़ी । वह कातर भाव से सिसक सिसक कर रोने लगा । डाक्टर साहब के सहानुभूतिपूर्ण हृदय को यह देख कर ठेस पहुँची । उन्होंने आश्वासन के तौर पर कहा—"क्यों भाई ! रोते क्यों हो ?"

वह आदमी पहले तो कुछ न बोला, परन्तु डाक्टर साहब के ज़ोर देने पर उसने कहा—"जो आदमी अपनी पत्नी की बीमारी में दवा तक के लिये पैसा नहीं दे सकता, वह दूध का इन्तज़ाम कैसे करेगा ।"

डाक्टर साहब ने अपनी जेब में हाथ डाला। कुछ रुपये निकाले और उस ग़रीब को देकर कहा—"जाओ भाई! इन रुपयों से अपनी पत्नी को दूध पिलाओ। जब ये समाप्त होजावें तो मुझ से और लेजाना!"

वह अपढ़ आदमी डाक्टर साहब से धन्यवाद तो नहीं कह सका। परन्तु उस दरिद्र का एक एक रोम डाक्टर साहब के लिये सहस्रों सफल आशीर्वादों की अजस्र वर्षा कर रहा था। उस दिन के बाद भी डाक्टर साहब ने उस असहाया नारी की इस तरह चिकित्सा की, जिस तरह वह किसी करोड़पति की चिकित्सा कर रहे हों। परिणाम यह हुआ कि वह नारी मौत के मुंह में जाने से बच गई।

वह घटना शीघ्र ही मशहूर होगई। ग़रीबों और पीड़ितों को साक्षात नारायण मिल गया। उन का निवास स्थान पीड़ितों के लिये एक सच्चा तीर्थ बन गया। डाक्टर साहब का एक एक मिनिट बीमारों की सेवा में कटने लगा। उन की आमदनी भी कम न थी, क्योंकि उन के यहां इलाज के लिये आने वाले धनी मरीज़ों की संख्या भी बहुत होती थी। इस पर भी उन का जीवन बिल्कुल सादा था। वे अपने विलास के लिये ज़रा भी खर्च नहीं करते थे। वह सादे मकान में रहते, सादे कपड़े पहिनते और सादा ही भोजन करते। प्रथम पञ्जाबी F. R. C. S. होने का उन्हें सौभाग्य प्राप्त था। उन के हाथों में यश था। उन का घर एक अच्छे बड़े हस्पताल के समान चिकित्सा के सभी तरह के उपकरणों से पूर्ण था। बीमारों का इलाज करने के साथ ही साथ वह उन की नैतिक तथा आत्मिक चिकित्सा भी किया करते थे। परिणाम यह हुआ कि वह शीघ्र ही लाहौर में एक महात्मा के समान पुजने लगे। नगर की जिस गली से वह निकल जाते, उसी के दरिद्र खड़े होकर उन्हें हार्दिक आशीर्वाद देते थे।

दूसरी ओर डाक्टर साहब पापरोग खरीदने वाले धनी लोगों की खबर लेना भी खूब जानते थे। एक दिन मेरी मौजूदगी में ही एक धनी उन के पास इलाज के लिये आया। डाक्टर साहब ने उससे पूछा—"तुम्हें क्या शिकायत है?"

उसने कहा—"अलग कमरे में चल कर सुनिये!"

डाक्टर जी ने कहा—"यहां ही कह दो। इनसे घबराने की कोई आवश्यकता नहीं।"

परन्तु वह व्यक्ति अब भी हिचकिचा रहा था, अतः डाक्टर साहब ने उस से कहा—"अपनी बीमारी का नाम काग़ज़ पर लिख दो।"

काग़ज के एक पुर्ज़े पर उसने लिखा—"सिफ़लिस।"

डाक्टर जी ने एक और पुर्ज़े पर "फीस ६४) रु०" लिख कर उस के सामने कर दिया।

वह घबरा कर बोला—"डाक्टर जी! आप तो कमाल करते हैं। सिविल सर्जन तक तो ३२ रु० लेते हैं और आप ६४) रु० मांगते हैं! यह कहां का न्याय है?"

डाक्टर जी ने इस बार गम्भीरता से कहा—"भले आदमी, यह तो बताओ कि यह बीमारी तुम ने खरीदी कितने रुपये देकर है? क्या ६४) रु० उन रुपयों से अधिक हैं! जाओ, मैं तुम्हारा इलाज नहीं करूंगा। इलाज होगा तो डबल फीस पर ही। और साथ ही तुम्हें यह प्रतिज्ञा भी करनी होगी कि भविष्य में सदाचारी रहोगे।"

वह पापरोगी, शीघ्र ही डाक्टर जी के घर से खिसक गया। उस के बाहर होते न होते डाक्टर

जी मेरी तरफ़ देख कर ज़ोर से खिलखिला कर हंस पड़े।

(८)

मैं कट्टर आर्य समाजी हूं। अपने लिये मैं ऋषि दयानन्द की एक एक बात को प्रामाणिक मानता हूं; फिर भी आध्यात्मिक रहस्यवाद पर मेरा विश्वास है। मुझे ज्ञात है कि पाखण्डी लोग धन के लोभ से इस विद्या का दुरुपयोग भी करते हैं, तथापि इस की सत्यता पर भी मेरा विश्वास है, क्यों कि इस सम्बन्ध में मेरे अनेक वैयक्तिक अनुभव भी हैं। अपने जीवन की जिस घटना का मैं यहां उल्लेख करने लगा हूँ, उस की गणना भी आध्यात्मिक रहस्यवाद में की जा सकती है।

एक रात नींद में मुझे स्वप्न आया—एक जहाज़ पर सवार होकर मैं समुद्र यात्रा कर रहा हूं। सांझ के समय मैं रेलिङ्ग के सहारे जहाज़ के डैक पर खड़ा होकर समुद्र के अनन्त विस्तीर्ण वक्षस्थल की ओर देख रहा हूं। इसी समय दूर पर एक और जहाज़ आता हुआ दिखाई दिया। क्रमशः वह जहाज़ बहुत निकट आगया। मुझे दिखाई दिया कि दूसरे जहाज़ के डैक पर अकेले डा० चिरंजीव भारद्वाज खड़े हैं। सहसा उन की दृष्टि मुझ पर पड़ी और ऊंची आवाज़ में उन्होंने अंग्रेज़ी की एक कविता का एक पद पढ़ा, जिस का भवार्थ है—"जहाज़ एक बार समुद्र में मिलते हैं, और फिर अपने अपने रास्ते पार चले जाते हैं।"

उसी समय मेरी नींद उचट गई। मेरी अन्तरात्मा ने कहा—अवश्य ही मेरे मित्र का कोई भारी अनिष्ट होने वाला है। मैं उठा, और मैंने अंग्रेज़ी कविता की वह पंक्ति अपनी डायरी में नोट कर ली। उस से पूर्व तब तक मैंने वह लाइन न कहीं पढ़ी थी और न सुनी थी। रात भर मुझे नींद न आई। मैं चिन्तित रहा। प्रातः काल ८ बजे मुझे तार मिला—"डाक्टर चिरंजीव बहुत अधिक बीमार हैं। एक दम चले आओ।"

उसी समय मैं लाहौर के लिये रवाना हो गया। मेरे मित्र पर हैज़े ने आक्रमण किया था। मैंने लाहौर पहुंच कर देखा कि लाहौर के सभी बड़े से बड़े डाक्टर मेरे मित्र की जीजान से, बिना एक भी पैसा फीस लिये, चिकित्सा कर रहे हैं। मालूम होता था कि डाक्टरों ने इस मामले में मौत से लड़ाई करने का संकल्प कर लिया था। डा० बेलीराम, डा० हीरालाल, डा० बालकृष्ण, डा० सदर लैण्ड, डा० निहाल चन्द, डा० धनपतराय—ये लोग उन दिनों लाहौर के सर्वश्रेष्ठ डाक्टर समझे जाते थे। रात को ड्यूटी भी डाक्टर लोग ही दिया करते थे। हस्पतालों की नर्सिङ्ग डाक्टर चिरंजीव की सुश्रूषा करने को लालायित नज़र आती थीं। यह सब इस लिये कि डाक्टर चिरंजीव पंजाब के डाक्टरों का सन्मान थे। अपनी योग्यता और सेवा—इन दोनों दृष्टियों से लाहौर में उन्हें जो स्थान प्राप्त था, वह डाक्टर जमात भर के लिये ही प्रशंसास्पद था। मैं भी दिनरात जाग कर अपने मित्र की यत्किञ्चित सेवा करने का प्रयत्न करता था। डा० चिरंजीव पर से हैज़े का प्रभाव तो जाता रहा, परन्तु उन्हें युरीमिया होगया। इस बीमारी के दौरों में कई बार उन्हें सरसाम भी हो जाता था। इस अर्ध चेतनामय पागलपन की दशा में भी वह दर्शन शास्त्र और धर्म की चरचा ही करते थे। ८ दिनों तक मुझे उन की सेवा करने का अवसर मिला। इस के बाद वह पवित्र आत्मा अपने भौतिक देह को छोड़ कर स्वर्ग चली गई!

उस अन्तिम समय भी मैं अपने मित्र के सिरहाने ही बैठा था। उन के वियोग ने मेरा दिल तोड़ दिया। मैं बच्चों की तरह फूट फूट कर रोया। मुझे याद नहीं कि अपने इस जीवन में मैं और कभी उस दिन से अधिक रोया होऊं। मेरे बचपन में ही मेरी एक युवती बहिन का देहान्त होगया था, मेरे दो भाई और मेरे पूज्य पिता भी, मेरी आंखों के सामने ही परलोक सिधारे, परन्तु उस दिन की तरह मुझ में से आंसुओं का सोता और कभी नहीं फूटा। उस दिन मेरा वह अभिन्न मित्र उठ गया, आर्यसमाज का वह यशस्वी नेता उठ गया, वैदिक सिद्धान्तों का विद्वान् और सच्चा ब्राह्मण उठ गया और सब से बढ़ कर दरिद्र नारायण का वह सच्चा सेवक उठ गया। शहर भर में रोना-धोना मच गया। मुझे याद है, उस महात्मा की अरथी के साथ सैंकड़ों गरीब इस तरह रोते चीखते हुए चल रहे थे, जैसे उन के पिता का देहान्त हो गया हो। नगर के गरीबों में बहुत दिनों तक मातम छाया रहा। सचमुच वह ऐसा ही दरिद्र-वत्सल था। जिन लोगों का पाला कभी उस सच्चे ब्राह्मण से पड़ा है वे उस की याद आज तक भी आंखों में आंसू भर कर करते हैं।

हम धनियों के लिये यह बड़ा आसान है कि हम अपने बच्चों को वेश्यागामी होने से बचा लें या उन्हें भिखारी न बनने दें। अपने धन के प्रभाव से हम अपने बच्चों को साफ़ रख सकते हैं, अच्छे कपड़े पहिना सकते हैं, उत्तम भोजन दे सकते हैं, बड़े बड़े विज्ञान पढ़ा सकते हैं; परन्तु हम धनियों के लिये–जो स्वयं अपनी रोटी आप नहीं कमाते– यह सिर्फ़ कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव है कि हम अपने बच्चों को स्वयं मेहनत कर के कमाना सिखा सकें! हमारे उदाहरण से और अपने आराम के भड़कीले भौतिक साधनों से वे स्वयं काम न करना सीख जाते हैं।

टालस्टाय

मुझे मालूम नहीं कि मेरी कबर पर कभी कोई फूलों की माला चढ़ायेगा या नहीं। मैं कविता से प्यार तो बेशक करता हूं, पर वह मेरे लिये एक स्वर्गीय-विनोद मात्र ही है। अपने कवित्व सम्बन्धी यश को मैंने कभी महत्ता नहीं दी। मुझे कभी इस की भी परवाह नहीं होती कि लोग मेरे पद्यों को पसन्द करते हैं या नहीं। परन्तु भाइयो! मेरी एक प्रार्थना अवश्य स्वीकार करना—जब मैं मर जाऊं तो मेरी अर्थी पर एक तलवार अवश्य रख देना, क्योंकि मुझे इस बात का अभिमान है कि अपने जीवन में मैं मनुष्य जाति के स्वातन्त्र्य-युद्ध का एक बहादुर सैनिक रहा हूं।

हैनरिच हीन

(पश्चिम का एक सुप्रसिद्ध कवि.)

स्वतन्त्रता के लिये अत्यन्त आतुर व्यक्ति

(ले०— श्री पं० हरिशरण जी सिद्धान्तालंकार)

१. दो प्रकार के विचार



जकल जब कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये युद्ध की तीव्र तय्यारियां हो रही हैं, उस समय भिन्न २ लोगों की ओर से दो प्रकार के अत्यन्त विरुद्ध विचार हमें सुनने में आते हैं। उन दोनों विचारों को हम संक्षेपतः निम्न प्रकार से रख सकते हैं:—

पहले वे लोग हैं जो कहते हैं—"धर्म को एक ओर रख दो। ये स्वतन्त्रता की प्राप्ति में विघातक हैं।"

दूसरे वे जिनका कि कथन ठीक इनसे विपरीत है। वे कहते हैं—"धर्म और राष्ट्रीयता दो विरोधी चीज़ें हैं। राष्ट्रीयता के वायुमण्डल के पैदा होजाने से धर्म का लोप हो जाने का भय है। इस लिये अरे भाई! राष्ट्रीयता के भूत को अपनी संस्थाओं में न घुसने दो। यदि घुसने दिया तो धर्म अवश्य वहां से कूच कर जायगा।"

जिस समय हम इस पिछले विचार को सुनते हैं तो हमें फ्रांस में Charles (चार्ल्स) का तथा स्पेन में फ़िलिपादि का ज़माना याद हो आता है, जिस समय के कई लोग, लूथेरियन्स के प्रचार से तथा वैज्ञानिकों के अन्वेषणों से इतने डर गये थे कि उन्हें हरदम भय था कि कहीं सच्चे सनातन धर्म का लोप न होजाय। परिणामतः तत्कालीन राजाओं ने Inquisition Courts की स्थापना कर लाखों व्यक्तियों की सत्ता को समाप्त कर दिया। न जाने वर्तमान में ये पिछले विचार वाले लोग यदि राजशक्ति रखते होते तो धर्मनाश के भय से भयभीत हो किन २ उपायों का अवलम्बन करते। अस्तु; हमें तो उल्लिखित दोनों कथनों पर थोड़ा विचार ही करना है, यही हमारे प्रस्तुत लेख का उद्देश्य है।

२. उपरोक्त विचारों का विश्लेषण

हम उपरोक्त दोनों विचारों को दो भागों में बांट सकते हैं:—

i प्रतिज्ञा (Hypothesis)

ii परिणाम (Conclusion)

प्रतिज्ञा तो दोनों प्रकार के विचारों के लोगों की समान है कि "राष्ट्रीयता और धर्म दो विरोधी चीज़ें हैं।" परन्तु इस प्रतिज्ञा से जिन परिणामों पर वे पहुंचते हैं वे परिणाम नितान्त भिन्न हैं। प्रथम लोगों का परिणाम है कि "धर्म को छोड़ दो। यह स्वतन्त्रता में विघातक है।" दूसरों का यह कि स्वतन्त्रता को तिलाञ्जलि दो जो कि धर्म का ही नाश करती है।" एवं दोनों ~~कथनों~~ विश्लेषणसे यह स्पष्ट है कि दोनों में प्रतिज्ञा एक है, परन्तु परिणाम विरुद्ध हैं।

अब हम यह सोचने बैठते हैं कि कौनसा परिणाम ठीक है और कौनसा अशुद्ध, तो हमें ज्ञात होता है कि दोनों ही अशुद्ध है। और वस्तुतः इनमें से कोई ठीक हो भी क्योंकर सकता है जब कि दोनों परिणामों की आधारभूत प्रतिज्ञा ही ग़लत है। प्रतिज्ञा है— "राष्ट्रियता व धर्म दो विरोधी चीज़ें हैं" परन्तु क्या यह ठीक है? आइये, ज़रा इस पर विचार तो करें।

३. राष्ट्रीयता व धर्म में अविरोध

i वर्तमान युग का सब से महान् धर्म-सुधारक श्री दयानन्द सरस्वती अपनी पुस्तक सत्यार्थ-प्रकाश में एक बड़ा विस्तृत अध्याय का अध्याय शुद्ध राजनीति पर लिखता है।

ii मानवधर्मशास्त्र में मनु दो अध्याय राजनीति को समर्पित करते हैं।

iii सब से प्रमुख वेद (अथर्व) राष्ट्रीय सूक्तों से भरपूर है, जब कि अन्य वेद भी राष्ट्रीय विचारों से ख़ाली नहीं हैं।

क्या ये बातें इसका संकेत नहीं कर रही कि राष्ट्रीयता और धर्म दो विरोधी चीज़ें नहीं हैं? हो सकता है कि पाश्चात्यों की सभ्यता में धर्म और राजनीति दो चीज़ें हों। परन्तु वैदिक धर्म में ये दो चीज़ें नहीं है। हमें तो बड़ा आश्चर्य हुआ जब कि हमने एक विद्वान् वक्ता को अपना भाषण इन शब्दों से प्रारम्भ करते हुए सुना— "राष्ट्रीयता और धर्म दो विरोधी चीज़ें हैं।" उसी समय समीप बैठे हमारे एक मित्र ने कहा— "क्या जो एक राष्ट्रीय व्यक्ति है वही वस्तुतः सत्य अर्थों में वैदिक धर्मी नहीं है? राष्ट्रीय-व्यक्ति तो वही होगा जो कि स्वार्थ को तिलाञ्जलि देकर, स्वार्थ का त्याग कर राष्ट्र को ही अपने प्राण समझेगा। स्वार्थ-त्याग ही तो वैदिक धर्म का निचोड़ है। एवं वह त्यागी राष्ट्रीय व्यक्ति ही वैदिक धर्मी नहीं तो वैदिक-धर्मी और है ही कौन?" वस्तुतः वैदिक धर्म और राष्ट्रीयता के अन्दर विरोध का कथन करना अज्ञानता को प्रकट करना है।

४. वैदिक-धर्म व अन्य मत-मतान्तर

यहां हमें यह भी कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि वैदिक धर्म व अन्य धर्मों (धर्माभासों) में भेद यही है कि जहां वैदिकधर्म व राष्ट्रीयता में विरोध होना तो दूर रहा अपितु अङ्गाङ्गिभाव है—राष्ट्रीयता वैदिक-धर्म का जहां एक अङ्गभूत है; जहां कि एक वैदिक-धर्मी स्वतन्त्रता की प्राप्ति को अपना परमधर्म समझकर उसके लिये आतुर हो उठता है; वहां उन धर्माभासों में निमग्न लोग राष्ट्रीयता से डरते हैं, उन को भय है कि राष्ट्रीयता हमारे धर्म का नाश न कर दे।

वैदिक धर्म व राष्ट्रीयता में तो शरीर व भुजा का सम्बन्ध है। वैदिक धर्म शरीर है, तो राष्ट्रीयता भुजा। भुजा की रक्षा अत्यन्त आवश्यक है चूंकि उसके नाश के साथ, शरीर की रक्षा का होना भी असम्भव होजायगा।

एवं यद्यपि मुसलमान इस बात से डरें कि कहीं राष्ट्रीयता से उनका इस्लाम नष्ट न हो जाये, बेशक ईसाई इसाईयत के नाश के भय से घबरा कर राष्ट्रीयता को दूर से ही प्रणाम करें, परन्तु एक वैदिक धर्मी को तो इस प्रकार भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। कभी भी भुजा शरीर का ही नाश न करेगी बशर्ते कि हम स्वयं नष्ट होना न चाहें। एक मौलवी बेशक यह प्रचार करे कि ऐ मुसलमानो! तुम राष्ट्रीयता में वहीं तक भाग लो जहां तक तुम्हारे इस्लाम के नाश का भय न हो। परन्तु एक वैदिक धर्मोपदेशक को यह शब्द कभी भी कहने की आवश्यकता नहीं कि वैदिक धर्मियो! तुम स्वतन्त्रता के युद्ध के सैनिक तभी बनो, यदि वैदिक धर्म ख़तरे में न हो। हमें तो ऐसे अज्ञ प्रचारकों के हाथ ही वैदिक धर्म नष्ट होता हुआ दीखता है। क्या आर्य समाज के भी इतने लम्बे अरसे में इतने संकुचित प्रसार के कारण भी ये ही लोग तो नहीं हैं? हम आगे चल कर इस बात पर भी थोड़ा विचार करेंगें। यहां तो हमने अब यही देखना है कि वैदिक धर्म के साथ जब

राष्ट्रीयता का विरोध नहीं तो अन्य धर्मों (धर्माभासों) का विरोध क्यों कर है।

५ धर्म व मत

वस्तुतः धर्म और चीज़ है, मत और। धर्म सत्य है मत असत्य। धर्म ईश्वर की देन है मत व्यक्ति की। ईश्वर निर्भ्रान्त व सत्य है, इस लिये धर्म भी सत्य है। परन्तु व्यक्ति, ऊंचे से ऊंचा भी, निर्भ्रान्त नहीं है। परिणामतः मत भी सत्य नहीं है। धर्म का, जो कि सत्य है, उसका राष्ट्रीयता से विरोध नहीं। परन्तु मत, जो कि स्वयं असत्य है, उसका राष्ट्रियता से विरोध स्वाभाविक है।

धर्म ही जब किसी व्यक्ति के नाम से सम्बद्ध हो जाया करता है उस समय वह सार्वभौम व सत्य न रह कर संकुचित व असत्य हो जाया करता है। इसी भय से भयभीत होता हुआ ही वह वर्तमान युग का परम सुधारक अपने ग्रन्थ में लिखता है —"जो कोई किसो से पूछे कि तुम्हारा क्या मत है तो यही उत्तर देना कि हमारा मत वेद, अर्थात् जो कुछ वेदों में कहा है उस को हम मानते हैं।" उस दिव्य दृष्टि दयानन्द स्वामी को भय था कि कहीं मेरे पीछे लोग वैदिक धर्म के साथ मेरा नाम न जोड़ दें। उस ने तो यहां तक प्रयत्न किया कि उस का फोटो भी न लिया जा सके। जिस से किसी तरह उस का नाम लोग वैदिक धर्म के साथ जोड़ उसे भी धर्म की अधित्यका (उच्च स्थान) से मत की उपत्यका (निकृष्ट स्थान) पर न ला गेरें। उस का भय सत्य था, जैसी उस को आशंका थी वैसा ही हुआ। दुःख है, परन्तु किया क्या जाय।

६ चचा व बाबा

थोड़े दिन पूर्व आर्यन कांग्रेस के प्लेटफ़ार्म से मुसलमानों के लिये कुछ शब्द कहे गये थे वे हमें खूब याद हैं। शब्द बहुत कुछ इस प्रकार थे-"मुसलमानों का मुहम्मद अच्छा है ; हो अच्छा, परन्तु मुसलमान जब हमें यह कहेंगे कि हमारा चचा (मुहम्मद) ज़्यादह अच्छा है, तुम उसे मानो तो लड़ाई की बात हो जायेगी। हम अपने चचा से उन के चचा को अच्छा क्यों कर मानेंगे ?" हम इन शब्दों से पूर्णतया सहमत हैं। परन्तु हम आवश्यक समझते हैं कि इन के साथ मुसलमानों से कहे गये इन शब्दों को भूल न जायें-"स्वामी दयानन्द एक उच्चतम व्यक्ति था। वह उच्चतम, बेशक हो परन्तु जब हमें अपने बाबा को छोड़ उस पराये बाबा को मानने के लिये कहा जायगा तो लड़ाई हो जायेगी।" यह स्पष्ट है कि धर्म एक दिव्य वस्तु है, उस का प्रकाश सर्वभौम हो सकता है। परन्तु मत एक निकृष्ट वस्तु है, वह स्वयं प्रकाशमय नहीं, औरों को प्रकाशित करेगा, इस की तो बात ही दूर रही। स्वामी जी महाराज की इच्छा पूर्ण नहीं हुई, उन के भक्तों ने अपनी समझ के अनुसार उन का मान किया; परन्तु वस्तुतः अपमान हो गया। उन्होंने मुहम्मद विषयक अप्रिय सत्यों के उद्घाटन से सोचा कि मुसलमान अपने बाबा को मान लेंगे। परन्तु ऐसा न हुआ। मुसलमानों ने प्रत्युत्तर में हमारे बाबा पर भी नानाविध दोषारोपण किये। उस की मिट्टी ख़राब करने में कोई भी कोशिश उठा न रक्खी। हमें तो बड़ा दुख है कि हमने उस महान् व्यक्ति को 'हमारा बाबा' बना ही क्यों लिया। उसको 'सब का बाबा,' क्यों न बनने दिया। परमेश्वर हमें सुबुद्धि दे जिससे कि हम उस महान् व्यक्ति के क्षेत्र को संकुचित करने वाले 'हमारे' शब्द को हटा दें। यदि एक मुसलमान श्री स्वामी दयानन्द के उत्सव पर हमारे साथ सम्मिलित हो कर उन के यश गाता है तो गाने दो। इस बात से गुस्से न हो कि वह हमारा बाबा था, उस के उत्सव में यह मुसलमान

क्यों शामिल हो गया, हमें तो परमेश्वर पर भरोसा है कि वह हमें ऐसी सद्बुद्धि अवश्य देंगे, और इस प्रकार समाज की उन्नति में जो एक बड़ीभारी रुकावट है उस को दूर करेंगे।

७. मत व राष्ट्रीयता में विरोध.

मत और धर्म के भेद को हमने यथासम्भव स्पष्ट कर दिया। स्वामी दयानन्द किसी मत के न हो कर धर्म के प्रचारक थे, और वस्तुतः इसी लिये वे सच्चे राष्ट्रीय भी थे। अपने को उन के अनुयायी मानने वाले कई लोग धर्मावलम्बी न हो कर मतावलम्बी हो गये हैं; इस लिये वे राष्ट्रीय बनने से घबराते हैं। जहां स्वामी दयानन्द से बढ़ कर स्वतन्त्रता के लिये आतुर व्यक्ति हमें कोई दीखता नहीं, वहाँ उन के अनुयायी कहलाने वाले अनेक सज्जन स्वतन्त्रता को भूत समझ उस से घबराते हैं। हमारे तो आश्चर्य की पराकाष्ठा हो गई जिस दिन कि गुरुकुल के लड़कों के हाथ में तकली देख कर कई अपने को वैदिकधर्मी कहने वाले लोग घबरा गये और कह उठे कि गुरुकुल तो राष्ट्रीय हो गया, धर्म का यहां अन्त हो गया।

कहाँ स्वतन्त्रता के लिये आतुर दयानन्द, कहाँ राष्ट्रीयता को भूत मान कर उससे भागने वाले ये लोग?

८. स्वतन्त्रता के लिये आतुर दयानन्द

किसी चीज़ के लिये एक आतुर व्यक्ति सिवाय उसी चीज़ के किसी भी अन्य चीज़ को पसन्द नहीं करता। उसे सोते, जागते, उठते, बैठते, उसी चीज़ के स्वप्न आया करते हैं। यदि वह लेखक हो और किसी भी विषय पर वह लिख रहा हो तो उस का लेख उस चीज़ के संकेत से खाली नहीं रहता। ठीक इसी प्रकार हम तो श्री स्वामी दयानन्द जी को पाते हैं। उन की स्वराज्य के लिये अत्यन्त आतुरता सुव्यक्त हो जाती है, जब कि वे भक्ष्याभक्ष्य पर लिखते हुये भी सहसा स्वराज्य के विषय में लिखने लग जाते हैं:—

"किन्तु क्षत्रिय लोगों का युद्ध में एक हाथ से रोटी खाते जल पीते जाना और दूसरे हाथ से शत्रुओं को घोड़े, हाथी, रथ पर चढ़ व पैदल हो कर मारते जाना अपना विजय करना ही आचार और पराजित होना अनाचार है। इसी मूढ़ता से इन लोगों ने चौका लगाते २ ... सब स्वातन्त्र्य...... पर चौका लगा कर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं।"

पुनः—"अपने हाथ की रसोई बना कर खायें या शूद्र के हाथ की?" इस प्रश्न के उत्तर के सिलसिले में वे लिखते हैं:—

"[1]विदेशियों के आर्यावर्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना पढ़ना पढ़ाना व बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह......आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई २ लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पञ्च बन बैठता है।"

क्या यह उद्धारण, वैदिक धर्म के प्रचार का मूल साधन स्वतन्त्रता को नहीं बतला रहे। विदेशियों के राज्य के कारण हुई हुई बातें उन के राज्य के हट जाने पर जायेंगी। विदेशी राज्य उन का मूल है तो आओ भाइयो, उसे उखाड़ कर हम फेंक दें, वैदिक धर्म का प्रचार स्वतः हो जायेगा। श्री स्वामी जी तो स्वतन्त्रता को ही वैदिक धर्म प्रचार का साधन मानते थे, परन्तु उन के कई कमसमझ अनुयायी उसी स्वतन्त्रता के युद्ध को वैदिक धर्म का विलोपक समझने लगे। ऋषि कुछ चाहता था, पिछले आने वालों ने कुछ समझा।

---

१. सत्यार्थप्रकाश—२१ वां ऐडीशन (अजमेर)। पृष्ठ १७०

विधाता को वैदिक धर्म का प्रचार इष्ट होगा तो वे हमें सद्बुद्धि देंगे और हम सचमुच ऋषि के कार्य को करने में सन्नद्ध हो जायेंगे। अस्तु।

श्री स्वामी जी पुनः लिखते हैं:—

"क्या तुम लोग महाभारत की बातें जो पाँच सहस्र वर्ष पहले हुई थी उन को भी भूल गये! देखो महाभारत युद्ध में सब लोग लड़ाइयों में सवारियों पर खाते पीते थे। आपस की फूट से कौरव, पाण्डव और यादवों का सत्यानाश हो गया; परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयङ्कर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ा कर दुःख सागर में डुबो मारेगा उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्र हत्यारे, स्वदेश विनाशक नीच के दुष्ट मार्ग में आर्य लोग अब तक भी चल कर दुःख बढ़ा रहे हैं, परमेश्वर कृपा करे कि यह राज रोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाय।"

क्या ये शब्द एक अत्यन्त आतुरतम व्यक्ति के सिवाय कोई लिख सकता है? क्या आर्य लोग अभी तक उस रोग से पीड़ित नहीं हैं? क्या वे इस रोग को दूर कर के ऋषि की आत्मा को कुछ शान्ति प्रदान करेंगे? अस्तु, छोड़िये इन शब्दों को, आइये अष्टम समुल्लास में। सृष्टि उत्पत्ति का प्रकरण चल रहा है। वहां भी श्री स्वामी जी लिखते हैं:—

"जब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी, किन्तु आर्यावर्त्त में भी अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है...... दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं।"

क्या इन शब्दों से यह स्पष्ट नहीं कि अत्यन्त आतुरता के कारण यहां स्वामी जी कुछ Determinism (भाग्यवाद) की ओर झुक जाते हैं? क्या अब भी यह स्पष्ट नहीं कि श्री स्वामी जी स्वतन्त्रता के लिए अत्यन्त आतुर थे? क्या उनके सच्चे अनुयायी भी स्वतन्त्रता के लिए वैसे ही आतुर न होंगे?

एक बात और, और फिर बस। एक व्यक्ति यदि किसी चीज़ के लिए अत्यन्त आतुर हो, उस समय उसको उससे भी अच्छी कोई और चीज़ देने का प्रलोभन दिया जाय तो वह तो अपनी उसी (रद्दी सी भी) चीज़ को पसन्द करेगा। उत्तम से उत्तम भी अन्य वस्तुओं को लेने से इन्कार करेगा। ठीक इसी प्रकार श्री स्वामी जी भी स्वतन्त्रता के लिये अत्यन्त आतुर थे। वे उत्तम से उत्तम भी विदेशी राज्य को लेने के लिये तय्यार नहीं। उनकी दृष्टि में तो रद्दी से रद्दी स्वराज्य भी अत्यन्त उत्तम विदेशी राज्य से कहीं अच्छा है। वे लिखते हैं:—

"कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत मतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं है।

वस्तुतः ही एक अत्यन्त आतुर व्यक्ति को अपनी रद्दी सी चीज़ भी जितनी सुखदायक होती है, उत्तमोत्तम अन्य वस्तुयें भी उतनी सुखदायक नहीं होती। क्या और भी अधिक लिखने की आवश्यकता है? क्या इतने उद्धरण पर्याप्त नहीं? क्या हम भी स्वामी जी के सच्चे अनुयायी बनते हुए स्वतन्त्रता के युद्ध में पूर्ण सहयोग न देंगे? हम तो समझते हैं, जैसे एक क्षुधातुर को सिवाय

भोजन के सभी चीज़ें हेय प्रतीत होती हैं, जैसे एक मुमुक्षु को संसार के बड़े से बड़े भोग भी तुच्छ मालूम देते हैं, ठीक इसी प्रकार स्वतन्त्रता के लिये अत्यन्त आतुर श्री स्वामी दयानन्द को सिवाय स्वतन्त्रता के कुछ भी प्रिय न था। स्वतन्त्रता को ही वे वैदिक धर्म के विस्तार का प्रमुख साधन जानते थे। परतन्त्रता ही उसका विनाशक उनके मत में थी। क्या राजपूताने में राजाओं में जा प्रचार करना स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये यथासम्भव प्रबल प्रयत्न के विचार से न था? हम श्री स्वामी जी को स्वतन्त्रता का अग्रणी स्वीकार करते हैं। उनके अनुयायी की हैसियत से हमें स्वतन्त्रता के युद्ध में पूर्ण भाग लेना चाहिये। श्री स्वामी जी की आत्मा तो तभी सन्तुष्ट होगी, ऐसी हमारी धारणा है।

६. गुरुकुलीय वायुमण्डल

अन्त में विषय से कुछ सम्बन्ध न होते हुए भी हमें गुरुकुल के वायुमण्डल के विषय में कुछ कहना है। कई दूसरे ढंग के विचार वाले हमारे मित्र गुरुकुल में तकली को चलता देख घबरा जाते हैं। उनकी धारणा होजाती है कि गुरुकुल राष्ट्रीय हो गया, वैदिक धर्म गुरुकुल से कूच कर गया।

गुरुकुल वासियों ने महात्मा गांधी का समुचित आदर किया। उनका आदर होता हुआ देख हमारे ये मित्र विह्वल हो गये। उन्होंने कहा कि हमारी छाती पर तो यह आदर देख साँप लोटता है। बस आर्य जाति को धोखा दिया गया है, उन के लड़कों को वैदिक धर्म का शत्रु बना राष्ट्रीय बना दिया गया है। गुरुकुल के लड़कों में खद्दर का प्रचार है। बस लड़के तो राजनीति में भाग लेने लग गये हैं, उनका वैदिक धर्म से कोई सरोकार नहीं रहा।

—ये हैं हमारे कुछ मित्रों के विचार। परन्तु हम उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि उनकी यह धारणा अशुद्ध है। राष्ट्रीय युद्ध में इतना भाग लेते हुए भी विद्यार्थी वैदिक धर्मी ही बन रहे हैं। श्री स्वामी जी के सच्चे अनुयायी बन रहे हैं। राष्ट्रीय कार्यों में भाग लेना (अपनी शिक्षा में नुकसान न होने देते हुए) उन्हें नास्तिक न बना देगा। अपितु यहाँ से निकले हुए विद्यार्थी स्वामी जी की इच्छा के अनुसार व्यक्ति विषयक अप्रिय सत्यों का प्रकाश न करते हुए, मधुर व चिकनी वाणी का प्रयोग करते हुए सचमुच सम्पूर्ण संसार को आर्य बना डालेंगे। अन्य धर्मियों के मान्य व्यक्तियों के विषय में अप्रिय सत्यों (अपशब्दों) के उच्चारण द्वारा वैदिक प्रचार में जो बाधा उपस्थित हुई है, यहां से निकले हुए विद्यार्थी उसे नष्ट कर देंगे और अपनी मधुरवाणी से विश्व को अपनी ओर आकृष्ट कर आर्य बना डालेंगे।

विलियम कैसर के आत्मसंस्मरण

शेषांश

(अनु०—श्री मिश्र)

बेन्थमेन

बूलो के बाद बेन्थमेन चांसलर बना । इस समय अपनी रक्षा के लिए स्थल और जलसेना के निर्माण के लिये प्रयत्न होने लगे । इसी समय एडवर्ड सप्तम की मृत्यु होगई । उसकी मृत्यु पर बर्लिन स्थित बेल्जियन राजदूत ने कहा :—

" The peace of Europe was never in such danger as when the King of England concerned himself with its maintenance." अर्थात् यूरोप की शान्ति कभी इतने खतरे में न पड़ी थी जितनी वह उस समय खतरे में पड़ी, जब कि इङ्गलैण्ड के राजा ने उसे कायम रखने के लिये स्वयं अपने को उस से सम्बद्ध कर लिया । युद्ध के समय लोगों को खुश करने के लिए प्रशियन मताधिकार को विस्तृत करने का आयोजन किया ! विक्टोरिया की मूर्ति उद्घाटित होने के समय में लण्डन गया । वहां जार्ज से मोरक्को के सम्बन्ध में बातचीत की । जार्ज ने कहा यह ठीक है कि एलजिकर के समझौते को कार्य रूप में परिणत नहीं किया जा रहा, पर फ्रांस मोरक्को में उसी नीति का अनुसरण कर रहा है जो इंग्लैण्ड ने मिश्र में की है । तुम स्वयं फ्रांस से व्यापारिक हितों की रक्षा के लिए समझौता कर लो । इससे चांसलर ने समझा कि इङ्गलैण्ड एलजिकर के समझौते को रद्द समझता है, वह फ्रांस के मोरक्को के अधिकार में रुकावट नहीं डालेगा । इस कारण अगादीर की घटना हुई । यह मोरक्को के सम्बन्ध की जर्मनी की ओर से अन्तिम घटना है ।

१९१२ में सर अर्नेस्ट कैस्सल इङ्गलैण्ड से एक मौखिक सूचना लेकर आए, जिसमें लिखा था कि यदि कोई राष्ट्र जर्मनी पर आक्रमण करेगा तो इङ्गलैण्ड उदासीन रहेगा, बशर्ते कि जर्मनी अपनी जलीय अभिवृद्धि को छोड़ दे, और 'नैवी-बिल' को गिरा दे । इसका सन्तोषप्रद उत्तर मिलने पर लार्ड हल्डेन को यह काम सौंपा गया कि वह सन्धि करने के लिए बर्लिन जाए । जब वह इङ्गलैण्ड लौटा तो वचन दे गया कि दो सप्ताह के बाद हम सन्धि पेश करेंगे । पर कोई सन्धि का रुक्का नहीं आया । देर पर देर होने लगी । काफ़ी प्रतीक्षा करने के बाद एक चिट्ठा आया, जिसमें लिखा था कि अपने सम्पूर्ण नौ-सम्बन्धी डैटा को लिख कर भेजो । इसके बाद सन्धि में से मुख्य मुख्य स्थल हटा दिए जाने लगे । मुझे आशंका थी कि यह सब इस लिए होरहा है ताकि जर्मनी को नौसेना की वृद्धि में देर लगे । फ्रांस, रूस, अमेरिका—सब की नौशक्ति जर्मनी से बढ़ी चढ़ी थी पर इङ्गलैण्ड को किसी से कोई वास्ता नहीं था । अन्त में एडवर्ड ने अपना प्रस्ताव लौटा लिया क्योंकि उसे डर था कि वह फ्रांस के विरुद्ध जर्मनी से सन्धि कर रहा है इस से इङ्गलैण्ड, फ्रांस और रूस की सन्धि को धक्का लगेगा ।

रेल, युवक और शिक्षा

१९१४ से पूर्व के कुछ सालों के नक्शों को देखने से पता लगेगा कि उन दिनों जर्मनी में कितनी कम रेल थी । पर १९१४ में रेलों का काफ़ी ताँता बंध गया । सैनिक और व्यापारिक दृष्टि से रेलों की आवश्यकता थी । पूर्व प्रशिया की सीमा पर फ्रांस

की सहायता से रूस रेलें बना रहा था और उधर पश्चिम में फ्रांस ने रेल बनाई हुई थी। फ्रांस ने तो तीन और चार ट्रैक लाइन बनाई हुई थीं। इसका जर्मनी को पता भी न था। यदि १९१४ से कुछ वर्ष पहिले ही युद्ध शुरु हो जाता तो शीघ्र ही पूर्व प्रशिया रूस के आधीन हो जाता क्योंकि वहां सेना को लेजाने के लिये कोई साधन न थे, केवल दो एक पुल थे वो भी अधिक महत्वपूर्ण नहीं। इसके अलावा जहां कहीं रेलें या पुल थे उनसे बहुत चक्कर पड़ता था। इसलिए सैनिक दृष्टि से यह आवश्यक था कि सीधी रेलें बनें। कई तो युद्ध के समय भी बनतीं रहीं। कैसर विल्हेल्म कैनाल भी युद्ध के समय ही खतम हुई।

इस समय की शिक्षा अधूरी थी। लोगों में शिक्षा से "मैं जर्मन हूँ" इस प्रकार के भाव नहीं डाले जाते थे। जर्मनी के इतिहास की ओर उपेक्षा थी। जो युवा जर्मनी के भावी कर्णधार होने थे उनके दिल में भविष्य और उन्नति के भावों को पैदा करने के लिए राष्ट्रीयता का भाव आवश्यक था। १८१५ के बाद के इतिहास पर तो बहुत कम ध्यान दिया जाता था, जब कि उसकी मुख्यता बहुत अधिक थी। लड़कों का उद्देश्य वकील, जज या सरकारी नौकर होना ही होता था। वे इंगलैण्ड के युवाओं की तरह नहीं थे। ब्रिटिश युवा अपनी मातृभूमि की उन्नति के लिये औपनिवेशिक विजय करते, नए प्रदेशों को ढूंढते, ब्रिटिश व्यापार बढ़ाते। मैं सदा जर्मन युवकों के सम्मुख इस आदर्श को रखता था।

विज्ञान और शिल्प

इस समय जर्मनी में शिल्प की उन्नति हो रही थी। विज्ञान का उपयोग देश की उन्नति के लिये किया जाता था। जहां विश्वविद्यालयों को अपने प्रतिनिधि प्रशिया की लार्ड सभा में भेजने का अधिकार था वहां इस प्रकार की शिल्प संस्थाओं को भी मिला। संसार की प्रतिस्पर्धा में पड़ने पर यह उचित जान पड़ा कि जर्मन विज्ञानवेत्ताओं को अधिक सहूलियतें दी जांय। कई लोग शिक्षक होने के कारण अन्वेषणा नहीं कर सकते थे। यदि करें तो उन्हें अपना खाली समय देना पड़ता था। अतः काम शक्ति से अधिक होजाता। इसलिये "कैसर विल्हेल्म सोसाइटी" की स्थापना की गई। इसने बहुत कार्य किया। इस संस्था से जो लाभ होता था, वह सारे राष्ट्र को होता था, इस लिये मुझे इसका गर्व था। मैं विज्ञानवेत्ताओं तथा अन्य विद्वानों से मिला करता, उनसे बात चीत करता; पर युद्ध ने मेरे उस आनन्द को नष्ट कर दिया। मेरे बहुत से प्रोफ़ेसर मित्र थे। उनमें से शिमैन भी था। यह राजनीतिज्ञ था। इससे मेरी सम्मति खूब मिलती थी। उदाहरण के तौर पर जब रूस जापान से हार गया तो बर्लिन में माथापच्ची होने लगी कि रूस किस तरफ़ झुकेगा! अन्त में यह निर्णय हुआ कि वह जापान से हारा है इसलिए उसका बदला लेने के लिये वह पश्चिम—विशेषतया जर्मनी—की ओर झुकेगा। पर मेरी राय इससे विपरीत थी। मैं कहता था कि रूस एशियाई देश है और स्लाव है। एशियाई होने के कारण वह जापान की ओर झुकेगा और स्लाव होने के कारण जो अपने आप मज़बूत होगा उसकी ओर झुकेगा। इन बातों से मैंने परिणाम निकाला कि वह जापान से बनाये रखेगा, जर्मनी से नहीं; बल्कि समय पड़ने पर जर्मनी के विरुद्ध उठ खड़ा होगा। मैंने शिमैन को अपनी सम्मति बिना बताये ही पूछा कि रूस की क्या दशा होगी। उसने मेरा पक्ष पोषण किया। उस समय यद्यपि मेरे विचारों की खिल्ली उड़ाई जाती थी पर मेरी ही बात सत्य निकली।

पुरातत्व में प्रेम

छुट्टी के दिनों में मैंने अपने आपको पुरातत्व-विभाग और खुदाई के कामों में लगा दिया। मेरा उद्देश्य था कि ग्रीक कला की उत्पत्ति कहां से हुई है ? और यह भी कि पूर्व का पश्चिम पर सभ्यता की दृष्टि से क्या प्रभाव पड़ा है ? मेरी सम्मति में इस काम के लिये एसीरिओलौजो ही मुख्य थी। इस लिए मैंने जर्मन प्राच्य परिषद् का सभापतित्व स्वीकार कर लिया। इसमें मुझे बहुत समय देना पड़ता था। निनैवा, असुट्, बैबिलोन, मिश्र और सीरिया में जो खुदाई होती थी उसकी रिपोर्ट रखनी तथा देखनी पड़ती थी। मैंने टर्की सरकार का ध्यान इधर दिलाया। एसीरिओलौ-जी की प्रसिद्धि के लिये एक नाटक भी किया गया। जिसमें दूरदूर से एसीरिओलोजिस्ट पधारे थे। कार्फ़ू की जब मैंने यात्रा की तो वहां मुझे स्वयं ही पुरातत्व और खुदाई में भाग लेने का समय मिला। इसी समय गोर्गोन का सिर मिला उसका भार मैंने अपने ऊपर लिया। ग्रीक पुरा-तत्ववेत्ता डूर्पफेल्ड की सहायता ली। इसके अलावा कार्फू की यात्रा भी प्रोफेसर डूर्पफेल्ड के साथ की। इसने होमर के "ओडिसी" काव्य के आधार पर सब स्थान दिखाये। इसी समय मैं १६१४-१५ की शरद् ऋतु में जो लैक्चर पुरा-तत्व विभाग संस्था में देने थे उनकी तैयारी में लगा था। १६१४ की वसन्त में "लूट और विजय का इच्छुक" जर्मन सम्राट इस काम में लगा हुआ था जबकि रूस तथा अन्य सम्राट् एवं देश सैनिक तय्यारियां कर रहे थे।

जिस समय हमारी सेनायें फ्रांस की ओर बढ़नी शुरू हुई मैंने आज्ञा दी कि शिल्प की रक्षा होनी चाहिए। जहां कहीं भी ये थे इन को सूची बद्ध किया गया और संख्या की गई। जिसके नष्ट होने की सम्भावना होती उसे दूसरी जगह रख दिया जाता था।

सेना और जल शक्ति,

यहां बाधित सैनिक पद्धति थी। इससे जनता की शारीरिक उन्नति हुई। उन आदमियों की उत्पत्ति हुई जो अपना मूल्य जानते थे। युद्ध के समय इनमें से भी आफिसर चुने गए। जर्मन साम्राज्य में सैनिक-कर्मचारियों का विशेष महत्व था। यद्यपि स्थलसेना उत्तम थी फिर भी नए से नए शस्त्र सेना में व्यवहृत किए गए और मैशीनरी का प्रयोग भी किया गया। इसके अतिरिक्त आग बरसाने की बड़ी बड़ी तोपों और मशीनों तथा गति शील युद्ध-भोजन भण्डारों (जिससे अच्छा भोजन मिल सके) का भी पूर्ण प्रबन्ध था। १६१४ में जो जर्मन सेना युद्ध में प्रविष्ट हुई वह अद्वितीय थी।

जल सेना भी अत्यन्त आवश्यक थी। मेरे शासन के पहले १२ साल ऐसे ही गुज़र गए। जो कोई 'नेवी-बिल' धारासभा में लाया जाता, फेल कर दिया जाता था। इसलिए आवश्यकता प्रतीत हुई कि जनता में प्रचार किया जाय कि राष्ट्रीय रक्षा के लिए जल-सेना आवश्यक है। इसी समय एक और घटना हो गई। बोर युद्ध में जर्मनी के दो जहाज पकड़े गए। इससे लोगों को जल-सेना की आवश्यकता प्रतीत हुई। जनता में शोर मच गया। इसका प्रभाव धारासभा पर पड़ा और 'नेवीबिल' पास हो गया। इस समय जनता को उपनिवेशों, व्यापारिक सम्बन्धों, सामुद्रिक याता-यात तथा जहाज आदि की महत्ता पता लगी। इसके अनुसार कार्य शुरु हुआ। टारपीडो बोट,

यूबोट तथा सबमेरीन की भी तय्यारी की गई। कैसर विल्हैल्म कैनाल को चौड़ा किया गया।

युद्ध का प्रारम्भ

जिस समय आस्ट्रिया के युवराज की हत्या का समाचार मिला उस समय मैं यात्रा पर जाने के लिए तय्यार था। मैंने रुकना चाहा। पर चांसलर बैन्थमैन ने कहा कि मुझे नौरवे की यात्रा अवश्य करनी चाहिए, नहीं तो सन्देह पैदा होगा। अनिच्छा होने पर भी मैं नौरवे गया। वहां से सदा चाँसलर से पूछता रहा कि स्थिति खराब हो रही है, लौटूं या नहीं। पर सदा यही उत्तर आता कि यात्रा पूरी करो। आखिरकार जब आस्ट्रिया के अल्टिमेटम का उत्तर देदिया गया तब मैं चांसलर से बिना पूछे ही बर्लिन लौट आया। यहां परराष्ट्र विभाग तथा चांसलर, और जनरल मौल्ट में झगड़ा हो रहा था। बैन्थमैन का कहना था कि युद्ध नहीं होगा, सेना इकट्ठी करने की ज़रूरत नहीं। पर जब मौल्ट ने कहा कि प्रशिया की सीमा पर रूसियों ने सैन्यसंग्रह प्रारम्भ कर दिया है, हमारी गाड़ियां तोड़ दी हैं; तब कहीं उन्होंने अपना हठ छोड़ा। यह इस बात का प्रमाण है कि जर्मनी को युद्ध की तनिक भी आशा नहीं थी। इसके अतिरिक्त अपने पड़ोसियों पर आक्रमण करने की इच्छा रखने वाला सम्राट् इस तरह यात्रा नहीं करता फिरता और न ही अपने जनरल स्टाफ़ के मुखिया को कार्ल्सबैड जाने की छुट्टी देता। इसके विपरीत फ्रांस, रूस, इङ्गलैण्ड और बैल्जियम में पहले से तय्यारियां थीं। हम कुछ एक प्रमाण रखते हैं:—

(१) इङ्गलैण्ड में १९१४ की अप्रैल में ही इङ्गलैण्ड के बैंकों ने सोना इकट्ठा करना शुरु कर दिया था, जब कि जर्मनी का सोना और अनाज जुलाई तक बाहर जाता रहा।

(२) अप्रैल में ही जापान में खबर फैली हुई थी कि जर्मनी और मित्र राष्ट्रों में युद्ध होगा।

(३) बर्लिन स्थित बेल्जियम राजदूत ने अप्रैल में लिखा था कि जर्मनी, आस्ट्रिया और हंगरी के विरुद्ध युद्ध होगा।

(४) मौन्टिनीग्रो के राजा के पुत्र ने सैन्टपीटर्सबर्ग स्थित फ्रैञ्च राजदूत से कहा था कि मुझे अपने पिता से पता लगा है कि १३ अगस्त से पहले युद्ध होगा, आस्ट्रिया नहीं बचेगा, तुम्हें एल्सेस और लोरेन मिलेंगे, हमारी सेनाएं बर्लिन में मिलेंगी, जर्मनी नष्ट कर दिया जायगा।

(५) "कॉज़िज़ ऑफ़ वार" नामक पुस्तक का लेखक लिखता है कि फ्रैंचदूत ने उससे २६, २७ जुलाई को कहा था कि यदि जर्मनी युद्ध चाहता है तो इङ्गलैण्ड उसके विरुद्ध होगा। वह हैम्बर्ग को आधीन कर लेगा और हम जर्मनी को नष्ट कर देंगे।

(६) मई में काकेशस में सेनाएं दीखती थीं। जहाज़ सेनाओं से भरे थे।

(७) जब हमारी सेनाओं ने १९१४ में फ्रांस और बैल्जियम की ओर प्रयाण किया तो देखा कि उत्तरी फ्रांस और बेल्जियम की सीमा पर अंग्रेज़ सैनिकों के बड़े कोटों का स्टोर है। यह स्टोर पिछले 'शान्ति के सालों' में स्थापित हुआ था। इसके अलावा १९११ के अंग्रेज़ी सैनिक नक़्शे भी उत्तर फ्रांस और जर्मनी में पाए गए। यह सब युद्ध की सम्भावनाएं थीं तटस्थ बेल्जियम भी बचा नहीं था।

? प्रश्न ?

हे सखी ! तुम्हारे पवित्र और अबोध स्वभाव ने मुझे तुम्हरी तरफ़ आकृष्ट कर दिया। इस से मेरे रोज़ के आरामपूर्ण जीवन में व्याघात पहुंचा ; समय असमय में मेरे कपोल आंसुओं की गरम धार से धुलते रहे।

—मेरी यह वेदना सुखमय थी या दुखमय ?

सहसा किसी दूसरी महती शक्ति ने चुम्बक बन कर तुम्हें अपनी तरफ़ खींच लिया। तुम मुझ से बहुत दूर चली गई।

—अब तुम हो कहां ?

लोग मुझ से कहते हैं—"तुम्हारी जन्म की सखी भी आखिर तुम्हें भूल गई !" सचमुच तुम किसी कठिन जाल में फंस गई हो। वह सूत्र जिस ने तुम्हारे और मेरे मन को एक साथ बांध रक्खा था, तुमने तोड़ डाला। उस सूत्र ही से तो तुम मेरे मन की अमिट-वेदना सुन पाती थी।

—क्या वेदना के इस निरन्तर कोलाहल को सहन करना तुम्हारी शक्ति से बाहर था ?

वसन्त ऋतु की वह सांझ अब भी तुम्हें याद है न, जब सूर्य अस्त हो चुका था। हज़ारों तारों के साथ चन्द्रदेव आकाश में विराजमान होकर अपनी अतुलनीय रूपछटा दिखा रहे थे—यद्यपि उन का यह रूप सूर्य से उधार लिया हुआ ही था। तुम उस दिन मुझ से मिलने आई थी। समय अधिक हो जाने की बात कह कर तुम सहसा मेरे घर से चल दीं। तुम्हारे पीछे पीछे दरवाज़े तक आकर मैं तुम्हें देख रही थी। तुम क्रमशः मुझ से दूर होती गईं, मेरी आंखों ने मोती झरना शुरू किया, परन्तु निष्ठुर! तुम ने एक बार भी मुड़ कर नहीं देखा। शायद वही हमारा अन्तिम मिलन था।

—इस अनन्त भविष्य का कोई छोटा-सा सौभाग्यशाली क्षण क्या अब कभी तुम्हें मेरे घरकी राह याद न दिलायेगा ?

मेरे मस्तिष्क में तुम्हारी स्मृति अब 'विचारों' का रूप धारण कर चुकी है। इन विचारों के तिमिरावृत-प्रदेश में तुम्हारे मिलने की आशा ही एक धवल रेखा है।

—यह धवल रेखा क्या कभी विस्तीर्ण होकर सम्पूर्ण अन्धकार को प्रकाशमय न बना देगी ?

वे दृश्य जो तुम्हारे पास रहने पर मुझे सदैव रमणीक और सौन्दर्यपूर्ण प्रतीत होते थे, तुम्हारी याद दिला कर मुझे नित्य विह्वल किया करते हैं। मेरी छोटी-सी वाटिका की एक एक कली तुम्हारी स्मृति से भरी हुई है। अब भी वहां ठीक वही पेड़ पौधे हैं, जो उस ज़माने में थे। निर्मल जल का वह छोटा-सा भाग्यवान झरना अब भी उसी तरह इस वाटिका के बीच में से होकर बहता है। मेरी वाटिका तो पहले ही की तरह है, मगर वहां किसी की भारी कमी खटकती भी तो है।

—वह कमी किस की है ? क्या तुम्हारी ?

याद है, कभी कभी इसी झरने के सुन्दर तट पर हम दोनों प्रकृति-सौन्दर्य के प्रभाव से तन्मय होकर एक साथ गाया भी तो करती थीं। तुम्हारी आवाज़ मेरी अपेक्षा बहुत सुरीली थी; इस लिये मैं बीच ही में अपना गान रोक देती थी और झरने के किनारे मख़मल की तरह मढ़े हुए घास पर लेट कर तुम्हारा स्वर्गीय राग सुनने लगती थी। मालूम होता था कि ऊपर, किसी बहुत दूर के लोक से किसी 'देवी' के गाने की सुरीली आवाज़ आरही है। गाते गाते तुम बीच बीच में जिस प्रकार लज्जा-मिश्रित मुग्ध दृष्टि से मेरी ओर निहारती थी— उस में घृणा तो नहीं होती थी !

—उस में कौनसा भाव भरा रहता था ?

क्रमशः वह मधुर संगीत किसी जगह आकर थम जाता था, परन्तु यह छोटा सा झरना उस समय भी मृदु स्वर से अपनी लय देता ही रहता था। तब मेरी तरफ झुक कर तुम मेरे बालों में अपनी कोमल उंग-लियां चलाने लगती थी।

—क्या वह अपनी लज्जा छिपाने के लिये होता था ?

वे सुनहले सायंकाल मैं कभी भूल नहीं सकती। मैं तब भी तो यही थी,—

—उन दिनों मेरा भाग्य किसी और ने लिखा था क्या ?

आज इस झरने के किनारे मैं अकेली बैठ कर रोती हूं। तब और अब में यही अन्तर है। तब गाती थी, आज रोती हूं। यह झरना भी तो अब मुझे निरन्तरता से सिसक सिसक कर रोता हुवा ही प्रतीत होता है।

—क्या कभी आकर रोने में भी तुम मेरा साथ दोगी ?

कभी कभी अंधेरी रात में, जब मैं तुम्हारी याद से अभिभूत होती हूं, मुझ से सहानुभूति प्रकट करने के लिये चन्द्रदेव अपनी कोमल किरणों के साथ पूर्व दिशा में, ऊपर उठने लगते हैं। तुम्हारा सौन्दर्य भी तो चांद ही का सा था।

—फिर चांद ही की तरह से मेरे सन्तप्त हृदय को आश्वासन देने आती क्यों नहीं ?

मेरी सखी ! मैंने बड़े अध्यवसाय से अपनी आंखों की आंसुओं के मोतियों का हार बनाना शुरू किया है। तुम्हारे मिलने पर मैं उसे तुम्हारे गले में पहिनाऊंगी।

—क्या तुम उसे स्वीकार करोगी ?

मैं रोती हूं। तेरे लिये नहीं, तेरी अनन्त हृदयहीनता के लिये।

—क्या अब सदा इसी तरह बनी रहोगी ?

मैं जीवित हूं। तुम से मिलने के लिये नहीं, तुम्हारी स्मृति बनाये रखने के लिये।

—मगर क्या कभी आकर इस स्मृति को बढ़ाओगी नहीं ?

—कुमारी सुशीला

वेदों में दार्शनिक विचार

(ले०—श्री पं० धर्मदेव जी वेदवाचस्पति)

मोक्ष की गति—



जिस प्रकार इस मन्त्र में तीन प्रकार की गतियां बताई गई हैं और उन में से एक गति—मनुष्य योनि—का स्पष्ट निर्देश भी मिल जाता है, उसी प्रकार अथर्व वेद के कुछ मंत्रों में भी तीन गतियों का वर्णन मिलता है, और उन में तृतीय गति को सब से उत्तम बताया गया है, जिस में किसी प्रकार का क्लेश नहीं होता। इस गति को ज्ञानी तथा धर्मात्मा लोग ही प्राप्त हो सकते हैं। आधुनिक दार्शनिक परिभाषा में इसी गति को मोक्ष पद कहा जाता है। इस बात का निदर्शक निम्न मन्त्र अत्यन्त स्पष्ट है—

ऋतस्य पन्थामनु पश्य साध्वङ्गिरसः सुकृतो येन यन्ति। तेभिर्याहि पथिभिः स्वर्गं यत्रादित्या मधु भक्षयन्ति तृतीयेनाकेऽधि विश्रयस्व॥ अथर्व १८।४।३॥

अर्थ—सत्य के उस उत्तम मार्ग को भली भांति देख, जिस मार्ग से पुण्य आत्मज्ञानी लोग जाते हैं। और उन मार्गों से तूभी स्वर्ग को प्राप्त हो जहां ज्ञानी पुरुष (आदित्य) मोक्ष सुख का उप भोग करते हैं। इस प्रकार तृतीय पद में प्राप्त हो।

इस मन्त्र में 'तृतीयनाक' का वर्णन किया गया है। इस में किसी प्रकार का (न+अ+कं = सुख राहित्य का अभाव) दुःख नहीं होता। इस मन्त्र में बताया गया है कि मोक्ष में सुख होता है और वह सुख केवल दुःखाभाव रूप नहीं प्रत्युत उस मोक्ष पद में भावस्वरूप सुख (Positive happiness) होता है। इस जगह ध्यान देने योग्य बात यह है कि 'नाक' शब्द का व्यवहार तृतीय शब्द के साथ ही पाया जाता है। क्यों कि इस 'तृतीय नाक' के अतिरिक्त शेष दो लोकों में दुःख का अत्यन्ताभाव नहीं। शेष दो लोकों में दुःख सम्पृक्त हो सुख मिलता है, केवल शुद्ध सुख नहीं। इस लिए यह लोक सब से उत्तम कहा गया है और ज्ञानी तथा धर्मात्मा पुरुषों से ही गम्य बताया गया है:—

येन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो ऽधिनाकमुत्तमम्। अ० ४।१४।६

उद्वयं तमसस्परि रोहन्तो नाक मुत्तमम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योति रुत्तमम्॥ अथर्व. ७।५३।७॥
येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन् ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम्।

तेन गेष्म सुकृतस्यलोकं स्वरारोहन्तो अभिनाकमुत्तमम ११।१।३७

अर्थः— इस कारण सुख को प्राप्त करते हुए शुभ कर्म करने वालों के निवास-स्थान सर्वोत्कृष्ट लोक (मोक्ष) को प्राप्त हों॥ १॥

हम सब इस अविद्या तथा अज्ञान के अन्धकार से उठ कर सर्वोत्कृष्ट लोक (मोक्ष) को प्राप्त हों और वहां सब देवों के देव ज्योतिः स्वरूप परमेश्वर की उत्तम ज्योति को प्राप्त हों॥ २॥

विद्वान् लोग जिस ज्योति द्वारा ब्रह्मरूपी ओदन का पाक करके शुभ कर्म वालों के निवास-स्थान उत्तम लोक (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं, उस ज्योति द्वारा हम भी सुख का उपभोग करते हुए

शुभकर्म करने वालों के निवास स्थान 'उत्तमनाक' (मोक्ष) को प्राप्त हों ॥ ३ ॥

उपरि लिखित तीनों चारों मन्त्रों में मोक्ष का स्वरूप, उसके अधिकारी तथा उनके भोग का वर्णन किया है। इन मंत्रों में 'स्वर्ग' तथा 'उत्तम नाक' पदों से मोक्ष का स्वरूप बताया गया है। इन में यह बताया गया है कि यह मोक्ष सुख का पहुंचाने वाला है और वह सुख सब से अधिक उत्कृष्ट है क्यों कि (नाकं) उसमें दुःख का लवलेश भी नहीं। वह सुख केवल दुःखाभाव रूप नहीं प्रत्युत भावरूप है, क्यों कि वहां दुख न हो ऐसा नहीं अपितु सुख ही सुख है। मोक्ष का स्वरूप बताने के अतिरिक्त मोक्ष के अधिकारी भी बताये हैं। उपरि लिखित मंत्रों में 'अङ्गिरसः, 'सुकृतः' 'आदित्याः' तथा 'देवाः' शब्दों द्वारा मोक्ष के अधिकारी बताये हैं। अर्थात् उत्तम काम करने वाले तथा ज्ञानी लोग इस पद को प्राप्त होते हैं। न केवल ज्ञानी इस पद को प्राप्त कर सकते हैं और न केवल सुकर्मी, किन्तु ज्ञान और कर्म दोनों के द्वारा ही मनुष्य मोक्ष का अधिकारी बन सकता है।

उस मोक्ष में जाकर वे क्या करते हैं? इस प्रश्न का उत्तर निम्न शब्दों द्वारा दिया गया है—'मधु भक्षयन्ति' तथा 'देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्'। अर्थात् उस सुखमयलोक में पहुंच कर वे सुख का उपभोग करते हैं और निष्कलुष होने से ज्योतिःस्वरूप परमात्मा की उत्तम ज्योति को प्राप्त करते हैं। यही बात 'यत्र देवा अमृतमानशानाः। समाने योनावध्यैरयन्त'[1]। मंत्र में लिखी है। अर्थात् जिस, सकल जगत् के कारण, परमात्मा में अमृत का उपभोग करते हुए देव लोग विचरते हैं.........।

१. अथर्व० २। १। ५॥

मोक्ष का ऐसा पवित्र तथा उच्च स्वरूप देख कर पाठकगण वेद में आई हुई निम्न प्रार्थनाओं को भलीभान्ति समझ सकते हैं।

अथर्व वेद पञ्चौदन देवत्य सूक्त (९ काण्ड ५ सूक्त) में स्थान २ पर 'अगो नाकं क्रमतां तृतीयम्'[1] 'तृतीये नाके अधि वि श्रयैनम्'[2] इत्यादि प्रार्थनायें की गई हैं। 'तृतीय नाक' एक स्पृहणीय लोक है, जिसके लिये हर एक को इच्छा करनी चाहिए।

इस प्रकार जहां उपर्युक्त मन्त्र से मोक्ष के शुद्ध स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। वहां साथ ही यह भी पता लग जाता है कि मोक्ष का द्वार प्रत्येक के लिए खुला हुआ नहीं। मोक्ष में प्रवेश करने का अधिकार विशेष २ व्यक्तियों को होता है। वेद के अपने शब्दों में 'अंगिरस्' 'सुकृत्' 'आदित्य' तथा 'देवजन' इस मोक्ष के अधिकारी हैं। अर्थात् ज्ञानी तथा धार्मिक मनुष्य मोक्ष के अधिकारी हो सकते हैं। अथवा ज्ञान प्राप्ति तथा सुकृत् कर्म के द्वारा मोक्ष प्राप्ति होती है।

मोक्ष प्राप्ति में दैव कारण नहीं प्रत्युत पुरुषार्थ है, इसी बात को निम्न मन्त्र भी स्पष्ट करते हैं:—

"यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
तेह नाकं महिमानः सचन्ते यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः" । अ० ७। ५। १०॥

"यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥
यजु. ३२। १०॥

१—यह जीवात्मा तृतीय धाम को प्राप्त हो। अथर्व० ९। ५। १, ३॥

२—(हे परमेश्वर) इस जीवात्मा को तृतीय धाम (मोक्ष) में निवास दो। अथर्व ९। ५। ४। ८॥

अर्थः—देवजन यज्ञ द्वारा यजनीय परमात्मा की पूजा करते हैं। यही वास्तव में मुख्य धर्म है। इस लिए वे देवजन महत्व शाली होकर निश्चय से उस लोक को प्राप्त करते हैं, जहां प्राचीन साध्य लोग तथा देवजन निवास करते हैं ॥ १ ॥

जिस परमात्मा के आश्रय में रहते हुए देव लोग अमृत का उपभोग करते हुए तृतीय धाम (मोक्ष) में विचरते हैं ॥ २ ॥

इन दो मन्त्रों में दो बातों का वर्णन किया गया है।

१म—मोक्ष को देव लोग तथा साध्यजन प्राप्त करते हैं।

२य—मन द्वारा ईश्वर पूजा आदि सत्कर्म करने से उन को मोक्ष प्राप्त होता है।

इस प्रकार इन दो मन्त्रों से भी हमारे उपर्युक्त कथन की ही पुष्टि होती है। अर्थात् मोक्ष सत्कर्मों का परिणाम है, यह दैवीय नहीं। क्योंकि इस गति को उत्तम कर्म करने वाले देव लोग ही प्राप्त कर सकते हैं इस लिए इस मार्ग को 'देवयान' कहा गया है—

'ज्योतिषीमाम्हस्वर्गः पन्था सुकृते देवयानः ॥'
अथर्व. १८। ४। १४ ॥

अर्थात् उत्तम कर्म करने वाले पुरुष के लिए सुख का देने वाला ज्योतिर्मय देवयान (खुला हुआ है)।

अतएव वैदिक साहित्य में 'देवयान' मार्ग को सर्वोत्तम मार्ग कहा गया है और 'अजो नाकं क्रमतां तृतीयम्' आदि शब्दों द्वारा उस तृतीय धाम के प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की है

पितृयाण या मनुष्य योनि

देवपीयुश्चरति मर्त्येषु गरगीर्णो भवत्यस्थिभूयान् ।
यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति न स पितृयाणमप्येति लोकम् ॥ अ० । ५ । १८ । १३ ॥

अर्थ—देव जनों को हिंसा करने वाला राजा विष पीकर अस्थिपञ्जरमात्र हुआ २ मनुष्यों में विचरता है। जो राजा देवों के प्रिय ब्राह्मण की हिंसा करता है वह पितृयाण को भी प्राप्त नहीं होता।

इस मन्त्र के 'न स पितृयाणमप्येति लोकम्' पद से हम दो परिणामों पर पहुंच सकते हैं। १म—पितृयाण से उच्च भी कोई और यान है। २य—एवमेव पितृयाण से निकृष्ट भी कोई यान है। 'अपि' शब्द इन दोनों परिणामों को स्पष्ट कह रहा है। इस मन्त्र में देवजनों के हिंसक राजा की निन्दा की है और इस बात पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है कि अगले जन्म में वह नीच योनि को प्राप्त होता है। इस मन्त्र में 'अपि' शब्द के प्रयोग से यह भी मालूम होता है कि वक्ता की दृष्टि में पितृयाण सर्वोत्कृष्ट मार्ग नहीं, उससे उच्च कोई और मार्ग है जिसको देवपीयु राजा किसी प्रकार भी प्राप्त नहीं कर सकता। उस मार्ग को क्या, वह तो उससे निचले दर्जे के पितृयाण को भी प्राप्त नहीं कर सकता। और क्योंकि अथर्व ६। ११७। ३ इत्यादि[1] मन्त्रों में दो ही यानों का वर्णन पाते हैं, इस लिए पितृयाण से उच्च यान यदि कोई है तो वह 'देवयान' होना चाहिए। इस के अतिरिक्त शेष वैदिक साहित्य—ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि—तथा गीता प्रभृति ग्रन्थों में दो यानों का वर्णन मिलता है और उन में से देवयान को पितृयाण से उच्च तथा श्रेष्ठ बताया गया है। अतएव 'अपि' शब्द के आधार पर पितृयाण से भी अधिक उच्च यान का अनुमान कर सकते हैं, और वह देवयान होना चाहिए। इसी 'अपि' शब्द

१—अथर्व. ६। ११७। ३ तथा १५। १२। ५, ९॥

से हम दूसरा यह भी परिणाम निकाल सकते हैं कि इस मंत्र में ब्राह्मण-हिंसक राजा की निन्दा की गई है और भावी में उस के भयंकर परिणाम की सूचना दी गई है; परन्तु इस मन्त्र में इतना कह कर ही समाप्त कर दिया गया है कि यह देवपीयु राजा पितृयाण को भी प्राप्त नहीं होता। इस का यदि यही तात्पर्य हो कि वह राजा किसी भी यान को प्राप्त नहीं होता तो इस से देवपीयु राजा को क्या कष्ट होगा? इस लिए हमारी सम्मति में वक्ता का तात्पर्य किसी तृतीय योनि से है, जिस योनि में नाना प्रकार के कष्ट मिलते हैं और जो योनि देवयान तथा पितृयाण दोनों से निकृष्ट है। यह योनि इतनी निकृष्ट है कि इस को किसी भाँति यान (गन्तव्य मार्ग) कहा ही नहीं जा सकता। अतएव यानों में केवल दो ही यान गिनाये गये हैं, तीसरी योनि यान कहलाने योग्य ही नहीं।

प्रसङ्गवश कुछ दो एक मन्त्रों के आधार पर हम पितृयाण के स्वरूप पर प्रकाश डाल देना चाहते हैं।

'आयात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः।
आयुरस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम्॥
अ १८।४।६२॥

इस मन्त्र का अर्थ अत्यन्त स्पष्ट है। इस मन्त्र में पितृयाण से आने वाले पितरों से प्रजा तथा धनादि की पुष्टि के लिये प्रार्थना की गई है। इस से यही प्रतीत होता है कि पितृयाण से आने वाले प्राणी मनुष्ययोनि में जन्म लेते हैं। इस मन्त्र के अतिरिक्त दो और मन्त्र हैं जो इस विषय पर अधिक अच्छा प्रकाश डालते हैं।

न देवेष्वावृश्चते हुतमस्य भवति। अ. १५।१२।६॥
पर्यस्यास्मिंल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनातिसृष्टो जुहोति॥ अथर्व. १५।१२।७॥
अथ य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति॥
अ० १५।१२।८॥
न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम्॥
अ० १५।१२।९॥
आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति। अ० १५।१२।१०॥
नास्यास्मिंल्लोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा व्रात्येनानतिसृष्टो जुहोति॥ अथर्व १५।१२।११॥

अर्थ—(विद्वान् व्रती अतिथि के घर आजाने पर गृहस्थ पुरुष उस से आज्ञा पाकर यज्ञ करे। जो ऐसे अतिथि से आज्ञा पाकर यज्ञ करता है, वह पितृयाण और देवयान को जानता है) वह देवों में कटा हुआ प्रतीत नहीं होता। इस लोक में उस गृहस्थी का स्थान बचा रहता है, जो इस प्रकार अतिथि से अधिक हुआ २ हवन करता है। परन्तु जो ऐसे अतिथि से अनाज्ञप्त ही हवन करता है वह न देवयान मार्ग को जानता है और न पितृयाण को। वह देवों में कटा हुआ प्रतीत होता है और उस का किया हुआ हवन अहुत के समान रहता है। अथवा जो ऐसे व्रात्य द्वारा अनाज्ञप्त हुआ २ हवन करता है उस का इस लोक में भी स्थान नहीं रहता।

इन मंत्रों में यह बताया गया है कि यदि किसी गृहस्थी के घर कोई व्रती विद्वान् अतिथि आजावे तो उस से आज्ञा पाकर हवन करे। क्योंकि यज्ञादि कर्म देवयान तथा पितृयाण में सहायक हैं। इस लिए जो व्रात्य अतिथि की आज्ञानुसार यज्ञ नहीं करता वह एक प्रकार से अपने को इन दोनों मार्गों से वञ्चित कर रहा होता है। उपर्युक्त मंत्रों से देवयान तथा पितृयाण के जानने वा न जानने का तात्पर्य स्पष्ट किया गया है। इन मार्गों के जानने का तात्पर्य यह है कि वह पुरुष देवों से अपने को पृथक् नहीं करता और मनुष्य समाज में उस का उच्च स्थान होता है। इसी प्रकार न जानने का तात्पर्य यह है कि वह पुरुष अपने को देवों से

पृथक् कर लेता है। अर्थात् देवयान को प्राप्त नहीं होता और मनुष्य समाज में उस का स्थान नहीं रहता अर्थात् वह पितृयाण के योग्य नहीं रहता। यहां पर देवयान को जानने तथा न जानने का तात्पर्य क्रमशः 'न देवेष्वावृश्चते हुतमस्य भवति' ॥९॥ तथा 'आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति'॥१०॥ इन दो मन्त्रों में बताया गया है। इसी प्रकार पितृयाण के जानने तथा न जानने का तात्पर्य क्रमशः 'पर्यस्यास्मिंल्लोक आयतनं शिष्यते' तथा 'नास्यास्मिंल्लोक आयतनं शिष्यते' इन दो मन्त्रों में बताया गया है। इन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि पितृयाण से इस लोक (मनुष्य योनि) का तात्पर्य है। इसी पितृयाण को अथर्व० ११।८।३३ मन्त्र में 'इहैकेन निषेवते' पद से बताया गया है।

देवयान तथा पितृयाण से अतिरिक्त योनि

इन दो मार्गों से अतिरिक्त एक और मार्ग भी है जिस के लिए वेद में हमें कोई नाम दिखाई नहीं देता। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि यह मार्ग इतना निकृष्ट है कि इसे किसी दृष्टि से यान (गन्तव्य मार्ग) कहा ही नहीं जा सकता। देवयान तथा पितृयाण के अतिरिक्त कोई मार्ग या योनि है ही नहीं, यह हम नहीं कह सकते। क्यों कि अथर्व. ५।१८।३ मंत्र में तीसरी योनि का स्पष्टतया निर्देश मिलता।

इस तरह हम देखते हैं कि भिन्न २ कर्मों के अनुसार ही भिन्न २ योनि मिलती है। पुनर्जन्म भी मनुष्य के अपने कर्म के अनुसार मिलता है, यह दैवीय कृपा या कोप का फल नहीं।

इस के साथ २ हम यह भी देखते हैं कि वेद में भी जन्म परिवर्तन (Metem-psychosis) का सिद्धान्त माना गया है, जन्म विकास (Re-incarnation) का सिद्धान्त नहीं, क्योंकि देवपीयु राजा का मनुष्य योनि (पितृयाण) से भी निकृष्टयोनि में जाना बताया गया है। इसी प्रकार अथर्व. ६।१०।१६ का 'अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतः', मन्त्र भाग भी इसी बात को पुष्ट कर रहा है।

इस प्रकार अबतक इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि संसार में तीन पदार्थ—प्रकृति, जीव और परमात्मा—अनादि तथा अनन्त हैं। उन में से एक ईश्वर—इस जगत् का कर्ता है। उस का न तो विकार होता है और न वह किसी प्रकार भोग करता है। दूसरी प्रकृति है, जो इस जगत् का आदि मूल उपादान कारण है। इस से ही सारा जगत् उत्पन्न होता है और इस में लीन होजाता है। जगत् की उत्पत्ति होते समय प्रकृति का विकार होता है। जिस से यह पाञ्चभौतिक जगत् बनता है। इसी प्रकार अनादि काल से यह संसार उत्पन्न होता है और नष्ट होता है। यह सृष्टि-प्रलय-चक्र प्रवाह से अनादि तथा अनन्त है। इस तरह प्रकृति की विकृति तो होती है परन्तु वह भोग नहीं करती। वह स्वयं भोग्य वस्तु है। जीव इस का भोग करता है। वह जगत् का भोक्ता है। सृष्टि प्रवाह के साथ २ वह भी भिन्न २ शरीर धारण कर के संसार में प्रकट होता है। अर्थात् जीव पुनर्जन्म लेता है। यह पुनर्जन्म उसे अपने कर्मों के अनुकूल मिलता है। यह कर्मफल उत्तम, मध्यम तथा निकृष्ट भेद से तीन प्रकार का है।

संक्षेप में यही वैदिक फ़िलासफ़ी का कुल सार है। यही मनुष्य के जीवन का आधार है। यही वैदिक धर्म का आन्तरिक सार (Inner soul) है। इसी फ़िलासफ़ी पर सब नियम तथा व्यवस्थायें आश्रित हैं।

जल-चिकित्सा

[लेखक—श्री पं० देवराज जी विद्यावाचस्पति]

टाइफ़स फ़ीवर

इस में शीतवेष्टन उपयोगी है।

निमोनिया

निमोनिया और बच्चों के डब्बे (Broncho neumonea) के रोग में शीत तौलिये अत्यधिक उपयोगी हैं। जब कभी तापमान १०२ अंश से ऊपर हो तो उनका प्रयोग करना चाहिये। तरुण मनुष्यों में शीत का प्रयोग सावधानी से करना चाहिये। किन्तु जब कभी हृदय उच्चतापमान के कारण गिरता मालूम पड़े तब शीत वेष्टन और शीत तौलिये प्रयोग करने चाहियें। रोग की परा-काष्ठा की हालत में जब तापमान अत्युच्च हो तब बहुत सावधानी से शीत स्नान करावें। ठण्डे जल की बस्ती कई बार देने से तापमान गिर जाता है।

यूरीमिया

गर्म कम्बल वेष्टन, जैसा ऊपर वर्णन किया गया है, इस रोग में कभी २ उपयोगी है। किन्तु उतना उपयोगी नहीं है जितना बिस्तरे में उष्ण वायु का स्नान या वाष्प स्नान है। जब अन्य उपाय निष्फल हुए हैं तब कई बार इन का लाभ देखा गया है। विशेषतया स्कार्लेट फ़ीवर के पश्चात् होने वाले वृक्क शोथ और गर्भ वेदना में इन का लाभ देखा गया है।

तीव्र ग्रन्थि शोथ

स्थानिक गर्म वायु के स्नान से या वाष्प स्नान से एक दम अच्छा होता हुआ देखा गया है। तीव्र सम और चिरस्थाई रोग— आमवात या ग्रन्थि-वात में व्यापी या स्थानिक गर्मवायु स्नान या वाष्प स्नान से लाभ होता है। ग्रन्थिवात के रोगियों में वाष्प अधिक उपयोगी है। और खनिज जलों के साथ इसका प्रयोग अमूल्य है।

Lumbago, मान्स शोथ, गृध्रसी, neuralgia, neuritis, की भी इन उपायों से, गर्म भूजल के द्वारा, नलिका स्नान (Douche) से, तथा Aix douche से चिकित्सा की जाती है। गृध्रसी की अधिक चिरस्थाई हालतों में स्कौटिश डूश से लाभ होता है। Rheumatoid Artheritis यदि आमवातिक या ग्रन्थिवात के रूप का हो तो उष्ण शुष्क वायु के स्थानिक प्रयोग से लाभहोता है। यदि साथ में निरन्तर धारा स्नान, नाडिव्रणसम-नलिका स्नान, या विद्युत् स्नान भी दिया जाय तो लाभ विशेष होता है। वातनाडियों के रोग के शुद्ध रूप में गर्म वायु का कम लाभ है और प्रयोग में बहुत सावधानी की आवश्यकता है। विद्युत् स्नान अत्यन्त लाभप्रद है। वातनाडि शोथ (Neuritis) में पीडा स्थान पर राई का प्लस्तर विशेष लाभ देता है। मृदु मेरु के मृदु स्थानों पर विशेष लाभ देता है। इन में नाडीव्रणसम विद्युत् स्नान भी दिया जाता है।

त्वक्रोग

शुष्क पामा आदि रोग उष्ण शुष्क वायु से अच्छे होते हैं। अधिक शोथ युक्त हालतों में वाष्प सन्दूक स्नान या वाष्प का स्थानिक प्रयोग करना चाहिये। चिरस्थाई मधुमेह, वृक्क असमर्थता, दबा हुआ ग्रन्थिवात, आदि आत्मजन्यविष के अन्य रूपों में वाष्प स्नान या उष्ण वायु स्नान निश्शङ्क दिया जा सकता है।

न्यूरेस्थीनिया

सूची स्नान, स्कौटश डूश, राई के प्लस्तर का प्रयोग पाषकग्रैवेयवातनाडिपुञ्ज, आमाशय और जिगर पर करें।

अर्शस्

इस में उर्ध्ववर्ती नलिका स्नान दें। श्वेत प्रदर, अनियमित ऋतु आदि गर्भ सम्बन्धी रोगों में कटि स्नान (sitz bath) और उर्ध्ववर्ती नलिका स्नान दें।

स्थूलता

इस में सूची स्नान, मेरु सम्बन्धी नलिका स्नान, Aix douche, स्कौटिशडूश दें।

मलबन्ध

इस में स्कौटिशडूश, ठण्डा मेरु सम्बन्धी नलिका स्नान दें और आंतों को धोने के लिये पानी की कई बस्तियां दें।

बर्फ़

अन्तः तथा बाह्य प्रयोग किया जा सकता है। मुख तथा टौन्सिल, गला, आमाशय की शोथ सम्बन्धी और रक्त स्राव की अवस्थाओं में और वमन की हालतों में भी बर्फ़ चूसने से लाभ होता है। बर्फ़ तापमान को भी कम करता है। कभी २ हिचकी को भी रोकता है। गुदा में रखने से तापमान कम करता है।

बर्फ़ के बाह्य प्रयोग

शोथ तथा ज्वर संबन्धी रोगों में सिर पर रखना चाहिये। तीव्र टौन्सिल में गले पर। मेरुदण्ड पर और एपीगैस्ट्रियम पर रखने से हिचकी बन्द होती है। फेफड़े और आमाशय से रक्त स्राव होने पर इन पर बर्फ़ रक्खा जाता है। बाह्य तथा आन्तर हृदयावरणशोथ में हृदय पर थोड़ी देर तक प्रयोग करने से लाभ होता है। ग्रन्थियों के और वात नाड़ियों के तीव्र शोथों को भी हटाता है। आमवातिक सन्धिशोथ, विशेषतः गोडों के शोथ की तीव्र और तीव्रसम अवस्थाओं में दिन में दो बार आध घण्टे से घण्टे तक बर्फ़ की मालिश से बहुत लाभ होता है। परिचारक अपने हाथ में बर्फ़ के चपटे टुकड़े को लेकर धीरे २ रगड़ता है। गर्भाशय तथा डिम्बकोष सम्बन्धी अंगों को उत्तेजित करने के लिये मेरुदण्ड के नीचे के भाग पर बर्फ़ के थैले का प्रयोग करें। कोष्ठ के नीचे के भाग पर प्रयोग करने से गर्भाशय का रक्त स्राव बन्द हो जाता है। स्ट्रैंगुलेटिड हर्निया की प्रारम्भिक अवस्था में प्रयोग से कभी २ लाभ होता है और शल्य कर्म के बिना ही हट जाता है।

खनिज जल

खनिज जल उन प्राकृतिक जलों का नाम है जिन का उपयोग रोगों की चिकित्सा में आन्तरिक और बाह्य तौर पर अर्थात् पीने और स्नान के रूप में किया जाता है। जिन का असर उन में वर्तमान लवण या गैस से या तापमान के कारण होता है। खनिज जलों के प्रयोग में तीन अंशों का ध्यान रखना चाहिये।

१. औषध तथा गति सम्बन्धी

लवण तथा गैसों के घोलों के पीने के द्वारा शरीर में कुछ कार्य हो जाते हैं, साथ ही उन में स्नान करने से कुछ गैसें त्वचा से चूसी जाती हैं।

२. जल चिकित्सा सम्बन्धी

पिये हुए जल का निश्चत ही चिकित्सा सम्बन्धी महत्व है। तथा मज्जन, नलिका स्नान, घर्षण आदि भिन्न २ जल चिकित्सा सम्बन्धी क्रियाओं में प्रयुक्त जल के तापमान पर भी ध्यान रखना चाहिये।

३. जल वायु, भोजन, तथा मानसिक अंश

विश्राम, वायु तथा दृश्य में परिवर्तन, साधारण कर्मों का सामयिक त्याग, नियमित भोजन तथा संयम का भी वाञ्छित फल लाने में कम असर नहीं है।

खनिज जल कई प्रकार से असर करता है

१. ताप संबन्धी प्रभाव

२. दबाव तथा यान्त्रिक प्रभाव

३. जलों में विद्यमान लवण तथा गैस

४. जलीय पृष्ठों से उठी हुई रेडियम की प्रसृत शक्ति का नासिका और त्वचा से श्वसन।

यह माना जाता है कि जल में वर्तमान लवण त्वचा द्वारा अन्दर नहीं जाते इस लिये खनिज जलों के विभिन्न लवण स्नान द्वारा त्वचा की वात-नाड़ियों और रक्त वाहिनियों पर प्रभाव पैदा कर के ही शरीर पर असर डालते हैं। दूसरी तरफ गैसें त्वचा द्वारा चूसी जाती हैं। इस प्रकार खनिज स्नान चिकित्सा संबन्धी असर पैदा करने में बहुत बड़ा भाग लेते हैं।

खनिज जलों का श्रेणीकरण कठिन है और विभिन्न प्रयुक्त तरीकों पर कोई न कोई आक्षेप उठाया ही जा सकता है, तथापि सामान्यतया रासायनिक दृष्टि से निम्न श्रेणियां बनाई जाती हैं

(१) साधारण उष्ण जल। इस में नत्रजन तथा रेडियम का प्रसार करने वाले जल लिये जाते हैं।

(२) खारा नमकीन जल

(क) कार्बनिकाम्ल गैस वाला।

(ख) कार्बनिकाम्ल गैस रहित।

(ग) ब्रम और नैल सहित।

(३) क्षारीय जल

(क) साधारण क्षारीय

(ख) नमक युक्त क्षारीय

(४) गन्धकित नमकीन जल

(क) साधारण गन्धकित (कटु जल)

(ख) क्षारीय गन्धकित जल

(५) chalybeate waters.

(६) गन्धक जल

(क) साधारण गन्धक

(ख) नमकीन गन्धक

(७) चूने के जल तथा भौम जल

(१) साधारण उष्ण जल पीने से आमाशय धुल जाता है, धातु पाक में वृद्धि होती है। शरीर में से गन्दा पदार्थ बाहिर निकलता है। पित्त, मूत्र आदि के स्राव में वृद्धि हो जाती है। स्नान करने से त्वचा नरम पड़ती है, त्वचा में रक्त भ्रमण बढ़ जाता है। वात संस्थान और रक्तसंचार गत उत्तेजना शान्त होती है।

जिन जलों में नाईट्रोजन अधिक घुली होती है वे ग्रन्थिवात और आमवात पर अच्छा प्रभाव डालते हैं। इन जलों से रेडियम का प्रसार भी होता रहता है। क्योंकि नाईट्रोजन में वर्तमान हीलियम पदार्थ रेडियम का अच्छा वाहक है। इन जलों में केवल २० मिनिट तक ही नहाने से रेडियम के कारण रक्त और मूत्र विशेष क्रियाशील हो जाते हैं।

डा० मैकावर (Dr. Mackower) ने विश्लेषण द्वारा पता लगाया है कि जिस जल में १. १ मात्रा रेडियम की है उस के पृष्ठ पर की वायु में ७. ७ मात्रा रेडियम की होती है।

रेडियम के प्रसार श्वास द्वारा वा जल पान द्वारा किसी प्रकार लिये जावें वे फेफड़ों से, त्वचा से और वृक्क से बाहिर निकलते हैं। इस कारण इन जलों के पीने से मूत्र बढ़ जाता है। वृद्धि की मात्रा १० से २० प्र० श०। यदि पानी खाली पेट

पिया जावे तो मूत्र की मात्रा और अधिक बढ़ जाती है। यूरिक एसिड का बहिः स्राव १० से १५ प्र० श० बढ़ जाता है। कार्बोनिक एसिड २० से ९५ प्र० श० बढ़ कर श्वास के द्वारा निकलने लगता है। पसीने के विष अधिक मात्रा में निकलते हैं। (जैसे यूरिया ० ५ से ० ६ और ब्यूट्रिक एसिड)। आमाशय और ग्रहणी के कार्य को उत्तेजना देते हैं। सुविलेय लैकृम यूरेट को दुर्विलेय लैकृम यूरेट में बदलने से रोकते हैं।

ग्रन्थिवात—में सञ्चित पदार्थ को विलीन करके दर्द, सूजन और कठोरता को दूर करते हैं।

आमवात— में शोथ को रोक कर दर्द को कम करते हैं।

वातनाडिक शोथ—में दर्द को कम करते हैं और वात नाड़ियों के स्वास्थ्य में वृद्धि करते हैं।

प्रमेह (शर्करामेह)—में खांड को कम करते हैं। एसीटोन और डाइ एसिटिक एसिड को कम करते हैं। भार बढ़ाने में सहायक हैं। ओषजन के कार्य को बढ़ाते हैं। कर्बन की विषों को बाहिर निकालते हैं। मूत्र में ग्लाइकोजन आती हो तो उसे कम करते हैं।

फेफड़ों, त्वचा और किसी हद तक गुर्दों से भी विषों को बाहर निकालते हैं और मूत्र में जाते हुए एल्ब्यूमिन को कम करते हैं। संकुचित वृक्क में मूत्र के आपेक्षिक गुरुत्व को घटाते हैं। पुरुषत्व को बढ़ाते हैं।

(२) खारे नमकीन जल। इन में प्रायः साधारण नमक बहुत मिलता है। पीने से आमाशय और आंतों के स्रावों को बढ़ाते हैं। धात्वन्तर परिणाम को बढ़ाते हैं। रक्त संचार को (विशेषतया पोर्टल संस्थान के रक्त संचार को) बढ़ाते हैं। कर्बोनिक एसिड के साथ मिल कर आमाशय और आंतों पर बहुत प्रभाव करते हैं। इन जलों से स्नान करने से त्वक्गत वातनाड़ियों तथा सूक्ष्म रक्तवाहिनियों को उत्तेजित करते हैं। केन्द्रीय वातनाड़िसंस्थान की उत्तेजना के द्वारा अन्दर के अङ्गों पर विशेषतया हृदय पर प्रभाव उत्पन्न करते हैं। कर्बनिकअम्लगैस की उपस्थिति में यह प्रभाव विशेष होता है। स्नान के साथ नियमित रूप से थोड़ी २ व्यायाम भी करनी चाहिये।

(३) क्षारीयजल—

(क) साधारण क्षारीय—इन में प्रधानतया सोडियम का कर्बनित और कार्बोनिक एसिड गैस होते हैं।

(ख) नमक युक्त क्षारीय—इनमें ऊपर के अतिरिक्त साधारण नमक अधिक होता है।

इन से ओषजन को तथा धातु परिणाम को उत्तेजना मिलती है। पित्त और लाला का स्राव शीघ्र होता है। मूत्रल हैं। अम्ल के विपरीत हैं। अच्छे विलायक हैं।

(४) गन्धकित नमकीन जल—

[क] साधारण गन्धकित [कटुजल]—इन में सोडियम और मैग्नीशियम के गन्धित होते हैं।

[ख] क्षारीय गन्धकितजल—सोडियम के कर्बनित, गन्धित और हरिद् होते हैं।

कटुजल भोजन प्रणाली की श्लैष्मिक कला को उत्तेजित करते हैं। सोडे के कर्बनित और साधारण नमक डाल कर उन का कार्य बढ़ा दिया जाता है।

(५) Chalybeate Waters पोषण को बढ़ाते हैं। ओषजन के कार्य और ताप की मात्रा को बढ़ाते हैं। रक्त कणों की रचना को वृद्धि देते हैं। कर्बनिक अम्ल गैस की उपस्थिति से इन के स्नान से लाभ होता है।

[६] गन्धक जल

[ख] साधारण गन्धक वाले जलों का प्रभाव सोडियम, पोटासियम, कैल्सियम के गन्धिदों के कारण या गन्धकित उद्रजन की उपस्थिति के कारण होता है।

[ख] नमकीन गन्धक वाले जलों में पूर्व की अपेक्षा नमक अधिक होता है।

[७] चूने के जल तथा भौम जल—इन में चूने के कर्बनित, गन्धित और मैग्नेशियम के कर्बनित विशेष होते हैं। इन में पर्याप्त कार्बनिक एसिड गैस भी होता है। चूने के कर्बनित का भाजन प्रणाली पर शामक प्रभाव होता है। अम्ल विरोधी है। गन्धकित कुछ स्तम्भक है। कार्बनिक अम्ल का प्रभाव पहिले देखा जाचुका है। चूना अस्थिनिर्माण में सहायता देता है।

कुछ रोगों की चिकित्सा

यद्यपि रोगों का स्वरूप दिखलाते हुए गौण रूप से चिकित्सा का निर्देश भी कहीं २ कर दिया है, तथापि अनेक रोगों की चिकित्सा का केवल चिकित्सा की दृष्टि से पृथक् उल्लेख किया जाता है। आज कल, भारत वर्ष में लूई कूने की जल चिकित्सा पद्धति का विशेष प्रचार है। जल-चिकित्सा के सम्बन्ध में लूई कूने एक प्रसिद्ध व्यक्ति होते हुए भी Encyclopedia Britanica में Hydropathy में वर्णित व्यक्तियों में लूई कूने का नाम तक नहीं है। मालूम होता है इस की प्रसिद्धि भारत वर्ष में ही विशेष है अन्यत्र नहीं। कुछ भी हो, इसकी चिकित्सा पद्धति से भी लोगों ने लाभ उठाया अवश्य है। यहां पर हम उसी की पद्धति के अनुसार चिकित्सा सम्बन्धी कुछ प्रयोग उद्धृत करते हैं।

इस पद्धति में चार प्रकार के स्नानों का ग्रहण है।

ज्वर

साधारण ज्वर की हालत में हम दिन में दो तीन बार आधा आधा घण्टे का हिप बाथ लेकर रोग से पीछा छुड़ा सकते हैं। पर सब प्रकार के तीव्र ज्वरों की हालत में स्थिति के अनुसार पन्द्रह मिनिट से लेकर तीस मिनिट तक का, सम्पूर्ण शरीर का स्टीम बाथ प्रति चौथे दिन लेना चाहिये। भाफ़ के स्नान में अन्दरूनी रोगों को उभार देने की विचित्र शक्ति है।

वाष्प स्नान के बाद बीस मिनिट से चालीस मिनिट तक का हिप बाथ लेना ज़रूरी है।

१. हिप-बाथ अर्थात् कटि और पेडू का स्नान।

२. सिट्ज़-बाथ अर्थात् मूत्रेन्द्रिय की खलड़ी (Foreskin) का प्रक्षालन या मेहन स्नान।

३. स्टीम-बाथ अर्थात् वाष्प स्नान।

४. सन्-बाथ अर्थात् धूप का स्नान।

इन का वर्णन जल-चिकित्सा निबन्ध में आगे जाकर भली प्रकार कर दिया है।



१. राष्ट्रपति का भाषण

लाहौर कांग्रेस की एक बहुत बड़ी ख़ूबी उस के सभापति का भाषण है। लाहौर से पूर्व आज तक कभी किसी नवयुवक को कांग्रेस के सभापति-पद का सन्मान प्राप्त नहीं हुआ। आयु की दृष्टि से राष्ट्रपति जवाहरलाल, केवल एक अपवाद के साथ, कांग्रेस के सम्पूर्ण सभापतियों से छोटी उम्र के हैं। यह अकेला अपवाद माननीय गोखले का है। गोपाल कृष्ण गोखले सन् १६०५ में बनारस-कांग्रेस के सभापति बने थे। तब उन की आयु केवल ३६ बरस की थी। परन्तु इस पर भी उन दिनों उन्हें नवयुवक नहीं कहा जा सकता था। एक तो स्वास्थ्य की दृष्टि से भी वह वयोवृद्ध प्रतीत होते थे, फिर उनके विचारों के लिहाज़ से तो उन्हें नवयुवक कहा ही नहीं जा सकता था। लाहौर कांग्रेस के सभापति जवाहरलाल जी की आयु इस वर्ष यद्यपि ४० बरस की है, तथापि अपने क्रान्तिकारी विचारों के कारण वह अपने युग के नवयुवकों के सर्वश्रेष्ठ नेता हैं। चंचलता, स्वास्थ्य, स्फूर्ति और गति की दृष्टि से तो वह नवयुवक हैं ही।

राष्ट्रपति जवाहर लाल साम्यवादी हैं। इस लिये कांग्रेस के पहले साम्यवादी सभापति भी वही हैं। अपने भाषण में उन्हों ने सम्पूर्ण प्राचीन प्रचलित प्रथाओं को तोड़ डाला। वह हिन्दी में बोले। उन्हों ने अपने भाषण को पढ़ा नहीं, मौखिक हो अपने क्रान्तिकारी विचारों को प्रकट किया। उन्हों ने यह परवाह नहीं की कि मेरे मुंह से लच्छेदार भाषा के मुहावरे निकल रहे हैं या नहीं, अथवा भाषण-कला की दृष्टि से मेरा वक्तव्य ऐतिहासिक बन रहा है या नहीं। अपने भाषण में उन्हों ने कोई ऐतिहासिक या शासन-कला सम्बन्धी मौलिक गवेषणाओं से पूर्ण निबन्ध लिखने का भी प्रयत्न नहीं किया। परन्तु वह जो कुछ बोले वह एक क्रान्तिकारी दिल की तड़पन थी। उस भाषण का एक एक अक्षर उन के हृदय पर लिखा हुवा था। उस में गहरी अनुभूति थी। इसी दृष्टि से हम कहते हैं कि उन्हों ने अब तक की सम्पूर्ण प्रथाओं को तोड़ कर अपना भाषण दिया।

जवाहरलाल जी भारतवर्ष में केवल राजनीतिक क्रान्ति ही नहीं देखना चाहते। वह साम्यवादी हैं, इस लिये वह भारत वर्ष की आर्थिक सामाजिक, और राजनीतिक सभी प्रकार की परिस्थितियों में क्रांति ला देना चाहते हैं। इसी लिये उन्हों ने कहा—"हमें यह निश्चय कर लेना होगा कि हमें किस के लाभ के लिये व्यवसाय उन्नत करना चाहिये, किस के लिये भूमि से अन्न उत्पन्न करना चाहिये। आज भूमि जो अन्न पैदा करती है वह

मज़दूरों और किसानों के लिये नहीं है। आज की मिलें मिलमालिकों का ख़ज़ाना ही भर रही हैं। आज के इस व्यवसाय से चाहे सोना बरसे और यह भूमि चाहे अनन्त अन्न उत्पन्न करे, परन्तु किसानों और श्रमियों के मिट्टी के पुराने झोंपड़े, उन के अर्धनग्न शरीर तथा कमज़ोर पुट्ठे ब्रिटिश साम्राज्य और वर्तमान सामाजिक संगठन की यशोगाथा निरन्तर कह रहे हैं।

"हमारा आर्थिकप्रोग्राम मानवीयता पर आश्रित होना चाहिये। धन के लिये हमें मनुष्य का बलिदान नहीं करना चाहिये। व्यवसाय यदि श्रमियों को भूखा मारे बिना तरक्की नहीं कर सकता तो इसे बन्द कर दो। किसानों और श्रमियों को उन का उचित हिस्सा अवश्य मिलना चाहिये।"

इस के बाद आपने कहा—"मैं स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करता हूँ कि मैं एक साम्यवादी और प्रजातन्त्र वादी हूँ। मुझे राजासत्ता पर विश्वास नहीं। मुझे उस सामाजिक संगठन पर भी विश्वास नहीं जिससे बड़े बड़े व्यवसाय-सम्राट पैदा हो जाते हैं, जिन को शक्ति प्राचीन महाराजाओं की अपेक्षा भी अधिक है।"

देशी रियासतों के सम्बन्ध में आप ने कहा—"ये देशी रियासतें पुराने ज़माने के अजीब अवशेष हैं। वर्तमान देशी रियासतों के अनेक राजा अभी तक इस बात पर सचमुच विश्वास करते हैं कि राजा में ईश्वरीय पवित्रता सन्निहित है, यद्यपि ये राजा वास्तव में स्वयं एक खिलौना मात्र ही हैं। ये लोग राज्य को अपनी निजू जायदाद समझते हैं। राज्य के धन का यथेच्छ व्यय करते हैं। इन देशी रियासतों के राजाओं में से एक ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि यदि इङ्गलैण्ड और भारतवर्ष में युद्ध छिड़ जाय, तो मैं इङ्गलैण्ड की तरफ़ से ही लड़ूंगा! इस एक बात से ही इन लोगों की देशभक्ति मापी जा सकती है।

"परन्तु देशी रियासतों को यह ख्याल रखना चाहिये कि वे शेष भारत से जुदा होकर नहीं रह सकतीं। और इन रियासतों के भाग्य निर्णय का एकमात्र अधिकार उन की प्रजा को है। कांग्रेस स्वयं स्वाधीनता के लिये जद्दोजहद कर रही है, वह रियासती प्रजा की इस मांग की उपेक्षा नहीं कर सकती।...कांग्रेस इस बात के लिये पूरी तरह से तैयार है कि देशी रियासतों के राजा उस के साथ मिल कर अपनी रियासतों में क्रमशः प्रजातन्त्र स्थापित करने के ऐसे ढंग निकालें जिन से यह परिवर्तन एक दम न होकर धीरे धीरे हो। परन्तु रियासती प्रजा की उपेक्षा किसी भी दशा में नहीं की जा सकती।

प्रस्तावित गोल मेज़ कान्फ्रेन्स से सहयोग करने के सम्बन्ध में राष्ट्रपति ने कहा—"यह कान्फ्रेन्स क्या करेगी? सहयोग की शर्तें तो पूरी की नहीं गई। हम क्या कभी तब तक सहयोग कर सकते हैं जब तक हमें वास्तविक स्वाधीनता देने का भरोसा न दिया जाय? जब तक हमारे भाई जेल में हैं और दमन का चक्र जारी है तब तक क्या हमारे लिये यह सम्भव है कि हम सहयोग करें? जब तक हमें विश्वास न दिलाया जाय कि सरकार सचमुच वास्तविक शान्ति की इच्छुक है, वह शान्ति की पुकार महज़ हमें चालाकी से दबाने के लिये नहीं करती, तब तक क्या सहयोग सम्भव है? बन्दूकें तान कर शान्ति नहीं लायी जा सकती। यदि हम पर यह विदेशी राज्य कायम रखना ही है, तो कम से कम हम लोगों को इस के लिये अपनी स्वीकृति तो नहीं देनी चाहिये।"

अन्त में आपने कहा—"देश के विभिन्न हिस्सों पर आजकल षड्यन्त्र के अभियोग जारी हैं। हम लोगों पर सदा से ये अभियोग चलाये जाते रहे हैं। परन्तु अब गुप्त-षड्यन्त्र करने का समय बीत गया। हम लोग अपने देश को आज़ाद करने के लिये आज एक खुला षड्यन्त्र रच रहे हैं और मेरे बन्धुओ! तुम और सम्पूर्ण देशवासी इस षड्यंत्र में सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रित हो। परन्तु इस का परिणाम तुम्हें मिलेगा—यातना, जेल और सम्भव है, मृत्यु। तथापि तुम्हें इतना सन्तोष अवश्य रहेगा कि तुम ने अपनी इस प्राचीन, फिर भी सदैव नवीन मातृभूमि भारत के लिये अपना कर्तव्य पूरा कर दिया है; तथा मनुष्य जाति को वर्तमान बन्धनों से छुड़वाने में यथाशक्ति मदद की है। क्रांति चिरजीवी हो!"

२. पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव

भारत वर्ष का राजनीतिक ध्येय अब औपनिवेशिक स्वराज्य न रख कर पूर्ण स्वाधीनता कर दिया गया है। कलकत्ता कांग्रेस के निर्णयों के बाद कांग्रेस इस निर्णय के अतिरिक्त और कुछ कर ही नहीं सकती थी। कलकत्ता में नेहरू रिपोर्ट के आधार पर कांग्रेस ने यह स्वीकार किया था कि यदि इङ्गलैण्ड भारत वर्ष में औपनिवेशिक स्वराज्य कायम करने की प्रवृत्ति दिखायेगा तो भारत वर्ष सम्मान पूर्वक इस बृटिश साम्राज्य का भाग बन कर रहने को तैयार होगा। परन्तु सन् १६२६ के अन्तिम क्षण तक बृटेन ने इस तरह का कोई कदम नहीं लिया, जिस से यह सिद्ध होता कि वह भारत को शीघ्र ही औपनिवेशिक स्वराज्य देने को तैयार है। इस दशा में लाहौर कांग्रेस के पास पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास करने के अतिरिक्त और कोई चारा ही न था।

गत २३ दिसम्बर को लार्ड इर्विन ने भारतीय नेताओं से जो बातचीत की थी, उससे यह स्पष्ट होगया कि मज़दूर सरकार द्वारा प्रस्तावित भारतीय गोलमेज़ कान्फ़रेन्स का उद्देश्य भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देना नहीं है, यद्यपि यह मांग भी वहां पेश अवश्य की जा सकती है। यह स्पष्ट है कि इस स्थिति में कांग्रेस की औपनिवेशिक स्वराज्य वाली मांग पूरी नहीं होगी।

पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पहले पहल कांग्रेस ने अपने मद्रास के अधिवेशन में स्वीकार किया था। इस वर्ष के राष्ट्रपति ने ही वहां उस प्रस्ताव को पेश किया था। तब पूर्ण स्वाधीनता की मांग को कांग्रेस के ध्येय में स्थान नहीं दिया गया था, केवल 'स्वराज्य' शब्द की व्याख्या ही इस प्रकार कर दी गई थी। इस परिवर्तन को भी महात्मा गांधी ने बच्चों का खिलवाड़ कहा था। आज, उस बात के दो वर्ष बाद, लाहौर में स्वयं महात्मा गांधी ने ही कांग्रेस का ध्येय पूर्ण स्वाधीनता कर देने का प्रस्ताव पेश किया है। यह बात देश की राजनीतिक घटनाओं के भारी परिवर्तन का सूचित करने वाली है।

लाहौर कांग्रेस के जिस प्रस्ताव में पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा की गई थी, वह प्रस्ताव इस कांग्रेस का एकमात्र मुख्य प्रस्ताव था। यह प्रस्ताव बड़ा लम्बा और स्पष्ट था। इस का स्वरूप महात्मा गांधी ने स्वयं निर्माण किया था। ध्येय परिवर्तन के साथ ही साथ इस प्रस्ताव में असहयोग, सत्याग्रह की तैयारी और कौंसिल बायकाट का भी आदेश दिया गया था। इस प्रस्ताव पर पूरे आठ घण्टे तक बहस हुई और तीन घण्टे इस पर मत लेने में व्यय हुए। अनेक नवयुवक नेताओं ने महात्मा गांधी के प्रस्ताव को अधिक गरम तथा

'जोशीला' बना देने के संशोधन पेश किये, इस के लिये महात्मा जी से बड़ी २ अपीलें की। मगर महात्मा गांधी अपनी धारणाओं को छोड़ने वाले नहीं हैं। अन्त में महात्मा गांधी की जय रही। उनका पूरा प्रस्ताव बिना किसी परिवर्तन के स्वीकार होगया।

इस प्रस्ताव में सन् १९२१ के पञ्चविध बहिष्कारों में से केवल कौन्सिल बहिष्कार को ही पुनर्जीवित किया है। कौन्सिल बायकाट एक ऐसा मामूली प्रोग्राम है, जिस के द्वारा पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने में न तो कोई सहायता मिलती है और न कोई रुकावट ही आती है। हम सुभाष-बाबू को इस बात से पूरी तरह सहमत हैं कि आयर्लैण्ड की तरह ही भारतवर्ष में भी कौंसल का बायकाट किये बिना भी पूर्ण स्वाधीनता की लड़ाई लड़ी जा सकती है। इस में सन्देह नहीं कि यदि माननीय पं० मोतीलाल नेहरू जैसे चोटी के नेता भी अपनी सम्पूर्ण शक्ति एसेम्बली के फ़ज़ूल के कामों में लगा दें, तो इस के द्वारा राष्ट्रीय प्रगति में बाधा अवश्य पहुंचती है। परन्तु दूसरी ओर कुछ ऐसी मनोवृत्ति के समझदार और प्रभावशाली देशभक्त भी अवश्य हैं, जिन की उपयोगिता है ही कौंसिलों में जाकर सरकार से बहस करने की, उसे बारबार नीचा दिखाने की। ऐसे लोगों को कौंसिलें छोड़ कर बाहर चले आने के लिये बाधित करने का परिणाम केवल इतना ही होगा कि वे लोग बाहर आकर हाथ पर हाथ धर कर बैठ रहेंगे और उनकी जगह बहुत से बेदुम के जानवर धारासभाओं में प्रविष्ट हो जावेंगे। इस दृष्टि से हमें यही उचित प्रतीत होता है कि कांग्रेस के प्रभावशाली और कार्य-शक्तिसम्पन्न नेता तो धारासभाओं से अवश्य त्यागपत्र दे दें। परन्तु उनके स्थान पर ऐसे देश भक्त लिबरलों को चुनवाने का प्रयत्न किया जाय, जो धारासभाओं में स्वराज्य पार्टी के स्थान को खाली न होने दें।

पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव स्वीकार करने पर स्वयं कांग्रेस का कोई त्याग न करना पड़ा हो,—यह बात नहीं है। इस कदम के लिये कांग्रेस ने एक बड़ा त्याग किया है। यह त्याग है नहरू रिपोर्ट को रद्द कर देने के रूप में। महासभा के गतवर्ष के प्रशंसित राष्ट्रपति ने अनथक प्रयत्न कर के इस रिपोर्ट को तैयार किया था। यह बात सर्वविदित है कि इसके लिये उन्हें बहुत सी दिक्कतें उठानी पड़ीं। उनके इस कार्य से कांग्रेस की सर्वप्रियता बहुत बढ़ गई थी। पिछले दो वर्षों में, महासभा में जो फिर से नवजीवन का संचार हुआ है, कौन नहीं जानता कि इसका काफ़ी बड़ा श्रेय नहरू रिपोर्ट को भी है। मज़हबी सड़ांद ने जिन लोगों के दिमाग़ को बदबूदार बना रक्खा है, उनकी बात तो हम नहीं कहते, मगर प्रायः वे सभी लोग जिन्हें देश से प्रेम है और जो राष्ट्रीयता की दृष्टि से विचार करना जानते हैं, इस नहरू रिपोर्ट के कारण कांग्रेस के साथ हो गए थे। अब पूर्ण स्वाधीनता को ध्येय बना कर कांग्रेस ने स्वयं ही नहरू रिपोर्ट को रद्द कर दिया है। इस लिये देश के बहुत से राजनीतिक नेता अब कांग्रेस के विरोधी बन गए हैं। पिछले राष्ट्रीय सप्ताह में लिबरल फिडरेशन का जो वार्षिक अधिवेशन मद्रास में हुवा था, उसके सभापति की विज्ञप्ति और फिडरेशन के निर्णय हमारी इस बात के प्रमाण हैं। इसी तरह अन्य भी अनेक विचारक, जो नहरू रिपोर्ट के साथ थे, अब कांग्रेस के विरोधी बन गए हैं। यद्यपि इन लोगों के

विरोध ने अभी तक सन् १८२१ की तरह कोई क्रियात्मक रूप धारण नहीं किया किया, तथापि सरकार तथा गोरे या अधगोरे अख़बार इस बात के लिये प्रयत्न अवश्य कर रहे हैं।

परन्तु हमें इस बात की ज़रा भी चिन्ता नहीं है। क्योंकि हमें ज्ञात है कि देश की वास्तविक जनता पूरी तरह से कांग्रेस के साथ है। पिछले २६ जनवरी को देश भर ने जिस उत्साह तथा विश्वास के साथ पूर्ण स्वाधीनता-दिवस मनाया, उस से यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष का प्रजा अपने इस राजनीतिक ध्येय के परिवर्तन से बहुत अधिक प्रसन्न है। २६ जनवरी का दिवस उससे भी अधिक उत्साह के साथ मनाया गया है, जिस उत्साह के साथ सन् १९१९ में १३ एप्रिल का दिन मनाया गया था। बुद्धिमान विचारक तो इस तरह की राजनीतिक प्रगतियों को भय के साथ देखा ही करते हैं, परन्तु यह असम्भव है कि जनता उनके दार्शनिक विचारों से सन्तुष्ट रह सके।

विदेशों में भारतवर्ष के इस पूर्णस्वाधीनता के निर्णय को बड़े कौतुहल और उत्सुकता के साथ सुना गया है। संसार भर के सभी अच्छे अच्छे समाचार पत्रों ने बड़ी प्रमुखता से इस समाचार को अपने स्तम्भों में स्थान दिया और इस पर सम्पादकीय टिप्पणियां लिखी हैं। तटस्थ देशों के अनेक प्रमुख पत्रों ने इस समाचार का अभिनन्दन भी किया है। परन्तु इङ्गलैण्ड के अख़बार तो बुरी तरह बौखला उठे हैं। लण्डन के 'औबज़र्वर' पत्र में मि० जे० एल० गार्विन ने लिखा है-"भारत के राष्ट्रवादी जानबूझ कर आयर्लैण्ड के सिनफ़ेन आन्दोलन के क़दमों पर चल रहे हैं। वे लोग इस बात का ख्याल नहीं कर रहे कि इस आन्दोलन से आयर्लैण्ड को कितना असाधारण नुकसान हुवा और यह भारत के हितों को कितना भारी धक्का पहुँचायेगा।

'सनडे टाइम्स' लण्डन, का कहना है—"यदि लाहौर की कांग्रेस सचमुच सम्पूर्ण भारतवर्ष की प्रतिनिधि होती, तो इस का यह पूर्ण स्वाधीनता को ध्येय बनाने वाला प्रस्ताव, सन् १८५७ के गदर के बाद की सब से बड़ी घटना होता। परन्तु वास्तव में कांग्रेस भारत की प्रतिनिधि नहीं है। केवल वे थोड़े से दिमाग़ जिन्हें पश्चिम के जनतन्त्रवाद का खट्टा लग गया है, इस के कर्ताधर्ता हैं। इस का चुनाव तक सर्वसाधारण जनता द्वारा नहीं होता। यहां तक कि भारत के सम्पूर्ण राजनीतिक मतों के लोग भी कांग्रेस में नहीं जाते। भारत की ९० प्रतिशत अपठित जनता तो कांग्रेस के निर्णयों की रत्ती भर भी परवाह नहीं करती।"

लण्डन का 'डेली मेल' भारत के वर्तमान वायसराय महोदय पर ही बेतरह बौखला उठा है। उस का कहना है—"अनुदार दल की यह एक बड़ी भारी ग़लती थी कि उसने लार्ड इरविन जैसे भावुक आदमी को भारतवर्ष का वायसराय नियुक्त किया।...भारतीय शासन विधान में इस तरह के उच्छृङ्खल राजनीतिक आन्दोलनों का दमन करने के लिये वायसराय को यथेष्ट अधिकार प्राप्त हैं। लार्ड इरविन अभी तक, न मालूम क्यों, इन अधिकारों का उपयोग नहीं कर रहे। वह कोई बहुत कड़े दण्ड चाहे इन आन्दोलनकारियों को न भी दें, कम से कम इन्हें कालापानी ही भेज दें, और नहीं तो जेलखाने में ही डाल दें।"

इङ्गलैण्ड के अखबार महात्मा गांधी और पं० जवाहरलाल नेहरू पर भी अपना गुस्सा निकाल रहे हैं। ओडवायर ने तो महात्मा गांधी के व्यक्तित्व पर भी हमले किये हैं। हाल ही में, उन

सैनिकों में जाकर, जिन्हों ने अमृतसर के जलियांवाला बाग में गोलियां चलाई थीं, उसने निराशा से अपने दोनों हाथ मसल कर यह रोना रोया है—"हाय रे ! हम लोग इस समय पंजाब में न हुवे !"

अमेरिका के अखबारों ने इस समाचार को कौतुहल के साथ सुना है। न्यूयार्क के "हेराल्ड ट्रिब्यून" का कहना है—"एक वर्ष पूर्व (कलकत्ता में) महात्मा गांधी औपनिवेशिक स्वराज्य के लिये तैयार थे, क्योंकि वह क्रान्तिकारी कार्यक्रम जारी न करना ही पसन्द करते थे। परन्तु अब उन्हें पूर्ण स्वाधीनता की मांग करने को बाधित होना पड़ा है, कारण यह है कि उन के नीचे के नेता स्वराज्य के लिये बहुत अधिक अधीर हो रहे थे। यदि वह ऐसा न करते तो स्थिति उन के काबू से बाहर हो जाती।"

'यूनाइटिड प्रेस' अमेरिका ने लाहौर कांग्रेस का जो भावी प्रोग्राम अमेरिकन पत्रों में दियाहै, वह यद्यपि अशुद्ध है तथापि मज़ेदार है—"महात्मा गांधी का प्रोग्राम यह है कि आगामी फरवरी मास में वह कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन बुलावें। इस में देश भर से चुने हुए १००० प्रभावशाली प्रतिनिधि आवें, जो अंग्रेज़ी राज्य के विरोध में सत्याग्रह करने की घोषणा करें। इस दशा में सरकार कांग्रेस को नियम विरुद्ध संस्था करार देदेगी और वे १००० प्रतिनिधि गिरफ़्तार कर लिये जावेंगे। इस पर महात्मा जी कांग्रेस के १००० नए प्रतिनिधियों को बुलावेंगे, वे भी गिरफ़्तार हो जावेंगे। यह बात तब तक जारी रहेगी, जब तक सरकार या कांग्रेस में से एक संस्था टूट नहीं जाती।"

३. प्रेज़ीडैण्ट पटेल.

लाहौर-कांग्रेस ने धारा सभाओं के बहिष्कार का निर्णय किया था इस कारण अनेक महानुभावों को विश्वास था कि असेम्बली के वर्तमान प्रेज़ीडैण्ट पटेल भी शीघ्र ही अपने पद तथा सदस्यत्व से त्यागपत्र दे देंगे। उन का यह विश्वास इस आधार पर आश्रित था कि पटेल साहब एसेम्बली के सभापति बनने से पूर्व तक स्वराज्य पार्टी— जो कांग्रेस का एक आन्तरिक भाग थी—के सदस्य थे और आजीवन कांग्रेस द्वारा संचालित मार्गों से ही देशसेवा का कार्य करते रहे थे। परन्तु प्रेज़ीडैण्ट पटेल ने अपने पद से त्याग पत्र नहीं दिया। पिछले २१ जनवरी के दिन भारत की बड़ी धारा सभा में पटेल साहब ने इस सम्बन्ध में जो वक्तव्य दिया था, उस में उन्होंने त्यागपत्र न देने के कारणों का विषद वर्णन किया था। आपने कहा—"जो व्यक्ति धारा सभा का सभापति बनता है वह सम्राट् की तरह से सम्पूर्ण पार्टीबन्दी से ऊपर उठ जाता है। जब उस व्यक्ति का प्रस्ताव और अनुमोदन कर के उसे सभापति के आसन पर बिठला दिया जाता है, तब उसका अपने पुराने दल से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। तब वह सम्पूर्ण धारा सभा द्वारा ही निर्वाचित समझा जाता है। इसी धारा सभा से उसकी शक्ति उत्पन्न होती है और इसी के नाम पर वह अपनी शक्ति का उपयोग करता है।"

आगे चल कर इसी घोषणा में प्रेज़ीडैण्ट पटेल ने यह भी कहा—"क्योंकि मेरा किसी दल से सम्बन्ध नहीं, इस लिये मैं लाहौर कांग्रेस की आज्ञानुसार सभापति पद से त्यागपत्र नहीं दूँगा। परन्तु जिस क्षण मैं यह अनुभव करूंगा कि मेरे लिये सभापति पद के सम्मान की रक्षा करना सम्भव नहीं रहा, उसी क्षण मैं इस पद से त्यागपत्र दे दूँगा।"

हम प्रेज़ीडैण्ट पटेल की इस घोषणा से पूरी तरह सहमत हैं। प्रेज़ीडैण्ट पटेल कांग्रेस के सदस्य

नहीं हैं। लाहौर कांग्रेस ने केवल उन्हीं लोगों का धारा सभाओं का बहिष्कार करने का आदेश दिया है, जो लोग कांग्रेस के टिकट पर उन में गए थे। लाहौर कांग्रेस के प्रस्ताव का वह भाग, जिस में धारासभाओं के बहिष्कार का निर्णय है, इस प्रकार है—"और कांग्रेस को राजनीतिक दृष्टि से अपने परिवर्तित ध्येय के अनुकूल बनाने के लिये यह कांग्रेस निश्चय करती है कि केन्द्रीय और प्रान्तीय धारा सभाओं तथा सरकार द्वारा बनाई गई कमेटियों का पूर्ण बहिष्कार किया जावे, और कांग्रेसियों तथा राष्ट्रीय प्रगति में हिस्सा लेने वाले व्यक्तियों से अनुरोध करता है कि वे धारासभाओं के आगामी निर्वाचनों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कोई भी हिस्सा न लें, और धारा सभाओं या कमेटियों के, कांग्रेस के टिकट पर गए हुए वर्तमान सदस्यों को आदेश देती है कि वे अपने सदस्यत्व से त्यागपत्र दे दें।"

लाहौर-कांग्रेस द्वारा स्वीकृत इस प्रस्ताव में धारा-सभाओं से त्यागपत्र देने का आदेश स्पष्ट-रूप से केवल उन्हीं सदस्यों को दिया गया है, जो कांग्रेस के टिकट पर धारासभाओं में प्रवेश पा सके थे। प्रेज़ीडैण्ट पटेल कांग्रेस के टिकट पर एसम्बली में नहीं गए, अतः लाहौर का निर्णय उन्हें त्यागपत्र देने के लिये बाधित नहीं करता।

यहां तक तो प्रेज़ीडैण्ट ने कांग्रेस के आदेश के विरुद्ध कोई काम नहीं किया। अब हमें देखना यह है कि धारा सभाओं के आगामी निर्वाचन में, वह उमीदवार बन कर खड़े होते हैं या नहीं। क्यों कि तब के लिये कांग्रेस ने प्रत्येक राष्ट्रीय भारतवासी से यह अपील की है कि वह धारासभाओं के निर्वाचन में प्रत्यक्ष या परोक्ष, किसी भी रूप में भाग न ले। यदि उस समय प्रेज़ीडैण्ट पटेल ने कांग्रेस के इस अनुशासन का भंग किया तो उन का यह कार्य अवश्य ही अत्यधिक आक्षेपयोग्य समझा जायगा। परन्तु हमें विश्वास है कि मौका आने पर प्रेज़ीडैण्ट पटेल सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय ही सिद्ध होंगे। वह धारासभा के सभापतित्व की ख़ातिर देश की उपेक्षा नहीं करेंगे।

परन्तु, मालूम होता है कि, सरकार वह मौका आने न देने के लिये ही तुली हुई है। प्रेज़ीडैण्ट पटेल ने अपने सभापतित्व के काल में जिस प्रकार धारा सभा की सम्मान रक्षा का प्रयत्न किया है, वह अनेक गोरों की आंख में शूल के समान खटक रहा है। मि० मूर ने जिस भेरी ग़ैरज़िम्मेवारी से प्रेज़ीडैण्ट पर कीच उछालने का प्रयत्न किया है, वह अत्यधिक गहणीय और कुत्सित है। पिछले दिनों से एसम्बली-भवन के प्रबन्ध के सम्बन्ध में प्रेज़ीडैण्ट तथा गृह सदस्य में जो झगड़ा चल रहा है, उस से यह स्पष्ट है कि मि० क्रेरार सभापति के अधिकारों को कुचलना चाहते हैं। यह झगड़ा बहुत-अधिक बढ़ गया है। अवस्था इतनी नाज़ुक होगई है कि क्रेरार की एक घोषणा को कुछ अंशों में अपूर्ण और कुछ अंशों में अशुद्ध कहने तक की आवश्यकता सभापति महोदय को अनुभव हुई। इस झगड़े के सम्बन्ध में अधिक विस्तार से अपनी राय ज़ाहिर करना अभी हम उचित नहीं समझते क्यों कि यह मामला अभी गुप्ततौर से अन्दर ही अन्दर सुलझाने का प्रयत्न किया जा रहा है। इसी कारण सभापति पटेल ने अपना विस्तृत वक्तव्य एसम्बली के सन्मुख अभीतक उपस्थित नहीं किया, उन के वक्तव्य से ही इस मामले के सम्बन्ध की अन्तरिक बातें जानी जा सकेंगी। तथापि यह स्पष्ट है कि यदि अवस्थाओं से बाधित होकर धारासभा की सम्मान रक्षा के लिये प्रेज़ीडैण्ट पटेल को अभी त्यागपत्र देना पड़ गया तो इस का परिणाम सरकार के लिये किसी भी दृष्टि से शुभ सिद्ध न होगा।

* ओ३म् *

गुरुकुल कांगड़ी के पुस्तक भण्डार

की

अमूल्य पुस्तकें

१०) रु० से अधिक की पुस्तकें खरीदने वाले को १५% और २०) से अधिक की पुस्तकें खरीदने वाले को २०% कमीशन दिया जावेगा।

११. भारतवर्ष का इतिहास १म् भाग	१॥)	श्री आचार्य रामदेव जी कृत
१२. भारतवर्ष का इतिहास २य "	१॥)	"
१३. पुराणमत पर्य्यालोचन	३)	"
१४. सन्ध्या का अनुष्ठान	॥)	श्री पं० सातवलेकर जी कृत
१५. यजुर्वेद अध्याय ३०	१)	" "
१६. " " ३२	॥)	" "
१७. " " ३६	॥)	" "
१८. ब्रह्मचर्य	१।)	" "
१९. बालकों की धर्मशिक्षा १म भाग	~)	" "
२०. " " २य "	≈)	" "
२१. अष्टाध्यायी वृत्ति	१॥)	श्री पं० गंगादत्त जी (स्वा० शुद्धबोध तीर्थ जी
२२. भौतिकी		बाल्फोर स्टूअर्ट की सुप्रसिद्ध अंग्रेजी फिज़िक्स के आधार पर म० गोवर्धन जी बी० ए० द्वारा लिखित।
२३. रसायन	।।।)	विलियम एस. फर्मो की प्रसिद्ध अंग्रेजी कैमिस्ट्री का आर्य-भाषा में म० गोवर्धन जी बी० ए० द्वारा अनुवाद।

१४. गुणात्मक विश्लेषण	२॥)	श्री प्रो० रामशरणदास जी सक्सेना एम. एस. सी.
१५. संस्कृत प्रवेशिका १म	।≈)	गुरुकुल की पाठविधि में है लेखक पं० हरिश्चन्द्र
१६. संस्कृत प्रवेशिका २य	।≈)	,, ले० पं० विष्णुमित्र जी
१७. बालनिति कथा माला	।)	,, ,,
१८. संशोधित पंचतंत्र १ म भाग	१।)	
३. ,, ,, २ य भाग	॥≈)	
२०. ,, हितोपदेश		
२१. ,, रघुवंश ३ य सर्ग	।)	
२२. ,, धातु पाठ	।)	
२४. आख्यातिक		
२५. नामिक	।≈)।	
२६. साहित्य सुधा संग्रह १ म बिन्दु	१।)	श्री पं० भवानी प्रसाद जी
२७. ,, ,, २ य ,,	१।)	,, ,,
२८. ,, ,, ३ य ,,	१।)	,, ,,
२९. आर्य्य भाषा पाठावली १ म भाग	।≡)	,, ,,
३०. ,, ,, ,, २ य ,,	॥)	,, ,,
३१. अष्टाध्यायी मूल १ म अध्याय	-)	श्री मुख्याधिष्ठाता जी गुरु० द्वारा
३२. ,, ,, २ य ,,	-)	,, ,,
३३. ,, ,, ३ य ,,	-)	,, ,,
३४. ,, ,, ४ र्थ ,,	-)	,, ,,
३५. ,, ,, ५ म ,,	-)	,, ,,
३६. ,, ,, ६ ष्ठ ,,	-)	,, ,,
३७. ,, ,, ७ म ,,	-)	,, ,,
३८. ,, ,, ८ म ,,	-)	,, ,,
३९. संशोधित नीति शतकम	≈)	,, ,,

निम्न लिखित पुस्तकें आधे मूल्य पर दी जावेंगी ।

१. संस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन ।≈) श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
२. उपनिषदों की भूमिका श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
३. एकान्तवासी योगी ≡) श्रीधरजी पाठक
४. आर्य्य पथिक लेखराम १) स्वर्गीय श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी महाराज
५. अर्थ शास्त्र प्रवेशिका ।) श्री पं० गणेशदत्त जी पाठक
६. आर्य्य समाज एन्ड पोलिटिकल बोडी (अंग्रेज़ी) ।)
७. मौर्डन मेला (अंग्रेज़ी) ≡)
८. दयानंद दी मैन एन्ड हिज़ वर्कस =)
९. संस्कृत स्वयं शिक्षक ३य १॥) श्री पं० सातव लेकर जी
१०. महाभाष्य अंगाधिकार २॥)
११. संक्षिप्त महाभारत (भीष्म पर्व) ।)
१२. आर्य्य सूक्ति सुधा ।) श्री पं० भीमसैन जी शर्मा
१३. अन्योक्ति शतक ≡) श्री पं० जगन्नाथ जी
१४. जिन चरितम ।-) श्री पं० चन्द्रमणिजी विद्यालं०
१५. काव्य लतिका ॥) श्री पं० भीमसेन जी शर्मा

निम्न लिखित पुस्तकें तिहाई मूल्य पर दी जावेंगी

१. रुद्र देवता का परिचय	॥)	श्री पं० सातवलेकर जी	
२. ऋग्वेद में रुद्र देवता	॥=)	,,	,,
३. वैदिक प्राण विद्या	१)	,,	,,
४. वेद का स्वयं शिक्षक १ म भाग	१॥)	,,	,,
५. वेद का स्वयं शिक्षक २ य भाग	२॥)	,,	,,
६. केनोपनिषद्	२।)	,,	,,
७. शतपथ बोधामृत	।)	,,	,,
८. वैदिक सभ्यता	[illegible]	,,	,,
९. वेद में चर्खा	॥)	,,	,,
१०. वैदिक सर्प विद्या	॥)	,,	,,
११. ३३ देवता विचार	=)	,,	,,
१२. वैदिक उपदेश माला	॥)	,,	,,
१३. संक्षिप्त वैदिक मनुस्मृति	॥)	स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द महारा	
१४. संस्कृत प्रथम पुस्तक	=)	श्री पं० सीमसेन जी शर्मा	
१५. ,, साहित्य पाठाव.ी २ य भाग	=)		
१६. संशोधित साहित्य दर्पण	२)		
१७. कविता मंजरी	।)	गुरुकुल के ब्रह्मचारियों संग	
१८. कविता कुसमाञ्जली १ म भाग	-।)	,,	
१९. कविता कुसमांजली २ य भाग	।-)	,,	

निम्न लिखित पुस्तकें चौथाई मूल्य पर दी जावेंगी

१.	आचार, अनाचार और छूत छात	=)	स्वर्गीय श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी
२.	पारसी मत और वैदिक धर्म	=)	" "
३.	ईसाई पक्षपात और आर्य्य समाज	=)	" "
४.	मानव धर्म सार	=)	" "
५.	मातृ भाषा का उद्धार	=)	" "
६.	विस्तार पूर्वक संध्या विधि	=)	" "
७.	पंच महायज्ञ विधि	=)	" "
८.	आदिम सत्यार्थ प्रकाश	॥)	" "
९.	उत्तरा खण्ड की महिमा	॥)	" "
१०.	वैदिक ईश्वर वाद	=)	पं० सातवलेकर जी
११.	अकाल से बचने के उपाय	॥)	बाबू कृष्णगोपाल जी श्रीवास्तव
१२.	मृतक श्राद्ध पर विचार	=)॥	श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
१३.	स्वर्ण देश का उद्धार	॥=)	" " "
१४.	वेद और आर्य्य समाज	=)	श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी
१५.	स्वा० दयानन्द और उनकी तालीम (उर्दू)	॥=)	म० राधाकृष्ण जी महता
१६.	राजस्थान की वीर रानियां	।=)	पं शिवव्रतलाल जी
१७.	वेद और पशु यज्ञ	।)	जे. पी. चौधरी
१८.	राष्ट्रीय आन्दोलन	१॥)	म० प्रभुलालजी मीतल
१९.	भारत गीताञ्जली	।-)	श्री माधवजी शुक्ल
२०.	गल्पाञ्जली	॥)	पं० शिवनारायण जी द्विवेदी

Bhimseni Surma.

This Surma of Bhimseni Camphor is a powerful cure for catarrhal conjunctive or gastric in origin, it rêmoves the painful symptoms minimising the chances of relapse. It prevents granulation in the conjunctive which the frequent attacks of opthalmia bring on. For inflammation and congestion of the eye and burning sensation due to bad weather it is equally helpful.

Bhimseni Surma gives tone to the optical nerves and the retina and thereby helps correct and happy vision. *Price Rs. 3/-/- Per Tola.*

Detailed Catalogue sent free—Obtainable from :—

Manager :—

AYURVEDIC PHARMACY,

GURUKULA KANGRI,

SAHARANPUR.

सचित्र

सुचारु सूची शिल्प पत्रावली

सलाई और क्रोशियेकी दस्तकारी सिखलाने की सस्ती और अनूठी विधि

इस प्रकार के पत्र इंग्लैएड अमरीका इत्यादि देशों में तो बहुत दिनों से निकलते हैं। परन्तु भारत में हिन्दी भाषा द्वारा प्रत्येक वस्तु के लिये अलग अलग कार्ड की रीति से इस कार्य को सिखलाने का यह पहला ही प्रयत्न है। जो कार्य पसन्द हो उसी के अनुकूल दो तीन आने खर्च कर कार्ड खरीद लो और घर बैठे बिना किसी की खुशामद के बनालो। अब तक निम्न लिखित कार्ड (१४×७) प्रकाशित हो चुके हैं:—

पत्र नं॰	मूल्य	पत्र नं॰	मूल्य
१—दीर्घ सुची प्रारम्भिक प्रयोग ११ चित्र	।)	५—पुरुषों का लम्बा मौज़ा [सचित्र]	=)
२—बड़ी सादी बनियान [सचित्र]	=)॥	६—पुरुषों का सरल दस्ताना [सचित्र]	=)॥
३—पुरुषों का कुर्ता [सचित्र]	=)॥	७—स्त्रियों का फूलदार कालर [सचित्र]	≡)
—बालिका की ऊनी जर्सी [दुरंगा]	≡।	पुरुषों का बुन्दकोदार मौज़ा [सचि]	=॥)

८ कार्डों का पूरा सैट मूल्य १।=)॥ के स्थान में केवल १) रुपया

कुछ सम्मतियाँ—

सरस्वती इलाहाबाद— यह पत्रावली नारी मात्र के लिये बडी उपयोगी है। छपाई सुन्दर भाषा सरल और मूल्य बहुत ही कम।

प्रताप लाहौर—कन्या पाठशालाओं और स्कूल की लड़कियों केलिये बड़े काम की चीज़ है।

गृहलक्ष्मी प्रयाग—हम इन कार्डों का हृदय से प्रचार चाहते हैं।

महारथी देहली—यह कार्ड सस्ते होने के कारण कन्याओं के लिये बड़े उपयोगी हैं।

मैनेजर "ज्योति"

कोठी नम्बर २१, २२ राजपुर रोडदेहरादून।

कला कौमुदी

लेखिका श्रीमती ओ३म्वती देवी

चित्र कला कौशल सम्बन्धी अनुपम पुस्तक इस के द्वारा लेखिका ने क्रोशिये के कार्य को बड़ा ही सरल बना दिया है। बिना किसी प्रकार के पहिले ज्ञान के कन्यायें और स्त्रियें केवल इस की ही सहायता से अनेक प्रकार की बिनावट लेसें, फ़ीते, कपड़े इत्यादि बनाना सहज में ही सीख सकी हैं। पुस्तक में इतना विषय है कि किंचित इस से कई गुना दाम की पुस्तकों में भी न होगा। प्रत्येक वस्तु तथा बिनावट का बनाना चित्र देकर बड़ी सरल रीति से सिखाया गया है। देखिये समाचार पत्र इस के विषय में क्या कहते हैं।

"...ट्रिब्यून" (अंग्रेज़ी का प्रसिद्ध दैनिक) लाहौर—स्त्रियों के लिये उपयोगी पुस्तक है ... अनेक चित्रों द्वारा वस्तु बनाने की विधि बड़ी सरलता से समझाई गई है। सुन्दर नमूने की ... साथ, बच्चों के सुन्दर कपड़े और अन्य कई वस्तुओं का बनाना बड़ी सरल रीति ... बताया गया है। पुस्तक की उपयोगिता के विचार से मूल्य बहुत कम है ...

"मतवाला" (कलकत्ता)-यह पुस्तक हमारी बहिनों के बड़े समझ की ... छपाई बहुत अच्छी, कागज़ बहुत अच्छा मोटा चिकना आर्ट। सुचारु शिल्प पत्रावली कार्ड गृहस्थियों के बड़े काम की चीज़ है।

"कर्मवीर" (खंडवा)— ……पुस्तक में सादे फन्दे से लगाकर तरह तरह की वस्तुओं के बनाने की विधि बड़ी सरलता से समझाई गई है जिसे पढ़कर साधारण पढ़ी लिखी स्त्री भी इस कार्य को सीख सकती है। इस का मूल्य लागत को देखते कम है।

"माधुरी" (लखनऊ)-ऐसी पुस्तकों की हिन्दी साहित्य के लिये बड़ी आवश्यकता है। आशा है इस पुस्तक का अच्छा प्रचार होगा जिस से इस प्रकार की और पुस्तकें भी प्रकाशित की जा सकें। लेखिका और प्रकाशिका दोनों को बधाई।

शीघ्र आर्डर भेजिये — मूल्य १॥)

कला कौमुदी तथा शिल्प पत्रावली का पूरा सेट लेने पर २॥=)॥ के स्थान में केवल २) में दिया जायगा।

कन्या पाठशालाओं और पुस्तक विक्रेताओं को विशेष रियायत

मैनेजर ज्योति—

कन्या गुरुकुल

राजपुरा रोड कोठी नं० २१-२२ देहरादून

गङ्गाराम पाठक प्रिन्टर तथा पं० ... पब्लिशर के लिये गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में मुद्रित।

Regd. No. A. 1711

वर्ष १०]   फरवरी १६३०   [संख्या १०



वार्षिक मूल्य. ४॥)
प्रति संख्या ॥)

सम्पादक—
विद्यावती सेठ बी. ए., चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

विद्यार्थियों, स्त्रियों से ४)
विदेशका मूल्य६)

विषय सूची ।



लेखकों से निवेदन

१. ज्योति में लेख, कविता आदि भेजने वाले महानुभावों को अपने लेख सुस्पष्ट अक्षरों में, कागज़ के एक ओर ही, हाशिया छोड़ कर लिखे हुए भेजने चाहियें ।

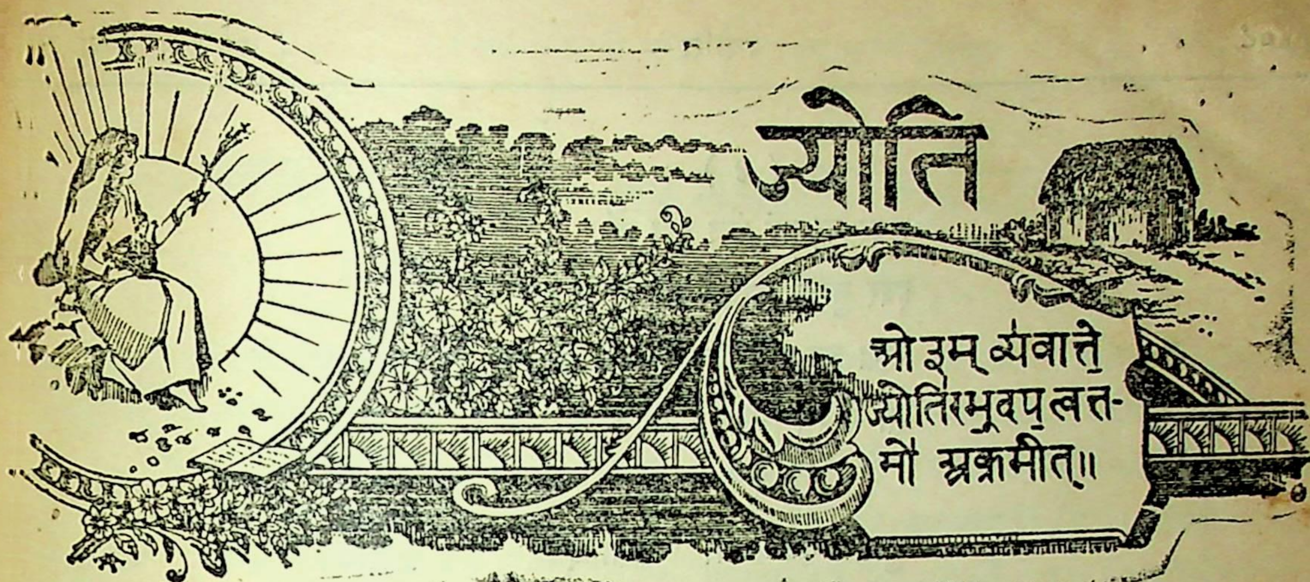
२. लेख बहुत लम्बे न होने चाहिएँ । 'ज्योति' पत्रिका के लगभग चार पृष्ठों के लायक लेख हों तो अति उत्तम है ।

३. लेखों को घटाने बढ़ाने तथा संशोधित करने का संपादक को पूर्ण अधिकार है ।



प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार—
आचार्य्या कन्या गुरुकुल
कोठी नं० २१, राजपुर रोड
देहरादून.

सम्पादन सम्बन्धी—
सम्पादक ज्योति
गुरुकुल कांगड़ी
यू.पी.



विविध विषय विभूषित सुन्दर मासिक पत्रिका.

वर्ष १० | माघ १९८६ * फरवरी १९३० | संख्या १०

मारू !

मारू राग सुना दे, मां !

(१)

दिल गरमा दे, भुज फड़का दे,
अंग अंग बिजली दौड़ा दे,
फिर जीवन ज्वाला भड़का दे
नख शिख आग लगा दे मां !

(२)

आल्हे की गरदन अकड़ा दे
ऊदल की छाती छलका दे
हठ हमीरसिंह का सिखला दे
समिधा शुष्क बना दे मां !

(३)

आग लगा दे, याग रचा दे
रुधिर बहा दे, वसा लुंढा दे
दे नरबलि, सुत-सीस चढ़ा दे
अग्निसूक्त फिर गा दे मां !

(४)

उधर ऋचाएं गूंज रही हों,
इधर जुबाने रुधिर-रंगी हों।
बलि चढ़ रही प्रणय जपती हों,
रस में रस सरसा दे मां !

(५)

भुजा "देव-यजनी[1]" फैला दे
तारा तारा सीस झुका दे
बिछुड़ गये हैं, गले मिला दे
इत उत आग लगा दे मां !

(६)

उधर कृपाणें चमक रही हों
इधर भुजायें फड़क रही हों
घोर बिजलियां कड़क रही हों
जीवन-ज्योति जगा दे मां !

(७)

पुजे शैलबाबा की भोरी
लसे शत्रु-मुख- चन्द्र चकोरी
खेले फिर मीना-सुत होरी
गा दे लोरी, गा दे मां !

(८)

फिर हरिये की धाक जमा दे
वैरागी सुत वीर बना दे
अंग अंग जम्बूर जुटा दे
लाखों लाल चुना दे मां !

—चमूपति

१. पृथवी.

स्वतन्त्रता के युग का प्रवर्तक ऋषि दयानन्द

(ले०—श्री पं० देवराज जी विद्यावाचस्पति)



मुझे तो इस विश्व में एक ही राग सुनाई देता है, उसका नाम है स्वतन्त्रता। आकाश में तारों से पूछो वे कहते हैं हम स्वतन्त्र हैं, जो हमारा नियम है उस में हम बंधे हैं, हमारे नियम में बाधा डालने वाला कोई नहीं। अन्तरिक्ष में सांय २ करती अनथक हवा बह रही है, उस से भी वही स्वतन्त्रता का राग आरहा है। नदियों में नाद बजाते हुए जल प्रवाहित होरहे हैं, स्वतन्त्रता की पुकार सुना रहे हैं। भूमाता अपने भूतल से पर्वतों के दृढ़ हाथ उठाकर सन्देश सुना रही है कि स्वतन्त्र बनो। स्वतन्त्रता वह जीवन शक्ति है जिससे किसी पदार्थ का अस्तित्व बना है। उस जीवन शक्ति को स्थिर रखने को चारों ओर से सन्देश आरहे हैं। पर बहिरे कानों पर उनका कुछ असर नहीं, दृष्टि विहीन नेत्रों के लिये वे शून्य हैं।

जिसने स्वतन्त्रता के जीवन का घूंट भरा, वह अमर हो गया। और जो स्वतन्त्रता का जीवन खो बैठा वह मिट्टी में मिल गया, उसका नाम और निशान इस भूतल से मिटगया। प्रकृति देवी की विविध भावनाओं से भावित निर्मल अन्तः करण महात्माओं ने वही स्वतन्त्रता का नाद संसार में गुंजाया। स्वतन्त्रता जीवन शक्ति का दूसरा नाम है। अपने अधीन रहना, पराधीन न होना—यह स्वतन्त्रता है। अपने आप को फैलाना, निर्बाध होना—इस का नाम स्वतन्त्रता है। जो मनुष्य अपने बनाये नियमों के पालन करने में निर्बाध है, वह स्वतन्त्र है। जो मनुष्य किसी कार्य के करने के लिये स्वयमेव प्रक्रिया नहीं निकाल सकता परापेक्षी रहता है वह पराधीन है। कार्य करने की प्रक्रिया का पाठ प्रकृति देवी की उपासना से प्राप्त होता है। यह पाठ पढ़ते २ जिन मनुष्यों ने जान लिया कि प्रकृति माता किसी कार्य को कैसे करती है, और जिसने इस ज्ञान को अपने आचरण में बदल लिया है वह स्वतन्त्र है। ज्ञान और कर्म का एक होजाना स्वतन्त्रता है। अन्यथा ज्ञान और अन्यथा कर्म होने का नाम पर परन्त्रता है, क्योंकि उससे बाधा उपस्थित होती है। प्रकृति माता अहर्निश जिस ज्ञान का पाठ पढ़ा रही है उसी को सत्य कहते हैं। इस ज्ञान से विपरीत ज्ञान का नाम मिथ्या ज्ञान है। मिथ्या ज्ञान बन्धन का, दुःख का कारण है और सत्यज्ञान वा तत्वज्ञान मोक्ष का वा स्वतन्त्रता का कारण है।

जिस समय जैसा करने से फल सिद्धि होती है उस समय वैसा ही करने के लिये जो ज्ञान अपेक्षित है वह सत्य ज्ञान है। जैसा करने से वा न करने से फल सिद्धि नहीं होती वैसा करने वा न करने के लिये जो ज्ञान अपेक्षित है वह मिथ्या ज्ञान है।

सत्य का आश्रय स्वतन्त्रता को देने वाला है और सत्य का त्याग वा मिथ्या का ग्रहण बन्धन और दुःख को देने वाला है। स्वतन्त्रताप्रिय मनुष्य को सत्य के ग्रहण और असत्य के परित्याग में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

सत्य से स्वतन्त्रता, जीवन शक्ति मिलती है और असत्य से उसका ह्रास होता है। सत्य जीवन शक्ति का प्राण है। जीवन सत्य में है, असत्य में मृत्यु है, विनाश है। जीवन रक्षा के लिये और मृत्यु पर विजय पाने के लिये सत्य की खोज में लगे रहना चाहिये। मृत्यु पग २ पर खड़ी है, बाधा डाल रही है। सत्य की तलवार की तेज़ धार से उसका शिर काटना है। एक बार काट डालने से काम नहीं चलता, वह नया रूप धारण करके फिर अगले पग पर खड़ी दीखती है। सत्य की तलवार को खूब बारीक पैना कीजिये। इसे काटते ही जाना होगा। विश्राम नहीं मिलेगा। विश्राम लेने वाले के लिये मृत्यु खड़ी है। वह न छोड़ेगी। कैसा अच्छा संग्राम छिड़ा है। वीर योद्धा आगे आवें, अपनी वीरता का परिचय दें। सत्य छोड़ कर पीछे हटने वाला कायर है,बुज़दिल है। बस! काम तो एक ही रह गया है—सत्य का दण्ड धारण किये रहना, कभी न छोड़ना और इससे बाधा दुःख वा मृत्यु की खूब मरम्मत करनी! इस सत्य की परतन्त्रता में ही पूर्ण स्वाधीनता भरी है। सत्य धारण कर के अभिमान, बड़ाई, मान, प्रतिष्ठा के विचार का कुछ काम नहीं। जब इनका विचार आया तभी सत्य छूटा और मृत्यु ने समझो आघेरा। सत्य का ग्रहण बड़े धैर्य का, साहस का, शान्ति का काम है। धैर्य, साहस और शान्ति से ही सत्य का ग्रहण रहता है अन्यथा छूट जाता है। जोश का काम नहीं है. दृढ़ता से वीर बनने की आवश्यकता है। दृढ़ता छोड़ कर जोश में आने से सत्य छूट जायगा, मृत्यु की पकड़ हो जावेगी। जोश का त्याग यही अहिंसा का ग्रहण है। सत्य अहिंसा के साथ मिल कर मृत्यु पर, पराभव पर, दुःख पर विजय पाता चला जाता है।

वीर मनुष्य अहिंसा के साथ सत्य का आश्रय लेकर मृत्युञ्जय हो जाता है। अहिंसा युक्त सत्यशील मनुष्य से स्नेह का प्रवाह बहता है। घृणा द्वेष, राग उस में रह नहीं सकते। उसके स्नेह के प्रवाह में नहाये हुए प्राणी मित्र होजाते हैं, राग द्वेष से छूट जाते और दुःख पर विजय पाते हैं। उनकी परतन्त्रा की बेड़ियां कट जाती हैं और वे स्वतन्त्र हो जाते हैं।

ऐसे ही वीर महा पुरुषों में से ऋषि दयानन्द था। जिस के जीवन ज्योति की झलकों से आज हमने अपने जीवन दीपकों को जगाना है। ऋषि दयानन्द का प्राण सत्य था, उस की क्रिया और विचार सत्य थे। उसने सत्य को धारण कर के ही अपना जीवन स्वतन्त्र बनाया था। सत्य का आश्रय लेकर ही वह निर्भय था। दयानन्द में इतना कार्य करने का सामर्थ्य केवल सत्य के अवलम्बन से ही आया था। पराधीन जाति के अन्दर उत्पन्न होकर भी दयानन्दने विदेशी राज्य के विरुद्ध आवाज़ उठाई कि माता पिता के समान भी विदेशी राज्य सुख दाई नहीं होता और चाहे ख़राब से ख़राब भी हो किन्तु स्वदेशियों का राज्य ही सर्वदा सुखदाई होता है। इस आवाज़ के उठासकने का कारण यही था कि दयानन्द सत्य के आश्रय से स्वतन्त्र हो चुका था। उस की आत्मा पराधीनता की बेड़ियों को सत्य के बल से तोड़ चुकी थी। जो स्वयं स्वतन्त्र है वही दूसरों को स्वतन्त्र कर सकता है, जो स्वयं बन्धन में है वह दूसरों के बन्धन नहीं काट सकता। हमारी भारतीय जनता अनेक प्रकार की कुरीतियों और रूढ़ियों के बन्धनों से जकड़ी हुई थी। शास्त्र के मर्म को न समझ कर लोग असत्य के पाश में बद्ध पड़े थे, दयानन्द ने सत्य का संदेश लोगों के कानों में पहुंचाया

और लोगों को बन्धन से मुक्त किया। स्त्री जातिको सर्वथा शिक्षा शून्य कर के यहां के पण्डितों ने उसे अविद्या की फांस में फंसा रक्खा था, परन्तु आज दयानन्द का प्रताप ही चहुं ओर दिग्विजय कर रहा है। स्त्री जाति जो भी कुछ हो, शिक्षा तो प्राप्त कर ही रही है। किसी भी मनुष्य के लिये अब यह प्रश्न तो नहीं रह गया कि 'स्त्रियों को शिक्षित करना चाहिये वा नहीं' परन्तु अनेक व्यक्तियों के लिये केवल यह प्रश्न रह गया है कि स्त्रियों को क्या शिक्षा दी जाय और क्या न दी जावे? आह! इस भारत वर्ष में जातीय द्वेष और जातीय घृणा परस्पर में इतनी फैली हुई थी और अब भी लुप्त नहीं हुई है कि मामूली से मामूली आदमी भी इतना जातीय घमण्ड रखता है कि अपनी जाति के सामने अन्य दूसरी जातियों को नीची निगाह से देखता है। बिना किसी अर्थ के इस जातीय बन्धन ने इतना विद्वेष और कलह फैला रखा था कि नाम धारी स्वार्थी ब्राह्मण मज़े में पड़े अपना स्वार्थ सिन्धु रच रहे थे। उन का त्याग का जीवन छूट कर भोग का जीवन बन चुका था। दयानन्द ने वेद की मशाल लेकर बुझे हुए ज्ञान के दीपक को फिर से जला दिया और तम से आच्छन्न हुई भारत माता के मुख को फिर से उज्वल किया।

स्वतन्त्र होने के अन्यतम महान् साधन जातीय संघटन का प्रवर्तक वह दयानन्द था। जिसने एकता के मूल मंत्र सत्य का आश्रय लेना सिखाया। धर्म के नाम से अधर्म का आचरण फैल रहा था, तब भारत स्वतन्त्र कैसे रह सकता था। हृदय में अवस्थित देवता की पूजा के लिये कभी मन्दिरों का पवित्र स्थान हुआ करता था, परन्तु अब तो ये मन्दिर विलासिता के गढ़ बन गये थे और बहुत तो कसाई खाने का रूप धारण कर चुके थे, आह! उस दयानन्द के प्रभाव से ही बहुतों ने किसी कदर विद्या मन्दिर का रूप धारण किया और विलासिता की पूजा के बदले किसी कदर देवपूजा का स्थान ग्रहण किया। भ्रम के वा असत्य के बन्धन में पड़े हुए धर्म के ठेकेदारों ने परमात्मा की पूजा के बहाने परमात्मा को बेच बेच कर रुपया बटोरना आरम्भ कर दिया था, धर्म कर्तव्य के आचरण का नाम न रह कर दुकानदारों का लेन देन की चीज़ के रूप में आ चुका था। दयानन्द ने अपने सत्य ज्ञान की तलवार से इन बन्धनों को काट २ कर अलग फेंक दिया और धर्म को दुकानदारी के रूप से निकाल कर आचरण का रूप दिया। दयानन्द संदेश दे गया कि धर्म के आचरण से देश स्वतन्त्र हो सकता है धर्म की तिजारत करने से देश कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकता। दयानन्द ने देखा कि इस भारत देश में धर्म के दलाल पैदा हो गये हैं। इन दलालों ने परमेश्वर और मनुष्य के साक्षात् सम्बन्ध को तोड़ डाला है। दयानन्द ने ऐसे बन्धनों को काट डाला तथा मनुष्य और परमात्मा के साक्षात् सम्बन्ध को स्थिर किया। दयानन्द के किस २ उपकार का वर्णन किया जाय। दयानन्द का जीवन अपना जीवन नहीं था, उस का जीवन त्याग मय जीवन था, जातीय जीवन था। वह अपने बन्धन काट कर जैसे स्वतन्त्र हुआ उसी की विधि का अनुसरण कर के हम भी स्वतन्त्र बन सकते हैं। उस दयानन्द ज्योति का हम सब में प्रकाश हो और हम सब दया और आनन्द से परिपूर्ण होकर पूर्ण स्वतन्त्र हों।

रूस की राज्य-क्रान्ति का महत्व

क्रान्तिकारियों के आदर्श तथा कार्य

(ले०— प्रिन्सिपल छबीलदास जी)



प्राचीन इतिहासकार, गौतम बुद्ध के जन्म, ईसाईमत के प्रचार तथा फ्रांस की राज्यक्रांति को मानव इतिहास की मुख्य घटनाएं मानते हैं। परन्तु यदि न्याय्य दृष्टि से देखा जाय तो इन सब घटनाओं ने मानव जीवन पर वह प्रभाव नहीं डाला जो बीसवीं शताब्दी की सब से बड़ी घटना रूस की राज्यक्रांति ने डाला है। सचमुच ७ नवम्बर १९१७ का शुभ दिन मानव इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जाएगा, क्योंकि इसी पवित्र दिन से मानव जाति के इतिहास में एक नवीन युग का आरम्भ होता है।

रूस की राज्य क्रांति में भी संसार की अन्य राज्यक्रांतियों की तरह रक्तपात तथा मारकाट हुई। अभिमानी तथा अत्याचारी ज़ार तथा उसके चापलूस और स्वार्थी मंत्रीमण्डल को अपने पापों और अत्याचारों का कड़वा फल चखना पड़ा। समस्त रूस में एक महान विप्लव हुआ तथा उथल पुथल मची। परन्तु उसका परिणाम केवल इतना ही नहीं हुआ कि राज्यसूत्र एक से दूसरे शासकों के हाथ में चला गया, वरन जो कुछ भी हुआ वह सारी भावी मानव जाति के इतिहास पर अपना प्रभाव डालता रहेगा।

सोवियट सरकार की स्थापना।

कोई भी क्रांति एक रात में नहीं होजाती। उसके लिये वर्षों और पीढ़ियों के लगातार प्रयत्न की आवश्यकता होती है। सन् १९०४-५ में जब अत्याचारी रूस जापान के साथ युद्ध में लगा हुआ था, रूस के देशभक्तों ने क्रांति मचाने का प्रयत्न किया था। यद्यपि उसमें उनको मनोवाञ्छित सफलता प्राप्त न हो सकी परन्तु आगामी क्रांति के लिए अच्छी खासी तैयारी होगई और काफी अनुभव प्राप्त होगया।

सन् १९१६-१७ ई० में भी ज़ार जर्मनी जैसे ज़बरदस्त शत्रु से लोहा ले रहा था। अकेले जर्मनी ने इङ्गलैण्ड, फ्रांस, इटली, रूस, जापान तथा अमेरिका इत्यादि मित्र दल की सारी सेनाओं के छक्के छुड़ा दिये थे। रूस के क्रांतिकारियों का बहुत सा कार्य तो जर्मन सेनाओं ने कर दिया था, अर्थात् उन्होंने अत्याचारी ज़ार की शक्ति का ह्रास कर डाला था। मार्च १९१७ ई० में ज़ार को सिंहासनच्युत होना पड़ा और राज्यप्रबन्ध कैरेन्सकी तथा उसके मैनशेविक दल के हाथ लगा जो कि अपनी स्वार्थनीति तथा पूंजीवाद के कारण जनता को सन्तुष्ट करने में असमर्थ रहे। ७ नवम्बर १९१७ ई० के दिन वीर तथा निर्भीक लैनिन और ट्राटस्की ने दूसरी बार क्रांति करके किसानों मज़दूरों तथा सैनिकों की सरकार की स्थापना की, जिसे सोवियट या बोलशेविक सरकार के नाम से पुकारा जाता है।

मित्रदल के घावों पर नमक

इस नवीन सरकार का आदर्श साम्यवाद के जन्मदाता ऋषि कार्लमार्क्स की शिक्षा थी। ज़ार

तथा रूस देश के सारे बड़े बड़े धनियों और जागीरदारों की सम्पूर्ण ज़मीनें, जागीरें, मकान तथा जायदादें ज़ब्त करके राष्ट्र को सांझी सम्पत्ति बनादी गई। अनिवार्य श्रम के सिद्धान्त पर नवीन समाज की नींव रक्खी गई। समानता के पवित्र आदर्श की विजयपताका हर स्थान पर लहराई गई। रूस की इस आश्चर्यजनक तथा निर्भीक कार्यप्रणाली से मित्रमण्डल के कलेजे कांप गये। रूस की बोलशविक सरकारने इतने पर ही सन्तोष न किया, वरन चार पांच अन्य ऐसी ही बातें करके मित्र दल के घावों पर नमक छिड़का।

(१) मित्रदल की कूटनीतिका भंडा फोड़

जिस समय ज़ार तथा अन्य धनी लोगों और मंत्रियों के महलों पर कब्ज़ा किया गया तो वहां से अनेक गुप्त सन्धिपत्र तथा पूंजीपतियों की नीच तथा स्वार्थमयी कूट नीति से पूर्ण कई ख़रीते मिले, जिनको सोवियट सरकार ने अंग्रेज़ी, फ्रैंच, रूसी, जर्मन, चीनी, जापानी, डच इत्यादि भाषाओं में प्रकाशित करके मित्रदल की पवित्रता, तथा ईमानदारी का भण्डाफोड़ कर दिया। संसार को खबर लगी कि देशों तथा जातियों के युद्ध तथा रक्तपात न्याय, शान्ति तथा जनतावाद की स्थापना के लिए नहीं, वरन् साम्राज्य विस्तार, व्यापारिक संघर्ष तथा एशिया और अफ्रीका महाद्वीप की असीम लूट पाट तथा बन्दरबांट के लिये होते हैं। धूर्त तथा स्वार्थी साम्राज्यवादी लोग अपनी कूट नीति तथा वाक्चातुर्य से रक्तदार लोगों को भी इस नरसंहार के कुकृत्य में शामिल कर लेते हैं।

(२) ऋण देने से साफ़ इनकार

रूसके ज़ार ने इङ्गलैण्ड, फ्रांस, इटली तथा अमेरिका इत्यादि मित्रदल से करोड़ों रुपये ऋण ले रखा था। सोवियट सरकार ने वह सब ऋण अदा करने से साफ़ इन्कार कर दिया और मित्रदल को अंगूठा दिखलाते समय यह युक्ति दी कि ज़ार ने यह सब धन हमारी दासता की जंजीरें कड़ी करने के लियेअर्थात् अपने भोग विलास, साम्राज्य-विस्तार तथा सेनाको वेतन देने के लिये थे। अब किसानों, श्रमजीवियों तथा सैनिकों की सरकार पर इस ऋण को वापस करने का उत्तरदायित्व कैसे लादा जा सकता है?

(३) साम्राज्यवाद की नीति से मुख मोड़ना।

रूस की नई सरकार ने साम्राज्यविस्तार की नीति से मुख मोड़ दिया। अर्थात् रूस के सारे राजाओं द्वारा जीते हुए सब प्रदेश छोड़ दिये। सब ठेकों, रियायतों तथा असमान सन्धिपत्रों को रद्द कर दिया गया। आधे फारस को, जो रूस के अधिकार में था स्वतन्त्र कर दिया गया। चीन के दो प्रांतों –मंचूरिया तथा मंगोलिया–को खाली कर दिया गया। बुखारा, तुर्किस्तान तथा टर्की में स्वतन्त्रता का प्रचार किया गया।

(४) सेनाओं में विद्रोहात्मक साहित्य का प्रचार

सेनाओं में प्रायः किसान, मज़दूर और निर्धन श्रमजीवी लोग ही रहा करते हैं।

रूस की बोलशेविक सरकार ने संसार भर के राष्ट्रों की सेनाओं में विद्रोहात्मक साहित्य बंटवाया। इसमें उन से अपील की गई थी कि अरे नादान और भोले भाले भाइयो! इन दुष्ट और स्वार्थी रक्तशोषक साम्राज्यवादियों के मायाजाल में फंस कर अपना रक्तपात मत करो। इस "संसार भर के मज़दूरो! एक हो जाओ" की घोषणा से आकाश गूंज उठा।

मित्रदल की घबराहट

रूस की इस नीति से मित्र दल को भय हुआ कि कहीं हमारी प्रजा तथा उपनिवेशों के निवासी

भी रूस के क्रांतिकारियों का अनुकरण न करें। क्योंकि रूस के ज़ार के साथ वे सब भी उसी छेद वाली फूटी नाव में सवार थे। गुप्त और झूठी सन्धियां करने, करोड़ों रुपये कर्ज़ लेने, विध्वंसकारी शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित सेनाएं रखने, साम्राज्य का विस्तार करने, एशिया तथा अफ्रीका को लूटने और अपने २ देश में गरीब श्रमजीवियों की कमाई पर मुफ़्त में गुलछर्रे उड़ाने में वे भी रूस के ज़ार के साथी रहे हैं। यह सोच कर उनकी खाली सेनाओंने रूसका घेरा डाल दिया। इस नीच कार्य में रूस के कई राजकुमार, जागीरदार तथा सेनापति इत्यादि (जिन की जायदादें ज़ब्त कर ली गई थीं) देश-द्रोही लोग मित्र दल का हाथ बंटा रहे थे।

लेनिन तथा ट्राटस्की ने प्रत्येक बालिग़ रूसी को हथियार देकर लाल सेना को संगठित किया और विद्रोहात्मक साहित्य के प्रचार से शत्रु सेना में अविश्वास तथा गड़बड़ डलवा दी। सन् १९२० में घेरा उठा लिया गया, परन्तु रूस पर प्रकृति का प्रकोप हो गया अर्थात् रूस में एक भयानक दुर्भिक्ष पड़ गया। रूस के शूरवीर नेताओं ने प्रकृति के चैलेंज को भी स्वीकार कर लिया। उस समय से आज तक गत ८-९ वर्ष में रूस ने अपना पुनः संगठन कर के अपनी दशा सुधार ली है।

बोलशेविक सरकार के कार्य

कर्लमार्क्स के आदर्शों तक पहुंचने के लिए तो अभी विश्वव्यापी क्रान्ति की आवश्यकता है, परन्तु रूस ने इस समय तक जो कुछ कर दिखाया है वह भी संसार के लिये अनुकरणीय है। "जो काम करे सो खाए, काहिल भूखा मर जाये" इस नवीन सिद्धान्त पर समाज की रचना की गई है। इसी मंत्र का जाप प्रत्येक छोटा बड़ा रूसी बड़े अभिमान से करता है। अविद्या तथा अज्ञान को खदेड़ भगाने का विराट आयोजन आरम्भ कर दिया गया है। ७-८ वर्ष के प्रयत्न से ७५ प्रतिशत पुरुष और ५० प्रति शत स्त्रियां शिक्षित बना दी गई हैं। सैनिकों को भी अशिक्षित नहीं रहने दिया जाता, वरना उन को संसार का इतिहास तथा पूंजीवाद, साम्राज्यवाद इत्यादि का पूरा २ ज्ञान दिया जाता है। मजदूरों के लिए खुले तथा सुन्दर मकान सरकार की ओर से बनवा दिये गये हैं। शिक्षा निश्शुल्क तथा अनिवार्य है। रुग्ण हो जाने पर डाक्टरी चिकित्सा बिना फीस के होती है। अविद्या दारिद्र्य तथा अन्ध विश्वासों का मूलच्छेद करने का प्रयत्न जारी है। धर्माध्यक्षों तथा पादरियों के वचन को प्रमाण मानने के स्थान में जनता बुद्धि तथा तर्क का आश्रय ले रही है। धर्मान्धता तथा अन्धविश्वास फैलाने वालों को कड़ा दण्ड दिया जाता है। स्त्रियों को भी पुरुषों के समान नौकरी, शिक्षाविभाग और सेना के पद, जायदाद, विवाह, तलाक इत्यादि के अधिकार दे दिये गये हैं। प्रकृति ने सब नर नारियों को समान अधिकार देकर उत्पन्न किया है। प्रकृति ने स्वामी तथा सेवक पैदा नहीं किए।

संसार भर में उथल पुथल

रूस के क्रान्तिकारियों के इस प्रोग्राम को देख कर संसार की जनसंख्या के ९८ प्रतिशत किसान, मजदूर तथा श्रमजीवी लोगों के हृदय उछल रहे हैं। पराई कमाई पर आनन्द उड़ाने वाले पूंजीपतियों तथा धनीवर्ग के कान में रूसी बोलशविज़म, साम्यवाद, सोवियट, कार्ल मार्क्स, लैनिन तथा थर्ड इन्टर नैशनल का नाम सुनाई पड़ते ही, उनका मुख पीला पड़ जाता है। साम्यवाद का जन्मदाता रूस नहीं वरन दारिद्र्य तथा धन का अनुचित विषम विभाजन है।

भारत में स्वर्णमुद्रा पद्धति का प्रस्ताव

(एक अर्थशास्त्री एम० ए०)



रतवर्ष में इस समय "गोल्ड एक्सचेञ्ज स्टैंडर्ड" है। अर्थात् भारत के आन्तरिक व्यापार में तो सोना और चांदी दोनों कानूनी माध्यम (legal tender) हैं और भारत के विदेशी व्यापार के लिये केवल सोना ही कानूनी माध्यम है। कोई व्यक्ति अगर कुछ धन भारत से किसी दूसरे देश में भेजना चाहे, तो उस की इच्छानुसार सरकार उसे चांदी की जगह सोना देने को बाधित है। परन्तु आन्तरिक व्यापार में सोना कानूनी माध्यम होते हुवे भी सरकार इस कार्य के लिये सोने की मोहरें देने के लिये बाधित नहीं हैं। इस का परिणाम यह है कि भारतीय सिक्के (रुपये) की विनिमय दर पूरी तरह भारतसचिव के हाथ में रहती है।

सन् १६०७ तक तो यह 'गोल्ड एक्सचेञ्ज स्टैंडर्ड' (Gold Exchange Standard) खूब अच्छा प्रकार चलता रहा। इस में कोई बाधा उत्पन्न न हुई। परन्तु १६०७ में एकदम अचानक चांदी महंगी हो जाने से एक बड़ी क्रान्ति पैदा हो गई। तब यह पद्धति बड़ी कठिनता से फ़ेल होते २ बची। जिस अनुचित उपाय द्वारा उस समय इस पद्धति की रक्षा की गई, विषय के विस्तार के भय से हम उस का वर्णन यहां नहीं करना चाहते। परन्तु गत महायुद्ध के समय तो यह पद्धति सर्वथा असुरक्षित सिद्ध हुई। तब भारत की विनिमय दर (Exchange rate) में बड़े बड़े परिवर्तन आते रहे। चांदी के रुपये का दाम तो अपने अन्दर की १६५ ग्रेन भार वाली असली चांदी की बदौलत १७ आने तक जा पहुँचा। युद्ध समाप्त होने पर एक बार तो रुपये की विनिमय दर २ शि० ६ पै० पर पहुँच गई। और फिर ३ मास के अन्दर ही १ शि० ३ पै० ही रह गई। इन सब बातों का भारतीय व्यापार और वाह्य व्यापार के समतुलन (Balance of Trade) पर बड़ा घातक प्रभाव पड़ा।

इन सब बुराइयों को रोकने का हमारी सम्मति में एक बहुत अच्छा उपाय है। वह यह कि भारत में सोने के सिक्के को ही मुद्रा के रूप में प्रचलित किया जावे। भारत प्रारम्भ से इसी स्वर्णमुद्रा को व्यवहार में लाता रहा है। अब भी इसी पद्धति द्वारा भारतीय मुद्रा-पद्धति को स्थिर किया जा सकेगा।

चाणक्य के 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' में चांदी के पण के इलावा सोने के एक सिक्के का भी वर्णन मिलता है। पञ्चतन्त्र में 'पुराण' नामक एक सोने के सिक्के का वर्णन है। यह सिक्का वज़न में वर्तमान रुपये से कुछ छोटा होता था। पञ्चतन्त्र का लेखक पं० विष्णु शर्मा सम्राट् चन्द्रगुप्त का ही समकालीन है। इसके बाद मुसलमानी काल की सोने की 'मोहर' तो प्रसिद्ध ही है। परन्तु मुसलमानों के अनन्तर जब ईस्टइण्डिया कम्पनी का क़दमे मुबारक भारत में आया, तब सोने के सिक्के को एकदम गैरलीगल टैण्डर क़रार दे दिया गया। सन् १८३५ में जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने वर्तमान चांदी के रुपये को प्रचलित किया, उस समय सोने की मोहर को कानूनी माध्यम नहीं माना गया था। इसके बाद कभी कभी कुछ काल के लिये स्वर्णमुद्रा को कानूनी माध्यम माना भी जाता रहा है। परन्तु १८६८ में जब फाउलर कमेटी भार-

तीय मुद्रा समस्या पर विचार करने के लिये नियुक्त की गई, तब उसने यह सिफ़ारिश की कि "भारत में सोने के सिक्के को ही स्टैण्डर्ड माना जावे। भारत में सोने के सिक्के तैयार करने के लिये एक टकसाल (Mint) खोली जाय।"

भारत सरकार ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। एक आवेदन पत्र द्वारा यह बात तत्कालीन भारत सचिव के पास भेजी गई, परन्तु भारत सचिव इसके लिये तैयार मालूम नहीं होता था। बहुत कहने सुनने पर, एक लम्बे समय के बाद, फाउलर कमेटी की उक्त सिफ़ारिश स्वीकार कर ली गई। भारत में सोने की टकसाल खोलने के लिये बातचीत भी प्रारम्भ हुई। इतने में सन् १९१५ में चैम्बरलेन कमीशन की आयोजना भारत सचिव द्वारा की गई। इस चैम्बरलेन कमीशन ने शीघ्र ही यह सख़्त ताकीद करदी कि "India neither demands, nor requires gold currency" अर्थात् भारत न तो स्वर्णमुद्रा की मांग करता है और न उसको इसकी आवश्यकता ही है। बस, सब काम चौपट हो गया। इसी कमीशन की सिफ़ारिश पर भारत में स्वर्ण विनिमय पद्धति (Gold-exchange-standard) को ही रहने दिया गया। इस पद्धति के हामियों का कहना था कि इस के द्वारा भारतीय विनिमय दर में बहुत कम उतार चढ़ाव आएंगे। पर युद्ध के समय यह बात स्पष्ट साबित हो गई कि यह पद्धति बिलकुल थोदे आधार पर स्थित है। इसके द्वारा भारत के विनिमय दर की बागडोर—बहुत अंश तक–भारत सचिव के हाथ में आई हुई है, अतः यह बात भारत के हितों के सर्वथा ख़िलाफ़ है।

सब अर्थशास्त्रज्ञों का यह एक निश्चित मत है कि अपरिवर्तनीय पत्र मुद्रा (Inconvertible Paper Currency) राष्ट्र के लिये शराब के समान है। भारतीय रुपये में शुद्ध चांदी केवल १२ आने की है और रुपये के रूप में उसकी कीमत १६ आना हो जाती है। नियमानुसार यह रुपया सारे भारत में क़ानूनी माध्यम है। अतः यह चांदी का रुपया भी एक प्रकार से "चांदी पर छपी हुई अपरिवर्तनीय पत्र मुद्रा" (Inconvertible currency printed on silver) है। इसी कारण भारत सरकार लोभ में आकर चांदी के रुपये बहुत बड़ी मात्रा में तैयार करती है। और फिर, अधिक सिक्का तैयार हो जाने पर इन्हें कागज़ के नोटों की तरह वापिस लेना भी सम्भव नहीं है। यह बात भारत की मुद्रा पद्धति पर बहुत बुरा प्रभाव डालती है। इसके लिये यह भी नहीं किया जा सकता कि चांदी के रुपयों में १६ आने की ही चांदी डाली जाय। क्योंकि चांदी के दाम में उतार चढ़ाव बहुत अधिक आते हैं। अतः हमारा दृढ़ विश्वास है कि भारत का भला स्वर्णमुद्रा पद्धति में ही है।

भारत में स्वर्णमुद्रा पद्धति के विरुद्ध ये तीन युक्तियां दी जाती हैं:—

i. भारत में अगर आन्तरिक व्यवहार के लिये भी सोने के सिक्के ही प्रचलित किये जायं तो सरकार को सुरक्षित कोश (reserves) के लिये सोना मिलना कठिन हो जायगा। आर्थिक कठिनाइयों के समय लोग सोना छिपा लेंगे। तब बाज़ार में केवल कागज़ के नोट ही चलने लगेंगे। सरकार सोना न होने से इन नोटों का दाम न चुका सकेगी, तब भारतीय सिक्के की दर कम हो जावेगी। यह बात इङ्गलैण्ड पर नहीं घटती, क्योंकि इङ्गलैण्ड एक उत्तमर्ण (creditor) देश है, उसे विदेशों में सोना भेजने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। परन्तु भारतवर्ष की अवस्था वैसी नहीं।

ii. भारतीय ग़रीब हैं। उनके साधारण पारस्परिक व्यवहार में, दैनिक लेन देन में १५) रु० का सोने का सिक्का काम नहीं दे सकता। भारतीय ग्रामों में बसने वाले लोगों के दैनिक व्यवहार में तो ताम्बे के पैसे और पाइयां ही काम में आती हैं।

iii. भारत में स्वर्ण मुद्रा प्रचलित करने के लिये बहुत से सोने की आवश्यकता होगी। वह मांग कहां से पूरी की जायगी? क्योंकि स्वयं भारत में तो सोना बहुत कम पैदा होता है। जितना निकलता है वह सारे भारत के आन्तरिक व्यापार के लिये सर्वथा अपर्याप्त है।

इन युक्तियों का उत्तर हम इस प्रकार दे सकते हैं—

i. इङ्गलैण्ड की तरह भारत वर्ष भी उत्तमर्ण ही है, अधमर्ण (Debter) नहीं। क्योंकि भारत के बाह्य व्यापार का समतुलन प्रायः प्रतिवर्ष उसके अनुकूल ही रहता है।

ii. एक ओर तो भारतियों पर यह दोष लगाया जाता है कि वे धन को दबाते (hoarding) बहुत हैं। विदेशी लोग कहा करते हैं कि भारत सोने का अथाह कूप है। और दूसरी ओर यह कहना कि सोने का सिक्का भारतीयों के व्यवहार में नहीं आता ये दोनों बातें परस्पर बिलकुल असंगत हैं। भारत में भी बड़े बड़े लेन देन होते हैं। कलकत्ता और बम्बई में केवल धेले और पाइयों ही का लेन देन नहीं होता। भारत में स्वर्ण मुद्रा को कानूनीमाध्यम कर देने का यह अभिप्राय तो नहीं है कि भारत में से—छोटे छोटे लेन देनों के लिये—फुटकर सिक्कों (Token coins) को बिलकुल नष्ट ही कर दिया जाय। इन फुटकर सिक्कों द्वारा लोगों का दैनिक व्यवहार भली प्रकार चलता रहेगा। दूसरे देशों में भी तो यही होता है।

iii. हिसाब लगा कर देखा गया है कि भारतवर्ष को अपने आन्तिरिक व्यापार के लिये लगभग ३०० करोड़ रुपये के मूल्य की स्वर्णमुद्रा चाहिये। इस में से ४० करोड़ रुपयों के मूल्य की स्वर्ण मुद्रा तो आसानी से भारतीय सुरक्षित स्वर्ण-निधि (Gold reserve) से ली जा सकती है। १०० करोड़ पत्रमुद्रा द्वारा किया जा सकता है। इस के अतिरिक्त प्रति वर्ष भारतीय व्यापार के समतुलन से १५ या २० करोड़ रुपये के लगभग की आय इस देश को होती ही है। इस प्रकार बहुत शीघ्र बड़ी सुगमता से भारत के आन्तरिक व्यापार के लिये होने वाली सोने की आवश्यकता को पूरा किया जा सकता है। भारतीय सोने की खानें भी इस में पर्याप्त सहायता पहुँचायेंगी।

इस के अतिरिक्त स्वर्ण मुद्रा पद्धति के पक्ष में हम ये युक्तियां दे सकते हैं—

क. सोने का सिक्का चांदी के सिक्के की अपेक्षा कम भार में अधिक दाम वाला होने से सरलता से उठाने योग्य (portable) है।

ख. वर्तमान संसार, स्वर्ण-निधि द्वारा पुष्ट (backed by gold reserve) पत्र मुद्रा (paper currency) को आदर्श मुद्रा पद्धति मानता है। अतः भारत वर्ष में सोने के सिक्के चलाना इस देश को आदर्श मुद्रा पद्धति के निकट ले जाना है।

ग. स्वर्ण-मुद्रा पद्धति द्वारा व्यापारिक जातियों में भारत का प्रभाव अब की अपेक्षा अधिक बढ़ सकेगा; क्योंकि चांदी का सिक्का कुछ कम उन्नत अवस्था का चिन्ह है।

घ. साधारण लेन देन (circulation) में सोने की अधिकता का होना विनिमय के लिये एक सर्वोत्तम आधार है।

ङ. लगातार प्रति वर्ष चांदी के सिक्कों की संख्या बढ़ाते जाना, चांदी के मूल्य की अपेक्षाकृत अस्थिरता की दृष्टि से, विपत्तिजनक सिद्ध हो सकता है। इसका उपाय यही है कि अब भविष्य में सोने की मोहरें ही ढाली जाया करें।

च. जब तक भारत में स्वर्ण मुद्रा प्रचलित नहीं की जायगी, तब तक यहां एक नकली और ज़बरदस्ती कायम की गई मुद्रा (Artificial and managed currency)—चांदीका रुपया—ही जारी रहेगी।

छ. संसार में इस समय सोना बहुत बढ़ रहा है। इस कारण संसार भर में वस्तुओं के दाम भी बढ़ रहे हैं, अर्थात् सोना सस्ता हो रहा है। अगर भारत के आन्तरिक व्यापार के लिये स्वर्णमुद्रा को प्रचलित किया जाय तो बाकी संसार से यहां सोना आएगा और उसके द्वारा सोना और अधिक सस्ता होने से रुकेगा। यह बात अन्तर्जातीय आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्व की है।

भारतवासी अभी तक बहुत मात्रा में शिक्षित नहीं हुवे। अतः पत्र मुद्रा का यहां अभी तक पर्याप्त प्रचार नहीं हो सका है। यहां तक कि अनेक स्थानों में, फसल की मौसम में, किसान और ज़मींदार लोग तो पत्रमुद्रा (करैन्सी नोट) को लेने से इन्कार तक कर देते हैं। अतः व्यापारियों को उन के पास बहुत से चांदी के रुपये उठा कर लेजाने पड़ते हैं। यह कार्य कष्टसाध्य हो जाता है। अगर यहां सोने के सिक्के चला दिये जांय तो इस से यह दिक्कत दूर हो सकती है। हम पहले ही कह चुके हैं कि हमारे चांदी के रुपये एक प्रकार से "चांदी के कागज़ पर लिखी हुई अपरिवर्तनशील पत्रमुद्रा" मात्र हैं। हम अगर चाहें कि हमें रुपयों के बदले में मोहरें दी जांय, तो सरकार ऐसा करने के लिये आजकल बाधित नहीं है। वास्तव में दूसरे देशों की तरह हमारे यहां भी वही सिक्का चलना चाहिये जो कि भली प्रकार परिवर्तन शील हो।

अन्त में एक बात टकसालों (mints) के संबन्ध में कह कर हम इस विषय को समाप्त करते हैं। सन् १९१८ में अपने स्वार्थ से भारत सचिव ने भारत में भी 'शाही टकसाल' की एक शाखा खोली थी, जो शीघ्र ही बन्द कर दी गई। कुछ लोगों का ख्याल है कि भारत में सोने की टकसाल चलाने लायक कारीगर ही नहीं मिलते। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि यह बात सर्वथा निराधार है। अगर मान भी लिया जाय कि कुछ समय तक भारतीय कारीगर नहीं मिलेंगे, तो अंग्रेज़ी कारीगर तो कहीं नहीं गए। उन्हीं को बुला कर, तब तक काम चलाया जा सकता है। इस के बाद भारतीय भी इस काम के लिये मिलने प्रारम्भ हो जांयगे। अतः भारत के आन्तरिक व्यापार में शीघ्र ही स्वर्ण मुद्रा को जारी कर के उस के लिये टकसालें भी इसी देश में खोलनी चाहियें।

खांसी

(लेखक—सत्यपाल जी)



सी एक ऐसा रोग है जो ज़ोर पकड़ने पर अनर्थ भी कर सकता है और साधारण अवस्था में उपेक्ष्य भी कहा जा सकता है। अंग्रेज़ी में इस का नाम (Bronchitis) है। और इस का व्यावहारिक नाम (cough) भी है। प्रत्येक रोग की तरह खांसी के भी मुख्य दो भेद हैं। प्रथम (Acute Bronchitis) और दूसरा (Chronic Bronchitis)

Acute Bronchitis उस खांसी को कहते हैं जो सहसा उत्पन्न हो जाय। जैसे, बड़े तड़के, जंगल में, खूब अन्धेरे में पास ही लोटा रख कर आदमी बैठे ही कि उस को सामने से आते हुए किसी आदमी की पद-ध्वनि सुनाई पड़ जाय और वह बेचारा निस्सहाय हो कर खांसने लगे। उस गहन अंधकार में जहां प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण दोनों ही बेकाम हो जाते हैं, इस खांसी का "आगम" ही काम करता है। इस लिए बौद्धों ने आगम प्रमाण को न मान कर जो भूल की है, उसका कारण हम उन की अनुभव शून्यता ही समझते हैं। इस Acute Cough अर्थात् सहसा उत्पन्न हो जाने वाली खांसी को समझाने के लिए हम कई उदाहरण और भी दे सकते हैं।

क्लास में बैठे हुवे भीषणाकृति मास्टर से जब पढ़ाते २ कोई भूल हो जाये या उस के मुखारविन्द से कोई शब्द अशुद्ध प्रस्फुटित हो पड़े तब जो खांसी एक २ कर के छूत रोग की तरह लड़कों को हो जाती है उस को भी Acute Cough कहते हैं। इस खांसी के Symptoms और इलाज क्या हैं, इस का वर्णन हम एक अलग निबन्ध में फिर कभी करेंगे; यहां पर तो हर एक खांसी के केवल कारण ही बता कर हम उस का साधारण परिज्ञान कराते जायेंगे। हमने सब से प्रथम खांसी के दो मुख्य २ भेद बताये हैं जिन के अन्दर सभी प्रकार की खांसियां समाविष्ट हो सकती हैं। उन्हीं अन्तर्गत प्रकारों में एक खांसी का नाम Whooping Cough है। यह खांसी बड़ी भयंकर और दुख देने वाली होती है; इस को लोग कुत्ता खांसी के नाम से भी पुकारते हैं।

जनक की धर्म सभा में जब अष्टावक्र जी महाराज पधारे तब शाप के भय से किसी को हंसने की सामर्थ्य तो न रही परन्तु उन के टेढ़े २ अंगों को देख कर ऋषियों में जो एक खांसी उठ खड़ी हुई, उस का नाम Whooping Cough है।

एक बार एक पंडितों की सभा लग रही थी। बड़ी दूर २ से पंडित लोग पधारे थे। इतने में एक स्खलित-दन्त पंडित अपने खल्वाट प्रदेश को अंगोछे से अच्छी तरह अवच्छिन्न करके धीरे २ अन्दर आए। उनके आते ही पंडितों में एक खासी खांसी उठ खड़ी हुई। वे भी औरों के साथ आकर विचार-विनिमय करने बैठ गये। थोड़ी ही देर गुज़री होगी कि उहोंने "पुंसु" के स्थान 'पुंक्षु' ऐसा उच्चारण कर दिया। इस में उन का भी कोई दोष न था। उन की दन्तपंक्ति कोई दीवार की तरह आगे तो खड़ी न थी कि साथ निकलते हुए खकरा

को वे रोक पाते। वृद्ध आदमी थे, इसी लिए कोई पंडित हँस भी न सका मगर एक २ कर के नीचे ही नीचे मुख किये बेतहाशा खाँसने लगे। इसी प्रकार की बेतहाशा खांसी को Whooping cough कहते हैं। मगर हमने पहिले ही कह दिया है कि यह खांसी बड़ी भयंकर वस्तु है, उन्होंने जब चारों तरफ़ सब पंडितों को खांसते देखा तो वे उस खांसी का निदान झट समझ गये। घर आकर, सारी रात जाग कर एक पुस्तक लिखी, नाम रखा सारस्वत चन्द्रिका। दूसरे दिन आते ही उन्होंने पंडितों को 'हंहो पंडितम्मन्याः" इस प्रकार ललकार कर उस सारस्वत व्याकरण में से पुंक्षु रूप की सिद्धि दिखाई।

पंडितों को भी मानना पड़ा क्यों कि उस समय पुस्तकें हस्तलिखित ही मिलती थीं, प्रेस थे ही नहीं।

इस Whooping cough से कभी २ देश के देश तबाह होते देखे गए हैं।

मय ने बड़े परिश्रम से एक ऐसा भवन बनाया जिस में जल के स्थान पर स्थल और स्थल के स्थान पर जल की प्रतीति होती थी और साथ ही खुला दरवाज़ा बन्द और बन्द दरवाज़ा खुला हुआ मालूम होता था।

बड़े २ महाराजा देखने आए।

द्रौपदी उच्च भवन के एक ऊंचे गवाक्ष में से भवन की रमणीयता निहार रही थी।

इतने में देखा, महाराजा दुर्योधन स्थल पर जल की भ्रान्ति से धोती ऊपर उठाये चले जा रहे हैं। बार २ गिर पड़ कर वे बहुत दिक आगये थे, इसी लिए ज्यों ही तेज़ी से एक दरवाज़े में से निकलने लगे, ठोकर खा कर गिर पड़े।

उस समय द्रौपदी और भीम आदि के जो Whooping cough उठ खड़ी हुई, उस ने विकराल रूप धारण कर के १८ अक्षौहिणी सेनाओं का कुछ ही दिनों में विनाश कर दिया।

एक और भी खांसी होती है जिसको हम मौसमी खांसीके नाम से पुकार सकते हैं।

शहर के बाहर तांगों का और साथ ही मानो गुंडों का भी एक अड्डा था।

एक हिन्दू रमणी ने तांगा किया। तांगे वाले ने तांगा चलाने से पहिले बस मामूली खांस सा दिया।

पास ही एक लंगोटीबन्द बाबा बैठा था, उस के भी खांसी हो उठी और वह एक तांगा कर के पीछे २ हो लिया।

गहन वन के भीतर दोनों तांगे खड़े हो गये और उस हिन्दू रमणी को अपने अदृष्ट फल के अनुसार पूर्वजन्मों के सञ्चित पापों का फल बड़ी क्रूरता से एक साथ भोगना पड़ा।

इसी लिए इस मौसमी खांसी से सदा बच कर रहना चाहिए। जहां इस प्रकार की खांसी दीखे, वहां अपने पथ्यापथ्य तथा कर्तव्याकर्तव्य का खूब विचार करके फूंक फूंक कर चलना चाहिए।

एक आदमी अपने ऊंचे और धार्मिक विचारों के कारण बड़ा प्रसिद्ध था।

व्याख्यान देता तो लोग वाह वाह करते, बाज़ार से निकलता तो लोग झुक २ कर सलाम करते।

सांझ का समय था। बड़े बाज़ार के कोने में नीचे शराब और ऊपर रूप की दूकानें थीं। लोगों ने देखा, वही महशूर पंडित धोती का पल्ला हाथ में लिए, चद्दर से मुख को खूब छिपाये उसी तरफ़

तेज़ी से चला जा रहा है। दोनों ओर के दूकानदारों में पहले कुछ इशारेबाज़ी हुई और फिर एक के बाद एक को खांसी उठ खड़ी हुई।

कुछ दिनों बाद वह जिधर से निकलता, लोग सलाम करने के बजाय ज़ोर २ से खांसने लगते। आख़िर उस बेचारे को इसी खांसी के कारण पहले उस बाज़ार का और फिर धीरे २ बहुत से बाज़ारों का रास्ता ही छोड़ देना पड़ा।

परन्तु यदि गम्भीर दृष्टि से विचार किया जाय तो प्रत्येक रोग की तरह खांसी कभी कभी कुछ लाभप्रद भी होती है।

व्याख्यान देते समय जब अनभ्यस्त व्याख्याता कुछ अटक जाये तो थोड़ा खांस लेने से फिर मज़े से प्रारम्भ कर सकता है।

सभापति चुने जाने पर कुरसी पर बैठने से पहले ज़रा खांस लेना तो शान ही है।

सांझ का समय हो। थका मांदा पुरुष घर के दरवाज़े पर आकर जब अन्दर प्रवेश करने लगे तो उस समय बस ज़रा खांस सा लिया जावे तो आदमी सभ्य समझा जाता है।

एक दिन हमारे कूचे में उस थले पर बहुत सी स्त्रियां बैठी थीं। कोई चरखा कात रही थी, कोई सब्ज़ी काट रही थी और कोई दुनियां की असारता पर अपने २ विचार प्रकट कर रही थी। मैं उस समय बच्चा था, मुझे याद है कि मैं वहीं सुन रहा था।

इतने में हमारे पास वाले घर के स्वामी वहां आए और उन स्त्रियों के पास से गुज़रते हुए अपने घर में चले गये। स्त्रियां बड़ी संकुचित हो उठीं।

किसी २ ने सुना कर कहा—"देखो ना' कैसे हैं, ज़रा बाहर से खांस भी न दिया, एक दम से आ धमके"।

पास की एक बड़ी बूढ़ी स्त्री ने नाक पर उंगली धर कर कहा—कौदुन हैं कौदुन।

तीसरी ने कहा—"इतना शऊर तो बच्चों में भी होता है"।

मतलब यह कि खांसी कई बार सभ्यता और शऊर की परिचायक होती है।

बड़े २ आदमियों में तो खांसी फ़ैशन ही है। वे किसी वाक्य को शुरु करने से पहिले जब अपने हस्तारविन्द को गोल गोल कर के मुखारविन्द पर रखते हैं और खांस २ कर बात करते हैं तो सुनने वाले पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है।

ऐसी खांसी को जो बड़े २ आदमियों को सदा ही रहती है, chronic cough कहते हैं। यों तो खांसी के बहुत से भेद हैं पर हमने यहां मुख्य २ भेदों का ही वर्णन किया है।

इस के बाद हम फिर किसी निबन्ध में इस का विस्तृत विचार भी करेंगे।

जी० आई० पी० रेलवे के हड़तालियों का गान।

हो जाये मतलब सभी, गर कर दो हड़ताल।
इकदम से कह दें सभी, कर तो दिया कमाल ॥
इक गाडी खड़ी लूप[1] में हो, इक सिगनल पर चिल्लाती हो।
टेशन पर टिकिट नहीं मिलता, पबलिक यह शोर मचाती हो॥
कोई खड़ा खड़ा कहता होवे, बाबू लगेज[2] बुक कर दीजे।
तो लगेज बाबू कह देवें बस आज की माफी दे दीजै॥
सब लीवर मैंन और केबिन मैंन, जब सिगनल नहीं झुकायेंगे।
तो कहो—ड्राइवर क्या आगे सिगनल को तोड़ कर जाएंगे?॥
भाजीपाला जब बाहर से बम्बई में नहीं गर आयेगा।
तो कांदे[3] और बटाटे[4] का इकदम से भाव बढ़ जायेगा॥
आखिरश कमी जब आवेगी तरकारी बन्द हो जावेगी।
तो बड़े बड़े साहब लोगों की सिगड़ी मन्द हो जावेगी॥
जब सुबह हमारे साहब लोग नौकर से चाय मंगायेंगे।
बाज़ार में दूध नहीं मिलता झट से जवाब यह पायेंगे।
दफ्तर भी बन्द हो जायेंगे कल्याण[5] की फास्ट न आने से।
हो जायेंगे दफ्तर वाले लाचार एक दम जाने से॥
आकर के प्लैटफार्मों पर इस्कालर धूम मचाएंगे।
कंधे पे दूध रखे ठाढ़े भईया भी शोर मचायेंगे॥
जब बम्बई से दिल्ली तक के भाई सब एक हो जायेंगे।
अरु रायचूर[6] कल्याण तक के भाई मदद पहुंचायेंगे॥
तब तो कुछ शक दीखता ही नहीं हड़ताल रेल की होने में।
तो फिर सब हक्क मिल जायेंगे मिल गया सुहागा सोने में॥
गर प्यारे सब मज़दूर लोग यह करने से घबड़ाओगे?।
तो कब तक अपने कुटुम सहित सब आधी रोटी खाओगे?॥
पोटर झंडियां दिखाना मत ड्राइवर तुम ट्रेन चलाना मत।
गर स्टेशन मास्टर धमकायें उसकी भी धौंस में आना मत॥
हुशियार यार हड़ताल करो भाई को भाई प्यार करो।
दौलत का किला तोड़ने को हड़ताल खरा हथियार करो॥
जब तक हड़ताल नहीं करते तब तक एजन्ट नहीं सुनते।
उनको कुछ आपका ख्याल नहीं वो रहते हैं अपनी धुनते॥

—रेलवेमैन

१. स्टेशन पर मुख्य लाइन के अतिरिक्त लाइन. २. सामान ३. प्याज ४. आलू ५. बम्बई का एक उपनगर. ६. एक स्टेशन॥

आयुर्वेदोक्त शरीर

(ले०—कविराज वैद्यभूषण पं० सत्यदेव जी विद्यालंकार)

शरीरं सर्वथा सर्वं सर्वदा वेद यो भिषक्।
आयुर्वेदं स कात्स्न्येन वेद लोकसुखप्रदम्॥

चरक

शोधयित्वा मृतं सम्यग् द्रष्टव्योऽङ्गविनिश्चयः॥

सुश्रुत

शरीरविज्ञान आयुर्वेद की जान है। इसके बिना सारा शास्त्र निर्जीव और मुर्दा है। जिस प्रकार भाषा का ज्ञान व्याकरण और लौकिक अर्थों का ज्ञान तर्क से होता है उसी प्रकार चिकित्सा का मुख्य साधन शरीरविज्ञान है। केवल शल्य-तंत्र में ही इसका उपयोग हो ऐसी बात नहीं; अपितु, कायचिकित्सा भी इसके बिना अवैज्ञानिक ही रहती है। कहा जा सकता है, कि कायचिकित्सा के लिये केवल वात, पित्त, और कफ का पूर्ण परिचय ही बस होगा; उसमें शरीरविज्ञान की क्या आवश्यकता? इस शंका का कारण शरीर-विज्ञान का प्रचलित नवीन रूप है। ऋषियों ने सूक्ष्म दृष्टि से इसको जाना था कि केवल स्थूल मांस हड्डी आदि का ज्ञान शरीरविज्ञान नहीं है; शरीर का ज्ञान, स्थूल मांस हड्डी आदि के कारण सूक्ष्म शक्तियों के ज्ञान से ही हो सकता है—अन्यथा नहीं। एक शब्द में वात, पित्त, कफ का ज्ञान ही वास्तविक शरीरविज्ञान है। परन्तु इतने ही से शरीरविज्ञान पूरा नहीं होजाता। वात, पित्त, और कफ शरीर के कारण हैं—शरीर की धारक शक्तियां हैं—इन ही के कारण सब प्रकार की चेष्टाएं होती हैं; तथापि इन के कार्यभूत रक्त आदि धातुओं का ज्ञान भी सुतरां आवश्यक है। इसके बिना वातादि का भी ठीक २ ज्ञान नहीं हो सकता तो रोग ज्ञान का तो कहना ही क्या है! यही कारण है कि सुश्रुतादि शास्त्रों में शारीरस्थान में पंच महाभूतों से शरीर की उत्पत्ति, वात पित्त कफादि का स्वरूप इत्यादि का विवेचन करके आशय, धातु और नाडी आदि का भी विचार किया गया है। किंच रोगविनिश्चय में रूप और सम्प्राप्ति ही दो मुख्य साधन हैं। सम्प्राप्ति का मुख्य आधार शरीर-विज्ञान है। इस लिये कायचिकित्सा के लिये भी शरीरविज्ञान सुतरां आवश्यक है। अन्यथा—

मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः।
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः॥
भूयः स दूषितो वन्हिर्ग्रहणीमभिदूषयेत्॥

—इत्यादि स्थलों पर आमाशयादि के ज्ञान के बिना कोई चिकित्सा कैसे कर सकता है।

पाठक! आप पूछेंगे कि यदि शरीरविज्ञान ऐसा ही उपयोगी अंग है कि इसके बिना आयुर्वेद अन्धा हो जाता है—निर्जीव हो जाता है तो ऋषि प्रणीत चरक सुश्रुतादि ग्रन्थों में इसका विस्तार क्यों नहीं मिलता? उन में एतद्विषयक इतनी भ्रमात्मक कल्पनाएं क्यों हैं? यदि आप इस बात के मर्म को समझना चाहते हैं तो आइये कुछ भारतवर्ष के इतिहास का अनुशीलन करें—कुछ अपनी सभ्यता की विशेषता की आलोचना करें।

यदि हम प्राचीन साहित्य की आलोचना, आर्यलोगों के जीवनोद्देश्य को दृष्टि में रख कर करें तो पहिले प्रश्न का उत्तर स्वयं मिल जाता है। भारतवर्ष का उद्देश्य "किमहं तेन कुर्यां येन नामृतः स्याम्" बृहदारण्यक उपनिषद् के इन शब्दों से सब से अच्छा प्रतीत होता है। प्राचीन काल

कौशल, साहित्य और युद्ध इत्यादि सभी प्रवृत्तियां एक ही उद्देश्य से होती थीं और वह उद्देश्य अमृतत्व वा मोक्ष था। जो प्रवृत्ति वा क्रिया मोक्ष में सहायक न होती थी वह निरर्थक समझी जाती थी। यही कारण है कि प्राचीन कला-कौशल तक में भी आध्यात्मिकता ही टपकती है। आयुर्वेद में भी स्थान २ पर आध्यात्मिक तत्वों का उपदेश पाया जाता है। चरक के शारीरस्थान में जो आध्यात्मिक उपदेश है वह किसी भी आध्यात्मिकशास्त्र से कम नहीं है। आयुर्वेद ने भी आध्यात्मिक-शासन को स्वीकार किया। आध्यात्मिक शास्त्रों की सामान्य प्रवृत्ति सारे विश्व में और फिर सम्पूर्ण विश्व और मनुष्य में एकता प्रतिपादन की ओर होती है। इस प्रवृत्ति के कारण शास्त्र उन सूक्ष्म और व्यापक तत्त्वों और सिद्धान्तों का अनुसंधान कर लेता है जिन में कि सम्पूर्ण विश्व समा जावे—जिन से कि इस विश्व रूपी पहेली का रहस्य खुल जावे। इस अनुसंधान में ऋषियों ने वेद से पता लगाया कि जहां विश्व के मूल और अनादि कारण ईश्वर और प्रकृति हैं वहां इस संसार में केवल आग्नेय और सौम्य दो ही प्रकार के तत्व हैं। इस के अतिरिक्त वेद और तदाश्रित सांख्यशास्त्र से इस विश्व के कारण पांच महाभूतों का भी पता लगाया। आयुर्वेद ने इन दोनों सिद्धान्तों को अपनाया और कहा कि—

नानात्मकमपि द्रव्यमग्नीषोमौ महाबलौ।
व्यक्ताव्यक्तं जगदिव नातिक्रामति जातुचित्॥

वाग्भट्ट.

तन्मयान्येव भूतानि तद्गुणान्येव चादिशेत्।
तेषु तल्लक्षणः कृत्स्नो भूतग्रामो व्यजायत॥
तस्योपयोगोऽभिहितश्चिकित्सां प्रति सर्वदा।
भूतेभ्यो हि परं यस्मान्नास्ति चिन्ता चिकित्सिते॥

सुश्रुत शारीर, अ. १.

बस अध्यात्मशास्त्र के ये ही दो सिद्धान्त आयुर्वेद के शरीरविज्ञान और चिकित्सा के आधार हैं इन दो सिद्धान्तों से आयुर्वेद ने त्रिदोष का सिद्धान्त निकाला और इसकी नींव पर चिकित्साशास्त्र के महल को खड़ा किया। आयुर्वेदोक्त शरीर को देखने से शरीरविज्ञान के सूक्ष्म और स्थूल दो भेद बिलकुल स्पष्ट दीखते हैं। सूक्ष्मशरीरविज्ञान, जिस की ओर हमने अभी संकेत किया है, अध्यात्मशास्त्र की ही उपज है। क्योंकि अध्यात्मशास्त्र ही आर्यों की दृष्टि में मुख्य था इस लिये उस में सहायक इस सूक्ष्मशरीरविज्ञान का भी खूब प्रपञ्च हुवा। यही विज्ञान उनको सत्य और वास्तविक प्रतीत होता था। देवता लोगों को परोक्ष वस्तु स्वभाव से ही प्रिय लगती है "परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः"। इत्यादि कारणों से उन्होंने इसही की विशेष उन्नति की। किन्तु दूरदर्शी ऋषि स्थूलशरीरविज्ञान (जिस का कि प्रपञ्च आजकल पश्चिम में विशेष रूप से हो रहा है) की आवश्यकता से भी अनभिज्ञ न थे। इस लिये सूक्ष्मशरीरविज्ञान के आधार पर स्थूलशरीरविज्ञान का भी आवश्यक वर्णन उन्हों ने कर दिया। किन्तु ऐसा करते हुए भी उन की आंखों से मनुष्य जीवन का उद्देश्य ओझल न होता था। वे जानते थे कि यदि हम स्थूलशरीरविज्ञान के व्यर्थ प्रपञ्च में फंस जाएंगें तो बहुत समय इस ही में नष्ट हो जायगा और हमारे मनुष्य जीवन का उद्देश्य पूरा न होगा। किन्तु स्थूलशरीरविज्ञान के प्रपञ्च के बिना शल्य कर्म असम्भव है इस बात को ध्यान में रख कर शवच्छेद के द्वारा शिष्य को प्रत्यक्ष ज्ञान देकर उन के समय को बचाते थे। शाब्दज्ञान के लिये समय की अत्यन्त अपेक्षा है। आज हमारे दो साल का लम्बा समय

केवल स्थूलशरीरविज्ञान के परिचय में ही लग जाता है। इस कारण ऋषियों ने स्थूलशरीरविज्ञान विषयक संक्षिप्त नोट ही ग्रन्थों में वा शब्दों में देना पर्याप्त समझा। इस प्रकार भारतवर्ष के आध्यात्मिक वायुमण्डल का आयुर्वेदोक्त शरीरविज्ञान पर बड़ा प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव अच्छा था या बुरा इस विषय में दृष्टिभेद से मतभेद हो सकता है; किन्तु जिन्होंने सूक्ष्मशरीरविज्ञान की गहराई में जाने की कुछ भी कोशिश की है—जिन्हों ने मनुष्य जीवन पर कभी भी गम्भीरता और आस्तिक बुद्धि से विचार किया है—वे ऋषियों के प्रति कृतज्ञ हुए बिना नहीं रह सकते—उनकी प्रखर बुद्धि पर आश्चर्य किये बिना नहीं रह सकते। अस्तु।

दूसरा प्रश्न हमारे सामने यह था कि ऋषि प्रणीत चरक सुश्रुतादि ग्रन्थों में स्थूल शरीर विज्ञान विषयक इतनी भ्रमात्मक कल्पनाएं क्यों पाई जाती हैं?

भारतीय साहित्य से कुछ भी परिचय रखने वालों के लिये यह प्रश्न भी कुछ कठिन नहीं है। यदि हम बहुत अधिक दार्शनिक विचार में न जावें तो लौकिक बुद्धि को कोई भी बात समझाने के लिये उपमान प्रमाण, सादृश्यज्ञान या symbolism ही सर्वोत्तम साधन है। आंखों से दीखती वस्तु का ज्ञान भी हमें इसी प्रमाण से होता है वृक्ष जाति के एक अंग को देख कर तत्सदृश अन्य अंग में वृक्ष बुद्धि का होना उपमान प्रमाण है। संस्कृत-साहित्य में किसी भी बात को समझाने के लिये इसी प्रमाण का बहुधा आश्रय लिया गया है। अप्रत्यक्ष ईश्वरादि पदार्थों को भी समझाने के लिये इसी साधन का आश्रय लिया गया है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि उस वस्तु का वर्णन बहुत थोड़ा किया जाता है; केवल तत्सदृश वस्तु से ही उस का ज्ञान करा दिया जाता है। इस का प्रभाव न केवल आयुर्वेदोक्त शरीर के संक्षिप्त होने पर पड़ा अपितु इसके दूषित हो जाने पर भ्रमात्मक कल्पनाओं पर भी बड़ा प्रभाव हुवा। उदाहरण के लिये, हृदय शब्द के साथ कमल शब्द बहुधा आता है जो कि हृदय की आकृति का बोधक है। हृदय का आकार बन्द कमल के समान होता है इतना कह देने ही से हृदय के आकार आदि का ज्ञान दे दिया जाता था; उसके किनारों (Borders) आदि का विस्तृत वर्णन न किया जाता था। इससे पढ़ने वालों का ज्ञान जहां प्रत्यक्ष पर आश्रित होने से निर्भ्रान्त होता था वहां स्मृति पर भी व्यर्थ भार न पड़ता था। परन्तु धीरे २ समय बदलता गया। वह पुरानी गुरुशिष्य परम्परा उड़ती गई। जिसके कारण उपमान प्रमाण दूषित होगया। उपमान और उपमेय को एक किया जाने गया। जिस से कि—

"एवं रसमलायान्नमाशयस्थमधः स्थितः।
पचत्यग्निर्यथा स्थाल्यामोदनायाम्बुतण्डुलम्॥"

इत्यादि उपमानों से यह सचमुच समझा जाने लगा कि पेट के अन्दर वास्तव में ही कोई भट्टी जल रही है जिस से कि रोटी पचा करती है। इसी प्रकार "दक्षायमानसंक्रुद्धरुद्रनिःश्वाससंभवः" इत्यादि से सचमुच दक्षादि व्यक्तिविशेषों का ग्रहण होने लगा।

पुराणों ने भी इस उपमान प्रमाण वा symbolism का आश्रय लिया और इससे भी वही दोष हुए जो हमने ऊपर दिखलाए हैं। भारतवर्ष में प्रचलित मूर्तिपूजा की जननी भी यही symbolism है। इस प्रकार गुरुशिष्य प्रथा के लोप से उपमान प्रमाण दूषित होकर मिथ्यार्थ और अयु-

थार्थ के प्रचार में साधन बना । लेकिन इस से उपमान प्रमाण के महत्व में कोई अन्तर नहीं आता। यह दोष हम इन्हीं को दे सकते हैं जिन्होंने कि इसका दुरुपयोग किया। क्योंकि हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि शिष्यों को समझाने तथा याद कराने के लिये इस से उत्तम उपाय दूसरा कोई नहीं है।

इस दूषित उपमान प्रमाण से भी इतना अनर्थ न होता यदि आर्यावर्त पर क्रूरग्रहों की दृष्टि न होती। ईसा से ३२७ वर्ष पूर्व से यह पुण्य आर्यभूमि म्लेच्छों के पैरों से रौंदी जाने लगी थी। ग्रीक, शक, हूण तथा यवन जातियों के हमलों से भारत का निःस्तब्ध वायुमण्डल भी विक्षुब्ध हो चुका था। सिकन्दर, मिनान्दर, महमूद गज़नवी तथा तैमूरलंग के विश्वध्वंसी हमलों के डर से शांति-देवी भारत से विदा हो चुकी थी। ऐसी अवस्था में गुरुशिष्य प्रथा का ठीक रहना कब संभव था? विज्ञान की उन्नति तथा सुरक्षा की सुध किसको हो सकती थी? सौभाग्य से ब्राह्मणों ने उस समय अपने प्राचीन साहित्य की रक्षा के लिये बड़ा सराहनीय काम किया; उन्हों ने अनेक ग्रन्थ कण्ठस्थ कर लिये जिससे कि काग़ज़ पत्रों के जल जाने पर भी प्राचीन साहित्य के अवशेष हमें अब भी मिलते हैं। लेकिन वे याद भी कितना कर सकते थे? कई पुस्तकालय तो यवनों ने बिलकुल राख कर दिये। इतिहास की इन साक्षियों पर हमें मानना पड़ता है कि भारत का बहुत सारा साहित्य इन आक्रमणों में नष्ट होगया। जो चरक और सुश्रुत संहिताएं हमें आजकल उपलब्ध होती हैं वे भी वास्तविक नहीं हैं—इनका भी पीछे से ही संग्रह किया गया है। अग्निवेश संहिता का संग्रह चरक वा पतञ्जलि मुनि ने किया है जैसा कि अध्याय की समाप्ति पर, "इत्यग्निवेशकृते तंत्रे चरकप्रतिसंस्कृते" इत्यादि पाठ से स्पष्ट सिद्ध होता है। अग्निवेशसंहिता चक्रपाणि, श्रीकण्ठ, तथा शिवदासादि के समय भी मिलती थी क्योंकि वे स्थान २ पर उसके उद्धरण देते हैं। परन्तु वे उद्धृत श्लोक भी वर्तमान चरक संहिता में नहीं पाए जाते। किंच दृढ़बल नामक पण्डित ने लिखा है कि—

"अस्मिन् सप्तदशाध्यायाः कल्पाः सिद्धय एव च।
नासाद्यन्तेऽग्निवेशस्य तंत्रे चरकसंस्कृते॥
तानेतान् कापिलबलिः शेषान् दृढ़बलोऽकरोत्।
तंत्रस्यास्य महार्थस्य पूरणार्थं यथायथम्॥'

दृढ़बल के इन शब्दों से स्पष्ट है कि अग्निवेश संहिता का धीरे २ लोप होता गया और समय २ पर पण्डितों ने उसकी पूर्ति की।

इसी प्रकार सुश्रुतसंहिता भी सौश्रुत तंत्र का संग्रह रूप है किन्तु उस में वृद्ध सुश्रुत के बहुत सारे हिस्से नहीं मिलते जैसा कि टीकाकारों के वृद्ध सुश्रुत के उद्धरणों को देने से पता लगता है।

सुश्रुत की टीकाओं से पता लगता है कि प्राचीन समय में १ औपधेनव, २ औरभतंत्र, ३ सौश्रुततंत्र, ४ पौष्कलावत तंत्र, ५ वैतरण तंत्र, ६ भोजतन्त्र, ७ करवीर्यतंत्र, ८ गोपुररक्षिततंत्र, ९ भालुकितंत्र, १० कापिलतंत्र और ११ गौतमतंत्र ये ग्यारह शरीरविज्ञान पर ग्रन्थ मिलते थे जिन में से अब केवल सुश्रुत ही अवशिष्ट है और वह भी बिलकुल जीर्ण है

इस ही उथल-पुथल के समय ग्रन्थों के शुद्ध पाठ नष्ट होगए और उन के स्थान में अशुद्ध पाठों का प्रक्षेप होगया। उदाहरण के लिये हम निर्णय सागर में छपी उल्हणाचार्य की टीका वाली सुश्रुतसंहिता और कलकत्ते में छपी श्रीहाराणचंद्र की टीका वाली सुश्रुतसंहिता को पेश करते हैं।

एक ही ग्रन्थ की दो भिन्न २ प्रतियों में किस प्रकार अराजकता के कारण पाठ भिन्न होगया है वह निम्न पाठ से पता लगेगा।"

निर्णय सागर में छपी उल्हण की टीका वाली सुश्रुतसंहिता में अस्थियों की परिगणना इस प्रकार की गई है।

"त्रीणि सषष्ठान्यस्थिशतानि वेदवादिनो भाषन्ते; शल्यतंत्रे तु त्रीण्येव शतानि। तेषां सविंशमस्थिशतं शाखासु, सप्तदशोत्तरं शतं श्रोणिपार्श्वपृष्ठोदरोरःसु, ग्रीवां प्रत्यूर्ध्वं त्रिषष्टिः, एवमस्थ्नां त्रीणिशतानि पूर्यन्ते ॥'

'एकैकस्यां तु पादाङ्गुल्यां त्रीणि त्रीणि तानि पञ्चदश, तलकूर्चगुल्फसंश्रितानि दश, पार्ष्ण्यामेकं, जङ्घायां द्वे, जान्वेकं, एकमूराविति त्रिंशदेवमेकस्मिन् सक्थ्नि भवन्ति, एतेनेतरसक्थिबाहू च व्याख्यातौ; श्रोण्यां पञ्च, तेषां गुदभगनितम्बेषु चत्वारि त्रिकसंश्रितमेकम्। पार्श्वे षट्त्रिंशदेकस्मिन्, द्वितीयेऽप्येवम् । पृष्ठे त्रिंशत्, अष्टावुरसि, द्वे अक्षकसंज्ञे; ग्रीवायां नव, कण्ठनाड्यां चत्वारि, द्वे हन्वोः, दन्ता द्वात्रिंशत, नासायां त्रीणि, एकं तालुनि, गण्डकर्णशङ्खेष्वेकैकम्, षट् शिरसीति॥"

कलकत्ते में छपी श्री हाराण की टीका वाली सुश्रुतसंहिता में अस्थियों की परिगणना इस प्रकार की गई है:—

"त्रीणि सषष्ठान्यस्थिशतानि वेदवादिनो भाषन्ते। शल्यतंत्रे तु त्रीण्येव शतानि। तेषामष्टादशोत्तरं शाखासु। पञ्चाधिकं शतं श्रोणिपार्श्वोरःकण्ठनाडीषु। ग्रीवामूर्ध्वं सप्तसप्ततिः। एवमस्थ्नां त्रीणि शतानि पूर्यन्ते।

'एकैकस्यां तु पादाङ्गुल्यां त्रीणि त्रीणि, अङ्गुष्ठे द्वे, तानि चतुर्दश। तलकूर्चगुल्फसंश्रितान्येकादश, पार्ष्ण्यामेकं, जङ्घायां द्वे, जान्वेकं, एकमूराविति त्रिंशदेकस्मिन सक्थ्नि भवन्ति। द्वितीये ऽप्येवम्। एतेनैव च जानुवर्जेन बाहू च व्याख्यातौ।

'श्रोण्यां पञ्च, तेषां गुदभगनितम्बेषु चत्वारि, त्रिकसंश्रितमेकम्, पार्श्वयोरष्टचत्वारिंशत्। पृष्ठे चतुर्विंशतिः, द्वे अंसपीठे, उरसि त्रीणि, अक्षकसंज्ञे द्वे, फुफ्फुसनिबद्धायां कण्ठसंसक्तायां नाड्यामेकविंशतिः।

'ग्रीवायाः पुरस्तान्नवकं, तदूर्ध्वमेकम अभ्यन्तरतः कर्णशष्कुल्योरधस्तात् षट्, गण्डकर्णशङ्खेष्वेकैकम्, हनुसमाख्यमेकम्, दन्ता द्वात्रिंशत्, नासायामष्टौ, नासायामुपकनीनकं द्वे, अपाङ्गयोरधस्ताद् द्वे, वर्त्मसंज्ञे द्वे, षट् शिरसि, शिरसोऽभ्यन्तरे च द्वे ॥"

"इन दोनों पाठों में जो भेद है वह बिलकुल स्पष्ट है हमने दोनों पाठों में भेददर्शक शब्दों को रेखाङ्कित कर दिया है। देखने ही से पता चल सकता है कि समानता से भिन्नता कहीं अधिक है। प्रथम पाठ के अनुसार शाखाओं में १२० अस्थियां हैं; द्वितीय पाठ के अनुसार ११८ ही हैं। इस ही प्रकार प्रथम पाठ के अनुसार श्रोणि, पार्श्व, उर और कण्ठ में ११७ अस्थियां हैं और द्वितीय पाठ के अनुसार १०५ ही हैं। एवं प्रथम पाठ के अनुसार ग्रीवा से ऊपर ६३ अस्थियां हैं, द्वितीय के अनुसार ७७ हैं। इतने ही से पाठक समझ सकते हैं कि इस समय में पुस्तकों में कितनी उथल पुथल हुई–कितने पाठ भेद हुए। इस लिये वर्तमान ग्रन्थों की प्रामाणिकता पर हमें भारी संदेह होता है।

इस प्रकार यवन राजाओं के हमलों से भारत के विज्ञान को भारी धक्का पहुंचा। मानो कि यह विपत्ति काफ़ी न थी, विधना ने एक और विपत्ति भेजी जिसका शरीरविज्ञान विशेष शिकार बना। इसी समय भारत के अन्दर भी कुछ ऐसी अवस्थाएं पैदा होगईं जिनसे कि इस विज्ञान की विशेष क्षति हुई। और वस्तुतः ये अवस्थाएं यवन राजाओं के हमलों से बहुत पूर्व ही पैदा हो चुकी थीं। ईसा से लगभग ६३२ वर्ष पूर्व भारतवर्ष में महात्मा बुद्ध का उदय हुआ। आप "अहिंसा परमो धर्मः" के उपदेशक थे। यही उनका मूल मंत्र था। ब्राह्मणधर्म से लोग बहुत तंग आए हुए थे। इस लिये उन्हों ने बुद्ध की शरण ली और "अहिंसा परमो धर्मः" इस मन्त्र में दीक्षित हुए। इस मंत्र का प्रभाव सारी हिन्दु जाति पर पड़ा। मृत शव का च्छेद (dissection) करने में उन को भी कुछ घृणा हुई जिस के कारण बहुत सी काल्पनिक बातें ग्रन्थों में मिला देना बिलकुल स्वाभाविक था।

"इस के बाद २६४ ई. पूर्व में अशोक का प्रादुर्भाव हुआ। कलिंग की विजय में प्राणिहिंसा को देख कर बौद्ध-प्रभाव के कारण इसे दया आई और उपगुप्त नामी बौद्ध भिक्षुक का शिष्य बन गया। अशोक का बौद्ध हो जाना भी इस विज्ञान की मौत में कारण बना। इस ने राजाज्ञा के द्वारा अपने राज्य में शवच्छेद की मनाई कर दी; जिस का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि लोगों में प्रत्यक्षज्ञान के साधन शवच्छेद के छिन जाने पर अपूर्ण ग्रन्थों की पूर्ति के लिये कल्पना के घोड़ों को खुली छुट्टी देदी।"

पाठको! यह मैंने आप को शरीरविज्ञान के नाश की संक्षिप्त कहानी सुनाई। लेकिन अपनी उमर में इस का भी वैभव अवर्णनीय था। शवच्छेद करके प्रत्यक्ष और सत्य बातें लिखी जाती थीं। इस की साक्षी शरीरविज्ञान के अवशेष अब तक देरहे हैं। मैं आप के सामने लगभग सभी संस्थानों का आयुर्वैदिक वर्णन रखने का प्रयत्न करूंगा। जिस से कि जहां आप को भी इस के वैभव के दर्शन होंगे वहां पर उस की पुनरुज्जीवन के साधनों पर भी विचार करने का अवसर मिलेगा। किन्तु इस काम को शुरू करने से पूर्व दो एक बातों की तरफ़ आप का ध्यान अवश्य आकृष्ट करूंगा।

"शरीरविज्ञान पर आध्यात्मिक भावों का क्या प्रभाव पड़ा यह बताते हुए हमने बतलाया था कि प्राचीन आयुर्वेद-शास्त्रियों की रुचि सूक्ष्मशरीरविज्ञान में ही विशेष थी, स्थूलशरीरविज्ञान में नहीं। वे सूक्ष्मशरीरविज्ञान को ही यथार्थ और वास्तविक मानते थे स्थूलशरीरविज्ञान को नहीं। लेखक भी इस बातमें प्राचीन आयुर्वेदियों के साथ है। यदि आप निदान ग्रन्थों को देखें तो आप को पता लगेगा कि निदानशास्त्र का भी आधार स्थूलशरीरविज्ञान नहीं अपितु सूक्ष्मशरीरविज्ञान ही है। यदि आप शल्यतंत्र को देखें तो उस का भी आधार सूक्ष्म शरीरविज्ञान ही पता लगेगा। केवल कहीं २ मर्म इत्यादि का निर्देश कर के कह दिया है कि इन को बचा कर शल्यकर्म करे। इस ही प्रकार एक अध्याय में अवेध्य शिरा और धमनियों का संक्षिप्त वर्णन कर दिया गया है। किन्तु आजकल की तरह स्थूलशरीरविज्ञान को निदान और शल्यतंत्र का आधार नहीं बताया गया। वात, कफ़, पित्त रूपी सूक्ष्मशरीरविज्ञान पर ही दोनों का महल खड़ा किया गया है; इस ही प्रकार शालाक्य तंत्र में भी कर्ण इत्यादि इन्द्रियों के अवयवों के नाम मात्र देकर उन के रोगों के लक्षण और उपचार कह

दिये हैं—अवयवों का विस्तृत वर्णन नहीं किया गया। यही बात प्रसूतितंत्र के भी साथ लागू होती है। इस सब का कारण, जैसा कि हम पहले कह आये हैं आयुर्वेदशास्त्रियों की सूक्ष्मशरीर-विज्ञान में रुचि और स्थूल का प्रत्यक्ष ज्ञान देना ही है। आयुर्वेद की विशेषता ही सूक्ष्मशरीरविज्ञान में है। इस को निकाल कर यदि स्थूल शरीर-विज्ञान का सारा पश्चिमीय प्रपञ्च भी अपना लिया जावे तो भी मैं कहूंगा कि आयुर्वेद मृत हो गया है। सूक्ष्मशरीरविज्ञान ही आयुर्वेद की जान है—सूक्ष्मशरीरविज्ञान ही आयुर्वेद है।

आज कल वैद्यों की प्रवृत्ति स्थूल शरीरविज्ञान की ओर बढ़ती जाती है। हम उस के विरुद्ध नहीं हैं। किन्तु हां यदि सूक्ष्मशरीरविज्ञान को भुला कर स्थूलशरीरविज्ञान को अपनाया जाता है तो हम इसको आयुर्वेद के लिये घातक समझते हैं। यदि स्थूलशरीरविज्ञान का भी सूक्ष्मशरीर-विज्ञान में समावेश करने का प्रयत्न किया जाता है तो हमारी सम्मति में यह आयुर्वेद के पुनरुज्जीवन की ओर एक कदम बढ़ाना है। यह काम कठिन है—महाकठिन है, किन्तु कठिन समझ कर अपनी चीज़ को छोड़ कर दूसरे को अपनाना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। यदि विजातीय पदार्थ को पचाया नहीं जा सकता तो उस का त्याग ही श्रेय है।

कई महानुभावों का कथन है कि पश्चिमीय-स्थूल शरीरविज्ञान भी केवल प्रत्यक्ष सचाईयों का वर्णन करता है—उस में आयुर्वैदिकता और अनायुर्वैदिकता का कोई प्रश्न नहीं-उस को ले लेने में कोई भी हानि नहीं है। ठीक है, उस को लेलेने में कुछ भी हानि नहीं। किन्तु याद रखना चाहिये कि उस में आयुर्वैदिकता तभी आवेगी जब आप उस को पंच महाभूतों के शब्दों में—वात, पित्त, कफ की परिभाषाओं में ले आवेंगे। जब तक आप ऐसा नहीं करते तब तक वह किसी भी भाषा में हो, विजातीय है। और ज्यों ही आप इन शब्दों में ले आवेंगे त्योंही वह सूक्ष्मशरीरविज्ञान हो जावेगा—उससे अभिन्न हो जावेगा। परिणामतः आयुर्वेदोक्त शरीर वैसा ही हो जावेगा जैसा कि अब है। उदाहरण के लिये, कल्पना कीजिये कि आपने रक्त का विश्लेषण कर के पता लगाया कि उसमें Haemoglobin नाम का एक पदार्थ होता है जिस के कारण रक्त का रंग लाल होता है। अब जब तक आप इसका समावेश आकाशादि पंच महाभूतों में नहीं करते तब तक इसका वर्णन आयुर्वैदिक नहीं हो सकता, क्योंकि आचार्य पंच महाभूतों और जीवात्मा के समवाय को ही पुरुष कहते थे-"यतोऽभिहितं पंच-महाभूतशरीरिसमवायः पुरुषः"। यदि आप इस को पंच महाभूतों की परिभाषा में कहेंगे तो इस का स्वरूप यही होगा कि "अमुक तत्व से रक्त का रंग लाल हो जाता है" जैसे कि पंच महाभूतों से बने रंजक पित्त को रस को रंगने के कारण रंजक पित्त कहा गया है। जब ऐसा वर्णन होगा तो आप के इस Haemoglobin का लोप हो जावेगा। और आयुर्वेदोक्त शरीर Haemoglobin को पचा कर भी ऐसा ही रह जावेगा जैसा कि अब है। इन सब कारणों से ऋषि शल्यकर्म के लिये स्थूलशरीरविज्ञान का शवच्छेद द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान दिया करते थे और इसके व्यर्थ प्रपञ्च में न फंसते थे। हम को भी शवच्छेद द्वारा स्थूलशरीर का प्रत्यक्षज्ञान (न कि शाब्दज्ञान) ले लेना चाहिये और सूक्ष्मशरीरविज्ञान की उत्तरोत्तर उन्नति करनी चाहिए। ऋषियों के समान सूक्ष्मशरीर को ही निदान, शल्यतंत्र और शालाक्यतंत्र का आधार बनाना चाहिये और शल्यकर्म के लिये स्थूलशरीरविज्ञान का भी प्रत्यक्षज्ञान करना चाहिये।

स्थूलशरीरविज्ञान के साधारण शब्दबोध के लिये हमें आयुर्वेद की परिभाषाओं में ही छोटी २ पुस्तकें लिखने का काम करना चाहिये। परिभाषाओं को बनाते हुए यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि वे अन्वर्थ हों। उदाहरण के लिये हृदय शब्द लीजिये। इस में हृ का अर्थ लेना, द का देना और य का गति करना है। हृदय शरीर के अशुद्ध रक्त को लेता, शुद्ध रक्त सारे शरीर को देता तथा सदा गति करता रहता है। इस लिये इसे हृदय कहते हैं। इस एक शब्द में इतना शरीरविज्ञान भरा पड़ा है। इसके और दृष्टान्त मैं आगे निबन्ध में स्थान २ पर दूँगा जिनसे पता लगेगा कि किस प्रकार प्राचीन शब्दों से निरुक्त की सहायता से हम शरीरविज्ञान को निकाल सकते हैं। इस समय केवल इतना ही वक्तव्य है कि प्राचीन आयुर्वेद का निरुक्तशास्त्र की दृष्टि से अनुशीलन करें और उसके ही आधार पर स्थूलशरीरविज्ञान की उन्नति करें। ऐसा करते हुए यदि हम अन्वर्थ परिभाषाओं और शब्दों को ही रखेंगे तो निश्चय है कि हम ऋषिऋण उतारने में सफल होंगे और आगामी संतति के बहुमूल्य समय को बचा सकेंगे।

सूक्ष्मशरीरविज्ञान के विषय में भी मुझे इतना ही वक्तव्य है कि वात, पित्त, कफ की कल्पना भी पांच महाभूततत्वों के ही आधार पर की गई है। जैसा कि ऊपर कहा गया है हमारे शब्दों में विज्ञान और फ़िलासफ़ी भरी पड़ी है, सूक्ष्मशरीरविज्ञान को भी अधिक स्पष्ट करने के लिये हमें साधन का अवलंबन करना चाहिये। अर्थात् तत्वों के संस्कृत में जितने भी पर्याय हैं उनको इकट्ठा किया जावे; निरुक्तशास्त्र की दृष्टि से उन पर विचार किया जावे और उस विचार के आधार पर त्रिदोष को स्पष्ट किया जावे। लेखक अपने अनुभव से कह सकता है कि यह तरीका बड़ा रोचक और सफल है।

जीवन

(ले०—बालकृष्ण बलदुआ)

जीवन की बातें करते हो! क्या जानो कैसा जीवन है?
चित्र अधूरा देख न कह दो "बस इतना ही तो जीवन है।"
नूतनता प्रतिवार चितेरे की कूंची के संचालन में।
अन्तिम हलके स्पर्श देख लो उसके जीवन के चित्रण में॥

उन्हें देख कर तब तुम कहना जीवन क्या है, कैसा है।
तब तक मौन रहो; न बको "जीवन ऐसा है वैसा है॥"

भारतीय इतिहास के स्रोत

(लेखक –'श्री ग्राही' विद्यालंकार)



भारत में जिस समय आर्य लोग प्रकट हुए, उस समय यहां दो जातियां निवास करती थीं—एक जंगली और दूसरी द्रावीडियन।

वर्तमान ऐतिहासिकों के मत में आर्य लोग पर्याप्त सभ्य थे। उन की सभ्यता और विचार (culture) दोनों ही पर्याप्त उन्नत थे। ऋग्वेद के पुराने भाग पंजाब और गंगा की घाटियों में आने से पहले के बने हुए हैं। उन से हम जान सकते हैं कि जिस समय आर्य भारत में आये, उस समय वे प्रस्तर-काल से निकल कर लोह-काल नहीं तो कम से कम ताम्रकाल में तो अवश्य ही पहुँच चुके होंगे। भारत में खोज करने पर प्रस्तर काल और कांसा-काल के चिन्ह निकाले गए हैं। ये चिन्ह उन जातियों की सभ्यता के विकास को दिखाते हैं जो कि आर्यों के आने से पूर्व यहां निवास करती थीं।

कहा जाता है कि द्रावीडियन लोग पर्याप्त सभ्य थे। वे कृषि करते थे और उनमें ग्राम्य संस्थाएं भी प्रचलित थीं। एक द्रावीड़ियन ऐतिहासिक का कहना है कि आर्यों ने वर्णाश्रमधर्म की रीति द्रावीडियन लोगों से ग्रहण की। आर्य लोगों के यहां आने से पूर्व (वैदिक काल से पूर्व) की सभ्यता या इतिहास जानने के स्रोत इस प्रकार लिखे जा सकते हैं:—

१. साधारण रिकार्ड (प्रस्तर काल आदि का अनुसन्धान)— भारत में प्रस्तर काल के बाद कांसा-काल (Bronze Age) के चिन्ह नहीं मिलते। सीधा लोह-काल है।

२. कई ऐतिहासिकों की सम्मति है कि मध्यभारत के जंगलों में रहने वालों की सभ्यता प्राचीन द्रावीडियन लोगों की सभ्यता है।

३. आर्य लोगों को भारत के आदिम निवासियों के साथ युद्ध करना पड़ा और पीछे से दोनों में मेल जोल हो गया। वे इकट्ठा रहने लगे। यह जानना चाहिये कि इन आदिम निवासियों की सभ्यता का आर्य-सभ्यता पर क्या प्रभाव पड़ा? जिस समय आर्य भारत में आए थे उस समय की उन की सभ्यता का पता ऋग्वेद के पुराने भागों से मिलता है।

(२)

१८ वीं सदी के प्रारम्भ में सर विलियम जोन्स (बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के अध्यक्ष) ने संस्कृतभाषा का अध्ययन कर यह प्रकट किया कि वह भाषा, व्याकरण और शब्दों के रूप आदि के लिहाज़ से ग्रीक और लेटिन से इतनी अधिक मिलती है कि कोई भी भाषाशास्त्रवेत्ता इन का एक मूलभूतस्रोत माने बिना इनकी समस्या हल नहीं कर सकता। इस खोज से पाश्चात्य विद्वानों में हलचल पैदा हो गई। उन्हों ने संस्कृत का अध्ययन शुरु किया। पहले विद्वानों का विचार था कि संस्कृत सब भाषाओं की जननी है, परन्तु पीछे यह विचार अशुद्ध सिद्ध हुआ। अब यह विचार प्रामाणिक माना जाता है कि ये सब

भाषाएं एक ही स्रोत (common source) से निकली हैं और इस स्रोत को भाषाओं का पैतृक भण्डार माना जाता है । इस भण्डार से निकली हुई सब भाषाओं को "भारत-यूरोपीय भाषा परिवार" के नाम से पुकारा गया है। भाषाओं के इस प्रकार के अध्ययनसे यह परिणाम निकाला गया है कि सब जातियें—जो कि इस परिवार से सम्बन्ध रखने वाली भाषाएं बोलती थीं और जो कि प्राचीनकाल में सारे यूरोप और एशिया में चीनी तुर्किस्तान से लेकर आयर्लैण्ड तक फैली हुई थीं— किसी न किसी काल में एक स्थान पर इकट्ठी थीं । इन जातियों या लोगों को भारत यूरोपीय जनता के नाम से कहा गया है। इन भारत-यूरोपीय लोगों की सभ्यता क्या थी—यह इस परिवार की सब भाषाओं के ध्यान-पूर्वक अध्ययन से पता लगाया जा सकता है । इस परिवार से सम्बन्ध रखने वाली भाषाओं के शब्दों पर यदि विचार किया जाय और उनसे सर्वनिष्ठ शब्द निकाले जायं तो भारत-यूरोपीय जनता की सभ्यता और उनके विश्वास आदियों का पर्याप्त ज्ञान उपलब्ध हो सकता है।

भाषाओं पर विचार करने से यह सिद्धान्त निकला कि इस भारत-यूरोपीयन परिवार में से पर्शियन और भारतीय शाखाएँ उस स्थान से (जहां पहले सब इकट्ठे थे) निकल कर भी पर्याप्त काल तक इकट्ठे रहे। इनके अत्यन्त प्राचीन शास्त्रों में विचार और भाषा दोनों में बहुत साम्य है । पर्शियन लोगों की ज़िन्दावस्था और भारतीय लोगों का ऋग्वेद दोनों आपस में विचार और भाषा की दृष्टि से बहुत मिलते हैं।

इस प्रकार वैदिक काल से पूर्व आर्य लोगों की सभ्यता जानने के लिए हमारे पास यही साधन है कि भाषाओं का अच्छी तरह अध्ययन किया जावे। वैदिककाल से पूर्व आर्य और अनार्य दोनों के इतिहास के दो स्रोत ऊपर दिखाए जा चुके हैं। ६०० ई० पू० से बौद्धकाल प्रारम्भ होता है, ६०० ई० पू० के बाद के इतिहास का पता लगाने के लिए हमारे पास पर्याप्त साधन हैं। वेदों के काल से प्रारम्भ करके ६०० ई० पू० तक के काल को वैदिक-काल कहा जाता है। इस काल में बहुत सारे आर्यसाहित्य का निर्माण हुआ था। चारों वेद, ब्राह्मण-ग्रन्थ, उपनिषदें, निरुक्त, रामायण, महाभारत के प्राचीन भाग आदि बहुत सी पुस्तकें, जिन में से अब बहुत सी लुप्त हो चुकी हैं, इस काल में आर्यों ने बनाईं। इन पुस्तकों से आर्यों की सभ्यता का बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है। इन ग्रन्थों की लेखनशैली और भाषा की तहों से हमें इतिहास की बहुत सी अप्रत्यक्ष साक्षी मिल सकती है। वैदिककाल के इतिहास के स्रोत उस समय के विनिर्मित ग्रन्थ ही हैं। कई कम प्राचीन ग्रन्थों में प्राचीन काल के राजाओं की वंशावलियां और वंशवृत्त दिए हुए हैं। इनका परीक्षण करके सत्य इतिहास का अनुसन्धान किया जा सकता है। रामायण और महाभारत इस काल के दो प्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्य हैं।

प्रायः ऐतिहासिक लोग भारत में ऐतिहासिक काल का प्रारम्भ बौद्धकाल या ६०० ई० पू० के लगभग मानते हैं। इस काल के बाद का इतिहास जानने के लिए हमारे पास पर्याप्त साधन हैं। ये साधन तीन विभागों में बांटे जा सकते हैं—(१) साहित्य सम्बन्धी (२) उत्कीर्ण लेख (३) विदेशी

स्रोत। इन तीनों प्रकारों के स्रोतों का वर्णन करने का यत्न आगे किया जावेगा।

(३)

१. भारत में वंशावलि रखने की रीति बहुत पुरानी है। गांवके पटवारी या गांव के मुख्य आदमी (पटेल या गौडस) अपने वंश के अधिकारों की रक्षा के लिए वंशावलियां स्थिर रखते हैं। इन वंशावलियों के अन्दर कई सदियों तक की घटनाएं और नामावलियाँ होती हैं। इसी प्रकार मन्दिरों और मठों के महन्त अपनी वंशावलियां स्थिर रखते हैं। जैन महन्तों के पास पट्टावलियां मौजूद हैं जो कि तीर्थंकर वर्धमान महावीर तक पहुँचती हैं। इस प्रकार की वंशावलियां कई प्रकार से इतिहास जानने में सहायक होती हैं। इसी प्रकार राजवंशों की राजावलियां उपलब्ध होती हैं। इन राजावलियों में कई प्रकार की अशुद्धियां भी हो सकती हैं। इन को ध्यान से देखना चाहिये। उदाहरण के तौर पर नैपाल में एक पुरानी राजावली उपलब्ध हुई है। उस में कलियुग से प्रारम्भ करके (३१०२ ई० पू० से) लगातार राजाओं की एक श्रेणी काल सहित दी है। परन्तु उसमें कई अशुद्धियां हैं।

२. Official Records लिखने और रखने की रीति प्राचीन काल से चली आती है। कई समयों में आवश्यक आज्ञापत्र इन Records पर लिखे जाते थे। तथा सम्बन्धियों की शर्तें और अन्य आवश्यक राजपत्र सम्भाल कर रखे जाते थे। स्थानीय शासक एक प्रकार की डायरी रखा करते थे। सम्भव है कि ये लेखे उस प्रकार की दैनिक-पुस्तकों के रूप में हों जैसा कि पेशवा अपने समय में रखा करते थे, पर वे अब उपलब्ध नहीं होते। लिच्छवी लोग अपने रीति रिवाजों को लेखबद्ध (book of customs) करते थे। वंशवृत्त प्राचीन काल में लिखे जाते रहे हैं। दक्षिण के चालूक्य राजा इस प्रकार का वंशवृक्ष लिखते थे। हाथीगुम्फा के गुहालेख से कलिङ्ग के राजा खार्वेल का वृत्तान्त, उसके जन्म से लेकर शासन काल के १३ वें वर्ष तक, उपलब्ध होता है। इस प्रकार के वृत्तान्तों से अनुमान होता है कि उस समय भी इस प्रकार के वंशवृत्त लिखे जाते थे। यह हाथीगुम्फा का लेख १५६ ई० पू० का है। इस प्रकार के वंशवृत्त और राजकीय लेखे इतिहास जानने में बहुत साधक हो सकते हैं।

३. प्राचीन इतिहास जानने के लिए पुराण अच्छे साधन हैं। इन के ऐतिहासिक अध्यायों में जो वंशावलियां दी गई हैं वे निस्सन्देह किन्हीं प्राचीन ऐतिहासिक पुस्तकों या आधारों पर स्थित हैं। पुराणों से इतिहास निकालने में ये कठिनाइयां हैं—

(i) पुराणों के लेखकों ने किसी निश्चित हिन्दू संवत् को आधार मान कर राजाओं का वर्णन नहीं किया।

(ii) एक एक राजा का शासन काल कई शताब्दियों तक का बताया गया है। इस प्रकार की बातों से किसी निश्चित आधार पर नहीं पहुंचा जा सकता।

४. राजतरङ्गिणी यह प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ कल्हणने १२ वीं शताब्दी में लिखा है। इस में काश्मीर का इतिहास विस्तार से लिखा गया है। कल्हण अपने समय के लिए पूर्ण प्रामाणिक है और कुछ सदियां पूर्व के लिए भी। परन्तु अधिक प्राचीन काल के इतिहास में कल्हण ने कई गलतियां की हैं। अशोक का समय कल्हणने २२४ ई० पू० से ११२ ई० पू० तक लिखा है।

५. पुराणों और राजतरङ्गिणी को छोड़ कर प्राचीन भारतीयों ने और कोई ऐतिहासिक ढंग के ग्रन्थ नहीं छोड़े हैं। हिन्दुओं का साहित्य हमारी

अधिक सहायता नहीं करता। परन्तु नाटक और काव्यों में स्थानों और मनुष्यों के नाम प्रायः ऐतिहासिक दिए गए हैं। ये हमारे लिये पर्याप्त सहायक हो सकते हैं (स्थानों का ज्ञान प्राप्त करने और देशों की सीमा जानने के लिए)। उदाहरण के तौर पर हम कई साधनों से जानते हैं कि ताम्रलिप्ति मिदनापुर ज़िले में था और दशकुमारचरित में हम पढ़ते हैं कि ताम्रलिप्ति सुह्मदेश में था। इस प्रकार हम जान सकते हैं कि सुह्मदेश बंगाल प्रान्त का एक भाग था और सुह्मदेश बंगाल के इस भाग में था, इत्यादि।

साधारण काव्यों को छोड़ कर कई संस्कृत में ऐतिहासिक काव्य हैं—बाण का हर्षचरित, विल्हण का विक्रमांकदेवचरित, विशाखदत्त का मुद्राराक्षस। हर्षचरित में कन्नौज के राजा हर्ष का वर्णन है। विक्रमांकदेवचरित में कल्याण के प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य का चरित्र है। इन काव्यों में तिथियां बिल्कुल नहीं दी गईं, और चरित्रों को कविता का रूप दिया गया है। इस लिए इन ग्रन्थों का इतिहास जानने में सहायक होते हुए भी, मूल्य ज़रा कम हो जाता है। तामिल के ऐतिहासिक काव्य (Kalanali, the kalingatha-parrani-the Vikrama Che lan-vla) को भी इसी श्रेणी में सम्मलित किया जा सकता है। परन्तु इन काव्यों से उस समय की—जिस का वर्णन इन में है—धार्मिक, सामाजिक उन्नति, व्यवहार, रिवाज़ आदि का पता नहीं चलता। कवि लोग अपने समय के रीतिरिवाजों के अनुसार ही अपने काव्यों में रीतिरिवाज आदि दिखाते हैं जिस समय कि उन्होंने काव्य बनाया था।

६—साहित्यिक ग्रन्थों की भूमिकाएं और उपसंहार भी इतिहास के लिए अच्छी सामग्री हैं। परन्तु ये सामग्रियां बहुत विचार और अनुसन्धान के बाद सहायक हो सकती हैं। इन में दी हुई तिथियां, वंश कीर्तन, राजा का नाम आदि, जिस का कि कवि आश्रित है, इतिहास जानने के लिए पर्याप्त सहायक हैं। परन्तु वे सर्वथा अधूरी होती हैं इस लिए शिलालेखों तथा अन्य ग्रन्थों से मिला कर उन्हें पूर्ण बनाना चाहिए। यह सब ऐतिहासिक सामग्री शिलालेख, विदेशियों के प्रवास वृत्तान्त, अन्य ग्रन्थों का अवलोकन आदि के साथ मिल कर निश्चय करने में सहायक होगी।

(४)

अब हम उत्कीर्ण लेखों पर विचार करेंगे। पहले यह कहना है कि उत्कीर्ण लेख किन वस्तुओं पर हैं—धातु और अधातु।

धातु—लोहे पर—कुतुब के मीनार के पास की लाट पर चन्द्रगुप्त राय की विजय कविता खुदी हुई है। यह २३ फी. ८ इं० ऊंची है। सोने चांदी पर खुदे हुए लेख भी मिलते हैं। ताम्र पर लिख कर दान-पत्र आदि दिये जाते थे। इस के सिवाय ताम्र-पत्र-लेखों की मुद्राएं भी बहुत आवश्यक हैं। कई ताम्रपत्र (दान पत्र) इकट्ठे छल्ले में बांधे जाते थे। और इन पर दाता की मोहर होती थी। कई जगह केवल छल्ला मुहर सहित मिला है, ताम्रपत्र गुम होगए। ऐसी मोहरें भी ऐतिहासिक ज्ञान के लिए पर्याप्त सहायक हैं।

अधातु—स्फटिक, चीनीमट्टी Terra cotta, ईंट, मट्टी के बर्तन पत्थर, चट्टान आदि पर बहुत से लेख उत्कीर्ण हुए पाए जाते हैं। स्तम्भ, गुम्बज और स्तूपों पर खुदे हुए लेख ऐतिहासिक ज्ञान के लिए बहुत आवश्यक हैं, स्तूपों के भग्नावशेषों, गुहाओं में भी बहुत से लेख उत्कीर्ण हुए पाए जाते हैं जो पर्याप्त आवश्यक हैं

जो उत्कीर्ण लेख पाए जाते हैं उन्हें हम चार भागों में बांट सकते हैं—i ऐतिहासिक, ii धार्मिक, iii. धार्मिक दान विषयक iv विविध—मुहरें नाटक आदि।

शुद्ध ऐतिहासिक लेखों में हाथीगुम्फा का लेख जिसमें कलिङ्गराज खार्वेल के शासनकाल के १३ वें वर्ष तक का वृत्तान्त है (१५५ ई०पू०), अशोक की इलाहाबाद वाली लाट पर समुद्रगुप्त की विजय यात्रा का लेख, मन्दसौर की लाट पर खुदा हुआ लेख—जो कि यशोधर्मा की मिहिरकुल विजय का वर्णन करता है—ये गिने जा सकते हैं।

इस श्रेणी में हम कुछ सार्वजनिक लेखों को भी रख सकते हैं—जैसे जूनागढ़ के दो लेख जो सुदर्शन झील की मरम्मत के सम्बन्ध में हैं। रुद्रदामन और स्कन्दगुप्त के समय मरम्मत हुई थी। पहले लेख में यह भी दिखाया गया है कि यह झील मौर्य चन्द्रगुप्त के एक प्रान्तीय-शासक ने बनवाई थी— इत्यादि। इसी श्रेणी में महरौली का स्तम्भ लेख—चन्द्रगुप्त २ य (विक्रमादित्य की स्मृति में है—गिना गया है। इसी प्रकार के बहुत से लेख शुद्ध ऐतिहासिक लेखों की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। इनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं—

ईरान का एक छोटा स्तम्भ जो कि राजा भानुगुप्त, भानुराज आदि वीरों की स्मृति के रूप में है। भूमरा का स्तम्भ जो कि महाराजा हस्तिन् और महाराजा शर्वनाथ के राज्यों की सीमा निश्चित करती है इत्यादि।

२. शुद्ध ऐतिहासिक उत्कीर्ण लेखों के सिवाय धार्मिक लेख भी इतिहास के अच्छे स्रोत हैं। इस श्रेणी में अशोक की प्रसिद्ध १४ सूचनाएं मुख्य हैं। ये सूचनायें जहां तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक अवस्थाओं पर प्रकाश डालती हैं, वहां राजनीतिक इतिहास सम्बन्धी सामग्री भी पर्याप्त प्रस्तुत करती हैं। अशोक के राज्यों की सीमायें, विदेशी राज्यों— जिनके ५ राजाओं के नाम शिलालेखों में मिलते हैं—से सम्बन्ध, इत्यादि अनेक बातों पर प्रकाश पड़ता है। अशोक की दूसरी सात सूचनायें भी धार्मिक श्रेणी के लेखों में शामिल हैं। इसी प्रकार अन्य भी बहुत से धार्मिक उत्कीर्ण लेख पाए गए हैं।

३. धार्मिक दान सम्बन्धी उत्कीर्ण लेख—इस श्रेणी में बहुत से दान पत्र और ताम्रपत्र शामिल हैं। ताम्रपत्र और दानपत्र भारत में— विशेष कर दक्षिणी भारत में—बहुत संख्या में पाए गये हैं। इस प्रकार के उत्कीर्ण लेख इस लिए उपयोगी हैं कि इनमें दाता की स्थिति क्या है? वह किस सम्राट् या महाराजा के आधीन है? इत्यादि बातों का पता लगता है। जिन स्थानों पर इस प्रकार के दानपत्र दिए गए, अब वे वहां से बहुत दूर स्थानों पर समय आदि के फेर के कारण पाए जाते हैं। बहुत से ताम्रपत्र निजू व्यक्तियों के पास से मिले हैं, बहुत से ज़मीन में खोदने पर और बहुत से दीवारों और मकानों की नींव आदि से पाए गए हैं।

४. विविध उत्कीर्ण लेखों में मुद्राएं, नाटक आदि शामिल हैं। अजमेर में दो शिलालेख इस प्रकार के मिले हैं जिनके ऊपर कि नाटक खुदे हुए हैं। सिक्के, मुद्राएं आदि सब इसी श्रेणी में हैं। जिन सिक्के आदियों पर कुछ अक्षर आदि भी खुदे हैं, वे भी ऐतिहासिक सामग्री के लिए सहायक ही हैं।

भारतवर्ष में उत्कीर्ण लेख बहुत अधिक संख्या में पाए गए हैं, और पाए जा रहे हैं। इन लेखों में

जो भिन्न भिन्न संवत् दिए गए हैं, उनका प्रारम्भ अब बहुत कुछ निश्चित हो चुका है। कई लेखों पर बड़े भारतीय शासकों के शासनकाल आदि से संवत् मान कर संवत् और तिथियां दी गई हैं। अब प्रायः सब प्रसिद्ध राजाओं की ठीक तिथियां भी ज्ञात हो गई हैं। इस लिए अब उत्कीर्ण लेखों का समय जानने में अधिक कठिनता नहीं रही।

(५)

पर्शिया के शिलालेख भी भारत के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। डोरिया के आक्रमण विषयक उत्कीर्ण लेख इस श्रेणी के अच्छे उदाहरण हैं। भिन्न२ समयों में भारत में जो विदेशी यात्री आते रहे हैं उनके लिखे प्रवास वृत्तान्तों ने भारतीय इतिहास पर अच्छा प्रकाश डाला है। मौर्य साम्राज्य के समय का इतिहास, सिकन्दर का आक्रमण वृत्तान्त आदि बातें ग्रीस और यूनानी लेखकों के द्वारा ही प्रकट हुई हैं। असीरिया, बैबिलोनिया, आदि प्राचीन प्रदेशों की खुदाई भी भारत के इतिहास जानने में कुछ न कुछ अवश्य सहायक होगी— इस की हमें पूर्ण आशा है। इस प्रकार की खुदाई में आए हुए वैदिक देवताओं के नाम, खाल्डिया के प्राचीन धर्म का अथर्ववेद के धर्म से बहुत मिलना— ये सब बातें भारत के इतिहास पर थोड़ा बहुत प्रकाश अवश्य डालती हैं। ये सब विदेशी स्रोत में समझी गई हैं।

(६)

इस प्रकार हमने प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत विषय पर थोड़ा बहुत लिखने का प्रयत्न किया। अब प्रश्न यह है कि इस विषय में आगे क्या कार्य अवशिष्ट है! यह विषय भी पर्याप्त विस्तृत है। संक्षेप में यही लिखा जा सकता है कि नए उत्कीर्ण लेखों को ढूंढना प्राचीन साहित्य का अनुसंधान करना आदि काम तो जारी ही है। परन्तु जो उपलब्ध हो चुका है उसमें भी यह काम बाकी है।

प्राचीन भारतीय उपलब्ध साहित्य का अनुशीलन करके उसमें से उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री को सुचारुरूपेण अलग सम्पादित करना, अब तक के मिले हुए सब उत्कीर्ण लेखों को इकट्ठा सम्पादित करना। यह अत्यन्त आवश्यक काम अभी करना शेष है। विदेशी प्रवास वृत्तान्तों का अनुवाद भी अभी ठीक ढंग से नहीं हुआ है। वह भी करना है। इस लेख में हमें यही करना अभीष्ट था।



"दानवीर शिवि"

हे ईश जगदाधार करुणागार करुणा कीजिये ।
बुद्धिदाता हे विधाता बुद्धि हमको दीजिये ।
हर ! हमारे शत्रुओं की शक्ति का अब नाश हो ।
सद्धर्म्मता हम में बढ़े शुभ सत्यता-सुविकास हो ॥ १ ॥

जब से पुरानी धारणा से ध्यान सबका हट गया ।
हम सभी की शक्ति का तो सार ही सा घट गया ।
दासत्व ही की शृंखला में मोद मिलता है हमें ।
पर धर्म्मियों के ही सदा यश-गान में हम सब रमें ॥ २ ॥

थे हमारे पुण्य भारत भूमि ही में तो कभी ।
दीर्घ बाहु प्रचण्ड-शक्ति उदार नृप गुणवान् भी ।
निज साम दाम ऽरुदण्डभेदादिक गुणों से पूर्ण थे ।
जो शत्रुओं के गर्व को पल माँझ करते चूर्ण थे ॥ ३ ॥

वे दान में निज देह के बलिदान को डरते न थे ।
वे कायरों की भाँति घर में ही पड़े मरते न थे ।
वे धर्म को करते सदा सारे सुखों से युक्त थे ।
वे निज तपस्या से सदा ही कर्म बन्धन-मुक्त थे ॥ ४ ॥

इन सर्व श्रेष्ठ महान नीति ज्ञानवानों की कथा ।
सम्पूर्ण पाप विनाशिनी सुख दायिनी है सर्वथा ।
शिवि थे यहीं के शुभ नृपति थे नाशते सन्ताप को ।
प्रिय पाठको, बतला रहा हूं हाल उनका आपको ॥ ५ ॥

था उशीनर देश सुन्दर सभ्य और बढ़ा चढ़ा ।
विश्व कर्म्मा ने मनो निज हाथ से उसको गढ़ा ।
फैला हुआ पर्य्यन्त कोशों स्वच्छ अरु सुविशाल था ।
धान्य धन से युक्त अति सुखशाल मालामाल था ॥ ६ ॥

थी सब प्रजा सन्तुष्ट उसको कुछ नहीं भी कष्ट था ।
चोर और न दस्यु, उनका नाम भी तो नष्ट था ।
इस देश के नृप शिवि प्रजा को पुत्र सम थे पालते ।
थे पुण्य का विस्तार करते पाप को थे घालते ॥ ७ ॥

शत्रुओं के हिय हिलाते थे सदा निज कर्म से ।
निन्यानवे क्रतु को किया नृप ने बड़े सद्धर्म्म से ।
सुर हो गये भयभीत सब, सुर-राज भी डरने लगे ।
नृप पुण्य करने नष्ट को सदुपाय वे करने लगे ॥ ८ ॥

नर-नाथ को सुर-नाथ ने छल छद्म से छलना चहा ।
स्वार्थ का रहता सभी को ध्यान कैसा है अहा ॥
बन गये तब श्येन वे सुर-राज लज्जा त्याग के ।
अग्नि भी बन के कपोत चले वहां से भाग के ॥ ९ ॥

श्येन जा शिविराज पहँ झपटा कबूतर पर वहां
यज्ञ-थल में हो रहा था यज्ञ कर्म्म बड़ा जहां ।
जाकर कबूतर बैठ गा सुख मान राजोछंग में ।
"रक्षा करो मम" यों कहा नर-बैन ही के ढंग में ॥ १० ॥

सारी सभा तब हो चकित स्तम्भित हुई क्षण में वहां
श्येन ने नर बैन में नृप से तुरत यों कहाः—
"नृप छोड़ दो पक्षी अभी यह तुच्छ मम आहार है ।
छीनो न इसको मुझ क्षुधित से क्या यही आचार है ? ॥ ११ ॥

नृप ने कहा "हे श्येन तेरा काज खाना मांस है।
ले और भोजन तू अभी जो कुछ हमारे पास है।
हे द्विज तुझे सारी भयानक जो लगी होवे क्षुधा।
तेरे सुरुच्यनुसार भोजन दूँ कहो ला दूं सुधा॥ १२॥

है हमारे यह शरण आया हुआ पक्षी लखो।
है कांपता यह कह रहा हमको "प्रभो अब तो रखो।
इस जीव की रक्षा करूँगा प्राण पण से, धर्म्म है।
शरणागतों का मान रखना क्षत्रियों का कर्म्म है"॥ १३॥

श्येन बोला "मैं नहीं कुछ अन्य भोजन चाहता।
पारावतों में तुच्छ मैं इस जीव ही को चाहता।
किन्तु हां यदि तुम हमें निज मांस भोजन के लिये।
तौल दो कलरव बराबर तो हमारा जी जिये"॥ १४॥

नृप ने कहा 'स्वीकार है गिनता नहीं निज जान को।
किन्तु जीते जी न सकता तोड़ मैं निज बान को'।
"तौल ले तू मांस मम" नर नाथ ने तब यों कहा
और मँगवाया तराजू एक अति उत्तम अहा!॥१५॥

रक्खा कबूतर एक पलड़े में उठा शुभचित्त हो।
मांस को निज काटते थे रक्त से परिवृत्त हो।
पर अहा वह मांस का पलड़ा उठा ही रह गया।
वीर नृप से अब अयश निज किन्तु भी न सहा गया॥ १६॥

काट कर हर अंग के वे मांस अब भरने लगे।
देव गण आकाश में सब हिल उठे डरने लगे।
भूमि सारी रञ्जिता हो तव गई उस रक्त से।
शिव नाचने तब ही लगे होकर मुदित शिवि भक्त से॥ १७॥

किन्तु फिर भी भार में पत्ती अहा वह बढ़ गया।
धन्य नरवर नृप तदा स-शरीर उसमें चढ़ गया ॥
ब्रह्माण्ड सारा हिल उठा क्षिति भी लगी अति कांपने।
भार से घबरा, लगे तब शेष जी भी हांफने ॥ १८ ॥

सब देव तब आये वहां निज तिय सहित निज वेश में।
इन्द्राग्नि भी तब हो गये अपने पुराने भेष में ॥
थीं नृत्य करतीं अप्सरा, गन्धर्व गन गाने लगे।
जयकार कर सुन्दर सुमन सब अमर बरसाने लगे ॥ १९ ॥

तब ला तुरत देवेन्द्र ने अमृत वहां बरसा दिया।
मुनि सिद्ध नृप गन रंक सबको एक सा हरषा दिया ॥
नृप श्रेष्ठ शिवि सुन्दर अभय अक्षत तथा तब हो गये।
सब चिन्ह क्षत के मिट गये रक्तादि भी सब खो गये ॥२०॥

तब दिव्य घोड़ों से जुता इक दिव्य रथ आया वहां।
जो शंख कुश शस्त्रादि से था युक्त अरु भारी महा ॥
नृप शिवि, सुनो हे पाठको ! गे स्वर्ग कर के नाम को।
री लेखनी बस कर कथा लिख ले कछुक विश्राम को ॥

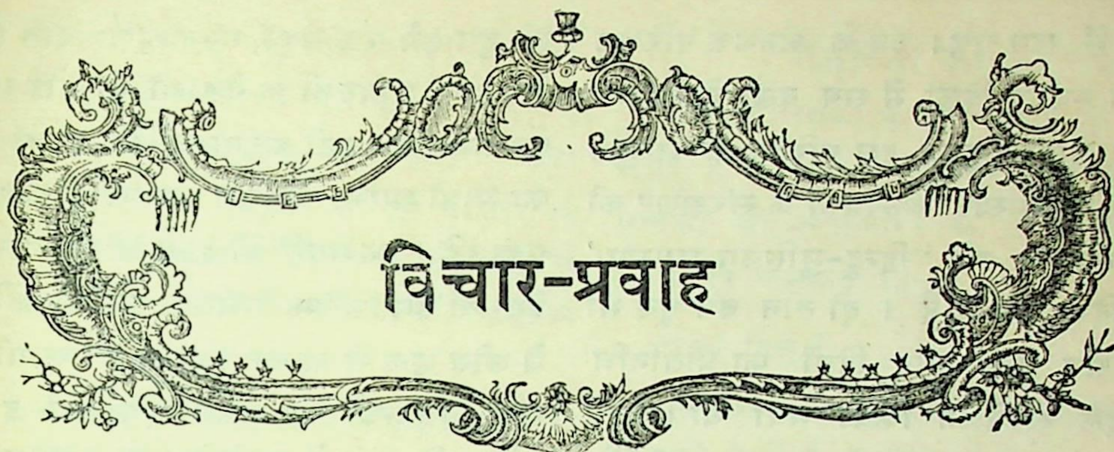
—"नाथ"

यदि मेरे सिपाही शिक्षा प्राप्त कर के प्रत्येक बात पर अपनी बुद्धि का प्रयोग करने लगें तो फ़ौज में एक भी सिपाही न रहेगा।

—फ्रेडरिक दि ग्रेट.

घोड़े को अच्छा तभी कहा जाता है जब उस के लक्षण अच्छे हों, हीरे और जवाहरात की कीमत उन की आब से परखी जाती है। इतने पर भी यदि कोई कहता है कि किसी मनुष्य को सिर्फ इस लिये भला और बड़ा मान लिया जाय कि उसके बुजुर्ग बड़े थे, तो ऐसे मक्कारी से भरे हुए विचारों का मुकाबला युक्तियों से नहीं, दुनिया में तलवार से होता रहा है।

—डान्टे.



दिल्ली का सर्व दल सम्मेलन.



पावली के दिन लार्ड इरविन ने घोषणा की थी कि भारतीय शासन-सुधारों पर विचार करने के लिए मज़दूर सरकार भविष्य—जिसकी तिथि अनिश्चित है—में एक परिषद् का आयोजन करेगी। इस में सब हितों और स्वार्थों को प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा। इसी घोषणा में वायसराय ने कहा कि भारत का राजनैतिक ध्येय औपनिवेशिक स्वराज्य है। वायसराय के मुखारविन्द से "औपनिवेशिक स्वराज्य" शब्द निकलते ही लिबरल लोग उछल पड़े, उनकी खुशी का कुछ ठिकाना न रहा। थोड़े दिन तक तो सभी राजनीतिक—यहां तक कि राष्ट्रीय महासभा भी—और धार्मिक दल इस भूलभुलैय्या में भटकते रहे। पार्लमैण्ट के बहस मुबाहिसे तथा सरकार के "दिल्ली-विज्ञप्ति" की शर्तों को पूरा न करने के कारण— यहां तक कि उसके विरुद्ध राजनीतिक क़ैदियों के साथ निरंकुशतापूर्ण व्यवहारों को देख कर, कांग्रेस उस घोषणा का तत्व समझ गई। २३ दिसम्बर १९२९ के गान्धी-इरविन संवाद से तो यह और भी अधिक स्पष्ट होगया कि निकट भविष्य में भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य की आशा नहीं करनी चाहिये। वायसराय महात्मा जी को यह विश्वास न दिला सके कि परिषद् द्वारा बनाए गए शासनविधान को पार्लमैण्ट बिना किसी परिवर्तन के स्वीकार कर लेगी और न ही वे इस बात का विश्वास दिला सके कि परिषद् में "औपनिवेशिक स्थिति" के आधार पर शासन-विधान बनाया जावेगा। एसेम्बली में भाषण करते हुए वायसराय ने स्पष्ट कर दिया है कि "उद्देश्य की व्याख्या करना और बात है तथा उस उद्देश्य को प्राप्त करना सर्वथा दूसरी बात है।" इन सब घटनाओं और तथ्यों को देखते हुए कांग्रेस का मोह दूर हो गया। पर आज भी हमारे लिबरल तथा उनके साथी इस मोह माया में पड़े हुए हैं।

यदि सचमुच इस परिषद् में भारत के प्रतिनिधियों ने जाना हो, तो यह नितान्त आवश्यक है कि वे लोग आपस में एक सुलहनामा करें और उसे ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के सन्मुख ज़ोरदार तरीके से पेश करें। लार्ड इरविन ने उदार नेताओं को यह सलाह दी। परिणाम-स्वरूप लिबरल-फ़ेडरेशन ने मद्रास के अधिवेशन में सर्वदल सम्मेलन के आयोजन करने का प्रस्ताव पास किया। सर तेज बहादुर सप्रू को इसका संयोजक नियत किया गया। लिबरल-फ़ेडरेशन के अधिवेशन के समाप्त होते ही श्रीसप्रू

इस कार्य में लग गए। उन के अनथक परिश्रम के परिणाम स्वरूप दिल्ली में सब दलों के नेताओं की परिषद् प्रारम्भ हुई। इस परिषद् के सन्मुख सब से बड़ी समस्या "अल्पमतों के संरक्षण" की है। साधारणतया इसे "हिन्दू-मुस्लिम समस्या" का नाम दिया जाता है। दो तीन वर्ष पूर्व भी भारत में सब दलों और हितों का प्रतिनिधि-भूत सर्वदल सम्मेलन किया गया था। उसमें देश के उच्च कोटि के नेताओं—महात्मा गान्धी और पं० मोतीलाल नेहरू—ने भी भाग लिया था। पर वह सम्मेलन भी कलकत्ते में "अल्पमत-समस्या" की भयंकर चट्टान से टकरा कर चकना चूर हो गया। आज उसी भीषण समस्या को हल करने का प्रयत्न दिल्ली में विभिन्न दलों के नेता कर रहे हैं।

वे लोग इस बात को अनुभव कर रहे हैं कि इस समस्या को सुलझाए बिना लण्डन-परिषद् से वे कुछ नहीं प्राप्त कर सकते। यह भय और आशंका ही उन को एकत्र संगठित करने में काफ़ी सहायता दे रही है। हम उन के इस प्रयत्न की सराहना करते हैं और उन की सफलता के अत्यधिक इच्छुक हैं। पर दिल्ली में उपस्थित नेताओं की सेवा में कुछ आवेदन करना भी अत्यन्त आवश्यक है। हिन्दुओं की इस मांग से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि राष्ट्रीयता के क्षेत्र में साम्प्रदायिकता को मत घुसेड़ो। साथ ही अल्पमतों की मांगों को भी ठुकराया नहीं जा सकता। उन की आशंकाएं सत्य हैं। हमें अपने अधिकारों की रक्षा के लिए तुले हुए अल्पमतों की मांगों पर ध्यानपूर्वक विचार करना होगा। अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय व्यवहारों में अल्पमतों के संरक्षण के सिद्धान्त को स्वीकृत किया गया है। परन्तु अल्पमतों को संरक्षा देते हुए हमें एक बहुत महत्वपूर्ण बात पर ध्यान देना होगा। दिल्ली के नेताओं को कोई इस प्रकार का समझौता नहीं करना चाहिए, जिस से भारत का भावी शासन-विधान स्थायी संरक्षणों से भरा पड़ा रहे। अल्पमतों को इसी आधार पर संरक्षण देना चाहिए कि 'यह समस्या स्थायी नहीं है'। यदि वे लोग भूल से शासन विधान को स्थायी सीमाओं और प्रतिबन्धों से जकड़ देंगे, तो हमें मानना पड़ेगा कि उन को अपने देश के राष्ट्रीय विकास, एकता और अनुभूति में विश्वास नहीं है। आज संसार से मज़हब का निरंकुश शासन उठ गया है। आज मनुष्यों को मज़हब की अपेक्षा आर्थिक हित अधिक अपील करते हैं। मनुष्यों का जीवन आर्थिक है, आर्थिक समस्याएं ही स्वतन्त्र भारत की नीति का संचालन करेंगी। उन्हीं के आधार पर देश में विभिन्न दलों का प्रादुर्भाव होगा। यह केवल स्वप्न नहीं है, संसार का इतिहास हमारे कथन का साक्षी है। दूसरे देशों को छोड़ दीजिए, भारत से भी इस प्रकार के उदाहरण दिए जा सकते हैं। भारत में साम्यवादी विचारों की लहर प्रकट हुई है। इसका आधार अर्थ है। इस लहर में बहने वालों के हित एक हैं। धर्म उन के मार्ग में बाधक नहीं है। उन का लक्ष्य आर्थिक क्रान्ति है। यहां तक कि धर्म की सत्ता को ही वे हटा देना चाहते हैं। हिन्दु, मुसलमान, ईसाई और सिक्ख सभी इसमें शामिल हैं। इन में कभी अल्पमत की समस्या उठती ही नहीं। इन सब तथ्यों के होते हुए हम किस प्रकार स्वीकार कर सकते हैं कि 'अल्पमत की समस्या स्थायी है, अतः हमें शासन विधान को सीमित कर देना चाहिए'। पूंजीपतियों और भूमिपतियों—चाहे वे किसी भी मज़हब को मानने वाले क्यों न हों—के स्वार्थ एक हैं और किसानों और मज़दूरों के एक। ये स्वार्थ मज़हब को खदेड़ देंगे और

इन्हीं की नींव पर भारत की एकता का विकास होगा। अतः आवश्यक प्रतीत होता है कि अल्पमतों की समस्या पर इसी दृष्टिकोण से विचार किया जाय। यदि दिल्ली के नेताओं ने इस आधार पर सर्वदलसम्मत कोई समझौता किया तो कांग्रेस को उस के स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट न होगी।

इस वक्तव्य को समाप्त करने से पूर्व हमें एक दो बातों पर और विचार कर लेना उचित प्रतीत होता है। हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि इस सर्व-दल सम्मेलन और कांग्रेस द्वारा आमन्त्रित सर्वदल सम्मेलन में आधारभूत भेद है। वह शासन विधान किसी लण्डन-परिषद्—गोल मेज़ परिषद् नहीं—के सन्मुख उपस्थित करने के लिए तय्यार नहीं किया गया था, वह बिना किसी भी परिवर्तन के ब्रिटिश पार्लमेण्ट द्वारा स्वीकार करने के लिए बनाया गया था। उस का आधार "औपनिवेशिक स्वराज्य" था, उस में भारत के विभिन्न दलों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि थे। पर इस सम्मेलन का उद्देश्य उस परिषद् के सम्मुख अपनी मांगें पेश करना है जहां कि औपनिवेशिक स्वाधीनता के आधार पर शासन विधान का निर्माण न होगा, जिस में अंग्रेजी सरकार यथेष्ट परिवर्तन कर सकेगी। इन सब बातों के होते हुए भी विभिन्न दल मोहमाया में पड़े हुए हैं। सरकार लण्डन में असंख्य हितों—कल्पित या वास्तविक—के प्रतिनिधियों को बुला कर तमाशा करना चाहती है। केन्द्रीय-साइमन-समिति की तरह यह अभिनय भी संसार को दिखाया जावेगा। हमारी इस आशंका की पुष्टि वह अल्पमत परिषद् कर रही है जो कि सप्रू-परिषद् के टूटने की प्रतीक्षा में है। वह अपनी मांगों को अलग उपस्थित करेगी। सरकार के लिए रास्ता साफ़ है। वह दुनिया के सामने निरपराध ठहर जायगी।

महात्मा जी का पत्र

महात्मा गांधी ने वायसराय के पास जो पत्र भेजा है उसका पूरा हिन्दी रूपान्तर 'ज्योति' के पाठकों की जानकारी के लिये यहां देना हम आवश्यक समझते हैं:—

'प्रिय मित्र !

सविनय अवज्ञा पर कदम रखने तथा जिस बात से इतने दिनों से डरता था उसका खतरा उठाने से पहले स्थिति स्पष्ट करने के लिये एक अवसर निकाल लेना मैं पसन्द करता हूँ। मेरा व्यक्तिगत विश्वास पूर्णतया स्पष्ट है। जानबूझ कर मैं किसी जीवधारी का कष्ट नहीं पहुंचा सकता, मनुष्य समाज को तो कदापि नहीं, चाहे वे मेरा अधिक से अधिक अनिष्ट ही क्यों न कर डालें। अतः जहां हम असहयोगी यह समझते हैं कि बृटिश शासन एक भयंकर श्राप है वहां हम एक भी अंग्रेज़ का अनिष्ट करना या भारत में उसके न्याय्य अधिकारों पर आघात पहुँचाना नहीं चाहते। मेरी बातों से भ्रम न फैले इसके लिए मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि यद्यपि मैं समझता हूँ कि भारत में अंग्रेजी राज्य एक कंटक है तो भी केवल इसी लिये अंग्रेज़ों को संसार की किसी अन्य जाति से निकृष्ट नहीं समझता। अनेक अंग्रेजों को मुझे अपना अनन्य मित्र बनाने का सौभाग्य प्राप्त है। यदि सच पूछा जाय तो अंग्रेज़ी राज्य की बुराईयों का अधिक ज्ञान मुझे उन साहसी और स्पष्टवक्ता अंग्रेज़ों के लेखों से ही मिला है जिन्होंने उस शासन के सम्बन्ध में अप्रिय सत्य भी कह डालने में संकोच नहीं किया है।

और फिर बृटिश शासन को हम ऐसा शूल समझते क्यों हैं? इसने ही शोषण करने की विकसित प्रणाली तथा फ़ौजी एवं दीवानी शासन के भयंकर खर्चों से, जिसे वे कभी बर्दाश्त नहीं कर

सकते वहां के करोड़ों निवासियों को दरिद्र बना डाला है। राजनीतिक दृष्टि से इसने हमें दास बनाया है। इसने हमारी संस्कृति की नींव को खोखला कर डाला है। तथा निरस्त्रीकरण की नीति से आध्यात्मिकता में भी पतित बना दिया है। सबों के हथियार छिन जाने से हमारी आन्तरिक शक्ति का अभाव हो गया है जिससे हम कायरता पूर्ण असहायावस्था में पहुँच गये हैं। अपने अनेक देशवासियों की तरह मैं भी यही आशा लगाये बैठा था आपके द्वारा प्रस्तावित गोलमेज़ कानफरेंस कुछ हल निकालेगी। किन्तु आपने जब यह स्पष्ट कह दिया कि आप कोई ऐसा निश्चय नहीं दिला सकते कि बृटिश कैबिनेट या आप इस बात को प्रतिज्ञा करते हैं कि औपनिवेशिक स्वराज्य की योजना का समर्थन करेंगे। अतः वह राउण्डटेबिल कानफरेंस भी करोड़ों मूक भारतीयों को अज्ञात पिपासा को तृप्त नहीं कर सकती। यह कहने की तो आवश्यकता नहीं कि पार्लमैण्ट की स्वीकृति उपेक्षा का कभी सवाल नहीं उठा था। क्योंकि वैसे उदाहरणों की कमी नहीं जब बृटिश कैबिनेटने पार्लमैण्ट की आज्ञा की उपेक्षा में ही कितनी ही नीतियां निर्द्धारित कर डाली हैं। दिल्ली में जब हमारे वार्तालापका कोई फल न हुआ तो पण्डित मोतीलाल या मेरे लिए सिवा इसके और कोई चारा नहीं था कि १९२८ में कलकत्ता कांग्रेस ने जो पवित्र निश्चय किया था उसे पूरा करने की ओर पग बढ़ाया जाय। किन्तु स्वाधीनता के प्रस्ताव से भी भय की बात न थी यदि आप की घोषणा में आया हुआ औपनिवेशिक स्वराज्य के शब्द का वही अर्थ माना जाता जो माना जा चुका है। क्योंकि क्या ज़िम्मेदार अंग्रेज़ राजनीतिज्ञों ने ही इसे नहीं स्वीकार किया है कि औपनिवेशिक स्वराज्य भी आंशिक स्वाधीनता ही है। भय की बात तो मेरी यह है कि निकट भविष्य में भारत को ऐसा औपनिवेशिक स्वराज्य देने की कभी कामना ही नहीं की गयी, किन्तु, ये तो गत इतिहास की बातें हैं। घोषणा के बाद भी कितनी ही घटनायें हो गयीं जिनसे स्पष्ट रूप से बृटिश नीति का खुलासा हो गया है। यह दिन के समान प्रत्यक्ष दिखायी पड़ रहा है कि ज़िम्मेदार अंग्रेज़ राजनीतिज्ञ उसे बृटिश नीति में कोई फेर बदल करने का विचार भी नहीं करते जिन से भारत में बृटेन व्यापार पर विपरीत असर पहुंचे या जिससे भारत और बृटेन के व्यापारिक सम्बन्ध में निष्पक्ष एवं तीव्र मीमांसा की आवश्यकता पड़े। यदि शोषण के क्रम का अन्त करने को कुछ नहीं किया गया तो और भी तेजी के साथ भारत का रक्त चूसा जायगा। अर्थ सदस्य १८ पेंस के रेशियो को निश्चित बात समझते हैं जो कलम के केवल एक इशारे से भारत का कई करोड़ चूस ले जाता है और जब प्रत्यक्ष क्रिया के द्वारा इस निश्चित तथ्य को अनिश्चित करने के लिये बैध ढंग से कोई चेष्टा की जाती है तो अन्यों के साथ आप भी धनी जमींदारों से इसकी अपील करने से बाज़ नहीं आते कि उस व्यवस्था के नाम पर जो भारत को पीती जा रही है कुचलने में सहायता दें। राष्ट्र के नाम पर काम करने वाले जब तक यह समझ न जायें तथा स्वाधीनता की पुकार मचाने वालों के पिछे छिपे उद्देश्य को इससे संबंध रखने वाले सबों के सामने न रख दें तब तक स्वाधीनता को हमारे पास आने में भी हर तरह का खतरा है तथा वह उन करोड़ों मूक श्रमिकों के किसी काम की न होगी जिनके लिये उसकी मांग की जा रही है तथा जिन्हें इसकी ज़रूरत है। यही कारण है जो मैं इधर स्वाधीनता का वास्तविक अर्थ जन साधारण को समझाने लगा हूँ।

अब मैं आपके सामने कुछ आवश्यक प्रश्न रखता हूँ। ज़मीन के करके असह्य भार में जो आपका एक बहुत बड़ा अंश है—स्वाधीन भारत में काफ़ी सुधार होगा। जिस कयामी बन्दोबस्त की इतनी प्रशंसा की जाती हैं वह भी इनेगिने धनी जमींदारों को हो लाभ पहुंचाता है रैयत को नहीं। रैयत तो उसी तरह असहाय है जैसी पहले थी। वह तो उनकी इच्छानुसार रैयत मात्र है। तब केवल मालगुज़ारी में ही काफ़ी कमीन की जायगी बल्कि मालगुज़ारी की सारी प्रणाली में ही ऐसा सुधार किया जायगा जिसमें सबसे पहले रैयतों की भलाई है। किन्तु, अंग्रेजों की यह प्रणाली तो मालूम होता है कि उनके अस्तित्व को लोप करने के ही लिये बनायी गयी है। जिस नमक का वह उपयोग करती हैं उस पर भी इतना कर लगा दिया गया है कि उसके लिये भयङ्कर बोझ हो गया है। करका हृदयहीन निष्पक्षपात तो तब दिखाई पड़ता है जब यह देखा जाता है कि नमक का उपयोग धनियों से कहीं अधिक गरीब ही किया करते हैं। फिर नशे और शराब का कर भी गरीबों से ही मिलता है। यह उनके स्वास्थ्य एवं आत्मिकता दोनों ही की नींव को खोखला कर रखते हैं। व्यक्तिगत स्वाधीनता की दलील पेश कर इसकी रक्षा की जाती है पर वास्तव में वह अपने लिये रखा जाता है। १९१९ के सुधारों के कर्त्ताओं ने इसे द्वैधशासन में जवाब देह कहे जाने वालों के मत्थे मढ़ दिया है जिससे उस के निवारण का बोझ उन पर पड़ जाय जिस से आरम्भ से ही सदैव के लिये अशक्त बना दिया गया। यदि अभागा मिनिस्टर इस आय को बन्द कर दे तो शिक्षा के लिये खर्च करने को उसके पास और धन किस तरह जाय क्योंकि आमदनी

का और कोई उसके पास साधन नहीं
करके बोझ से तो गरीब कुचल ही ग
सहायक व्यवसाय सूत कताई का भी न
गया जिससे धन-उत्पादन की योग्यता
भारत की पतितावस्था को पहुंचाने वा
अध्याय बिना उसका नाम आये
किया जा सकता। अखबारों में
सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा जा चुका है
भारत का यह अवश्य कर्त्तव्य हो
अभियोगों की कड़ी जांच करे और नि
से जो अपराधी पाया जाय उसकी
इन ऊपर लिखे न्यायों को इस लिये
जा रहा है जिस में संसार भर में स
खर्चीला यह विदेशी शासन कायम रख
अपनी तनख्वाह को ही लीजिये। अ
खर्चों के साथ साथ प्रतिमास इक्कीस
अधिक ले रही है। बृटेन का प्रधान
हज़ार पौंड सालाना अर्थात् कुछ अधि
रुपये मासिक पाता है। वर्तमान एक्सचें
मुताबिक आप सात सौ से भी अधि
पाते हैं जहां भारतीयों की औसत आ
प्रति दिन से भी कम है। बृटेन का प्रधा
सौ अस्सी रुपया प्रति दिन पाता
बृटेन की औसत आय प्रति दिन लग
है। इस तरह भारतीयों की औसत
पांच हज़ार गुना से अधिक पाते हैं।
का प्रधान मन्त्री बृटेन की औसत
नब्बे गुना अधिक पाता है। मेरी आ
यही प्रार्थना है कि आप इन बातों पर
मैंने भी सच्चाई दिखाने के लिये
उदाहरण दिया है। मनुष्य की हैसि
की बहुत श्रद्धा करता हूं। मैं आ

आघात पहुंचाना नहीं चाहता। मैं जानता हूँ कि जितनी तनख्वाह आप पाते हैं उतनी की आपको ज़रूरत है। संभवतः आपकी सारी तनख्वाह दान में चली जाती है किन्तु उस प्रणाली का जो ऐसे प्रबन्ध की ज़िम्मेवार है तुरन्त अन्त कर देना चाहिये जो बात वायसराय की तनख्वाह के सम्बन्ध में सच है वही सारे शासन के विषय में सच है। परन्तु जहां कर में काफी से अधिक कमी करने की ज़रूरत है वहां शासन के इन खर्चों में भी वैसी जड़ मूल से कमी करने की ज़रूरत है। इस का अर्थ है कि समस्त शासन योजना में हा परिवर्तन किया जाय और बिना स्वाधीनता के यह परिवर्तन असंभव है। अतः मेरी राय में २६ जनवरी को जो प्रदर्शन किया गया तथा जिस में लाखों देहातियों ने जान बूझ कर भाग लिया उन के लिये स्वाधीनता का अर्थ इस मरण तुल्य बोझ से मुक्ति पाना ही है। मैं तो समझता हूं कि भारतीयों के एकस्वर से विरोध करने पर भी ग्रेटबृटेन राजनीतिक दलों में ऐसा एक भी नहीं है जो भारत से प्राप्त अपने हिस्से को छोड़ने को तैय्यार हो। फिर भी यदि भारत को एक राष्ट्र बन कर रहना है, यदि उस के निवासियों को गल गल कर भूखों मरने से बचना है तो तुरन्त उस के लिये कोई उपाय करना ही होगा।

प्रस्तावित कानफरेन्स निश्चय ही उस का उपाय नहीं है। यह दलीलों से समझाने की बात नहीं है। यह तो शक्तियों की तुलना की बात है। ग्रेटबृटेन को चाहे इस बात की धारणा बँधे या नहीं वह तो भारत में अपने व्यापारिक हितों की अपनी शक्ति भर रक्षा करेगा ही। अतः भारत को वैसी काफ़ी शक्ति प्राप्त करने की ज़रूरत है जिस में मृत्यु का आलिङ्गन करने से उसे छुटकारा मिल सके। यह तो मानी हुई बात है कि वर्तमान में कितना ही नगण्य एवं असंगठित हो पर हिन्सावादी दल भी ज़ोर पकड़ता जा रहा है तथा अपने अस्तित्व का अनुभव कर रहा है। इस का भी यही उद्देश्य है जो मेरा है किन्तु मेरी यह पक्की धारणा है कि उन करोड़ों भूकों का ईप्सित फल इस से नहीं मिल सकता और मेरी यह धारणा दिन दिन दृढ़ होती जाती है कि विशुद्ध अहिंसा से ही बृटिश सरकार की सङ्गठित हिन्सा को दबाया जासकता है। कितनों ही का ख्याल है कि अहिन्सा में सक्रिय शक्ति नहीं है। मेरा सक्रिय अनुभव परिमित है तो भी निस्सन्देह वह बतलाता है कि अहिन्सा में अत्यधिक क्रियात्मिक शक्ति हो सकती है। मेरा यह मतलब है कि उसी शक्ति को बृटिश शासन की संगठित हिन्सा तथा बढ़ते हुए हिन्सावादी दल की असंगठित शक्ति के विरुद्ध लगाऊं। चुपचाप बैठ जाना ऊपर लिखी दोनों दोनों शक्तियों की लगाम ढीली छोड़ देना होगा।

अहिन्सा की सार्थकतापर अटूट विश्वास में कोई शंका न करते हुए मेरे लिये यह पाप होगा यदि मैं और अधिक प्रतीक्षा करूं। वह अहिन्सा भद्र अवज्ञा के रूप में प्रकट की जायगी और वर्तमान में उसमें केवल सत्याग्रह आश्रम के निवासी ही भाग लेंगे किन्तु अन्त में वे सभी इसमें शामिल हो सकेंगे जो इसकी सीमा के भीतर रहकर वैसा करना चाहेंगे। मैं जानता हूँ कि भद्र अवज्ञा आरम्भ करके मैं ऐसा खतरा मोल ले लूंगा जिसे पागलपन कहा जा सकता है पर सत्य की विजय आजतक बिना खतरे का सामना किये नहीं हुई है। बहुधा उनका स्वरूप अत्यन्त गम्भीर होता है। एक ऐसे राष्ट्र के मत परिवर्तन के लिये किसी भी आपत्ति का सामना किया जा सकता है जो जानबूझकर या अनजान में एक ऐसे दूसरे राष्ट्र का शिकार

कर रहा है जो उससे संख्या में अधिक है और कहीं ज़्यादा प्राचीन है और संस्कृत भी कम नहीं है। मैंने जानकर 'मतपरिवर्तन' शब्द का उपयोग किया है क्योंकि मेरी आकांक्षा केवल यही है कि अहिंसा द्वारा बृटिश जनताकी मति बदल दूं और उसे बता दूँ कि भारत से वह कैसा अन्याय कर रही है। मैं आपके देशभाइयों को हानि पहुँचाना नहीं चाहता। मैं उनकी उतनी ही सेवा करना चाहता हूँ जितनी स्वयं अपने देशभाइयों की। मेरा विश्वास है कि मैं बराबर उनकी सेवा करता आया हूँ। सन १९१९ तक आंख मूंदकर मैं उनकी सेवा करता रहा पर जब मेरी आंखें खुल गयी और मैंने असहयोग आरम्भ किया तब भी मेरा उद्देश उनकी सेवा करना ही था। मैंने उसी हथियार से काम लिया जिसे नम्रता एवं सफलता पूर्वक मैंने स्वयं अपने कुटुम्ब के परमप्रिय सम्बन्धियों के विरुद्ध उठाया था। अगर आपके देशवासियों से मुझे अपने देशभाइयों के बराबर प्रेम है, तो यह बात अधिक समयतक छिपी नहीं रह सकती। वे भी इस बात को उसी प्रकार स्वीकार करेंगे जिस प्रकार वर्षों की परीक्षा के उपरान्त मेरे कुटुम्ब ने किया था। यदि जनसाधारण ने मेरा साथ दिया जैसी मुझे आशा है—तो बृटिश राष्ट्र के पीछे हटनेसे पहले उन्हें जो कष्ट सहने पड़ेंगे वे कड़े से कड़े दिल को भी पिघला देंगे। भद्रअवज्ञा द्वारा उन बुराइयों से संग्राम किया जायेगा जो मैंने चुन निकाली हैं। इन बुराइयों के कारण ही हम बृटेन से सम्बन्ध विच्छेद करना चाहते हैं। जब उनका अन्त हो जायेगा तो रास्ता आसान हो जायेगा। तब मित्रतापूर्ण समझौते की बातचीत का मार्ग भी खुल जायेगा। अगर भारत से बृटेन के बाणिज्यों में लालच की बू बास न रहे तो हमारी स्वतन्त्रता स्वीकार करने में आपको कठिनाई न होगी।

अतएव मैं सम्मानपूर्वक आपको इन बुराइयों को शीघ्र दूर करनेके लिये आमन्त्रित करता हूँ जिससे ऐसे दो बराबरी वालों के बीच सच्ची कानफरेंस का रास्ता खुल जायेगा जो स्वैच्छिक मातृभावसे प्रेरित होकर मानवजाति के एकहित कीउन्नत करने में दिलचवस्पी लेते हैं और जो परस्पर सहायता एवं व्यापार के लिये ऐसे नियम बना सकें जो दोनों के लिये समानरूप से हितकर हों। इस देश पर अभाग्यवश जिन साँप्रदायिक समस्याओं का प्रभाव पड़ रहा है, उनपर आपने फ़िज़ूल ही इतना ज़ोर दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि सरकार को किसी भी स्कीम के लिये उनका खयाल रखना जरूरी है पर उन महान् समस्याओं पर उनका कोई असर नहीं पड़ सकता जो जातियों से कहीं ऊपर हैं और उनपर जिनका प्रभाव समान रूप से पड़ता है। लेकिन अगर आप इन बुराइयों को दूर करने का कोई उपाय नहीं निकाल सकते और मेरे पत्र का आपके हृदय पर कोई असर नहीं हुआ तो इसी महीने की ११ तारीख से मैं आश्रम के उन सहकारियों के साथ, जो मेरा साथ देने के लिये तैयार होंगे, नमक कानून की अवज्ञा आरम्भ कर दूँगा। दरिद्र मनुष्य के दृष्टि कोणसे मैं इस टेक्स को सभी के लिये हदसे ज्यादा अन्यायपूण समझता हूं। स्वतन्त्रता के आँदोलन का देश के दरिद्रतम लोगों के लिये होना अनिवार्य है, इस लिये इस खराबी से ही शुरुआत होगी। आश्चर्य तो यह है कि इतने जमाने से हम ऐसे बेरहम इरादे के आगे झुकते आये हैं। मैं जानता हूँ कि मुझे गिरफ़्तार करके आप मेरे इरादे को तोड़ सकते हैं। तोभी मुझे आशा है कि मेरे बाद भी नियन्त्रित रूप से काम करने वाले लाखों आदमी रहेंगे और उस नमक कानून को भंग करते हुए वे उसकी सजा भुगतने के लिये तैयार रहेंगे—

जिसे किसी विधान को कलंकित न करना चाहिये था।

यथाशक्ति, मैं आपको किसी प्रकार की गैर जरूरी हैरानी में फंसाना नहीं चाहता। यदि आप समझते हैं कि मेरे पत्र में कोई तथ्य है और आप मुझ से इन मामलों पर बातचीत करना चाहते हैं और इस उद्देश से आप चाहते हैं कि मैं पत्र को प्रकाशित न करूं—तो आपके पास इसके पहुँचाने के बाद उक्त आशय का तार मिलने पर मैं प्रसन्नता पूर्वक अपने आपको रोक लूंगा। तथापि आपको इतनी कृपा करनी चाहिये कि यदि इस पत्र से सहमत होना आपके लिये सम्भव न हो तो मुझे अपने पत्र से विचलित न कीजिये। इस चिट्ठी से किसी प्रकार की धमकी देने का उद्देश नहीं है बल्कि यह किसी भी भद्र अवज्ञाकारी का पवित्र कर्त्तव्य है। इसीलिये मैं खासतौर से उसे एक अंग्रेज़ मित्र के हाथों से भेज रहा हूं जो भारतीय पक्ष को न्याय्य समझते हैं और अहिंसा पर पूर्ण आस्था रखते हैं। जान पड़ता है कि इसी काम के लिये ईश्वरने उन्हें मेरे पास भेजा था।

मैं हूं, आपका सच्चा दोस्त—

मोहनदास करमचन्द गाँधी।

ज़मीन हरी भरी हो, ऋतु भी अनुकूल हो, उपज भी खूब हो फिर भी यदि किसान मज़दूर और श्रमी लोग भूख से तड़प रहे हों तो समझना चाहिये कि देश का शासन निकम्मे हाथों में है।

—लंडूर.

जो भी मनुष्य अपने पसीने की गाढ़ी मेहनत से कुछ कमाता है, उसे यह बतलाने के लिये कि उसकी कमाई पर सिर्फ उसी का हक है, आसमान से किसी फरिश्ते या इलहामी किताब के उतरने की ज़रूरत नहीं।

—राबर्ट अंग्रसोल.

तीस साल से कम उमर का आदमी जो वर्तमान समय के सामाजिक व आर्थिक संगठन का अध्ययन-करने के बाद भी विद्रोही नहीं बनता, समझना चाहिये कि वह निरा बुद्धू है।

—जार्ज वर्नडशा.

आज कल का समाज झूठ, फ़रेब, अत्याचार और हत्या आदि अपराधों को सहन कर सकता है किन्तु किसी नये विचार के प्रचार को सहन नहीं कर सकता।

—फ्रेडरिक हैरिसन.

* ओ३म् *

गुरुकुल कांगड़ी के पुस्तक भण्डार

की

अमूल्य पुस्तकें

१०) रु० से अधिक की पुस्तकें खरीदने वाले को १५% और २०) से अधिक की पुस्तकें खरीदने वाले को २०% कमीशन दिया जावेगा।

१. भारतवर्ष का इतिहास १म् भाग	१॥)	श्री आचार्य्य रामदेव जी कृत
२. भारतवर्ष का इतिहास २य "	१॥।)	"
३. पुराणमत पर्य्यालोचन	३)	"
४. सन्ध्या का अनुष्ठान	।)	श्री पं० सातवलेकर जी कृत
५. यजुर्वेद अध्याय ३०	१)	" "
६. " " ३२	।।)	" "
७. " " ३६	।।)	" "
८. ब्रह्मचर्य	१।)	" "
९. बालकों की धर्मशिक्षा १म भाग	―)	" "
१०. " " २य "	≶)	" "
११. अष्टाध्यायी वृत्ति	१॥)	श्री पं० गंगादत्त जी (स्वा० शुद्धबोध तीर्थ जी
१२. भौतिकी		बालफोर स्टूअर्ट की सुप्रसिद्ध अंग्रेजी फिज़िक्स के आधार पर म० गोवर्धन जी बी० ए० द्वारा लिखित।
१३. रसायन	॥।)	विलियम एस. फर्नो की प्रसिद्ध अंग्रेजी कैमिस्ट्री का आर्य्य० भाषा में म० गोवर्धन जी बी० ए० द्वारा अनुवाद।

१४. गुणात्मक विश्लेषण	२॥)	श्री प्रो० रामशरणदास जी सक्सेना एम. एस. सी.
१५. संस्कृत प्रवेशिका १म	।≡)	गुरुकुल की पाठविधि में हैं लेखक पं० हरिचन्द्र
१६. संस्कृत प्रवेशिका २य	।≡)	„ ले० पं० विष्णुमित्र जी
१७. बालनिति कथा माला	।)	„ „
१८. संशोधित पंचतंत्र १ म भाग	१।)	
१९. „ „ २ य भाग	॥≡)	
२०. „ हितोपदेश		
२१. „ रघुवंश ३ य सर्ग	।)	
२२. „ धातुपाठ	।)	
२४. आख्यातिक		
२५. नामिक	।≡)॥	
२६. साहित्य सुधा संग्रह १ म बिन्दु	१।)	श्री पं० भवानी प्रसाद जी
२७. „ „ २ य „	१।)	„ „
२८. „ „ ३ य „	१।)	„ „
२९. आर्य्य भाषा पाठावली १ म भाग	।≡)	„ „
३०. „ „ „ २ य „	॥)	„ „
३१. अष्टाध्यायी मूल १ म अध्याय	-)	श्री मुख्याधिष्ठाताजी गुरु० द्वारा
३२. „ „ २ य „	-)	„ „
३३. „ „ ३ य „	-)	„ „
३४. „ „ ४ र्थ „	-)	„ „
३५. „ „ ५ म „	-)	„ „
३६. „ „ ६ ष्ठ „	-)	„ „
३७. „ „ ७ म „	-)	„ „
३८. „ „ ८ म „	-)	„ „
३९. संशोधित नीति शतकम	=)	„ „

निम्न लिखित पुस्तकें आधे मूल्य पर दी जावेंगी ।

१. संस्कृत साहित्य का एतिहासिक अनुशीलन	।≈)	श्री पं०इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
२. उपनिषदों की भूमिका		श्री पं०इन्द जी विद्यावाचस्पति
३. एकान्तवासी योगी	≡)	श्रीधरजी पाठक
४. आर्य्य पथिक लेखराम	१)	स्वर्गीय श्री स्वा० श्रद्धानन्द ज महाराजी
५. अर्थ शास्त्र प्रवेशिका	।)	श्री पं० गणेशदत्त जी पाठक
६. आर्य्य समाज एन्ड पोलिटिकल बोडी (अंग्रेज़ी)	।)	
७. मौर्डन मेला (अँग्रेज़ी)	≡)	
८. दयानंद दी मैन एन्ड हिज़ वर्कस	=)	
९. संस्कृत स्वयं शिक्षक ३य	१॥)	श्री पं० सातव लेकर जी
१०. महाभाष्य अंगाधिकार	२॥)	
११. संक्षिप्त महाभारत (भीष्म पर्व)	।)	
१२. आर्य्य सूक्ति सुधा	।)	श्री पं० भीमसैन जी शर्मा
१३. अन्योक्ति शतक	≡)	श्री पं० जगन्नाथ जी
१४. जिन चरितम	।-)	श्री पं० चन्द्रमणिजी विद्यालं०
१५. काव्य लतिका	॥)	श्री पं० भीमसेन जी शर्मा

निम्न लिखित पुस्तकें तिहाई मूल्य पर दी जावेंगी

१. रुद्र देवता का परिचय	॥)	श्री पं० सातवलेकर जी
२. ऋग्वेद में रुद्र देवता	॥=)	,, ,,
३. वैदिक प्राण विद्या	१)	,, ,,
४. वेद का स्वयंशिक्षक १ म भाग	१॥)	,, ,,
५. वेद का स्वयं शिक्षक २ य भाग	१॥)	,, ,,
६. केनोपनिषद्	१।)	,, ,,
७. शतपथ बोधामृत	।)	,, ,,
८. वैदिक सभ्यता	≡)	,, ,,
९. वेद में चर्खा	॥)	,, ,,
१०. वैदिक सर्प विद्या	॥)	,, ,,
११. ३३ देवता विचार	=)	,, ,,
१२. वैदिक उपदेश माला	॥)	,, ,,
१३. संक्षिप्त वैदिक मनुस्मृति	॥)	स्वर्गीय श्रीस्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज
१४. संस्कृत प्रथम पुस्तक	=)	श्री पं० भीमसेन जी शर्मा
१५. ,, साहित्य पाठावली २ य भाग	=)	
१६. संशोधित साहित्य दर्पण	२)	
१७. कविता मंजरी	।)	गुरुकुल के ब्रह्मचारियों द्वारा संग्रहीत
१८. कविता कुसुमाञ्जली १ म भाग	-।)	,, ,,
१९. कविता कुसुमांञ्जली २ य भाग	।-)	,, ,,

निम्न लिखित पुस्तकें चौथाई मूल्य पर दी जावेंगी

१. आचार, अनाचार और छूत छात	≈)	स्वर्गीय श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी
२. पारसी मत और वैदिक धर्म	≈)	" "
३. ईसाई पक्षपात और आर्य्य समाज	≈)	" "
४. मानव धर्म सार	≈)	" "
५. मातृ भाषा का उद्धार	≈)	" "
६. विस्तार पूर्वक संध्या विधि	≈)	" "
७. पंच महायज्ञ विधि	≈)	" "
८. आदिम सत्यार्थ प्रकाश	॥)	" "
९. उत्तरा खण्ड की महिमा	॥)	" "
१०. वैदिक ईश्वर वाद	≈)	पं० सातवलेकर जी
११. अकाल से बचने के उपाय	॥)	बाबू कृष्णगोपाल जी श्रीवास्तव
१२. मृतक श्राद्ध पर विचार	≈)॥	श्री पं० इन्द्रजी विद्यावाचस्पति
१३. स्वर्ण देश का उद्धार	॥≈)	" " "
१४. वेद और आर्य्य समाज	≈)	श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी
१५. स्वा० दयानन्द और उनकी तालीम (उर्दू)	॥≈)	म० राधाकृष्ण जी महता
१६. राजस्थान की वीर रानियां	।≈)	पं शिवव्रतलाल जी
१७. वेद और पशु यज्ञ	।)	जे. पी. चौधरी
१८. राष्ट्रीय आन्दोलन	१॥)	म० प्रभुलालजी मीतल
१९. भारत गीताञ्जली	।–)	श्री माधवजी शुक्ल
२०. गल्पाञ्जली	॥।)	पं० शिवनारायण जी द्विवेदी

सचित्र

सुचारु सूची शिल्प पत्रावली

सलाई और क्रोशियेकी दस्तकारी सिखलाने की सस्ती और अनूठी विधि

इस प्रकार के पत्र इंग्लैण्ड अमरीका इत्यादि देशों में तो बहुत दिनों से निकलते हैं। परन्तु भारत में हिन्दी भाषा द्वारा प्रत्येक वस्तु के लिये अलग अलग कार्ड की रीति से इस कार्य को सिखलाने का यह पहला ही प्रयत्न है। जो कार्य पसन्द हो उसी के अनुकूल दो तीन आने खर्च कर कार्ड खरीद लो और घर बैठे बिना किसी की खुशामद के बनालो। अब तक निम्न लिखित कार्ड (१४×७) प्रकाशित हो चुके हैं:—

पत्र नं०	मूल्य	पत्र नं०	मूल्य
१—दीर्घ सूची प्रारम्भिक प्रयोग ११ चित्र	।)	५—पुरुषों का लम्बा मौज़ा [सचित्र]	=)
२—बड़ी सादी बनियान [सचित्र]	≈)॥	६—पुरुषों का सरल दस्ताना [सचित्र]	=)॥
३—पुरुषों का कुर्ता [सचित्र]	=)॥	७—स्त्रियों का फूलदार कालर [सचित्र]	≡)
—बालिका की ऊनी जर्सी [दुरंगा]	≡।	पुरुषों का बुन्दकीदार मौज़ा [सचि]	≈)॥)

८ कार्डों का पूरा सैट मूल्य १।≈)॥ के स्थान में केवल १) रुपया

कुछ सम्मतियाँ—

सरस्वती इलाहाबाद— यह पत्रावली नारी मात्र के लिये बड़ी उपयोगी है। छपाई सुन्दर भाषा सरल और मूल्य बहुत ही कम।

प्रताप लाहौर—कन्या पाठशालाओं और स्कूल की लड़कियों केलिये बड़े काम की चीज़ है।

गृहलक्ष्मी प्रयाग—हम इन कार्डों का हृदय से प्रचार चाहते हैं।

महारथी देहली—यह कार्ड सस्ते होने के कारण कन्याओं के लिये बड़े उपयोगी हैं।

मैनेजर "ज्योति"

कोठी नम्बर २१, २२ राजपुर रोडदेहरादून।

कला कौमुदी

लेखिका श्रीमती ओ३म्वती देवी

चित्र कला कौशल सम्बन्धी अनुपम पुस्तक-इस के द्वारा लेखिका ने क्रोशिये के कार्य को बड़ा ही सरल बना दिया है। बिना किसी प्रकार के पहिले ज्ञान के कन्यायें और स्त्रियें केवल इस की ही सहायता से अनेक प्रकार की बिनावट लेसें, फ़ीते, कपड़े इत्यादि बनाना सहज में ही सीख सकी हैं। पुस्तक में इतना विषय है कि किंचित इस से कई गुना दाम की पुस्तकों में भी न होगा। प्रत्येक वस्तु तथा बिनावट का बनाना चित्र देकर बड़ी सरल रीति से सिखाया गया है। देखिये समाचार पत्र इस के विषय में क्या कहते हैं।

"ट्रिब्यून" (अंग्रेज़ी का प्रसिद्ध दैनिक) लाहौर—स्त्रियों के लिये उपयोगी पुस्तक है। अनेक चित्रों द्वारा वस्तु बनाने की विधि बड़ी सरलता से समझाई गई है। सुन्दर नमूने की लेसें, टेबल क्लाथ, बच्चों के सुन्दर कपड़े और अन्य कई वस्तुओं का बनाना बड़ी सुन्दर रीति से बतलाया गया है। पुस्तक की उपयोगिता के विचार से मूल्य बहुत कम है।

"मतवाला" (कलकत्ता)-यह पुस्तक हमारी बहिनों के बड़े समझ की है। छपाई बहुत अच्छी, कागज़ बहुत अच्छा मोटा चिकना आर्ट। सुचारु शिल्प पत्रावली कार्ड गृहस्थियों के बड़े काम की चीज़ है।

"कर्मवीर" (खंडवा)— ......पुस्तक में सादे फन्दे से लगाकर तरह तरह की वस्तुओं के बनाने की विधि बड़ी सरलता से समझाई गई है जिसे पढ़कर साधारण पढ़ी लिखी स्त्री भी इस कार्य को सीख सकती है। इस का मूल्य लागत को देखते कम है।

"माधुरी" (लखनऊ)-ऐसी पुस्तकों की हिन्दी साहित्य के लिये बड़ी आवश्यकता है। आशा है इस पुस्तक का अच्छा प्रचार होगा जिस से इस प्रकार की और पुस्तकें भी प्रकाशित की जा सकें। लेखिका और प्रकाशिका दोनों को बधाई।

शीघ्र आर्डर भेजिये — मूल्य १।)

कला कौमुदी तथा शिल्प पत्रावली का पूरा सैट लेने पर २॥=)॥ के स्थान में केवल २।) में दिया जायगा।

कन्या पाठशालाओं और पुस्तक विक्रेताओं को विशेष रियायत

मैनेजर ज्योति—

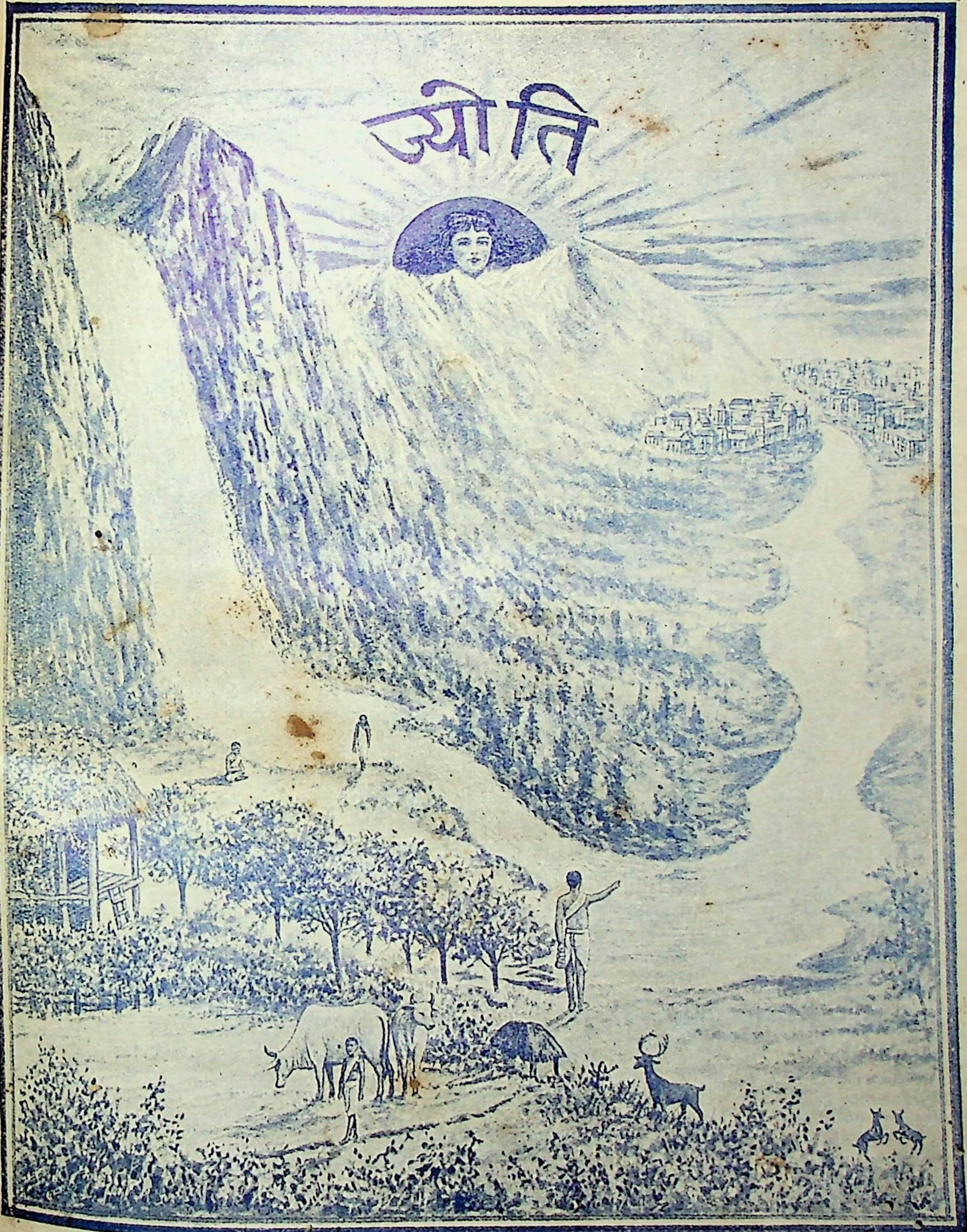
कन्या गुरुकुल

राजपुर रोड कोठी नं० २१-२२ देहरादून

गङ्गाराम पाठक प्रिन्टर तथा पं० रमेशचन्द्र पब्लिशर के लिये गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में मुद्रित।

Regd. No. A. 1711

वर्ष १०] मार्च १९३० [संख्या ११



वार्षिक मूल्य. ४॥) प्रति संख्या ॥)

सम्पादक—
विद्यावतीसेठ बी. ए., चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

विद्यार्थियों, स्त्रियों से ४) निर्देशका मूल्य६)

विषय सूची।



लेखकों से निवेदन

१. ज्योति में लेख, कविता आदि भेजने वाले महानुभावों को अपने लेख सुस्पष्ट अक्षरों में कागज़ के एक ओर ही, हाशिया छोड़ कर लिखे हुए भेजने चाहियें।

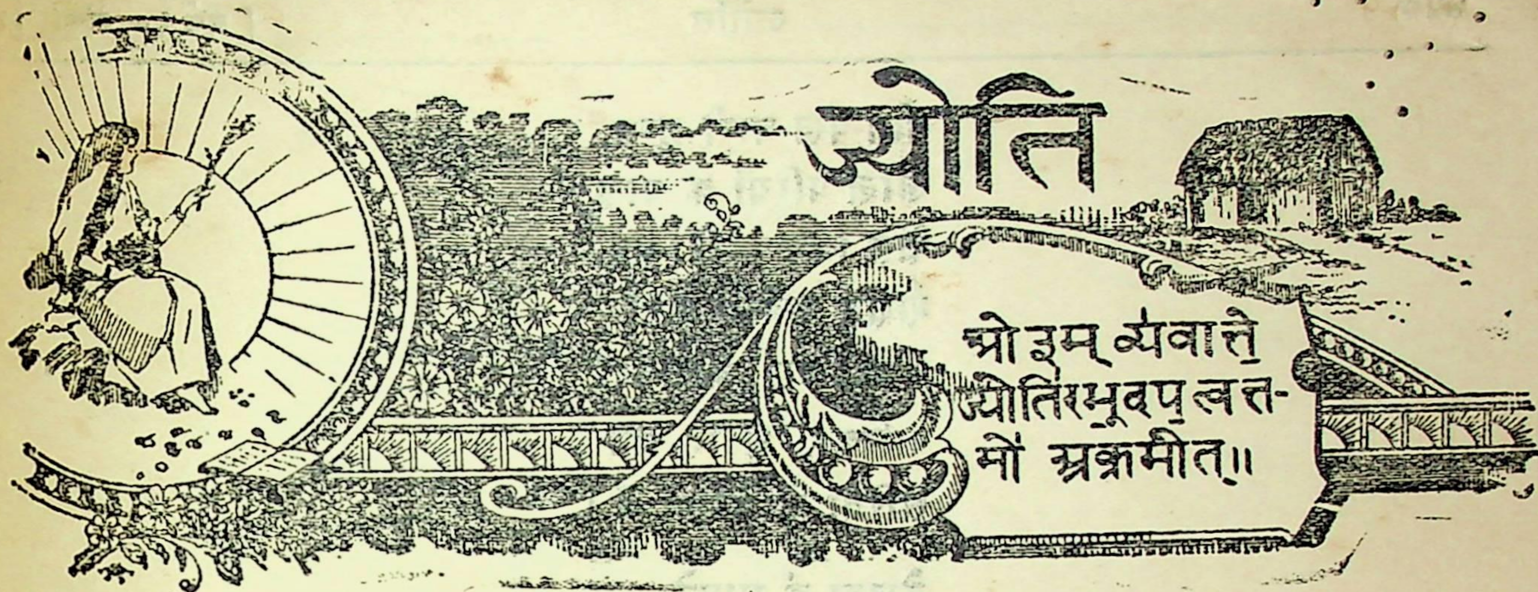
२. लेख बहुत लम्बे न होने चाहिएँ। 'ज्योति' पत्रिका के लगभग चार पृष्ठों के लायक लेख हों तो अति उत्तम है।

३. लेखों को घटाने बढ़ाने तथा संशोधित करने का संपादक को पूर्ण अधिकार है।



प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार— **आचार्य्या कन्या गुरुकुल** कोठी नं० २१, राजपुर रोड देहरादून.

सम्पादन सम्बन्धी— **सम्पादक ज्योति** गुरुकुल कांगड़ी यू.पी.



विविध विषय विभूषित सुन्दर मासिक पत्रिका.

वर्ष १० | फाल्गुन १९८६ * मार्च १९३० | संख्या ११

मेरे आंगन !!

देखा,-तो प्रभात है,
उतरता हूं जाने कहाँ ?—
—कौन दिव्य लोक बीच ।
नील नभ मण्डल,
रजत सी दिशायें शुभ्र ।
झलमल झलमल,—
और, कलकल बोल
बाँसुरी बजाती सी
कुहुकती है सरिता ।
पल पल बीच मानों
पलक उघारते हैं
और मुसकाते, फिर—
लुक लुक जाते हैं
दूर्वा-दल-अञ्चल में
विपिम के भोले फूल ।

पीत-पंख-धारी मुग्ध
लोल परियों के बाल
कैसे किलकारी भर
शैशव बखेरते हैं !!—
—यहाँ-उस ओर-वहाँ
वाटिका, कुटीर, वन
सरिता के चरणों में।

× ×

देखता हूं सामने
हिरण्यमयी वन्हिशिखा।
स्वधा और वषट्कार!
सामगान! सन्मुख ही—
दिव्य तेज धारिणी
विहासिनी विभासिनी सी,
चन्द्रमा दिवाकर की
काया से घटित मानो।—
शान्त वीर करुणा की
मूर्तिमयी छाया सम
प्रतिमा अडोल एक।—
सुना,—'गुरुदेव' यही।

× ×

जाने कब, कैसे, और
किसने मिलाया मुझे
मन्द मुसकाते हुये
फूलों के विपिन में,
प्यारे बटु वृन्द बीच?
और उस गोद में ही
तन्द्रित हुआ मैं कब
जाने स्वप्न लोक के
सजीले उस आँगन में!!

× ×

सामने विलोकता हूं
एक द्रुम-खण्ड शुष्क,
नीचे मुरझाई सी
पड़ी हैं कुछ पत्तियां भी,—
स्मृतियाँ अतीत की सी ।
खुल से पड़े हैं नेत्र
और अचरज भरा
सोचता हूं बात कोई ।
एक दृश्य-पट मानो
गुज़र चुका है अभी ।
वसुधा वही है,—यह—
गाथा कौन अङ्कित है
इसके कणों में हाय !!
ग्रीष्म के दिवस की
उदासी लखता हूं यहाँ ।
रंगमंच सूना सा
प्रभात में हुआ हो जैसे,
वैभव विहीन सब !
आज यह सुनसान
अँगना पड़ा है वही
निर्जीव ! निष्प्राण !!
किसने किया है मेरे
सदन का अवसान !!!

"प्रियहंस"

भारतवर्ष की आधारभूत एकता

(लेखक–'श्रीग्राही' विद्यालंकार.)

(१)



रतवर्ष को अनेक दृष्टियों से अनेक कहा जाता है। विदेशी लेखक प्रायः भारत को महाद्वीप (continent) के नाम से पुकारते हैं। प्राकृतिक-भूगोल की दृष्टि से भारतवर्ष स्वाभाविक तौर पर कई खण्डों में बटा हुआ है। दक्षिणी-भारत और उत्तरीभारत को विंध्याचल की पर्वतमाला अलग करती है, इसी प्रकार पश्चिमी और पूर्वी भारत को अर्वली की पर्वतमाला तथा थाल का मरुस्थल अलग कर देते हैं। भाषा की दृष्टि से भी भारत एक महाद्वीप ही मालूम पड़ता है—दक्षिण और उत्तर की, पूर्व और पश्चिम की बोलियां एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। साहित्यिक भाषाओं का भी यही हाल है–अनेक ऐसी भाषाएं हैं जिन में भिन्न भिन्न प्रान्तों वाले अपना साहित्य-निर्माण करते हैं। ऐसी अवस्था में यह प्रश्न स्वाभाविक तौर पर उठता है कि जब भारतवर्ष एक महाद्वीप (continent) है, तो उस का एक इतिहास किस प्रकार लिखा जा सकता है ? अंग्रेज़ों के शासन से पूर्व भारतवर्ष में कभी एकता का भाव मालूम नहीं होता, ऐसा कहा जाता है। एक महाद्वीप में बसने वाली अनेक जातियों और देशों की तरह भारत के निवासी एक दूसरे से लड़ते पाए जाते हैं। ब्रिटिश काल से पूर्व भी सारा भारत एक साम्राज्य बना या नहीं, इस में भी सन्देह है। इस लेख में यही विचार करना है कि भारतवर्ष में एकता का स्वरूप क्या है ? और सिद्ध करना है कि भारत एक है।

(२)

जातीयता या एकता को उत्पन्न करने वाले साधनों में से कुछ एक इस प्रकार हैं:—

समान भाषा, समान धर्म, समान सभ्यता समान विश्वास वा विचार (culture) और समान निवास स्थान।

समान निवासस्थान का होना राष्ट्रनिर्माण का सब से बड़ा और मूल कारण है। जब तक कोई जाति फिरन्दर अवस्था में रहती है तब तक वह राष्ट्र नहीं बना सकती। इस प्रकार के उदाहरण विद्यमान हैं कि सब प्रकार की उत्तम राजनीतिज्ञता के होते हुए भी निश्चित स्थान न होने के कारण, जातियां राष्ट्र नहीं बनी †। और इस प्रकार के भी उदाहरण मौजूद हैं कि निश्चित निवासस्थान न होने पर कितने ही मनुष्य-समूह सर्वथा नष्ट होगए। कहने का अभिप्राय यह है कि राष्ट्र-निर्माण के लिए समान भूमि का होना अत्यन्त आवश्यक है। भिन्न भिन्न जातियों और भिन्न भिन्न धर्मों का रहना राष्ट्र-

† मूसा ने यहूदियों को सब प्रकार की राजनैतिक शिक्षा दी, परन्तु वे, निश्चित स्थान न होने के कारण, किसी भी राष्ट्र की नींव डालने वाले न हुए। पर जब जोशू ने उन्हें पैलिस्टाइन में बसाया, वे एक राष्ट्र के अङ्ग होगए॥

सिम्ब्री तथा ट्यूटन जातियों ने अभागेपन से लोभवश हो कर अपना पुराना घर छोड़ दिया और नए स्थान को लेने के लिए चले, पर वे इस कार्य में सफल न हुए। परिणाम यह हुआ कि वे सदा के लिए नष्ट हो गए। रोम साम्राज्य भी नष्ट हो जाता यदि वे रोम में आग लगने पर रोम छोड़ कर चले जाते।

निर्माण में बाधक नहीं होता यदि रहने का स्थान एक हो। अमेरिका एक राष्ट्र हो गया यद्यपि उस में १३ भिन्न भिन्न रियासतें हैं और यूरोप की भिन्न भिन्न जातियों के लोग बसते हैं। जर्मनी के अन्दर भी बहुत सी रियासतें हैं पर वह फिर भी एक राष्ट्र है।

जातीयता, एकता, और राष्ट्रीयता को उत्पन्न करने वाले जितने साधन हैं उन सब का मूल कारण समानभूमि का होना है। इस आधार के स्थित होने पर ही अन्य साधनों का उदय होता है। भूमि पर बस कर जब जन-समुदाय धीरे धीरे उन्नति करने लगता है तभी अन्य जातीयता के साधनों की उत्पत्ति होती है। भूमि पर बसने से पूर्व जिस प्रकार के रीतिरिवाज़ तथा भाषा किसी जनसमुदाय की होती है वही रीतिरिवाज़ तथा भाषा आदि हज़ारों वर्षों के पीछे भी करोड़ों मनुष्यों को सूचित करती है कि तुम उसी जन-समुदाय के भाग हो जो इस भूमि पर पहले पहल बसा था। सारांश यह है कि समाननिवासस्थान ही जातीयता का प्रबल तथा आदिम आधार है।

कठिन बात यह है कि अब यह समझना सुगम नहीं रहा है कि भारतवर्ष एक देश है। शिक्षित और अशिक्षित सब मनुष्यों के दिलों में यह बात बैठा दी गई है कि भारतवर्ष अनेक देशों का एक समुदाय है, यह एक देश नहीं है, परन्तु एक महा-द्वीप है। भारत के प्राकृतिक-भूगोल का ध्यान पूर्वक अध्ययन करने से यह बात ठीक प्रकार समझ में आजावेगी कि भारत एक महाद्वीप है। संसार में ऐसा देश कोई नहीं है जिस की कि प्राकृतिक सीमा भारतवर्ष से अच्छी हो। उत्तर में हिमालय की विस्तृत और अन्य ऊँची पर्वत-माला, पश्चिम में सुलेमान और अन्य पर्वतों की दुर्गम शाखाएं, दक्षिण और पूर्व में भारतीय महासागर-यह भारत की स्वाभाविक प्राकृतिक सीमा है। जो पहाड़ और मरुस्थल आदि भारत को कई खण्डों में विभक्त करते हैं वे भारत की प्राकृतिक सीमाओं के सामने न के बराबर हैं। इस प्रकार भारतवर्ष स्वाभाविक सीमाओं के कारण एक देश है—ऐसी बहुत-से भूगोल-शास्त्र वेत्ताओं की सम्मति है। यह ठीक है कि भारत में सब प्रकार की जल-वायुएं विद्यमान हैं, यहां सब प्रकार के जीवजन्तु, मनुष्य आदि पाए जाते हैं, परन्तु यह सब होते हुए भी प्रकृति ने भारत को एक देश बनाया है। जो ऋतुओं की प्रणाली भारत में प्रकृति ने स्वाभाविक तौर पर निश्चित की है वह अन्य किसी भी देशमें नहीं है।

इस प्रकार प्रकृति ने भारत को सारे संसार से अलग करके एक देश बनाया है। यही भौगो-लिक साम्यता भारत को एक बनाती है। परन्तु, भारतवर्ष में अनेक धर्म प्रचलित हैं और उनमें मुख्य हिन्दूधर्म है। हिन्दू लोगों के पूज्य और पवित्र तीर्थ सारे देश में व्याप्त हैं (देखो खण्ड ४)। धर्म एक ऐसा सूत्र है जिसने सारे भारत को इकट्ठा बांधा हुआ है। सारे भार-तीयों की सभ्यता और ज्ञान (culture) एक ही स्रोत से निकले हैं। इस लिए उनके अन्दर बड़ी भारी साम्यता है। सम्पूर्ण भारत की सभ्यता और culture धर्म के सूत्र में इस प्रकार पिरोई हुई है कि इसे एक न मानना दिन को रात कहना है। एकता को उत्पन्न करने वाले जो मुख्य मुख्य साधन हैं वे भारत में विद्यमान हैं। सारे भारत के निवासियों का, धर्म और भाषा का, सभ्यता और culture का स्रोत एक है, यह एक स्रोत भारत को पूर्णरूपेण एक बनाता है।

(३)

लोग साधारणतया समझते हैं कि अङ्गरेज़ी शासन के कारण भारतवर्ष एक देश-सा हो गया है, पहले यह बात न थी, इसी शासन में भारत एक शासनाधीन होकर साम्राज्य बना है। इस लेख में यही सिद्ध किया जाता है कि अङ्गरेज़ी राज्य से पूर्व भी भारत एक देश समझा जाता था। इस बात के हम बहुत से प्रमाण पेश कर सकते हैं कि प्राचीन भारतवासी भारत की एकता को भलीभाँति समझते थे।

(१) पहला प्रमाण यह है कि प्राचीन भारतीयों ने ही इस सम्पूर्ण देश का नाम भारतवर्ष रखा था।* भारत नाम का बहुत बड़ा महत्व है। इस महत्व को वही लोग समझते हैं जिन्होंने इस नाम को निकाला था। इस देश का भारतवर्ष नाम राजा भरत के नाम से पड़ा। जिस प्रकार रोम्युलस नाम से रोम नाम पड़ा उसी प्रकार भरत नाम से भारत। रोम्युलस रोम का वीर योद्धा था।

ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि किस प्रकार से भरत का राज्याभिषेक हुआ ? भरत ने किस २ देश को जीता ? उसका राज्य कहां तक पहुँच गया था ? एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण दीर्घतया मामतेया दौष्मयन्तिं भरतमभिषिषेच, तस्मात् दौष्म्यन्तिः भरतः समस्तं सर्वतः पृथिवीं जयन्………इत्यादि।

श्रीमद्भागवत में भी इसी प्रकार का वर्णन आता है। इस में दो नाम हैं—अधिराट् और सम्राट्। वर्णन किया गया है कि भरत ने यवन तथा हूण लोगों को अपने वश में कर लिया था। इसी प्रकार पाण्डुर लोगों के जीते जाने का भी वर्णन वहां आता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि भरत पहला सम्राट् था जो भारत को एक छत्र के नीचे लाया।‡ तभी यह नाम भारत की राजनीतिक एकता को सूचित करता है।

(२) वेदों के अध्ययन से ऐसा पता लगता है कि ऋषि लोग भारत की भौगोलिक एकता को अच्छी प्रकार जानते थे। ऋग्वेद में कई स्थानों पर मातृभूमि का ऐसा चित्र खींचा गया है कि उस का वर्णन करना कठिन है। भूमि को माता के रूप में चित्रित करना हमारे प्राचीन ऋषियों का ही आविष्कार है। ऋग्वेद में आया है—

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥

अर्थात् हे गङ्गे! यमुने! सरस्वति! शतुद्रि तथा परुष्णी! तुम मेरी प्रार्थना को सुनो। हे मरुद्वृधे! तुम असिक्नी, वितस्ता, आर्जिकीया तथा सुषोम के साथ मिल कर मेरी प्रार्थना को सुनो।

शतुद्रु = सतलुज। परुष्णी = रावी। असिक्नी = चनाव। मरुद्-वृध = चनाब + जेहलम। वितस्ता =

* इस देशके अन्य नाम भौगोलिक हैं। India नाम विदेशियों द्वारा दिया गया है। पारसी लोग सिन्धु नदी को हिन्दु नाम से पुकारने लगे इस से इसका नाम हिन्दुस्तान पड़ा। इसी प्रकार ग्रीक लोग इसे इन्दुस (Indus) के नाम से पुकारते थे। इसी से इसका नाम India पड़ा।

‡ इस देश का नाम जम्बूद्वीप भी था। जम्बूद्वीप नाम का भौगोलिक महत्व था। अशोक के शिलालेखों और बौद्ध पुस्तकों में अशोक को जम्बूद्वीप का राजा लिखा है। पालवंशी राजाओं के साथ भी इसी प्रकार जम्बूद्वीप सम्राट् नाम जुड़ा हुआ है। यद्यपि आर्यों ने समय समय पर बहुत से उपनिवेश बसाये थे, तथापि मातृभूमि (भारतवर्ष) एक ही थी। भारत के साथ यदि अन्य उपनिवेश मिला लिये जायं तो उस सारे साम्राज्य को जम्बूद्वीप कहा जाता था। इस सारे देश का नाम जो भारतवर्ष दिया गया था उस का राजनीतिक महत्व था। इस का अर्थ यह है कि सारा देश एक ही शासन के नीचे था।

जेहलम। विपाशा-व्यास। सुषोमा = सिन्धु। इस मन्त्र को पढ़ते ही वैदिक समय के भारत का चित्र प्रत्यक्ष हो जाता है। यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि किस प्रकार से भारत की एकता को सूचित करना चाहता है। यह भी पता लगता है कि किस प्रकार प्राचीनों ने देशभक्ति को धर्म में शामिल किया था।

ऋग्वेद में सम्पूर्ण भारत के लिए 'सप्तसिन्धु' शब्द आया है। इस शब्द की व्याख्या महाभारत कर्णपर्व अध्याय ४४ में इस प्रकार है—

शतद्रुश्च विपाशा च तृतीयैरावती तथा।
चन्द्रभागा वितस्ता च सिन्धुषष्ठा बहिर्गिरेः॥

इस से स्पष्ट है कि वैदिकभारत के उत्तर में हिमालय, पश्चिम में सिन्ध तथा सुलेमान पर्वत, दक्षिण में सिन्ध तथा समुद्र और पूर्व में गङ्गा तथा यमुना थी। इस सीमा में सम्पूर्ण उत्तरीय भारत आजाता है। इसी को वैदिक साहित्य में आर्यावर्त नाम दिया गया है—

आसमुद्रात्तु वै पूर्वात् आ समुद्रात् तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं प्रचक्षते॥

वशिष्ठ सूक्त में भी विन्ध्य तथा हिमालय के बीच के देश को आर्यावर्त कहा गया है। कौशीतकी उपनिषद् में (२, १३) आर्यों की भूमि की यही सीमा बताई गई है।

(३) आर्य लोग वैदिक काल के बाद ज्यों-ज्यों आगे फैलते गए और पुराने आर्यावर्त्त की सीमा से बाहर निकल आए, उन्होंने दक्षिण पथ भी अपने में मिलाना शुरू कर दिया। इस लिए हम पिछले काल में पुराणों में भारत देश की सीमा—अधिक विस्तृत—इस प्रकार पाते हैं—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति,
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।

हे गङ्गे! यमुने आदि आओ और मेरे इस पवित्र पानी में प्रवेश करो। इस श्लोक का पाठ प्रत्येक हिन्दु करता है इसी का नाम संकल्प-श्लोक है। इस श्लोक से प्रत्येक हिन्दू एकता की रज्जु में बंधा हुआ है। इसी प्रकार महाभारत भीष्म पर्व अ. ९ में आता है—

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः॥

महेन्द्र = गंजाम का महेन्द्रमाली पर्वत तथा पूर्वी घाट जहां परशुराम राम से हार कर चला गया था। मलय = पश्चिमी घाट का दक्षिणी भाग। सह्यः = पश्चिमी घाट का उत्तरी भाग। शुक्तिमान् = विन्ध्य का मध्य भाग, ऋक्ष = विन्ध्य का पूर्वी भाग, गन्धमादन पर्वत। विन्ध्य = विन्ध्याचल। इस में सम्पूर्ण भारत को सात पर्वतों का देश प्रकट किया गया है। इसी प्रकार भारत को सात तीर्थों का देश भी प्रकट किया गया है—

अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका।
पुरी द्वारवती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

इन स्थानों पर जाना प्रत्येक हिन्दु यात्री के लिए आवश्यक था। इन्हीं तीर्थों ने सारे भारत को एकता की रस्सी से बांधा हुआ था।

(४) शङ्कराचार्य के चारों मठ भी भारत के चारों ओर सीमा पर स्थित हैं। उत्तर में ज्योतिर्मठ, पश्चिम में-शारदा मठ, दक्षिण में शृंगेरी-मठ, पूर्व में गोवर्धिनिया मठ। ये ~~मत शङ्कर~~ की दिग्विजय के चिन्ह थे। इसी प्रकार पुराने समय से भारतवर्ष में चार तीर्थ प्रसिद्ध हैं—पूर्व में सप्त गङ्गा, दक्षिण में धनुष्तीर्थ, पश्चिम में गोमतीकुण्ड और उत्तर में तप्तकुन्द। ये तीर्थ भारत की सीमा के सूचक हैं। इसी प्रकार चार तालाब प्रसिद्ध हैं:

इसी तरह चार क्षेत्र हैं—१. मुक्ति, २वर्षा, ३. हरिहर ४ कुरु। सूर्य के तीन मन्दिरों का वर्णन आता है १. कोनार्का (उड़ीसा में) २. मुलतान, ३. सूर्यपुर या सूरत। इसी तरह गणेश के आठ तीर्थों का वर्णन आता है—१. मोरेश्वर, २. बालाला, ३. लिनाडि, ४. सिद्धारक ५. ओष्कार ६. स्थविर ७. रज्जग्राम ८. महादा। महादेव की पूजा भारत के किन किन स्थानों पर होती है—यह निम्न श्लोकों से स्पष्ट हो जायेगा—

*सौराष्ट्रे सोमनाथञ्च श्रीशैवे मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालं ओङ्कारममरेश्वरे॥
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम्।
वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमी तटे॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं द्वारकावने।
सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये॥
एतानि ज्योतिर्लिङ्गानि सायं प्रातः पठेन्नरः।
सप्तजन्म कृतं पापं स्मरणेन विनश्यति॥

विष्णुपूजा के निम्न मुख्य तीर्थ स्थान हैं—

नारायणं बदर्याख्ये नैमिषे हरिमव्ययम्।
शालिग्रामं हरिक्षेत्रे अयोध्यायां रघूत्तमम्॥

इन बातों से स्पष्ट है कि इस देश के पवित्र, पूज्य और तीर्थ स्थान भारतवर्ष में चारों ओर विद्यमान हैं। सारा हिन्दु—समाज इन स्थानों को पूज्य और मोक्षदायक समझता है। लाखों हिन्दु एकत्रित होकर इन स्थानों की पूजा करते हैं। क्या यह इस बात के लिए पर्याप्त प्रमाण नहीं है कि सारे हिन्दु लोग इस सारे देश को पूज्य समझते थे और उन्हीं तीर्थ आदियों के कारण सब धर्मप्राण हिन्दू एकता की रज्जु में बंधे हुए थे।

(४)

भारतीयों का मातृभूमि के लिए असीम प्रेम था। संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थ इस बात के साक्षी हैं। कुछ एक वाक्य स्पष्टता के लिये यहां उद्धृत किये जाते हैं—अथर्व वेद में आता है—

'नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्त्ति' (१२—२)

'यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः सम्बभूवुः। (१२—३)

अर्थात् यही हमारी मातृभूमि है जिसमें बहुत अधिक बल देने वाली औषधियां उत्पन्न होती हैं, जिस के चारों ओर समुद्र तथा सिन्धुनदी का जल है। जिसमें खेती तथा अन्न उत्पन्न होता है। आगे फिर लिखा है—

'यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्' (१२—५)

'गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पयिभ्यो नमोऽस्तु (१२—११)

'भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम्।'
यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या वै लवाः' (१२—)
'युध्यन्ते यस्यांमाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः॥

अर्थात्—यही हमारी मातृभूमि है जहां पर हमारे पितामहों ने बड़े बड़े काम किए। यहीं पर देवताओं ने असुरों को पछाड़ा था। यह वही हमारी मातृ—भूमि है जिसमें बड़े से बड़े पहाड़ तथा घने से घने जंगल हैं। यहीं पर देवलोग बड़े बड़े यज्ञ किया करते थे तथा सच्चे आनन्द में निमग्न रहते थे। इसी में नगाड़ा बजता था। हमारे पूर्वज देवताओं ने बड़े परिश्रम से—जानें देकर—इसे प्राप्त किया तथा एक बसने योग्य देश के रूप में बनाया।

मनु कहते हैं—

'तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते।'

विष्णुपुराण में—

---

*सौराष्ट्र—गुजरात; अमरेश्वर—मण्डलेश्वर तथा प्राचीन माहिष्मती के पास
श्रीशैल—मदुरा में पालनि पर्वत; केदारनाथ—हिमालय में

'गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्। (२—३—२४)

इस प्रकार भारतवर्ष को स्वर्ग से भी ऊंचा चढ़ाया है। श्रीमद्भागवत में लिखा है—

अहो! बतैषां किमकारि शोभनम्
प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे
मुकुन्दसेवोपयिकं स्पृहा हि नः॥(५—१९—२०)
यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं
स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्यशोभनम्।
तेनाजनाभे स्मृतिमज्जन्म नः स्यात्
वर्षे हरिर्यद्भजतां शं तनोति। (५—१९—२८)

किसने नहीं सुना—

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'

यही मातृभूमि के प्रेम का विचार सारे भारत में एक छोर से दूसरे छोर तक फैला हुआ था।

इस बात के कहने में हमें ज़रा भी संकोच नहीं होता कि यात्रियों के तीर्थ मातृभूमि के प्रेम के उपलक्ष्य में बनाए गये थे। ये तीर्थ लोगों में धार्मिक भावों को तो विशेष तौर पर उत्पन्न करते ही थे पर साथ ही साथ मातृभूमि के प्रेम को भी बढ़ाते थे।

+ जितने भी हिन्दुतीर्थ हैं वे सब कला कौशल तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के विशेष स्थान हैं। यह तीर्थ यात्रा एक ऐसी चीज़ थी जिससे कि भारतीयों के हृदयों पर मातृभूमि का चित्र सदा अंकित रहता था। यह बात हमारे लिये असम्भव है कि हम भारत के सब तीर्थ-स्थानों को गिना सकें। गरुडपर्व में इसकी सूचि दी गई है।

(५)

६०० ई० पू० से लेकर इतिहास बहुत कुछ ज्ञात समझा जाता है। इसी समय में भारतवर्ष को एक सत्ता में लाने का प्रयत्न करने वाले और लाने वाले कई राजा हुए। मौर्य चन्द्रगुप्त के अधिकार में सारा उत्तरीय भारत था। अशोक मौर्य ने सारे भारत पर शासन किया। गुप्तवंशी प्रसिद्ध राजाओं का राज्य प्रायः सारे भारत पर था। सारे भारत के राजा किसी न किसी रूप में गुप्त सम्राटों के आधीन थे। गुप्तों के बाद सम्राट् हर्ष-वर्धन ने उत्तरीय भारत में एकतन्त्र राज्य स्थापित किया। राजपूत काल में भी कई राजा भारत को अपने शासनाधीन करने का प्रयत्न करते रहे। मुसलमानों के शासन में प्रायः सारा भारत एक छत्राधीन रहा ही। फिर यह कहना कि अंग्रेज़ों ने ही सारे भारत में एक राज्य स्थापित किया है, संगत नहीं हो सकता। ६०० ई. पू० से पूर्व तक का इतिहास अभी ठीक ठीक उपलब्ध नहीं। भारत के प्राचीन साहित्य के अध्ययन से पता लगता है कि पहले भी चक्रवर्त्ती राजा होते थे, उनके नाम भी उपलब्ध होते हैं, पर उनका इतिहास अन्धकार में है।

+ दृष्टान्त के लिये बनारस को लीजिये। बनारस में मन्दिर बहुत अच्छे बने हुए थे। गृहनिर्माण विद्या का वहां चमत्कार देखा जाता था। बनारस देर तक व्यापार का केन्द्र रहा है। विद्या के लिये वह पुराने समय से सार्वभौम विद्यालय का काम करता आया है। गङ्गा नदी किस प्रकार इसके आधे पासे को घेरे हुए है यह देखते ही बनता है। जगन्नाथ पुरी बन्दरगाह होने से व्यापार का केन्द्र था। समुद्र का दृश्य बहुत रमणीय था—इन्हीं बातों से वह भी यात्रियों का भ्रमण का स्थान बन गया। प्रयाग पर दो बड़ी नदियां—गङ्गा और जमुना—आकर मिलती थीं। विलक्षण सौन्दर्य ने उसे तीर्थ बना दिया है। बनारस की तरह ही दक्षिण में काञ्जीवर है। बौद्धों और जैनों के तीर्थ भी इसी प्रकार सारे भारतवर्ष में व्याप्त हैं।

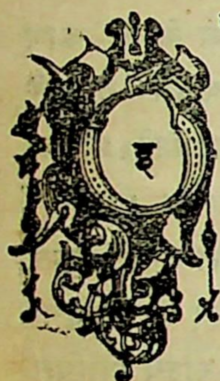
कुरान में वेदांश

(४)

धार्मिक स्वतन्त्रता और अहिंसा

(लेखक— श्री पं० चमूपति जी एम. ए.)

धार्मिक स्वतन्त्रता



इसलाम और विचार की स्वतन्त्रता तथा अहिंसा पर्याय होने चाहियें, क्योंकि इसलाम का धात्वर्थ है शान्ति। अन्य प्रत्येक धर्म-संप्रदाय की तरह इसलाम का आरम्भिक उद्देश्य भी शान्ति की स्थापना करना था। लोग भ्रान्ति-ग्रस्त थे, सांप्रदायिक श्रोत्रियों के अत्याचार से पीड़ित थे, कुचालों और कुरीतियों का शिकार हो रहे थे। महामना मुहम्मद का विचार इस अवाञ्छनीय अवस्था की काया-पलट कर देने का था। उन्हों ने इसी विचार को लक्ष्य में रख कर इसलाम की घोषणा की। प्रत्येक और धर्म-प्रचारक की तरह इन का विरोध हुआ। लोगों ने इनको और इनके अनुयायियों को गालियां दीं, तंग किया, शारीरिक कष्ट पहुंचाये। यह निर्बल थे, शत्रु बलवान् था। इन्हों ने सहन किया और अपने अनुयायियों को भी सहन ही का उपदेश दिया। कुरान की वह आयतें वास्तविक धर्म का एक उत्कृष्ट आलाप हैं। धर्म नाम ही सहन का है। कुरान का १०६ वां सूरा सारे का सारा मानो विचार-स्वातन्त्र्य का अरबी गीत है। लिखा है:—

१. (ऐ मुहम्मद) कह ऐ वह लोगो जो नहीं मानते !
२. मैं नहीं उपासना करता उसकी जिसके तुम उपासक हो।
३. न तुम उपासना करते हो उसकी जिसका मैं उपासक हूं।
४. न मैं उपासक हूंगा उसका जिसके तुम उपासक हो।
५. न तुम उपासक होगे उसके जिसका मैं उपासक हूं।
६. तुम्हारे लिये तुम्हारा धर्म और मेरे लिये मेरा धर्म।

इन आयतों के उतरने का हेतु यह बताया जाता है कि प्रतिपक्षियों ने मुहम्मद साहब से आग्रह किया कि हमारा धर्म स्वीकार कीजिये। उनके उत्तर में इन आयतों का आविर्भाव हुआ।

इसके पश्चात् एक समय वह आया जब मुहम्मद साहिब को मुसलमानों की संख्या बढ़ाने की चिन्ता हुई। प्रतिपक्षी चमत्कार मांगने लगे। अनुयायियों ने आग्रह किया कि किसी दैव प्रभाव से सच्चे दीन का प्रचार होना चाहिये। इस पर यह आयतें उतरीं :—

१. यदि वे मुसल्मान हो जाएं, तो वे वस्तुतः सन्मार्ग का अनुसरण करेंगे। परन्तु यदि हट जाएं तो तेरा काम संदेश दे छोड़ना है। सू० आल अमरान १९

२. जो लोग तुझ से हट जाएं, हमने तुझे उन पर संरक्षक बना कर नहीं भेजा। ४. ८२

३. कह, मैं तुम्हारा संरक्षक नहीं हूं। सू० माइदा १६

४. और इन्हें छोड़ दे जो धर्म को खेल समझते हैं। सू० मायदा ६९

५. जो सीधे रास्ते पर आएगा, वह अपने भले के लिये ही सन्मार्ग का अवलंबन करेगा। १०. १०८

६. काफ़िरों के साथ शान्ति का बर्ताव कर और कुछ समय उन्हें छोड़ दे।

७. यदि तेरा प्रभु चाहता तो पृथिवी के सब लोग विश्वास करते। क्या तू उन पर बलात्कार करेगा कि वे विश्वास करें ? १०. ९९

इसी अभिप्राय को एक और प्रकार से यों कहा है:—

प्रत्येक जाति के लिये बनाई विधि उपासना की। सू० हज. रु. ५

एक और स्थल पर स्पष्ट कहा है:—

धर्म में बलात्कार नहीं। सू० बक़र. आ. १५६

इस आयत के उतरने का अवसर एक ऐसा समय बताया जाता है जब एक मुसलमान का लड़का ईसाई होकर ईसाइयों ही के साथ प्रवास कर गया। उसके पिता की इच्छा हुई कि उसका पीछा कर उसे बलात् मुसलमान बनाए। इस आयत द्वारा उसे इस वृथा प्रयत्न से रोका गया।

यह सब वाक्य कुरान में विद्यमान हैं और किसी भी निष्पक्ष पाठक को इन में सहन-शील धर्म की मीठी अरबी तान सुनाई देगी। इन में सहिष्णुता है, धार्मिक उदारता है। प्रचार की उत्सुकता अधीर होती सी है तो उसे दैव धीरता रोक लेती है। कोई चुपके से कह जाता है कि धार्मिक विचार की विभिन्नता स्वयं ईश्वर को इष्ट है।

"जनं बिभ्रती बहुधा विवाच सं नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम्।"

पृथिवी भिन्न भिन्न बोलियां बोलने तथा देश काल के अनुसार भिन्न भिन्न (स्मार्त) धर्मों का अनुसरण करने वाले जन-समुदाय का भरण करती है।

अथर्व वेद का यह प्रसिद्ध मन्त्र धीरे से अपनी गूंज अरबी संदेश-हर के संदेश में मिला देता है। परन्तु मौलाना लोगों को कुरान की शान्ति-प्रियता एक आंख नहीं भाई। उन्होंने प्रत्येक ऐसे स्थल पर टिप्पणी चढ़ा दी है कि यह आज्ञा तलवार की, या दूसरे शब्दों में जिहाद की, आज्ञा द्वारा मन्सूख है—प्रत्याख्यात है। वह जिहाद की आयत क्या सूरा तौबः की पांचवीं आयत है, यथा—

सो जब पवित्र मास बीत जाएं, तो मारो मूर्ति-पूजकों को जहां पाओ, उन्हें क़ैद करो, घेरो और सब ओटों में उनकी घात में रहो। तब यदि वे पश्चात्ताप करें, नमाज़ पढ़ें और ज़कात दें तो उनका रास्ता खुला छोड़ दो।

सू० तौबः आ० ५.

एक और स्थल पर कहा है:—

मुसल्मान मुसलिमेतरों को मित्र न बनाएं, सिवाय मुसल्मानों के। जो ऐसा करता है, वह किसी बात में अल्लाह का नहीं, सिवाय इसके कि तुम उन से डरो तक़िया के रूप में। सू० आल अमरान आ० २७

इस आयत का भाष्य करते हुए जलाल-बन्धु लिखते हैं:—

यदि किसी भय के कारण दम्भ के रूप में मित्रता का प्रकाश कर लिया जाए और हृदय में वैमनस्य और वैर रहे तो इस में हानि नहीं।......जिस जगह इसलाम का पूरा प्रभुत्व नहीं, वहां अब भी यह आज्ञा चरितार्थ होती है। .....काफ़िर की मित्रता ईश्वर के कोप का कारण है।

अन्यत्र कहा है:—

और लड़ो उन से यहां तक कि न रहे फ़ितना और होवे दीन वास्ते अल्लाह के। सू० अनफ़ाल आ. ३९.

इस आयत का अभिप्राय यही लिया जाता है कि तलवार से इसलाम ही को संसार का धर्म बना देने की आज्ञा है, क्योंकि अल्लाह का दीन इसलाम ही है।

इन दो प्रकार की आज्ञाओं में स्पष्ट विरोध है। इस विरोध का कारण भी स्पष्ट है। पूर्वोक्त आयतें ऐसी स्थिति में उतरी हैं जब मुसलमानों को शान्ति अभीष्ट थी, शेषोक्त ऐसे समय जब पक्ष-प्रतिपक्ष में सशस्त्र संग्राम हो रहा था युद्ध की

अवस्था पीछे आई और उसका अन्त मुसलमानों की विजय के रूप में हुआ। इस लिये उस अवस्था का मुसलमानों की दृष्टि में अधिक आदर होगया। अन्त को उस अवस्था में उतरी आयतों ही का प्रामाण्य स्वीकार किया गया। उन से पहली आयतें एक बीता स्वप्न सा होकर रह गईं। विजयी मुसलमानों के लिये शान्ति के आदेशों का प्रामाण्य न रहा।

वास्तविक धर्म पूर्वोक्त है

प्रश्न होता है कि ऐसी दशा में इन आदेशों के कुरान में सुरक्षित रहने का लाभ क्या? क्या यही कि ऐतिहासिकों को सच्चे इतिहास की सामग्री मिलती रहे? ऋषि दयानन्द ने ईश्वरीय आदेशों का एक आवश्यक गुण यह बताया है कि वह कदापि मनसूख़ नहीं हो सकते। नित्य ईश्वर की आज्ञा नित्य होती है। इस सिद्धान्त को ऋषि के जीवन-काल ही में सर सैयद अहमद ख़ां ने स्वीकार कर कुरान पर भी उसे लागू कर दिया। ईश्वरीय ज्ञान संबन्धी व्याख्यान में मैं कुरान की ऐसी आयतों का उद्धरण कर चुका हूँ जिन में कुरान की कुछ आयतों के मनसूख़ किये जाने का स्पष्ट विधान है, यथा

> जो मनसूख़ करते हैं हम आयतों में से या भुला देते हैं, लाते हैं बेहतर उससे या सदृश उसके। सू. बकर. रु. १३

सर सैयद ने इस विधान का पात्र इसलाम से पूर्व के तौरेत तथा इंजील आदि ग्रन्थों को माना है कि उन के मनसूख़ होने पर नया ग्रन्थ कुरान के रूप में दिया गया। यदि कोई सर सैयद के साथ सहमत हो ही जाए तो उसके मन में स्वभावतः जिज्ञासा होगी कि यदि कुरान से पूर्व के ग्रन्थ समग्र मनसूख़ हो सकते थे तो कुरान क्यों मनसूख़ नहीं हो सकता? यदि ईश्वरीय आज्ञा परिवर्तनातीत है तो परिवर्तनातीत कोई आज्ञा विशेष क्यों हो? सर्वज्ञ प्रभु को हमारी तरह उत्तरोत्तर अनुभव से तो लाभ उठाना अपेक्षित है नहीं कि पहिले अशुद्ध अथवा अपूर्ण आज्ञा दे बैठे और फिर उसका संशोधन करता रहे। और यदि मानव बुद्धि के विकास के साथ साथ ईश्वरीय ज्ञान का भी विकास होता है तो कुरान पर आते ही वह विकास रुक क्यों जाए? सर सैयद ने ऋषि का संकेत लिया तो सही परन्तु अधूरा। स्वयं कुरान में, जैसे मैं इस विषय के अपने एक पूर्व व्याख्यान में दिखा चुका हूँ, दो प्रकार के धर्म-विधान माने हैं—एक नित्य, सुरक्षित पट पर सदा स्थिर रहने वाला ज्ञान जिसे हम वेद या श्रुति कहते हैं, दूसरा अनित्य जिन के संबन्ध में कहा है:—

> और अगर हम चाहें, हम ले जाएं वह चीज़ जो वही की है तरफ़ तेरी। सू० बनी इसराइल. रु. १०

"वह चीज़" का निर्देश स्पष्ट कुरान की ओर है। कुरान अपने ही लेखानुसार स्पष्ट स्मृति है। स्मृति का विधान काल-विशेष के लिये होता है। आज इसलामी तलवार का दौर नहीं रहा। इस समय विचार-स्वातन्त्र्य का युग है। मुसलमानों के सौभाग्य से उनके अपने धर्म-पुस्तक में इस आशय के स्पष्ट विधान विद्यमान हैं। उन्हें इस समय इतना ही तो कर देना है कि इन विधानों को मनसूख़ न समझ कर उलटा उन के विरोधी आदेशों को मनसूख़ समझें। अथवा इन को प्रधान और इनके विपरीत आदेशों को गौण मान लें। हिंसा यदि गौण हो जाए तो वह मुख्य विधि की साधन-मात्र रहेगी। कुरान में हिंसा-विधायक ऐसे वाक्य हैं जिन्हें वर्तमान धार्मिक आदर्शों की दृष्टि से संभवतः नितान्त त्याज्य कह देना पड़े। उन्हें मनसूख़ ही समझा जाए तो ठीक है। परन्तु यहां उन का प्रसंग नहीं।

विचार की स्वतन्त्रता "अहिंसा" शब्द के विशाल अभिधेय का एक अंग है। हम ने ऊपर देख लिया कि इसका विधान कुरान में है। मेरे विचार में और नहीं तो इन्हीं वाक्यों की रक्षा के लिये कुरान को बचाए रखने की आवश्यकता है। यह वाक्य कुरानकार के जीवन में एक ऐसी अवस्था का पता देते हैं, जब उनका हृदय उदारता, नम्रता, धीरता आदि मृदु धार्मिक भावनाओं से प्लावित था। उस शान्त काल की स्मृति उनके शेष संघर्ष-मय जीवन में अतीत मधुरता एक की स्वादु लहर का काम देती होगी। यह वह विद्युलता होगी जो घमासान युद्धों की घनघोर घटाओं में प्रकाश की झांकी सी झलक जाती होगी। इसलाम के भाग्य-ललाट में आज यही एक मात्र उज्वल, आशा की रेखा है।

वाचक अहिंसा

मानसिक अहिंसा के इस उच्च आदर्श से अब हम वाचक तथा क्रियात्मक अहिंसा के क्षेत्र में आते हैं। इस में सन्देह नहीं कि कुरान में विधर्मियों के लिये "गन्दे" "शैतान के बच्चे" "उनपर अल्लाह की लानत हो" आदि २ गालियों का भी प्रयोग हुआ है परन्तु साथ ही यह उपदेश भी है:—

क्षमा करो कृपा-पूर्ण क्षमा द्वारा। १५. ८५

उन्हें बुद्धिमत्ता से उत्तम रीति से निमंत्रित कर। १६

बुराई का उत्तर भलाई से दे। २३

मुसल्मानों को कह उन्हें क्षमा करें जो ईश्वर के दिन की आशा नहीं रखते। १५. १३

यज्ञ—पूज्य बछड़े का वध नहीं किया

क्रियात्मक हिंसा यज्ञ तथा भोजन से संबद्ध है। गौ की कुर्बानी का विधान कुरान में कहीं नहीं। गो-हिंसा के पक्षपाती इस विषय में युक्ति यह दिया करते हैं कि जहां की जनता गौ को पूज्य देव मानती हो, वहां इन पशुओं में उपास्य-भाव का पूरा अकाट्य निराकरण उनके मार देने से ही होता है। मुझे इस विषय में पुराने मुसल्मान बादशाहों के उन आज्ञा-पत्रों की ओर संकेत करने की आवश्यकता नहीं जिन में गो-पूजा-प्रधान देशों में गो-हत्या का निषेध इस युक्ति के आधार पर किया गया है कि ऐसे देशों में प्रजा के हृदयों पर गो वध से मार्मिक आघात पहुंचता है, जो कुरान की स्पष्ट आज्ञाओं का विरोध है। कुरान में मूसा के समय की एक जाति का वर्णन आता है जो बछड़े को पूजती थी। यथा,

उस (मूसा) की अनुपस्थिति में तुम ने बछड़े को (पूज्य बुद्धि से) ग्रहण किया और पाप किया। सू. बक़र. आ. ४८

उन्होंने बछड़े को (पूज्य-बुद्धि से) ग्रहण किया पश्चात् इस के कि उन्हें (हमारी आज्ञा के) चिन्ह पहुंच चुके थे। परन्तु क्षमा किया। निसा १५२

यही बात सू० ताहा आ० ६० आदि स्थानों में दोहराई गई है। इन सब स्थलों पर बछड़े के पूजने वालों को तो पापी कहा है मगर बछड़े को नहीं छेड़ा। आखिर यह कहां का न्याय है कि काफ़िर तो हों मनुष्य और मारा जाय पशु! और यदि पथ-भ्रष्ट असन्मार्ग-सेवी मनुष्य पर भी अत्याचार करना विहित हो तो धार्मिक स्वतन्त्रता कहां रही? मूर्खता—ज्ञान शून्यता—का धार्मिक उपाय मधुर तथा मृदु शिक्षा है, बलात्कार नहीं।

गौ का वध और संजीवन

सूरा बक़र में मूसा की आज्ञा से एक गाय के मारे जाने का वर्णन है। परन्तु वह यज्ञरूप में नहीं। वहां तो लिखा है:—

क्योंकि हमने कहा उस (के शव) पर उसका एक भाग मारो। इस प्रकार परमेश्वर मरे हुए को जीवन देता है। सू० बक़र आ० १९५.

अर्थात् वह गौ अपनी एक हड्डी का आघात पाकर फिर से जी उठी। इस चमत्कार से ईश्वर को अपनी संजीवन-शक्ति का परिचय देना था। यदि इस समय भी गो-वध से ऐसा परिचय दिया जासके तो सम्भवतः गौ की कुर्बानी अर्थवाद द्वारा कुरान-विहित समझी जासके। अन्यथा इस आयत में भी गोवध का विधान नहीं पाया जाता।

इब्राहीम की कुर्बानी पुत्रोत्सर्ग

चलो गाय की कुर्बानी न सही, किसी और पशु की कुर्बानी का विधान ही कुरान में होगा। साधारणतया इसलामी कुर्बानी का आधार इब्राहीम नामक एक पुराने पैग़म्बर के जीवन की एक घटना ही को बताया जाता है, जिसका वर्णन कुरान में इन शब्दों में हुआ है:—

उस के पिता (इब्राहीम) ने कहा: पुत्र मैंने देखा है स्वप्न में कि तुझे कुर्बान करूं। इस लिये सोच ले जो तुझे जँचे।

उसने कहा— पिता! जो तुझे आज्ञा हुई है कर। यदि ईश्वर ने चाहा तो मुझे धीर पायगा।

और जब उन्होंने अपने आप को ईश्वर की इच्छा पर छोड़ दिया, उसने उसे उसके माथ के बल लेटा दिया।

हम (प्रभु) ने उसे पुकारा "इब्राहीम!

अब तूने स्वप्न की बात पूरी करदी।" देख हम कैसे धार्मिकों को बदला देते हैं।

यह वस्तुतः थी निर्णायक परख।

और हमने उस के बदले में एक बहुमूल्य प्राणी लिया।

अहज़ाब १०१—१०८

इस प्राणी के संबन्ध में प्रचलित कथा यह है कि वह स्वर्ग से लाया गया था। इस प्रकार कुर्बानी यहां भी पशु की नहीं किसी आत्मीय की है और इस में वध नहीं, परमात्म-समर्पण अभीष्ट है। इन अर्थों में सब से उत्तम कुर्बानी आत्मोत्सर्ग है, अर्थात् ईश्वर के रास्ते में अपने आप को अर्पण कर देना। आर्य धर्म-विहित सर्वमेध का यही अभिप्राय है। इब्राहीम की इस कुर्बानी का वर्णन करते हुए स्वभावतः कठोपनिषद्-वर्णित नचिकेता की कथा याद आती है। पिता ने सर्व-मेध किया है तो पुत्र पूछता है, मुझे किसे दोगे? उत्तर मिलता है, मृत्यु को। महाराज अशोक का अपने पुत्र और पुत्री को धर्म-प्रचारार्थ समर्पण करना भी ऐसी ही कुर्बानी है। यदि हमारे मुसलमान भाई इब्राहीम के पुत्र इसहाक़ के बलिदान के कथानक का तात्पर्य यही समझ लें तो कुर्बानी का अभिधेय कितना उत्तम हो जाए।

हज में कुर्बानी

कुर्बानी का एक और प्रसंग हज के प्रकरण में है। क़ाबा मुसलमानों का सब से बड़ा तीर्थ है। उस की यात्रा इसलाम के पांच स्तंभों अर्थात् मुख्य कर्तव्यों में से एक मानी जाती है। वहां जाकर एक ही वस्त्र में रहना, बनाव सिंगार से उपेक्षा रखना, तपोमय जीवन व्यतीत करना—यह सब नियम तीर्थोचित ही हैं। क़ाबे के निकट कुछ दूरी तक किसी पशु या पक्षी का मारना भी निषिद्ध है।

शिकार जिस की आज्ञा नहीं जब तुम हज पर हो।

मायदा आ० १।

सार यह कि वहां पशु पक्षी तक को अभयदान है। युद्ध भी उन दिनों में वर्जित होता है। स्वयं जिहाद की आयत में कहा है:—

जब पवित्र मास बीत जाएं तो काफ़िरों के साथ लड़ो।

तौबः आ. ५.

यह सब कुछ होते पाठक के आश्चर्य की सीमा नहीं रहती जब वह पढ़ता है:—

और लोगों को हज की घोषणा कर। उन्हें तेरे पास आना चाहिये—प्यादे और प्रत्येक तेज़ ऊंट पर, प्रत्येक गहरी घाटी से पहुंचते हुए।

ताकि वे इस के लाभों की उन्हें साक्षी दें। और नियत दिनों में ईश्वर का नाम पढ़ें उन पशुओं पर जो उसने उन्हें आजीविका के लिये दिये हैं। सो खाओ उन में से स्वयं और खिलाओ दीनों दरिद्रों को। सू० हज आ० २८—२९

पशुओं पर ईश्वर का नाम लेने का पारिभाषिक अर्थ है उन्हें मारना। यदि यह अर्थ न लें तो उन में से खाने का अभिप्राय तो उन में से पैदा होने वाले दूध आदि पदार्थों का उपभोग हो सकता है। यही उपभोग दीनों दरिद्रों को भी कराया जा सकता है। फिर कहा है:—

तुम इन (पशुओं) का उपभोग करो नियत समय तक फिर उन के बलिदान की जगह पुराना घर (काबा) है।

और हमने प्रत्येक जाति के लिये विधि नियत की है कि वे नाम लें प्रभु का पशुओं पर जो उसने उन्हें प्रदान किये हैं। सू० हज आ. ३४—३५

आगे कहते हैं।

हमने ऊंट निश्चित किये हैं ईश्वरार्पण के लिये। इन में तुम्हारा भद्र है। इस लिये इन पर ईश्वर का नाम लो। जब वे पंक्ति में खड़े हों। और जब वे अपने पार्श्वों पर गिर जाएं, तो भोग करो उन से और खिलाओ उसे जो सन्तोषी है और उसे जो मांगता है। सू० हज आ० ३७

कुर्बानी का निषेध.

इस आयत में पार्श्वों पर गिर जाने का अभिप्राय मर जाना लिया जाता है। इस अवस्था में मार कर खाने का विधान स्पष्ट है। परन्तु इस से झट अगली ही आयत में लिखा है:—

कदापि उन का मांस ईश्वर को नहीं पहुंचता न उन का खून पहुंचता है। किन्तु तुम्हारा संयम उसे पहुंचता है। सू० हज आ० ३८

इस प्रकार कुरान ने स्वयं खून बहाने, तथा वध करने को महत्व न देकर कुर्बानी का तात्पर्य संयम ही को बताया है।

दो एक वर्ष हुए कलकत्ता यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर शैख़ खुदा बख़्श ऐम. ए. ने ईद के अवसर पर कलकत्ते के पत्रों में विज्ञप्ति छपवाई थी। उस में लिखा था:—

सच मुच ! सच मुच ! बड़ा खुदा, रहमान और रहीम खुदा आज ख़ून की नदियों का, चीख़ते हुए पशुओं की वर्णनातीत वेदना का इच्छुक नहीं।......निष्कृति ?...... वास्तविक निष्कृति वह है जो मनुष्य के अपने हृदय में होती है। सारे पशु-जगत् की ओर अपनी भावना बदल देनी चाहिये। भविष्य काल का धर्म निष्कृति की क्रूर और निर्दयी विधि को त्याग देगा। और उन दीनों पर दयापूर्ण घृणा की दृष्टि पात करेगा......जब बलिदान का अर्थ अपने सिवा किसी और वस्तु के जीवन की कुर्बानी था।

('माडर्न रिव्यू' से अनूदित)

महामना मुहम्मद के आने के पूर्व हज की विधि प्रचलित थी। उस में कुछ तपस्या और देवताओं के लिये बलिदान देने का विधान था। उन्होंने देवताओं का स्थान ईश्वर को दे दिया परन्तु बलिदान की विधि स्थिर रखी। तो भी उन का अन्तरात्मा इस क्रूर अत्याचार का धीमा धीमा प्रतिवाद करता रहा। रहीम और रहमान—दयालु कृपालु—प्रभु की प्रसन्नता निरपराध प्राणियों के वध में हो, यह एक धर्माचार्य क्यों कर स्वीकार कर सकता है ? उन्होंने कह ही तो दिया—भाई ! प्रभु को रुधिर और मांस नहीं पहुंचते; मांस और रुधिर का रास्ता तो है ही प्रभु के चरणों से विपरीत ओर। प्रभु को पहुंचता है संयम। यही वास्तविक बलिदान है।

मैंने इस व्याख्यान-माला के प्रथम व्याख्यान में सर सैयद द्वारा कुरान के अर्थों में किये गए

संशोधनों की एक तालिका प्रस्तुत की थी । उस में एक संशोधन यह था :—

'कुरान में जो खुदा का पृथिवी और आकाश को छः दिनों में बनाना लिखा है, इस से किसी घटना का समाचार देना अभिप्रेत नहीं, किन्तु यहूदियों के इस विश्वास का खण्डन इष्ट है कि परमेश्वर ने पृथिवी और आकाश को छः दिन में बना कर सातवें दिन आराम किया ।

सर सैयद के किये इस संशोधन को कोई स्वीकार करे या न करे । उस से हमें प्रकृत विषय में, प्रचलित अर्थों से भिन्न, कुरान की आयतों के परस्पर-विरोध-शून्य, पैगंबर की उच्च धार्मिक भावना के अनुकूल, अर्थ निर्धारण करने में एक अत्यन्त उपयोगी संकेत मिलता है । जैसे विवाह की अनुज्ञा देकर फिर लिखा है—"यदि तुम न्याय कर सको और तुम न्याय न कर सकोगे" । कोई भी विचार-शील पाठक इन शब्दों से पैगंबर की आन्तरिक इच्छा अवश्य यही समझेगा कि लोग बहु-विवाह न करें । इसी प्रकार कुर्बानी के विषय में भी अन्त की आयत यदि पशु-वध की निषेधक नहीं तो कम से कम उसे निरर्थक अवश्य बताती है । सर सैयद का अनुसरण करते हुए यदि हम यह निश्चय करलें कि हज में जो हिंसात्मक कुर्बानी का वर्णन है वह केवल पूर्व-काल की प्रचलित विधि का तात्कालिक विधान के रूप में, केवल उल्लेख ही किया है । तो कुरान पर वृथा हत्या का दोष नहीं लगता । कुरान की अपनी आज्ञा अन्तिम आयत में दी है ।

यज्ञ के संबन्ध में वेद की आज्ञा स्मरण करने योग्य है:—

यत्पुरुषेण हविषा यज्ञं देवा अतन्वत ।

अस्ति नु तस्मादोजीयो यद्विहव्येनेजिरे ॥ अ० ७.५.४

विद्वानों ने जो पुरुष को हवि बना कर यज्ञ किया, वह उस यज्ञ से अधिक बलवान है जो विविध हव्य पदार्थों से किया जाता है ।

अर्थात् आत्म-समर्पण सब से उत्तम यज्ञ है ।

अग्निहोत्र—

अग्निहोत्र रूपी यज्ञ का वेद में तो विधान है ही, यथा—

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् ।
आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ य०

समिधाओं से अग्नि की परिचर्या करो । अतनशील अर्थात् विस्तृत होने वाली आग को घी से प्रज्वलित करो । और उसमें हव्य की आहुति दो ।

कुरान में भी यज्ञ की आग का वर्णन आता है । मूसा कुरान-प्रशंसित पैगंबर हैं । उनके वृत्तान्त में कहा है:—

जब उस ने आग देखी, अपनी पत्नी से कहा तुम ठहर जाओ......... जब मूसा वहां आया, उसे आवाज़ आई, हे मूसा ! मैं तेरा मालिक हूं, तू अपनी जूतियां उतार डाल ।

सू. ताहा रु० १

जब उस आग के पास पहुंचा तो उसको आवाज़ आई, मुबारिक हैं वह जो आग में हैं और जो इस के गिर्द हैं ।

सू. नम्ल रु. १

यह आग सिवाय यज्ञ की आग के और क्या हो सकती है ? कुरान के भाष्यकारों ने इसे ईश्वर की ज्योति का दर्शन समझा है । परन्तु यह आग तो स्पष्टतया भौतिक है । उस के पास जाते ही जूतियां उतार देना—उसे पवित्र मानना स्पष्ट बताता है कि वह यज्ञ की आग थी । अन्तिम आयत जिस में इस आग में आहुति रूप से डाले गए और उस के चारों ओर बैठने वाले सौभाग्यवान् कहे गये हैं । आर्यों के रोज़ के पाठ "अयन्त इध्म आत्मा" का भावानुवाद है । हम भी तो यही कहते हैं:—

हे अग्ने ! यह आत्मा तेरा ईंधन है।

परमात्म-परक अग्नि होने से इस का ईश्वर से तादात्म्य भी हो सकता है। इस आग के चारों ओर तो यजमान लोग बैठते ही हैं और वे यज्ञ के समय देव होते हैं। उस में पड़ने का अभिप्राय है, अपने आप को उस आग के समर्पण करना—उस का ईंधन बनना। यज्ञ की आग धर्म-कार्य की प्रतिनिधि है। कुरान की उपर्युक्त आयत में इसी आर्य भावना का अनुवाद है।

भोजन में अहिंसा—शव और रुधिर का निषेध

शेष रह जाती है भोजन संबन्धी अहिंसा। इस पर कुछ समय हुआ, नादिर बेग क. मीर्ज़ा नाम के एक मुसलमान सज्जन ने थियासोफ़िस्ट नामक पत्रिका में विचार किया था। कुरान द्वारा वर्जित भोजनों में से एक रुधिर है। मीर्ज़ा महाशय कहते हैं:—

क्या मांस बिना रुधिर के लेश के खाया जा सकता है? यह उतना ही असंभव है जितना शैलॉक का एक पौंड मांस ले सकना।

अर्थात् रुधिर के वर्जित होने से मांस स्वयं वर्जित हो गया। परन्तु कुरान में इन बातों का इतना सूक्ष्म विवेचन नहीं किया। रुधिर का अभिप्राय भाष्यकार बहता हुआ रुधिर लेते हैं। ऐसे ही कुरान में मरा हुआ पशु खाना भी निषिद्ध है। कई लोग मरे हुए में मारे हुए का समावेश कर देते हैं। परन्तु मरे हुए का अर्थ भाष्यकार "स्वयं मरा हुआ" ही लेते हैं।

शूकर का निषेध—अशुचि वस्तु

शूकर के मांस को तो नाम लेकर वर्जा है। लिखा है:—

शूकर का मांस कि वह अशुचि है। सू० अनआम १८

इस से यह निगमन किया जा सकता कि अशुचि पदार्थ नहीं खाना चाहिये। यह बात कई स्थलों पर स्पष्ट भी लिखी है, यथा—

तुझ से पूछते हैं, विहित पदार्थ कौन से हैं, कह सुथरी चीज़ें। सू० मायदा रु. १.

इन से पूछ प्रभु ने जो सृष्टि मनुष्य के लिये निकाली है और आजीविका की सुथरी चीज़ें उन्हें किस ने वर्जा है? परराफ़ रु० ४.

प्रभु ने जो तुम को पवित्र भोग दिया उसे खाओ। सू० नहल रु० १५

इन आयतों को लेकर नादिर बेग मीर्ज़ा कहते हैं कि मांस खाना इंगित रूप में कुरान ने बुरा ठहरा दिया है क्योंकि जैसे वे लिखते हैं:—

१. शाक मांस की बराबर राशि से अधिक पुष्टिकारक है।
२. मरे हुए शरीरों को खाने की गर्हित आदत से बहुत भयंकर रोग पैदा होते हैं।
३. मनुष्य मांसाहार के लिये नहीं बना इस लिये यह आहार उस के योग्य नहीं।
४. शाकाहार से मनुष्य अधिक बलवान और स्वस्थ रहता है।
५. मांसाहार मद्यपान का प्रेरक है और उस से पाशविक उत्तेजनाएं पैदा होती हैं।
६. शाक मांस से सस्ता और अच्छा है।
७. जीवन का नाश पाप है। कहीं कहीं यह दो वैकल्पिक बुराइयों में से कम बुरा हो सकता है। परन्तु यहां इस के लिये कोई भी न्याय्य हेतु नहीं क्योंकि कुछ लोग पशु जगत् को कष्ट देकर धनोपार्जन करते हैं, वे स्वार्थ वश ऐसा गर्हित भोजन करने वालों की बिगड़ी हुई रुचि को सन्तुष्ट करते हैं।
८ पशुओं के बध में भयंकर क्रूरता होती है।
९. इस से बूचड़ पतित होता है और घातक बन जाता है।
१०. मांसाहार सूक्ष्म शरीर को स्थूल कर देता है जिस से वह कोई उच्च कार्य नहीं कर सकता।
११. पशु मारना मनुष्य के प्रकृति संबन्धी कर्तव्य के विरुद्ध है। इत्यादि—

"हलाल" शब्द का अर्थ—

मेरी दृष्टि में यह एक तृण के आधार पर भारी भवन खड़ा करना है। सू० हज में लिखा है:—

तुम्हारे लिये पशु विहित हैं सिवाय उनके जिनका कुरान में निर्देश है। हज. रु. ४.

यहां विहित (हलाल) का अर्थ आहार के अतिरिक्त अन्य उपयोग के लिये भी हो सकता है, क्योंकि विवाहार्थ विहित स्त्रियों को भी हलाल ही कहा है और वह आहार की वस्तु नहीं।

सू० मायदा में आया है:—

हलाल है तुम को समुद्र (या दरिया) का शिकार और उसका भोज्य। मायदा. रु १३

यहां शिकार नाके आदि हिंस्र पशुओं का हो सकता है। और खाना दरिया में उत्पन्न होने वाले उन पदार्थों का भी तो हो सकता है जिन की प्राप्ति में हिंसा न हो।

स्थान स्थान पर ऐसे पदार्थ के खाने का निषेध किया गया है जिस पर प्रभु का नाम न लिया हो। भाष्यकारों ने यहां पदार्थ के स्थान पर पशु कर लिया है और लिख दिया है कि मारते समय बिस्मिल्लाह पढ़ने से वह हलाल हो जाता है। कुरान के अपने शब्दों में यह बात नहीं आई।

अंध-विश्वास का निषेध मांस का विधान नहीं—

यह व्याख्या मैंने इस लिये कर दी कि मांसाहार के विधान को जितना बल ख़ाह म-ख़ाह की मनमानी तफ़सीरों से मिलता है, वह कम हो जाए। मैंने कुरान में मांसाहार का स्पष्ट निषेध कहीं नहीं पाया। हां! यदि "मरे हुए" में "मारा हुआ" भी समाविष्ट समझा जाए तो और बात है। मुहम्मद् महोदय के सम्मुख मांसाहार और शाकाहार का विकल्प संभवतः आया ही नहीं। उन के सामने विधर्मियों की ऐसी भ्रान्तियां तो आती रहीं कि किसी किसी मांस को बिना यौक्तिक कारण के केवल अंधविश्वासवश त्याग देते। यथा किसी ऊँटनी ने पांच बच्चे दे दिये। उस का कान काट कर मूर्ति पर चढ़ावा चढ़ाते और न उस का दूध पीते न उस पर सवारी करते। ऐसी ऊँटनी का नाम बुहैरा था। मिन्नत के सांड से कोई काम न लेते। उसे साइबा कहते। दो भिन्न भिन्न लिंगों का बच्चा देने वाली बकरी को वसीला कहते। जिस ऊंट का पोता सवारी के योग्य होता उस पर सवारी न करते। इसे हाम कहते। इस पर कुरान में आया:—

प्रभु ने आज्ञा नहीं दी बहैरे, साइबे, वसीले और हाम के विषय में। काफ़िर प्रभु पर झूठ बांधते हैं। सू. मायदा. १४.

अर्थात् इन पशुओं का उपयोग अन्ध-विश्वास वश मत त्यागो। इनका उपयोग दूध तथा सवारी के रूप में लिखा ही है। भला इस अंध-विश्वास के खण्डन से मांसाहार का विधान क्योंकर हुआ? यह हमारी समझ में नहीं आया।

सू. मायदा में कहा है—

तुम्हें वर्जित है मरा हुआ (प्राणी) और रक्त और सूकर का मांस और वह (पदार्थ) जिस पर सिवाय अल्लाह के किसी का नाम लिया हो और जो (प्राणी) गला घुंट कर मरे, और जो चोट लग कर मरे और जो गिर कर मरे और जो सींग लग कर मरे और जिसको किसी हिंस्र पशु ने मार खाया हो सिवाय कि पहले तुम उसे पवित्र करो और जो थानों पर मारा जाय और पांसे डाल कर बांटना पाप है। सू० मायदा रु० १

पवित्र करने का अर्थ भाष्यकार हलाल करना या छुरी से काटना लेते हैं। और वह भी उस पशु के लिये विहित है जो किसी आकस्मिक आपत्ति से मर रहा हो। यदि वह काटने से पूर्व स्वयं मर जाए तो वर्जित है। मेरा विचार इन भाष्यकारों से भिन्न है। इसलाम में जिस पशु को हराम कहें, उस का अभिप्राय केवल उसके मांस का निषेध ही नहीं। सर्व प्रकार के उपयोग का निषेध होता है। यहां मरे हुए पशु के सब पदार्थों यथा हड्डी खाल इत्यादि के उपयोग का निषेध है सिवाय इस के

कि उसे पवित्र किया जाए। पवित्र करने का अर्थ गर्दन काटना खींचातानी है। मांस का यहां प्रकरण ही नहीं। पवित्र करने का युक्तियुक्त अभिप्राय तो शव को साफ़ कर उस को मानवीय उपयोग के योग्य बनाना है। देवताओं के नाम पर मारा गया पशु या पांसों से बांटा गया पदार्थ यहां भी स्पष्टतया मूर्तिपूजा आदि के कारण निषिद्ध है।

अन्यत्र कहा है:—

कहते हैं, इन पशुओं के पेट में जो (बच्चा) है वह हम पुरुषों के लिये है, स्त्रियों के लिये निषिद्ध है। यदि मरा हुआ हो तो उसमें सब का भाग है। प्रभु इन को इस कहने का शीघ्र बदला देगा। सू० अनआम रु. १६

यहां भी एक निराधार भ्रान्ति का निराकरण किया है। इस निराकरण से मांस का विधान अभिप्रेत नहीं। केवल अंधविश्वास-पूर्ण उक्ति को बुरा ठहराया है। फिर उस मरे हुए या जीवित पशु का उपयोग तो आहार के अतिरिक्त और कई प्रकार से हो सकता है।

क्या कुरान मांस-विधायक है ?

मांसाहारियों ने कुरान को जितना मांसाहार-विधायक बनाया है, वह वस्तुतः इतना मांसहार-विधायक है नहीं। जैसे मैं ऊपर कह आया हूँ, कहीं कुछेक पशुओं को हलाल कह दिया, मांस-प्रिय मौलवी साहब ने समझ लिया कि लो! बिस्मिल्लाह पढ़ने की आज्ञा हो गई। मियां! हलाल और उपयोगों के लिये भी तो हो सकता है, जैसे स्त्री विवाह के लिये हलाल है। और जो कहीं खाने अर्थ के धातु का स्पष्ट प्रयोग हो गया, फिर तो कहना ही क्या है! कुरान में जहां जहां खाने की बात आई है, वहां लिखा है, इन पशुओं में से खाओ। 'में से' खाने का अर्थ मांस खाना ही क्यों लिया जाए। जैसा मैं ऊपर कह आया हूँ, इसलाम के हराम हलाल में एक विशेषता यह भी है कि जिस पशु का मांस हराम है, उसके बाल, खाल, दूध आदि भी हराम हैं। अच्छा हो यदि मांस की जगह दूध आदि खाद्य पदार्थ हलाल समझ लिये जाएं। खाने का अर्थ है भोग करना, जो किसी भी अंश का हो सकता है।

अब एक और स्थल शेष रह गया है। उस की व्याख्या भी अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार कर जाऊँ। लिखा है:—

तुम से पूछते हैं, हलाल कौन सी चीज़ें हैं? कह, सुथरी चीज़ें और 'सयाने प्राणी' जो तुमने कुत्ते की तरह सिधा रखे हों और जिन्हें तुम सिखाते हो उस से जो प्रभु ने तुम्हें सिखाया, वह जो तुम्हारे लिये पकड़ रखें, उसको खाओ और प्रभु का नाम उस पर ले लो। सू० मायदा आ० १.

जिस शब्द का अर्थ मैंने 'सयाने प्राणी' किया है, उसका अर्थ भाष्यकार "शिकारी जानवर" करते हैं। आगे जहां लिखा है— वह जो तुम्हारे लिये पकड़ रखें—वहां "पशु" का प्रत्याहार स्वयं कर देते हैं। यह अनुवादकों की ज़बरदस्ती है। 'जवारिह' का रूढ़ि-अर्थ है आक्रमण करने वाले या परीक्षा करने वाले अर्थात् सयाने। यह कहां आवश्यक है कि वह प्राणी पशु ही को पकड़ें। वे कोई भी पदार्थ ला सकते हैं। और यदि वे शिकारी पशु ही हों, और उन्होंने पकड़ा भी पशु ही हो, तो भी उसके हलाल होने से उसका मांस ही हलाल होगया, यह कहां का तर्क है? हलाल तो उनकी खाल तथा हड्डी आदि कोई भी उपादेय अंश हो सकता है।

कुरान का मत

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि कुरान में सिवाय मृत प्राणी के खाने के निषेध के और कहीं मांसाहार का निषेध मुझे नहीं मिला। परन्तु

जितना हलाल साधारणतया मांस को कहा जाता है, यह भी अनुवादकों की मन-गढ़न्त है। जगह जगह पर "पशु" शब्द का प्रत्याहार कर कुरान को ख़ाह-न-ख़ाह हिंसा का प्रचार करने वाली पुस्तक बना दिया गया है। कुरानकार के सामने अरब के मूर्खों की अन्ध-विश्वास-परक कुरीतियां तो हैं जिन्हें वह धर्म विरुद्ध समझ कर उनका खण्डन करते हैं। परन्तु जैसा बुहैरा, सायबा, वसीला आदि के सम्बन्ध में उतरी आयत में लिख दिया कि कुरान की इस में कुछ आज्ञा नहीं। तात्पर्य यह है कि वह अन्ध-विश्वास तो अशुद्ध है। रहा ऐसे पदार्थों का उपयोग लेना, उस का निश्चय अपना लाभालाभ देख कर स्वयं करो। चीज़ स्वच्छ खाओ, स्वास्थ्य-वर्धक खाओ और लाभकर खाओ। इस अवस्था में मुसलमान मांस खाने का पक्ष कदापि नहीं ले सकते। कादिर मीर्ज़ा का यह कथन भी ध्यान देने योग्य है कि स्वयं मुसलमानों ने अपने लिये हिंस्रपशु त्याज्य समझ लिये हैं। इसका कारण? यही कि उनका मांस हिंसा-भाव लाता है। मीर्ज़ा पूछते हैं कि उनमें यह हिंस्रता कहां से आई? स्पष्ट है कि मांस खाने से। तो मांस खाना ही क्यों न छोड़ दिया जाए? उन मीर्ज़ा की एक और युक्ति भी मार्मिक है कि मांसाहार के रिवाज ने कसाई श्रेणी पैदा की है जो किसी प्रकार मानव-जाति के गर्व का कारण नहीं। वे तो मनुष्यों में ही मानों हिंस्र पशु पैदा हो गये हैं।

पैग़ंबर का व्यवहार—

स्वयं मुहम्मद साहब के व्यवहार के संबन्ध में मिर्ज़ा महाशय लिखते हैं:—

आपत्काल को छोड़ कर पवित्र पैग़ंबर मुहम्मद प्रायः रोटी, दूध, खजूर और शहद पर गुज़ारा करते रहे।

उनके विषय में एक कथा भी लिखी है कि एक दिन जब वह प्रभु के ध्यान में निमग्न थे, "एक बिल्ली उनके चोले के किनारे पर आ बैठी और वहीं सो गई। जब नबी ध्यान से फ़ारिग़ हुए, उन्होंने बिल्ली को देखा और यद्यपि उन्हें आवश्यक कार्य था, वह बिल्ली के जागने तक बैठे रहे और उस की नींद ख़राब न की।" यह घटना लिख कर मीर्ज़ा पूछते हैं:-"क्या हृदय में ऐसा प्रेम भाव रखते हुए वे अपने अनुयायियों को केवल अपनी क्षुधा की निवृत्ति के लिये वृथा जीवन विनष्ट करने की आज्ञा दे सकते थे, जब नाज, दूध, खजूर और शहद सब के खाने के लिये पर्याप्त मात्रा में विद्यमान था?"

कुरान-कथित अन्न—

कुरान में खाने के पदार्थों का विवरण दिया है:-

उसने पैदा किये बाग़ छत्रियों वाले और बिना छत्रियों के और खेती। कई प्रकार का है उसका फल। जैतून और अनार। सदृश और असदृश। खाओ उसके फल में से जब फल लाए।

………………सू० अनआम रु. ७

इसके झट आगे लिखा है:—

और पशु लदने वाले और यात्रा वाले।

खाने के लिये कुरान की दृष्टि नाज आदि पर है। वेद में आया है:—

"पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नियच्छात्।" अथर्व १८. ३१. ५

अर्थात् प्रेरक परमात्मा मुझे पशुओं का दूध और औषधियों का रस दे।

अहिंसा तो वेद का आदर्श ही है। लिखा है:—

"अनागो हत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः। यत्र यत्रासि निहिता ततः स्त्वोत्थापयामसि पर्णाल्लघीयसी भव।" अथर्व १०. १.२९

निरपराध का मारना भयंकर पाप है। हे हिंसे! हमारे गौ, घोड़े, मनुष्य को मत मार। जहां जहां तू छिपी है, वहां वहां से हम तुझे उठा फेंकते हैं। तू तिनके से भी हलकी होजा।

वेद में गौ घोड़े और मनुष्य निरपराध प्राणियों के प्रतिनिधि रूप ही में परिगणित होते हैं। अभिप्राय यह है कि पशुओं की ख़्वाह-न-ख़्वाह हिंसा न की जाय।

उपसंहार

इस निबन्ध में सब से पूर्व मैंने महामना मुहम्मद् के जीवन के उस काल की आयतों का उल्लेख किया है जब वह शान्ति और विचार की स्वतन्त्रता का प्रचार करते थे। भाष्यकारों के मत में इस समय यह आयतें मनसूख़ हैं परन्तु उन का कुरान में सुरक्षित रहना बताता है कि कुरानकार उन के आध्यात्मिक मिठास को समझते थे। उन में छिपी धार्मिक भावना का अनुभव करते और विपरीत परिस्थिति में भी इन आयतों का लोप न होने देना चाहते थे। ऋषि दयानन्द के प्रभाव से सहिष्णुता की इस मधुर अरबी लय के फिर से जगाये जाने का समय आया है। भविष्य के इसलाम में इन आयतों का स्थान महत्व और आदर का होगा।

इस के पश्चात् मैंने कुर्बानी के विषय पर विचार किया है। मूसा की समकालीन किसी जाति द्वारा पूजे गए बछड़े का वर्णन तो कुरान में है परन्तु उस के बध का कहीं संकेत नहीं। सू० बक़र में एक गाय के मारे जाने का वृत्तान्त है परन्तु मार कर फिर उसे जिला दिया गया है। इब्राहीम की कुर्बानी अपने बालक का उत्सर्ग है। बालक का स्थान वहां किसी स्वर्गीय प्राणी ने लिया है। कुर्बानी वास्तव में हज के समय का एक कृत्य है परन्तु हज के प्रकरण में तो स्पष्ट लिखा है कि मांस और रुधिर ईश्वर को नहीं पहुंचते तो क्या पहुँचता है? लिखा है—"संयम"। वही वास्तविक बलिदान है। मूसा ने जिस आग के पास जाते हुए जूता उतार दिया है, वह अग्निहोत्र की आग है। यज्ञ के अर्पण होने वालों तथा यज्ञकुण्ड के पास बैठने वालों जैसा "भाग्यशाली" और कौन हो सकता है।

अन्त में मैं ने सामिष तथा निरामिष भोजन के प्रश्न को ले कर सिद्ध किया है कि कुरान-विहित भोजन तो शाक-भाजी ही है। पशु हलाल है परन्तु हलाल का अर्थ है अपने उचित उपयोग के लिये विहित। मौलानाओं का प्रत्याहार हटा दिया जाए तो मांस-भक्षण का स्पष्ट विधान कुरान में नहीं मिलता। हां! कहीं कहीं कुछ पदार्थों के उपभोग के वृथा त्याग का खण्डन किया है। वहां कुरान की दृष्टि में विधर्मियों का देव-पूजा-परक अन्धविश्वास है। उसे कुरान हटाना चाहता है। परन्तु उस विश्वास के हटने के साथ ही, अन्यथा हेय वस्तु उपादेय हो जाए, यह कुरान को कदापि अभिमत नहीं हो सकता। हां! मांस का स्पष्ट निषेध उसी अवस्था में समझा जा सकता है, यदि कुरान में आए शब्द "अल्मैतत्"—मर गया—के अर्थों में 'मारा गया' पशु भी समाविष्ट समझा जाए।



कहानी रह जायगी

(१)

धधक रही है धरा ज्वाला से उपद्रवों के,
निकल पड़ेगी जब नहीं सह जायगी।
छाती फट जायगी, बढ़ेगी बड़वा की बाढ़,
आंग्ल द्वीपमाला जलतल बह जायगी।
नक़्शा बिगड़ेगा तब युरोप की सभ्यता का,
गुरुता गरूर की गढ़ी ही ढह जायगी।
बाकी न निशानी भी रहेगी पराधीनता की,
हिन्द में बृटेन की कहानी रह जायगी।

(२)

जायगी दरिद्रता तभी जो तन तन पर,
मिलेगा न मिल खादी खादी ही दिखायगी।
खायगी प्रजा भी भर पेट सूत कात कात,
सत्याग्रह हथियार दृढ़ हो चलायगी।
लायेगी सुदिन सब टेक रख होंगे एक,
गांधी की अहिंसा खलबल को खपायेगी।
पायेगी स्वराज सुखसाज भारतीय प्रजा,
एक दिन दासता कहानी रह जायगी।

(३)

होगा बिसफोट खाके चोट सारे द्वीपभर,
भूगरभ की भी सारी ज्वाला कढ़ि छायगी।
फटेगी धरा ये शब्द परम प्रचण्ड होगा,
मेरु खण्ड तक धूल धूल ही दिखायगी।

१. कारखाना

साम्यका समंजस बिगड़ने से सारे ग्रह,
लड़के मिटेंगे, ऐसी घड़ी तब आयगी।
टामसन करेंगे अटाम खण्ड खण्ड जब, *
सौर ब्रहमण्ड की कहानी रह जायगी।

—रामदास गौड़

(श्रीयुत स्विंटन अमेरिका के एक बहुत अनुभवी, वयोवृद्ध, और सर्वमान्य पत्रकार (अख़बार का सम्पादक) थे। उन्हें न्यूयार्क के पत्रकारों ने मिल कर एक भोज दिया था। इस भोज में उनके निम्नलिखित वाक्यों को सुन कर सब लोग चकित रह गये थे।)

अमेरिका में अखबार की आज़ादी कोई चीज़ नहीं है। छोटे शहरों की बात मैं नहीं कहता, मगर बड़े शहरों के सम्बन्ध में मेरी यह बात ठीक है, इसे आप भी जानते हैं और मैं भी जानता हूं। आप में से एक व्यक्ति भी यह साहस नहीं कर सकता कि वह अपनी सच्ची राय लिख सके, यदि कोई लिखे तो वह यह जानता है कि वह लिखा हुवा छपेगा नहीं।

मुझे २१००.रुपया मासिक इस लिये दिया जाता है कि मैं अपनी सच्ची राय को, अपने सम्पादकत्व में निकलने वाले अख़बार में प्रकाशित न करूं। आप लोगों को भी इसी काम के लिये वेतन मिलता है। यदि आप लोगों में से कोई इतना बेवक़ूफ़ बन जाय कि वह अपनी सच्ची राय को अख़बार में प्रकाशित कर दे, तो वह अगले ही दिन न्यूयार्क की गलियों में जूतियां फटकारते हुए नज़र आवेगा।

न्यूयार्क के पत्रकारों का काम यह है कि वे सत्य का खून करें, सफ़ेद झूठ लिखें, खराबी पैदा करें, मिलावट करें, शैतान की सेवा करें और अपनी जाति तथा देश को अपनी रोज़ की रोटी के लिये बेचें।

तुम भी जानते हो और मैं भी जानता हूं कि आज यह "अखबार की आज़ादी" के नाम पर टोस्ट लेना कितनी बड़ी मूर्खता है!

भाई, हम तो उन धनियों के उपकरण मात्र हैं, जो पर्दे के पीछे से हमें चलाते हैं। हम कठपुतलियां हैं:—धनी तागा खींचते हैं और हम नाचते हैं। हमारी बुद्धि, हमारा भविष्य, हमारा जीवन और हमारी सम्पत्ति सब दूसरों की हैं। हम तो दिमागी वेश्यायें हैं!

जोन स्विण्टन.

* टामसन नाम के एक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक ने यह सिद्धान्त निकाला है कि यदि हम एक अणु (ऐटम) का ही विस्फोट कर सकें तो उस से इतनी बड़ी शक्ति निकल पड़ेगी जिस से समस्त ब्रह्माण्ड ही नष्ट हो सकता है। इस पद का 'अटाम' शब्द अंग्रेजी के 'ऐटम' वा परमाणु के लिये है।

भारतीय संस्कृति और वैदिक धर्म

[प्रोफ़ेसर सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, गुरुकुल कांगड़ी]



आज हम लोग जहां खड़े हैं, वहां से, हम आगे और पीछे, दोनों तरफ़ देख सकते हैं। हमारे पीछे हमारे देश का गुज़रा हुआ ज़माना है, हमारे सामने आने वाला ज़माना है। बीता हुआ समय 'भूत' कहलाता है, आने वाला समय 'भविष्यत्' कहलाता है। मैंने आप को यही बतलाना है कि 'भूत' में वैदिक धर्म ने भारत की संस्कृति को क्या दिया। और 'भविष्यत्' में यह धर्म इस देश की संस्कृति को क्या दे सकता है?

'संस्कृति' किसी देश की उन विचार-धाराओं का नाम है जो उस देश के स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, धनी-निर्धन, बड़े छोटे सब के दिमाग़ों में एक-सी बह रही हों; जिन के बिना वहां के मनुष्य दूसरी तरह से सोच ही न सकते हों; जो वहां के व्यक्तियों के लिये स्वतःसिद्ध-सी हो चुकी हों; जिन को मान कर ही वहां के सब कारोबार चलते हों; जो विचार उस देश के मनुष्यों के लिये ऐसे स्वाभाविक हो गये हों जैसे उन का सांस! ऐसे विचार ही जो प्राणों के साथ मनुष्य के अन्दर जाते-आते रहते हों किसी देश की संस्कृति की नींव बना करते हैं।

प्राचीन भारत के प्राणों के साथ बहने वाला विचार, जिस के बिना ये प्राण रुक-से जाते थे, 'धर्म'—का था। यहां जो कुछ होता था, धर्म के पहलू से होता था—'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः'। धर्म की रक्षा और अपने प्राणों की रक्षा को वे एक समझते थे। तभी तो यहां की संस्कृति का आधार धर्म था। धर्म के अमृत-रूपी जल से संसार के मूर्धन्य इस देश की संस्कृति का सिञ्चन हुआ, इस लिये आज अपनी अमर-संस्कृति के ही बल पर हमारा देश पार्थिव-सम्पत्ति के लुट जाने पर भी सम्पत्तिशाली है; गुलामी की जंजीरों में कसा हुआ भी स्वाधीनता के पुजारियों के लिये तीर्थस्थान है; सब से पीछे खड़ा हुआ भी सब से आगे है; गढ़े में पड़ा हुआ भी पहाड़ की चोटी पर है! भारत के साथ के बूढ़े देश आज बदल गये। उन की सभ्यता, उन की संस्कृति आज मिट गई। उन देशों में आज खण्डहरों को छोड़ कर कुछ नहीं रहा। मिसर तथा बैबीलोन की सभ्यता पर गर्व करने वाले कहीं नहीं रहे। संसार का तख़्ता पलटा खा गया, परन्तु भारत—यह बूढ़ा भारत—आज भी हिमालय की ऊंची लाठी पर शुभ्र केशों के सीस को टेके हुए सांस ले रहा है; आज भी इस भूखे, नङ्गे, धूलि-धूसरित तपस्वी के चरणों में चारों तरफ़ खड़े हुए नौ-जवान देशों और जातियों की आंखें गड़ी हुई हैं; आज भी भोगवाद का खोखलापन त्याग के इस देवता की तरफ़ जीवन की अन्तिम आशा से निहार रहा है।

भारत की प्राचीन संस्कृति का प्राण वैदिक-धर्म रहा है। इन दोनों का प्रारम्भ इस सृष्टि में प्रथम प्रभात के उदय के साथ एक-साथ ही हुआ होगा। तब से अब तक मुख्यतः वैदिक धर्म से ही यहां की संस्कृति के प्राण पुष्ट होते रहे हैं। वैदिक धर्म ने भारतीय संस्कृति को जो कुछ दिया है उस में सब से बड़ा स्थान 'विश्वभ्रातृत्व' (Universal Brotherhood) का है। आज संसार की कौमें इस भ्रातृत्व के भाव के लिये तड़प रही हैं। एक जाति को दूसरी ज़ाति पर विश्वास नहीं।

एक ही देश में अनेक पार्टियां हैं जो प्रतिक्षण एक दूसरे के भय में सांस ले रही हैं। देशों में अविश्वास है, जातियों में अविश्वास है, परिवारों में अविश्वास है, पिता-पुत्र में और पति-पत्नी में अविश्वास है। इस अविश्वास को 'यदि' और 'तो', 'किन्तु' और 'परन्तु' से दूर करने की कोशिश की जा रही है, इस लिये दुनियां की कौमें इस अविश्वास को मिटा देने के लिये तड़पती तो हैं परन्तु 'किन्तुओं' और 'परन्तुओं' से अविश्वास की मात्रा दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है। आज मनुष्य अपने साथी मनुष्य को 'भाई' समझने के लिये तैय्यार नहीं परन्तु संसार में ऐसा भी धर्म था और है जो मनुष्य तो क्या पशुओं को अपने जिगर का टुकड़ा समझता रहा है, और पशुओं को क्या वनस्पतियों को अपने जैसी चेतन-शक्ति का भण्डार मानता रहा है। 'मित्रस्य त्वा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे'—'यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति'—'मैं प्राणीमात्र को ही नहीं, भूतमात्र को मित्र की आंखों से देखूं—मैं प्रत्येक पदार्थ को अपने जैसा समझूं। मैं अपने में और परमात्मा की किसी रचना में भेद न करूं"—यह वैदिक-धर्म में 'विश्व भ्रातृत्व' का, संसार के प्रति 'मैत्री' का आदर्श था और इसी आदर्श को ले कर भारतीय संस्कृति का विकास हुआ।

भारतवर्ष में ऐसा भी युग आया जब कि ये आदर्श आंखों से ओझल हो गये। परन्तु जब कभी 'विश्व-भ्रातृत्व' का भाव लुप्त होने लगा तभी उस की राख से ऐसे महात्माओं ने जन्म लिया जिन्होंने उस आदर्श को मिटने से बचा लिया। अजातशत्रु के समय में ऐसा ही एक महात्मा अपने मार्ग पर चला जा रहा था। उस ने अपने सामने भेड़ों का गल्ला जाते हुए देखा। उस गल्ले का एक मेमना लंगड़ा रहा था। महात्मा ने उसे अपनी गोद में उठा लिया। गडरिया महात्मा की दया को देख कर हंस पड़ा। उस ने कहा, तुम इस मेमने पर कहां तक दया करोगे, इस की तो अभी यज्ञ में बलि चढ़ जायगी। महात्मा ने पूछा, वह यज्ञ कौन कर रहा है? गडरिये ने उत्तर दिया, इस देश का राजा, अजात शत्रु। वह महात्मा भेड़ों के गल्ले के पीछे-पीछे चलने लगा। कुछ देर बाद वह उस यज्ञ वेदी के सामने आ खड़ा हुआ, जहां सहस्रों पशु खूंटे से बंधे अपने भाग्य की प्रतीक्षा कर रहे थे। यज्ञ कुण्ड के चारों तरफ़ इस बीभत्स दृश्य को देख कर महात्मा का हृदय दहल गया। उसने राजा के सन्मुख एक तिनका तोड़ कर रख दिया, और पूछा, "राजन्! क्या तुम इस टूटे तिनके को जोड़ कर पूरा बना सकते हो? राजा ने उत्तर दिया, नहीं। महात्मा ने फिर कहा, तुम्हारी तो इतनी भी सामर्थ्य नहीं कि तुम एक तिनका भी बना सको। प्राणी का मूल्य तो एक तिनके से बहुत ज़्यादह है। जिस चीज़ को तुम बना नहीं सकते उसे नष्ट करने का तुम्हें क्या अधिकार है?" महात्मा ने फिर कहा, "यदि तुम्हारा यज्ञ कुर्बानी के बिना पूरा नहीं होता तो इन सहस्रों असहाय प्राणियों को छोड़ दो, ये तो अपनी रक्षा में अपनी ज़बान तक नहीं हिला सकते; यदि कुर्बानी ही करनी है तो लो, मैं कुर्बानी के लिये तय्यार हूं, मुझे बलि चढ़ा दो पर इन निहत्थे प्राणियों को छोड़ दो"। राजा महात्मा के वचनों को सुन कर उस के चरणों में गिर पड़ा। उसने उसी समय सब प्राणियों को मुक्त कर दिया और हाथ जोड़ कर उस के सन्मुख खड़ा हो गया। इस महात्मा का नाम था, गौतम बुद्ध। गौतम बुद्ध 'विश्व-भ्रातृत्व' का पुतला था,

वह भारतीय संस्कृति के इस आदर्श का नमूना था, वह वैदिक-धर्म के विश्वप्रेम के मन्त्र का पाठी था। उस ने अपने आप को इस रंग में इतना रंगा कि इस के सिवा वह और सब कुछ भूल गया, वह इस गीत में इतना लीन हुआ कि इस गीत का ही एक स्वर बन गया।

जिस संस्कृति के प्रवाह में 'विश्वप्रेम' की धारा अखण्ड बह रही हो उस के लिये आपस के विचार-विनिमय में मिठास का लाना आवश्यक हो जाता है। संसार के इतिहास में विचारों को फैलाने के लिये तलवारें भी उठीं, खून भी बहा परन्तु उन के मुकाबले में इस पवित्र भूमि का इतिहास इस कलंक से लगभग बचा हुआ है। यहां 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'—संसार भर को आर्य बनाओ—के सन्देश की गूंज के साथ २ 'सहिष्णुता' तथा 'विचार-स्वातन्त्र्य' का आदर्श भी अपने शिखर पर पहुंचा हुआ था। वैदिक-धर्म का विश्वप्रेम का सिद्धान्त यहां की संस्कृति में इतना घुल गया था कि इस देश ने अपने विचार फैलाने के लिये कभी तलवार का सहारा नहीं लिया। भारतवर्ष में विचारों की पूरी आज़ादी रही। इस आज़ादी के बिना कोई देश तरक्की भी नहीं कर सकता। जो व्यक्ति नास्तिक है—परन्तु अपने तर्क के कारण, युक्ति के आधार पर नास्तिक है—उस के युक्ति तथा तर्क के ही बल पर कभी आस्तिक होने की सम्भावना बनी रह सकती है, परन्तु जो व्यक्ति बिना सोचे-समझे आस्तिक है उसके बिना सोचे-समझे ही नास्तिक बनने की आशंका बनी रहती है। इसी लिये इस आस्तिक देश में 'तर्कः ऋषिः'—तर्क को ऋषि कहा गया है, उस की बड़ी से बड़ी प्रतिष्ठा की गई है। वैदिक धर्म, और उस पर आश्रित भारतीय संस्कृति हमें आज्ञा नहीं देती कि हम ईसाई, मुसलमान, नास्तिक अथवा किसी अन्य व्यक्ति के प्रति भिन्न धर्म का होने के कारण घृणा का भाव रखें। भारतीय संस्कृति के इस ऊंचे भाव का ही परिणाम था कि इस देश में विचारों की धाराओं का संघर्ष होते हुए भी मनुष्यों का संघर्ष नहीं होता था, धर्मों की लड़ाई होते हुए भी वैय्यक्तिक द्वेष की भावना नहीं उत्पन्न होती थी। संसार के भिन्न २ कोनों से भिन्न २ जातियां इस देश में आयीं और इस देश के स्वतन्त्र वायुमण्डल पर इतनी लट्टू हुईं कि बहुत-सी अपना घर भूल कर यहीं रहने लगीं, और यहां रहती २ इस देश में इतनी रम गईं कि यहां वालों और बाहर वालों में कोई भेद ही न रहा।

भारत में आज धार्मिक सहिष्णुता कम दिखलाई देती है, परन्तु यह फूट का पौदा इस भूमि की उपज नहीं। कहते हैं, अलाउद्दीन खिलजी लूट मचाता हुआ रामेश्वर तक जा पहुंचा। वहां पर उसने एक मस्जिद बनवा दी। अलाउद्दीन लौट कर चला गया परन्तु वह मस्जिद सदियों तक वैसी खड़ी रही। उस की रक्षा करने वाला एक भी मुसलमान नहीं था। परन्तु सदियों पीछे जब अकबर की सेनाएं रामेश्वर पहुंचीं उन्हों ने उस मस्जिद की एक-एक ईंट को वैसा ही पाया। भारत की संस्कृति का हृदय संसार भर की विषमताओं को स्थान देने के लिये पर्याप्त विशाल है। यहां सब प्रकार के विचारों के लिये स्वतन्त्रता है और जब तक वे उच्छृङ्खलता की सीमा तक नहीं पहुंच जाते उन के लिये स्थान भी है। मेरी सम्मति में आज कल जिस प्रकार के धार्मिक सम्मेलन होने लगे हैं वे देश के भविष्य को उज्ज्वल बनाने वाले हैं क्योंकि उन में हम एक दूसरे से जुदा होने की जगह मिलना सीख रहे हैं, भेद-भाव बढ़ाने की जगह प्रेम-भाव बढ़ा रहे हैं, और भारतीय संस्कृति का, जहां तक मैं समझ पाया हूं यही ध्येय है।

जहां तक दूसरों से सम्बन्ध है वहां तक 'विश्वप्रेम' तथा 'पारस्परिक सहिष्णुता' भारतीय संस्कृति के मूलतत्व हैं। ये दोनों भाव जैसा मैं कह चुका हूँ एक ही भाव के विकास हैं। वह भाव है भूत मात्र में— केवल मनुष्यमात्र अथवा प्राणीमात्र में ही नहीं अपितु प्रकृति के एक एक अणु में—समत्व बुद्धि रखना। जैसे हम हैं, वैसे ही जानवर हैं, वैसे ही वनस्पति हैं, इस समत्व-बुद्धि का विकास क्रिया रूप (active form) में 'विश्व प्रेम' तथा भावरूप (passive form) में 'सहिष्णुता' के रूप में होता है। यह मूलभूत भावना वैदिक-धर्म का आवश्यक अङ्ग है। 'समष्टि' से सम्बन्ध रखने वाले भारतीय संस्कृति के इन आदर्शों को छोड़ कर हमें 'व्यक्ति' से सम्बन्ध रखने वाले भारतीय संस्कृति के तत्वों पर भी विचार करना चाहिये। व्यक्ति के विषय में भारतीय-संस्कृति तथा वैदिक-धर्म का क्या मन्तव्य है? यजुर्वेद में लिखा है, 'ईशावास्य-मिदं सर्वं यत्किञ्चिज्जगत्यां जगत् तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्'—प्रत्येक व्यक्ति संसार में निष्काम कर्म करता हुआ जीवन व्यतीत करे, वह जिस भोग को भी भोगे यही समझ कर भोगे कि उस का लक्ष्य त्याग है! व्यक्ति को वैदिक-धर्म का यही आदेश है। कौन मां का लाल है जो संसार के भोगों को देख कर नहीं ललचा उठता? परन्तु भोगों के पीछे तो कीड़े-मकौड़े भी भागते हैं। एक मीठे की डली पर चींटे आ चिपटते हैं। यदि मनुष्य भी उस डली को देख कर लार टपका दे तो उस में और गली-कूचे के कीड़े में क्या भेद है? एक छोटा कीड़ा है, एक बड़ा कीड़ा है—हैं दोनों विषयों से खिंचने वाले कीड़े ही! भारत के ऋषियों का कथन था, 'श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतः तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः। तयोः श्रेय आददानस्य साधुर्भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते'—जीवन यात्रा के प्रारम्भ में मनुष्य के सन्मुख दो रास्ते खुले होते हैं, भोग का और त्याग का, इन में जो भोग के मार्ग पर कदम बढ़ा देता है वह कीड़ा है, उस में और चींटे में केवल शकल का भेद है, जो त्याग के मार्ग पर कदम बढ़ाता है वह संसार समुद्र में तर जाता है—'तरति शोकमात्मवित्'।

संसार के भोगों को त्याग की बुद्धि से भोगना ही वैदिक धर्म का आदेश है। प्रत्येक व्यक्ति के लिये त्याग का आदर्श ही सब से ऊंचा आदर्श है। यह आदर्श भारतीय-संस्कृति में ओत-प्रोत हो गया था। फ्रांस के धनियों के विषय में कहा जाता है कि वे जब शिकार खेल कर लौटते थे तो अपनी थकावट मिटाने के लिये दो-एक गुलामों के पेट चाक करवा कर उन की आंतों के गर्मागर्म खून में पैर रखते थे, परन्तु भारतीय संस्कृति में पले हुए इस देश के बड़े २ राजा जहां एक तरफ़ राज्य का चक्र चलाते थे वहां दूसरी तरफ़ एक छोटे से कबूतर की जान बचाने के लिये अपने शरीर के टुकड़े काट २ कर देने के लिये तय्यार हो जाते थे। वे संसार के बड़े से बड़े भोग भोगते थे परन्तु उन्हें, बिना एक सेकन्ड का नोटिस दिये, ऐसे छोड़ सकते थे जैसे कोई शरीर का कपड़ा उतार कर फेंक देता है। संसार के विषय क्यों बुरे हैं? इसीलिये तो न, क्योंकि मनुष्य उन में लिप्त हो जाता है, उन का गुलाम हो जाता है, उनकी दासता में अपनी आत्मा को खो बैठता है, भोक्ता होने के बजाय भोग्य हो जाता है, वह भोगों का शिकार हो जाता है, भोग उसे भोगने लगते हैं। यदि मनुष्य विषयों के साथ लगे हुए इस नशे को, इस ज़हर को निकाल सके तो फिर विषय काहे को बुरे हैं? वैदिक धर्म तथा भारतीय

संस्कृति ने 'भोग' के साथ 'त्याग' को मिला कर विषयों में अन्तर्निहित विष को दूर कर दिया था, बिच्छू का डंक तोड़ दिया था, गुलाब के फूल का कांटा निकाल दिया था। संसार में विचरण करते हुए यहां के विषयों में लिप्त न होना—एक ऐसी शिक्षा है जिस की आज की सभ्यता को बड़ी भारी ज़रूरत है, जिसके बिना आज की उन्नति कल की अवनति है! भारत का इतिहास 'त्यागमय भोग' के उदाहरणों से भरा पड़ा है। श्री रामचन्द्र का जीवन इस दृष्टि से आदर्श है। अयोध्यापुरी में उन के राज्यारोहण के लिये तय्यारियां हो रही हैं। बाज़ार सजाए जा रहे हैं, फूलों की मालाएँ जगह २ गलियों में लटक रही हैं, बाजे बज रहे हैं, धूम मची हुई है। ऐसे समय उनके पिता उन्हें बुला कर एक दूसरी आज्ञा सुनाते हैं। उन्हें कहा जाता है, ये राजकुमारों के कपड़े उतार डालो, माथे का तिलक अपने हाथों से मिटा दो, कानों के सुवर्ण-कुण्डल निकाल दो, वल्कल धारण करो, हाथ में कमण्डलु लो और चौदह बरस तक बनवास का जीवन बिता आओ। आज यदि किसी करोड़पति का दस रुपये का नोट छीन लिया जाय, या गुम हो जाय, तो वह कुहराम मचा कर ज़मीन-आस्मान एक कर दे। किसी नौ-जवान को ३० रुपये की नौकरी से बर्खास्त कर दिया जाय तो वह ग़श खा जाय, उसका सिर फिर जाय; परन्तु भारतीय संस्कृति के वातावरण में पले एक नवयुवक को चक्रवर्ती राज्य के सिंहासन पर कदम रखते हुए टोक दिया जाता है; वह पीठ फेर कर पूछता है, क्या कहा; उसके कानों में धीमी सी आवाज़ आती है, पिता की आज्ञा बदल गई है, वह अब १४ बरस जंगल में मारे-मारे फिरने का हुक्म देते हैं; यह सुनते ही वह नव-युवक उसी गम्भीर मुख-मुद्रा में जंगल की राह चल देता है! कवि इस नव-युवक के मुख को देखता २ एकदम कह उठता है:—

'न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकार विभ्रमः।'

उसे राजसिंहासन पर बैठने को कहा गया, उस के मुख पर कोई असाधारण खुशी नहीं थी; उसी समय उसे जंगल में बनवास दे दिया गया, उस के मुख पर कोई रंज नहीं था। भारतीय संस्कृति ऐसा 'भोग' चाहती है, और भारतीय संस्कृति ऐसा ही 'त्याग' चाहती है। इन दोनों के अपूर्व मिश्रण में भारतीय संस्कृति का गौरव है और इसके लिये यह संस्कृति वैदिक धर्म की ऋणी है!

मैंने अब तक संक्षेप में यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि भूतकाल में वैदिक-धर्म ने भारतीय संस्कृति की क्या २ सेवा की है। वैसे तो वैदिक-धर्म और भारतीय संस्कृति इतनी मिली-जुली हैं कि इन्हें अलग-अलग नहीं किया जा सकता और ना ही वैदिक-धर्म के उन सब सिद्धान्तों पर, जिन का भारतीय संस्कृति के विकास में हिस्सा है, इस परिमित स्थान में लिखा ही जा सकता है। फिर भी मैंने यह तो बतलाने का प्रयत्न किया है कि 'समाज' तथा 'व्यक्ति' के सम्बन्ध में क्रमशः 'प्रेम' तथा 'त्याग' हमारी संस्कृति के आधार भूत तत्व रहे हैं। इन्हीं का आदेश वैदिक-धर्म ने दिया है और इन्हीं मूलतत्वों पर भारतीय संस्कृति का भूतकाल में विकास हुआ है। अब यह देखना है कि भविष्यत् में वैदिक धर्म भारत की संस्कृति के विकास में क्या हिस्सा बटा सकता है?

किसी देश की भी संस्कृति हो, उसका विकास सदा होता रहता है। भारत की संस्कृति का बहुत कुछ विकास हुआ, उस संस्कृति का बीच २ में ह्रास भी हुआ, परन्तु यह विकास तथा ह्रास तब

तक होता रहेगा जब तक भारत रहेगा। वैदिकधर्म ने भारत की संस्कृति के विकास के लिये अबतक तो बहुत कुछ दिया, अब प्रश्न यह है कि यह धर्म इस देश की संस्कृति के आगे के विकास के लिये क्या-कुछ और दे सकता है।

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह जो कुछ करने लगता है उस में अति कर डालता है, हद् कर देता है! इस अति का नतीजा यह होता है कि इसके विरुद्ध एक प्रति-क्रिया उत्पन्न हो जाती है जो इसके दुष्परिणामों को दूर कर देती है। इस में सन्देह नहीं कि वैदिकधर्म सहिष्णुता सिखाता है, वैदिक धर्म विचारों को पूरी आज़ादी देता है। इसी का यह नतीजा हुआ कि भारत की संस्कृति में हरेक तरह के विचार को जगह मिलती रही। यहां आस्तिक भी रहे, नास्तिक भी रहे, द्वैती भी रहे, अद्वैती भी रहे। परन्तु इस सहिष्णुता को संसार की दूसरी कौमों ने कमज़ोरी समझा। उन्होंने अपने विचारों का, अपने धर्म का ज़बर्दस्ती प्रचार किया, परमात्मा के नाम पर तलवार उठायी, धर्म के नाम पर खून बहाया। उस समय भी भारत की आत्मा सहिष्णुता का घूंट पिये ही बैठी रही। यह सहिष्णुता को अति तक ले जाना था; दूसरे शब्दों में यह सहिष्णुता का स्वांग था, उस का मखौल था। धीरे २ सचमुच यह सहिष्णुता कमज़ोरी के रूप में परिणत हो गई। इस ने हमारी कौम को बुज़दिल बना दिया। क्षमा उसी की शोभा है जो आंख उठा कर शत्रु के दिल को दहला सकता है; सहिष्णुता उसे सजती है जो असहिष्णुता की लपट में दूसरे को भस्म कर सकता है। यदि राख तिनके से कहे कि मैं तुझे नहीं जलाऊंगी तो तिनका हँस देगा; यदि आग की ज्वाला उसे अभय दान दे तो वह उस के सामने झुक जायगा। हमारी कौम ने सहिष्णुता का जप इतना जपा कि वह कमज़ोर हो गई; इतनी कमज़ोर हो गई कि आज हम सहिष्णुता की माला जपते २ दूसरी कौमों के ग्रास हो गये, वे हमें निगलती जा रही हैं, और हमें इस की ख़बर तक नहीं। हमें आज फिर से याद करने की ज़रूरत है कि जिस वैदिक-धर्म ने विश्वप्रेम तथा सहिष्णुता का राग अलापा था उसी ने 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का भी तो सन्देस दिया था। ए सोती हुई आर्य जाति! तू उठ, तेरा सन्देस संसार की सन्तप्त आत्मा को शान्त कर सकता है, परन्तु तू मोह की ऐसी निद्रा में पड़ी हुई है कि संसार के ऐरे-ग़ैरे तेरी छाती पर मूंग दल रहे हैं। भारत का विश्व-प्रेम का सन्देश दुनियाँ के थपेड़े खाने के लिये न था, यह निर्बलता का, कमज़ोरी का सन्देश न था, यह सन्देश आत्मबल का सन्देश था। भारत यदि आज विश्वप्रेम का पुराना राग अलापना चाहता है तो पहले उसे उस राग के अलापने की शक्ति सञ्चित करनी होगी। वह अपनी आंच से संसार को न जलाने का वचन देगा, परन्तु राख बन कर नहीं, आग बन कर; वह संसार में खून की नदियां न बहाने का वचन देगा, परन्तु हाथ कटवा कर नहीं, हाथों में तलवार लेकर; वह दुनियाँ के बच्चे २ से प्यार करने का वचन देगा, परन्तु अपने को लुटेरों से लुटवा कर नहीं, दुनियाँ की कौमों का सरताज होकर! एक महात्मा ने किसी अजगर को अहिंसा का उपदेश दिया था। वह अजगर फना ज़मीन पर डाले पड़ा रहा करता था। गांव के बच्चे भी आकर उस पर लाठियां चलाया करते थे। उस के अङ्ग २ से रुधिर टपकने लगा। महात्मा ने दुबारा आकर जब उसकी यह अवस्था देखी तो उन्होंने कहा, मूर्ख, तुझे डसने से मना किया था या फन फैलाने से भी मना किया था; किसी को मार डालने से मना किया था या

फुंकार मारने से भी मना किया था । वैदिक-धर्म भारतीय संस्कृति में आज इसी अंश को डालना चाहता है । अरे विशाल अजगर ! तू सब के गले में लिपट जा और किसी को मत डस, परन्तु यदि कोई तेरा सिर कुचलने लगे तो फन फैला ले और फुंकार मार कर जतला दे कि तुझे कुचलना आसान काम नहीं होगा ।

भारतीय संस्कृति के मुख्यतः दो पहलुओं पर मैंने विचार किया है, और उन दोनों में मनुष्य के स्वभाव ने अति कर दी है । 'सहिष्णुता' के विषय में हमने अति की, इसके साथ ही 'त्याग' में भी हमने सीमा का उल्लंघन कर दिया । परिणाम यह है कि आज 'सहिष्णुता' भी ढोंग बनी हुई है, 'त्याग' भी ढोंग बना हुआ । आज इन दोनों में प्रतिक्रिया की ज़रूरत है । वैदिक-धर्म का आदेश इक-तरफ़ा आदेश नहीं है । मनुष्य के स्वभाव में इक तरफ़ापन है, इस लिये उसके कामों में इक-तरफ़ापन आ जाता है । इस समय जहां हम कमज़ोरी को, निर्बलता को 'सहिष्णुता' समझे हुए हैं वहां दरिद्रीपन को, आलस्य और सुस्ती को, अफ़ीमचियों की तरह ऊंघने को 'त्याग' समझ रहे हैं । त्याग का मख़ौल इससे ज़्यादह क्या होगा, कि हम ने त्यागते त्यागते सब कुछ त्याग दिया, अपना देश भी अपना न रहने दिया । जिसने भीख मांगने के लिये एक ठूठा उठा लिया वह हमारे लिये बड़ा भारी त्यागी हो गया । त्याग तो हवस की है, जिसने हवस को नहीं त्यागा उसने कपड़े भले ही उतार फेंके हों, वह विषयों की दलदल में ही फंसा हुआ है, जिसने हवस को त्याग दिया वह संसार के विषयों में विचरता हुआ भी त्यागी है । आज देश त्याग-त्याग का नाम लेता हुआ आलसी और दरिद्र हो गया है, कर्मण्यता को छोड़ बैठा है, एवं तो 'को नृप होउ हमें का हानी, चेरि छांडि भयऊ ना रानी' की मनोवृत्ति बढ़ती जा रही है । देश का कुछ हो जाय, इस से मुझे क्या, और तुझे क्या ? इसे त्याग कहना त्याग का उपहास करना है । वैदिकधर्म की यह शिक्षा है, कि ऐसे ढोंग का शीघ्र-से-शीघ्र अन्त कर दिया जाय । वेद तो कहता है, कर्मण्येवाधिकारस्ते ! अरे तुझे हाथ पर हाथ रख कर बैठने का तो अधिकार ही नहीं, यदि तू हाथ-पैर नहीं चलाता तो तुझे रोटी के टुकड़े के खाने का भी अधिकार नहीं ! आज देश के त्याग का मार्ग उलटा हो गया है । सदियों पूर्व वैदिक-धर्म ने भारतीय संस्कृति में 'त्याग' का संचार किया था परन्तु आज इस देश की संस्कृति की रक्षा के लिये वैदिक धर्म का सन्देश 'कर्मण्यता' का सन्देश है ।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि वर्तमान युग के जिन दो सन्देशों की तरफ़ मैंने पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है उनकी आज भारत को अत्यन्त आवश्यकता है और उन पर अमल करने पर ही भारत का मस्तक गौरव से ऊंचा हो सकता है ।

अन्त में मैं दो शब्द कहना चाहता हूँ । वह समय हमें भूला नहीं है जब आर्यसमाज की वेदी शास्त्रार्थों के बिना सूनी समझी जाती थी । अब भी कई स्थानों पर ऐसा ही समझा जाता है । परन्तु गुरुकुल ने 'संस्कृति-सम्मेलन' के रूप में एक नई दिशा की तरफ़ कदम बढ़ाया है । इस की अपेक्षा कि दूसरे के दुर्गुण दिखलाए जायं, अपने गुण बतलाना कहीं अच्छा है; और इस की अपेक्षा कि मनुष्य स्वयं अपने गुणों का वर्णन करे दूसरे का उन गुणों का वर्णन करना और भी अच्छा है । शास्त्रार्थों की, इस भीरू हिन्दू समाज को अत्यन्त आवश्यकता थी और कई अंशों में है, परन्तु शास्त्रार्थों से अपने को समर्थ बनाने के बाद दूसरा कदम यही है, कि

केवल संस्कृति तथा धर्म-सम्मेलनों द्वारा लिया जा सकता है। इन सम्मेलनों से प्रत्येक धर्म की अच्छाई संसार के सम्मुख आती है। परन्तु मैं तो समझता हूँ कि भारतीय संस्कृति के पूर्ण विकास के लिये एक अगला कदम भी है। वह कदम यही है कि प्रत्येक धर्म की अच्छाई की उस धर्म के मानने वाले ही दुन्दभी न पीटते रहें परन्तु दूसरे लोग भी उसे स्वीकार करें। मैं तो उस दिन की प्रतीक्षा में हूँ जब आर्य समाज की उसी वेदी पर जिस पर मुसलमानों और ईसाईयों से टक्कर ली जाती है किसी समय मेरा मुसलमान भाई वैदिक धर्म के महत्व पर निबन्ध पढ़ेगा और आर्य समाजी भाई इस्लाम की विशेषताओं पर निबन्ध पढ़ेगा। उस दिन धर्मों का ऊपरी खोल मिट जायगा और सचाई का शुद्ध तथा नग्न रूप प्रकट होगा। उस दिन की स्मृति में ही वेद ने कहा है:—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्य धर्माय दृष्टये ॥

कवि का पत्र

मेरी……………कविता के सम्बन्ध में आपने ……………का मत जो उपस्थित किया है, वह शायद 'कविता को कसौटी पर कस कर उसका मूल्य आंकने वालों' का मत है।

—मैं इस विचार से कभी कुछ नहीं लिखा करता, मेरी रचना में आप छन्द भी टूटा पा सकते हैं, शब्द भी विचित्र विच्छिन्न देख सकते हैं अन्य भी सदोष बातें सहज ढूँढ निकाल सकते हैं क्योंकि मैं काव्य कभी किसी दूसरे के लिये नहीं लिखता, अपनी तबियत के लिये ही लिखता हूँ।

कसौटी के सम्बन्ध में मेरा यह मत है कि काव्य का निकटतम संबन्ध अनुभूति से है। अनुभूति का यथार्थ अंकन काव्य है। चाहे वह अनुभूति अधूरी ही क्यों न हो। यह मैं अत्यन्त संक्षेप में लिख रहा हूं।

हम लोग तो यों ही खेल करते हैं— कोई उद्देश्य नहीं, केवल आत्म-क्रीड़ा। शरत् काल का आकाश देखा है आपने ? जलद-खण्ड इधर-उधर छितराये रहते हैं—उन में रस तो है नहीं, फिर वे किस उद्देश्य को लेकर नभ में अवतीर्ण हुये हैं ? हम लोग भले ही उन्हें अच्छा बुरा, सुन्दर या असुन्दर कहें, पर उनके प्रेषक या रचयिता का तो मैं समझता हूं उद्देश्य कुछ नहीं है—केवल क्रीड़ा कौतुक है। ठीक वैसे ही मैं भी बेकार के कौतुक की भांति कभी कभी अपने मित्रों के पास दो चार भावुकिक लकीरें खींच भेजता हूं। उन्हें पसन्द करने या न करने की तो कभी मैंने चिन्ता नहीं की।

भारत का प्राचीन गौरव

(लेखिका—श्री चन्द्रावती जी एम. ए.)



जो देश आज 'सभ्य' कहे जाते हैं और जो भारत को सभ्यता का दान देने का दम भरते हैं उन्होंने ही एक समय भारत से ज्ञान की दीक्षा ली थी। भारत ने उनको सभ्यता का पाठ पढ़ाया था। उस समय न केवल इनका, किन्तु समस्त संसार का भारत गुरु था। यह देश तब असंख्य विद्याओं का भण्डार था, अनन्त ज्ञान का स्रोत था। यहीं से भिन्न २ विद्यायें दूसरे देशों में गईं, यहीं से ज्ञान का चश्मा फूट कर सारे जगत में बहा। इस कथन की पुष्टि प्राचीन भारत के प्रामाणिक साहित्य से होती है। प्राचीन ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर पाया जाता है कि सब लोग शिक्षा के लिये भारत की तरफ़ दृष्टि उठाया करते थे। मनु महाराज लिखते हैं—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

मनु से यह भी पता चलता है कि भारत के ब्राह्मण दूर २ देशों में वहां की जनता को शिक्षा देने तथा उन्हें धर्म्म पर आरूढ़ रखने के लिये जाया करते थे। जिस समय उन लोगों ने जाना छोड़ दिया तब से जातियां वृषलत्व को प्राप्त हो गईं। मनु का इस अभिप्राय का श्लोक निम्न लिखित है:—

शनकैस्तु क्रियालोपात् इमाः क्षत्रिय जातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणानामदर्शनात्॥

भविष्यत् पुराण को देखने से मालूम पड़ता है कि एक ऋषि मिस्र में गये और उन्होंने वहां के असभ्य लोगों को शिक्षित करके उनके समाज की रचना का आधार वर्ण-व्यवस्था को बनाया। इस श्लोक को अधिकतर शुद्धि के समर्थन में लगाया जाता है परन्तु शायद यह विचार अधिक संगत होगा कि जिस प्रकार आजकल बोलशेविज़्म तथा सोशलिज़्म का प्रचार हो रहा है इसी प्रकार प्राचीन काल में भारतवर्ष के इस ऋषि ने मिस्र में वहां की भद्दी समाजरचना को देखकर उन्हें वर्ण-व्यवस्था का आदर्श समझाया हो और उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया हो।

प्राचीन भारतीयों की यह अनुश्रुति कि वे दूर दूर देशों में जाकर अपनी सभ्यता का प्रचार करते थे निराधार नहीं। वे सचमुच अनेक विद्याओं को जानते थे और ऐसी हालत में यदि वे उन्हें दूर-दूर फैलाने के लिये उत्सुक थे तो इस में आश्चर्य ही क्या है।

छान्दोग्योपनिषद के सप्तम प्रपाठक में जहां महर्षि सनतकुमार और ऋषि नारद का सम्वाद है वहां सनतकुमार के पूछने पर नारद ने अनेक विद्याओं को जो उसने अन्य गुरुओं से पढ़ी थीं गिनाया है। आश्चर्य्य इसी बात का है कि जो इतनी विद्याओं को पढ़ चुका था वह सनतकुमार ऋषि से कुछ और पढ़ने के लिये उत्सुक है।

हमारे ग्रन्थों का यह दावा है कि प्राचीन आर्य्यों ने संसार भर में सभ्यता का प्रकाश

फैलाया। इस बात को निष्पक्ष योरोपियन विद्वान भी स्वीकार करते हैं।

वैसे तो जब तक भारतवर्ष परतन्त्र रहेगा और जब तक यहां के नवयुवकों को अपने प्राचीन इतिहास के निर्माण का अवसर नहीं मिलेगा तब तक पक्षपाती योरोपियनों के हाथों से भारतीय पुरातन इतिहास पर अत्याचार ही होगा। हमें दुःख है कि राजनीतिक दृष्टि से जो पक्षपात पाश्चात्य जातियों के अन्दर घुसा हुआ है उस से उन के कुछ विद्वानों के दिमाग़ भी विषैले हो चुके हैं और वे भारत की प्रत्येक प्राचीन बात का उपहास करते हैं। परन्तु उन में भी कुछ ऐसे हैं जो भारत के प्राचीन गौरव को स्वीकार करते हैं। पोकोक महाशय का कथन है कि प्राचीन ग्रीस का इतिहास प्राचीन भारतवर्ष का इतिहास ही है। उन का कहना है कि मगध की राजधानी राजगृह से ही कुछ लोग ग्रीस में जा बसे थे और उन्हीं के कारण गृह का ग्रीहक और ग्रीहक से ग्रीक बन गया। प्राचीन इतिहास लेखक जोजेफस का कथन है कि एशिया में अरिस्टोटल की एक यहूदी से बातचीत हुई। यह यहूदी ऐसे पन्थ का अनुयायी था जो अपने को हिन्द-विचारकों के चेले कहते थे। अरिस्टोटल ने उस यहूदी से बातचीत करके कहा कि हम उस के ज्ञान में जितनी वृद्धि कर सके उससे कई गुणा ज्यादह उसने हमारे ज्ञान की वृद्धि की।

भारतवर्ष का ग्रीस से अधिक सम्बन्ध रहा है यह जानना इसलिये अत्यन्त आवश्यक है कि पीछे से चल कर ग्रीस से ही योरुप ने सब कुछ सीखा है। ग्रीस के विद्वान सुकरात, प्लेटो तथा अरस्तु योरुप के गुरु हैं। जैसे अभी कहा गया है, अरस्तु को एक यहूदी द्वारा भारतवर्ष के सिद्धान्तों के विषय में जानकारी प्राप्त हुई थी और उसने अपने आप को उस यहूदी का ऋणी कहा था। डायोडोरस के कथनानुसार सिकन्दर का, जो अरस्तु का चेला था, यह इरादा था कि योरुप और एशिया को अन्तर्विवाहों (Inter-marriages) द्वारा एक कर दिया जाय। सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया और ११ महीने के लगभग वह भारतवर्ष में ही पड़ा रहा। इन ११ महीनों में भारत वर्ष तथा ग्रीस में लगातार सम्बन्ध रहा और सम्भवतः इस समय भारत के बहुत से विचार ग्रीस पहुंचे और उन का अरस्तु पर प्रभाव पड़ा।

चाहे कोई पक्षपाती हो या निष्पक्षपाती, सभी विद्वानों ने इस बात को स्वीकार कर लिया है कि अनेक विज्ञान भारतवर्ष से ही संसार में फैले। उदाहरण के लिये कुछ एक विज्ञानों के दृष्टान्त दे देना पर्याप्त होगा।

(i) सब से बड़ा कार्य जो भारतीयों ने इस क्षेत्र में किया वह गिनती और दशम-लव का आविष्कार था। गिनती और दशमलव के तरीके का संसार की सभ्यता पर कितना अधिक प्रभाव पड़ा इसका अनुमान लगाना कठिन है। अरबी में संख्या के लिये 'हिन्दसा' शब्द का प्रयोग होता है। 'हिन्द-से' का अर्थ है हिन्द से लिया हुआ, अर्थात् यह स्पष्ट होगया कि हिन्दसों का ज्ञान अरब ने भारत से सीखा। अरबी में लिखने का ढंग वैसे तो दाईं से बाईं ओर को है किन्तु हिन्दसों को बाईं ओर से दाईं ओर बढ़ाया जाता है। अंक गणित और बीज गणित का ज्ञान भी भारत ने ही अरब को दिया था और यह फिर अरब से सारे योरुप में फैला। प्रोफेसर मैकडानल इस सत्य का अनुभव करते हुए लिखते हैं कि जिस गणित की साइन्स को हम अरब की देन समझते हैं वह वास्तव में भारत की दी हुई है।

शुल्व सूत्रों से पता चलता है कि भारत के लोग ज्यामिति का ज्ञान भी रखते थे। शुल्व सूत्रों और ग्रीस की अलेक्ज़ेन्ड्रियन ज्यामेट्री में बहुत समानता का स्पष्ट कारण यही है कि ज्यामिति ग्रीक लोगों ने भारत से सीखी। कई पक्षपाती लेखकों का कथन है कि भारत का ज्यामितिशास्त्र ग्रीस से प्रभावित हुआ है। इनके मतानुसार १०० ई. पू. में यह विद्या भारत में पहुंची। किन्तु यह कथन भी बिलकुल निराधार है, क्योंकि शुल्व सूत्र तो १०० ई. पू. से कहीं पहिले लिखे जा चुके थे। न केवल शुल्व सूत्रों से किन्तु यजुर्वेद और ब्राह्मणों के अवलोकन से भी यह सिद्ध हो जाता है कि भारतीय लोग ज्यामिति की विद्या से भली भांति परिचित थे। यज्ञ कुण्डों की भिन्न २ आकृतियां इस विद्या के ज्ञान को आधार में रख कर ही कही गई हैं।

(ii) जब कि योरोप और अन्य देश नक्षत्र-विद्या का नाम तक भी न जानते थे, भारत में इस विद्या का पूर्ण रूप से विकास हो चुका था। आठवीं या नवीं शताब्दि तक नक्षत्र-विद्या अरब भी पहुँच चुकी थी। अरब के खलीफा लोग बहुत से लोगों को इस विद्या को सीखने के लिये भारतवर्ष में भेजा करते थे। यहां आकर अरब लोग वर्षों भारतीयों के शिष्य बन कर रहते और संस्कृत की पुस्तकों का अरबी में अनुवाद किया करते थे। सर विलियम हन्टर का कथन है कि अरबी की पुस्तक 'सिन्धेन्दस' संस्कृत के 'सिद्धान्त' का ही अनुवाद है जो कि ज्योतिष का ग्रन्थ है।

(iii) आयुर्वेद की विद्या में भी भारत ही संसार का गुरु बना यह बात योरुप के और अन्य देशों के सभी विद्वान् मान चुके हैं। यह विद्या भी पहिले अरबों को ही मिली और उस के द्वारा समस्त संसार को। अरब के बादशाहों ने न केवल वैद्यक की पुस्तकों का अनुवाद ही कराया किन्तु प्रसिद्ध वैद्यों को अपने कोर्ट में निमन्त्रित भी किया। अरबी हिकमत की किताबों में भारतीय आयुर्वेद के ऋषि सुश्रुत, चरक और धन्वन्तरि का नाम जहां-तहां आता है और वहां उनको सबसे ऊंचे विश्वसनीय प्रामाणिक वैद्यों के रूप में माना गया है।

बनावटी नाक बनाने की विद्या से तो योरुप के लोग अभी तक परिचित न थे। हाल ही में पिछली शताब्दि में इस Rhinoplasty की विद्या को योरोपियनों ने भारतीय आयुर्वेद के विद्वानों से सीखा है।

(iv) प्राचीन भारत में चौमुखी उन्नति हो रही थी और जिस समय योरुप में गोरी जातियां नंगी फिरती थीं उस समय हमारे पूर्वज सभ्यता के उच्च शिखर पर पहुंचे हुए थे, इसके अनेक प्रमाण पाये जाते हैं। ये प्रमाण भी बनावटी नहीं परन्तु ऐसे हैं जिनसे कोई भी इन्कार नहीं कर सकता। उदाहणार्थ, भारतीयों ने अपनी सभ्यता के शैशव काल में ही ऐसी सुन्दर वर्णमाला (Alphabet) का निर्माण किया था जो सब प्रकार से उपयोगी नियमित, तथा सम्पूर्ण है। इसके मुकाबिले में इंग्लैंड और योरुप के अन्य देश सभ्यता के उच्च शिखर पर पहुँच कर भी वैसी सुव्यवस्थित वर्णमाला का विकास न कर सके। अंग्रेजी की वर्णमाला में व्यञ्जनों का न वर्गीकरण किया हुआ है और न सब प्रकार की आवाज़ों का उच्चारण ही उनके द्वारा किया जा सकता है। उदाहरणार्थ— त, ड, ख, फ इत्यादि अक्षरों के लिये आंगल भाषा में कोई एक अक्षर नहीं। इस पर मैक्डानल महाशय कहते हैं कि इस विज्ञान के युग में भी हम योरोपियन लोग

२५०० वर्ष पुराने यहूदियों की वर्णमाला का प्रयोग करते चले आते हैं, जो वर्णमाला न केवल हमारी भाषा की सारी आवाज़ों का उच्चारण करने के लिये अपर्याप्त है किन्तु जिसमें स्वर और व्यञ्जनों को बड़े बे-ढंगे तौर पर एक ही स्थान पर मिला कर रखा हुआ है।

(v) भारत जहां विज्ञान और अन्य विद्याओं में संसार का नेता बना था वहां शिल्पकला में भी यह योरुप का अगुआ ही था। भवन-निर्माण-कला प्रारम्भ काल में ही यहां कितनी उत्तम हो चुकी थी इस का अनुमान पुरानी इमारतों के बचे हुए खण्डहरों को देख कर ही लगाया जा सकता है। हाल ही में मोन्ट-गुमरी के पास हरप्पा में Covered drainage के खण्डहर मिले हैं। यह ६ फ़ीट ऊंचा है और सर जोन मार्शल—भारत के आरकियोलोजिकल रिसर्च के डाइरेक्टर—के मतानुसार यह कम से कम ५००० ई. पू. का है। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक योरुप में साधारण ड्रेनेज के तरीके को भी कोई न जानता था। वहां मकानों की छतों से गन्दा पानी नीचे फेंक दिया जाता था और नीचे चलने वाले नये २ सूट पहिने हुए उसी गन्दगी में तर-बतर हो जाते थे। कुछ दिनों बाद थोड़ा परिवर्तन हुआ और वह यह था कि गृहदेवी मकान की छतों से कूड़े का टोकरा फेंकते समय राहगीरों को आगाह करने के लिये एक घंटी बजा दिया करती थी, जिस प्रकार आज कल मोटर-ड्राईवर रास्ते से लोगों को हटाने के लिये हार्न बजा देता है। १९वीं सदी के प्रारम्भ तक जिन लोगों की ऐसी दशा रही हो वह भारत की उस उच्चतम सभ्यता का किस प्रकार अन्दाज़ा लगा सकते हैं, जिस को कि वे अब से हज़ारों वर्ष पहिले प्राप्त कर चुके थे।

देहली की लोहे की लाट भी भारत की प्राचीन शिल्पविद्या की स्मारक है। यह बहुत ऊंची है; एक ही लोहे के पत्थर की बनी हुई है और ऐसी सुडौल है कि पुरातत्ववेत्ताओं का कहना है कि यह अवश्य ही मशीन द्वारा ढाली गई होगी। हमें विश्वास है, जैसे २ पुरातत्व-खोज-विभाग का कार्य विस्तृत होता जायगा, वैसे २ भारत की और भी ऊंची सभ्यता को सिद्ध करने वाली निर्माण-कला के प्रमाण मिलते चले जायेंगे।

हमने जो प्रमाण उपस्थित किये हैं वे इस बात की जीवित-जागृत साक्षी हैं कि प्राचीन भारत में हमारे पूर्वजों ने जीवन के सभी क्षेत्रों में आश्चर्यजनक उन्नति की थी और संसार को अनेक विद्याओं का दान दिया था। आज हम उन पूर्वजों की सन्तानें उनके नाम पर कलंक हो रही हैं, उनको भी बदनाम कर रही हैं। जो कोई उन के गौरव के गीत गाते हैं उन को भी बेवकूफ़ बनाया जाता है। अपनी मूर्खता और अज्ञानता के कारण अपने पूर्वजों को उपहास का पात्र बनाना—यह कोई छोटा पाप नहीं। इस पाप का प्रायश्चित्त हमारी कौम को करना होगा, नहीं तो जब तक हम जीयेंगे तब तक बुज़ुर्गों से आशीर्वाद लेने के स्थान पर उन से लानतें लेते हुए जीयेंगे।



आर्यसमाज और डी. ए. वी. स्कूल

(ले०—बुद्धिसागर वर्मा विशारद बी. ए. एल. टी.)



यः देखने में आता है कि ईसाई संस्थाओं में ईसाई विद्यार्थियों, अध्यापकों के लिये विशेष सुविधायें रक्खी जाती हैं। ईसाई विद्यार्थियों की फ़ीस और विद्यार्थियों के मुक़ाबले में पहिले माफ़ की जाती है। उनके लिये आदर्श छात्रावास तथा धार्मिकशिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया जाता है। परन्तु आर्यसमाजी स्कूलों में इस का कोई विशेष प्रबन्ध नहीं देखा जाता। मुझे तजुर्बा है कि आर्यों के लड़के ठुकरा दिये जाते हैं। और गैर-आर्यों की फ़ीस ऊँची सिफ़ारिश पहुँचने पर तुरन्त माफ़ हो जाती है। आर्यों के बच्चों के लिये पृथक् कोई छात्रावास नहीं होता। और न उनके लिये विशेष सुविधायें ही रहती हैं। ईसाई संस्थाओं में ईसाई अध्यापकों के लिये वार्षिक वेतन वृद्धि दूसरे उसी योग्यता के अध्यापक की अपेक्षा अधिक दी जाती है। आर्य संस्थाओं में आर्य अध्यापकों के लिये कोई ऐसा नियम नहीं है। ईसाई स्कूल में एक अनुभवी (trained) अध्यापक निश्चित सरणी से वेतन पा सकता है। किन्तु आर्य संस्था में उस से आर्यसमाज संबन्धी प्रचार-कार्य तो यथावकाश लिया जावेगा, किन्तु वार्षिक वेतनवृद्धि का कोई वायदा नहीं किया जाता। यही कारण है कि अनुभवी आर्य अध्यापक आर्य संस्थाओं में बहुत समय तक नहीं टिकते। इसके अतिरिक्त कोई भी ईसाई अथवा मुसलिम स्कूल ऐसा न होगा जिस में प्रधानाध्यापक विधर्मी रक्खा जावे किन्तु आर्यसामाजिक स्कूल ऐसे मौजूद हैं जिन में ग़ैर आर्यसमाजी मुख्याध्यापक काम करते हैं। यह कितने दुख की बात है।

धार्मिक शिक्षा की दृष्टि से भी २-४ को छोड़ कर कम से कम यू० पी० की डी. ए. वी संस्थायें सन्तोषप्रद काम नहीं कर रही हैं। विद्यार्थियों की आचार विचार संबन्धी स्थिति वही रहती है जो अन्य स्कूलों में हुआ करती है। मुझे कई वार डी. ए. वी संस्थाओं के छात्रों से बातचीत करने का अवसर मिला। उन्हें अपनी संस्था तथा अपने अध्यापकों एवं स्कूल के कर्णधारों की बुराई करते हुए; सैकड़ों दोष गिनाते हुये, मनोमालिन्य एवं पार्टीबन्दी की ओर संकेत करते हुये, और कुप्रबन्ध (mismanagement) की शिकायत करते हुये सुनकर मुझे बड़ा खेद हुआ। मैंने देखा कि उनके हृदयों में आर्यसमाज का गौरव और मानप्रतिष्ठा लेशमात्र भी नहीं है।

आर्यसमाज के नेताओं को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। अन्यथा डी. ए. वी संस्थाओं को खोलकर स्वामी दयानन्द के नाम को कलङ्कित करने के अतिरिक्त कोई ठोस उपकार नहीं हो सकता।

मेरी राय में निम्नलिखित बातों पर शीघ्र प्रतिनिधि सभा को विचार करना चाहिये—मैं यू०पी० सभा के सुयोग्य मन्त्री श्री पं० रासबिहारी तिवारी एम. एल सी. से सानुरोध प्रार्थी हूँ कि वे शीघ्र इस विषय को प्रतिनिधिसभा की अन्तरङ्ग में उपस्थित करें। वे स्वयं एक डि. ए. वी. स्कूल

के जन्मदाता और कर्णधार हैं अतः उन के द्वारा इस कार्य का सम्पादन सुचारु रूप से हो सकेगा।

(१) प्रत्येक डी. ए. वी. संस्था उस प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा के आधीन रक्खी जाय।

(२) प्रत्येक प्रतिनिधि सभा को एक आर्य शिक्षा समिति का निर्माण करना चाहिये। सदस्य इस के वही हों जिन्हें शिक्षाविभाग में काम करने का अवसर प्राप्त हुआ हो अथवा जिन्हें इस ओर विशेष दिलचस्पी हो।

(३) इस बोर्ड का मन्त्री वैतनिक रक्खा जावे प्रान्त के समस्त आर्य-स्कूल, कालेज तथा कन्या पाठशालायें आदि उस के आधीन रहें। वह कम से कम प्रत्येक संस्था का निरीक्षण वर्ष में एक बार अवश्य करें। और बोर्ड में अपनी रिपोर्ट पेश करें।

(४) आर्य-संस्थाओं में काम करने वाले अध्यापकों की सरणी बना दी जाय। जिसे मानने के लिये सभी संस्थाएं बाध्य होंगी। इस से यह भी सुविधा हो सकेगी कि कोई भी आर्य-अध्यापक कारणवश एक संस्था से दूसरी संस्था को परिवर्तन किया जा सकेगा।

(५) प्रधानाध्यापक के लिये दृढ़ वैदिक-धर्मी होना अनिवार्य कर दिया जाय।

(६) धार्मिकशिक्षा का विशेष प्रबन्ध किया जाय। इस संबंध में ठोस कार्य की आवश्यकता है।

(७) धार्मिक शिक्षा उन्हीं अध्यापकों से दिलाई जाय, जो स्वयं वैदिकधर्मी हों।

(८) और भी उपयोगी बातों पर विचार किया जाय।



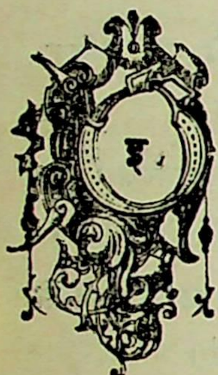
यदि कोई आदमी दावा भरता है कि मैं ईश्वर से प्यार करता हूँ, परन्तु व्यवहार में वह अपने किसी मनुष्य भाई से घृणा करता है तो वह झूठा है, क्यों कि वह जब अपने मनुष्य-भाई से, जो कि स्थूल रूप से दृश्य है, प्यार नहीं कर सकता तो वह ईश्वर से, जो कि अदृश्य है, किस तरह प्यार कर सकता है। ईश्वर का आदेश है कि मुझ से प्यार करने के लिये अपने भाईयों से प्यार करो।

सन्त जोन.

मास्टर साहब

(लेखक—श्रीयुत चन्द्रगुप्त विद्यालंकार)

(१)



इस अधेड़पन की आयु में, अपने बचपन की जिन अनेक, प्रातःकाल असम्बद्ध रूप में देखे हुए किसी सुख स्वप्न के समान मधुर स्मृतियों को, मैं कभी-कभी दिल की कसक मिटाने के लिए एकान्त में घंटों तक बैठ कर निरन्तर देखा करता हूं, उनमें मेरे मास्टर साहब का एक विशेष स्थान है। आज मैं एक प्रतिष्ठित कालेज का प्रिन्सिपल हूँ। मेरी गंजी खोपड़ी की यहां बहुत बड़ी धाक है। मेरी विद्वत्ता और मौलिकता पर मेरे कालेज के विद्यार्थी और अध्यापक गर्व करते हैं, परन्तु उन्हें क्या मालूम कि उनके प्रिन्सिपल साहब इन दिनों भी, कभी-कभी सपना देखते हुए, अपने बचपन के दो-एक साथियों का स्मरण करके उन के भय से सिहर उठा करते हैं। इन सपनों में भी मास्टर साहब ही ऐन मौके पर पहुँच कर अपने लाड़ले विनायक की रक्षा करते हैं। मास्टर साहब की वृद्ध छायामूर्ति को देख कर जब मेरा भय दूर होने लगता है, उसी समय मेरी नींद उचट कर, उस भयंकर होते हुए भी मधुर स्वप्न को बीच में ही समाप्त कर देती है।

स्कूल की छोटी जमातों में किसी लड़के का कोई ख़ास नाम पड़ जाना सब से बड़ी आफ़त है। उस उपनाम की मोहारनियाँ रट-रट कर लड़के उस की नाक में दम कर देते हैं। बदक़िस्मती से मेरे माँ-बाप ने मुझे जिस स्कूल में भर्ती किया, उसमें बहुत शीघ्र मेरे नाम के साथ 'चूहा' विशेषण जुड़ गया। मुझे ठीक याद नहीं कि यह नाम किस दिमाग़ की उपज थी,—शायद सब से पहले मेरे गणित के मास्टर ने मेरी चंचलता देख कर, मुझे 'चूहा' नाम से बुलाया था। परन्तु इतना मुझे अच्छी तरह से स्मरण है कि मेरे छोटे कद, तेज़ चाल और चमकीली आँखों के कारण, बहुत शीघ्र स्कूल भर में मेरा नाम 'बिनायक चूहा' प्रसिद्ध हो गया। यहां तक कि मेरे उस्ताद भी मुझे इसी नाम से पुकारने लगे। थोड़े ही दिनों में लोगों ने 'बिनायक' का भी बायकाट कर दिया, सिर्फ़ 'चूहा' कह कर ही मेरा स्मरण किया जाने लगा। उन दिनों मेरे लिये हंसना तक दूभर हो गया था—ज़रा किसी से कुछ कहा नहीं कि झट वह 'चूहा' कह कर मुझे चिढ़ा देता था। इतना ही नहीं, कई शरारती लड़के मुझे मार कर भाग जाते थे। जब मैं किसी उस्ताद से उनकी शिकायत करता तो वे झट से आकर कह देते—"नहीं जी, पहले चूहे ने ही मुझे काट खाया था!" मैं इस छेड़ से रोने लगता था, उस्ताद समझ लेते थे कि शायद सचमुच पहले मैंने ही शरारत शुरू की होगी। इन दिनों कभी-कभी मास्टर साहब ही मुझे प्यार से पुचकार कर आश्वासन दिया करते थे। जब कभी उन के अन्तर में कोई लड़का मुझ से छेड़छाड़ करता था, तब उसकी आफ़त आ जाती थी।

मास्टर साहब भूगोल के अध्यापक थे। वह केवल उर्दू का मिडल ही पास थे, परन्तु उन दिनों

हम उन्हें संसार के सब से बड़े विद्वानों में से एक समझा करते थे। जिस विद्वत्ता से वह हमें बिजनौर ज़िले का भूगोल पढ़ाया करते थे, उसकी सारी जमात क़ायल थी।

भूगोल में मैं अपनी जमात में पहला रहता था, इस कारण मास्टर साहब ने अपने अन्तर के लिये मुझे क्लास का मानीटर बना रक्खा था। मैं पढ़ाई में अच्छा होते हुए भी अपनी जमात का मानीटर नहीं था। जमात का असली मानीटर मुझ से बहुत चिढ़ता था। वह शीया था,—शीया मुसलमानों की चूहों से दुश्मनी स्वाभाविक है। वह सदैव मुझे पिटवाने का प्रयत्न करता था, इस लिये प्रतिदिन मैं भी भूगोल के अन्तर की प्रतीक्षा किया करता था। इस अन्तर में मानीटर पद का भारी अधिकार पाकर मैं अपनी जमात के असली मानीटर से बदला निकालने का पूरा प्रयत्न करता था। बोर्ड पर टंगे हुए नक़्शे के पास खड़े होकर, एक लम्बा प्वाइंटर हाथ में लिये हुए, मैं बड़ी संजीदगी के साथ प्रश्न पर प्रश्न करके सारी जमात को तंग कर देता था। ख़ास कर मानीटर से तो मैं अपना पूरा दिमाग़ लड़ा कर कठिन से कठिन सवाल किया करता था,—परिणामतः उसे प्रायः प्रतिदिन मास्टर साहब से डांट सुननी पड़ती थी। परन्तु शोक यही था कि भूगोल की बारी सप्ताह में केवल तीन दिन ही आती थी।

मास्टर साहब बहुत गरीब थे। केवल २५)रु० मासिक लेकर ही वह अपने बड़े भारी परिवार का पालन करते थे। यह होते हुए भी उनका दिल बहुत उदार था। एक दिन स्कूल की सीढ़ियों से गिर कर मेरी टाँग से खून निकलने लगा था, तब मास्टर साहब ने अपनी नई धोती का एक भाग फाड़ कर मुझे पट्टी बांध दी थी। वह मेरे सच्चे हितचिन्तक थे,—मुझे सदैव पढ़ने लिखने की ओर विशेष ध्यान रखने के लिये कहा करते थे।

मास्टर साहब में एक अवगुण भी था। वह यह कि वे बहुत आलसी थे। वह सदा क्लास में देर से आते थे और घंटा बज चुकने पर भी देर तक पढ़ाते रहते थे। परन्तु उनका यह अवगुण भी मेरे लिये बहुत लाभकर था। भूगोल के अन्तर में, जब तक मास्टर साहब न आते थे, मैं ही मानीटर के अधिकार से क्लास का निरीक्षण किया करता था। परन्तु मेरा यह भूगोल के अन्तर का आनन्द भी बहुत दिनों तक स्थिर न रह सका। लड़कों की सूझ बहुत दूर तक पहुँचती है। मैं प्रतिदिन एक लम्बा प्वाइन्टर हाथ में लेकर लड़कों को परेशान करता हूं, यह देख कर उन्होंने उस प्वाइन्टर का नाम 'चूहे की मूंछ' रख छोड़ा। बस, अब ज्योंहीं प्वाइन्टर उठा कर मैं बोर्ड के पास जाता था, लड़के आंख के इशारों से एक दूसरे की ओर देख कर शरारतभरी मुस्क्यान करने लगते थे। कभी-कभी इन गुप्त तानों से मैं इतना तंग आ जाता था कि रोने के सिवाय मेरे पास इस दुख से बचने का कोई इलाज ही न रहता था। मुझे रोता देख कर मास्टर साहब साक्षात् क्रूरता के अवतार बन जाते थे। मेरे ही कारण वह कई बार सारी क्लास को उलटे कान पकड़वा चुके हैं।

(२)

बचपन की उन सरल विभूतियों को समाप्त हुए बहुत अरसा बीत जाने पर भी मास्टर साहब से मेरा सम्बन्ध नहीं टूटा। लगभग १०, १२ बरस उस स्कूल से बहुत दूर, इलाहाबाद, रह कर भी मैं फिर उसी स्कूल में लौट आया। अब की बार, मैं प्रथम विभाग में एम० ए० की परीक्षा पास कर के इस स्कूल का मुख्याध्यापक नियुक्त होकर आया

हूँ। स्कूल में ज़मीन आसमान का परिवर्तन आ गया है। उन दिनों वह डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का एक साधारण मिडल स्कूल था, अब वह सरकारी हाई-स्कूल बन चुका है। उसकी इमारतें भी पहले की अपेक्षा बहुत विस्तृत और सुन्दर बना दी गई हैं। सहन में एक सुन्दर फुलवाड़ी लग गई है। आज उस ज़माने का एक भी विद्यार्थी या उस्ताद वहां नहीं है। सभी कुछ नया हो चुकने पर भी पुराने ज़माने का एक अवशेष अभी तक उसी तरह विद्यमान है। मेरे स्नेही मास्टर साहब आज भी ध्रुव-तारे की तरह से वहां विद्यमान है। जब मेरा जन्म भी नहीं हुआ था, तब से वह इसी स्कूल में शिक्षक का काम कर रहे हैं। वह तो स्थिर रहे हैं, परन्तु उनकी आयु उनकी तरह स्थिर नहीं रह सकी। अब वह बहुत ही वृद्ध हो गए हैं।

मैं मुख्याध्यापक बन कर स्कूल में आया हूँ। स्कूल में मेरा बहुत प्रभाव है। विद्यार्थी मेरा दबाव मानते हैं, अध्यापक मुझ से अदब के साथ पेश आते हैं। मैं बहुत शीघ्र कड़े नियन्त्रण का पक्षपाती हेड-मास्टर प्रसिद्ध हो गया हूँ। घंटा बजते ही सब लड़के स्कूल में पहुंच जांय, सब काम ठीक समय पर हो, लड़कों का वेश यथासम्भव एक समान रहे, वे स्कूल में कभी शोर न करें, इन सब बातों पर मैं बहुत अधिक ध्यान देता हूँ। मेरे रोब के कारण ही अब प्रायः सभी उस्ताद खड़े रह कर अपनी जमातों को पढ़ाते हैं।

मेरे मास्टर साहब भी मुझ से डरते हुए-से पेश आते हैं। यह मुझे पसन्द नहीं। आवश्यकता होने पर जब कभी वह चपरासी से पूछ कर डरते डरते मेरे दफ्तर में आते हैं, तब मैं खड़ा हो कर उनका स्वागत करता हूं। मैं सदैव उनको सम्मान-पूर्वक पहले बन्दगी करने की कोशिश करता हूं। हमेशा उनसे हंस कर बात करता हूं।

मेरी नियुक्ति से मास्टर साहब प्रसन्न भी हैं और कुछ खिन्न भी। वह खिन्न इस लिये हैं कि अपनी इस लम्बी ज़िन्दगी में उन्हें जिन २५-३० हेड मास्टरों से पाला पड़ा है, वे सब कभी न कभी उन की आलसी तबीयत के कारण फटकार अवश्य बता चुके हैं। इस बुढापे में मास्टर साहब का आलस्य और अधिक बढ़ गया है, परन्तु अपने इस नये 'चेले हेडमास्टर' के डर से उन्हें अपनी वह तबियत छोड़ने लिए जी जान से प्रयत्न करना पड़ रहा है। इस ज़िन्दगी तक मास्टर-साहब कभी-कभी हेडमास्टर की फटकार सुनने को मौसमी बुखार में कुनीन पीने की तरह से लाज़मी समझते रहे हैं—इसे उन्होंने कभी बुरा नहीं माना। मास्टर साहब के इतना प्रयत्न करने पर भी उनकी तबियत में कोई खास परिवर्तन नहीं आ सका। आदत पुरानी थी न। वह प्रायः अब भी क्लास में देर से पहुंचते हैं। उनके अन्तरों में लड़के शोर मचाते रहते हैं। मुझे यह सब बुरा प्रतीत होता है, तथापि मैं कभी मास्टर साहब से इस बात की शिकायत नहीं करता। वह जब किसी जमात को पढ़ाते होते हैं, तब मैं उस जमात में जाता ही नहीं—क्योंकि इससे मेरे लिये मास्टर साहब को खड़ा होना पड़ता।

(३)

गरमी का मौसम अपने पूरे यौवन पर था। नौकर बाहर बैठ कर पंखा खींच रहा था फिर भी मुझे असह्य गर्मी सता रही थी। उन दिनों बिजली के पंखे का आम रिवाज नहीं था, तब प्रायः सभी दफ्तरों में पंखे रस्सी से खींच कर चलाये जाते थे। गरमी इतनी थी कि कोई काम करने की इच्छा न होती थी। मेरे दफ्तर के सामने स्कूल के सहन में एक पेड़ की साया में किसी क्लास की पढ़ाई हो रही थी, वहां लड़के शोर मचा रहे थे।

इस शोर ने मुझे और भी अधिक खिन्न कर दिया। धीरे-धीरे लड़कों का यह शोर मेरे लिये असह्य हो गया। मैं क्रोध में भर कर दफ़्तर से बाहर निकल आया।

बाहर आकर मैंने देखा कि मास्टर साहब एक कुर्सी पर बैठे-बैठे ऊँघ रहे हैं; उनके सामने घास पर बैठे हुए चौथी जमात के छोटे-छोटे बच्चे शोर मचा रहे हैं। कुछ लड़के हाथा-पाई भी कर रहे हैं। मेरे स्कूल के सहन में, और वह भी मेरे दफ़्तर के ठीक सामने इतना अक्षम्य अपराध! जैसे यह स्कूल बिलकुल लावारिस हो। मैं क्रोध में भरा हुआ, शीघ्रता से मास्टर साहब के पास पहुँचा। लड़के घबरा कर उठ खड़े हुए। परन्तु मास्टर साहब अभी तक सो रहे थे। दो-एक क्षण तक उनकी ओर देखते रह कर क्रोधभरे स्वर में मैंने कहा—"मास्टर साहब!"

बूढ़े मास्टर पर मानो किसी ने तमञ्चे का फ़ायर कर दिया। वह हड़बड़ा कर एकदम कुर्सी पर से उठ खड़े हुए। उनका चेहरा अत्यधिक लज्जावनत हो गया। वह आंखें नीची कर के ज़मीन की ओर ताकने लगे।

इसके बाद मैं उनसे कुछ नहीं कह सका। मेरा सारा क्रोध उतर गया। मुझे स्वयं प्रतीत होने लगा कि मैंने यह काम अच्छा नहीं किया।

(४)

स्कूल का समय समाप्त हो गया। मैं अपनी साइकिल पर सवार होकर अपने घर पहुंचा। आज मेरा दिल बहुत उदास था। कभी मुझे अपने मास्टर साहब से भी इस तरह पेश आना पड़ेगा—यह मैंने कभी कल्पना भी न की थी। मैंने वहीं देख लिया था कि मेरी फटकार से मास्टर साहब को असह्य क्लेश पहुंचा है। रह रह कर मुझे उनका, उस समय का झुका हुआ, लज्जित चेहरा याद आने लगा। इस मानसिक खेद में आज भोजन भी नहीं कर सका।

दो पहर के दो बजे थे। स्कूल का समय ११ बजे ही समाप्त हो जाता था। इस समय सनसनाती हुई लू चल रही थी। सूर्य आग बरसा रहा था। इसी समय मैं नंगे पैर और नंगे सिर, पैदल ही मास्टर साहब के घर की तरफ़ चल दिया।

जमीन गरम तवे के समान तपी हुई थी। मुझे ऐसा अनुभव हो रहा था कि मानो मैं आग में चल रहा हूँ। गरम लू से शरीर छिदता जा रहा था। ऐसी भयंकर गरमी मैं ने इस जन्म में और कभी अनुभव न की होगी। मैं इन सब बातों की परवाह किये बिना, मास्टर साहब से मिलने की इच्छा से चला जा रहा था।

मास्टर साहब का घर, शहर के बिलकुल बाहर, एक खेत के किनारे पर था। एक छोटे से घर में वह अपने परिवार के साथ रहते थे। इस मौसम में फसल कट चुकी थी, खेत साफ़ मैदान की तरह से फैला हुआ था। मैंने देखा कि इसी खेत में शीशम के एक पेड़ की घनी छाया के नीचे मास्टर साहब कोई कपड़ा तक बिछाये बिना सोये हुए हैं। मैं उन के पास पहुंचा। मुख को छोड़ कर, उन का शेष सम्पूर्ण शरीर एक चादर से ढका हुवा था। कुछ देर तक मैं चुपचाप खड़े रह कर उन की तरफ़ देखता रहा। उस निर्जन खेत में, मानसिक व्यथा का मूर्तिमान अवतार बन कर सोता हुआ वह दरिद्र और बूढ़ा मास्टर मुझे इस लोक से बहुत ऊपर की चीज़ जान पड़ा।

इस के बाद उन के पैरों के पास बैठ कर मैं धीरे धीरे उन के पैर दबाने लगा। मास्टर साहब जाग उठे। मुझे देखते ही वह एकदम उठ कर बैठ गए। उन्होंने मुझे छाती से लगा लिया। मैंने देखा कि मास्टर साहब की आँखों से आँसू बह रहे हैं।

मास्टर साहब को, इस के बाद अधिक दिनों तक मेरे नीचे काम न करना पड़ा। मेरी सिफ़ारिशों के आधार पर उन की वेतनवृद्धि कर के उन्हें उसी जिले के एक प्रारम्भिक स्कूल का मुख्याध्यापक बना दिया गया।

× + +

मास्टर साहब को यह संसार छोड़े अब बहुत दिन होगए हैं, परन्तु उन की याद मेरे हृदय में आज भी ताज़ी बानी हुई है।



पुस्तक-समालोचना

व्रणबन्धन या पट्टियां (सचित्र) मूल्य सादी १।≈) सजिल्द १॥≈)

लेखक— कविराज शिवशरण वर्मा वैद्यरत्न, भिषगाचार्य, धन्वन्तरि प्रकाशक आचार्य धन्वन्तरि मण्डल, फगवाड़ा डाकघर कपूरथला पंजाब।

पुस्तक हिन्दी भाषा में अपने ढंग की उत्तम तथा परिश्रम पूर्वक लिखी हुई है। इस विषय की हिन्दी पुस्तक लिखकर लेखक महाशय ने चिकित्सा-शास्त्र के प्रारम्भिक विद्यार्थियों, सेवा समितियों तथा गृहस्थियों का बड़ा उपकार किया है अतः लेखक का कार्य बहुत प्रशंसनीय है। आये दिन घरों में बच्चों तथा परिवार के किसी भी प्राणी को चोट लगी होती है, उस को सुरक्षित अवस्था में रखने के लिये पुस्तक का ज्ञान परम लाभ-दायक है। हम पुस्तक के लेखक के इस प्रयास की प्रशंसा करते हैं और प्रत्येक शिक्षणालय से आग्रह करेंगे कि फर्स्ट एड के स्थान पर वे इस पुस्तक को अपनायें ताकि विषय हिन्दी में होने से विद्यार्थियों को सरल प्रतीत हो तथा भली प्रकार समझने में आ सके। प्रत्येक गृहस्थी को भी ऐसी लाभ-दायक पुस्तक अपनानी चाहिये, तथा सेवा समितियों को तो अवश्य इस पुस्तक से लाभ उठाना चाहिये।

रमेशचन्द्र बहुखण्डी





१. वर्तमान पूर्ण-स्वराज्य संग्राम में आर्य-समाजियों का कर्तव्य

ऋषि दयानन्द को नवीन भारत का राष्ट्र-निर्माता कहना चाहिये। उनके जीवन का रहस्य स्वाधीनता है। अपने जीवन में ऋषि ने भारतवर्ष को, भारतवर्ष ही को क्या संसार भर को, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक शृङ्खलाओं से मुक्त करने का प्रयत्न किया। भारतवर्ष में आज जो राजनीतिक स्वाधीनता के लिये गम्भीर प्रयत्न महात्मा गांधी के नेतृत्व में हो रहा है, उसे प्रारम्भ करने का श्रेय भी ऋषि दयानन्द को ही है। सब से पहले उन्हीं ने ही, सत्यार्थ प्रकाश में "स्वराज्य" शब्द का व्यवहार किया था। ऋषि दयानन्द सचमुच क्रान्तदर्शी थे। आज भारतवर्ष जिन बातों को बड़ी बेचैनी से मालूम कर रहा है, अब से १५, २० साल पहले उन का स्वप्न तक भी लेना कठिन था, परन्तु ऋषि ने ये बातें, बिल्कुल स्पष्टरूप से, अपने ग्रन्थों तथा भाषणों में आज से ५०, ६० बरस पूर्व लिखी और कही थीं। जिन दिनों कांग्रेस का जन्म भी न हुवा था, उन दिनों ऋषि भारतवासियों को 'स्वराज्य' की भावना सिखाया करते थे।

इङ्गलैण्ड के सुप्रसिद्ध विद्वान जान स्टुअर्ट मिल और ऋषि दयानन्द दोनों समकालीन थे। यह देख कर बड़ा आश्चर्य होता है कि ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में और जान स्टूअर्ट मिल ने अपने 'प्रजातन्त्र शासन' (Representative Government) नामक ग्रन्थ में बिल्कुल स्वतन्त्र रूप से दो ऐसी बातें लिखी हैं जो दोनों ग्रन्थों में बिल्कुल समान हैं। ऋषि दयानन्द ने लिखा है— "विदेशी राज्य चाहे माता पिता के समान ही हितकारी क्यों न हो, परन्तु उस की अपेक्षा रद्दी से रद्दी स्वदेश का राज्य कहीं अधिक अच्छा है।" जा० स्टू० मिल ने भी बिल्कुल यही बात लिखी है। ऋषि दयानन्द के हृदय में भारतवर्ष की स्वाधीनता के लिए जो तीव्र अभिलाषा थी, वह इस उपर्युक्त वाक्य से सूचित होती है।

वर्तमान स्वराज्य आन्दोलन में जिन बातों को स्वाधीनता प्राप्ति के लिये आधारभूत समझा जा रहा है, वे सब की सब ऋषि दयानन्द की शिक्षाओं में पहले ही से ओत प्रोत हैं। ऋषि दयानन्द स्वयं सदैव स्वदेश में बने वस्त्रों का ही व्यवहार किया करते थे। सत्यार्थप्रकाश में ऋषि ने यूरोपियन लोगों की वर्तमान उन्नति के कारणों को बताते हुए लिखा है—"वह सब, परस्पर विचार और सभा से निश्चय करके कराते हैं, अपनी स्वजाति की उन्नति के लिये तन, मन, धन से व्यय करते हैं......... देखो! अपने देश के बने

जूते को आफ़िस और कचहरी में जाने देते हैं, इस देश के जूते को नहीं।"[1]

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि ऋषि दयानन्द ने अपने परम भक्त महाराजाधिराज नाहरसिंह को जो पोशाक स्वयं बनवा कर भेंट की थी, वह हाथ के कते हाथ के बुने शुद्ध खद्दर की थी। इसी एक घटना से उन के स्वदेशी प्रेम का परिचय मिल सकता है। ब्राह्मो-समाजियों में जो सब से बड़ी त्रुटि उन्हें अनुभव हुई, वह यही कि— "इन लोगों में स्वदेश भक्ति बहुत न्यून है।"[2]

वर्तमान स्वराज्य आन्दोलन का एक आवश्यक अंग अदालतों का बहिष्कार है। आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द तो इस बात को इतनी अधिक महत्ता देते थे कि अदालतों के बहिष्कार को उन्होंने आर्य समाज के ५१ उप-नियमों में स्थान दिया है। उन का कथन है कि आर्यों को अपने विवादों का स्वयं आपस में ही निर्णय कर लेना चाहिये। ऋषि दयानन्द का यह निर्देश आर्यसमाज को अपने अन्दर के झगड़े निबटाने के लिये विदेशी सरकार की अदालतों की शरण न लेने में प्रकाशस्तम्भ के समान सन्मार्ग दिखाता रहा है।

भारतवर्ष को एक राष्ट्र की भावना में गूथने के लिये सब से बड़ी आवश्यकता यह है कि इस महादेश की एक सर्वमान्य भाषा बनाई जावे। ऋषि ने इस बात को अनुभव किया था। स्वयं गुजराती होते हुए भी उन्होंने अपने सब ग्रन्थ राष्ट्रभाषा हिन्दी में ही लिखे और हिन्दी के प्रचार का प्रयत्न किया। जहां ब्रह्मो-समाज के नेता केशवचन्द्र ने अपने ग्रन्थ अंग्रेज़ी में लिखे, जहां स्वामी विवेकानन्द, ऋषि देवेन्द्रनाथ और सर सैयद अहमद—इन सभी लोगों में से किसी ने हिन्दी को अपनाने का प्रयत्न नहीं किया, वहां ऋषि दयानन्द की दूर तक देखने वाली अन्तर्दृष्टि ने इस बात को भली प्रकार समझ लिया था कि भारत-वर्ष को एक भाषा की आवश्यकता है, और यह भाषा हिन्दी ही हो सकती है। ऋषि दयानन्द स्वयं गुजराती थे, अतः उन्हें हिन्दी को अपनाने में परिश्रम भी बहुत काफ़ी करना पड़ा होगा, परन्तु उन्होंने इस बात की ज़रा भी परवाह नहीं की।

महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन के क्रियात्मक कार्यों के दो मुख्य अंग अछूतोद्धार और शराब का निषेध हैं। ऋषि दयानन्द ने भारत की सामाजिक बुराइयों को सब से पहले अनुभव किया था। उन्होंने केवल अछूतोद्धार ही नहीं, अपितु छुआछूत, बाल विवाह, स्त्रियों की अशिक्षा गोवध-आदि सम्पूर्ण सामाजिक बुराइयों को दूर करने का महान क्रियात्मक अध्यवसाय अपने जीवन में किया। ऋषि ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है—"और जो आजकल छुआछूत और धर्म नष्ट होने की शंका है, वह केवल मूर्खों के बहकाने और अज्ञान बढ़ने से है।......... जब स्वदेश ही में स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश में व्यवहार वा राज्य करें तो बिना दारिद्र्य और दुख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता।"[1]

छूआछूत के सम्बन्ध में ऋषि का कथन है— "इसी छूआछूत से इन लोगों ने चौका लगाते लगाते विरोध करते कराते सब स्वतन्त्र्य, आनन्द, धन, राज्य, विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगा हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं और इच्छा करते हैं कि कुछ पदार्थ मिले तो पका कर खावें। परन्तु वैसा न

१. सत्यार्थप्रकाश-शताब्दि संस्करण-११ समुल्लास पृष्ठ ५२७
२. " " पृष्ठ ५२५. पंक्ति १७

१. सत्यार्थ प्रकाश. शताब्दि संस्करण. १०म समुल्लास, पृष्ठ-३८८-८९।

होने से जानो सब आर्यावर्त देश भर में चौका लगा कर के सर्वथा नष्ट कर दिया है।''[२]

देश में जो सामाजिक और राजनीतिक बुराइयां इस समय घर कर रही हैं, इन सब का मूल-कारण ऋषि दयानन्द की राय में विदेशी राज्य ही है। ऋषि लिखते हैं:—

"विदेशियों के आर्यावर्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना पढ़ाना वा बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषण आदि कुलक्षण, वेद विद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई भाई लड़ते हैं तो तीसरा विदेशी पंच बन बैठता है।......आपस की फूट से कौरव, पाण्डव और यादवों का नाश हो गया सो तो हो गया परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ा कर दुख-सागर में डुबा कर मारेगा? उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्र हत्यारे, स्वदेश विनाशक, नीच के दुष्ट मार्ग में आर्य लोग अब तक भी चल कर दुख बढ़ा रहे हैं।''[३]

आर्य भाइयो! देखो, और अनुभव करो;—ऋषि के इन शब्दों में स्वदेश और स्वराज्य के लिये कितनी बड़ी तड़पन है!

पूर्ण स्वराज्य का आन्दोलन आज देश में पूरे यौवन पर है। महात्मा गांधी के दिव्य नेतृत्व में विदेशी सरकार से मोर्चा लेने के लिये सत्याग्रह का धर्मयुद्ध जारी कर दिया गया है। इस समय नमक कर के विरोध में देश की शक्ति लगी हुई है। महात्मा गांधी का कहना है कि विदेशी सरकार ने भारत पर जो बड़े बड़े अत्याचार किये हैं इन में नमक-कर सब से बड़ा है। लोगों ने नमक कर की बुराई और अन्याय को, आज जाकर गम्भीरता से अनुभव किया है; परन्तु ऋषि दयानन्द ने उस समय जब कि स्वनाम धन्य महात्मा गांधी का जन्म भी न हुवा था, नमक कर के विरोध में अपनी आवाज़ उठाई थी। इसी तरह जंगलात के कर का भी उन्हों ने विरोध किया था और शराब का कर अब से चार गुना कर देने की सलाह दी थी। उन्हों ने सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण में लिखा है-''परन्तु मेरी बुद्धि में गुण इन बातों में नहीं देख पड़ते हैं, इस से इन बातों को मैं लिखता हूं। एक तो यह बात है कि नोन और पौनरोटी (जंगलात) में जो कर लिया जाता है वह मुझ को अच्छा नहीं मालूम देता क्योंकि नोन के बिना दारिद्र का भी निर्वाह नहीं होता किन्तु सब को नोन आवश्यक होता है और वे मजूरी मेहनत से जैसे तैसे निर्वाह करते हैं, इन के ऊपर भी यह नोन का दण्ड तुल्य रहता है। इस से दरिद्रों को क्लेश पहुंचता है। इस से ऐसा होय कि मद्य, अफ़ीम, गांजा, भांग इन के ऊपर चौगुना कर स्थापन होय तो अच्छी बात है क्योंकि नशादिकों का छूटना ही अच्छा है और जो मद्यादिक बिल्कुल छूट जांय तो मनुष्य का बड़ा भाग्य है क्योंकि नशा से किसी को कुछ उपकार नहीं होता। परन्तु रोग निवृत्ति के वास्ते औषधार्थ तो मद्यादिकों की प्रवृत्ति रहना चाहिये क्योंकि बहुत से ऐसे रोग हैं जिन के मद्यादिक ही निवृत्ति कारक औषध हैं। सो वैद्यक शास्त्र की रीति से उन रोगों की निवृत्ति हो सकती है तो उन को ग्रहण करें, जब तक रोग न छूटे। फिर रोग के छूटने से पीछे मद्यादिकों को कभी ग्रहण न करें;

१. सत्यार्थ प्रकाश. शताब्दि संस्करण. १०म समुल्लास, पृष्ठ-

२। ,, ,, पृष्ठ ३८९।

३। ,, ,, पृष्ठ ३९१-९२।

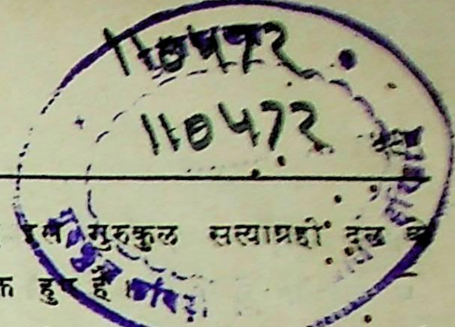
क्योंकि जितने नशा करने वाले पदार्थ हैं वे सब बुद्ध्यादिकों के नाशक हैं, इस से इन के ऊपर ही कर लगाना चाहिये और लवणादिकों के ऊपर न चाहिये। पौनरोटी से भी गरीब लोगों को बहुत क्लेश होता है क्योंकि गरीब लोग कहीं से घास छेदन करके ले आये वा लकड़ी का भार। उन के ऊपर कौडियों के लगने से उन को अवश्य क्लेश होता होगा। इस से पौनरोटी का जो कर स्थापन करना, सो भी हमारी समझ से अच्छा नहीं।"[1]

इन सब बातों के लिखने से मेरा अभिप्राय केवल इतना ही है कि ऋषि दयानन्द इस युग में स्वाधीनता का स्वप्न लेने वाले प्रथम महापुरुष थे। इस लिये ऋषि के प्रत्येक भक्त और अनुयायी का यह पवित्र कर्तव्य है कि वह उन के पदचिन्हों का अनुसरण करके वर्तमान स्वराज्य आन्दोलन में पूर्ण भाग ले। मुझे विश्वास है कि व्यक्तिगत रूप से अधिकांश आर्यसमाजी भाई इस धर्मयुद्ध में सम्मिलित होंगे। मेरे पास अनेक आर्यभाइयों के इस सम्बन्ध में जो पत्र आये हैं, उन से विदित होता है कि वे लोग इस युद्ध में सामूहिक रूप से सम्मिलित होने के लिए परम उत्सुक हैं। परन्तु मेरी राय में जहां प्रत्येक आर्यसमाजी का कर्तव्य इस धर्मयुद्ध में शामिल होना है वहां आर्यसमाज को सामूहिक रूप से इस राजनीतिक युद्ध में शामिल होने की आवश्यकता नहीं है। स्वामी दयानन्द का रूप केवल आर्यसमाज तक ही समित नहीं है। वह जहां एक ओर आर्यसमाज की स्थापना करने वाले थे, वहीं वह नव भारत के निर्माता भी थे। आर्यसमाज धार्मिक संस्था है। वह अन्तर्राष्ट्रीय है, एक देशीय नहीं। परन्तु वह आर्य भाई बड़ा भारी पाप करेगा, वह बिलकुल गुमराह रहेगा, जो इस अन्तर्राष्ट्रीयता के नाम पर भारत की इस स्वाधीनता की लड़ाई को उपेक्षा या अवज्ञा के साथ देखेगा। भारत इस समय पराधीन है, इस देवभूमि को पराधीनता की शृङ्खलाओं से मुक्त करना प्रत्येक आर्य का परम धर्म है।

आर्य समाज इस समय तक सामूहिक रूप से भी स्वराज्य प्राप्ति के कार्य में बड़ी सहायता पहुँचाता रहा है। आर्य समाज ने सामाजिक सुधार का जो काम अब तक किया है, यदि वह न किया गया होता तो स्वराज्य की भावना भारतवर्ष में इतनी शीघ्रता से कदापि नहीं बढ़ सकती थी। इसके अतिरिक्त आर्य समाज सामूहिक रूप से अछूतोद्धार तथा राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में भी काम करता रहा है। अस्पृश्यता को दूर करने में सब से बड़ा और सब से प्रथम स्थान आर्य समाज का है, ठीक इसी प्रकार गुरुकुल के आचार्य की हैसियत से मैं यह कहने का दावा भर सकता हूँ कि राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में भी सब से पहला और सफल व्यावहारिक प्रयत्न आर्य समाज ही ने किया है और यह प्रयत्न गुरुकुल की स्थापना के रूप में है। आर्य समाज के इन कामों को पिछले असहयोग आन्दोलन से और भी अधिक सहायता मिली और असहयोग आन्दोलन को आर्यसमाज के इन कार्यों से पर्याप्त उत्तेजना मिली— ये दोनों बातें तथ्य हैं।

आज इस नवीन राजनीतिक धर्मयुद्ध में, आवश्यकता है कि आर्य समाज, अपने उद्देश्यों के अनुसार एक और रचनात्मक कार्य अपने हाथों में ले। यह कार्य है शराब के बहिष्कार के रूप में। आर्य-

१. सत्यार्थ प्रकाश, प्रथम संस्करण, समुल्लास ११ पृष्ठ सं० ३८४-८५



समाज शराब का सब से बड़ा दुश्मन है। महात्मा गांधी की तरह आर्य समाज का भी विश्वास है है कि शराब के बहिष्कार के बिना देश पवित्र नहीं बन सकता। महात्मा गांधी ने हाल ही में गुरुकुल तथा हरिद्वार वासियों के नाम जो सन्देश भेजा है, उस में उन्हों ने लिखा है—"जब तक भारतवर्ष में एक भी शराब की दूकान बाकी है, तब तक मुझे शान्ति नहीं मिल सकती।"

आर्य भाइयो! आपका गुरुकुल अब शीघ्र ही इस कांगड़ी की भूमि से हरिद्वार जा रहा है। वहां ज्वालापुर के निकट इस पवित्र कुल की इमारतें बन चुकी हैं। बड़े खेद का विषय है कि ज्वालापुर में शराब की एक दुकान है। हम गुरुकुल के वासी यह चाहते हैं कि हमारे निकट के पवित्र वातावरण को यह शराब की दुकान खराब न करे। हरिद्वार ज्वालापुर तथा पञ्चपुरी के निवासियों की यह पुरानी इच्छा थी कि उन के पवित्र तीर्थ में से यह दूकान हटा दी जावे। ज्वालापुर के मुसलमानों की भी यही इच्छा थी। इस के लिये अनेक वार प्रयत्न भी किये गए, परन्तु सफलता नहीं मिली। अब गंगा सभा हरिद्वार तथा गुरुकुल के अनेक सत्याग्रही स्नातकों के प्रयत्न से यह आन्दोलन पुनः बड़े उग्र तथा प्रभावशाली रूप में उठाया गया है। इस सम्बन्ध में अभी सरकार से पत्र व्यवहार हो रहा है। २१ एप्रिल तक इस बात का निर्णय हो जायगा कि सरकार यह दुकान स्वयं हटाने को तैयार है या नहीं। यदि सरकार यह शुभ कार्य करने को तैयार न हुई तो सामूहिक रूप से इस दुकान के खिलाफ़ सत्याग्रह किया जावेगा। जो आर्य भाई, इस सत्याग्रह में सम्मिलित होना चाहें, उन्हें गुरुकुल कांगड़ी (ज़ि० सहारनपुर) के पते पर-श्री पं० देवशर्मा जी से पत्र व्यवहार करना चाहिये। वह इस गुरुकुल सत्याग्रही दल के कप्तान नियुक्त हुए हैं।

मेरी राय में अब वह समय आगया है जब आर्य समाज सामूहिक रूप से इस कार्य में अपनी पूरी शक्ति लगा दे। शराब का बहिष्कार एक धार्मिक कर्तव्य है। आर्य सज्जनो! यह कार्य आप अपना धर्म समझ कर कीजिए। याद रखिये, मातृभूमि की पवित्रता कायम करने के लिये इस से बढ़ कर पवित्र कार्य कोई और नहीं हो सकता। हमारा संपूर्ण प्राचीन साहित्य, मनुस्मृति, शतपथ ब्राह्मण,—सभी शराब की घोर निन्दा करते हैं।

मेरा आप से अनुरोध यह है कि आप अपने अपने नगरों में शराब के विरोध में पिकेटिंग और सत्याग्रह करने के लिए उपसमितियां स्थापित कीजिये, और एक साथ इस धर्मयुद्ध में जुझ जाइये। गुरुकुल कांगड़ी का सत्याग्रही दल इस कार्य में आपका मार्ग दर्शन बनेगा। उस का अनुसरण कीजिये। ऋषि की राजनीतिक और धार्मिक दो सेनाएं हैं। उस की राजनीतिक सेना इस समय विदेशी सरकार द्वारा अन्याय से लगाये गए नमक करके विरोध में सत्याग्रह कर रही है, अब उसकी धार्मिक सेना-आर्यसमाज-का यह कर्तव्य है कि वह शराब के विरोध में अपनी सम्पूर्ण शक्ति को केन्द्रित कर दे।

यह मत सोचिये कि आर्य समाज के इस कार्य से सरकार नाराज़ होगी, इस लिये यह काम नहीं करना चाहिये। जब हम लोग नगरकीर्तन के अधिकारों की रक्षा के लिये सत्याग्रह करने का निश्चय करते हैं, तब क्या सरकार नाराज़ नहीं होती? आवश्यकता इस बात की है कि हम सामूहिक रूप से शराब के बहिष्कार द्वारा अपना उद्देश्य देश की धार्मिक शुद्धि ही समझें। इस

काम में मुसलमान, और पौराणिक भाई भी आप का सहयोग देंगे, और इस से देश में सहिष्णुता का पवित्र वायुमण्डल तैयार होगा। यह कार्य तो आर्यसमाज के धार्मिक प्रचार का मुख्य अङ्ग है।

आर्य भाइयो! दयानन्द के वीर सैनिकों की परीक्षा का समय आ गया है। इस समय अपने को कायर सिद्ध मत कीजिये। आप इस धर्मयुद्ध में आगे बढ़िये। संसार देखे कि ऋषि दयानन्द के चेलों में कितना जीवन है।

रामदेव (आचार्य)

२. हिन्दी का मासिक-साहित्य

संसार भर में आजकल जो भाषाएं बोली जाती हैं, इन में, उन्हें बोलने वाले लोगों की संख्या के हिसाब से 'हिन्दी' का नम्बर तीसरा है। इस का अभिप्राय यही है कि यदि संसार के सम्पूर्ण देश सभ्यता और शिक्षा की दृष्टि से एक लैवल के हो जायें तो हिन्दी का साहित्य तीसरे नम्बर पर होना चाहिये। परन्तु यथार्थ में हिन्दी की स्थिति अभी तक इतना अधिक नगण्य सी बनी हुई है कि हिन्दी-भाषा में कुछ साहित्य है भी,—यह बात तक संसार के बहुत से विद्वान नहीं जानते। प्राचीन साहित्य की बात जाने दीजिये, वर्तमान समय का हिन्दी का साहित्य संसार के साहित्य में ज़रा भी स्थान नहीं रखता। संसार का साहित्य तो दूर की बात है, हिन्दी साहित्य का तो भारत की अनेक प्रान्तीय भाषाओं तक से नीचे स्थान आता है। यह बात तथ्य है। हमारी इस अवनति और पिछड़ी हुई स्थिति के कारण बहुत गहरे हैं, केवल उन्हें हटाने के लिये ही भारतवर्ष में युग-परिवर्तन-कारिणी क्रान्ति की आवश्यकता है।

एक बात देख कर बड़ा आश्चर्य और खेद होता है। वह यह कि हिन्दी का दैनिक साहित्य अभी तक, इस जागृति के युग में भी, बहुत अवनत है। हिन्दी में जो दैनिक पत्र निकलते हैं, उ[illegible] की दशा देख कर दुख होता है। हमारी राय में [illegible]कल यदि कोई दैनिक पत्र नियमित रूप से प्रतिदिन १२ पृष्ठों से कम पृष्ठों में निकलता है तो उसे दैनिक-पत्र न कह कर दैनिक-कोड़-पत्र (ज़मीमां) ही कहना चाहिये। इस समय तक हिन्दी में दैनिक समाचर पत्रों की संख्या बहुत कम है। भारतवर्ष भर में उर्दू-भाषा-भाषी लोगों की संख्या २ करोड़ से भी कम है, परन्तु अकेले लाहौर ही से उर्दू के ६ या ७ दैनिक अख़बार प्रकाशित होते हैं। दूसरी ओर सम्पूर्ण बिहार से, जहां ३ करोड़ हिन्दी-भाषा-भाषी रहते हैं, एक भी हिन्दी दैनिक-पत्र नहीं निकलता। सम्पूर्ण मध्यप्रान्त में, हाल ही में 'लोकमत' नाम का एक हिन्दी दैनिक प्रकाशित होने लगा है, इस से पूर्व वहां कोई दैनिक-पत्र नहीं था। युक्त प्रान्त से भी, जहां ४ करोड़ से ऊपर हिन्दी-भाषा-भाषी लोग रहते हैं, सिर्फ़ ३, ४ हिन्दी दैनिक ही प्रकाशित होते हैं। इन में भी प्रथम श्रेणी का दैनिक कोई नहीं। हिन्दी-भाषा में जो दैनिक वर्तमान समय में प्रकाशित हो रहे हैं, उन में, हमारी राय के अनुसार सिर्फ ४ पत्र ही कुछ स्थिति रखते हैं, ये हैं— जबलपुर से निकलने वाला 'लोकमत', कलकत्ता से प्रकाशित होने वाला 'विश्वमित्र', काशी से छपने वाला 'आज' और दिल्ली से सम्पादित होने वाला 'अर्जुन'।

परन्तु हिन्दी के साप्ताहिक और मासिक साहित्य के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। हिन्दी का साप्ताहिक साहित्य उस के दैनिक साहित्य से

[अ]धिक उन्नत है और उस का मासिक साहित्य [अ]पने साप्ताहिक साहित्य की उपेक्षा भी अधिक उन्नत है। साप्ताहिक पत्रों की दृष्टि से, सम्भवतः हिन्दी भारत की किसी भी अन्य भाषा से मुक[ाबला] [न]ा कर सकती है। अभी तक एक खास ढंग के साप्ताहिक का हिन्दी में अभाव था अब कानपुर का 'मनसुखा' उस कमी को पूरा करने का सराहनीय उद्योग कर रहा है, यद्यपि इस में अभी उन्नति की बहुत गुञ्जाइश है।

पिछले १० वर्षों में हिन्दी के मासिक साहित्य [न]े सचमुच आश्चर्य जनक उन्नति की है। हिन्दी में [ज]ितनी मासिक पत्रिकाएं आज निकलती हैं, उन की आज से १० वर्ष पूर्व कल्पना भी न हो सकती [थ]ी। निःसन्देह आज हिन्दी का मासिक साहित्य [भ]ारतवर्ष भर की सम्पूर्ण प्रान्तीय भाषाओं से [अ]धिक उन्नत है। हिन्दी में अब करीब एक दर्जन [प्र]थम श्रेणी के मासिक पत्र या पत्रिकाएं प्रकाशित [ह]ो रही हैं। हिन्दी मासिकों की सम्पूर्ण संख्या [त]ो बहुत अधिक है।

मासिक पत्रों की अधिकता के कारण उन में [प्र]तिस्पर्धा बहुत बढ़ गई है। इस प्रतिस्पर्धा से [ल]ाभ और हानि दोनों ही हुए हैं। मासिक पत्रों में [पृष्ठ] संख्या तथा चित्रों की वृद्धि तथा मैटर को [अ]धिक मनोरञ्जक और उपादेय बनाने का प्रयत्न [इस]ी प्रतिस्पर्धा का परिणाम है। दूसरी ओर इस [प्रति]स्पर्धा से यह हानि हुई है कि मासिक पत्र, [स]भी तो नहीं परन्तु अधिकांश, अपनी ग्राहक-[सं]ख्या बढ़ाने के लिये कभी कभी ऐसा मैटर भी [ग्र]ाहकों को देते हैं, कभी २ ऐसे चित्र भी प्रकाशित [क]रते हैं, जो मैटर और चित्र कम पढ़ी-लिखी [ज]नता को आकृष्ट तो भले ही करलें, परन्तु [उ]स का स्थायी परिणाम, साहित्य, कला और सदाचार-इन सभी दृष्टियों से समाज के लिये घातक नहीं तो हानिकर अवश्य होता है। हिन्दी के प्रकाशक आजकल सचमुच मासिक साहित्य की उत्पत्ति के लिये बड़ा काफ़ी प्रयत्न कर रहे हैं। इस प्रयत्न में धन भी काफ़ी बड़ी मात्रा में व्यय किया जा रहा है। हमें ज्ञात है कि अनेकों हिन्दी-मासिक पत्र-पत्रिकाओं के संचालक प्रतिवर्ष हज़ारों रुपयों का घाटा अपने सिर पर लाद रहे हैं। उन का यह प्रयत्न सचमुच सराहनीय है। परन्तु यह देख कर हमें दुख होता है कि मासिक पत्रों में जो यह भयंकर प्रतियोगिता चल रही है, उस का आधार बहुत अंश में बिल्कुल उथला है। वे लोग, जो इस सम्बन्ध में ज़रा भी दिलचस्पी रखते हैं, यह भली प्रकार जानते होंगे कि मासिक पत्रों के व्यय का बड़ाभारी बोझ आजकल, रंगीन चित्र बनवाने पर होता है। फिर काफ़ी व्यय करके भी अच्छे चित्र नहीं मिलते, इस लिये प्रयत्न यह किया जाता है कि साधारण लोगों की रुचि को आकृष्ट करने वाले, परन्तु कला की दृष्टि से बिल्कुल मामूली, और बहुत बार तो निकम्मे चित्र ही पत्रिका में जमा कर दिये जावें। हम पूछते हैं कि भला संसार के किसी और देश में भी किसी भाषा के मासिक साहित्य का मुख्य उद्देश्य प्रति अङ्क में ४, ४ और ५, ५ रंगीन चित्र देकर पाठकों को ऐलबम तैयार करने के साधन उपस्थित करना है? प्रतिमास इतने चित्र देना सचमुच कोई बुरी बात नहीं। परन्तु इसे 'दहेज़' का रूप देने का प्रयत्न कभी नहीं करना चाहिये, जिस से घर-बार नीलाम करने की ही नौबत आजावे। इस शाही तबीयत का क्या मतलब है कि हिन्दी मासिक पत्र संचालक अपने पत्र को बन्द कर देना तो पसन्द करेंगे, परन्तु चित्रों की संख्या घटाना उन्हें सह्य न होगा।

मामूली चित्रों के बारे में हमें यही कहना है कि उन की संख्या अभी और भी बढ़ाने की गुंजाइश है। हमारे मासिक साहित्य में जो मामूली चित्र अभी तक प्रकाशित होते हैं, उन में से अधिकाँश का ब्लाक इतना रद्दी बना होता है कि शायद उन ब्लाकों को यूरोप भर का एक भी अखबार, छापने का साहस न करे। कार्टून एक तो दिये ही बहुत ... जाते हैं. इस पर जो कार्टून प्रकाशित होते हैं, व... कला की दृष्टि से बिलकुल तीसरे दर्जे के हैं। ... वहां उन की रचना इतनी दोषपूर्ण होती है कि ... का ब्लाक बनवाने में खर्च भी अधिक होता है। हमारी राय में तो हिन्दी की सम्पूर्ण पत्र पत्रिकाओं के संचालकों को बहुत शीघ्र यह निर्णय कर लेना चाहिये कि वे भविष्य में सिर्फ़ एक रंगीन चित्र ही प्रतिमास दिया करेंगे। यह चित्र सफ़ाई, सौन्दर्य और कला की दृष्टि से कितना अच्छा है—पाठकों को पत्र पत्रिकाओं की प्रतियोगिता इसी परख से करनी चाहिये।

पिछले दो वर्षों से हिन्दी में विशेषाङ्क की प्रवृत्ति भी बेतरह बढ़ रही है। अमुक पत्रिका ने अब के ५०० पेजों का पो... ग्राहकों को मुफ़्त में दिया—यह बात अ... पत्र या पत्रिका के पक्ष में दलील के रू... जाने लगी है। विशेषांक निकालना ... अच्छा है। परन्तु विशेषाङ्क किसी एक उ... होना चाहिये। सिर्फ़ मोटाई कोई श्रेष्ठ उ... है। एक साथ चार अंकों जैसा मोटा ... प्रकाशित करने में संचालक के साहस की ... भले ही की जा सके; परन्तु इस साहस ... बहुत साधारण है। इस का वही फल है जो ... में सैंकड़ों की बरात को पेटभर मिठाई खि... होता है। बिना किसी ख़ास उद्देश्य के ५०... विशेषांक निकाल देने की अपेक्षा पत्रिका ... मास ४० पृष्ठों की वृद्धि कर देना अधिक ... और इस की अपेक्षा और भी अधिक अच... कि उतने व्यय के का दाम कम कर दिया ज...

...राम पाठक प्रिन्टर तथा पं० रमेशचन्द्र पब्लिशर के लिये गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में मुद्रित।



10892
26/5/85

17 - 21
36
50 - 54
69
iv 97 99 - 109 97
118 - 123 137
158 165
209 - 211
251
293
319 - 323
407 - 408
458 - 471

